पाश्चात्य

समीक्षा - दर्शन

❖

डॉ जगदीशचन्द्र जैन
एम ए पी-एच डी
भूतपूर्व अध्यक्ष हिन्दी विभाग
रामनारायण रुइया कालेज, बम्बई
एव
रिसर्च प्रोफेसर
विश्वविद्यालय अनुदान-आयोग योजना
के अन्तर्गत

❖

हिन्दी प्रचारक संस्थान
सितम्बर '६६] वाराणसी-१ [मूल्य १५ ००

PASHCHATYA SAMIKSHA DARSHAN

By

Dr Jagdish Chandra Jain M A., Ph D

•

Literary Criticism

•

प्रथम संस्करण
(१२००)
सितम्बर '६६

प्रकाशक
विजय प्रकाश बेरी
हिन्दी प्रचारक संस्थान
(व्यवस्था कृष्णचन्द्र बेरी एण्ड सन्स)
पो. बाक्स नं १०६ पिशाचमोचन वाराणसी-१

मूल्य
१५ ००

मुद्रक
आर्यावर्त प्रेस जालपा देवी रोड, वाराणसी-१

कला के
आदि-समीक्षक
प्लेटो को

◆

प्रास्ताविक वक्तव्य

आलोचना का काम जितना साध्य है, सम्यक् आलोचना का उतना ही दुस्साध्य। गेटे ने आलोचक को केवल एक विवेचक कहकर, श्वान की भाँति उसे मार डालने का आदेश दिया है।[1] कीट्स ने उसे काले बालोंवाला समीक्षक[2] कहकर सम्बोधन किया है। बायरन ने लिखा है—"दिसम्बर मास में गुलाबों की खोज की जा सकती है, जून मास में बर्फ खोजा जा सकता है पवन में स्थिरता और भूसे में अनाज पाया जा सकता है, किसी स्त्री अथवा समाधिलेख का विश्वास किया जा सकता है, अथवा अ य किसी मिथ्या बात को सही माना जा सकता है, पेश्तर इसके कि हम आलोचकों में विश्वास स्थापित करें।"[3] विलियम मॉरिस ने तो उसे एक भिक्षुक बनाकर छोड़ दिया है। वह लिखता है "उसे देखकर हम एक भिक्षुक की कल्पना कर सकते हैं जो दूसरे के विचारों का क्रय करके अपनी आजीविका चलाता है और कल्पना करता है कि दूसरे लोग उसकी कीमत अदा करेंगे।[4] आयर साइमन्स ने उसे एक कौवे की अवस्था को पहुँचा दिया है। उद्यमशील कौए के साथ उसकी उपमा दी गयी है जो सौंदय वपन करनेवाले के पीछे पीछे फुदकता है तथा प्रतिभा द्वारा बिखेरे हुए अ सग-कणों को पाकर स तुष्ट हो जाता है।[5] चेखव ने आलोचकों को घोड़ों के शरीर पर बैठनेवाली मक्खियां बताया है जो खेतों में हल चलाते समय उनकी गति अवरुद्ध कर देती हैं।

कहते हैं कि एक बार जोलियस ने अपोलो के समक्ष किसी सु दर कलाकृति की अत्यन्त कटु आलोचना की। उसे सुनकर अपोलो ने उस कलाकृति की विशेषताओं के सम्ब ध में जानना चाहा। जोलियस ने उत्तर दिया कि उसने तो रचना की केवल

१—किल द डॉग, ही इज़ ए रिव्यूअर। २—डाफ हेयर्ड क्रिटिक्स।

३—सीक रोजे ज इन डिसेंबर, आइस इन जून,
होप फॉर सट सी इन विण्ड, ऑर कॉर्न इन चफ,
बिलीव ए वूमन, ऑर ऐन एपिटाफ
ऑर एनी थिंग दैट इज फाल्स, बिफोर,
यू ट्रस्ट इन क्रिटिक्स।

४—टु थिंक ऑफ ए बगर मेकिंग हिज लिविंग बाइ स लिंग हिज ओपीनियन एबाउट अदर पीपल, एण्ड फसी ऐनी वन पेइंग फॉर इट।

५—लाइक द इण्डस्ट्रियस क्रो द क्रिटिक,
हॉप्स आफ्टर द सोअस ऑफ ब्यूटी, कण्टे ण्ट,
टु पिक अप द चास प्रे न्स ड्रॉप्ड बाइ जीनियस।

त्रुटियों पर ही ध्यान दिया है। अपोलो को बहुत कौतूहल हुआ और उसने जोलियस के सामने भूसा मिले हुए गेहूं की एक बोरी मँगवा कर रख दी कि उसमें से जो भूसा निकले, वही उसका पुरस्कार है।

किसी कलात्मक कृति का मूल्यांकन करते समय हम यथाशक्ति अपनी बुद्धि और तर्क का आश्रय लेते हैं, लेकिन ये दोनों ईमानदारी से हमारा साथ दें तब न? लॉर्ड चेस्टरफील्ड ने बुद्धि की उपमा गृहिणी से दी है जिसकी बात हमेशा सुनी जाती है लेकिन ध्यान उस पर क्वचित् ही दिया जाता है[1]। जहां तक रुचि का सम्बन्ध है, मनुष्यों की रुचियों में भिन्नता पायी जाती है (भिन्नरुचिर्हि लोक)।[2] ऐसी दशा में साहित्यिक रुचि का अनुकरण कर आलोचनात्मक निर्णय में एकरूपता कैसे सम्भव हो सकती है? एक आलोचक ने रुचि को एक प्रकार का मत स्वीकार किया है जो कभी प्रमाणभूत नहीं माना जा सकता, वह केवल अपनी धारणा को साहस प्रदान करता है।[3]

सुप्रसिद्ध फ्रेंच लेखक आन्द्रे गीद ने कहा है—"सब बातें कही जा चुकी हैं, लेकिन सुनता कोई नहीं। सदा फिर-फिर से आरम्भ करना आवश्यक है।"[4]

दरअसल आलोचना के सिद्धान्तों का अध्ययन करने मात्र से आलोचना में कुशलता प्राप्त नहीं की जा सकती।

कहा गया है कि लेखक की रचना शैली उसके व्यक्तित्व के ऊपर निर्भर करती है (स्टाइल इज द मैन)। सैंत ब्यव ने किसी साहित्यकार की कृति का सही मूल्यांकन करने के लिए उसके व्यक्तित्व का अध्ययन आवश्यक माना है। उसने लिखा है—'किसी लेखक के सम्बन्ध में निर्णय देना आसान है, व्यक्ति के सम्बन्ध में

१—रीज़न इज अवर मिस्ट्रेस हू इज ऑलवेज हर्ड बट सल्डम माइण्डेड।

२—शिवमहिम्न स्तोत्र का एक श्लोक देखिए।

त्रयी सांख्यं योग पशुपतिमतं वैष्णवमिति।
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यात् ऋजुकुटिलनानापथजुषां।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।

—वेदत्रयी, सांख्य, योग, पाशुपत और वैष्णव मत ऋजु और कुटिल मार्गों का अनुसरण करनेवाले मतानुयायियों के रुचि भेद से ही उत्पन्न हुए हैं।

३—टेस्ट इज ऐन ओपिनियन, नेवर स्टडेड, व्हिच गिव्स वन द करेज आफ वन'स ओन कनविक्शन।

४—ऑल थिंग्स हैव ऑलरेडी बीन सैड
बट ऐज़ नो वन लिसिन्स
इट इज़ नेसेसरी ऑलवेज़ टु बिगिन अगेन।

नही।" लेकिन तो क्या फिर (रस्किन के शब्दों में) 'उच्चाशय वाला व्यक्ति ही उच्च कोटि की कला का सृजन कर सकता है" ?

एक बात स्पष्ट है कि यदि जीवन जीने योग्य है, और उसका कोई शाश्वत मूल्य है तो कला का जीवन के साथ सम्बन्ध आवश्यक हो जाता है। आई० ए० रिचर्डस का कथन है—"काव्य जीवन की आलोचना है—मैथ्यू आर्नोल्ड की यह उक्ति अत्यन्त स्पष्ट है, यद्यपि इसकी बराबर उपेक्षा होती आयी है," तथा 'कलाकार का काम उन अनुभूतियों को अंकित कर देना और चिरस्थायी बना देना है जो उस सर्वाधिक संग्रहणीय प्रतीत होती हैं।' वस्तुत काव्य के कलापक्ष की अवहेलना नही की जा सकती, लेकिन साथ ही उसी के औचित्य पर सारा जोर देने से जीवन सामग्री एक ओर छूट जाती है जिसपर सब कुछ निर्भर है, और जिसके लिए हम जीते हैं। यदि वाल्टर पेटर के शब्दों में "कला मानवता के सुख मे वृद्धि करती है, शोषितों को शोषण से मुक्त करती है तथा पारस्परिक सहानुभूति का विस्तार करती है, इसलिए वह महान् है," तो कला को निर्वैयक्तिक स्वीकार करने से कला की महत्ता कैसे सिद्ध हो सकती है ?

अरिस्टोटल की परम्परा को स्वीकार करते हुए डैचीज ने अद्वितीय ज्ञान को अद्वितीय रूप में ज्ञापित करने को कला कहा है। इस प्रकार का ज्ञान मूल्यवान होता है। जो कुछ निजी होता है, कला द्वारा हम उसे सार्वजनिक बनाते हैं और यह कार्य अभिव्यक्ति द्वारा सम्पन्न होता है। डैचीज के अनुसार, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मनुष्य का भाग्य ही कला का विषय है। कला को इसलिए मूल्यवान कहा है क्योंकि मनुष्य और उसका भाग्य मूल्यवान है।[1]

जैसा कि एक बार इलियट ने भी कहा था, डचीज ने आलोचना को साध्य न मानकर साहित्यिक कृतियों को हृदयगम करने और उनका मूल्यांकन करने का साधन स्वीकार किया है। उसका कहना है कि पेशेवर आलोचक जो आलोचना-पद्धति नियत करते हैं, वह विद्यार्थियों के लिए ही उपयोगी हो सकती है। 'वास्तव में साहित्यिक समीक्षा का अध्ययन प्रबुद्धता (इल्यूमिनेशन) के कला कौशल का अध्ययन है। यदि इससे केवल हमे विभिन्न प्रकार की विशिष्ट शब्दावली अथवा विभिन्न युक्ति-प्रयुक्तियों की ही जानकारी प्राप्त हो तो इसका तात्पर्य होगा कि हम अपना समय नष्ट कर रहे हैं।" इसलिए डैचीज ने उसी को प्रभावशाली आलोचना कहा है जो किसी साहित्यिक कृति के अनेक रूपों को हृदयगम करने योग्य बनाये। कला अनुभूति के योग्य होनी चाहिए, तथा आलोचना का कार्य है इस अनुभूति में सहायक होना।[2] "कविता को

१—ए स्टडी ऑफ् लिटरेचर, न्यूयार्क, १६४८ पृ० २६, ७१, ७२, ८३
२—क्रिटिकल अप्रोचेज टू लिटरेचर पृ० ३६२

गूढ़ता एक दोष है, लेकिन आजकल जितना ही अच्छा कोई कवि होता है, उतना ही अधिक यह दोष उसमें पाया जाता है।"[1]

यहाँ एण्टन चेखव की प्रसिद्ध पंक्तियाँ मनन करने योग्य हैं—

यदि मुझमें अधिक शक्ति और सामर्थ्य होती !
एक सुन्दर कुमारी की भाँति यह दुनिया दिखाई देती !
अपनी बाँहों में उसे मैं भर लेता मानो वह मेरी दुल्हन हो,
इस पृथ्वी को मैं अपने सीने से लगाता,
उसे उठाकर मैं ईश्वर के पास ले जाता।
कहता—देखो, हे मेरे ईश्वर ! इस पृथ्वी की ओर देखो,
देखो, कितनी कमनीयता इसमें मैंने भर दी है !
देखो इसे जिससे तुम्हारा हृदय आनन्द विभोर हो उठे !
देखो, अस्ताचल के नीचे अपनी हरीतिमा से यह चमचमा रही है !
बड़ी खुशी से मैं तुम्हें इसे अर्पित कर देता,
लेकिन ऐसा मैं नहीं कर सकता—इससे,
मैं बहुत बहुत प्यार करता हूँ।[2]

लगभग तीन वर्ष पूर्व एक प्रकाशक ने पाश्चात्य समीक्षा पर शीघ्र ही छात्रोपयोगी एक पुस्तक लिखकर देने का अनुरोध किया था। प्रकाशक महोदय पीछे रह गये, और कच्छप गति से मेरा काम प्रगति करता रहा। बीच बीच में अनेक कार्यों में संलग्न रहना पड़ा फिर भी मंजिल आ ही गयी। निश्चय ही इसका सर्वाधिक श्रेय अज्ञातनामा प्रकाशक महोदय को है।

१— ए स्टडी ऑफ लिटरेचर पृ० २२२

२— इफ आई ओनली हैड मोर स्ट्रैंग्थ इन मी !
लाइक ए लवली गर्ल द वर्ल्ड वुड लुक !
इन माइ आर्म्स आई वुड टेक इट लाइक ए ब्राइड,
टु माई बूज़म आई वुड होल्ड द अर्थ,
टेक इट अप एँण्ड बेअर इट टु द लॉर्ड।
लुक—लॉर्ड गॉड, लुक डाउन अपॉन द अर्थ,
सी हाऊ प्रटी आई हैव मेड इट नाऊ !
लुक ऐट इट, एण्ड लेट योर हार्ट रिजॉइस !
सी हाऊ ग्रीन इट शाइन्स बीनाथ द सन !
ग्लैडली वुड आई गिव इट अप टु यू,
बट आइ कैननॉट—इट'स टू डियर टु मी।

गत अनेक वर्षों से बम्बई विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर छात्रों को मुझे पाश्चात्य समीक्षा पढ़ाने का अवसर प्राप्त हुआ है, वह भी कुछ कम प्रेरणादायक सिद्ध नही हुआ। मेरा विचार है कि अध्यापक पढाते पढाते स्वयं भी बहुत कुछ सीखता है, अध्यापन सम्बन्धी अनेक कठिनाइयाँ उसे क्रमश स्पष्ट होती जाती हैं और विषय-सम्बन्धी गुत्थियों को सुलझाने की वह सामर्थ्य प्राप्त करता है।

मेरा विश्वास है कि बिना अंग्रेजी के सम्यक ज्ञान के पाश्चात्य समीक्षा की बारीकियों को हृदयगम करना कठिन है। और दुर्भाग्य से परिस्थितियोवश, अंग्रेजी के प्रति हमारी रुचि में ह्रास होता जा रहा है।

यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि यद्यपि सभी भारतीय विश्वविद्यालयों में बी० ए० और एम० ए० के पाठ्यक्रमों मे पाश्चात्य समीक्षा अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ायी जाती है फिर भी दुर्भाग्य से विलियम के० विमसैट, डेविड डैचीज, रेने वैले, जॉर्ज सेंट्सबरी, जे० डब्ल्यू० एच० एटकिन्स, वसफोल्ड, एवरक्रोम्बी, स्कॉट-जेम्स विलियम हेनरी हडसन जैसे अधिकारी विद्वानों द्वारा लिखित पुस्तकों जसी प्रामाणिक हिन्दी पुस्तकों से हम अभी वंचित ही हैं। अवश्य ही इस दिशा मे हाल ही में कुछ प्रयत्न हुए हैं जो स्वागताह हैं। इन अधिकांश रचनाओं में स्रोतों (सोर्सेज) के उल्लेखों का अभाव है, यद्यपि मौलिक रचनाओं के साथ तुलना करने से ज्ञात होता है कि ज्यों का त्यों अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद कर दिया गया है। कतिपय रचनाओं में तो यह अनुवाद इतना क्लिष्ट (अंग्रेजी के ज्ञान के अभाव में अशुद्ध भी) हो गया है कि उसके मूल रूप को देखे बिना वह बोधगम्य नहीं होता। कतिपय रचनाओं में अंग्रेजी के मूल वाक्यों को उद्धृत करके छोड दिया गया है, उनका अनुवाद देने की आवश्यकता नहीं समझी गयी। कुछ रचनाएँ ऐसी भी हैं जिनमें पाश्चात्य और भारतीय काव्यशास्त्र की तुलना के घोलमेल का प्रयत्न करके मूल विषय को ही अस्पष्ट और दुर्बोध बना दिया गया है। मध्ययुगीन समीक्षा के विवेचन को तो प्राय छोड ही दिया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक की क्या विशेषता है और कौन सी त्रुटियाँ इसमें रह गयी हैं—इसके निर्णय का अधिकार तो सुधी पाठकों और समीक्षक-बन्धुओं का ही है। फिर भी लेखक का प्रयत्न रहा है कि तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि के परिप्रेक्ष्य मे पाश्चात्य समीक्षा मे समय समय पर जो मोड आये, उनका विकासक्रम सरल और बोधगम्य भाषा मे प्रस्तुत किया जाये। वक्तव्यों की प्रामाणिकता के लिए यथासंभव मूल लेखक की शब्दावली का आश्रय लिया गया है।

पारिभाषिक शब्दावली एक समस्या रही है। भारत सरकार द्वारा प्रकाशित शब्दकोशों में कितने ही स्थानों पर ऐसे भारी-भरकम शब्द दिये गये हैं कि यदि उनका निर्बाध प्रयोग किया जाये तो पाश्चात्य समीक्षा जसे गंभीर विषय का और

गूढता एक दोष है, लेकिन आजकल जितना ही अच्छा कोई कवि होता है, उतना ही अधिक यह दोष उसमें पाया जाता है।"[१]

यहाँ एण्टन चेखव की प्रसिद्ध पंक्तियाँ मनन करने योग्य हैं—

यदि मुझमें अधिक शक्ति और सामर्थ्य होती !
एक सुन्दर कुमारी की भांति यह दुनिया दिखाई देती !
अपनी बाँहों में उसे मैं भर लेता मानो वह मेरी दुल्हन हो,
इस पृथ्वी को मैं अपने सीने से लगाता,
उसे उठाकर मैं ईश्वर के पास ले जाता।
कहता—देखो, हे मेरे ईश्वर ! इस पृथ्वी की ओर देखो,
देखो, कितनी कमनीयता इसमें मैंने भर दी है !
देखो इसे जिससे तुम्हारा हृदय आनन्द विभोर हो उठे !
देखो, अस्ताचल के नीचे अपनी हरीतिमा से यह चमचमा रही है !
बड़ी खुशी से मैं तुम्हें इसे अर्पित कर देता,
लेकिन ऐसा मैं नहीं कर सकता—इससे,
मैं बहुत बहुत प्यार करता हूँ।[२]

लगभग तीन वर्ष पूर्व एक प्रकाशक ने पाश्चात्य समीक्षा पर शीघ्र ही छात्रोपयोगी एक पुस्तक लिखकर देने का अनुरोध किया था। प्रकाशक महोदय पीछे रह गये, और कच्छप गति से मेरा काम प्रगति करता रहा। बीच-बीच में अनेक कार्यों में संलग्न रहना पड़ा फिर भी मंजिल आ ही गयी। निश्चय ही इसका सर्वाधिक श्रेय अज्ञातनामा प्रकाशक महोदय को है।

१—ए स्टडी ऑफ लिटरेचर पृ० २२२

२—इफ आई ओनली हैड मोर स्ट्रेन्थ इन मी !
लाइक ए लवली गर्ल द वर्ल्ड बुड लुक !
इन माइ आर्म्स आई बुड टेक इट लाइक ए ब्राइड,
टु माई बूज़म आई बुड होल्ड द अर्थ,
टेक इट अप ऐंण्ड बेयर इट टु द लॉर्ड।
लुक—लॉर्ड गॉड, लुक डाउन अपॉन द अर्थ,
सी हाऊ प्रेटी आई हैव मेड इट नाऊ !
लुक ऐट इट, एण्ड लेट योर हार्ट रिजॉइस !
सी हाऊ ग्रीन इट शाइन्स बोनाथ द सन !
ग्लैडली बुड आई गिव इट अप टु यू,
बट आइ कनॉट—इट्'स टू डियर टु मी।

गत अनेक वर्षों से बम्बई विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर छात्रों को मुझे पाश्चात्य समीक्षा पढ़ाने का अवसर प्राप्त हुआ है, वह भी कुछ कम प्रेरणादायक सिद्ध नहीं हुआ। मेरा विचार है कि अध्यापक पढ़ाते पढ़ाते स्वयं भी बहुत कुछ सीखता है, अध्यापन सम्बन्धी अनेक कठिनाइयाँ उसे क्रमशः स्पष्ट होती जाती हैं और विषय-सम्बन्धी गुत्थियों को सुलझाने की वह सामर्थ्य प्राप्त करता है।

मेरा विश्वास है कि बिना अंग्रेजी के सम्यक ज्ञान के पाश्चात्य समीक्षा की बारीकियों को हृदयंगम करना कठिन है। और दुर्भाग्य से परिस्थितियोंवश, अंग्रेजी के प्रति हमारी रुचि में ह्रास होता जा रहा है।

यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि यद्यपि सभी भारतीय विश्वविद्यालयों में बी० ए० और एम० ए० के पाठ्यक्रमों में पाश्चात्य समीक्षा अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ायी जाती है फिर भी दुर्भाग्य से विलियम के० विमसैट, डैविड डैचीज, रेने वेले, जॉर्ज सेंट्सबरी, जे० डब्ल्यू० एच० एटकिन्स, वसफोल्ड, एबरक्रोम्बी, स्कॉट-जेम्स, विलियम हेनरी हडसन जैसे अधिकारी विद्वानों द्वारा लिखित पुस्तकों जैसी प्रामाणिक हिन्दी पुस्तकों से हम अभी वंचित ही हैं। अवश्य ही इस दिशा में हाल ही में कुछ प्रयत्न हुए हैं जो स्वागतार्ह हैं। इन अधिकांश रचनाओं में स्रोतों (सोर्सेज) के उल्लेखों का अभाव है, यद्यपि मौलिक रचनाओं के साथ तुलना करने से ज्ञात होता है कि ज्यों का त्यों अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद कर दिया गया है। कतिपय रचनाओं में तो यह अनुवाद इतना क्लिष्ट (अंग्रेजी के ज्ञान के अभाव में अशुद्ध भी) हो गया है कि उसके मूल रूप को देखे बिना वह बोधगम्य नहीं होता। कतिपय रचनाओं में अंग्रेजी के मूल वाक्यों को उद्धृत करके छोड़ दिया गया है, उनका अनुवाद देने की आवश्यकता नहीं समझी गयी। कुछ रचनाएँ ऐसी भी हैं जिनमें पाश्चात्य और भारतीय काव्यशास्त्र की तुलना के घोलमेल का प्रयत्न करके मूल विषय को ही अस्पष्ट और दुर्बोध बना दिया गया है। मध्ययुगीन समीक्षा के विवेचन को तो प्रायः छोड़ ही दिया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक की क्या विशेषता है और कौन सी त्रुटियाँ इसमें रह गयी हैं—इसके निर्णय का अधिकार तो सुधी पाठकों और समीक्षक-बन्धुओं का ही है। फिर भी लेखक का प्रयत्न रहा है कि तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि के परिप्रेक्ष्य में पाश्चात्य समीक्षा में समय समय पर जो मोड़ आये, उनका विकासक्रम सरल और बोधगम्य भाषा में प्रस्तुत किया जाये। वक्तव्यों की प्रामाणिकता के लिए यथासंभव मूल लेखक की शब्दावली का आश्रय लिया गया है।

पारिभाषिक शब्दावली एक समस्या रही है। भारत सरकार द्वारा प्रकाशित शब्दकोशों में कितने ही स्थानों पर ऐसे भारी भरकम शब्द दिये गये हैं कि यदि उनका निर्बाध प्रयोग किया जाये तो पाश्चात्य समीक्षा जैसे गंभीर विषय का और

गूढता एक दोष है, लेकिन आजकल जितना ही अच्छा कोई कवि होता है, उतना ही अधिक यह दोष उसमें पाया जाता है।"[१]

यहाँ एण्टन चेखव की प्रसिद्ध पंक्तियाँ मनन करने योग्य हैं—

यदि मुझमें अधिक शक्ति और सामर्थ्य होती!
एक सुन्दर कुमारी की भाँति यह दुनिया दिखाई देती!
अपनी बाँहों में उसे मैं भर लेता मानो वह मेरी दुल्हन हो,
इस पृथ्वी को मैं अपने सीने से लगाता,
उसे उठाकर मैं ईश्वर के पास ले जाता।
कहता—देखो, हे मेरे ईश्वर! इस पृथ्वी की ओर देखो,
देखो, कितनी कमनीयता इसमें मैंने भर दी है!
देखो इसे जिससे तुम्हारा हृदय आनन्द विभोर हो उठे!
देखो, अस्ताचल के नीचे अपनी हरीतिमा से यह चमचमा रही है!
बड़ी खुशी से मैं तुम्हे इसे अर्पित कर देता,
लेकिन ऐसा मैं नहीं कर सकता—इससे,
मैं बहुत बहुत प्यार करता हूँ।[२]

लगभग तीन वर्ष पूर्व एक प्रकाशक ने पाश्चात्य समीक्षा पर शीघ्र ही छात्रोपयोगी एक पुस्तक लिखकर देने का अनुरोध किया था। प्रकाशक महोदय पीछे रह गये, और कच्छप गति से मेरा काम प्रगति करता रहा। बीच बीच में अनेक कार्यों में संलग्न रहना पड़ा फिर भी मंजिल आ ही गयी। निश्चय ही इसका सर्वाधिक श्रेय अज्ञातनामा प्रकाशक महोदय को है।

१—ए स्टडी ऑफ लिटरेचर पृ० २२२

२—इफ आई ओनली हैड मोर स्ट्रेंग्थ इन मी!
लाइक ए लवली गर्ल द वर्ल्ड वुड लुक!
इन माइ आर्म्स आई वुड टेक इट लाइक ए ब्राइड,
टु माई बूजम आई वुड होल्ड द अर्थ,
टेक इट अप ऐंड बेअर इट टु द लॉर्ड।
लुक—लॉर्ड गॉड, लुक डाउन अपॉन द अर्थ,
सो हाउ प्रेटी आई हैव मेड इट नाऊ!
लुक ऐट इट, एण्ड लेट योर हार्ट रिजॉइस!
सो हाउ ग्रीन इट शाइन्स बेनीथ द सन!
ग्लैडली वुड आई गिव इट अप टु यू,
बट आइ कैननॉट—इट'स टू डियर टु मी।

गत अनेक वर्षों से बम्बई विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर छात्रों को मुझे पाश्चात्य समीक्षा पढ़ाने का अवसर प्राप्त हुआ है, वह भी कुछ कम प्रेरणादायक सिद्ध नहीं हुआ। मेरा विचार है कि अध्यापक पढ़ाते पढ़ाते स्वयं भी बहुत कुछ सीखता है, अध्यापन सम्बन्धी अनेक कठिनाइयाँ उसे क्रमशः स्पष्ट होती जाती हैं और विषय-सम्बन्धी गुत्थियों को सुलझाने की वह सामर्थ्य प्राप्त करता है।

मेरा विश्वास है कि बिना अंग्रेजी के सम्यक ज्ञान के पाश्चात्य समीक्षा की बारीकियों को हृदयंगम करना कठिन है। और दुर्भाग्य से परिस्थितियोंवश, अंग्रेजी के प्रति हमारी रुचि में ह्रास होता जा रहा है।

यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि यद्यपि सभी भारतीय विश्वविद्यालयों में बी० ए० और एम० ए० के पाठ्यक्रमों में पाश्चात्य समीक्षा अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ायी जाती है फिर भी दुर्भाग्य से विलियम के० विमसैंट, डैविड डैचीज, रनै वैले, जार्ज सेंट्सबरी, जे० डब्ल्यू० एच० एटकिन्स, वसफोल्ड, एबरक्रोम्बी, स्कॉट-जेम्स, विलियम हेनरी हडसन जसे अधिकारी विद्वानों द्वारा लिखित पुस्तकों जसी प्रामाणिक हिन्दी पुस्तकों से हम अभी वंचित ही हैं। अवश्य ही इस दिशा में हाल ही में कुछ प्रयत्न हुए हैं जो स्वागताह हैं। इन अधिकांश रचनाओं में स्रोतों (सोर्सेज) के उल्लेखों का अभाव है, यद्यपि मौलिक रचनाओं के साथ तुलना करने से ज्ञात होता है कि ज्यों का त्यों अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद कर दिया गया है। कतिपय रचनाओं में तो यह अनुवाद इतना क्लिष्ट (अंग्रेजी के ज्ञान के अभाव में अशुद्ध भी) हो गया है कि उसके मूल रूप को देखे बिना वह बोधगम्य नहीं होता। कतिपय रचनाओं में अंग्रेजी के मूल वाक्यों को उद्धृत करके छोड़ दिया गया है, उनका अनुवाद देने की आवश्यकता नहीं समझी गयी। कुछ रचनाएँ ऐसी भी हैं जिनमें पाश्चात्य और भारतीय काव्यशास्त्र को तुलना के घोलमेल का प्रयत्न करके मूल विषय को ही अस्पष्ट और दुर्बोध बना दिया गया है। मध्ययुगीन समीक्षा के विवेचन को तो प्रायः छोड़ ही दिया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक की क्या विशेषता है और कौन सी त्रुटियाँ इसमें रह गयी हैं—इसके निर्णय का अधिकार तो सुधी पाठकों और समीक्षक-बन्धुओं का ही है। फिर भी लेखक का प्रयत्न रहा है कि तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि के परिप्रेक्ष्य में पाश्चात्य समीक्षा में समय समय पर जो मोड़ आये, उनका विकासक्रम सरल और बोधगम्य भाषा में प्रस्तुत किया जाये। वक्तव्यों की प्रामाणिकता के लिए यथासंभव मूल लेखक की शब्दावली का आश्रय लिया गया है।

पारिभाषिक शब्दावली एक समस्या रही है। भारत सरकार द्वारा प्रकाशित शब्दकोशों में कितने ही स्थलों पर ऐसे भारी भरकम शब्द दिये गये हैं कि यदि उनका निर्बाध प्रयोग किया जाये तो पाश्चात्य समीक्षा जैसे गंभीर विषय का और

भी बोझिल हो जाना सभव है। फादर सी० बुल्के की 'ए टेक्निकल इंग्लिश हिन्दी ग्लॉसरी' तथा इंग्लिश बगाली इत्यादि कोशों से सहायता ली गयी है।

यूनानी, रोमन और फ्रेंच भाषाओं में शब्दों के उच्चारण की ओर भी लेखक प्राय उदासीन रहते हैं। अंग्रेजी शब्दों तक के उच्चारणों में सावधानी नहीं बरती जाती (Hulme को हुल्मे लिखना, इसका उदाहरण है)। यूनानी शब्दों के उच्चारण में ग्रीस का सुलेट के कासुल जनरल से सहायता लेकर इन शब्दों का यथासभव सही उच्चारण दिया गया है। फ्रेंच, जमन और अंग्रेजी शब्दों के सम्बन्ध में उन उन भाषाओं के प्राध्यापकों का सहयोग प्राप्त हुआ है।

१९४७ मे स्वतत्रता प्राप्त करने के बाद उच्चस्तरीय शिक्षा के क्षेत्र म हमने बहुमुखी उन्नति की है। आधुनिक भारतीय साहित्यिक विधाओं की गतिविधि का सम्यक् रीति से समझने के लिए पाश्चात्य समीक्षा का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। आशा है लेखक का यह तुच्छ प्रयत्न समीक्षा शास्त्र म रुचि रखनेवाले विद्यार्थियो को प्रेरणादायक सिद्ध होगा। वस्तुत यह पुस्तक पाश्चात्य समीक्षकों की रचनाओं के आधार से ही लिखी गयी है अत यह उन्ही की वस्तु है—लेखक का इसमें कुछ नही है।

के० जे० सोमैया आर्टस एण्ड साइन्स कालेज, विद्यानगर, बम्बई के प्रोफेसर डा० कृष्णलाल शर्मा ने इस पुस्तक की पाण्डुलिपि को आद्योपान्त पढ़कर अनेक बहुमूल्य सुझाव दिये। रामनारायण रुइया कालेज के अंग्रेजी विभाग के अध्यक्ष प्रो० आर० पी० पराजपे से चर्चा के दौरान अनेक सुझाव प्राप्त हुए और पठनाथ उपयोगी पुस्तकें मिली। बबई के रामनारायण रुइया कालेज की लाइब्रेरी का यथेष्ट लाभ मिला। श्री रणजीत शर्मा ने बडी तत्परता से पाण्डुलिपि को टकित किया। हिन्दी प्रचारक सस्थान के व्यवस्थापक सदन क्रियाशील श्री कृष्णचन्द्र बेरी ने इस पुस्तक को उत्साह पूर्वक प्रकाशित किया, और वाराणसी के आयावत प्रेस ने छापा। ये सभी महानुभाव इस पुस्तक के सहभागी हैं।

मदोऽप्यमदतामेति ससर्गेण विपश्चित ।

२८ शिवाजी पाक,
बम्बई २८
१३-६-१९६९

जगदीशचन्द्र जैन

विषय-सूची

पहला खड

दूसरा खंड

तीसरा खण्ड

•

चौथा खण्ड

वाल्टर पेटर (१८३९ ९४)

आस्कर वाइल्ड (१८५६ १९००)

ए० सी० ब्रेडले (१८५१ १९३५)

बेनेदेतो क्रोचे (१८६६-१९५२)

(च) बीसवीं शताब्दी की आलोचना ३६७ ४२०

आईं० ए० रिचर्ड्स (१८९३)

प्रथम खण्ड

(१) यूनानी समीक्षा

❖

- प्लेटो का पूर्वकालीन युग
  (८ वां शताब्दी ई पू से ५ वीं शताब्दी ई प तक)
- प्लेटो (४२७–३४७ ई पू)
- अरिस्टोटल (३८४–३२२ ई पू)
- लांजाइनस (२१३–२७३ ई पू)

प्लेटो का पूर्वकालीन युग (८ वीं शताब्दी ई० पू० से ५ वीं शताब्दी ई० पू०)

प्राचीन सभ्यता का केन्द्र : यूनान

यूनान की सभ्यता दुनिया की एक अत्यन्त प्राचीन सभ्यताओं में गिनी जाती है। यूरोप में यहीं से सभ्यता का प्रचार एवं प्रसार हुआ। अँग्रेजी का 'पालिटिक्स' शब्द यूनानी 'पॉलिस' (Polis) शब्द का ही रूपान्तर है जिसका अर्थ होता है नगर राज्य। यहाँ का प्रमुख कोई राजा होता था, जो स्वेच्छापूर्वक शासन नहीं कर सकता था। उसके गिरोह या जाति बिरादरी में प्रमुख समझे जानेवाले लोगों की परिषद् शासन कार्य में उसकी सहायता करती थी। राजा और परिषद् का निर्णय प्रजा की संसद के समक्ष प्रस्तुत किया जाता और तदनुसार राजकाज चलता। इसी आधार पर आगे चलकर यूरोप के संविधान में राजा (किंग), परिषद् (कौंसिल) और संसद (एसेम्बली) की स्थापना की गयी।

ईसवी सन् के पूर्व सातवीं आठवीं शताब्दी में यूनान की राजधानी एथेंस के निवासी समुद्र यात्रा द्वारा सारी भूमध्य क्षेत्रीय दुनिया से माल लाते और इस प्रकार उन्होंने अपने वनिज-व्यापार और उद्योग धंधों में आशातीत उन्नति की थी। जमीन के बंजर होने के कारण, समुद्रतट पास होने से, एथेंस के निवासी समुद्र मार्ग द्वारा व्यापार करने के लिए प्रोत्साहित हुए थे जिससे उनके साहस और मौलिक सूझ बूझ की धाक विदेशों में जम गया थी। शनैः-शनैः धन सम्पत्ति सत्ता और संस्कृति की समृद्धता के कारण नगर सभ्यता का विकास होने से, ईसवी सन् के पूर्व तीसरी चौथी शताब्दी में एथेंस समस्त विद्याओं और कलाओं का प्रमुख केंद्र बन गया और दूर दूर के लोग यहाँ विद्याध्ययन के लिए आने लगे। सुप्रसिद्ध विचारक सुकरात (सोक्रेतीस, सोक्रेटीस ४६६-३६६ ई० पू०) एथेंस का ही निवासी था जिसने चिन्तन के क्षेत्र में बुद्धिवाद की प्रतिष्ठा कर अपने देश-वासियों की जिज्ञासावृत्ति को उकसाया था। सुकरात सदाचरण को समस्त सुखों का साधन मानता था, फिर भी दुर्भाग्य से 'युवकों को बिगाड़ने'

के अपराध म उसे मृत्युदण्ड का भागी होना पडा।[1] प्लेटो (अफलातून, प्लतोन ४२७ ३४७ ई० पू०) सुकरात का ही प्रतिभाशाली शिष्य था। एथेंस मे ३८६ ई० पू० में उसने एक विद्यापीठ (अकादमी)[2] की स्थापना की और 'आदश राज्य' का नारा बुल द किया था। अरिस्टोटल (अरस्तू, अरिस्तो तलिस ३८४ ३२२ ई० पू०) १७ वष की अवस्था मे एथेंस आकर रहने लगा था। पहले उसने इसोक्रेतीस (४३६-३३८ ई० पू०) के विद्यालय में अध्ययन किया, उसके बाद प्लेटो के चरणों मे बैठकर विद्याभ्यास करने लगा। अरिस्टोटल अपने गुरु प्लेटो की भाति ही प्रतिभा सम्प न था और अपने मौलिक चि तन के कारण उसने यूरोप की साहित्यिक समीक्षा पद्धति को विशेष रूप स प्रभावित किया।

जिज्ञासावृत्ति

सुकरात ने कहा है—'एक सच्चे मनुष्य के लिए बिना छानबीन के, जि दगी जीने याग्य नही होती।" प्लेटो ने अपने एक सवाद मे मिस्र के एक पुराहित से कहलाया है— तुम यूनानी लाग हमेशा बाल्यावस्था मे रहते हो। तुममे एक भी व्यक्ति बूढा दिखायी नही देता—सबकी आत्मा युवा है। तात्पय यह कि यूनानी लोगो में बालका जैसी जिज्ञासा विद्यमान थी जिससे देवताओ के कृत्यों, धार्मिक और पौराणिक आख्यानो प्रकृति की जटिल पहेलियो नक्षत्रो के आक षण और मानवहृदय और मस्तिष्क के सम्ब ध को समझने के लिए व अपनी शक्ति लगा कर जुट गये। प्लेटो के सवादों म कितने ही उपदेशात्मक विषय ऐसे हैं जहां केवल ऊहापोहात्मक विचार ही व्यक्त किया गया है किसी शका का समाधान नही।[3] सुकरात ने अपने आपकी उपमा एक दाई से देते हुए बताया है कि उसका उद्देश्य श्रोताओ को विचार करने और आत्म आलोचना के लिए प्रेरित करन का है, उपदेश देने का नही। सुकरात का कहना था कि मनुष्य अपने

१—देखिए 'प्लेटो, द अपोलोजी डब्ल्यू० एच० डी० राउज, ग्रेट डायलाग्स आफ प्लेटो न्यूयाक १९५६

२—एथेंस के बाहर अकादमी नाम का एक स्थान जहां एक बगीचे में जतून वृक्ष कु ज की छाया मे प्लेटो अपने शिष्यों को पढाया करता था।

३—वदिक आर्यों मे जिज्ञासावृत्ति के दशन होते हैं। आकाश और पृथ्वी को देखकर उनके मन में जिज्ञासा होती कि ये दोनों कौन से वृक्ष की लकडी से पदा हुए हैं? दोनों में कौन पहले हुआ और कौन पाछे? कभी वे च द्र और सूय की क्रीडा करते हुए दो शिशुओं की उपमा देते हुए कल्पना करते कि माया जादू के बल से वे पूर्व से पश्चिम का ओर गमन करते हैं। लेकिन प्रश्न होता कि ये पृथ्वी पर

उलझे हुए विचारों के कारण गलती करता है, इसलिए सबसे पहले किसी वस्तु को साफ साफ समझने बूझने की आवश्यकता है। ऐसी हालत में शुरू में जैसे चिन्तन प्रधान और युक्तिपूर्वक सिद्ध न किये जाने योग्य विषयों की चर्चा करनेवाले दर्शन के स्थान पर विज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ, उसी प्रकार पौराणिकता और रूपक से मुक्ति पाकर दर्शन ने कविता का रूप धारण किया। इस प्रकार अधिकाधिक जिज्ञासा-वृत्ति ने यूनान के विचारकों को पैनी बुद्धिवाले आलोचक बनाकर छोड़ दिया। ध्यान देने की बात है कि उन दिनों आलोचना का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं था, वह दर्शन, वक्तृत्वकला और व्याकरण के अन्तर्गत ही गिनी जाती थी।

वक्तृत्वकला की मुख्यता

वैसे तो नेस्तर[1] और ओदीसेयस[2] के जमाने से ही यूनान में वक्तृत्वकला एक महत्त्वपूर्ण कला समझी जाती रही है। लेकिन ५१० ई० पू० में एथेंस में प्रजातन्त्र राज्य की स्थापना के पश्चात् राज्य को शक्तिशाली बनाने के लिए राजनीति, अर्थशास्त्र और साहित्य आदि राष्ट्र के महत्त्वपूर्ण अंगों पर संरक्षण रखना आवश्यक हो गया था। इस समय सर्वसाधारण में जनसेवा की भावना उदित होने से, वक्तृत्वकला का महत्त्व बढ़ गया था। प्रजातन्त्र राज्य में यदि कोई अपने राजनीतिक जीवन को सफल बनाना चाहता तो उसके लिए वक्ता होना आवश्यक था। उसे संसद गृहों और सभा भवनों में भाषण देकर अपनी योग्यता प्रमाणित करनी पड़ती थी। "यदि कोई व्यक्ति अपने किसी शत्रु द्वारा कोर्ट-कचहरी—में घसीट कर ले जाया जाता और वक्तृत्वकला से वह अनभिज्ञ रहता तो उसकी ऐसी ही दशा होती, जैसे कवचधारी सैनिक किसी निहत्थे नागरिक पर टूट पड़े हों।"[3] ऐसी हालत में अपने श्रोताओं में विश्वास पैदा कर देने वाली वक्तृता की शिक्षा प्राप्त करना आवश्यक समझा जाने

गिर क्यों नहीं पड़ते? उनके मन में जिज्ञासा होती कि लाल और भूरी गायें हरी हरी घास चरकर सफेद और मीठा दूध क्यों देती हैं? ऋग्वेद का सुप्रसिद्ध नासदीय सूक्त (१०.१२६) इसी ऊहापोहात्मक जिज्ञासावृत्ति का सूचक है। देखिए जगदीशचन्द्र जैन, भारतीय तत्त्वचिन्तन, पृ० ३३–३५।

१—नेस्तर के सम्बन्ध में कहा है—'उसके मुँह से निकलनेवाली आवाज शहद से भी मीठी होती है" (इलियड १ २४६)।

२—ओदीसेयस के शब्द "जन साधारण पर शीत ऋतु में बर्फ की तह की भाँति असर करते हैं" (वही, ३ २२२)।

३—जे० बी० बरी, हिस्ट्री आफ ग्रीस, तीसरा संस्करण, पृ० ३८५।

लगा था। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि केवल शब्दों के आडम्बर से काम चल जाता हो, उसके लिए युक्तिपूर्वक अपनी बात को प्रस्तुत करने तथा राजनीतिक और नीतिशास्त्र सम्बन्धी प्रश्नों पर वाद विवाद कर सकने की योग्यता आवश्यक थी। दिमोस्थेनीस (३८४–३२२ ई० पू०) यूनान का एक महान् वक्ता और राजनीतिज्ञ हो गया है जो अत्यन्त धैर्य के साथ दर्पण के सामने खड़ा होकर भाषण देने का अभ्यास किया करता था। कभी वह अपने-आप खोदी गुफा में महीना जाकर रहता और गुपचुप भाषण-कला सीखने का अभ्यास करता। सभामंच पर भाषण देते समय वह अपने शरीर को मोड़ता-तोड़ता, गोल-गोल घूमता रहता, अपने माथे पर हाथ रखकर कुछ सोचने लगता और कितनी ही बार जोर से चीख पड़ता।[1]

यूनान के सोफिस्ट

ऐसी हालत में उच्च शिक्षा की माँग में वृद्धि होना स्वाभाविक था और इस माँग को पूरा किया यूनान के सोफिस्टों ने। ये विद्वान् वक्तृत्वकला या तर्कशास्त्र सम्बन्धी अपने भाषण देते हुए स्थान-स्थान पर भ्रमण किया करते थे। विद्यार्थियों से अपनी फीस वसूल कर[2] उन्हें वक्तृत्व-कला में कुशल बना देने का उनका दावा था। प्रोतेगोरस (४८०-४१० ई० पू०) इसी प्रकार का एक महान् सोफिस्ट माना जाता है जिसने पहली बार व्याकरण में शब्दभेद को जन्म देकर यूरोप में भाषाविज्ञान की नींव रखी। कहते हैं कि एक बार वह एथेंस के सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ पेरिक्लीस से दण्डपद्धति पर चर्चा करते हुए सारे दिन जूझता रहा। सत्य शिव और सौन्दर्य को आपेक्षिक और व्यक्तिपरक बताते हुए उसने मनुष्य को ही सब वस्तुओं का मापदण्ड स्वीकार किया है, जिसका मतलब है कि वह सम्पूर्ण नैतिकता में विश्वास नहीं करता था, उसका उद्देश्य उपयोगितावादी था। प्लेटो ने 'प्रोतेगोरस' नामक अपने संवाद में कहा है—"प्रोतेगोरस एक सज्जन और दार्शनिक की भाँति व्यवहार करता है, कभी उत्तेजित नहीं होता, दूसरों की प्रतिभा देखकर ईर्ष्या नहीं करने लगता किसी की युक्ति को अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक नहीं लेता और पहले बोलने के लिए लालायित नहीं रहता।

गौर्गिअस (४८३-३७६ ई० पू०)

गौर्गिअस[3] एक दूसरा राजनीतिज्ञ सौफिस्ट हो गया है जिसने एक वक्ता

१—विल ड्यूराण्ट द लाइफ ग्राफ ग्रीस, पृ० ४८३।

२—प्रोतेगोरस और गौर्गिअस किसी विद्यार्थी को वक्तृत्वकला में निष्णात बनाने के लिए दस हजार दीनारें (ग्रम्म) लेते थे।

३—गौर्गिअस की मृत्यु के बाद उसके भतीजे ने उसकी मूर्ति पर निम्नलिखित लेख

और शैलीकार के रूप में ख्याति प्राप्त की थी। वक्तृत्वकला का उसने साहित्यिक विश्लेषण प्रस्तुत किया और अपने देशवासियों को एक विशिष्ट चमत्कारपूर्ण शैली में गद्य की रचना करना सिखाया। वक्ता होने के साथ वह एक कवि और संगीतज्ञ भी था, तथा घूम घूम कर साहित्य, नीतिशास्त्र और राजनीति पर भाषण दिया करता था।

इसोक्रेतीस (४३६-३३८ ई० पू०)

यूनान में गद्यशैली का आद्य निर्माता इसोक्रेतीस वक्तृत्वकला का बहुत बड़ा विद्वान् था। अपने शर्मीले स्वभाव और धीमी आवाज के कारण वह स्वयं तो वक्ता बनने में सफल न हो सका, लेकिन दूसरों के भाषण तैयार करके देने में उसने खूब नाम कमाया। अपनी वक्तृत्वकला के कारण सभा भवनों पर कब्जा करनेवाले नेतागण तथा फीस लेकर मदबुद्धि लोगों को वक्ता बना देनेवाले और बाल की खाल निकालनेवाले सोफिस्ट उसे पसन्द नहीं थे। उसका कहना था कि प्रतिभाशाली व्यक्ति ही एक सुयोग्य वक्ता बन सकता है। अपने विद्यालय के पाठ्यक्रम में उसने अध्यात्मशास्त्र के अध्ययन पर जोर न देकर दर्शनशास्त्र को मुख्य माना तथा साहित्य और राजनीति सम्बन्धी लेखन और वक्तृत्वकला को विशेष महत्त्व दिया। इस विद्यालय में वह केवल वाक्यरचना अथवा भाषण में विषय को सजाने की ही शिक्षा नहीं देता था, वरन् राजनीतिक प्रश्नों की भी चर्चा किया करता था। इसोक्रेतीस की प्राय: कोई भी रचना उपलब्ध नहीं, इसलिये उसके स्फुट वक्तव्यों के आधार से ही उसके सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है।

उन दिनों, जैसा कहा जा चुका है, एथेंस की प्रजातान्त्रिक शासन प्रणाली में तर्क वितर्क और युक्ति प्रयुक्ति का मुख्य स्थान था, इसलिए सर्वसाधारण की उन्नति के लिए वक्तृत्वकला को आवश्यक माना जाने लगा था। सभ्यता के उस प्राचीन युग में वक्तृत्वशक्ति को एक मानवीय वरदान गिना जाता था जो शक्ति मनुष्य को पशु से अलग करती है, तथा जिसके द्वारा सभ्य जीवन यापन किया जा सकता है, नगरों की स्थापना की जा सकती है, कानून गढ़े जा सकते हैं और जिसकी सहायता से कला का आविष्कार हो सकता है। यूनानी विचारकों का विश्वास था कि वाकपटुता के द्वारा बुराई का निराकरण हो सकता है, सचाई का प्रतिष्ठा

खुदवाया था—"पुरुषार्थ और सद्‌गुण की प्राप्ति के लिए आत्मा के परिष्कार करने के वास्ते किसी भी मर्त्य पुरुष ने इतनी श्रेष्ठतर कला का आविष्कार नहीं किया।

स्थापित की जा सकती है, वाद विवाद का निबटारा किया जा सकता है, ज्ञान में वृद्धि हो सकती है, मनजनों को शिक्षा दी जा सकती है और बुद्धिमानों के ज्ञान की परख हो सकती है। सम्भवत इ ही विचारा स प्रभावित हो आगे चलकर लांजाइनस (लौंगिनुस) को कहना पड़ा—"वाक्शक्ति आत्मा के बड़प्पन का प्रतिध्वनि है।"

प्राचीन समीक्षाशास्त्र म वक्तृत्वकला

वस्तुत जैसा कहा जा चुका है कि यूनान के प्राचीन समीक्षाशास्त्र मे दर्शन और साहित्य एक दूसरे से मिले जुले थे। बाद म चलकर समाक्षा का मुख्य प्रवाह वक्तृत्व कला (रेटोरिक) के माध्यम स प्रवाहित होने लगा।[२] उस काल के अधिकांश समीक्षाशास्त्र के ग्रन्था में वक्तृत्वकला या वाकपटुता की ही मुख्यता थी (दुर्भाग्यों से इस काल की अधिकांश रचनाएँ नष्ट हो गइ हैं)। स्वय सुकरात ने काव्य क एक प्रकार का भाषण ही स्वीकार किया है क्योंकि उसके अनुसार प्रज्ञागृहा में कवि केवल वक्तृत्वकला मे ही निष्णात जान पडते थे। लैटिन कवि होरेस की प्रसिद्ध कृति 'आर्स पोएतिक' मौलिक रूप में वक्तृत्वकला का ही एक रूप है। वस्तुत यूनान में 'समीक्षा को विज्ञान की अपेक्षा पहले नैसर्गिक प्रवृत्ति और सिद्धान्त की अपेक्षा पहले व्यवहार ही अधिक स्वीकार किया गया है।[३]

काव्य-रचना मे दैवी प्रेरणा

होमर (ओम्युहोस ८ वीं शताब्दी ई० पू०)

प्राचीन यूनानी समीक्षा के अनुसार, कवि और गायक दवी प्रेरणा स प्रेरित होकर काव्य रचना करते हैं और उसमे लोगो को आनन्दित करने की अलौकिक शक्ति होती है। भारत के कवि वाल्मीकि की भाति होमर यूनान का आदि कवि माना जाता है। उसन इलियड और ओडिसी (ओदिसीया)[४] नामक अपने जगप्रसिद्ध महाकाव्यो

१—जे० डब्ल्यू० एच० एटकिन्स लिटरेरी क्रिटिसिज्म इन ऐन्टिक्विटी, जिल्द १, पृ० १२६, लदन, १६३४।

२—वही, जिल्द १, पृ० ६।

३—वही।

४—ओडिसी (Odyssey) के आरम्भ मे कवि ने कला की अधिष्ठातृ देवी से प्रार्थना की है कि वह उसे उस व्यक्ति को उपदेश देने का प्रेरणा दे जिसने बहुत-सा परिभ्रमण कर उनके मार्ग बदले हैं और ट्राय (त्रिया) नामक पवित्र नगर को तोड़कर जिसने अन्य नगरों में प्रवेश किया है, कितनी ही बार समुद्र में परिभ्रमण करते समय उसे सकटों को सहन करना पड़ा, अपना पुनरुद्धार

का प्रणयन करते समय कला की अधिष्ठातृ देवी (Muse)[1] से प्रार्थना की है कि वस्तुगत सत्य को प्रकट करने के लिए वह उसे प्रेरणा (इन्सपिरेशन) प्रदान करे। यहाँ काव्य का लक्ष्य आनन्द देना बताया गया है—ऐसा आनन्द काव्य में चमत्कार (ऐनचाण्टमेण्ट) द्वारा उत्पन्न हो सकता है और यह चमत्कार दैवी प्रेरणा से ही सम्भव है।

प्लेटो ने अपने इओन' (Ion) नामक सवाद में सुकरात के मुख से दैवी प्रेरणा का प्रतिपादन करते हुए लिखा है—जैसे चुम्बक पत्थर अपने चारों ओर बिखरे हुए लोहे के कणों को आकर्षित करता है और लोहे के कण बहुत से लोह-कणों को अपनी ओर खींचते हैं उसी प्रकार कला की देवी (म्यूज) जिनको प्रेरित करती है, वे अन्य बहुत-से लोगों को प्रेरणा प्रदान करते हैं। वास्तव में जो सुकवि महाकाव्यों की रचना करते हैं, वे अपनी खुद की कला का जरा भी उपयोग नहीं करते, जब वे अपनी सुन्दर रचना का प्रणयन करते हैं तो दैवी प्रेरणा से ही करते हैं। उस समय ईश्वर कवियों को मस्तिष्क विहीन करके उन्हें अपना अनुचर बना लेता है। कवि अपने मधुगीतों को कला की देवी के मधुपात्रों से प्राप्त करते हैं, उन्हें कला की देवी के उद्यान और उसकी घाटियों से लाकर हम तक पहुँचाते हैं—मधु-मक्खियों की भाँति। कवि एक वायवीय वस्तु है, वह डैनोंवाली और एक पवित्र वस्तु है, और वह तब तक काव्य की रचना नहीं कर सकता, जब तक कि वह अनुप्रेरित होकर इन्द्रियज्ञान से शून्य न हो जाय और उसमें कोई मनोभाव शेष न रह जाय।[2]

करने के लिए उसने परिश्रम किया, और अपने साथियों का विपत्तियों से उद्धार किया। इलियड में ट्राय के युद्ध का और ओडिसी में ओडिसियस के जीवन की चौबीस साहसपूर्ण घटनाओं का वर्णन है।

१—'म्यूज'कविता, संगीत तथा अन्य कलाओं की नौ देवियाँ में देवी एक मानी गयी है। प्राचीन यूनान में गीति-काव्य, गीत, वाद्यसंगीत और नृत्य—इन सबकी गणना कला के ही अन्तर्गत की जाती थी। यूनान में 'म्यूजिक' का अर्थ होता था किसी कला की देवी (म्यूज) की भक्ति। प्लेटो का विद्यापीठ 'म्यूजियन' अथवा 'म्यूजियम' कहलाता था जिसका अर्थ होता है ऐसा स्थान जो 'म्यूज' के लिए समर्पित कर दिया गया हो। ऐलेक्जेंड्रिया का म्यूजियम साहित्यिक और वैज्ञानिक प्रवृत्तियों का विश्वविद्यालय था, वस्तुओं का संग्रहालय नहीं (जैसा कि आज कल है)।

२—डब्ल्यू० एच० डी० राउज ग्रेट डाइलाग्स आफ प्लेटो, पृ० १८ १६, न्यूयार्क, १९५६।

यूनान की प्रादिम कला-कहानियों में सभ्य बनानेवाले कविता के कार्य की चर्चा करते हुए कहा है कि किस प्रकार ओरफेयस (ओरफ्यूज Orpheus) अपने सगीत द्वारा जगली मनुष्य और पशुओं को फालतू बना लेता था, और किस प्रकार आम्फियोन (Amphion) ने अपनी कविता द्वारा पत्थरों को मुग्ध कर थीबे (Thebes) की दीवारें खडी का थी।[1] इसी प्रकार काव्य में आश्चर्यचकित कर देने की शक्ति मानी गयी है। अपने महाकाव्य इलियड के प्रसिद्ध योद्धा एचिलीज (अखिलेयस Achilles) की दक्षतापूर्वक पृथ्वी, आकाश, सागर और सूर्य आदि के चित्रों से चित्रित की हुई स्वर्ण ढाल की प्रशसा करते हुए होमर ने कहा है— ढाल पर नये नये जोते हुए खेत का चित्र बना हुआ है और यद्यपि सम्पूर्ण ढाल स्वर्ण की है और उसकी पृष्ठभूमि पीली है, फिर भी उसमे नीचे से निकली हुई मिट्टी का रग काले रग का दिखाया पडता है।' यह है चित्रकार की कला का चमत्कार जिसमे ढाल पर किये गये सुनहरे काम में जुती हुई जमीन का भ्रम पैदा करने का शक्ति थी।

प्राचीन यूनान मे कवियो का कर्तव्य मानव जीवन को सभ्य और उदात्त बनाना ही माना जाता था, कारण कि यूनानी साहित्य देश के धर्म से अभिन्न था और साहित्यकार धर्म को प्रतिष्ठित करने के लिए ही साहित्य का निर्माण करने म दत्तचित्त रहता था। अरिस्तोफनीस ने अपने 'फाग्स' नामक नाटक म कवि किस आधार पर यश का अधिकारी होता है इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा है—"यदि उसकी कला सच्ची है और उसका परामर्श सत् है और यदि वह किसी भी दृष्टि से मानव को उत्कृष्टतर बनाकर राष्ट्र का सहायक होता है तो ही वह यश का अधिकारी हो सकता है।"[2] इसीलिए जैसे छोटे बालकों के लिए किसी अध्यापक की आवश्यकता होती है, वैसे ही प्रौढ़ो को शिक्षा देने के लिए कवियों की आवश्यकता बतायी गयी है।[3] दूसरे शब्दो म कह सकते हैं कि नैतिक परिष्कार का आदर्श यूनानियो के सामने था और यूनान के कलाकार इस आदर्श का अनुकरण करने के लिए प्रेरित हुए थे।

हेसिओद (इसिओदोस ८ वीं शताब्दी ई० पू०)

हसिओद ने भी होमर के उक्त कथन का समर्थन किया है। होमर ने काव्य का प्रयोजन आनन्द प्रदान करना स्वीकार किया है जब कि हसिओद ने देवा सन्देश वहन करने या शिक्षा प्रदान करने को काव्य का प्रयोजन माना है।

१—एटकिन्स लिटरेरी क्रिटिसिज्म इन ऐन्टिक्विटी, १, पृ० १२।

२—गिल्बर्ट मरी, अरिस्तोफनीस, द फ्राग्स, १९१२, पृ० ७४।

३—वही, पृ० ७८

हसिग्रोद किसान का बेटा था। उसके पिता ने अपने खेत को दोनों बेटों में आधा आधा बाँट दिया था। हेसिग्रोद के भाई ने जिले के अधिकारियों को घूस देकर खेत के ज्यादा हिस्से पर कब्जा कर लिया, लेकिन फिर भी उसके खेत मे अच्छी फसल नही उगी। यह देखकर हेसिग्रोद ने अपने भाई जैसे फिजूल खर्च करने वाले किसानो के उद्बोधन के लिए 'वर्क्स' (काम) नामक एक कविता लिखी, जिसमे खेतीबारी और मितव्ययिता के सिद्धान्तो पर प्रकाश डाला गया।[1] हेसिग्रोद की मान्यता थी कि सुवर्ण, रजत और कांस्य युग के बाद अब लौह युग का प्रवेश हुआ है, और मानव जाति को इस युग के सकटो से कभी परित्राण नही मिल सकता।

जहाँ तक काव्य मे रूप और शैली का सम्बन्ध है, हेसिग्रोद आदि कवि होमर से प्रभावित हुआ था, लेकिन फिर भी उसकी अपनी विशेषता रही है। होमर की भाँति वह कला की अधिष्ठातृ देवी से काव्य-रचना मे केवल प्रेरणा ही प्राप्त नही करता बल्कि कला की देवी सत्य और सुन्दर कल्पित कथाओ की भी शिक्षा देती है। 'द थियोगोनी' (The Theogony) हेसिग्रोद की सुप्रसिद्ध रचना है जिसमें देवताओ की वशावलि का वर्णन है। सर्वप्रथम यहा कला की देवियो की स्तुति की गई है जिन्हे कवि ने अपने कोमल चरणो से नृत्य करते हुए और अपनी मृदुल त्वचा को स्नान कराते हुए चित्रित किया है। हेसिग्रोद ने बताया है कि जब वह शरद् काल मे अनुपयुक्त और ग्रीष्म में असह्य हेलिकन पहाड के ऊपर अपनी भेडें चरा रहा था तो किस प्रकार कला की अधिष्ठातृ देवी ने उसके हृदय को दवी सगीत से भर दिया जिससे कि वह भूत और भविष्य की बातो को जान सका।[2] इस समय देवी ने उसे एक वृक्ष की शाखा से बना हुआ एक सोटा प्रदान किया जो आजकल

१—इस कविता के कुछ नीतिवाक्यों की ओर ध्यान दीजिये—'कठोर श्रम कोई शर्म की बात नहीं है, शर्म है सुस्ती'। 'अपने पडोसी की मदद करो, और वह भी तुम्हारी मदद करेगा। पडोसी किसी सगे सबधी से बढ़कर है'। किसी से शादी करना बहुत अच्छा है, लेकिन बहुत होशियार रहो, नहीं तो तुम्हारे पडोस तुम्हारे ही ऊपर खुश होंगे 'एक अच्छी बीबी से बढ़कर कोई पुरस्कार नहीं बुरी बीबी के समान और कोई चीज नही, जो तुम्हें कँपा देती है, बिना आग के ही तुम्हे भून देती है और कच्ची उम्र मे तुम्हें बूढ़ा बना देती है'। गिलबर्ट मरी, वही पृ० ५६।

२—देवी ने निम्नलिखित शब्दों मे कवि का स्वागत किया—"जगली खेतो के देहातियो लज्जा के जनप्रवादो, उदर के सिवाय और कुछ नहीं। हम जानते हैं सत्य प्रतीत होनेवाली बहुत सी मिथ्या बातें कैसे कहना, लेकिन हम यह

स्तुतिपाठक चारणों का चिह्न बन गया है। पूर्वकाल में महाकाव्य वीणा[1] प गाये जाते थे लेकिन आगे चलकर वे हाथ मे सोटा लेकर खडे हुए चारणों द्वारा गाये जाने लगे। तत्पश्चात् देवी ने भूत और भविष्य की घोषणा करते हुए कवि के हृदय मे एक मायावी शक्ति का सचार कर दिया जिससे कि वह पवित्रात्मा देवताओं का गुणगान कर सके।[2]

पिंडार (५१८-४३८ ई० पू०)

पिंडार सगीतकला का बहुत बडा विद्वान् था। उसने पाँच बार सगीत की प्रतियोगिता मे भाग लिया लेकिन पाचो बार असफल रहा। कहा जाता है कि जब वह खेतो मे सोता तो मधुमक्खियाँ उसके ओठो पर अपना मीठा शहद छोड जाती। पिंडार ने अनेक राजाओं के दरबार म चारण का काम किया था तथा अनेक राजकुमारो और धनिको के सम्मान मे गीतो को रचना की थी। उसने रथो की दौड और मल्लयुद्ध आदि का सरस वर्णन किया है जब कि विजय के कारण आनन्दविभोर हुए नर नारी सामूहिक नृत्यो और गीतो की तान म खो जाते थे।

पिंडार को गीतिकाव्य के लेखको म सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। उसने कविता मे दैवी चमत्कार अथवा नैर्सगिक प्रतिभा को मुख्य बताते हुए कला से उसे भिन्न माना है। उसका कहना था कि कवि मुख्य रूप से दैवी प्रेरणा अथवा नैसर्गिक प्रतिभा के कारण ही काव्य की रचना करता है कला अपने आपमे निरर्थक है। इसलिए जो कलाकार केवल अपने ज्ञान और कला के बल पर ही काव्य की रचना करेगा उसका प्रभाव अस्थायी रहेगा। पिंडार ने कवियो को दो वर्गों म विभाजित किया है—'एक वे कवि जिन्हें नैसर्गिक रूप म ज्ञान प्राप्त होता है, और दूसरे वे जो शिक्षा पाकर ज्ञान प्राप्त करते हैं। पिंडार ने इस प्रेरणा को आन्तिमकालीन ज्ञान दातिरेक अथवा विक्षिप्तता से भिन्न स्वीकार किया है। उसके अनुसार, प्रेरणा प्रतिभा का एक सजग प्रयत्न है जिसे प्रकृतिदत्त वरदान कहा जा सकता है। आगे

भी जानते हैं कि जब हम चाहें, वास्तविक सत्य को प्रकट करना। गिलबर्ट मरी ए हिस्ट्री ऑफ ऐंशियण्ट ग्रीक लिटरेचर प० ५४, लदन, १९१०।

१—अंग्रेजी मे वीणा के लिए लाइर' (lyre) शब्द है, जिससे 'लिरिक (lyric) बना है।

२—सा ए० एटन इसिप्रोट, द थियोगोना, पृ० ६३-१६०, जे० या० बरी, ए हिस्ट्री आफ ग्रीस, प० १०८।

चलकर इसी सिद्धान्त को लेकर 'निसर्ग' (नेचर) और कला' (आर्ट) आलोचकों की चर्चा के विषय बने।[1]

पिंडार ने 'लाघव' को काव्य की अभिव्यक्ति का मुख्य गुण स्वीकार करते हुए सांकेतिक अथवा संक्षिप्त व्यंजना को ही प्रशंसनीय कहा है। "थोड़े शब्दों में बहुत-कुछ कह देना," "मधुमक्खी की भाँति एक फूल से दूसरे फूल पर गूंजना', 'ऐसे रास्तों का ज्ञान होना जो पथ को छोटा कर देते हों'—इन गुणों को पिंडार ने एक महान् कवि की कला माना है।[2]

गौर्गिअस

गौर्गिअस का उल्लेख किया जा चुका है। उसने यूनान में नीरस शैली के स्थान पर चमत्कारपूर्ण, लयात्मक और आलंकारिक शैली को जन्म दिया। वक्तृत्वकला के उपयोगी होने के कारण गौर्गिअस ने शब्दशक्ति पर जोर दिया। इस शक्ति का एक समर्थ शासक की उपमा दी गयी है जो "भय को रोक सके, दुःख का निवारण कर सके, आनन्द प्रदान कर सके और विश्वास में वृद्धि कर सके।' ऐसी शक्ति गद्य और काव्य दोनों में पायी जाती है। गौर्गिअस ने कविता को छन्दात्मक भाषा कहा है और यह कविता अपने श्रोताओं के मन में "कँपा देनेवाला भय, अश्रुपूर्ण करुणा, और सहानुभूति के लिए ललक पैदा कर देती है। काव्य के प्रभाव के सम्बन्ध में गौर्गिअस ने लिखा है—' अनुप्राणित काव्य आनन्द प्रदान कर दुख का निवारण करता है, काव्य की शक्ति मोहित कर देती है विश्वास उत्पन्न करती है और अपने जादू के बल से आत्मा को रूपान्तरित कर देती है।"[3] गौर्गिअस की यही सबसे बड़ी देन थी कि उसने भाषा के सौन्दर्य पर जोर देते हुए सीधे सादे सरल वर्णनों के स्थान पर अलंकारों और रूपकों की आवश्यकता का प्रतिपादन किया तथा गद्य में कविता के रूप रंग और विविधता का समावेश किया।[4]

अरिस्तोफनीस (४५० ३८५ ई० पू०)

अरिस्तोफनीस यूनान का एक बड़ा समीक्षक हो गया है जिसने अपने व्यंग्यात्मक नाटकों में सबसे पहले सुव्यवस्थित आलोचनात्मक विचार व्यक्त करते हुए अपने व्यापक दृष्टिकोण का परिचय दिया तथा साहित्य और वक्तृत्व कला के अनेक

१—एटकिन्स, लिटरेरी क्रिटिसिज्म इन ऐण्टिक्विटी, पृ० ११

२—वही, पृ १६-१७।

३—वही, पृ० १८।

४—वही, पृ २०।

तर्कपूर्ण सिद्धान्तों का विवेचन किया। अरिस्तोफनीस एथेंस के इतिहास के उस युग मे पैदा हुआ था जब एथेंस का राजनीतिक पतन हो रहा था और उसका कलात्मक गौरव क्षीण होता जा रहा था। स्पार्टा के एथेंस पर आक्रमण कर देने के पश्चात् जनता के बौद्धिक और नैतिक जीवन में अनेक परिवर्तन हो रहे थे। अरिस्तोफनीस के नाटको में समाज के विभिन्न रूप देखने में आते हैं।

अरिस्तोफनीस के नाटक

अरिस्तोफनीस के साहित्यिक समीक्षा सम्बन्धी सिद्धान्त उसके आखरनियस (Acharnians) 'क्लाउड्स' (Clouds), 'थेस्मोफोरियाजोरस' (Thesmophoriazuusae) और फ्राग्स' (Frogs) नामक कॉमेडी नाटकों में उपलब्ध होते हैं, जिसमे 'क्लाउड्स' और फ्राग्स' विशेष महत्वपूर्ण हैं। क्लाउड्स' को अरिस्तोफनीस ने अपनी सर्वोत्तम कृति बताया है। यह नाटक ४२३ ई० पू० मे ग्रेट डाइनीसिया मे खेला गया और इसे तीसरा पुरस्कार मिला। 'क्लाउड्स मे सोफिस्टों की तर्क प्रणाली और नयी शिक्षा पर तीखा व्यंग्य है और अचरज की बात है कि सुकरात को उनके प्रतिनिधि के रूप मे उपस्थित किया गया है। स्तोरप्सियादिस (Storapsiadese) नाम का एक किसान किसी साहूकार का कर्जदार है। वह वक्तृत्वकला का ज्ञान इसलिए प्राप्त करना चाहता है जिससे कि अदालत म दलील करके कर्ज से छुटकारा पा सके। यह जानकर उसे प्रसन्नता होती है कि सुकरात ने 'चिन्तन की एक शाला खोल रखी है जहाँ कोई व्यक्ति बाल की खाल निकालनेवाली अपनी तर्क शक्ति के बल से झूठी बात को भी सत्य सिद्ध करने की कला म प्रवीण हो सकता है। वह इस पाठशाला में पहुँचता है जहाँ कक्षा के अन्दर उसे सुकरात दिखायी देता है जो छत के सहारे एक टोकरी म लटका हुआ अपने विचार में तल्लीन है। उसके चारों तरफ जमीन की ओर नाक किये हुए और सिर झुकाये कुछ विद्यार्थी बैठे हैं। स्तोरप्सियादिस जब अन्दर पहुँचा तो सुकरात अपने एक विद्यार्थी से पूछ रहा था—मक्खी अपनी टाँग भर कितनी दूर उछलकर जा सकती है? स्तोरप्सियादिस के प्रश्न करने पर सुकरात ने बताया कि वह वायु में गमन कर रहा है और सूर्य के ध्यान म लीन है। स्तोरप्सियादिस सुकरात से तर्कशास्त्र सीखना चाहता है। लेकिन यह ज्ञान उसे भारी पड़ता है इसलिए उसका स्थान उसका बेटा ले लेता है। वह सुकरात और सोफिस्टों से नयी शिक्षा ग्रहण करता है और शिक्षा प्राप्त कर स्वयं पिता तक का अपमान करने पर उतारू हो जाता है। पिता अपमानित होकर शहर पर भाग जाता है और शहर के समझदार नागरिकों से कहे चिन्तन का विध्वंस कर देने का अनुरोध करता है। सब मिलकर 'चिन्तन की शाला' को जला देते

हैं। सुकरात और उसके शिष्यों का दम घुटने लगता है और वे अपनी जान हथेली पर लेकर भागते हैं। नाटक में रहस्यपूर्ण स्तवन द्वारा मेघों का आह्वान किया जाता है वे अपनी गर्जना की ध्वनि से प्रश्न का उत्तर देते हैं, और मानव जीवन को सुखी बनाते हैं, इसलिए नाटक का नाम रखा गया है 'क्लाउड्स' (मेघ)[१]।

अरिस्तोफ़नीस की दूसरी उल्लेखनीय कृति है 'फ्रॉग्स'। यह प्लेटो के पूर्व युग का प्रमुख कृति मानी जाती है। इसमें भी एथेंस की राजनीतिक और साहित्यिक स्थिति का चित्रण है। यूरिपाइडिस (एव्रीपिदीस Euripides) की मृत्यु के तुरन्त बाद इस नाटक की रचना हुई थी। दियोनिसिअस (Dionysias) नामक नाट्य देवता एथेंस के जीवित नाट्यकारों से सन्तुष्ट नहीं है, इसलिए गधे पर सवार हो और अपनी बहँगी पर बहुत सा सामान लादे, अपने नौकर के साथ, वह दिवगत यूरिपाइडिस की खोज में निकलता है। वह अधोलोक में उतरता है और वहा की झील पार करने के लिए नाव मे बैठता है। रास्ते में उसे मेढकों की टर-टर की आवाज (जिसके ऊपर से इस नाटक का नाम 'फ्रॉग्स' रक्खा गया है) सुनायी देता है और वह प्लूटो के महल के सामने जा पहुँचता है। वहाँ उसे पता लगता है कि एस्किलस (अखिलेपस Aeschylus) और यूरिपाइडिस के बीच प्रतियोगिता का आयोजन किया जा रहा है जिसमे यह निर्णय किया जानेवाला है कि दोनो कवियों में ट्रैजेडी का श्रेष्ठ कवि कौन सा है? दियोनिसिअस को निर्णायक बना दिया जाता है। एस्किलस यूरिपाइडिस को दोषी ठहरा रहा है यह कहकर कि उसने संशयवाद का प्रचार किया है, एथेंसनिवासी स्त्रियों और नवयुवकों को नैतिकता से भ्रष्ट किया है, तथा शिष्ट और सभ्य महिलाओं ने यूरिपाइडिस की अश्लील बातें सुनकर आत्महत्या कर ली है। दोनों में खूब गरमागरम बहस होती है। इसके बाद कला की अधिष्ठातृ देवी के नियमानुसार होनेवाली इस प्रतियोगिता के अवसर पर दोनों कवियों की कला को जोखने के लिए एक तराज़ू लायी जाती है। जिसमें दोनों की रचनाओं की पंक्तियों की तुलना की जाती है। दियोनिसिअस निश्चय नहीं कर पाता कि दोनों में कौन श्रेष्ठ है। उसे यह जानकर पश्चाताप होता है कि "अच्छे कवि मर चुके हैं, केवल नकली ही बाकी बचे हैं।"[२] वह सोचने लगता है कि आगाथान (Agathon) को छोड़कर शेष कवि ऐसे ही हैं "जैसे फलरहित पत्तियाँ, शून्य हवा में स्वरों का कंपन और कला को विकृत करने वाला पक्षी का प्रलाप"। तथा "तुम कवियों की खोज करो, लेकिन तुम्हें चरित्रबल वाला कोई ऐसा कवि

१—बेंजमिन बिकले राजर्स, द क्लाउड्स, लंदन, १९१६।

२—गिल्बर्ट मरी, द फ्रॉग्स, पृ० ९।

नही मिलेगा जो अपनी शब्दशक्ति के सहारे ऊपर उठ सके।"[1] इस प्रकार पर्याप्त ऊहापोह के बाद दियोनिसिग्रस अपनी निर्णयात्मक शक्ति से दोनो मे एस्किलस को ही श्रेष्ठ मानता है। दोनो ही इस बात मे एकमत हैं कि कवियों का कर्तव्य मनुष्य को श्रेष्ठ बनाना है। जैसे अरिस्तोफनीस ने 'क्लाउड्स' मे सुकरात का सोफिस्टो का प्रतिनिधि बताया है, वसे ही यहाँ यूरिपाइडिस को तत्कालीन बढते हुए सशयवाद का प्रतीक माना है।

अरिस्तोफनीस ने इस नाटक मे वक्तृत्वकला (रेटोरिक) के कारण जनता में फैलते हुए अविश्वास का विरोध करते हुए उसे वचना की कला बताया है, जो अच्छी बात को भी बुरी सिद्ध कर देता है। इसलिय उसने व्याकरण और लय आदि पर करारे व्यग्य करते हुए भाषणशास्त्रियो की अनैतिकता और तर्क सिद्धान्तो की त्रुटियो का मजाक उडाया है। यहाँ कविता का मूल्याकन करने के लिए उपयोगी मापदण्ड पैमाना और तराजू आदि तथा अस्पष्ट विषयो के सम्ब ध म बाल का खाल निकालने वालो युक्तियो के प्रति तिरस्कार व्यक्त किया गया है। यूरिपाइडिस की इसलिए नि दा की गयी है कि उसका उक्तिया तकवाद से पूर्ण हैं उसकी रचनाएँ पढकर लोगो ने षडयन्त्र करना और बुरे विचार मन मे लाना सीखा है उसकी रचनाओ से घूतता और चालाकी को ही बल मिला है लोगो ने विनम्रता के स्थान पर तर्क करना ही अधिक सीखा है, अभ्यास की अपक्षा वादविवाद म ही वृद्धि हुई है यहा तक कि उसके प्रभाव म आकर सारा शहर ही 'वलर्वों वक्ताओ और मसखरो का अड्डा बन गया है।[2]

अरिस्तोफनीस न नाटककार के कुछ श्रेष्ठ आदर्शों, नाट्यकला के विशिष्ट तत्त्वो तथा साहित्य सम्ब धी अनेक महत्त्वपूर्ण प्रश्नो पर अपने विचार स्पष्ट रूप मे व्यक्त किये हैं इसलिए उसे प्राचीन साहित्यिक समीक्षा के प्रतिष्ठाताओ मे गिना गया है। वह न केवल दार्शनिक था, और न केवल विदूषक उसे निर्णयात्मक आलोचना प्रणाली का प्रथम सूत्रधार कहा गया है। तत्कालीन कवियों के भावुकतापूर्ण यथार्थवाद का मजाक उडाकर उसने सही यथार्थवाद का समर्थन किया है।

प्लेटो (प्लतोन ४२७-३४७ ई० पू०)

ईसवी सन् के पूर्व चौथी शताब्दी में आलोचना के सिद्धान्तो म नया परिवर्तन दिखाया दिया। इस शताब्दी के आरम्भ में यूनान की कला में जो आश्चर्यजनक उन्नति हुई थी, उसका अन्त हो रहा था और सर्जनात्मक शक्ति ह्रास की ओर

१—वही, पृ० ११।

२—एटकिन्स लिटरेरी क्रिटिसिज्म इन एण्टीक्विटी १, पृ०३०।

जा रही थी। इस समय राजनीति, शिक्षा तथा आचार विचार से सम्बन्ध रखने वाले जीवन के सभी क्षेत्रों में एक प्रकार की अराजकता फैल गयी थी और किसी ऐसे स्वतंत्र विचारक की आवश्यकता महसूस की जा रही थी जो राष्ट्र का मार्ग दर्शन कर सके। शनै शनै चिंतन का युग आरम्भ हुआ और दर्शनशास्त्र के पण्डितों और वक्तृत्वकला मे कुशल वाग्मियों ने देश की बागडोर सम्हाली। परिणाम यह हुआ कि तर्कविद्या के बल से ज्ञान के क्षेत्र का अवगाहन किया जाने लगा जिससे साहित्यिक समीक्षा के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त सामने आये।

इस काल मे सुकरात के प्रतिभाशाली शिष्य प्लेटो[1] ने साहित्य का नेतृत्व ग्रहण कर बौद्धिक क्षेत्र मे क्रान्ति मचा दी। प्लेटो एक सम्भ्रान्त कुल म पैदा हुआ था। उसके माता और पिता दोनों का सबध एथेंस के कुलीन घरानों से था। आगे चलकर उसने एक ऐसे आदर्श राज्य की स्थापना करनी चाही जिसके शासक दार्शनिक हों, और जहाँ के स्वतन्त्र नागरिक दस्तकार हों। प्लेटो दर्शन शास्त्र का प्रगाढ पंडित था। उसकी विद्यापीठ में दर्शनशास्त्र गणित प्राकृतिक विज्ञान, न्याय और कानून की शिक्षा दी जाती थी। यहीं रहकर उसने ३० से अधिक अपने 'सवादों' (वार्तालाप के माध्यम से विषय की चर्चा) की रचना की थी जिसमे राजनीति नीतिशास्त्र, दर्शन और शिक्षा आदि सम्बन्धी सिद्धान्त जहाँ तहाँ बिखरे पडे हैं। खासकर 'फ्रायद्रोस (Phaedrus), 'इओन' (Ion) और 'रिपब्लिक' (Republic) नामक सवादों मे प्लेटो के आलोचना सम्बन्धी सिद्धान्त देखने मे आते हैं जिनके आधार पर आगे चलकर काव्यशास्त्र की रूपरेखा प्रस्तुत की जा सकी। आलोचना सम्बन्धी सिद्धान्तों का यहाँ कोई निश्चित रूप नहीं मिलता। ये सिद्धान्त जहा-तहा पाये जाते हैं जो हमारी जिज्ञासावृत्ति को जागृत करते हैं, किसी अन्तिम निर्णय पर हमे नहीं पहुँचाते। फिर भी प्लेटो की साहित्य विषयक मान्यताएँ इतनी गम्भीर व मौलिक हैं कि पाश्चात्य काव्यशास्त्र के इतिहास का आरम्भ उन्हीं से माना जाता है।

दैवी प्रेरणा से आविर्भूत कविता

अपने गुरु सुकरात की भांति प्लेटो भी राजनीति, नैतिकता और ज्ञान सम्बन्धी समस्याओं के सुलझाने मे सलग्न रहा करता था। उसके समय में सामाजिक और राजनीतिक भ्रष्टाचार की वृद्धि हो रही थी और इसलिए सामाजिक चरित्र-भ्रष्टता को रोककर समाज की स्वस्थता की रक्षा करने के लिए वह सचेष्ट था। सुकरात को अपने स्वतंत्र विचारों के कारण विषपान करने के लिये बाध्य किया गया था।

१—प्लेटो का वास्तविक नाम अरिस्टोटल्स था। अपने चौडे वक्ष के कारण वह प्लतोन नाम से प्रसिद्ध हुआ।

इन दिनों किसी मुकदमे का फैसला करने के लिये अदालत मे सैकड़ों न्यायाधीश उपस्थित रहते थे। सोफिस्ट विचारक व्यक्तिनिष्ठ सत्य का आधार लेकर अलग अलग व्यक्तियों के संबध में अलग अलग सत्य घोषित कर रहे थे। ऐसी दशा म प्लेटो का ध्यान साहित्य के स्तर को ऊँचा उठाने की ओर आकृष्ट हुआ जिसस कि साहित्य सामाजिक कल्याण और नतिकता की रक्षा करता हुआ राष्ट्र के पुनरुत्थान में योगदान दे सके। इसकी चर्चा रिपब्लिक मे की गई है, जहाँ आदश समाज सबधी सामान्य नियमों का प्रतिपादन है। इस प्रसग पर गौण रूप से ही काव्यचर्चा को भी स्थान मिला है।

कहा जा चुका है कि होमर और हेसिओद ने अन्तर्प्रेरणा को काव्य रचना का हेतु स्वीकार किया है जब कि कवि इन्द्रियज्ञान और विवेक से शून्य होकर उन्माद की स्थिति में पहुँच, अपनी कल्पना द्वारा जीवन के गम्भीरतम सत्यों का अवगाहन करता है। कहना न होगा कि प्लेटो के पूर्वगामी साहित्यकार, कवियों द्वारा ही श्रेष्ठ ज्ञान की अभिव्यक्ति स्वीकार करते थे, और इसलिए कवि ही जनता म सभ्यता और संस्कृति का प्रचार कर उसे सुशिक्षित बनाये रखने के लिए जिम्मेवार माने जाते थे। होमर अपने आपको यूनान का शिक्षक घोषित करता था जिसे सब प्रकार का मानवीय और दिव्य ज्ञान प्राप्त था और जो जीवन के समस्त कार्यों म मार्गदर्शन करता था। प्लेटो ने इन कवियों की रूढिवादी धारणाओं का विरोध किया।[1]

कविता पर पहला आक्षेप

प्लेटो की मान्यता थी की सदाचार और नैतिकता के विषय मे कविता को अन्तिम प्रमाण नहीं माना जा सकता और न उसे ज्ञान और सत्य का प्रमुख माध्यम ही कहा जा सकता है क्योंकि कवि अधिष्ठातृ देवी से प्रेरणा प्राप्त कर सज्ञा से शून्य अवस्था में ही काव्यसजन में प्रवृत्त होता है। कवि की यह प्रेरणा बाह्य वस्तु से प्राप्त होने के कारण बौद्धिक नहीं कही जा सकती, इसलिए काव्यसजन के समय कवि अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व से वचित हो जाता है। फिर, दैवी प्रेरणा द्वारा अनुशासित अवस्था में कवि के मस्तिष्क की दशा का सन्तुलित रहना कठिन है। ऐसी दशा में कवि के हृदय में जो कुछ आविर्भूत होता है, वह किसी स्रोत की भाँति, स्वत प्रवाहित होता चलता है। फिर, अपने भावुकतापूर्ण उन्माद के कारण तथा नैतिक नियन्त्रण के अभाव में कवि जनता का मार्गदशन कैसे कर सकता है? कवियों का ज्ञान उनकी बुद्धि पर आधारित न होने के कारण वे ऐसी बात बोलते हैं जिसे वे समझते नहीं हैं इसलिए उनके वक्तव्य अविश्वसनीय

१—देखिए, ग्रेट डाइलाग्स आफ प्लेटो, इयोन, पृ० २७।

होने के साथ साथ अस्पष्टताओं और परस्पर विरोधो से भरे हैं।[1] इसके सिवाय, कविता मनोवेगो को शान्त करने के बजाय उन्हें उत्तेजित कर देती है जिसका परिणाम होता है कि सुखप्राप्ति के लिए उन मनोवेगो पर नियन्त्रण रखने के बदले हम पर ही उनका नियन्त्रण हो जाता है।[2]

जो लोग काव्य को अन्योक्तिपरक (एलैगोरिकल) मानकर उसकी व्याख्या करते हैं उनका भी प्लेटो ने विरोध किया है, ऐसे काव्य को उसने असगत और अपर्याप्त कहा है। कवि नायकों को भावुक और कायर के रूप मे, दुष्टो को समृद्धिशाली के रूप में और धर्मात्माओं को कगाल के रूप में चित्रित करते हैं और फिर कहते हैं कि इसे अन्योक्तिपरक उक्ति समझनी चाहिए, लेकिन प्लेटो इसे स्वीकार नही करता। इस प्रकार की कथा कहानियों का राज्य में प्रचार करने का उसने निषेध किया है।

कविता पर दूसरा आक्षेप

प्लेटो के अनुसार, विवरणात्मक कविता म कुछ ऐसी शक्ति रहती है जो नैतिक उत्तरदायित्व के उच्चतम विकास की विरोधी है। प्लेटो ने उन सब काव्यों का विरोध किया है जिनमे ईश्वर को दण्डविधाता प्रतिपादन करते हुए[3] देवता और योद्धाओं को आदर्श रूप में उपस्थित नहा किया गया है। उसका कथन है कि स्वस्थ नैतिकता की रक्षा के लिए दैवी शक्तियों को उचित रूप में चित्रित करना आवश्यक है। देवता उत्तम, सत्यवादी और अस्थायी रूप में विद्यमान हैं, इसलिए कलहशील, लज्जाजनक अपराधो के कर्ता तथा मनुष्य जाति पर आने वाले सकटों के लिए उत्तर दायी मानकर उनका चित्रण करना ठीक नही, क्योकि इससे समाज-कल्याण खतरे में पड जाता है।[4] इसी प्रकार 'देवता से उद्भूत' ('god spring') वीर पुरुषो को सहनशीलता, उदारता और सयम आदि गुणो से हीन बताकर प्रस्तुत करना भी कार्यकारी नही। मनुष्यो को भयभीत करनेवाली नरक लोक का फड-फडाती छायाओं और निरर्थक प्रलाप करनेवाले भूत प्रेतो के वर्णन का प्रभाव भी कल्याणकारी नहीं होता। इस प्रकार की कविता को निन्दनीय ही कहा गया है।[5]

१—एटिकिन्स, लिटरेरी क्रिटिसिज्म इन एण्टिक्विटी, पृ० ४०।
२—ग्रेट डाइलाग्स आफ प्लेटो, द रिपब्लिक, पुस्तक १०, प० ४०७।
३—देखिए, ग्रेट डाइलाग्स आफ प्लेटो, द रिपब्लिक, पुस्तक १०, पृ० १७८।
४—वही, २ पृ० १७६, ३ पृ० १८६।
५—एटकिन्स, लिटरेरी क्रिटिसिज्म इन एण्टिक्विटी, पृ० ४२-४३।

कविता अनुकरण का अनुकरण[1] है

प्लेटो ने अपने 'इओन' और 'फायड्रोस' में समस्त कलाओं को अनुकृतिमूलक मानकर उनके द्वारा जगत के मूलभूत सत्यों की अभिव्यंजना स्वीकार की है। लेकिन आगे चलकर 'रिपब्लिक' में उसने इस कथन को मान्य नहीं रखा। वैसे अनुकरण-शक्ति को प्लेटो मनुष्य की स्वाभाविक शक्ति मानता है। उसका कहना है कि सबसे महान और सुन्दरतम वस्तुएँ (जैसे सृष्टि के मूल तत्त्व, ग्रह-नक्षत्र आदि) प्रकृति और संयोग से उत्पन्न होती हैं। उसके बाद कला आती है जो कि सृष्टि में निर्मित वस्तुओं से पैदा होती है वह केवल मनोरंजन के लिए सत्य के आंशिक प्रतिरूपों का निर्माण करती है। सौन्दर्य, जो कला का तत्त्व माना जाता है एक भ्रम है। वस्तुतः चित्रकला, संगीत तथा ऐसी ही अन्य कलाएँ मूल रूप से एक हैं। प्लेटो ने कला में दो भाग किये हैं—एक उदार कला और दूसरी उपयोगी कला, दोनों ही कलाओं की विशेषता अनुकरणवृत्ति है[2]।

उन दिनों यूनान में आजकल की ललित कला को 'अनुकरणात्मक कला' या 'उदार कला'[3] के नाम से कहा जाता था। प्लेटो ने ही सर्वप्रथम इसका साहित्य के क्षेत्र में प्रयोग किया। उदार कला सामंतों और उपयोगी कला निम्न वर्ग[4] की कला समझी जाती थी। प्लेटो ने उदार कला की अपेक्षा उपयोगी कला को सत्य के अधिक निकट माना है। इससे यही प्रतीत होता है कि सामंती कला के माध्यम से वह तत्कालीन ह्रासमान युग को असत्य सिद्ध करना चाहता था। प्लेटो का कथन है कि अधिक मात्रा में किया हुआ अनुकरण कमजोरी का चिह्न हो जाता है, तथा मनुष्य के चरित्र और उसके व्यक्तित्व को वह अवनति की ओर ले जाता है। अतएव कला में ऊर्जस्विता लाने का प्रयत्न करना चाहिए।

प्लेटो ने कविता और चित्रकारी दोनों कलाओं को समकक्ष रखा है। कवि शब्दों का और चित्रकार रंगों का अनुकरण करता है। दोनों ही यथार्थ वस्तुओं का चित्रण नहीं करते, क्योंकि यथार्थ वस्तु तो शिल्पी की बनाई हुई है, दोनों शिल्पी

१—यूनानी भाषा मे 'मीमेसिस' = 'इमिटेशन'।

२—वही, पृ० ५१ ५२।

३—व्याकरण, वक्तृत्वकला (रेटोरिक) और तर्कशास्त्र (डाइलेक्टिक) तथा गणित, ज्यामिति, संगीत और ज्योतिष ये सात उदार कलाएँ। लिबरल आर्ट्स) मानी गई हैं। साहित्य का उल्लेख इनमें नहीं है।

४—प्लेटो का मानना था कि जो व्यक्ति जीवन में गंभीर भूमिका अदा करता है वह किसी अन्य भूमिका का अनुकरण नहीं कर सकता। अपने 'लाज' (७,८१७) में उसने कहा है कि गुलाम और किराये के नौकर हमारे लिये हास्यरसपूर्ण नाटक करें। विलियम विम्सैट, लिटरेरी क्रिटिसिज्म, पृ० ११

की बनाई हुई वस्तुओं की नकल करते हैं। उदाहरण के लिए, बढ़ई जिस पलंग को बनाकर तैयार करता है, वह सृष्टिकर्ता ईश्वर के मस्तिष्क में बने हुए रूप की छाया-मात्र है[१]। इस प्रकार, यद्यपि बढ़ई सत्यता को पुनः उपस्थित करने में असफल होता है, फिर भी वह अपेक्षाकृत वस्तुसत्य के नजदीक है, क्योंकि जिस वस्तु का वह उत्पादन करता है, उसका कुछ ज्ञान तो उसे अवश्य है। जबकि बढ़ई के बनाये हुए पलँग को देखकर यदि कोई चित्रकार चित्र का निर्माण करता है तो वह यथार्थ से दुगुना दूर चला जाता है। कवि की हालत भी चित्रकार जैसी ही है। प्लेटो के अनुसार, कवि एक निराधार प्रतिरूप का ही सृजन करता है। जैसे, कोई प्रकृति की ओर दर्पण पकड़ कर उसे चारों ओर घुमाता जाय और उससे तुरन्त ही सूर्य, आकाश के ग्रह-नक्षत्र, पृथ्वी, स्वयं अपने आप तथा पशु-पक्षी, लता-द्रुम और अन्य वस्तुओं का निर्माण होता चला जाय, इससे अधिक और कुछ नहीं।[२] ऐसी दशा में प्लेटो का कथन है कि सम्पूर्ण के स्थान पर बाह्य और ऊपरी तथा यथार्थ के स्थान पर अयथार्थ का चित्रण कर कवि भ्रम के जगत् में निवास करता है, और इस तरह वह पाठकों को बहकावे में डालता है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि काव्य प्रकृति का अनुकरण है और प्रकृति सत्य का अनुकरण है, अतः अनुकरण का अनुकरण होने से काव्य सत्य से दुगुना दूर हो जाता है और इसलिए वह त्याज्य है। वास्तविकता में जो हम देखते हैं कला उसके अनुकरण के सिवाय और कुछ नहीं है। चित्र, मूर्ति, उपन्यास, नाटक ये सब मूल कृतियों के अनुकरण के सिवाय और कुछ नहीं हैं। वस्तुतः विचारवादी (आइडिएलिस्ट) होने के कारण प्लेटो अदृष्ट वास्तविकता में विश्वास करता था जोकि इन्द्रियगम्य लोक से बाह्य है। ये विचार (आइडिया) शाश्वत हैं, न उत्पन्न होते हैं और न नष्ट होते हैं, ये निरपेक्ष हैं तथा समय और स्थान पर निर्भर नहीं रहते। प्लेटो का मानना है कि प्रत्येक वस्तु के पीछे उसका वैचारिक रूप (आइडिया) रहता है जिससे हम उस वस्तु को जानते हैं। अतएव पलँग का वैचारिक रूप किसी भी विशिष्ट पलँग की अपेक्षा अधिक सच्चा और पूर्ण है। इसीसे प्लेटो ने अदृष्ट लोक के आदर्श रूप में (जैसे न्याय, सौंदर्य, सत्य के रूप) के अनुकरण की कल्पना की थी, जिन्हें मानव-चरित्र का अंग बनाना आवश्यक है। इस तरह का अनुकरण उच्च कोटि की कविता में ही सम्भव है—यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो वस्तुओं को अपने वास्तविक रूप में प्रस्तुत न कर आदर्श रूप में प्रस्तुत करती है।[३]

१—देखिए, ग्रेट डाइलाग्स आफ प्लेटो, द रिपब्लिक पुस्तक १०, पृ० ३९५-९८
२—वही, पृ० ३९५।
३—एटकिन्स, लिटरेरी क्रिटिसिज्म इन एण्टिक्विटी, पृ० ५२।

प्लेटो का कथन था कि होमर और हेसियोड जैसे कवियों को, राष्ट्र के गुणगान को सुरक्षित रखने के लिए नगर में प्रवेश न करने देना चाहिए। क्योंकि कवि आत्मा के निम्न कोटि के अंश को ही जागृत पोषित और शक्तिशाली बनाकर उसके बौद्धिक अंश को नष्ट करता है। नहीं तो यह ऐसा ही होगा जैसे किसी नगर को दुष्ट आदमियों के हाथ में सौंप दिया जाय जो श्रेष्ठ नागरिकों का संहार करने के लिए उतारू हो।[1] प्लेटो ने एक आदर्श राज्य की कल्पना की थी जिसमें दार्शनिक आदर्श अथवा सत्य की खोज और उसकी प्राप्ति का मूल्यांकन में सारी सब वस्तुएँ तुच्छ मानी गयी हैं। मानव को इस राज्य का नागरिक होना जरूरी है। और जब तक दार्शनिक लोग नगर पर शासन न करेंगे तब तक कोई नगर, संविधान अथवा मनुष्य पूर्ण नहीं कहा जा सकता।[2] प्लेटो, जैसा कहा जा चुका है, उसी साहित्य या कला को उत्कृष्ट मानता था जोकि एक नागरिक के जीवन को ऊँचा उठाने में सहायक हो सके। इसीलिए प्लेटो का कथन है कि राज्य के हक में देवताओं को बुराइयों का कारण बतानेवाले कवियों को नगर में नहीं रहने देना चाहिए,[3] केवल उसी काव्य को प्रवेश होने दिया जाय जिसमें देवताओं की स्तुति और कुलीन जनों का गुणगान हो। लेकिन ऐसा न करके यदि कोई गीतिकाव्य या महाकाव्य में मधु सिक्त कला की देवी का स्वागत करेगा तो निश्चय ही नगर में नियम और व्यवस्था के स्थान पर भोगविलास और दुःख राज्य करने लगेंगे।[4]

श्रेष्ठ कविता का विरोध नहीं

इससे यह समझना भूल होगी कि प्लेटो जो स्वयं कवि भी था, श्रेष्ठ काव्य या श्रेष्ठ कलाकारों का विरोधी था। वस्तुतः उन दिनों साहित्य की कलुषित छाया तत्कालीन सामाजिक जीवन पर पड़ रही थी जिससे साहित्य जीवन को उदात्त बनाने में असमर्थ हो रहा था। 'प्रोतागोरस' नामक संवाद में प्लेटो ने शिक्षित समुदाय को सुझाव देते हुए लिखा है कि वे लोग कविता सम्बन्धी वाद विवाद से ही सन्तुष्ट न हो जायें, बल्कि सत्य की खोज करने के लिए स्वतन्त्रतापूर्वक साहस से काम लें। स्पष्ट है कि प्लेटो कविता की अपेक्षा दर्शन पर अधिक जोर दे रहा था। क्योंकि उसके मतानुसार कविता में सम्पूर्ण ज्ञान का समावेश नहीं हो पाता। ज्ञान का प्रतिपादन बड़ी अस्पष्टता और अनिश्चितता के साथ ही कविता में पाया जाता है। 'रिपब्लिक' में उसने कवियों को सुझाव दिया है कि वे कविता को केवल आनन्द के रूप

१—द डाइलाग्स आफ प्लेटो, रिपब्लिक, पुस्तक १०, पृ० ४०५।

२—वही, पुस्तक ६, पृ० २९७, पुस्तक ५, पृ० २७३।

३—वही, पुस्तक ३, पृ० १८९।

४—वही, पुस्तक १०, पृ० ४०७।

में ही नही, बल्कि राज्य तथा मानव जीवन के लिए हितकारी रूप मे भी प्रस्तुत करें।[१] इस प्रकार हम देखते हैं कि नैतिक और दार्शनिक विचारो के अत्यधिक प्रभाव के कारण ही प्लेटो कलामात्र की निन्दा करने के लिए बाध्य हुआ।

काव्य का वर्गीकरण

प्लेटो ने कविता को तीन भागों में विभक्त किया है—गीत, नाट्य और महाकाव्य विवरणात्मक कविता के ये तीन भाग हैं। पहला भाग शुद्ध विवरणात्मक है जिसमे कलाकार स्वय कोई लम्बा गीत लिखकर अपनी ही कथा कहता है। दूसरा भाग अनुकरणात्मक है जिसमे ट्रैजेडी और कॉमेडी का अन्तर्भाव होता है। तीसरा भाग मिश्रित है जिसम कवि कुछ अश तक अपने आपके माध्यम से और कुछ अश तक अपने पात्रो के माध्यम से अपनी बात कहता है, जैसे—महाकाव्य।[२] लेकिन अनुकरणात्मक होने के कारण प्लेटो ने महाकाव्य और नाटकीय कविता को आदर्श राज्य के सरक्षको को शिक्षा देने के लिए अनुपयुक्त माना है। प्लेटो के अनुसार, काव्य की उपर्युक्त दोनों विधाओ में कवि काव्य सर्जन के समय अन्य पात्रो से स्वय तादात्म्य स्थापित करता है और ऐसा करने के लिए अपने श्रोताओ को भी बाध्य करता है, और इस प्रकार दूसरे के अच्छे बुरे व्यक्तित्व के साथ अभिन्नता स्थापित कर लेना, प्लेटो के मत मे ठीक नही।

ट्रैजेडी और कॉमेडी

प्लेटो ने नाटक की चर्चा करते हुए ट्रजेडी और कॉमेडी की चर्चा की है। एक स्थान पर उसने ट्रैजेडी को महाकाव्य की अपेक्षा घटिया बताया है। आदर्श ट्रैजेडी मे उसने श्रेष्ठ और उदात्त जीवन को अनुकरणीय माना है। इसलिए प्लेटो के मत मे साहित्यमात्र को अनुकरण कहा जाने लगा। ट्रैजेडी के श्रेष्ठ कवियो को उसने न्याय-कर्ताओ और समाजसेवियो के समकक्ष बताया है, क्योकि दोनों की प्रवृत्तियो मे बहुत साम्य है। प्लेटो ने भय और करुणा नाम के दो भावावेश स्वीकार किये हैं जो ट्रैजेडी द्वारा जागृत किये जाते हैं। प्लेटो ने बताया है कि दुखान्त दृश्यो से भी हमें सुख की ही प्राप्ति होती है। उसके अनुसार, मानव चरित्र मे मिश्रित भावो का अस्तित्व विद्यमान रहता है और क्रोध, भय, ईर्ष्या आदि मनोभाव यद्यपि अपने आपमे व्ययाजनक है, फिर भी जब इनका व्यापक प्रदर्शन किया जाता है तो हमें इनसे आनन्द प्राप्त होता है। प्लेटो ने होमर को ट्रजेडी की सुन्दरताओ का प्रथम सूत्रधार और शिक्षक स्वीकार किया है। जब वह किसी शोक से विह्वल अपने नायको का

१—वही, पुस्तक १०, पृ० ४०८।
२—देखिए, ग्रेट डाइलाग्स आफ प्लेटो, द रिपब्लिक पुस्तक ३, पृ० १९२।

अनुकरण कर रहा हो, लम्बी शोकगीतिका पढ़ रहा हो, और उन्हें गा गाकर अपनी छाती पीटते हुए चित्रित कर रहा हो, तो यह देखकर हम आनन्द होता है। कवि के साथ हमारी सहानुभूति हो जाती है, हम उसे गम्भीरता से लेते हैं और उसकी प्रशंसा के पुल बांधने लगते हैं।[१]

कॉमेडी के सम्बन्ध में भी प्लेटो ने महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किये हैं। हास्यास्पद और बेढंगे कार्यों को प्लेटो ने कॉमेडी का मूल आधार माना है। दूसरों की अज्ञानता अथवा अहंकार देखकर हमें खासकर उस समय हँसी आने लगती है जबकि आदमी अपने आपको अधिक बुद्धिमान, अधिक सुन्दर अथवा अधिक गुणवान समझता है, और प्लेटो के अनुसार, यह अज्ञानता उस मनुष्य में पायी जाती है जो दूसरों को हानि पहुँचाने के अयोग्य है। यदि ऐसा न हो तो श्रोताओं में हास्य उत्पन्न करने की अपेक्षा वह व्यक्ति खतरनाक हो जायगा और फिर कॉमेडी न बन सकेगा। प्लेटो का कथन है कि सच्ची हँसी हम तभी हँसते हैं जब किसी का भण्डाफोड़ हो जाता है। व्यक्तिगत व्यंग्य तथा गम्भीर और मनोमालिन्य पैदा करनेवाली हँसी को प्लेटो ने हास्य नहीं माना, निर्दोष हँसी को ही उसने हास्य बताया है। प्लेटो ने लिखा है कि जिस आदमी की दूसरों पर हँसने की आदत है वह गम्भीर नहीं रह सकता और इससे बड़प्पन नष्ट हो जाता है। हास्य के लाभ बताते हुए कहा गया है कि हास्य से हम मनुष्य स्वभाव का ज्ञान होता है और पता लगता है कि ऐसे कौन से कार्य हैं जो उपहासास्पद नहीं हो सकते। प्लेटो का कहना है कि गम्भीर चीजों को हम तब तक नहीं समझ सकते जब तक उपहासास्पद बातों को न समझ लें।[२]

काव्य का उद्देश्य

प्लेटो के अनुसार, काव्य का उद्देश्य केवल आनन्द प्रदान करना ही नहीं इससे कुछ अधिक है। 'फिलेबस (Philebus) में श्रेष्ठ वस्तुओं का उल्लेख करते हुए उसने सर्वोत्तम आनन्द का पाँचवाँ स्थान बताया है, तथा आनन्द प्रदान करनेवाले काव्य को सोफिस्टों की कला माना है। कविता में एक प्रकार का स्वाभाविक आकर्षण रहता है, लेकिन इस आकर्षण की अभिव्यक्ति कवियों का मुख्य कार्य नहीं है। इसके सिवाय बालक युवा और वृद्ध इन तीनों का आनन्द अलग अलग होता है इसलिए साहित्य का मूल्यांकन सत्य से ही किया जा सकता है आनन्द से नहीं।[३] प्लेटो ने कविता का मुख्य प्रयोजन माना है मानव-चरित्र को प्रभावित करना और उसका निर्माण करना—आत्मा की प्रच्छन्न शक्तियों को प्रकाश में लाना, और इस प्रकार मनुष्य को अपना जीवन श्रेष्ठतर

१—वही, द रिपब्लिक, पृ० ३९४, ४०६।
२—वही पृ० ५७-५८।
३—वही, पृ० ६४।

बनाने और जगत् का पुनर्निर्माण करने योग्य बनाना। मतलब यह है कि प्लेटो की काव्यकला कठोर सयम और आत्म नियन्त्रण पर आधारित है जिसकी कसौटी सत्य है।[1]

वक्तृत्वकला का विश्लेषण

वक्तृत्वकला के सम्बन्ध में भी प्लेटो ने महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किये हैं। सबसे पहले, गौगिग्रस और थसीमाखोश (Thrasymachus) ने वक्तृत्वकला की शैली को सुधारने के लिए जो नया आन्दोलन चलाया, उसका उसने जोरदार विरोध किया। इन लोगो का प्रयत्न एक प्रकार से वाक्शैली को चमक-दमक और आडम्बरयुक्त बना कर साधारण बोलचाल की भाषा के सामान्य स्तर से ऊपर उठाना था। प्लेटो का कथन था कि इस प्रकार की वक्तृत्व शैली मे न सत्य का अश रह जाता है और न न्याय का ही। उसके अनुसार, वक्तृत्वकला एक प्रकार की किसी को बहकाने की कला है जिसका मुख्य उद्देश्य तथ्यो को तोड मरोड कर लच्छेदार भाषा, नकली दलीलें और जनता को भूलभुलैया म डालनेवाले कपटजाल की सहायता से मिथ्या प्रभावों को पैदा करने के अतिरिक्त और कुछ नही है। इसलिए प्लेटो ने ऐसे शब्दाडम्बर को कृत्रिम और चाटुकारिता का नाम दिया है। वक्ता लोग शब्दो और सूक्तियो से अपने तालु को गुदगुदाकर अन जना को निम्न कोटि का आनन्द प्रदान करते हैं अतएव वक्तृत्वकला मे कला के आवश्यक गुण नही पाय जाते। यह एक चतुर और समथ मस्तिष्क की क्रिया है जो लोगो को आकर्षित करने मे सिद्धहस्त है, यह एक ऐसा कौशल है जो अनुभव से प्राप्त होता है, कोई बौद्धिक आधार इसका नही है। उस समय की वक्तृत्वकला के समथक केवल यान्त्रिक पद्धति से ही भाषा शैली के आवेदन विवरण, प्रमाण, सम्भाव्यता और स्वीकृति आदि विभाग करते थे जिनका प्लेटो ने खण्डन किया था।[2]

प्लेटो ने वक्तृत्वकला को अधिक बौद्धिक बनाने के लिए उसका खोजपूर्ण विश्लेषण भी किया। सबसे पहले उसने एक अच्छे वक्ता या लेखक के लिए विषय का सम्यक ज्ञान आवश्यक बताया। वक्तृत्वकला मे आत्मा एक प्रकार से चमत्कृत हो जाती है जो शाब्दिक इन्द्रजाल का ही परिणाम है और इसके लिए कला के ज्ञान की नितान्त आवश्यकता है। लेकिन कला के सिद्धान्तो को जान लेना ही पर्याप्त नही इसके लिए सबसे पहले कला के प्रति स्वाभाविक रुचि होनी चाहिए, सिद्धान्तो का समीचीन ज्ञान होना चाहिए और फिर कला का सतत अभ्यास होना जरूरी है।[3]

१—वही, पृ० ६१।

२—एटकिन्स, लिटरेरी क्रिटिसिज्म इन एण्टिक्विटी, १, पृ० ५८-५९।

३—वही, पृ० ५९ ६०।

वाकक्ला मे विचारो का तारतम्य रहना चाहिए जिससे कि किसी रचना मे सामजस्य प्रस्तुत किया जा सके। प्लेटो का वचन है कि अच्छे भाषण के लिए अथवा गद्यलेखन के लिए विषय का स्पष्ट ज्ञान आवश्यक है। वक्तृत्वकला की सफलता इस बात पर अवलम्बित है कि उसका श्रोताओ के मन पर कैसा असर होता है। इसके वास्ते प्लेटो ने भावो की अभिव्यक्ति के लिए मनोविज्ञान के सिद्धान्तो का प्रयोग करने की आवश्यकता बतायी है। किसी चिकित्सक की भांति, वक्ता को भी श्रोताओ का स्वभाव, उनकी बदलती हुई मनोवृत्ति उन्हे प्रभावित करने के उपाय तथा अवसर देखकर बोलने का कुशलता आदि का ज्ञान आवश्यक है।[१]

आलोचक के लक्षण

सच्ची कला की परीक्षा कैसे की जाय, इसकी चर्चा करते हुए बताया गया है कि सुशिक्षित तथा गुणी लोग ही अच्छे आलोचक बन सकते हैं। सच्चा समीक्षक वही हो सकता है जिसमे सूक्ष्म बूझ और साहस विद्यमान हो, और साथ ही दूसरो का पथ-प्रदशन करने की योग्यता हो। सवसाधारण की रुचि को साहित्यिक उत्कृष्टता की कसौटी नही कहा जा सकता। आलोचक के लिए शब्दाडम्बर को हेय बताया गया है। किसी समीक्षक को कविता के कौशल और उसकी चमत्कारपूर्ण शक्ति के विस्तृत विवेचन का ज्ञान होना आवश्यक है।[२]

प्लेटो की देन

कला को वास्तविकता का अनुकरण प्रतिपादित करने का श्रेय प्लेटो को ही है। उसके अनुसार कवि या चित्रकार किसी सुन्दर वस्तु का सृजन नहा करता, वह प्रतीय मान वस्तु का अनुकरण मात्र करता है। आलोचना क क्षेत्र म प्लेटो की सबसे बडी देन है कि उसने साहित्यिक सिद्धान्तो को दाशनिक रूप दिया। प्लेटो का मानना है कि काव्य म न्याय, सत्य और सौदय के आदश का अधिकाधिक रूप आना चाहिए। साहित्य का समीक्षा करते हुए उसने साहित्य के मूल्याकन के लिए मनोविज्ञान का सहारा लेकर साहित्य और जीवन का निकट सम्बन्ध स्थापित किया। उसका मानना है कि कविता मे एक रहस्यमय शक्ति है उसकी जीवनशक्ति कभा क्षय नहीं होता, उसम जीवन को अभिव्यक्त करने की अपूव क्षमता है। मानव मे जो महान उदात्त है, कविता म उसका चित्रण होना चाहिए और सावभौम सत्य का समावेश होना चाहिए। अतएव कविता केवल आनन्द ही प्रदान नही करती वह राष्ट्र और मानव जीवन क लिए भी उपयोगी है। प्लेटो के अनुसार, सवप्रथम कला म एक प्रभाव कारक शक्ति होनी है उपदेश का माध्यम वह नही है। मुख्यतया चरित्र का निर्माण

१—वही, पृ० ६०।
२—वही, पृ० ६४ ६५।

करना कला का उद्देश्य है, नैतिक नियमों का उपदेश देना नहीं। प्लेटो ने कला को केवल मनोरंजन का साधनमात्र न मानकर, 'कला के लिए कला' के सिद्धान्त को अस्वीकार कर दिया। उसका कहना था कि यदि कला का जीवन में कोई व्यावहारिक उद्देश्य नहीं है तो वह निरर्थक और साथ ही अनुपादेय भी है।[1] 'रिपब्लिक' में उसने कहा है—'कला का सर्वप्रथम कर्तव्य है कि वस्तुगत सौंदर्य तथा मानव स्वभाव में जो महान और उदात्त है उसके प्रति मनुष्य की आँखें खोल देना। तत्पश्चात् वह कला अपने शानदार स्रोत से मनुष्य की आत्मा को आक्रान्त करती है तथा स्वास्थ्यप्रद पवन की भाँति मनुष्य में जो महान और उदात्त है, उसका पोषण करती है।

अपने समय में प्रचलित मत मतान्तरों का खण्डन करते हुए प्लेटो ने सत्य को उद्घाटित करने के जो तरीके अपनाये, वे अनेक बार अस्पष्ट और उलझन में डाल देनेवाले प्रतीत होते हैं, लेकिन फिर भी काव्य, काव्य का रूप, काव्य की कला, काव्य का उद्देश्य तथा वक्तृत्वकला को लेकर उसने जो सिद्धान्त स्थापित किये, वे अजर-अमर हैं। साहित्यिक समीक्षा का प्रारम्भ प्लेटो से ही होता है। प्लेटो का सबसे बड़ा देन यही है कि उसने मनुष्य को सोचने के लिए प्रवृत्त कर उसे समीक्षात्मक प्रणाली की ओर उन्मुख किया। प्लेटो के जमाने में कविता को शिल्पकला की एक प्रक्रियामात्र माना जाता था, लेकिन उसने कविता के स्तर को ऊँचा उठाकर मानवजीवन के साथ उसका सम्बन्ध जोड़ दिया। प्लेटो को "महानतम समीक्षात्मक मतभेदों का जनक" कहा गया है। उसके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों ने भावी पीढ़ी के समीक्षकों को किस प्रकार प्रभावित किया, इसका विवेचन आगे के पृष्ठों में किया जायगा।

१—वही पृ० ६६–६९।

अरिस्टोटल (अरिस्तोतलिस ३८४–३२२)

"प्लेटो का मृत्यु होने पर ससार का प्रकाश बुझता हुआ प्रतीत हुआ। लेकिन जब असाधारण प्रतिभा के धनी अरिस्टाटल का उदय हुआ तो वह प्रात कालीन नक्षत्र की भांति चमक उठा—अपने विविध दार्शनिक उपदेशों द्वारा दृष्टि के कोहरे को छितराता हुआ और सत्यदृष्टि को पुन प्रतिष्ठित करता हुआ[1]।"

अरिस्टोटल प्लेटो का शिष्य था, अपने गुरु के सिद्धान्तों से वह विशेष रूप से प्रभावित था। प्लेटो की मृत्यु के पश्चात् उसने उसकी समाधि बनवायी और उसका इसी प्रकार सम्मान किया जैसे किसी दिव्य पुरुष का किया जाता है।[2] अरिस्टोटल का जन्म मकदूनियां (Macedonia) में समुद्रतट पर स्टेगिरा नामक एक यूनानी उपनिवेश में हुआ था। उसके पिता मकदूनियां के बादशाह के यहाँ राजवैद्य थे। प्लेटो की ख्याति सुनकर १७ वर्ष की अवस्था में अरिस्टोटल एथेंस आया और प्लेटो की अकादमी में प्रविष्ट होकर दर्शनशास्त्र का अभ्यास करने लगा। अपने शिष्य की प्रतिभा से प्रभावित हो प्लेटो उस विद्यापीठ का मस्तिष्क कहा करता था। बीस वर्ष तक अरिस्टोटल अपने गुरु के चरणों में बैठकर विद्याध्ययन करता रहा। प्लेटो की मृत्यु के पश्चात् अरिस्टोटल ने एथेंस छोड़ दिया और वह विश्वविख्यात सिकन्दर (अलक्सान्दास) महान् का शिक्षक नियुक्त हो गया।

१—जॉन आफ सालिसबरी, पॉलिटिक्स ६४७ ड, जे डब्ल्यू एच एटकिन्स इंगलिश लिटरेरी क्रिटिसिज्म मैडीवल फेज़, पृ० ८२ पर से, लदन १९४३/

२—कहते हैं कि अरिस्टोटल प्लेटो की मृत्युपर्यन्त बीस वर्ष तक उसके विद्यापीठ में रहा। गुरु-शिष्य के सम्बन्ध अन्त समय तक बहुत मधुर रहे। इस बात का एक और प्रमाण है अरिस्टोटल का समाधि शोक गीत, जिसे उसने युदेमुस (Eudemus) को समर्पित किया था। इस गीत में प्लेटो को लक्ष्य करके कहा गया है— बुरे आदमियों को यह भी अधिकार नहीं कि वे उसकी प्रशसा कर सकें' (हुम बड मेन हैव नॉट इवन द राइट टू प्रेज़)। वेरनेर जाएगेर का कहना है कि अरिस्टोटल के अनुसार, यह वाक्य उन लोगों के लिए है जो प्लेटो के आलोचक अरिस्टोटल के खिलाफ प्लेटो का बचाव करने में सलग्न थे। देखिये वेरनेर जाएगेर अरिस्टोटल, पृ० १०६ आदि, रिचर्ड राबिनसन द्वारा अनूदित आक्सफोर्ड, १९३४

आठ वर्ष तक वहाँ उसने शिक्षक का काम किया और उसके बाद एथेंस लौटकर एक विद्यापीठ की स्थापना की, जहाँ विद्या के प्राय सभी अंगों की शिक्षा दी जाती थी। प्लेटो ने गणित के अध्ययन पर जोर दिया था तो अरिस्टोटल प्राणिशास्त्र और इतिहास के अध्ययन को महत्त्व देता था। अरिस्टोटल की प्रतिभा बहुमुखी थी। ६२ वर्ष की अवस्था में उसने प्राय ४०० ग्रन्थों की रचना की थी। तर्कशास्त्र, अध्यात्मशास्त्र, प्राकृतिक विज्ञान, नीतिशास्त्र और राजनीति पर उसने मौलिक और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे। काव्यशास्त्र ('पोएटिक्स'[1]) और वक्तृत्वकला ('रेटोरिक्स') उसके काव्यशास्त्र सम्बन्धी दो ग्रन्थ उपलब्ध हैं। कविता का उद्देश्य है आनन्द प्रदान करना और वक्तृत्वकला का उद्देश्य है शब्दों के समुचित चयन और आयोजन द्वारा दूसरों में विश्वास पैदा करना। दोनों ही समीक्षा के लिए उपयोगी हैं। दुर्भाग्य से दोनों ही रचनाएँ बीच बीच में खंडित हैं फिर भी इन ग्रन्थों के आधार से काव्यशास्त्र विषयक जो सिद्धान्त स्थिर किए गये हैं, वे बहुमूल्य हैं।

पाश्चात्य काव्यशास्त्र का आद्य आचार्य

अरिस्टोटल को पाश्चात्य काव्यशास्त्र का आद्य आचार्य माना जाता है। बहुत समय तक उसके 'पोएटिक्स' की उपेक्षा होती रही। सन् १४९८ में पहली बार लैटिन में उसका अनुवाद किया गया जिससे यह दुर्लभ ग्रन्थ प्रकाश में आया। प्लेटो उस कला को महत्त्व देता है जो चरित्र के निर्माण में सहायक होती है। इसीलिए अपनी रचनाओं का उसने राज्य के सामाजिक आदर्शों को *ध्यान में* रखते हुए निर्माण किया था। लेकिन अरिस्टोटल एक वैज्ञानिक की हैसियत से मानव जीवन के स्थान पर मानवीय ज्ञान के पुनर्निर्माण को महत्त्वपूर्ण समझता है, तथा निरीक्षण और विश्लेषण द्वारा अपने निष्कर्षों पर पहुँचता है। अरिस्टोटल ने प्लेटो के सिद्धान्तों की नयी व्याख्या की थी।

प्लेटो की कविता सत्य से दूर

प्लेटो ने कविता को प्रकृति की अनुकृति मानते हुए उसे सत्य से बहुत दूर बताया और इसलिए आदर्श राज्य में कवियों का प्रवेश निषिद्ध कर दिया। प्लेटो का कथन था कि एक आदर्श नागरिक को तर्कशक्ति से सम्पन्न, दृढसंकल्पी और अत्यन्त संयमी होना चाहिए। कविता ऐसे भावावेशों को पुष्पित और पल्लवित करने में सहायक होती है जिन्हें सुखाकर नष्ट हो जाना चाहिए था। ऐसी हालत में प्लेटो का कवियों को नागरिकता के आदर्शों के लिए खतरनाक बताना स्वाभाविक था। व्यक्तिगत व्यंग्य को भी नैतिक आधारविहीन होने के कारण उसने हेय *माना।* 'लॉज' में प्लेटो ने लिखा है—"हमारा सामाजिक जीवन हमारी सबसे श्रेष्ठ ट्रैजेडी

१—यह रचना अपूर्ण है। इसमें २६ अध्याय हैं, दूसरा भाग खंडित है।

है ५४

हम वह प्रदान करती है जो प्रकृति नही दे सकती।[1] ऐसी सत्य यथार्थता की सीमा को पार कर जाता है, यद्यपि वह का उल्लंघन नही करता—जिन नियमों के कारण वास्तविक दी दुनिया कही जाती है।[2] इस प्रकार हम देखते हैं कि बौद्धिक गतिवि० क्षेत्र मे अरिस्टॉटल ने कला के लिए एक ऊंचा उद्देश्य खोजने का प्रयत्न किया।

कविता और इतिहास

मानव जीवन के सार्वभौमिक तत्त्व की अभिव्यक्ति होने के कारण, कविता को मानव-चरित्र, भावावेश और मानव प्रवृत्ति का आदर्श चित्रण कहा गया है।[3] कवि अहर्निश मे जीवन मे दिखाई देनेवाली अस्तव्यस्तता म एक मेधावी चित्र उपस्थित करता है जो अविवेक से हीन होता है और जिसमे मानव स्वभाव की स्थायी सम्भावनाओं की—आदर्श अथवा सार्वभौम सत्य की—उद्भूति दिखाई देती है। अरिस्टाटल ने कविता और इतिहास का अंतर स्पष्ट करते हुए कविता को इतिहास की अपेक्षा अधिक दार्शनिकता से युक्त और भव्य कहा है। काव्य इतिहास की अपेक्षा इसलिए उच्चतर है कि वह प्रत्येक वस्तु को उसके आन्तरिक सम्बन्धों के साथ प्रस्तुत करता है। इतिहासकार उस घटना का वर्णन करता है जो घटित हो चुकी है और कवि उसका जो घटित हो सकती है—जो सम्भाव्यता अथवा आवश्यकता के नियमानुसार सम्भव है। कवि शस्य सभावना (पासिबिल इम्प्राबेबिलिटाज्) की अपेक्षा सभाव्य असभावना (प्रॉबेबिल इम्पॉसिबिलिटीज) पर जोर देता है। कविता सामान्य (युनिवर्सल) की और इतिहास विशेष की अभिव्यक्ति है। कविता केवल व्यक्तिविशेष के जीवन की कहानी का ही चित्रण नही करती। सामान्य तत्त्व की मौजूदगी के कारण कविता में स्थायी प्रभाव पैदा करने की शक्ति उत्पन्न होता है।[4] इतिहास तथ्यो पर आधारित रहता है, जबकि कविता अपने तथ्यों को सत्य म परिणत कर देती है। कविता म सम्भाव्य और आवश्यक अनुक्रम के अनुसार कार्य कारण की सम्बद्धता तथा एक विशिष्ट क्रम और सामजस्य रहता है, जबकि वर्णनो के आधिक्य के कारण इतिहास में यह बात नहीं पायी जाती।[5] ऐसी हालत में कविता को 'अनुकृति' मात्र मानकर कविता की उपेक्षा नहा की जा सकती।

१—प्रिंसिपल्स आफ क्रिटिसिज्म, पृ० ८१।
२—एस० एच० बूचर वही, पृ० १८४।
३—वही, पृ० १२३।
४—द पोएटिक्स, ६ पृ० ३५।
५—एस० एच० बूचर, वही, पृ० १६४, १६१।

सौन्दर्य की प्रतिष्ठा

प्लेटो ने कवि को शिक्षक मानकर कविता का सम्बन्ध नैतिकता के साथ जोड़ा था, जबकि अरिस्टोटल के अनुसार, कलाकृति चाहे कविता हो या चित्र, वह सौन्दर्य की वस्तु है, और सौन्दर्ययुक्त होना—आनन्द प्रदान करना—कलाकृति के तत्त्व का एक अंश है। अरिस्टोटल ने काव्य का सम्बन्ध न नाटक से, न दर्शन से, न राजनीति से और न नैतिकता से जोड़ा, वरन् काव्य को मानव आत्मा का स्वतन्त्र व्यापार माना। अरिस्टोटल ने कविता से परिष्कृत आनन्द की प्राप्ति अवश्य स्वीकार की है, लेकिन साथ ही वह यह भी मानता है कि इस आनन्द की प्राप्ति तभी सम्भव है जबकि नैतिकता की आवश्यकताएँ पूर्ण हो सकें। उसने स्पष्ट कहा है कि जीवन और चरित्र के निम्न आदर्शों तथा मनुष्य के भाग्य की गलत रूप मे व्याख्या करनेवाली कविता हमारे आनन्द का विषय नही हो सकती।[1] इस प्रकार हम देखते हैं कि अरिस्टोटल ही ऐसा पहला समीक्षक था जिसने कविता को नैतिकता के बन्धन से निकालकर उसमे सौंदर्यवाद की प्रतिष्ठा की। उसके अनुसार, यदि कवि अपनी रचना के द्वारा समुचित आनन्द प्रदान करने मे असमर्थ है तो उसकी रचना सफल नहीं मानी जा सकती, वह एक अच्छा शिक्षक हो सकता है, अच्छा कलाकार नही।

काव्य का प्रयोजन

अरिस्टोटल ने ज्ञानार्जन और आनन्द को काव्य का प्रयोजन स्वीकार किया है। मनुष्य बचपन से सब कुछ अनुकरण से ही सीखता है, और वस्तुओं का अनुकरण कर उसे सार्वभौम आनन्द प्राप्त होता है। जिन वस्तुओं के दर्शन से हम कष्ट का अनुभव होता है, उसका अनुकरण द्वारा प्रस्तुत किया हुआ रूप हमें आनन्द देता है, जैसे किसी निम्न पशु अथवा शव की चित्रित आकृति। काव्य के उक्त दोनों प्रयोजन सामान्यत पृथक् होते हुए भी तत्त्व रूप मे एक हैं, क्योंकि आखिर ज्ञानार्जन भी आनन्द का ही साधन है। कारण यह है कि ज्ञानार्जन से केवल दार्शनिक को ही नहीं सामान्य व्यक्ति को भी आह्लादकारी आनन्द प्राप्त होता है। किसी वस्तु का अनुकूल रूप हमे इसलिए आनन्द प्रदान करता है कि हम उसके सदृश रूप को देखकर निष्कर्ष निकालते हैं कि अरे, यह तो वही है'। क्योंकि यदि हमने मूल वस्तु को नही देखा तो हमारा आनन्द अनुकरण-जन्य न होगा बल्कि वह उसके वर्ण आदि उपकरणों को देखकर होगा। काव्य का आनन्द अनुकरणजन्य आनन्द है—यह एक प्रकार का प्रत्यभिज्ञान का आनन्द है जो पहले किसी देखी हुई वस्तु को पहचानने से उत्पन्न होता है।[2]

१—बूचर वही पृ० २२६।

२—द पोएटिक्स, पृ० १५।

कलाओं का वर्गीकरण

प्लेटो की भाँति अरिस्टोटल ने भी कला के दो विभाग किए हैं। यूनानी समीक्षकों ने कला की आत्मा सौन्दर्य को मानकर अनुकरणात्मक सिद्धान्त को माना है। प्लेटो ने अनुकरणात्मक कला (उदार कला) की अपेक्षा उपयोगी कला को सत्य के अधिक निकट स्वीकार किया है यह बात कही जा चुकी है। चित्रकार की अनुकरणात्मक कला की अपेक्षा उसने बढ़ई की उपयोगी कला को अधिक सत्य कहा है क्योंकि बढ़ई खुद प्रकृति का अनुकरण करता है जबकि चित्रकार बढ़ई की कृति का अनुकरण कर अपनी कला का मजाक-सा करता है। लेकिन अरिस्टोटल ने प्लेटो के इस क्रम को बदलकर उपयोगी कला की अपेक्षा काव्य, संगीत और नृत्य आदि—ग्रावल ललित कही जाने वाली कलाओं, जिन्हें उसने अनुकरणात्मक कहा है—को अधिक महत्त्व दिया। ये काव्य आदि कलाएँ भव्यतर सत्य—सामान्य या सार्वभौम सत्य, जो विशेष से पृथक् नहीं हैं—की अभिव्यक्ति है। दरअसल कविता में अनुकरण तत्त्व ही कवि को कवित्व प्रदान करता है। समस्त कलाओं का मूल तत्त्व एक ही है—अनुकरण। उपयोगी कला प्रकृति से सहयोग करती है—जो कुछ रूप प्रकृति के द्वारा अपूर्ण छूट जाता है, उसे वह पूर्ण करती है। "उपयोगी कही जाने वाली कलाएँ या तो जीवन के आवश्यक साधन प्रदान करती हैं और हमारी भौतिक आवश्यकताओं को संतुष्ट करती हैं, अथवा जीवन को उसके नैतिक और बौद्धिक साधनों द्वारा परिपूर्ण करती हैं जबकि ललित कलाओं का उद्देश्य है आनन्द अथवा बौद्धिक सुख प्रदान करना।"[1] ललित कही जाने वाली कलाओं में अरिस्टोटल ने काव्य, संगीत और नृत्य को उत्कृष्ट वर्ग की, तथा चित्र और मूर्तिकला को निम्न वर्ग की कला माना है। उसने इन कलाओं को मस्तिष्क की स्वतन्त्र और स्वाधीन प्रवृत्ति बताते हुए, उन्हें धर्म और राजनीति के क्षेत्र से बाह्य स्वीकार कर, शिक्षा और नैतिक सुधार से उनका भिन्न प्रयोजन बताया है। वस्तुत साहित्य और कला के क्षेत्र में अरिस्टोटल की यह महत्वपूर्ण देन है।

नाटक और उसके भेद

अरिस्टोटल ने नाटक को कार्य की अनुकृति मानकर उसे काव्य का प्रमुख भेद माना है। उसने 'पोएटिक्स' में जहाँ जहाँ ट्रैजेडी की चर्चा की है, वहाँ वहाँ नाटक के लिए कार्य व्यापार का अत्यन्त आवश्यक बताया है। उसने लिखा है, "कुछ लोगों का कहना है कि ऐसे काव्यों को नाटक इसलिए कहा जाता है कि

१—एस० एच० बूचर अरिस्टोटल्स थ्योरी आफ फाइन आर्ट, पृ० १६८।

उनमें गति या कार्य का निदर्शन रहता है।"[1] अरिस्टॉटल ने नाटक के दो भेद किये हैं—ट्रैजेडी और कॉमिडी। वीर काव्य अर्थात् महाकाव्य से ट्रैजेडी और व्यंग्य काव्य से कॉमिडी का विकास माना गया है। 'पोएटिक्स' में ट्रैजेडी का विस्तृत विवेचन मिलता है, कॉमिडी का नहीं। बहुत करके पुस्तक का यह अंश त्रुटित जान पड़ता है।

ट्रैजेडी की उत्पत्ति

ट्रैजेडी (यूनानी भाषा में त्रगोडिआ=tragodia, ट्रगोस=अजा, ओडी=Ode=गीत) का अर्थ है अजागीत। आधे आदमी और आधे अजा के समान दिखायी देनेवाले वनदेवता की पोशाक पहन कर लोग गाते-बजाते और भाड़ की तरह नकल करते हुए एक साथ चलते थे। यही ट्रैजेडी का मूल रूप है। दियोनिसिअस नामक मद्यदेवता को प्रसन्न करने के लिए इस तरह के खेल-तमाशों का रिवाज यूरिपाइडिस के काल तक चलता रहा। थेसपिस (लगभग ५३४ ई० पू०) को ट्रैजेडी का प्रतिष्ठाता माना जाता है। वह इकैरिया (Icaria) नामक गाँव का निवासी था, जो अपने नर्तकों को विश्राम देने और मनोरंजन में विविधता लाने के लिए बीच बीच में स्वयं उपस्थित होकर छंदोबद्ध भाषण दिया करता था। इकैरिया में दियोनिसिअस के सम्मान में एक बकरे का वध किया जाता और फिर गाजे बाजे के साथ मद्यपान के नशे में चूर देवता का स्तवन होता था। आगे चलकर यही मद्य-देवता नाट्य देवता के रूप में प्रख्यात हुआ, और रंगमंच पर अभिनय करनेवाले कलाकार 'दियोनिसिअस कलाकार' कहे जाने लगे। इस देवता की मूर्ति नाट्यगृहों में स्थापित कर दी गयी और नाटक आरंभ करने के पूर्व किसी पशु का वध करके उसे प्रसन्न किया जाने लगा। कालांतर में दियोनिसिआ नामक नगर बसाया गया जो ट्रैजेडी नाटक के रंगमंच की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ कहलाया। यहाँ अनेक नाट्य महोत्सव किये जाते और इस अवसर पर आयोजित प्रतियोगिताओं में भाग लेनेवाले नाट्यकारों को पुरस्कार से सम्मानित किया जाता।[2]

१—द पोएटिक्स, ३, पृ० १३। अंग्रेजी में 'ड्रामा' शब्द यूनानी भाषा से आया है जिसका अर्थ होता है कार्य (dran=द्रन्)। बिना कार्य-व्यापार के कोई भी काव्य 'ड्रामा' नहीं कहा जा सकता। प्राचीन यूनान में दियोनिसिअस की मृत्यु अथवा उसके पुनरुत्थान के अवसर पर लोग शोक अथवा हर्ष मनाते थे, तभी से ड्रामा' का आरंभ माना जाता है।

२—विल ड्यूराण्ट, द लाइफ आफ ग्रीस, पृ० २३१-३२।

ट्रैजेडी का जन्मदाता एस्किलस (एस्खिलोस Aeschylus)

ट्रजेडी के प्रतिष्ठाताओं में थेसपिस के बाद एस्किलस (५२५ ४५६ ई० पू०) का नाम आता है। पर्शिया के आक्रमण का सफलतापूर्वक प्रतिरोध करने के कारण एथेंस-वासियों म स्वाभिमान की जो लहर उठी, उससे अनेक महत्वपूर्ण नाटकों को प्रोत्साहन मिला। इस समय व्यापार में उन्नति होने और साम्राज्य की स्थापना होने के कारण, नाटयकला मे विशेष उन्नति हुई जिससे दियोनिसिअस के नाम पर सगीत और सामूहिक गानवाले नाटको की प्रतियोगिताए आयोजित की जाने लगी। २६ वर्ष की अवस्था में एस्किलस ने अपना पहला नाटक लिखा। इस देशभक्त नाटककार ने अपने देश की रक्षा के लिए युद्ध में भी भाग लिया था। एस्किलस ने ट्रजेडी की नाटय रचना और उसके अभिनय में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन किये जिससे उसे ट्रैजेडी का जन्मदाता माना जाता है। ४८४ ई० पू० में उसे ट्रैजेडी की प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ। ४६८ ई० पू० में इस प्रतियोगिता मे सोफोक्लीस से हार जाने के कारण वह एथेंस छोडकर चला गया। एस्किलस के ७० (अथवा ९०) नाटकों में से केवल ७ ही शेष रहे हैं। 'प्रामिथियस बाउण्ड' और 'ओरेस्टीआ (Oresteia) उसके प्रमुख नाटको म से है। एस्किलस ने अपने नाटको को होमर का शानदार दावत के टुकडे कहा है।[1] मनुष्य अपने भाग्य का विधाता स्वय है इसका प्रतिपादन एस्किलस ने अपने नाटकों म किया है। एस्किलस क दुखान्त नाटक इतने लोकप्रिय हुए कि उसकी मृत्यु के बाद एक विशेष कानून पास करके उन्हे खेलने का आदेश जारी किया गया।[2]

सोफोक्लीस

एस्किलस के बाद दूसरा प्रतिभाशाली नाटककार हो गया है सोफोक्लीस (४९६-४०६ ई० पू०)। एस्किलस का वह प्रतिद्वंद्वी था। उसने ११३ नाटकों की रचना की जिनम से सात बाकी बचे हैं। नाटय महोत्सवो के अवसर पर उसे बीसियो बार प्रथम पुरस्कार पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसकी लोकप्रियता के कारण पूरे तीस वर्ष तक यूनानी रगमच पर उसका एकछत्र राज्य कायम रहा। एस्किलस ने नाटक के पात्रों[3] की सख्या एक से बढाकर दो की थी तो सोफोक्लीस ने दो से तीन कर

१—गिल्बर्ट मरी, ए हिस्टी आफ ऐंशियट ग्रीक लिटरेचर, पृ० ९, लदन, १९१७।

२—कहते हैं कि एक बार कोई बाज एक कछुआ उठाये लिये जा रहा था, एस्किलस के गजे सिर पर उसके गिरने से एस्किलस की मृत्यु हो गयी। विल ड्यूराण्ट वही पृ० ३८३ ९१, गिल्बर्ट मरी, वही, पृ० २१५-२३१।

३—पात्र अथवा अभिनेता (ऐक्टर) के लिए यूनानी भाषा मे 'हिपोक्रेतिस' शब्द का प्रयोग होता है, जिसका अर्थ है उत्तर देनेवाला। यूनानी नाटक मे

दी। सोफोक्लीस अपने नाटकों मे स्वय पाट किया करता था। 'इदिपुस तीरैं (Oedipus Tyrannus), 'एग्रस' (Ajan) और 'अंतिगोनी' (Antigon सोफोक्लीस के सुप्रसिद्ध नाटक हैं। इसके नाटकों मे एस्किलस की अपेक्षा मान भावनाओं की प्रचुरता अधिक है, पर वीरभावना की यहाँ कमी दिखायी देती अरिस्टोटल ने 'इदिपुस तीरैंनस' की प्रशसा करते हुए सोफोक्लीस को एक आ नाटककार बताया है।[1]

यूरिपाइडिस

यूरिपाइडिस (४८० ४०६ ई० पू०) और एस्किलस का उल्लेख अरिस्तोफ ने 'फ्रॉग्स' नाटक म किया है। अरिस्तोफनीस, यूरिपाइडिस को अपने युग के भ्र चार के लिए जिम्मेवार समझता था[2], और इसलिए उसने अपने नाटक मे उपहास का पात्र बनाया है। प्लेटो नाटककार बनना चाहता था, लेकिन बन दार्शनिक जबकि यूरिपाइडिस बनना चाहता था दार्शनिक और बन गया नाटक उसने ७५ नाटकों की रचना की, लेकिन दुर्भाग्य से इनमें से बहुत कम उपलब्ध यूरिपाइडिस ने अपने 'मीदिया' (Medea) नामक नाटक मे बड़े जोरदार शब्द स्त्री की तरफदारी की है। स्त्री जाति का जितना सहृदयतापूर्ण चित्रण यूरिपाइ ने किया है, उतना यूनान के किसी अन्य नाटककार ने नहीं किया। 'आन्द्रोमे (Andromeda) नाटक मे यूरिपाइडिस ने कामदेव को लक्ष्य करके जो क लिखी है वह यूनान के युवकों में खूब ही लोकप्रिय हुई। उसका 'ट्रोजन वी नाटक विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यूनानी विजयी योद्धा ऐंएड्रोमैख (And mache) के पुत्र को दीवाल पर से गिराकर मारना चाहते हैं। इस बात का ऐंएडोमैख और उसकी सास को पता लगता है तो उनका करुण सवाद पत्थर का पिघला देता है। यूरिपाइडिस के नाटकों के पात्र मानवीय भावनाओं से युक्त

केवल कवि ही एक पात्र होता था। लेकिन यदि वह अपने एकान्त भावए कथोपकथन के रूप मे परिणत करना चाहता तो उसे एक दूसरे पात्र आवश्यकता पडती जो उसे उसकी बात का उत्तर दे सकता। गिल्बर्ट मरी, पृ० २०७।

1— विल ड्यूराण्ट वही, पृ० ३६१ ४००, गिल्बर्ट मरी, वही, पृ० २३२-२४६।

2—अरिस्तोफनीस ने यूरिपाइडिस को कुनागरिक और कुकवि आदि शब्दों से सबो किया है। देखिए एस० एच० बूचर, वही पृ० २१६। अरिस्टोटल ने भी व विहीन रचना, अनुपयुक्त चरित्रचित्रण तथा सामूहिक गान मे अनुचित निर्दिष्ट करने के कारण उसकी गहणा की है लेकिन कहीं भी अनतिकता आरोप उसपर नहीं किया। वही, पृ० २२५।

हैं—इसमें अन्य नाट्यकारों से वह निस्सदेह बढकर है। ज्योतिषी के सबध में वह लिखता है—"वह एक ऐसा व्यक्ति है जो थोडा सा सच कहता है और बहुत सा झूठ।" पक्षियो की अँतडियो से भविष्यवाणी करने को उसने 'निरी मूखता' कहा है। देववाणी और सगुन विद्या की भी उसने निन्दा की है।[१]

ट्रैजेडी की परिभाषा

"ट्रैजेडी एक ऐसे काय का अनुकरण है जो गम्भीर है, स्वत पूण है और जिसका एक निश्चित ग्रायाम है। यह अनुकरण एक ऐसी भाषा मे होता है जो कलात्मक अलकारों के हर प्रकार से सुसज्जित रहती है। कलात्मक अलकारों के ये विविध प्रकार नाटक के विभिन्न भागों मे पाये जाते हैं। यह अनुकरण काय के रूप में प्रस्तुत किया जाता है न कि वणनात्मक रूप मे। यह अनुकरण करुणा और भय के सचार से मनोभावो को उत्तेजित कर उनका उचित विरेचन या सम्माजन करता है। 'अलकृत भाषा' मे यहाँ तात्पय है ऐसी भाषा जिसमें लय सामजस्य और गीत का समावेश हो। 'नाटक के विभिन्न भागो में पाये जाने' का तात्पय है कि कुछ भागों मे केवल पद्य के माध्यम का और कुछ मे गीत का प्रयोग किया जाता है।"[२]

ट्रैजेडी की विशेषता

महाकाव्य, कॉमिडी और गीतिकाव्य, इनमें अरिस्टोटल ने ट्रजेडी को सर्वोच्च कला स्वीकार किया है,इसीलिए 'पोएटिक्स' मे ट्रजेडी का विवेचन विस्तार से देखने मे आता है। अरिस्टोटल ने कविता को सामान्य या सावभौम का चित्रण कहा है, और ट्रैजेडी काव्यकला के इस उच्चतम उद्देश्य को पूण रूप से चरिताथ करती है। जिन पात्रों का इसमें चित्रण रहता है, तथा मनुष्यो के जिन काय व्यापारों और उनके सौभाग्य का हमें परिचय प्राप्त होता है, उन सबमें सामान्य तत्त्व विद्यमान रहता है। दूसरे शब्दों में, ट्रजेडी मनुष्य की सावभौम आवश्यकता को पूण करती है। ट्रैजेडी के सिद्धात के रूप में अरिस्टोटल ने ललित कला का सिद्धांत ही प्रतिष्ठापित किया है।

प्लेटो की मान्यता थी कि काव्य हमारे क्षुद्र आवेगों को उत्तेजित कर उनका संवधन करता है इसलिए वह हानिप्रद है। लेकिन इसके विपरीत अरिस्टोटल ने काव्य (ट्रैजेडी) को इसलिए स्वास्थ्यप्रद कहा है क्योंकि वह आत्मा के लिए हानिकारक करुणा और भय नामक मनोभावों को उत्तेजित कर उनका विरेचन करता है जिससे हमारे मनोभावों में सन्तुलन पैदा हो जाता है। ट्रैजेडी में पहले ऐसी वेदना और व्यथा का दिग्दर्शन कराया जाता है जो हमारी वेदना और व्यथा

१—विल ड्यूराण्ट, वही, पृ० ४००-११, गिल्बर्ट मरी, वही, पृ० २५० २७४।
२—द पोएटिक्स, ६, पृ० २३।

की अपेक्षा कहीं अधिक भयावह होती है। तात्पर्य यह कि पहले हमारे गंभीरतम मनोभावों को ट्रैजेडी द्वारा उत्तेजित किया जाता है जिससे हमारे भाराक्रान्त मस्तिष्क की वेदना के शान्त होने से हमारे चित्त में निर्दोष भावों की अभिव्यक्ति होती है और सन्तुलन अवस्था को प्राप्त कर हम परिष्कृत आनंद का अनुभव करते हैं। हमारे मन में करुणा का संचार तभी होता है जब कोई सच्चरित्र नायक अपनी किसी कमजोरी के कारण किसी दलदल में फँस जाता है। इसी प्रकार भय का संचार उसी दशा में होता है जबकि आपत्तिग्रस्त नायक के साथ हम तादात्म्य संबंध स्थापित करते हैं, क्योंकि तभी हम सहानुभूति के कारण उसके सुख दुख के साथी बन सकते हैं। यहाँ ट्रैजेडी का उद्देश्य केवल करुणा और भय को उत्तेजित कर देना ही नहीं, वरन् मनोभावों को कला के माध्यम से सम्मार्जित करके उन्हें एक सौंदर्यमय आनन्द प्रदान करना है। इसे ही अरिस्टोटल ने 'कथार्सिस' (Catharsis) या विरेचन का सिद्धांत कहा है। विरेचन मूलतः वैद्यकशास्त्र का शब्द है जिसका अर्थ है रेचक औषधि द्वारा शारीरिक विकारों की शुद्धि। इसी प्रकार ट्रैजेडी का उद्देश्य है करुणा और भय के मनोभावों का उद्रेक करके उनका विरेचन करना जिससे उनके उपशम से निर्दोष आनन्द की प्राप्ति हो सके।[1]

ट्रैजेडी और काव्य की अन्य विधाओं में निम्नलिखित भिन्नताएँ ध्यान देने योग्य हैं—

(क) ट्रैजेडी का कार्य गंभीर होता है, जबकि कॉमेडी में गंभीरता नहीं पायी जाती।

(ख) ट्रैजेडी अभिनेय है, महाकाव्य की भाँति इसका पाठ नहीं किया जाता।

(ग) अपने विशिष्ट प्रकार के पद्य और गीतों के प्रयोग के कारण ट्रैजेडी गीतिकाव्य से भिन्न है। ट्रैजेडी के संवादों में पद्य का और सामूहिक गान में गीतों का प्रयोग किया जाता है।[2]

ट्रैजेडी में कार्य-तत्त्व

"ट्रैजेडी एक ऐसे कार्य का अनुकरण है जो समस्त है और स्वतः पूर्ण है और जिसका एक निश्चित आयाम है।" इससे स्पष्ट है कि ट्रैजेडी में कार्य के ऊपर विशेष जोर दिया गया है। यह कार्य तत्त्व दीर्घकालीन होना चाहिए जिससे कि ट्रैजेडी

१—द पोएटिक्स ६ पृ० २३, एस० एच० बूचर, अरिस्टॉटल्स थ्योरी आफ पोएट्री एण्ड फाइन आर्ट, पृ० २४५, २४६ २४९, २५५, ३०२, एटकिन्स, वही, १, पृ० ८५ ८६। विरेचन सिद्धांत के धर्म, नीति और कला संबंधी अर्थों के लिए देखिए डाक्टर नगेंद्र, अरस्तू का काव्यशास्त्र, पृ० ८७-८९।

२—द पोएटिक्स ५ पृ० २१, २३ २४, पृ० ६१, ६३, २६, पृ० १०७, १०९, १११।

व्यवस्थित रूप से विकसित होकर दुखान्त की सीमा तक सहज रूप में पहुँच सके। साथ ही यह तत्त्व संक्षिप्त भी होना चाहिए जिससे कि स्मरण शक्ति को कष्ट पहुँचाये बिना वह कलात्मक रूप धारण कर सके। अरिस्टोटल ने प्रत्येक काय-व्यापार के तीन भाग स्वीकार किये हैं—आदि, मध्य और अन्त। ट्रैजेडी का आरम्भ स्पष्टता से समझ मे आना चाहिए, उसका अन्त सतोषप्रद होना चाहिए और उसका मध्य भाग, जो कुछ पहले प्रतिपादन किया जा चुका है उसका परिणाम होना चाहिए जिससे हम स्वाभाविक रूप से निष्कर्ष पर पहुच सकें। तात्पय यह है कि किसी सुगठित *कथानक का आदि या अन्त अकस्मात् ही प्रस्तुत न किया जाकर व्यवस्थित रूप से* प्रस्तुत किया जाना चाहिए।[1]

ट्रैजेडी के तत्त्व

ट्रैजेडी के छ तत्त्व हैं—कथानक चरित्रचित्रण पदविन्यास (डिक्शन), विचार दृश्य, दर्शन और सगीत। इनमे कथानक, चरित्रचित्रण और विचार का सम्बन्ध वस्तु से होने के कारण ये अनुकरण क विषय हैं पदविन्यास और सगीत का सबध अनुकरण के माध्यम से है, और दृश्यप्रदर्शन का सबध अनुकरण की शैली से है। अरस्तू के समय तक ट्रजेडी के लेखक इन तत्त्वो का उपयोग करते रहे हैं।[2] यहा कथानक चरित्रचित्रण और विचार तत्त्वो पर ही अधिक जोर दिया गया है, (जिससे ललित कला क वास्तविक रूप पर ही प्रकाश पडता है, शेष की चर्चा-मात्र कर दी है।

कथानक

कथानक अथवा घटना योजना को अरिस्टोटल ने सर्वोपरि बताया है। कथानक कोई कहानीमात्र नही है, वह ट्रैजेडी की आत्मा है। ट्रैजेडी व्यक्ति का नही, काय और जीवन का अनुकरण है। जीवन मुख्यत काय व्यापार है, और जीवन का चित्रण होने के कारण काय व्यापार का महत्त्व है। इसलिए ट्रजेडी को व्यक्तियों का अनुकरण न मानकर काय और जीवन का, सुख और दुख का अनुकरण कहा गया है। प्रत्येक मानवीय सुख या दुख का रूप धारण करता है जिस उद्देश्य के लिए हम जीते हैं वह एक प्रकार का काय व्यापार है न कि गुण। यद्यपि व्यक्ति के गुणो का निर्धारण उसके चरित्र से होता है, लेकिन अपने काय और अनुभव के कारण ही वह सुखी या दुखी होता है। अतएव नाटय व्यापार का उद्देश्य चरित्र की अभिव्यक्ति नही चरित्र तो काय व्यापार के अन्तगत आ जाता है। ट्रजेडी कार्य

१—द पोएटिक्स ७, पृ० ३२, एटकिन्स, वही, पृ० ८५ ८७, एस० एच० बूचर, वही, पृ २३५ २७।

२—द पोएटिक्स ६, पृ० २५।

व्यापार के बिना नहीं हो सकती, जबकि चरित्रचित्रण के बिना वह हो सकती है।[1]

कथानक के मुख्य गुणों का उल्लेख करते हुए सर्वप्रथम कार्यान्विति पर जोर दिया गया है। इससे कथानक की घटना निश्चित और बोधगम्य होकर अपना प्रभाव उत्पन्न करती है। आगे चलकर कार्यान्विति के साथ-साथ समय और स्थान की अन्विति भी जोड़ दी गई है विद्वानों का मत है कि 'पोएटिक्स' में इनका उल्लेख नहीं है, अतएव नाटक के लिये इन्हें अनिवार्य नहीं माना गया। यहाँ केवल सामान्य प्रचलित परिपाटी का उल्लेख है। इससे सकलनत्रयी के सिद्धांत का समर्थन नहीं होता। कथानक में दुखान्त प्रभाव उत्पन्न करने के लिए उसमें करुणा और भय की आवश्यकता होती है, जो करुणा और भय नायक के दुख से उत्पन्न होते हैं। ट्रैजेडी के कथानक की कहानी एक दुखान्त कहानी होती है जिसमें दुख आकस्मिक रूप में उपस्थित हो जाता है।[2]

चरित्रचित्रण

कथानक के पश्चात् चरित्रचित्रण आता है। जैसे चित्रकला में चुनाव और बनावट (डिजाइन) के ऊपर आधारित किसी चित्र की व्यवस्थित रूपरेखा हमें आनन्द प्रदान कर सकती है, वैसे अस्तव्यस्त रूप में भरे हुए सुन्दर-से सुन्दर रंग भी हमें आनन्द नहीं दे सकते, यही बात चरित्रचित्रण के संबंध में समझनी चाहिए। इससे हम अभिनयकर्ताओं के गुणों का निश्चय करते हैं। कार्यव्यापार में जो श्रेष्ठतम रूप में अभिव्यक्त होता है, उसे चरित्रचित्रण उद्घाटित करता है। पात्र द्वारा निर्मित कार्य कथानक का प्राण है। इसी के लिए पात्र कार्यशील रहता है और इसीलिए उसका स्थान महत्त्व का है। बिना चरित्रचित्रण के कथानक एक गोरखधंधा बनकर रह जाता है, जैसा कि जासूसी उपन्यासों में हम देखते हैं। चरित्र के संबंध में अरिस्टोटल ने चार बातें बतायी हैं। पहली, चरित्र अच्छा होना चाहिए, किसी नैतिक उद्देश्य को व्यक्त करनेवाला कोई वक्तव्य अथवा कार्यव्यापार चरित्र का व्यंजक होगा, और यदि उद्देश्य अच्छा है तो चरित्र भी अच्छा होगा। दूसरी, औचित्य, अर्थात् पात्रों का सामंजस्य, पात्र अपने तईं सच्चे हों और नाट्यक्रम में उनके चरित्र में कोई परिवर्तन अथवा संशोधन न हो। तीसरी, पात्रों के चरित्र की जीवन के प्रति सचाई। चौथी है चरित्र की एकरूपता। हो सकता है कि अनुकरण का विषय संगत न हो, लेकिन फिर भी असंगति में संगति होना जरूरी है।[3]

१—वही, पृ० २५ २७, एटकिंस, वही, पृ० ८६ ८७, बूचर, वही, पृ० २४३ आदि।

२—द पोएटिक्स, ५ पृ० २३, ८, पृ० ३५, एटकिंस, वही, पृ० ८८ ८९, बूचर, वही, पृ० २७४ आदि।

३—द पोएटिक्स १५, पृ० ५३ ५५, एटकिंस वही, पृ० ९३ ९५, बूचर, वही, पृ० ३४०।

पदविन्यास

पदविन्यास अर्थात् शब्दों के द्वारा अर्थ की अभिव्यक्ति। ट्रैजेडी के भव्य वातावरण के लिए शब्दों का छन्दात्मक विधान उपयुक्त माना गया है। अरिस्टोटल ने ट्रैजेडी की भाषा की विस्तृत विवेचना करते हुए वर्ण, मात्रा, संयोजक शब्द, संज्ञा, क्रिया, विभक्ति और वाक्य की व्याख्या की है। यहाँ उस शैली को उत्कृष्ट बताया गया है जो प्रसन्न हो, किन्तु क्षुद्र न हो और ऐसी शैली वही हो सकती है जिसमें केवल प्रचलित या उपयुक्त शब्दों का प्रयोग हो, लेकिन इस शैली को क्षुद्र कहा गया है। इसके विपरीत, उदात्त और असाधारण शैली में असामान्य (अप्रचलित) शब्दों का प्रयोग रहता है, किन्तु इस प्रकार की शैली को एक प्रहेलिका या इन्द्रजाल ही कहा जायगा। कहने का अभिप्राय यह है कि भाषा प्रसन्न हो किन्तु क्षुद्र न हो, वह उदात्त और समृद्ध हो, किन्तु वागाडम्बर से हीन हो। अन्त में ट्रैजेडी की भाषा में अलंकार गरिमा और औचित्य के समन्वय पर जोर दिया गया है।[१]

विचार-तत्त्व

कथानक और चरित्रचित्रण के बाद विचार तत्त्व को स्थान दिया गया है। विचार का अर्थ है, संभव और उचित के प्रतिपादन की क्षमता। विचार तत्त्व की आवश्यकता तब होती है जब संवाद में कोई युक्ति प्रस्तुत की जाती है या कोई मत व्यक्त किया जाता है। भाषा के द्वारा उत्पन्न होनेवाला प्रत्येक प्रभाव विचार के अन्तर्गत आता है, जैसे—प्रमाण, खंडन मंडन तथा करुणा, भय, क्रोध आदि का उत्तेजन। स्पष्ट है कि यदि कवि का उद्देश्य करुणा, भय, महत्त्व अथवा सम्भाव्यता की भावना जागृत करना हो तो नाटक की घटनाओं के प्रति भी वैसा ही दृष्टिकोण होना चाहिए जैसा कि नाटकों के भाषणों के प्रति। अन्तर इतना ही है कि नाटक को शाब्दिक अभिव्यक्ति के बिना स्वयं ही मुखरित होना चाहिए, जबकि भाषण का अभीष्ट प्रभाव वक्ता की उक्ति द्वारा उत्पन्न होता है।[२] यहाँ विचार का आशय बुद्धि तत्त्व से है जो समस्त बुद्धिवादी चरित्रों में पाया जाता है, जिसके माध्यम से पात्रों के चरित्र की वाह्य अभिव्यक्ति होती है। विचार तत्त्व में वक्ता के बौद्धिक चिन्तन के अन्तर्गत उसके वक्तव्यों के प्रमाण, प्रतिवादी के वक्तव्यों का निरसन तथा जीवन और चरित्र-संबंधी उक्तियों का समावेश होता है। इस तत्त्व पर जोर देने का कारण है कि उन दिनों वक्तृत्व कला का प्रतिष्ठा होने से यूनानी नाटकों के संबंध में राजनीतिक वाद विवाद हुआ करते थे।[३]

१—द पोएटिक्स १९, पृ० ७१, २०, पृ० ७३, ७५, ७७, २१ पृ० ७७, ७९, ८१, २२, पृ० ८१, ८३, ८५, ८७, एटकिन्स, वही पृ० ९६-९८।

२—द पोएटिक्स, १९ पृ० ६९, ७१।

३—बुचर, वही, पृ० ३४१ ४३।

दृश्यप्रदर्शन

ट्रैजेडी का पाँचवा तत्त्व है—दृश्य प्रदर्शन, जिसका आधार रंगमंचीय साधनों का कुशल प्रयोग है। भय और करुणा रंगमंच के साधनों से उद्‌बुद्ध किये जा सकते हैं, किन्तु रचना के आन्तरिक गठन से भी वे उत्पन्न हो सकते हैं, और यही पद्धति अधिक सुन्दर मानी गई है जिससे कवि की श्रेष्ठता का पता लगता है। क्योंकि कथानक का संगठन ऐसा होना चाहिए कि नाटक देखे बिना भी, कहानी सुनकर श्रोता का हृदय भय से कांप जाय और करुणा से आर्द्र हो उठे। लेकिन रंगमंच के साधनों द्वारा यह प्रभाव उत्पन्न करना उतना कलात्मक नहीं है, बाह्य साधनों पर भी यह निर्भर है। तात्पर्य यह है कि अरिस्टोटल ने नाटक को मूलतः काव्य मानकर रंग कौशल से उसके आकर्षण में वृद्धि होना स्वीकार अवश्य किया है, फिर भी उसे अनिवार्य नहीं बताया।[1]

संगीत तत्त्व

ट्रैजेडी का अंतिम तत्त्व है—संगीत। नाटक को आनन्दप्रद बनाने के लिए नाटक का यह अभिन्न अंग होना चाहिए, इसलिये इसे आवश्यक बताया गया है। सामूहिक गान के अंतर्गत स्वतंत्र रूप से उसका प्रयोग किया जाता था।[2] आगे चलकर संगीत तत्त्व की काव्य में विशेष रूप से प्रतिष्ठा हुई।

कॉमेडी की उत्पत्ति

यूनान के लोग पवित्र लिंग को वहन करते हुए एक जुलूस निकालते थे जिसमें डियोनिसिअस की स्तुति में गीत काव्यों का पाठ किया जाता था। इसे यूनानी भाषा में 'कोमोस' (komos) कहा गया है, कोमोस अर्थात् रागरंग में समय यापन करना। यौन संबंधों का दिग्दर्शन इस विधि का एक आवश्यक अंग था, कारण कि इसमें धार्मिक क्रिया की विधि पृथ्वी के विवाह में परिणत होती थी। इसीलिये यूनान के प्राचीन सुखान्त नाटकों में विवाह तथा प्रजनन से कथा का अन्त होता है।[3] ट्रैजडी की भाँति कॉमेडी का उत्सव भी फलदायी देवता तथा मनुष्य, पशु और वन

१—द पोएटिक्स, १४, पृ० ४६, एटकिन्स, वही, पृ० ८६।

२—एटकिन्स, वही, पृ० ८६।

३—विल ड्यूराण्ट, द लाइफ आफ ग्रीस, पृ० २३०, देखिए, द पोएटिक्स ४, पृ० १६, ३, पृ० १३, १५। यहाँ अरिस्टोटल ने लिखा है—'सीमावर्ती' गाँव 'कोमे' नाम से कहे जाते थे, एथेंसवासी इन्हें 'देमोस' कहते थे। कुछ लोगों का मानना है कि कॉमेडी के रचयिताओं का नामकरण 'कोमेजाइन' अर्थात् 'मजा-मौज करना' शब्द पर से नहीं हुआ, वरन् इसलिए हुआ कि ये लोग नगर से बहिष्कृत होकर गाँव गाँव घूमते फिरते थे। डाक्टर नगेन्द्र, अरस्तू का काव्यशास्त्र पृ० १२४।

स्पति—जो प्राचीन यूनान मे किसी न किसी रूप में पूजे जाते थे—के सम्मान म मनाया जाता था।[1]

मीनेण्डर के समय तक यूनान के हास्य नाटका का मूल रूप सगित ही था। शुरू शुरू मे उत्पादनकर्ता शक्तियों का आह्वान करने के लिए बडी धूमधाम से उत्सव मनाया जाता, जिसम बहुत कुछ अशो म यौन सबधों पर कोई अकुश नही रहता था। इस अवसर पर लोग आधे आदमी और आधे बकरे बने हुए देवता की पोशाक पहनते, बकरे जैसी पूँछ लगाते, और लाल चमडे का बृहत् और कृत्रिम लिंग धारण करते। हास्य नाटको का रगमच पर अभिनय करनेवाले अभिनेताओं की यह परम्परागत वेशभूषा बन गयी थी। गाँव गाँव म घूमकर लोग इन प्रहसन नाटकों को खेला करते थे।[2]

कॉमिडी के सबध मे अरिस्टोटल ने कहा है—"कामेडी का कोई इतिहास नही है, क्योंकि आरम्भ म यह गम्भीरतापूर्वक नही ली गयी। बाद में अरखौन (Archon) ने किसी कवि को हास्यमय सामूहिक गान की अनुज्ञा दी, तब तक अभिनेता स्वेच्छा पूर्वक काय किया करते थे। कामेडी के कवियों के आने के बहुत पहले कॉमिडी एक निश्चित रूप ले चुकी थी। लेकिन इसम मुखौटे या प्रस्तावना का समावेश किसने किया, पात्रो की—सख्या में किसने वृद्धि की—इत्यादि विवरण अज्ञात है।'[3]

कॉमेडी नाटककार

दियोनिसिअस के सम्मान मे मनाये जानेवाले उत्सव के समय भिन्न भिन्न नाटककारो की लिखी हुई तीन या चार कॉमिडियाँ खेली जाती और उनके लेखकों को पुरस्कृत किया जाता था।

वक्तृत्व कला की भाँति कामेडी भी सिसिली मे ही फूली फली। ४८४ ई० पू० के आसपास एपीखरमौस (Epicharmus) ने ३५ कामेडियो की रचना की, जिनके केवल कतिपय प्रासगिक उद्धरण ही आजकल उपलब्ध हैं। एपीखरमौस के कुछ समय बाद एथेंस के आरखौन (Archon) का आविर्भाव हुआ जिसने कॉमिडी म पहली बार सामूहिक गान का समावेश किया। क्रतिनस (Cratinus) का नाम प्राचीन कामडी लेखको के साथ लिया जाता है। वह एक अत्यन्त सशक्त लखक था जिसने अपनी रचनाओं मे पेरिक्लीस पर व्यग्य किये थे। अरिस्तोफनीस ने उसे पहाड के एक ऐसे झरने के समान बताया है जो अपने रास्ते मे आनेवाले मकान

१—गिल्बट मरी, वही, पृ० २१०।
२—विल ड्यूराण्ट, वही, पृ० २३१।
३—द पोएटिक्स, ५, पृ० २१।

वृक्ष और मनुष्यों को गिरा कर बहा ले जाता है।[1] अरिस्तोफनीस से पूर्व अनेक नाटककारों ने हास्य नाटकों की रचना की। यूपोलिस (४४६-४११ ई० पू०) और अरिस्तोफनीस ने इधर उधर बिखरे हुए हँसी मजाक को एक कथानक के ताने में बुनकर और लैंगिक तत्त्व को हटाकर, प्राचीन कॉमेडी को एक कलात्मक रूप दिया।[2] अरिस्तोफनीस के सुखान्त नाटकों का उल्लेख किया जा चुका है। उक्त नाटकों के अलावा, उसने 'द बैबीलोनियन्स', 'द नाइट्स', 'द वास्प्स', और 'द पीस' आदि नाटक लिखे। 'द बैबीलोनियन्स' नाटक में एथेंस के क्लेओन नामक सेनापति और उसकी रीति नीति पर खूब व्यग्य किया गया है। इस पर लेखक के ऊपर राजद्रोह का मुकदमा चला और उसे जुर्माना देना पडा। 'द नाइट्स' मे राजनीतिक कारणों से जन नेता टैनर का जब कोई पाट करने को तैयार न हुआ तो अरिस्तोफनीस को यह पाट स्वय खेलना पडा। 'द वास्प' मे एथेंस के न्यायालयो में मुकदमो के फैसले करनेवाले न्यायाधीशो पर करारा व्यग्य है।[3]

कॉमेडी में हीनतर चित्रण

ट्रैजेडी का उद्देश्य भय और करुणा को उद्बुद्ध करना है, जबकि कॉमेडी से हास्य व्यक्त होता है। कॉमेडी यथार्थ जीवन की अपेक्षा मानव का हीनतर चित्रण करती है, ट्रैजेडी के चित्रण को भव्यतर कहा गया है। ट्रजेडी की विषयवस्तु और तदनुसार उसके पात्र गम्भीर एव उदात्त होते हैं, जबकि कॉमेडी की विषयवस्तु एव पात्र क्षुद्र और निकृष्ट कोटि के होते हैं। यहाँ निकृष्ट का अर्थ बुरा या दुष्ट नहीं है, उसका अर्थ है कोई ऐसी गलती या कुरूपता जो दुख या कष्ट नही पहुँचाती। उदाहरण के लिए कामेडी मे प्रयुक्त मुखौटा कुरूप और भद्दा होने पर भी क्लेश पैदा नहीं करता। कॉमेडी अपने मूलभाव मे हास्य उत्पन्न करती है, दुख नही। अरिस्टोटल के अनुसार, वह काय हास्योत्पादक माना जाता है जो मनुष्य की कोई निर्दोष गलती या भूल हो अथवा कोई निर्दोष शारीरिक या नैतिक त्रुटि हो। दूसरे शब्दो मे, पात्रो की शारीरिक कुरूपता अथवा हास्यास्पद काय द्वारा दुखविहीन हास्य का प्रसार, कॉमेडी के सिद्धात की विशेषता है।[4] जीवन की असगतियाँ देखकर हमे जीवन मे दोष दिखायी देने लगते हैं। ये दोष स्वाभाविक नही होते इसलिए इनके प्रति घृणा का

१—विल ड्यूराण्ट, वही, पृ० ४२०, गिलबर्ट मरी, वही, प० २७५ ७७।

२—गिलबर्ट मरी, वही, पृ० २१२।

३—विल ड्यूराण्ट, वही, पृ० ४२० आदि, गिलबर्ट मरी, वही, पृ० २८० आदि।

४—द पोएटिक्स २, पृ० १३, ५, पृ० २१, एटकिन्स वही, पृ० १०१ १०२, बूचर, वही, पृ० ३७२ ७३।

भाव पदा होने की बजाय, हास्य उत्पन्न होता है। अरिस्टोटल ने कॉमेडी की विस्तृत विवेचना की थी, लेकिन दुर्भाग्य से वह अश खडित हो गया है।

महाकाव्य

ट्रेजेडी के बाद महाकाव्य का विवेचन किया गया है। यूनान के आदिकवि होमर के 'इलियड' और 'ओडिसी' नामक महाकाव्यो का उल्लेख किया जा चुका है। ये काव्य यूनान के पूर्वी भाग मे गाये जाते थे। इनमे काव्य गायन करनेवाले चारणो का उल्लेख है, जिससे पता लगता है कि इस प्रकार के अन्य काव्य भी रहे होगे। कथानक, चरित्रचित्रण, विचार और पदविन्यास—ये महाकाव्य के मूल तत्त्व हैं। महाकाव्य एक काव्यानुकृति है जो अपने रूप मे वर्णनात्मक है और जिसमे एक छद का प्रयोग किया जाता है। इसलिए जहाँ तक कथानक या घटना योजना का सबध है वह ट्रैजेडी के नाट्य सिद्धातो के अनुसार ही होनी चाहिए। इसमे भी एक ही काय होता है जो पूर्ण और अखण्ड होता है, तथा उसका आदि, मध्य और अत होता है। महाकाव्य किसी ऐतिहासिक रचना से इस अर्थ म भिन्न है कि इतिहास आवश्यक रूप से किसी एक काय का नही, बल्कि एक निश्चित अवधि को, और इस निश्चित अवधि म जो एक अथवा बहुत से मनुष्यो के जीवन म घटित हुआ, उसे प्रस्तुत करता है।[1]

महाकाव्य और ट्रैजेडी

तत्कालीन काव्यशास्त्र के पडित ट्रैजेडी की तुलना मे महाकाव्य को श्रेष्ठ मानते थे लेकिन अरिस्टोटल ने उनका विरोध करते हुए कला और प्रभाव की दृष्टि से ट्रैजेडी को श्रेष्ठ बताया। जहाँ तक वीरतापूर्ण कार्यों के प्रदशन का प्रश्न है, महाकाव्य और ट्रजेडी समान हैं। अतर दोनों म यही है कि महाकाव्य म केवल एक छद रहता है और वह वर्णनात्मक होता है। दोनो मे विस्तार भेद भी है। ट्रजेडी सूय का एक परिक्रमा अथवा इससे भी अधिक समय तक चलती है,[2] जबकि महाकाव्य म समय का कोई बधन नही, यद्यपि शुरू मे महाकाव्य की भाँति ट्रजेडी मे भी समय का बधन नही था। कुछ तत्त्व महाकाव्य और ट्रैजेडी में समान हैं कुछ केवल ट्रजेडी मे ही पाये जाते हैं। अत जो ट्रजेडी के गुण दोष की विवेचना कर सकता है वह महाकाव्य की भी विवेचना कर सकता है, क्योंकि महाकाव्य के सभी तत्त्व ट्रैजेडी में रहते हैं यद्यपि ट्रैजेडी के समस्त तत्त्व महाकाव्य में नहीं पाये जाते।[3] महाकाव्य के भी उतने ही प्रकार होने चाहिए जितने कि ट्रैजेडी के। ट्रजेडी के समान महाकाव्य

१—द पोएटिक्स, २३, पृ० ८६, ६१।

२—यह अवधि २४ घटे या अधिक से अधिक ३० घटे की मानी गई है, कोई १२ घटे मानते हैं। इससे समय की अन्विति का समथन नहीं होता।

३—वही ५, पृ० २१ २२।

भी सरल, जटिल, नैतिक और कारुणिक होता है। संगीत और दृश्यप्रदर्शन को छोड़कर दोनों के तत्त्व एक जैसे हैं। विचार तत्त्व और पदविन्यास कलात्मक होने चाहिए। इन तत्त्वों की दृष्टि से अरिस्टोटल ने होमर को सबसे प्राचीन और आदर्श कवि माना है। उसके महाकाव्य 'इलियड' में सरलता और कारुणिकता तथा 'ओडिसी' में जटिलता और नैतिकता के गुण पाये जाते हैं। विचार तत्त्व और पद-विन्यास भी इनका श्रेष्ठ है।

महाकाव्य और ट्रैजेडी में कथा के आकार और छन्द का भेद होता है। जहाँ तक आकार या विस्तार का प्रश्न है इसकी सीमा पहले ही निर्धारित की जा चुकी है—उसका आदि और अन्त ऐसा होना चाहिए जो एक ही परिधि में आ सके।

महाकाव्य में अपनी सीमाओं का विस्तार करने की क्षमता होती है, जबकि ट्रैजेडी में हम एक ही समय में प्रवाहित कार्य की अनेक धाराओं का अनुकरण नहीं कर सकते, हमें अपने आपको मंच पर होनेवाले कार्य तथा अभिनेताओं द्वारा की हुई भूमिका तक ही सीमित रखना पड़ता है। किन्तु महाकाव्य के वर्णनात्मक होने के कारण, उसमें एक साथ होनेवाली घटनाएँ प्रस्तुत की जा सकती हैं, तथा ये घटनाएँ यदि विषयसंगत हों तो काव्य में घनत्व और गरिमा आ जाती है। महाकाव्य से प्रभाव की गरिमा में वृद्धि होती है, उससे श्रोता का ध्यान कथा की ओर आकृष्ट हो जाता है और विविध आख्यानों के कारण कथा में सरसता आती है। घटनाएँ यदि एकरस हों तो उनसे ऊब पैदा होती है और रंगमंच पर ट्रैजेडी असफल हो जाती है।

जहाँ तक छन्द का प्रश्न है वीर छन्द अनुभव की कसौटी पर खरा उतर चुका है। इस छन्द में दुष्प्राप्य एवं लाक्षणिक शब्द बड़ी सरलतापूर्वक समाविष्ट हो जाते हैं। और इस दृष्टि से अनुकरण का वर्णनात्मक रूप अपनी अलग विशिष्टता रखता है।

यहाँ होमर के संबंध में चर्चा करते हुए अरिस्टोटल ने लिखा है—"वही एक ऐसा कवि है जो यह ठीक ठीक जानता है कि कवि को अनुकरण में कितना भाग लेना चाहिए। कवि को स्वयं कम से कम बोलना चाहिए क्योंकि इससे वह नकलची नहीं बन जाता। दूसरे कवि बराबर सामने बने रहते हैं और वे बहुत कम या कभी कभी ही अनुकरण करते हैं। होमर प्रस्तावना के रूप में कुछ कहकर तुरन्त ही किसी स्त्री, पुरुष या अन्य किसी पात्र को मंच पर ले आता है। उनमें से किसी में भी चरित्र का अभाव नहीं होता, किन्तु प्रत्येक का अपना अलग व्यक्तित्व रहता है।'

ट्रैजेडी में विस्मय तत्त्व अपेक्षित है। विस्मय का मुख्य आधार असंगत होता है, और महाकाव्य में इसके लिए अधिक अवकाश रहता है क्योंकि अभिनय करनेवाला

व्यक्ति वहाँ दिखाई नही देता। जो विस्मयकारी है, वह आह्लाद उत्पन्न करता है। उसका प्रमाण यह है कि प्रत्येक व्यक्ति कुछ बढा चढाकर ही अपनी कहानी कहता है क्योंकि वह जानता है कि श्रोता इसे पसन्द करते हैं। इस दृष्टि से, कुशलतापूर्वक असत्य भाषण की कला को दूसरे कवियों को सिखाने का श्रेय होमर को ही दिया गया है।[1] इससे अविश्वसनीय वस्तुएँ संभावित और असभव स्वाभाविक प्रतीत होने लगती हैं।

अरिस्टोटल की काव्यशास्त्र को देन

अरिस्टोटल को पाश्चात्य काव्यशास्त्र का आद्य आचार्य कहा गया है। सर्वप्रथम उसने ही काव्य और कला को सुनिश्चित और क्रमबद्ध व्याख्या प्रस्तुत की। उसने काव्यकला को नैतिकता और राजनीति के बंधन से अलग कर उसमे सौंदर्य की प्रतिष्ठा कर उसे गौरव प्रदान किया। प्लेटो ने कला को प्रकृति का अनुकरण बताकर कलामात्र की निंदा की थी, लेकिन अरिस्टोटल ने अनुकरण का अर्थ पुनसृजन करके कला की व्याख्या ही बदल डाली। आगे चलकर 'कला प्रकृति की अनुकृति है' इसको लेकर यूरोप के काव्यशास्त्रियो में बडा वाद विवाद चला। १७ १८ वी शताब्दी के नव्यशास्त्रवादियो ने प्रकृति का अर्थ किया—नीति नियमों से बद्ध जीवन और अनुकरण का अर्थ किया--जैसा का तैसा प्रत्यंकन। अरिस्टोटल ने काव्य सत्य को वास्तविक सत्य से भिन्न बताकर काव्यकला की प्रतिष्ठा की। उसका कहना था कि कितनी ही बातें ऐसी हैं जो हमारे अनुभव के बाह्य हैं—जो कभी घटित नही हुई और न उनके घटित होने की सम्भावना है, ऐसी बातें, काव्यत्व की दृष्टि से रोजमर्रा के जीवन में घटित होनेवाली बातो की अपेक्षा अधिक सत्य हैं। दूसरे शब्दो में, काव्यकला को सार्वभौम—श्रेष्ठतम सत्य—की ठोस अभिव्यक्ति बताया गया। काव्यकला में उत्कृष्टता लाने के लिए घोषित किया गया कि कौशलपूर्ण असत्य भाषण की कला में कवि को निष्णात होना चाहिए--कल्पित कथा की कला से उसे अभिन्न होना चाहिए। अरिस्टोटल का दूसरा महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है—विरेचन शुद्धि। इसके द्वारा काव्यकला की उदात्तता प्रतिपादित करते हुए सौंदर्य-सिद्धान्त की जो प्रतिष्ठा की गयी, वह आलोचना के क्षेत्र में अनुपम है।

'पोएटिक्स' अरिस्टोटल की व्यवस्थित रचना नही है, अध्यापन करते समय उसने जो नोट्स तैयार किये थे उन्हीं के आधार से उसके शिष्यो द्वारा इसका

१—"पोएटिक्स २४, पृ ९१,९३,९५, एटकिन्स, वही, पृ० ९९ १०१, बूचर, पृ० २८५ आदि। ध्यान रखने की बात है कि प्लेटो ने 'रिपब्लिक' (२, पृ० १७५) में होमर और हेसिओड आदि कवियों की इसलिए गर्हणा की है कि वे असत्य भाषण करते हैं, और यह भी ठीक तरह नहीं करते।

सम्पादन किया गया है। इस पुस्तक की जो पाण्डुलिपि मिली है, वह अखंडित न होकर बीच बीच में त्रुटित है। लेखक के अनेक विचारों का यहां पूर्णतया प्रतिपादन नहीं हो सका है जिससे उनमें विशृंखलता और अस्पष्टता आ गई है। लेकिन इस सबके बावजूद, मानना होगा कि साहित्यिक समीक्षा के क्षेत्र में इस पुस्तक का स्थान सर्वप्रथम है। अरिस्टोटल ने निश्चय ही अपने विश्लेषणात्मक चिंतन द्वारा भावी पीढ़ी को आलोचना शक्ति प्रदान कर सोचने समझने के लिए बाध्य किया। वस्तुनिष्ठ निर्णयात्मक समीक्षापद्धति की नींव डालने का श्रेय अरिस्टोटल को ही दिया जायगा। कार्ल मार्क्स ने उसे "प्राचीनकाल का महानतम विचारक" कहा है। लेनिन ने उसके 'मैटाफिज़िक्स' की प्रशंसा की थी।

लाजाइनस (लौंगिनुस २१३-२७३ ई०)

यूनानी काव्यशास्त्र मे अरिस्टोटल के बाद लाजाइनस का नाम उल्लेखनीय है जिसने पाश्चात्य समीक्षा को विशेष रूप से प्रभावित किया। 'आन द सब्लाइम' (पेरि हुप्सुस = Peri Hupsous = काव्य में उदात्त तत्त्व) उसकी सुप्रसिद्ध रचना है। अरस्तू के 'पोइटिक्स' और होरेस के 'आर्स पोएतिक' के बाद पाश्चात्य समीक्षा शास्त्र में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस ग्रन्थ की प्राचीनतम और सर्वश्रेष्ठ पाण्डु-लिपि ईसवी सन् की दसवीं शताब्दी की मिलती है जिसके आधार से आगे चलकर अन्य पाण्डुलिपियाँ तैयार की गयीं। दुर्भाग्य से यह पाण्डुलिपि अपूर्ण है। इसका दो तिहाई भाग नष्ट हो गया है तथा बीच बीच में से त्रुटित होने के कारण इसमें सामंजस्य का अभाव प्रतीत होता है।[१]

तत्कालीन साहित्यकारों की शैली

उन दिनों वक्ताओं और साहित्यकारों को अभिव्यक्ति में नवीनता लाने की धुन सवार थी। इसलिए वे लोग आडम्बरपूर्ण गौरवहीन निष्प्राण वाक्य विन्यासमय शैली को श्रेष्ठ मानने लगे थे। अवसर न होने पर भी वे आवेशपूर्ण शैली का प्रयोग करते थे। निरर्थक ही वे आत्मश्लाघा करते, कभी आवश्यकता से अधिक संक्षिप्त शैली का और कभी अति विस्तृत शैली का अनुकरण करते थे। इन शैलियों में ऐसे कुत्सित और ग्राम्य शब्दों का प्रयोग किया जाता जिनमें कोई गौरव शेष नहीं रह गया था।[२] ऐसी हालत में ईसवी सन् की तीसरी शताब्दी में अपनी रचनाओं में नवीनता और अभिव्यक्ति में उत्कृष्टता लाने के हेतु, समीक्षकों को अंधानुकरण करनेवाले साहित्यकारों की आलोचना करनी पड़ी।

काव्य की आत्मा उदात्तता

उदात्तता को काव्य की आत्मा स्वीकार करते हुए लाजाइनस ने लिखा है—'अभिव्यंजना की श्रेष्ठता और विशिष्टता का नाम उदात्तता है, जिसके कारण

१—सन् १६५२ में इसका पहला अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित हुआ। ब्वालो ने अपने फ्रेंच अनुवाद (१६७४) द्वारा इस महत्त्वपूर्ण रचना का परिचय संसार को कराया जिससे यह अरिस्टोटल, होरेस और क्विण्टीलियन की रचनाओं के समकक्ष स्वीकार की जाने लगी।

२—ऑन द सब्लाइम, डब्ल्यू० हैमिल्टन फैइ, १९५३, ५, पृ० १२७, ३, पृ० १३१, ४, पृ० १३३, ४२, पृ० २४१।

महानतम कवि एव इतिहासवेत्ता गौरव प्राप्त कर अमर यश के भागी बने हैं। श्रोताओ मे केवल प्रत्यय अथवा आनन्द प्रदान करना ही उदात्त तत्त्व का काय नहीं, अपितु किसी मत्र शक्ति की भाँति उन्हें अनिवाय रूप से अपने आपमे से ऊँचे उठाकर आन दातिरेक की अवस्था को पहुँचा देना है। निस्सन्देह जो हममें आश्चय की भावना उत्पन्न करता है, वह हमे मत्रमुग्ध कर देता है और यह भाव हमेशा, केवल प्रत्यय और आन द पैदा करनेवाले भाव से कही बढकर होता है। क्योकि हमारे विश्वास प्राय हमारे अपन नियन्त्रण मे रहते हैं जबकि उदात्त तत्त्व के प्रभाव में अपरिमित शक्ति होती है और श्रोताओ के मन को वह मुग्ध कर देती है। उचित समय मे प्रयुक्त उदात्त तत्त्व की झलक विद्युत् की चमक की भाँति प्रत्येक वस्तु को अपने सम्मुख छितरा देती है तथा एक ही प्रहार मे वक्ता की समस्त शक्ति को खोलकर रख देती है।"[1]

क्या औदात्य कला है ?

कुछ विद्वानों का कथन है कि जो औदात्य को कला के नियमो मे अन्तगत लाने का प्रयत्न करते हैं, वे गलती करते हैं। प्रतिभा या उदात्त प्रवृत्ति प्राकृतिक है, शिक्षा के द्वारा इसकी प्राप्ति नही होती, प्रकृति ही एकमात्र ऐसी कला है जिसकी परिधि मे यह बाधी जा सकती है। लेकिन लांजाइनस इस मत से सहमत नही है। उसका कहना है कि यह ठीक है कि जहाँ तक उच्च भावावेशो का अभिव्यक्ति का प्रश्न है, वहाँ प्राय प्रकृति के नियमों का प्रश्न नही उठता, लेकिन फिर भी प्रकृति की प्रक्रिया अटकलपच्चू और अव्यवस्थित नही रहती। लांजाइनस ने लिखा है कि यदि औदात्य को किसी नियम और सिद्धान्त के बिना अनियमित दशा मे छोड दिया जाय तो यह अधिक खतरनाक है, क्योकि जैसे औदात्य के लिए उत्तेजन आवश्यक है, वैसे ही अवरोध भी। लांजाइनस के अनुसार कला की यही विशेषता है। वस्तुत यहाँ प्रकृति और कला दोनो को ही महत्त्वपूण स्वीकार किया गया है। जहाँ तक अभिव्यजना का प्रश्न है प्रकृति स्वायत्त रूप से प्रयत्नशील रहती है, यद्यपि उसमें भी कोई क्रम अथवा व्यवस्था है ही, प्रकृति स्वय एक व्यवस्था का सजन करती है जिसे कला केवल प्रकाश में लाकर छोड देती है। हम कह सकते हैं कि साहित्य में कुछ प्रभाव जो केवल प्राकृतिक रूप में उत्पन्न होते हैं, उन्हें कला द्वारा ही सीखा जा सकता है।[2]

औदात्य के स्रोत

लांजाइनस ने उदात्त तत्त्व के पाँच स्रोत माने हैं—(क) विचारो की भव्यता, (ख) अनुप्राणित भावों की उत्कटता (ग) अलकारों की योजना, (घ) उदात्त शब्द-

१—वही, १, पृ० १२५।
२—वही, २ पृ० १२७।

शिल्प, और (ङ) गरिमामय वाक्यविन्यास। इन पाँचों का मूल आधार है अभिव्यंजना की स्वाभाविक शक्ति। पहले दो स्रोत कवि की आत्मरक्षा से सम्बन्धित हैं, जो आत्मा की महत्ता के ही अंश हैं और जो नैसर्गिक होते हैं। शेष तीनों स्रोत कला पक्ष की निष्पत्ति हैं।

पहले हम विचारों की भव्यता को लें। लांजाइनस के अनुसार, उन्नत और विस्मयकारक विचारों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति उत्कृष्ट शैली में ही सम्भव है। इस प्रकार के विचारों की उदात्तता अर्जित गुण न होकर प्रकृति का देन होती है।

लांजाइनस ने लिखा है—"महान् उक्ति आत्मा की महत्ता का प्रतिध्वनि होती है।" यदि आत्मा की यह महत्ता नैसर्गिक न हो तो उत्कृष्ट विचारों द्वारा उसे प्राप्त किया जा सकता है। यह उत्कृष्टता तुच्छ और हेय विचारों द्वारा पैदा नहीं की जा सकती। मुख्यतया उच्च विचारों द्वारा अनुप्राणित यह उदात्त शैली, चाहे वह नैसर्गिक हो अथवा अर्जित, होमर आदि महान् साहित्यकारों की कृतियों के अध्ययन से प्राप्त की जा सकती है। स्पष्ट है अनुकरण का अर्थ यहाँ हूबहू नकल करना नहीं है।[1]

होरेस का मानना था कि नूतन सृजन के लिए प्राचीन पद्धतियों को आत्मसात् कर लेना चाहिए। लेकिन लांजाइनस कहता है कि हम भूतकाल के महान् इतिहासवेत्ता और कवियों की नकल करने के बजाय उनकी आत्मा ग्रहण करनी चाहिए। लांजाइनस ने यहाँ पुरोहिताइन का उदाहरण दिया है। जैसे कोई पुरोहिताइन तिपाई के पास पहुँचते ही दिव्य शक्ति से सम्पन्न होकर देववाणी बोलने लगती है, इसी प्रकार प्राचीन लेखकों की नैसर्गिक प्रतिभा से प्रभावित होकर उनके प्रशंसकों का मन उदात्त हो जाता है। साहित्यिक चोरी यह नहीं है, यह ऐसी ही बात है जैसे हम साँचे में ढली हुई किसी आकृति अथवा कलाकृति को देखकर उससे प्रभावित हो उठें। इस प्रकार के अनुकरण को लांजाइनस ने प्रबुद्धता कहा है जो हमारे मस्तिष्क को किसी रहस्यात्मक ढंग से आदर्श के एक ऊँचे स्तर तक पहुँचा देती है। समीक्षा के क्षेत्र में लांजाइनस की यह एक बड़ी देन है।[2]

उदात्त तत्त्व का दूसरा स्रोत है अनुप्राणित भावों की उत्कटता। इस सम्बन्ध में केवल इतना ही कहा गया है कि वास्तविक भावावेश ही हमें ऊपर उठा सकते हैं। इस सम्बन्ध में लांजाइनस अलग से कोई पुस्तक लिखना चाहता था[3] पता नहीं वह लिख सका या नहीं।

१—वही, ६, पृ० १४३ १४५, एटकिन्स, वही, भाग २ पृ० २२२।

२—आन द सब्लाइम १३ पृ० १६७, १६६, एटकिन्स वही, पृ० २२२–२३।

३—ऑन द सब्लाइम ४४, पृ० २५३।

तीसरा स्रोत है अलकारों की योजना। अलकारों का यदि उचित प्रयोग किया जाय तो वे औदात्य की प्रतिष्ठा में सहायक होते हैं। अलकार स्वाभाविक रूप से उदात्त के सहायक होते हैं और वे स्वय उससे आश्चर्यजनक पोषण प्राप्त करते हैं। अलकार अपने उत्कृष्ट रूप में तभी उपस्थित होता है जब उसमें यह तथ्य छिपा रहता है कि वह अलकार है। अलकारों का अनियन्त्रित प्रयोग अनिवार्य रूप से सन्देह जागृत करता है लेकिन उदात्तता एव भावावेशों पर उसका प्रभाव सन्देह का प्रतिरोध करता है। जब कला कौशलपूर्वक प्रयुक्त की जाती है तो वह अपने सौंदर्य और चमत्कार के विन्यास में खो जाती है, और ऐसी हालत मे सन्देह के लिए कोई गुंजायश नही रहती। यहाँ उदात्त तत्त्व द्वारा अलकार योजना इसी प्रकार विलीन कर ली जाती है जैसे सूर्य के प्रकाश में धुँधला प्रकाश। ऐसी हालत में जिस काव्य में औदात्य है और जो हमें आदोलित करता है, वह हमारे हृदय के समीप है, तथा ऐसी रचना कुछ स्वाभाविक आत्मीयता और कुछ अपनी प्रभावोत्पादकता की तीव्रता के कारण, अलकारों के पूर्व ही हमारा ध्यान आकर्षित कर लेती है। अलकार-योजना स्वाभाविक अनुक्रम से शब्दों और विचारों को क्रमबद्ध करती है और उन पर मनोभावों की उत्कटता की सच्ची मोहर लगा देती है।[1]

लांजाइनस का कथन है कि अलकारशास्त्र के पण्डितों ने केवल यान्त्रिक प्रयोग के लिए ही अलकारों का आविष्कार नही किया, वरन् शैली में चमत्कार उत्पन्न करने के हेतु इनका प्रयोग किया गया है। ये अलकार कवि के वास्तविक मनोभावों मे निहित होते हैं, मानव के कलात्मक बोध के प्रतीक हैं, अतएव ये मानव स्वभाव की व्याख्या करने में समर्थ हैं। लेकिन अलकारों का प्रयोग अत्यन्त सयम और विवेक पूर्वक करना चाहिए। अलकारों का प्रयोग करते समय स्थान, रीति, परिस्थितियाँ और अभिप्राय का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है।[2]

चौथा स्रोत है उदात्त शब्द शिल्प। यह सर्वविदित है कि उचित और उत्कृष्ट शब्दों का प्रयोग श्रोताओं के मन को किस प्रकार मुग्ध कर देता है, तथा वक्ता और इतिहासवेत्ता इस प्रकार के शब्दों को किस प्रकार अपना सर्वोपरि उद्देश्य बनाते हैं। इससे शैली के गौरव, सौंदर्य, उत्कृष्ट रसास्वादन, महत्त्व, सामर्थ्य, शक्ति और मोहकता में वृद्धि हो जाती है, मानो मृत प्राणियों में जीवन का सचार हो उठा हो। सच पूछा जाय तो सौंदर्यपूर्ण शब्द विचारों की वास्तविक आभा होते हैं। लांजाइनस ने बड़े बड़े शानदार शब्दों के अधाधुध प्रयोगों का विरोध किया है, यह ऐसी ही बात है जैसे किसी छोटे से बच्चे के मुँह पर किसी पुरुष का भयकर मुखौटा बाँध

१—वही, १६, पृ० १७६, १७, पृ० १८५, १८७, २२ पृ० १९३।
२—एटकिन्स वही पृ० २२५, २२६।

दिया जाय। लाजाइनस का कथन है कि कला म हम शुद्धता की प्रशसा करते हैं और प्रकृति मे भव्यता की, तथा प्रकृति ने ही मनुष्य को शब्दो का प्रयोग करने की सामर्थ्य प्रदान की है।[1]

उदात्त तत्त्व का पाँचवाँ स्रोत है गरिमामय वाक्यविन्यास। सामजस्यपूर्ण शब्द वि यास केवल सुख और आन द का ही सहज कारण नही, वरन् औदात्य और भावावेश का भी एक आश्चयजनक साधन है। काव्यरचना को लाजाइनस ने शब्दों की *सामजस्यपूर्ण घटना कहा है—और वे शब्द भी वैस जो मनुष्य स्वभाव के अग हैं* और केवल मनुष्य के कानों तक ही न पहुँचकर उमकी आत्मा को स्पश करते हैं। यह काव्यरचना शब्दों, विचारों, घटनाओ, सौंदय, सगीतमाधुय आदि—जो हमारे साथ ज मे हैं और पोषित हुए हैं—को उद्वेलित करती है। फिर अपने विविध स्वरों को मिश्रित करके यह रचना निकट रहनेवाले व्यक्ति क हृदय में वक्ता के वास्तविक मनोभावों को उतार देती है जिससे कि समस्त श्रोतागण उसकी अनुभूति का रसास्वादन करते हैं। अपनी शब्दावलि के माध्यम से यह रचना एक उदात्त भावना प्रस्तुत कर देती है। इन सब बातो से शब्दों का सामजस्यपूर्ण वि यास हमे मत्रमुग्ध कर देता है तथा हमारे विचारों को सदा, जो भव्य है, शानदार है और उदात्त है उसकी ओर उ मुख करता है जिससे कि हमारा चित्त पूर्णतया अभिभूत हो जाता है। लेकिन शब्दों का यह सामजस्य सन्तुलित होना चाहिए। यदि यह अशक्त और खडित है तो इससे रचना के किसी अश का गौरव बहुत घट जाना सम्भव है। इसी प्रकार आवश्यकता से अधिक सामजस्य भी कायकारी नहीं होता। ऐसा सामजस्य ऊपर ऊपर से सु दर अवश्य लगता है लेकिन उसमें गभीरता नही रहती, वह बनावटी हो जाता है, क्योंकि वस्तुत सामजस्य का रूप ही हमारा ध्यान आकर्षित करता है, केवल शब्दार्थ नही।[2]

साहित्य की अवनति

प्रश्न होता है कि जब वातावरण विशेष रूप स प्रत्ययकारी और अनुकूल [3] और साहित्यिक सौंदय मे समद्ध है, फिर भी उदात्त और अलौकिक साहित्य का निर्माण क्यों नहीं होता ? क्या उसके उत्तर में कहा जा सकता है कि प्रजातत्र युग प्रतिभा का पोषक होता है तथा प्रजातत्र के युग में ही साहित्य फूलता फलता है और प्रजातत्र की अवनति होने पर साहित्य की भी अवनति हो जाती है ? इसके समर्थन में कहा जा सकता है कि निश्चय ही प्रजातत्र युग में व्यक्तिगत स्वातत्र्य के कारण, कल्पना को स्थान मिलता है प्रजा का मस्तिष्क उच्च अभिलाषाओं से भर जाता है

१—ऑन द सब्लाइम, ३०, पृ० २०६, ३६ पृ० २२६।
२—वही ३६ पृ० २३३ ४।

ग्रौर उसकी मार्वजनिक प्रवत्तियो मे वद्धि होने लगती है, जिससे पारस्परिक प्रतियोगिता के कारण साहित्य की उन्नति होती है। लेकिन राजकीय शासन के नीचे हमारी स्वतन्त्रता का नाश हो जाता है। हमे बचपन से ही दासता की शिक्षा दी जाती है ग्रौर दासता के हम ग्रभ्यस्त हो जाते हैं ग्रतएव हम साहित्य के रस का ग्रास्वादन नही कर सकते—हमारी प्रतिभा चाटुकारिता तक ही सीमित रह जाती है।[1] ध्यान देने की बात है कि लांजाइनस साहित्य की ग्रवनति मे राजनैतिक कारणो की ग्रपेक्षा नैतिक कारणो को ग्रधिक महत्त्वपूर्ण बताता है। इसीलिए उसने धन-लोलुपता ऐश्वय ग्रभिलाषा, धृष्टता, ग्रनुशासनहीनता ग्रौर निलज्जता की निन्दा की है। इसस ग्रादश के प्रति हमारी भावना न रहने के कारण मनुष्य की ग्रात्मा को क्षति पहुँची है।[2] लांजाइनस के ग्रनुसार, लोगो पर ग्रकुश रखनेवाली प्रबुद्ध निरकुशता ही इस ग्रवनति से हमारी रक्षा कर सकती है।

कवि का व्यक्तित्व

कहा जा चुका है, लाजाइनस के ग्रनुसार उक्ति की महानता कवि के व्यक्तित्व में निहित है। यह ग्रात्मा का—मनुष्य का सम्पूर्ण प्रकृति का—फल है ग्रौर इसलिए इसमे कल्पना तथा वास्तविक भावावेश की ग्रावश्यकता रहती है जिससे कि य दोनों श्रोता ग्रथवा पाठक तक पहुच सकें। वास्तव में 'जो हृदय से निस्सृत होता है, वही हृदय तक पहुँचता है'—इस सिद्धान्त के ग्राधार पर लाजाइनस ने ग्रपनी शैली सम्बन्धी मान्यता को प्रतिष्ठित किया है। लाजाइनस ने वक्ता या लेखक के लिए कला के ज्ञान की ग्रावश्यकता बताया है जिससे कि वह ग्रपनी शक्ति का जागरूकता के साथ बुद्धिपूर्वक उपयोग कर सके। ग्रलकारो का प्रयोग करते समय कवि को ग्रौचित्य ग्रौर मनोवैज्ञानिक कौशल का ध्यान रखना ग्रावश्यक है।[3]

साहित्य की उत्कृष्टता का मानदण्ड

लेकिन प्रश्न होता है कि साहित्य की उदात्तता का स्पष्ट ज्ञान ग्रौर उसका सही मूल्याकन कैसे किया जाय ? यह कोई ग्रासान काम नहीं। साहित्य के मूल्याकन को परिपक्व ग्रनुभूति की चरम परिणति कहा गया है।[4] जैसा कहा जा चुका है, सवप्रथम

१—लांजाइनस के ग्रनुसार, किसी दास मे ग्रन्य गुणों की क्षमता रह सकती है, लेकिन वह कभी दास नहीं हो सकता। प्राचीन काल मे स्वतन्त्र भाषण का ग्रभाव दासता का सबसे बडा दुगुण समझा जाता था।

२—वही ४४, पृ० २४७, २४६ २५१।

३—एटकिंस, वही, पृ० २३४।

४—ग्रान द सब्लाइम ६ पृ० १३७।

साहित्य में कल्पना और भावावेश का होना आवश्यक है जिससे कि पाठक की आत्मा फड़क उठे, तथा वह आनन्द और गर्व का अनुभव करने लग जाय—मानो ये भाव स्वयं पाठक के हृदय से पैदा हो रहे हैं। फिर दूसरा प्रश्न है साहित्य को स्थायित्व प्रदान करने का। इसके उत्तर में लांजाइनस का मत है कि वही कला उच्च और वास्तविक कही जा सकती है जो सब समयों में सब लोगों को रुचिकर हो।[1]

साहित्य की उदात्तता के सम्बन्ध में लांजाइनस ने लिखा है—वह अनिवार्य रूप से पाठक को मुग्ध कर देती है—उसके हृदय में, जो उसका स्वयं की अपेक्षा महान् और दिव्य है, उसके प्रति महान् अनुराग का भावना पैदा हो जाती है। वस्तुतः साहित्य में जो चिन्तन और मनन का शक्ति दर्शन में आता है, उस समस्त विश्व भी पूर्ण नहीं कर सकता।[2] साहित्य की उदात्तता मनुष्य को इतना ऊपर उठा देती है कि वह उसे ईश्वर की महान् उदारता के नजदीक ले जाती है।[3]

लांजाइनस एक वैचारिक समीक्षक

लांजाइनस की समीक्षा का विशेष गुण है कि दुराग्रह और पाण्डित्य प्रदर्शन उसमें नहीं है। उसका उद्देश्य मूल्यांकन न होकर साहित्य के मूल्यों का व्याख्या करना ही अधिक है। इससे हम प्रबुद्धता और प्रेरणा प्राप्त कर किसी रचना को श्रद्धापूर्वक समझ सकने में समर्थ होते हैं। लांजाइनस का कथन है कि कवि अपनी शिल्पविधा के कारण महान् नहीं कहा जाता वरन् अपनी कल्पनाशक्ति, अपनी अनुभूति का योग्यता तथा इन गुणों को अपने पाठकों तक पहुँचाने का सामर्थ्य के कारण महान् है। किसी आदर्श और दिव्य दर्शन के अभाव में मनुष्य की आत्मा के निष्प्राण हो जाने के कारण साहित्य अधोगति को पहुँच गया है इसलिए कवि का कर्तव्य है कि वह साहित्य को अधोगति से बचाने के लिए अपनी दिव्य वाणी द्वारा जनता में प्राण फूके। इसीलिए लांजाइनस ने 'आनन्द' और 'प्रत्यय' के सिद्धान्तों को स्वीकार न कर साहित्य को एक महान् सौंदर्य शक्ति माना है जो मानव की सम्पूर्ण प्रकृति को अनिवार्य रूप से उससे ऊपर उठाये तथा उसे शक्ति और प्रेरणा प्रदान करे। लांजाइनस के अनुसार, साहित्य भावावेशों के माध्यम से ही कार्य करता है—यह एक प्रकार से अरिस्टाटल के विरेचन सिद्धान्त की ही स्वीकृति है। साहित्यिक तथ्यों को लांजाइनस ने बुद्धिसंगत व्याख्या की है। उसके सिद्धान्त प्रतिपादन की पद्धति विश्लेषणात्मक व्याप्तिमूलक, मनोवैज्ञानिक, और ऐतिहासिक

१—वही ७ पृ० १३_।
२—वही, ३५ पृ० ७७५।
३—वही, ३६ पृ० २२७।

है। स्काट जेम्स ने उसे प्रथम स्वच्छदतावादी आलोचक माना है, जबकि एटकिंस उसे अन्तिम शास्त्रवादी (क्लासिकल) आलोचक कहता है।[1]

निष्कर्ष

यूनानी समीक्षा के मूल में उत्कट जिज्ञासा के दर्शन होते हैं। समीक्षा अपने प्रारंभिक रूप में धर्म, दर्शन और वक्तृत्वकला से भिन्न नहीं थी। होमर ने काव्य का लक्ष्य आनन्द स्वीकार करते हुए काव्य को मानव जीवन की उदात्तता के लिये आवश्यक माना। प्लेटो ने अपनी सूक्ष्म और तार्किक बुद्धि से काव्य का लक्षण प्रस्तुत करते हुए साहित्य और जीवन का अटूट सबध स्थापित कर दिया। अरिस्टोटल ने काव्य को अनुकरण का पर्यायवाची न बताकर काव्य का अर्थ पुन सृजन किया जिससे समीक्षा सिद्धात को सर्वथा एक नई दिशा मिली। काव्यजन्य सत्य को मानव सत्य सिद्ध करके उसने काव्य को इतिहास की अपेक्षा दर्शन की कोटि मे ला रक्खा। वक्तृत्वकला का प्रतिपादन कर उसने इस सत्य को मानव के नजदीक तक पहुँचाने का प्रयत्न किया। यहीं से काव्य-सिद्धात में सौन्दर्य की प्रतिष्ठा आरभ हुई। लाजाइनस ने समीक्षा सिद्धातों की ओर विशेष न जाकर काव्यशैली की उदात्तता—उसकी अभिव्यजना शक्ति—पर जोर देकर यूनानी समीक्षा को आगे बढाया।

आगे चलकर मध्य युग मे प्लेटो का अध्ययन अध्यापन कम हो गया। कविता के विरोधियो ने उसके वक्तव्यों को अपने मत के समर्थन में प्रमाण रूप मे प्रस्तुत किया। अरिस्टोटल के 'पोएटिक्स' और 'रेटोरिक्स' के अध्ययन की परपरा भी क्षीण हो गई। लाजाइनस के सिद्धातों से यद्यपि दान्ते के समकालीन यूनानी विद्वान् परिचित थे, लेकिन १५ वीं शताब्दी के आरभ में ही लोग उसे भली भाँति जान सके, तथा १६ वीं शताब्दी के मध्य में (१५५४ ई०) जब रोबोरटेलो ने उसकी रचना प्रकाशित की तभी पाश्चात्य समीक्षा जगत पर उसका प्रभाव पडना आरभ हुआ।

१—एटकिन्स, वही, पृ० २४६, २४८, २४९, २५१।

दूसरा खण्ड

(२) रोमी समीक्षा

यूनानी सभ्यता और सस्कृति का रोम पर प्रभाव

सिसरो (१०६-४२ ई० पू०)
लूक्रेटियस (९५-५१ ई० पू०)
वजिल (७०-१९ ई० पू०)
होरेस (६५-८ ई० पू०)
प्लिनी ज्येष्ठ (२३-७९ ई०)
प्लिनी कनिष्ठ (६१-११३ ई०)
क्विण्टीलियन (३५-९५ ई०)

●

यूनानी सभ्यता और संस्कृति का रोम पर प्रभाव

(चौथी शताब्दी ई० पू०—ईसा की पहली शताब्दी)

समीक्षा का केन्द्र रोम

एट्रस्केन जाति का रोम पर आधिपत्य

एट्रस्केन (Etuscan) जाति ने सौ वर्ष या इससे भी अधिक समय तक रोम पर राज्य किया। रोमन सभ्यता का आरम्भ यहीं से होता है। ७०० ई० पू० में यह जाति ताँबे और लोहे की खानों का इस्तेमाल करती थी और कच्चे लोहे को गलाकर मण्डी में बेचती थी। जब झीलों का पानी बाहर बहने लगता तो उसे निकालने के लिए इजीनियरों द्वारा सुरंगें बनवाई गईं। ५०० ई० पू० में एट्रस्केन लोगों ने अपने सिक्के चलाये। ये लोग युद्ध करते, शिकार खेलने जाते, कुश्ती लड़ते, रथ की सवारी करते, मिट्टी के बर्तन बनाते, चित्रकारी करते, अपने मुर्दों को गाड़ने और नक में विश्राम करते थे।

रोमुलस (८ वीं शताब्दी ई० पू०) रोम का सर्वप्रथम राजा हो गया है जिसने बहुत समय तक रोम पर राज्य किया। कहते हैं कि रोम का राज्य स्थापित करने के लिए उसने अपने कबीले के सौ गोत्रों के लोगों को चुना था जो आगे चलकर रोम के पूर्व पुरुष (पैट्रिशियन्स) कहलाये। रोमुलस को राज्य करते हुए बहुत समय बीत गया तो एक बड़ा तूफान चला जो उसे स्वर्ग में उठा ले गया। तत्पश्चात् रोमुलस की एक देवता के रूप में पूजा होने लगी।

कहा जाता है कि लगभग ६५५ ई० पू० में डिमरेटुस (Demaratus) नाम का कोई व्यापारी तारक्विनी (Tarquini), आजकल कोरनेटो = Corneto) नाम के एट्रस्केन शहर में रहने आया। वहाँ उसने किसी एट्रस्केन महिला से विवाह कर लिया। उसके एक पुत्र हुआ जो बड़ा होकर रोम चला गया और वहाँ राज-सिंहासन पर आसीन हो गया। इसकी वंश-परम्परा में अनेक राजा हुए। इस तारक्विनियुस सुपरबुस प्राउड' (Tarquinius Superbus the Proud') छठी शताब्दी ई० पू० में, वंश में रोम का सातवाँ राजा हुआ। इसके राज्यकाल में एकाधिपति शासन प्रणाली रही तथा राजनीति, धर्म कला, इंजीनियरी आदि क्षेत्रों में एट्रस्केन जाति का प्रभाव विशेष रूप से दिखायी देने लगा।

कालान्तर में तारक्विन राजवंश के लोगों को रोम से भगा दिया गया। नागरिक-सैनिकों की एक सभा आयोजित हुई जिसमें घोषणा की गयी कि कोई भी व्यक्ति आजीवन राजपद पर आसीन न रह सकेगा। इस समय, एक वर्ष की अवधि के लिए दो शासनकर्ता (Consul) चुने गये—एक का नाम था ब्रूटस और दूसरे का कोलेटिनस। कोलेटिनस के त्यागपत्र दे देने के पश्चात् पुब्लियुस वालेरियुस (Publius Valerius) को चुना गया जो 'जनता का मित्र' (पुब्लिकोल = Publicola) के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके समय में संसद संबंधी और नियमों का निर्माण हुआ जो रोम की शासन प्रणाली के आधारभूत माने गये।

रोमी क्रांति के दो परिणाम हुए—एक तो रोम में एट्रुस्केन जाति का उच्चत्व कायम न रह सकी, दूसरे एकाधिपति शासन प्रणाली के स्थान पर अब कुलीन वर्ग का शासन (अरिस्टोक्रेसी) हो गया, जो सम्राट् सीज़र के समय तक कायम रहा। यद्यपि एट्रुस्केन जाति को रोम से बहिष्कृत कर दिया गया था, फिर भी इस जाति की सभ्यता और संस्कृति का प्रभाव रोमी सभ्यता पर अन्त तक रहा। रोमी सिक्कों पर जहाज के अग्रभाग का चिह्न बनाया जाता रहा। ईसा के पूर्व ७ वीं शताब्दी से लेकर ४ थी शताब्दी तक रोम के कुलीन लोग अपने लड़कों को ज्यामिती, भूमापन और स्थापत्यकला की शिक्षा के लिए एट्रुस्केन नगरों में भेजते रहे। पहले पहल एट्रूरिया के अभिनेताओं ने ही रोम में पदार्पण किया, यहीं से घुड़दौड़ के लिए घोड़े और मुष्टियोद्धा आये। एट्रुस्केन जाति के प्रभाव के कारण ही रोमवासी स्त्री-जाति के प्रति यूनानियों की अपेक्षा अधिक सम्मान प्रदर्शन करने लगे। एट्रुस्केन इंजीनियरों ने रोम की दीवालों और नालियों का निर्माण किया तथा यहाँ की दलदल हटाकर नगर को सुरक्षित और सुसभ्य बनाया। इससे रोम की स्थापत्यकला और शिल्पकला आदि पर्याप्त मात्रा में प्रभावित हुई।[1]

रोम में गणतन्त्र के लिए संघर्ष जारी रहा। लैटिन लीग की सहायता से गणतन्त्र की स्थापना हुई। तत्पश्चात् संविधान की रचना हुई, रोमन कानूनों का निर्माण हुआ और सैनिकसंगठन की व्यवस्था की गयी। संघर्ष चलते रहे हार-जीत होती रही, लेकिन रोमन लोगों का उत्साह भंग न हुआ। वे अपनी खेती बारी करते और साथ साथ युद्धों में भी भाग लेते। लैटिन लीग से रोम का संबंध विच्छेद हुआ। २०१ १४६ ई० पू० का काल यूनान की पराजय का काल है जबकि रोमवालों ने यूनान और मैसेडोन पर विजय प्राप्त कर इन्हें रोम का एक प्रान्त बना रोमन गवर्नर का शासन स्थापित कर दिया। इसके बाद आनेवाले २००० वर्ष तक यूनान संसार के राजनीतिक इतिहास से ही गायब रहा।[2]

१—विल डयूराण्ट, सीज़र एण्ड क्राइस्ट पृ० ५ १८
२—वही, पृ० २१ ५५, ८५ ६४

लिविअस एण्ड्रोनिकुस (तीसरी शताब्दी)

लगभग २७२ ई० पू० में रोम म विदेशी साहित्य का आगमन आरभ हुआ। इस समय टरएटम (Tarentum, आजकल टरण्टो Taranto) का पतन हुआ। यूनान के कितने ही नागरिको की बेरहमी से हत्या कर दी गयी, लेकिन लिविअस एण्ड्रोनिकुस (२४० ई० पू० मे मौजूद) सौभाग्य से बच गया और उसे गुलाम बना लिया गया। रोम मे पहुँचकर अपने मालिक के लडको को वह लैटिन और यूनानी की शिक्षा देने लगा। होमर की प्रसिद्ध कृति 'ओडिसी' का उसने लैटिन मे अनुवाद किया जिससे उसके स्वामी ने प्रसन्न होकर उसे गुलामी से मुक्त कर दिया। उसे कोई सुन्दर ट्रैजेडी या कॉमेडी लिखने का आदेश मिला। लिविअस एण्ड्रोनिकुस ने यूनानी आदश पर एक साहित्यिक नाटक की रचना की जिसका निर्देशन उसने स्वय किया और उसके अभिनय मे भी हिस्सा लिया। इससे लिविअस का रोम मे बहुत आदर हुआ और वहा की सरकार ने अपने देश के कवियो को इस नाटक की स्वीकृति प्रदान करने का आदेश दिया। इस समय से रोम के कवियो को अवैण्टाइन पवत के मिनर्वा मदिर में सभाएँ करने की अनुज्ञा प्राप्त हुई तथा दृश्यसबधी नाटक सावजनिक उत्सवो पर खेले जाने लगे।[1] इस कवि के काव्य मे सवप्रथम लैटिन भाषा की अभिव्यजना शक्ति देखने मे आती है।

यूनानी सभ्यता का रोमी सभ्यता पर प्रभाव

शनै शनै रोम मे यूनानी भाषा और साहित्य के अध्ययन के लिए स्कूलो म व्यवस्था होने लगी, तथा यूनान का क्लासिकल रचनाए रोम के महाकाव्यो, ट्रजेडियों और कॉमेडियो का आधार बनी। यूनानी रचनाओं के लटिन म अनुवाद किय जाने लगे और जगह जगह यूनानी साहित्य के प्रचार के लिए पुस्तकालय खुल गये। रोम के विद्वान् यूनान का वक्तृत्वकला, उसकी साहित्यक रचनाओ और दशन पर सावजनिक भाषण देते फिरने लगे। उधर यूनानी विद्वानो ने भी रोम में पहुँचकर अपनी भाषा के व्याकरण और दशन पर व्याख्यानो की धूम मचा दी। एपिक्यूरस के अनुयायी इन्द्रियलोलुपी उदरपरायण कहे जाते थे। धम को मानव जीवन का व मुख्य दोष मानते थे। १७३ ई० पू० यूनान म रोम की राज्यसभा ने एपिक्यूरस के दो अनुयायियो को देश निकाला दे दिया तथा घोषणा कर दी गई कि "कोई दाशनिक अथवा वक्ता रोम के अन्दर प्रवेश नही कर सकेगा।" लेकिन इन्द्रिय निरोध पर विश्वास करने वाले स्टोइक के मत का कोई अनुयायी दूतावास के एक अधिकारी के रूप मे रोम मे आ गया। उसने अपनी टाँग तोड ली और स्वास्थ्य लाभ करते हुए साहित्य तथा दशन

१—वही, पृ० ७४

पर आक्रमण करने लगा। १५५ ई० पू० में एथेंस से अनेक यूनानी विद्वान् राजदूत बनकर रोम आये जिन्होंने अपने भाषण चातुर्य से रोम के नवयुवकों को प्रभावित किया। इससे यूनानी सभ्यता और संस्कृति से रोमन सभ्यता और संस्कृति प्रभावित हुई और अब रोम के नवयुवक ज्ञान प्राप्ति के लिए एथेंस और रोड्स की ओर उन्मुख हुए। सिसरो को कहना पड़ा, 'यह कोई छोटा मोटा नाला नहीं था जो यूनान से हमारे देश में प्रवाहित हो रहा था वरन् संस्कृति और विद्या का एक बड़ा लहराता दरिया था।'[1]

राष्ट्रीय संस्कृति के नाश की आशंका

कहना न होगा कि यूनानी सभ्यता और संस्कृति का यह अनवच्छिन्न प्रवाह रोम के अनेक राष्ट्र भक्तों और विचारकों को पसन्द न आया। उन्हें आशंका होने लगी कि इस तरह तो रोमन संस्कृति का ही सर्वनाश हो जायगा। कैटो (२३४ १४९ ई० पू०) इसी तरह का एक रोमन देशभक्त सेनापति था जो एक अत्यन्त कुशल वक्ता होने के साथ साथ देश में फैले हुए भ्रष्टाचार और भोग विलास को मिटाना चाहता था। लैटिन गद्य का वह सर्वप्रथम लेखक माना गया है। उस समय तक लैटिन भाषा गद्य के लिये उपयुक्त नहीं मानी जाती थी तथा रोम के इतिहासवक्ता उसे इतिहास लिखे जाने योग्य नहीं समझते थे। वक्तृत्वकला के ऊपर उसने पुस्तकें लिखीं और अपने व्याख्यानों का स्वयं प्रकाशित किया। अपने खेती बारी के अनुभवों को भी उसने पुस्तकबद्ध किया जिसमें गुलामों का क्रय विक्रय, पाकशास्त्र सीमेंट का उत्पादन, कब्ज संग्रहणी तथा सर्पदंश की चिकित्सा आदि विविध विषयों की चर्चा की गयी है। रोम के विद्वानों द्वारा साहित्य को लैटिन भाषा में प्रस्तुत करने का मुख्य कारण था यूनानी भाषा की पाठ्य पुस्तकों के प्रचार को रोक देना। कैटो का विश्वास था कि यूनानी साहित्य और दर्शन के अध्ययन से रोम के नवयुवकों में अपने धर्म के प्रति आस्था नष्ट हो जायगी और नैतिकता से वे भ्रष्ट हो जायेंगे। अपने पुत्र को उसने लिखा था—

"यूनानी लोग बड़े अड़ियल स्वभाव के और अन्यायी प्रवृत्तिवाले होते हैं। मेरा कहना मानो, ये लोग जो अपने साहित्य का प्रचार कर रहे हैं वह रोम की प्रत्येक वस्तु को बर्बाद करने की योजना है। और जितनी जल्दी वे अपने वैद्य और डाक्टर हमारे देश में भेजेंगे उतनी ही शीघ्रता से यह कार्य सम्पन्न होगा। उन सबने आपस में मिलकर षड्यंत्र रचा है। 'असभ्य लोगों' को मार डालने का मेरा आदेश है कि तुम उनके पास हर्गिज न जाना।[2]

१—एटकिन्स वही पृ० १४, विल ड्यूराण्ट, पृ० ६५।

२—विल ड्यूराण्ट वही पृ० १०३ १०४। सिसरो ने भी यूनानी लोगों से घनिष्ठता रखने का निषेध किया है। उसका मानना था कि वे प्रायः धोखेबाज और अस्थिर

क्विण्टुस एनिअुस (२३९-१६९ ई० पू०)

लेकिन सिपिओ (Scipios) मडल के सदस्य लैटिन भाषा को सुसस्कृत और प्रवाहमय साहित्यिक भाषा बनाने के लिए, विदेशी साहित्य और दर्शन के अन्त-प्रवेश को प्रोत्साहित कर यूनानी कविता के झरने से रोम की वाग्देवी को मुग्ध करना चाहते थे। इसके लिए वे कविता अथवा गद्य के होनहार लेखकों की खोज में थे जो रोम के श्रोताओं को अनुप्राणित कर सकें। इस समय २०४ ई० पू० में कैटो द्वारा लाये गये क्विण्टुस एनिअुस (Quintus Ennius २३९–१६९ ई० पू०) नामक कवि का सेनापति सिपिओ अफ्रीकानुस (Scipio Africanus २३४-१८३ ई० पू०) ने स्वागत किया। क्विण्टुस एनिअुस की धमनियों मे यूनान और रोम दोनों का रक्त था। टरेण्टम म उसने शिक्षा प्राप्त की थी और यूनानी नाटकों से वह अत्यन्त प्रभावित था। उसकी वीरता के कारण कैटो उस सैनिक की ओर आकृष्ट हुआ था। क्विण्टुस रोम मे आकर लटिन और यूनानी भाषा का अध्यापन करता हुआ मित्रों को अपनी कविता सुनाकर उनका मनोरजन करने लगा। उसने अनेक कॉमेडी और ट्रैजेडी-नाटकों की रचना की। यूरिपाइडिस को वह बहुत चाहता था। एपिक्यरस की उक्तियो का अनुकरण कर धर्मात्मा लोगो पर व्यग्य करते हुए उसने कहा है —' मैं तुम्हे देवता प्रदान करता हूँ, लेकिन याद रखना जो कुछ लोग करते धरते हैं, उसकी चिन्ता वे नही करते। यदि ऐसा होने लगे तो अच्छे अच्छे रह जायें और बुरे बुरे बन जायें—जैसा कि क्वचित् ही होता है।" उसका विश्वास था कि होमर की आत्मा, पाइथागोरस तथा मयूर आदि के शरीर में प्रवेश करती हुई उसके शरीर में प्रविष्ट हुई है। रोम के इतिहास पर उसने महाकाव्य की रचना की, जो वर्जिल के समय तक इटली के राष्ट्रीय काव्य के रूप मे प्रसिद्ध रहा। क्विण्टुस ने लैटिन भाषा को एक अभिनव रूप और शक्ति प्रदान कर, रीति, शब्दावली, विषयवस्तु और विचारो के क्षेत्र मे लूक्रेटियस, होरेस, और वर्जिल का मार्ग प्रशस्त किया। अपनी मृत्यु के पूर्व क्विण्टुस ने लिखा था—

मेरे लिये आँसू मत बहाओ, न मेरी मृत्यु से दुखी होओ,
मैं लोगों के होठों पर रहता हूँ और जीवित हूँ।[1]

चित्तवाले होते हैं और दीर्घकालीन गुलामी के कारण वे खुशामदी बन गये हैं। सिसरोज लटर्स टू हिज ब्रदर क्विंटस पृ० ९, जे० एम० यादसन लदन, १९०६।

१—विल ड्यूराण्ट, सीजर एण्ड क्राइस्ट, पृ० ९७ ९८

सिसरो (१०६–४३ ई० पू०)

सिसरो[1] का नाम रोमी समीक्षा के पुरस्कर्ताओं में गिना जाता है। सिसरो का प्रारम्भकालीन अध्ययन एक यूनानी कवि की देखरेख में हुआ था। बड़े होने पर उसे कानून की शिक्षा दी गई। यूनान पहुंचकर उसने वक्तृत्वकला और दर्शन का अध्ययन किया। तीस वर्ष की उम्र में यूनान से लौटकर सिसरो ने शादी की, जिसमें उसे काफी दहेज की प्राप्ति हुई। तत्पश्चात् सिसरो ने राजनीति में प्रवेश किया और वकील बनकर नाम कमाया। उसका कहना था कि वकालत में सफलता प्राप्त करने के लिए मनुष्य को ऐश्वर्य की लालसा त्याग देनी चाहिए, मनोविनोद, खेल-कूद और आमोद प्रमोद को तिलांजलि दे देनी चाहिए—यहाँ तक कि मित्रों से भी सम्पर्क न रखना चाहिए।[2]

वक्तृत्वकला

ईसवी पूर्व ५७ में जब सिसरो अपने निर्वासन[3] से लौटकर आया तो उसकी राजनीतिक प्रतिष्ठा समाप्त हो चुकी थी और अब उसे एक नामी वकील के रूप में कोई न जानता था। इस समय सिसरो साहित्य, राजनीति, दर्शन और वक्तृत्वकला के अध्ययन में जुट गया और वक्तृत्वकला में उसने खूब नाम कमाया। सिसरो ने अपने पचास से अधिक सार्वजनिक भाषणों में सफल वक्तृता के लिए आवश्यक कौशलपूर्ण विधियों का उल्लेख किया है। किसी प्रश्न या चरित्र के एक पक्ष को उत्कटतापूर्वक प्रस्तुत करना, हास्य और चुटकुलों द्वारा श्रोताओं का मनोरंजन करना, मिथ्या भय, पक्षपात, भावावेश और देशभक्ति के लिए अपील करना, प्रतिवादी के वास्तविक या कथित अथवा सार्वजनिक या निजी दोषों का निर्दयतापूर्वक पर्दाफाश करना, अपने विरुद्ध दी गई युक्तियों से कुशलतापूर्वक बचाव करना, प्रश्नों की झड़ी लगाकर प्रतिवादी को निरुत्तर कर देना, अथवा उसकी दलील

१—प्लूटार्क के अनुसार, सिसरो के किसी पुरखे की नाक पर उड़द जितना एक मसा था इसलिए वह सिसरो (Cicer = उड़द) नाम से कहा जाने लगा।

२—विल ड्यूरान्ट, पृ० १४० ४१।

३—निर्वासन में रहते हुए सिसरो ने अपने भाई क्विन्टस को पत्र लिखे हैं जिनमें निर्वासन के कारण और दुःखों का वर्णन है। सिसरोज लैटर्स टू हिज ब्रदर क्विन्टस पत्र ३, ४।

को काट देना और कुशलतापूर्वक प्रतिवादी पर दोषों का आरोप करते चले जाना आदि बातें सिसरो के व्याख्यानों की विशेषताएँ हैं। दरअसल, सिसरो जैसे आकर्षक और प्रवाहबद्ध सुन्दर लटिन में अन्य भाषण कम ही मिलते हैं। 'ऑन ऐनेलौजी' नामक अपनी पुस्तक सिसरो को समर्पित करते हुए जुलियस सीजर ने लिखा है—"तुमने वक्तृत्वकला के खजाने को ढूंढ निकाला है और उसे खाली कर देनेवाले तुम पहले व्यक्ति हो। इससे तुमने रोम की जनता पर ऋण का भार लाद दिया है और अपनी पितृभूमि को गौरवान्वित किया है। तुम्हारी विजय बड़े से-बड़े सेनापतियों की विजय से भी बढ़कर है। क्योंकि मानव-बुद्धि की सीमाओं को विस्तृत करना रोमन साम्राज्य की सीमाओं को विस्तृत करने की अपेक्षा कहीं श्रेष्ठ है।[1]"

सिसरो की वक्तृत्वकला सम्बन्धी तीन रचनाएँ विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं—(१) दे ओरातोरे' (De Oratore) अथवा वक्ता का चरित्र, (२) 'ब्रूटस' अथवा सुप्रसिद्ध वक्ताओं की विशेषताएं, और (३) द ओरेटर' (the Orator)। दे ओरातोरे में वक्तृत्वकला सम्बन्धी संवाद हैं जिन्हें सिसरो ने अपने भाई क्विंटस के अनुरोध पर पुस्तकबद्ध किया था। यहां पारिभाषिक शब्दावलि के बिना सीधे-सादे स्वाभाविक और आकर्षक रूप में अरिस्टोटल और इसोक्रेतीस आदि प्राचीन लेखकों की रचनाओं के आधार पर वक्तृत्वकला का विश्लेषणात्मक विवेचन किया गया है। 'ब्रूटस' भी संवाद के रूप में ही लिखा गया है। इसमें यूनान और रोम के सुप्रसिद्ध वक्ताओं के सुन्दर रेखाचित्र हैं। इसे रोमन इतिहास का गुप्त कोश कहा गया है। 'द ओरेटर' में एक आदर्श वक्ता का चित्र प्रस्तुत है। वक्तृत्वकला की समीक्षा पर यह एक उत्कृष्ट रचना मानी जाती है।[2]

वक्ता की विशेषताएँ

वक्ता की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए सिसरो ने लिखा है—"कोई वक्ता तब तक प्रशंसा के योग्य नहीं कहा जा सकता जब तक कि उसे प्रत्येक महत्त्वपूर्ण वस्तु का और समस्त शिष्ट कलाओं का ज्ञान न हो। कोई भी विषय क्यों न हो, उस पर उसे बड़प्पन के साथ बोलने की योग्यता होनी चाहिए। उसकी भाषा लच्छेदार और प्रवाहबद्ध होनी चाहिए। जब तक भाषणकर्ता अपनी कही हुई बात को खुद नहीं समझता, तब तक उसके वक्तृत्व को रिक्त और तुच्छ शब्दों का

१—विल ड्यूरान्ट, वही, पृ० १६१–६२।

२—जे० एस० वाट्सन, सिसरो ऑन ओरेटरी एण्ड ओरेटर्स पृ० १४२, ४०२, लंदन १६०६।

प्रवाह मात्र समझना ही ठीक होगा।"[1] 'तथा शब्दों की रिक्त ध्वनि से बढ़कर पागलपन और क्या हो सकता है? भले ही शब्द चुने हुए और एक से एक बढ़कर क्यों न हों, लेकिन यदि वे निरर्थक हैं और उनसे किसी बात का ज्ञान नहीं होता तो वे किस काम के?"[2] अतएव सिसरो ने सर्वसाधारण की समझ में आनेवाली बोल चाल की भाषा को ही श्रेष्ठ कहा है।[3] भाषा की शुद्धता पर जोर देते हुए[4] भाषण में विचारों को उत्तेजित करने की योग्यता का उसने समर्थन किया है। प्रतिभा को मुख्य बताते हुए कहा गया है कि वक्ता में कोई दोष न होना चाहिए और सर्वगुणों से उसे सम्पन्न होना चाहिए।[5] ज्ञान के अन्य क्षेत्रों का ज्ञाता होने के साथ वक्ता को विशेषकर दर्शनशास्त्र[6] में निष्णात होना चाहिए। उसे मनोविज्ञान का वेत्ता भी होना चाहिए, क्योंकि उसके बिना वक्ता मानव हृदय की तह तक नहीं पहुँच सकता। सिसरो का कथन है कि श्रेष्ठ वक्ता अपने श्रोताओं को शिक्षा देता है उन्हें आनन्द प्रदान करता है, और उनके मस्तिष्क को आन्दोलित करता है। श्रोताओं को शिक्षा देना उसका कर्तव्य है आनन्द प्रदान करना उसका गुण है और उनके मस्तिष्क को आन्दोलित करना उसके लिए अत्यावश्यक है।[7] वक्तृत्वकला को इसलिए महत्त्वपूर्ण कहा गया है क्योंकि भाषा ही एक ऐसी शक्ति है जो मनुष्य को जंगली जानवरों से पृथक् करती है। अपने विश्वास की शक्ति के कारण ही मनुष्य ने एक नूतन और श्रेष्ठतर जीवन स्वीकार किया है और इसी कारण वह नगरों की स्थापना तथा कानून कायदों का निर्माण करने और अपने हकों आदि को प्राप्त करने में समर्थ हो सका है।[8]

१—सिसरो, दे ओरातोरे १, पृ० १४८, १५६, तुलना कीजिए कटो की उक्ति से—'गुणवान वही है जो भाषण में कुशल हो", "विचारों के स्पष्ट होने से शब्द स्वतः निसृत होने लगेंगे।"

२—सिसरो, दे ओरातोरे १ पृ० १५६।

३—वही ३ पृ० ३४५।

४—वही पृ० १७८ ३ पृ० ३४२। 'ब्रटस' (पृ० ४७६) में भी भाषा की शुद्धता का समर्थन किया गया है जिसे सिसरो के समय परदेशी लोग दूषित कर रहे थे। सिसरो ने अपने पुत्र मार्कस को अपने पत्र में लटिन भाषा न भूल जाने की ताकीद की है। द आफिसेज १ पृ० १, लंदन, १६११।

५—दे ओरातोरे १ पृ० १५७, १७२, १७१।

६—वही, १ पृ० २०४।

७—सिसरो ब्रूटस, पृ० ४५४।

८—सिसरो, दे ओरातोरे १ पृ० १५१।

वक्तृत्वकला और साहित्य

वक्तृत्वकला पर अपने सुस्पष्ट और गम्भीर विचार व्यक्त करने के कारण सिसरो की गणना आलोचना के इतिहासकारों में की जाती है। वक्तृत्वकला के अभ्यास के लिए सिसरो ने काव्य के अध्ययन की सिफारिश की है।[१] वक्ता और कवि का अत्यन्त निकट सम्बन्ध बताते हुए उसने लिखा है कि दोनों ही अपनी लय पर नियन्त्रण रखते हैं और शब्दों के चयन में स्वतन्त्र रहते हैं।[२] आर्कियस नामक कवि का समर्थन करते हुए सिसरो ने शिक्षा के उद्देश्य की पूर्ति तथा महान् राष्ट्र और सुप्रसिद्ध मनुष्यों के अभिनन्दन करने के लिए कविता को उपयोगी कहा है।[३] कवियों की रचनाओं को 'युवावस्था का भोजन, और वृद्धावस्था का आनन्द' बताते हुए उसने लिखा है, "ये रचनाएँ सुख-समृद्धि को बढ़ाती हैं, दुर्भाग्य को सहारा देती हैं, घर में आनन्द प्रदान करती हैं और बाहरी कोई रुकावट पैदा नहीं करतीं, हमारे साथ यात्रा पर गमन करती हैं और हमारे अवकाश के दिनों को बाँट लेती हैं।[४] इस प्रकार वक्तृत्वकला और साहित्य का घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर सिसरो ने समीक्षा-सिद्धान्तों को आगे बढ़ाने में सहयोग प्रदान किया।

१—वही, पृ० १८२।

२—वही, १, पृ० १६१, ३, पृ० ३३६।

३—सिसरो, प्रोआर्किआ १२ ३०।

४—वही, १६।

लूक्रेटियस एक शक्तिशाली कवि था जिसमे कैटुलस की तीव्रता और वर्जिल की स्थायी पकड के साथ अपनी खुद की उदात्तता विद्यमान थी, जो उक्त दोनों कवियों मे देखने में नही आती।[१] अपनी महान् कृति को उसने कविता का रूप क्यो दिया इसका कारण बताते हुए उसने कहा है कि जैसे डाक्टर लोग कडवे नागदौने में शहद मिलाकर उसे रोगी को देते हैं, इसी प्रकार वह भी मानो सरस्वती देवी के शहद का पुट देकर पद्यात्मक कविता का सृजन करने मे प्रवृत्त होता है।[२]

युरिपाइडिस की भांति लूक्रेटियस के विचार भी बडे आधुनिक हैं। विचार करने का उसका दृष्टिकोण स्वतन्त्र और मौलिक है। होरेस और वर्जिल लूक्रेटियस से अत्यन्त प्रभावित हुए थे। ईसवी सन् की प्रथम शताब्दी में सेनेका की मृत्यु के पश्चात् धार्मिक विश्वासो के पुनरुज्जीवित हाने पर लूक्रेटियस को लोग लगभग भूल ही गये। आगे चलकर पोजिओ (Poggio, १३८० १४५९ ई०) नामक इतालवी विद्वान् ने उसकी फिर मे खोज की और लूक्रेटियस ने यूरोप की विचारधारा को प्रभावित किया। लूक्रेटियस अपने समय का एक महान् दार्शनिक कवि हो गया है जबकि लैटिन साहित्य दिनादिन समृद्ध बन रहा था तथा विद्वत्ता के क्षेत्र मे रोम यूनान का स्थान ले रहा था।[३]

१—जॉर्ज सेण्टसबरी ए हिस्ट्री आफ क्रिटिसिज्म पृ० २१४
२—एटकिन्स, लिटरेरी क्रिटिसिज्म इन एंटिक्विटी २ पृ० ५४
३—विल ड्यूराण्ट, वही, पृ० १५४

वर्जिल (७०–१९ ई० पू०)

वर्जिल रोम का एक अत्यन्त प्रिय कवि हो गया है जो आजीवन अविवाहित रहा और जिसका बचपन खेत खलिहान और नद नदी के प्राकृतिक सौंदर्यमय वातावरण में बीता। ३७ वर्ष की अवस्था में उसने खूब प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी। उसकी 'एक्लोग्स' (Eclogues=Selection=चुनाव) नामक रचना खूब ही लोकप्रिय हुई। इसमें ग्राम्य जीवन के प्राकृतिक रेखाचित्र हैं जो शैली और लय में अत्यन्त सरस हैं। 'जॉर्जिक्स' (Georgics=भूमिश्रम) वर्जिल की दूसरी प्रसिद्ध रचना है जिसमें हल जोतने को सर्वोत्कृष्ट कला माना गया है। राजनीतिज्ञ तथा साहित्य का सरक्षक मिसीनस (Maecenas) इस रचना को देखकर हर्ष विभोर हो उठा। वह वर्जिल को आक्टेवियन (६३ ई० पू०–१४ ई०) से मिलाने ले गया जो उस समय (२७ ई० पू०) क्लेओपेट्रा पर विजय प्राप्त करके लौट रहा था। मार्ग में ठहरकर उसने इस रचना की कुछ पंक्तियाँ सुनीं और वह अत्यन्त प्रभावित हुआ।

वर्जिल ने हेसीओद, अरटस, कैटो और वैरो से अपनी रचना की सामग्री ग्रहण की है। कृषिसबंधी अनेक विषयों का विवरण यहाँ दिया गया है—मिट्टी की किस्में, मिट्टी को काम में लेना फसल बोने और काटने की ऋतुएँ जतून और अंगूर की बेल की खेती, पशुपालन तथा मधुमक्खी पालन आदि। ग्राम्य जीवन को आदर्श बताते हुए खेती बारी में आनेवाली कठिनाइयों की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है। इसके प्रति प्रतिष्ठा का भाव व्यक्त करते हुए कहा गया है कि हल चलाते समय किसी भी रोमवासी को लज्जा का अनुभव न करना चाहिए। क्योंकि खेत से ही नैतिक चरित्र का निर्माण होता है, तथा जिन सद्गुणों के कारण रोमवासी महान् कहलाए, वे सब खेत में ही फले फूले। इस रचना की कुछ पंक्तियाँ देखिए—

"जो व्यक्ति सब चीजों के कारण समझ सकने में समर्थ है और जिसने सब प्रकार के भय, कठोर नियति और अतृप्त नरक के कोलाहल को पैरों तले कुचल दिया है, वह सुखी है। किन्तु वह भी सुखी है जो पानदेवता (चरागाह, रेवड़ और वन का देवता), प्राचीन वनदेवता और बहन परियों (पर्वत, नदियों और वृक्षों पर वास करनेवाली देवियाँ) नामक ग्राम्य देवताओं से परिचित है।"

ड्राइडन ने 'सर्वोत्कृष्ट कवि की सर्वोत्कृष्ट रचना' कहकर इसकी सराहना की है।

तत्पश्चात् 'एनीड' महाकाव्य आता है जिसे लिखने में दस वर्ष लगे और फिर भी वह पूर्ण न हो सका। इस समय लू लगने से वर्जिल की मृत्यु हो गयी। मृत्यु-शैया पर लेटे हुए वर्जिल ने अपने मित्रों से अपनी इस कृति की पाण्डुलिपि को नष्ट करने का आदेश दिया। उसका मानना था कि इसे पूर्ण करने मे अभी तीन वर्ष और लगने चाहिए थे।

मानव जीवन की गति की यहाँ अन्योक्तिपरक व्याख्या की गई है। लेखक यहाँ कोई प्रेम काव्य न लिखकर रोम के लिए एक पवित्र पुस्तक का सृजन कर रहा था। कथावस्तु मे जो कुछ दुःख तकलीफ है, वह मनुष्यकृत न होकर देवताकृत है। देश भक्ति को सच्चा धर्म और रोम को सर्वप्रमुख देवता कहा गया है। देखिए—

"किन्तु तुझे, ओ रोमन, लोगों पर अवश्य राज्य करना चाहिए।
तेरी कलाएँ शान्ति के मार्ग की शिक्षा के लिए होंगी
विनीतों की रक्षा करने और घमण्डियों का उन्मूलन करने के लिए।"

वर्जिल की सहानुभूति केवल अपने राष्ट्र तक ही सीमित नहीं—वह समस्त मानवता और समस्त जीवन तक पहुँचती है। दलितों और महान् पुरुषों के कष्टों तथा युद्ध की विभीषिकाओं से वह भलीभाँति परिचित है। पीड़ितों और शोषितों को लक्ष्य करके वह लिखता है—'कोई अबाबील किसी वृक्ष के नीचे बैठी हुई अपने अण्डे बच्चों के लिए विलख रही है जिन्हें किसी निर्दय किसान ने घोंसले से बाहर निकाल कर खत्म कर दिया है। अबाबील अपने बच्चों की याद कर करके रातभर रोती बिलखती, फुहारे पर फुदकती फिरती है। फिर फिर से उसका करुणाजनक स्वर सुनायी पड़ता है जिससे सारे वन उपवन गूंज उठते हैं।"

वर्जिल की मृत्यु के दो वर्ष बाद 'एनीड' का प्रकाशन हुआ। उसकी अनेक आलोचनाएं हुईं—कुछ अनुकूल और कुछ प्रतिकूल। होरेस ने वर्जिल की तुलना होमर से की है।[1] दरअसल, इस समय रोम में शान्ति स्थापित हो जाने के बाद दुनिया का वह एक शक्तिशाली राष्ट्र बन गया था और रोमवासियों में राष्ट्रीय भावना जाग उठी थी। एथेंस की भाँति रोम की कविता भी अब राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण हो गयी थी। इस दिशा में वर्जिल और होरेस दोनों ही महाकवियों का प्रयत्न असाधारण रहा। उन्होंने अपने देश की भूतकालीन अशान्ति, जनता का क्षोभ, शान्तिजन्य आनन्द तथा जनहितकारी शासन के गीतों को काव्यबद्ध करके उनको अभिनव रूप प्रदान किया। उन्होंने रोम की अनेक जय विजयों, उसकी धर्मपरायणता, सदाचार तथा उसकी कष्टपूत महानता का जयघोष किया। उन्होंने अपने देश के भविष्य के प्रति आस्था प्रकट कर आनेवाले सुवर्ण युग के गीत गा गा

१—विल ड्यूराण्ट, सीज़र एण्ड क्राइस्ट, पृ० २३५ ४३

कर जनमन की भ्राकाक्षाभ्रों को नूतन अभिव्यक्ति दी। भ्रौर इन गीतो को वाणी देने के लिए दोनो ने कवि होमर की क्लासिकल परम्परा का अनुकरण कर काव्य का आश्रय लिया।[१] क्विएटीलिग्रन ने वर्जिल को लैटिन कवियो मे शीर्षस्थ माना है। योग्यता की दृष्टि से वर्जिल को होमर के बाद अथवा उसके नजदीक का स्थान दिया गया है। कभी होमर को अधिक प्रतिभाशाली भ्रौर वर्जिल को अधिक कुशल कलाकार कहकर वर्जिल की कला के प्रति सम्मान व्यक्त किया गया है।[२]

'एनीड' में वर्जिल ने रोम को एक पावन नगर के रूप म चित्रित किया है जहा से एक ऐसी धार्मिक शक्ति का उदय होगा जो सारे ससार म फलकर उसका हित करेगी। इस महाकाव्य में अंतिम निर्णय (लास्ट जजमेंट) दुष्टजनो के कष्टा, यमलोक (परगेटरी) की शोधक अग्नि तथा स्वग मे क्रीडा करनेवाले पुण्यात्मा जनो के सुख का प्रभावशाली चित्रण किया गया है। फुलजेण्टियस नामक अफ्रीकी वैयाकरण के शब्दो मे 'वर्जिल अपनी 'एक्लोग्स' में एक भविष्यवक्ता, पुरोहित, सगीतज्ञ, शरीरविज्ञान का पडित भ्रौर वनस्पति विज्ञान विशारद के रूप मे, 'जॉर्जिक्स' म एक ज्योतिषी, निमितज्ञ भ्राकृति विशेषज्ञ भ्रौर चिकित्सक के रूप म उपस्थित होता है, जबकि 'एनीड' मे उसका विश्वजनीन दार्शनिक रूप दृष्टिगोचर होता है।'[३]

वर्जिल की यशोगाथा दूर दूर तक फैलती गयी, मध्ययुग म तो उसे जादूगर भ्रौर सन्त घोषित कर दिया गया। दान्ते ने उसकी सौन्दयपूर्ण भाषा के प्रसाद गुण की सराहना की, मिल्टन उसकी रचनाभ्रो से प्रभावित हुभ्रा तथा वोल्तायर ने उसके महाकाव्य को प्राचीनकाल की सवश्रेष्ठ साहित्यिक रचना घोषित कर वर्जिल को साहित्य गगन म उच्च स्थान प्रदान किया।[४]

१—एटकिन्स वही, पृ० ५२
२—वही, पृ० २८७ ८८
३—विलियम विमसेट लिटरेरी क्रिटिसिज्म ए शार्ट हिस्ट्री पृ० १४८
४—विल ड्यूराण्ट, वही पृ० २४४

होरेस (६५-८ ई० पू०)

होरेस[1] लैटिन भाषा का उत्कृष्ट कवि हो गया है जिसने केवल सात वर्ष की अवधि मे कवि के रूप में ख्याति प्राप्त की थी। कहते हैं कि वह ब्रूटस की सेना मे भर्ती हो गया था लेकिन उसे तो कवि बनकर यश प्राप्त करना था इसलिए अपनी तलवार छोडकर, वह रणक्षेत्र से पलायन कर गया। युद्ध समाप्त होने पर उसकी सब जमीन जायदाद चली गयी और घोर दरिद्रता मे वह समय यापन करने लगा। इसी समय उसने काव्य-रचना आरम्भ की। होरेस की वर्जिल और मायसिनस आदि कवियो से बडी मित्रता थी। मायसिनस ने उसे एक घर बनवा दिया और एक खेत दे दिया और होरेस कविता के स्वप्नलोक मे विहार करने लगा।

रोम में काव्य की प्रतिष्ठा

अभी तक, जैसा हम देख आये हैं समीक्षा का क्षेत्र प्राय वक्तृत्वकला और गद्य शैली तक ही सीमित था। रोमन सम्राट् ऑगस्टस के पूर्व समीक्षा के क्षेत्र म बडी अनिश्चितता दिखायी देती थी, तथा प्लेटो और अरिस्टॉटल के सिद्धातो का स्थान या तो अन्य सिद्धान्तों ने ले लिया था या उन सिद्धान्तो को भुला दिया जा चुका था। आगस्टस (३१ ई० पू० १४ ई०) के शासन काल में जो भीषण गृहयुद्ध हुआ उसने रोमवासियों को दहला दिया, जिससे चारों ओर शान्ति की गुहार सुनायी देने लगी। ऐसी परिस्थिति मे होरेस आभिजात्य कला की नयी परम्परा लेकर अवतरित हुआ जिससे कि काव्य और कवियो की प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई। दरअसल, वक्तृत्वकला के क्षेत्र में जो स्थान सिसरो का है, वही कविता के क्षेत्र मे होरेस का। इस समय गृहयुद्ध समाप्त हो जाने पर राजनैतिक वक्तृताओं का महत्त्व घट गया था और अदालतो मे वक्तृता की आवश्यकता नही रह गयी थी। दूसरी ओर, रोम म जुलियस सीजर जैसी शासन व्यवस्था समाप्त हो चुका थी। सीजर कवियो को कष्टदायक शत्रु समझता था, जबकि आगस्टस उनका आदर-सत्कार करता था और इसलिए उसे अपने राज्यकार्य मे उनका समर्थन प्राप्त था। ऐसी दशा मे रोमवासियो का, साहित्य की—खासकर कविता के मूल्यांकन की—ओर उन्मुख होना स्वाभाविक

१—होरेस का पूरा नाम है क्विंटस होरेशियस फ्लक्स। उसका पिता गुलाम रह चुका था। फ्लकस का अर्थ है लटकते हुए कानों वाला। होरेशियस सम्भवत मालिक का नाम था जिसके यहाँ होरेस का पिता गुलामी करता था। विल ड्यूराण्ट, सीजर एण्ड क्राइस्ट, पृ० २५४।

था। होरेस न तत्कालीन युग का प्रवृत्तियो का नजदीक से देखा था, और अपने समय के सुप्रसिद्ध कवियो के सम्पर्क मे वह रहा था। इसीलिए होरेस की कविता मे तत्कालीन रीति रिवाज, नैतिकता राजनीति तथा साहित्यिक समस्याओ की चर्चा देखने मे आती है।

होरेस की कृतियाँ

इपोडस' (एक प्रकार का गीतिका य) ओडस (लघु गीत), 'सटायस (व्यग्य) एपिस्टल्स (पत्रकाव्य) और आस पोएतिक' (काव्यकला)—य होरेस की कृतिया हैं।[1] साहित्यिक समाक्षाएँ इन कृतियो मे जहा तहाँ उपलब्ध होती हैं।

'इपोड्स' (गीतिकाव्य) और 'ओड्स' (लघु गीत)

इपोडस मे विविध विषयो पर कुछ गम्भीर सामा य, कठोर और कटु कविताएँ हैं जिनमे 'घृणा का स्तुतिगान 'गृ युद्ध, प्रेम की विक्षिप्तता सु दरी युवती 'कवि और जादूगरन' उल्लेखनीय हैं। 'ओडस म कवि का प्रौढ शिल्पकला देखने मे आती है। यह चार विभागा मे विभक्त है। इस रचना की 'आगस्टस हमारा मुक्तिदाता आज का उपयोग करो कल को भूल जाओ, गाँव के लिए निमत्रण', 'पुस्तक की समीक्षा, प्रेम ऐसा ही होता है' 'घर सबसे सु दर है' ईमानदारी की शक्ति, कला की अधिष्ठातृ देवी का सामर्थ्य' 'दो प्रेमियो का समझौता' धन के बिना स तोष मैं नही मरूगा, प्रकृति को सिखाने दो' आदि कविताए हमारा ध्यान आकर्षित करती हैं। होरेस प्रकृति का पुजारी था और उसे रोम के 'गद गु बार, धन और कोलाहल से दूर तथा 'अपढ और दुष्ट बुद्धिवाले भीड भडक्के से बचकर अपने देहात म रहना पस द था जहाँ उसे शुद्ध जल और वायु मिल सके भोले भाले मजदूर उसके खेत मे काम कर सकें, और अनाज की निश्चित फसल हो सके।[2]

१—कम्प्लीट वक्स आफ होरेस कस्पर जे॰ फाइमर जूनियर 'यूयाक १९३६।

२—देखिए— एक जागरूक राजनीतिज्ञ को निमत्रण' (३ २९) और 'धन के बिना सतोष' (३ १६) नामक कविताए। एक व्यापारी का दिवास्वप्न' (इपोड्स १ २) कविता मे कहा गया है—

'अपनी व्यापारिक चिन्ताओं से विमुक्त वह मनुष्य कितना सुखी है जो अपने बलों से अपना पैतृक खेत जोतता है—ऋण के भार से मुक्त होकर। किसी वृक्ष की छाया मे या घने घास की चराई पर आराम से लेटे रहना कितना सुखकर है जबकि दोनों तटों के बीच कलकल करती हुई नदी बह रही हो, जगल के पक्षियों का मधुर स्वर सुनायी पड रहा हो और निद्रादेवी का आह्वान करनेवाली झरनों के जल प्रपात की ध्वनि कानो को सुख पहुँचा रही हो।"

'ग्राम्य गृह' (सटायस २ ६) मे भी इसी प्रकार का भाव व्यक्त किया गया है।

इन रचनाओं के सम्बन्ध में कतिपय आलोचकों का कथन था कि यूनानी कवितामों का अनुकरण होने के कारण इन्हें मौलिक नहीं कहा जा सकता। इस आक्षेप का उत्तर होरेस ने अपने हितैषी मित्र मायसिनस को लिखे हुए पत्र में दिया है।[1] होरेस ने सच्चे और झूठे अनुकरण का अर्थ बताते हुए अपनी रचना की मौलिकता प्रतिपादित की है, अंधानुकरण का उसने विरोध किया है। वास्तव में जैसा कहा जा चुका है, होरेस ने 'अनुकरण' का अर्थ पुनःसृजन किया है, पुनरावर्तन नहीं, जबकि हम प्राचीन कवियों की पद्धतियों को आत्मसात् करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं।

'सटायर्स' (व्यंग्य)

'सटायर्स' में होरेस की समीक्षा पद्धति का निखरा हुआ रूप देखने में आता है। होरेस की यह एक महत्त्वपूर्ण रचना है जो रोम के पापाचारों से प्रभावित होने के कारण, गम्भीर और हलके फुल्के विविध विषयों पर संवाद के रूप में लिखी गई है। इसके दो भाग हैं इसके व्यंग्य प्रधान लेखों में 'व्यंग्य का बचाव', 'आलोचकों को उत्तर', और 'किसी व्यंग्य लेखक को क्या करना चाहिए ?' उल्लेखनीय हैं। व्यंग्य का बचाव' (१४) में लेखक प्रारम्भ में यूपोलिस और अरिस्तोफनीस आदि प्राचीन कामेडी लेखकों का उल्लेख करते हुए व्यंग्य लेखक लूसिलस (१८०–१०२ ई० पू०) को विश्वसनीय बताते हुए उसकी वाग्विदग्धता और अन्वीक्षण शक्ति की सराहना करता है। होरेस की शिकायत है कि लोग व्यंग्य को हृदय से पसन्द नहीं करते, वे कवि और उनकी कविता से भयभीत रहते हैं कवियों से दूर रहने का वे उपदेश देते हैं क्योंकि उनके अनुसार कवि मरखने बैलों की भाँति अपने 'सींगों पर घास रखते' फिरते हैं। अपना ध्यान बँटाने के लिए कवि हास्य पैदा करते हैं और अपने मित्रों तक को वे नहीं छोड़ते। होरेस का कथन है कि जो वार्तालाप के योग्य भाषा में कविता लिखता है, उसे हम कवि नहीं कह सकते। यदि लेखक प्रतिभा सम्पन्न है—उसमें अनुप्रेरित प्रतिभा मौजूद है, तथा उसकी शैली भव्य और उदात्त है, तभी वह कवि कहे जाने के सम्मान का अधिकारी हो सकता है। ऐसी हालत में, होरेस के अनुसार, कॉमेडी की गणना कविता में नहीं की जा सकती, क्योंकि उसके शब्दों और विषयवस्तु में कोई प्रेरणा या शक्ति दिखाई नहीं देती।

आलोचकों को उत्तर' (११०) में होरेस ने व्यंग्य और हास्य की व्याख्या करते हुए बताया है कि श्रोताओं को हँसी से लोट पोट कर देना ही काफी नहीं। कविता में एक प्रकार की संक्षिप्तता होनी चाहिए जिसमें कानों को थका देनेवाले शब्दों की रुकावट के बिना कविता का अर्थ प्रवाहित होने लगे। कवि की शैली में विविधता

१—एपिस्टल्स, ११९।

था। होरेस ने तत्कालीन युग का प्रवृत्तियों का नजदीक से देखा था, और अपने समय के सुप्रसिद्ध कवियों के सम्पर्क म वह रहा था। इसीलिए होरेस की कविता में तत्कालीन रीति रिवाज, नैतिकता राजनीति तथा साहित्यिक समस्याओं की चर्चा देखने मे आती है।

होरेस की कृतियाँ

इपोडस (एक प्रकार का गीतिकाव्य) ओडस (लघु गीत), 'सटायस (व्यग्य) एपिस्टल्स (पत्रकाव्य) और आस पोएतिक' (काव्यकला)—य होरेस की कृतिया हैं।[1] साहित्यिक समाक्षाएँ इन कृतिया म जहा तहाँ उपलब्ध होता हैं।

'इपोड्स' (गीतिकाव्य) और 'ओड्स' (लघु गीत)

इपोडस मे विविध विषयो पर कुछ गम्भीर सामान्य कठोर और कटु कविताएँ हैं जिनम 'घृणा का स्तुतिगान' 'गृहयुद्ध प्रेम की विक्षिप्तता सुन्दरी युवती 'कवि और जादूगरन' उल्लेखनीय हैं। ओडस मे कवि की प्रौढ शिल्पकला देखने म आता है। यह चार विभागो म विभक्त है। इस रचना की 'आगस्टस हमारा मुक्तिदाता' आज का उपयोग करो कल को भूल जाओ', गाँव के लिए निमत्रण, 'पुस्तक की समीक्षा, प्रेम एसा ही होता है' घर सबसे सुन्दर है' ईमानदारी की शक्ति', कला की अधिष्ठातृ देवी का सामर्थ्य' 'दो प्रेमियों का समझौता' धन के बिना सन्तोष' मैं नही मरूगा, 'प्रकृति को सिखाने दो' आदि कविताएँ हमारा ध्यान आकर्षित करती हैं। होरेस प्रकृति का पुजारी था और उसे रोम के गद गुब्बार, धन और कोलाहल' से दूर तथा 'अपढ और दुष्ट बुद्धिवाले भीड भडक्के' से बचकर अपने देहात में रहना पसन्द था जहाँ उसे शुद्ध जल और वायु मिल सके भोले भाले मजदूर उसके खेत में काम कर सकें और अनाज की निश्चित फसल हो सके।[2]

१—कम्प्लीट वक्स ग्राफ होरेस कस्पर जे० क्राइमर, जूनियर न्यूयाक १६३६।

२—देखिए— एक जागरूक राजनीतिज्ञ को निमत्रण' (३ २६) और 'धन के बिना सतोष' (३ १६) नामक कविताए। एक व्यापारी का दिवास्वप्न' (इपोडस १ २) कविता में कहा गया है—

अपनी व्यापारिक चिन्ताओं से विमुक्त वह मनुष्य कितना सुखी है जो अपने बैलों से अपना पैतृक खेत जोतता है—ऋण के भार से मुक्त होकर। किसी वृक्ष की छाया मे या घने घास की चराई पर आराम से लेटे रहना कितना सुखकर है जबकि दोनों तटों के बीच कलकल करती हुई नदी बह रही हो, जगल के पक्षियों का मधुर स्वर सुनायी पड रहा हो और निद्रादेवी का आह्वान करनेवाली झरनों के जल प्रपात की ध्वनि कानों को सुख पहुँचा रही हो।"

'फ्रार्म एण्ड धुहा' (सटायस २ ६) मे भी इसी प्रकार का भाव व्यक्त किया गया है।

इन रचनाओ के सम्बन्ध में कतिपय आलोचकों का कथन था कि यूनानी कवि-ताओ का अनुकरण होने के कारण इन्हें मौलिक नही कहा जा सकता। इस आक्षेप का उत्तर होरेस ने अपने हितैषी मित्र मायसिनस को लिखे हुए पत्र म दिया है।[1] होरेस ने सच्च और झूठे अनुकरण का अर्थ बताते हुए अपनी रचना की मौलिकता प्रतिपादित की है, अंधानुकरण का उसने विरोध किया है। वास्तव में जैसा कहा जा चुका है, होरेस ने 'अनुकरण' का अर्थ पुनःसृजन किया है, पुनरावर्तन नही, जबकि हम प्राचीन कवियो की पद्धतियो को आत्मसात् करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं।

'सटायर्स' (व्यंग्य)

'सटायर्स' मे होरेस की समीक्षा पद्धति का निखरा हुआ रूप देखने में आता है। होरेस की यह एक महत्त्वपूर्ण रचना है जो रोम के पापाचारों से प्रभावित होने के कारण, गम्भीर और हल्के फुल्के विविध विषयो पर सवाद के रूप मे लिखी गई है। इसके दो भाग हैं इसके व्यंग्य प्रधान लेखों में 'व्यग्य का बचाव', 'आलोचकों को उत्तर', और 'किसी व्यंग्य लेखक को क्या करना चाहिए ?' उल्लेखनीय हैं। व्यग्य का बचाव' (१ ४) मे लेखक आरम्भ म यूपोलिस और अरिस्तोफनीस आदि प्राचीन कॉमेडी लेखकों का उल्लेख करते हुए व्यग्य लेखक लूसिलस (१८०-१०२ ई० पू०) को विश्वसनीय बताते हुए उसकी वाग्विदग्धता और अन्वीक्षण शक्ति की सराहना करता है। होरेस की शिकायत है कि लोग व्यग्य को हृदय से पसन्द नही करते, व कवि और उनकी कविता से भयभीत रहते हैं कवियो से दूर रहने का वे उपदेश देते हैं क्योंकि उनके अनुसार कवि मरखने बैलो की भांति अपने 'सीगो पर घास रखे' फिरते हैं। अपना ध्यान बँटाने के लिए कवि हास्य पैदा करते हैं और अपने मित्रो तक को वे नही छोडते। होरेस का कथन है कि जो वार्तालाप के योग्य भाषा मे कविता लिखता है, उसे हम कवि नही कह सकते। यदि लेखक प्रतिभा सम्पन्न है—उसम अनुप्रेरित प्रतिभा मौजूद है तथा उसका शैली भव्य और उदात्त है, तभी वह कवि कहे जाने के सम्मान का अधिकारी हो सकता है। ऐसी हालत मे होरेस के अनुसार कॉमेडी की गणना कविता मे नही की जा सकती क्योंकि इसके शब्दो और विषयवस्तु मे कोई प्रेरणा या शक्ति दिखाई नही देती।

'आलोचकों को उत्तर' (१ १०) में होरेस ने व्यग्य और हास्य की व्याख्या करते हुए बताया है कि श्रोताओ को हँसी से लोटपोट कर देना ही काफी नही। कविता म एक प्रकार की संक्षिप्तता होनी चाहिए जिससे कानो को थका देनेवाले शब्दो की रुकावट के बिना कविता का अर्थ प्रवाहित होने लगे। कवि की शैली मे विविधता

१—एपिस्टल्स, १ १९।

होनी चाहिए—कभी वह गम्भीर हो, कभी प्रसन्न, कभी उसमें वक्तृत्वकला दिखाई पड़े, कभी वह काव्यात्मक हो और कभी व्यंग्यात्मक—एक ऐसे पुरुष की भाँति जो अपने हाथों को पकड़ लेता है और जो कुछ वह बोलता है उससे अधिक उसका अभिप्राय उसमें रहता है। उपहास को होरेस ने इसलिए उपयोगी कहा है कि जिस महत्त्वपूर्ण विषय को हम गंभीर शब्दों द्वारा बोधगम्य नहीं बना सकते, उसे हँसी-मजाक या व्यंग्य द्वारा बहुत सरलतापूर्वक अधिक प्रभावशाली बना सकते हैं। आगे चलकर होरेस ने पालियो, वरियस, वर्जिल, वरो, लुगालियस आदि लेखकों की सराहना की है। अन्त में होरेस ने कहा है कि यदि कोई चाहता है कि उसकी रचना दुबारा पढ़ी जाय तो उसे एक बार लिखकर उसे फाड़ डालना चाहिए, तथा जनसमूह द्वारा अपनी रचना की प्रशंसा की अपेक्षा न कर उसे चाहिए कि वह विवेकशील अल्प सम्यक पाठकों की प्रशंसा से सन्तुष्ट रहे।

होरेस की तीसरी समीक्षात्मक रचना है 'किसी व्यंग्य लेखक को क्या करना चाहिए ?' (२१)। होरेस और ट्रीबटियस के बीच होनेवाला एक मनोरंजक संवाद देखिए —

होरेस—कुछ लोग मेरे व्यंग्य को बहुत तीखा कहते हैं जो बहुत गहरा घाव करता है। कुछ का कहना है कि मेरी कविता ओज से हीन है। बताओ ट्रीबटियस, इस विषय में तुम्हारी क्या राय है।

टीबटियस—कुछ भी नहीं।

होरेस—तो तुम्हारा मतलब है कि मैं कविता लिखना बिल्कुल छोड़ दूँ ?

टीबटियस—हाँ।

होरेस—अरे, यह खूब रही तुम्हारी सलाह! लेकिन जानते हो ऐसा करने से मुझे नींद न आयगी ?

ट्रीबटियस—नींद आने की दवा मैं बताये देता हूँ। देखो अपने शरीर पर तेल की मालिश करो, टिबर नदी में खूब तैरो और रात को बहुत सी शराब पीकर सो जाओ। यदि तुम्हें लिखना ही है तो विजेता सीजर को अपना कविता का विषय बनाने का साहस करो। इस कष्ट के लिए तुम्हें काफी पुरस्कार प्राप्त होंगे।

होरेस—मैं यह काम खुशी से करता लेकिन ऐसा करने की मुझमें योग्यता नहीं है।

अन्त में होरेस लिखता है कि किसी भी हालत में—चाहे वृद्धावस्था उसकी प्रतीक्षा कर रही हो चाहे मृत्यु अपने पंख फैलाये उसके चारों ओर मँडरा रही हो चाहे उसे दरिद्रता का सामना करना पड़े या वह सम्पन्नता से घिरा हो चाहे वह रोम में रहे या उसे देश निवासन की यातना सहनी पड़े—लिखने के लिए वह कटिबद्ध है।

होरेस स्वयं अपने ऊपर भी व्यंग्य बाणों की वर्षा करने से नहीं चूकता। उसका 'स्वर्णिम उपाय' (१ १) नामक निबन्ध आदि से अन्त तक व्यंग्यों से परिपूर्ण है। वह मायसिनेस से प्रश्न करता है, क्या कारण है कि कोई भी व्यक्ति अपने जीवन से सन्तुष्ट नहीं—चाहे वह जीवन उसने स्वयं स्वीकार किया हो या वह उस पर आ पड़ा हो। उदाहरण के लिए, व्यापारी सैनिक के जीवन को अच्छा समझता है और सैनिक व्यापारी के। और सौभाग्यवश यदि कोई देवता दोनों के जीवन का परस्पर बदल देने की बात करे, तो जानते हैं क्या होगा ? दोनों में से कोई भी अपने जीवन की अदलाबदली करना पसन्द न करेगा। और फिर भी दोनों को एक-दूसरे का जीवन ही अच्छा लगता रहेगा ! ऐसी हालत में यदि वह देवता गुस्से से गुर्रा कर घोषित कर दे कि जाओ अब से मैं तुम्हारी प्रार्थना पर कभी ध्यान नहीं दूंगा, तो क्या उसका यह कथन न्यायपूर्ण नहीं समझा जायगा ?

धन का संचय करनेवालों पर व्यंग्य करते हुए होरेस ने लिखा कि जो चींटियाँ वर्ष-भर अपने मुंह में अपने भोजन का सामान ढोती फिरती हैं, वे भी शीत ऋतु में अपने बिलों से बाहर नहीं निकलती। लेकिन धन संचय करनेवाले व्यक्ति को ग्रीष्म ऋतु, शीत ऋतु अग्नि समुद्र या तलवार कोई भी चीज धन इकट्ठा करने से नहीं रोक सकती। भय से कांपते हुए अपने धन को जमीन में गाड़ कर रखने से उसे कितना आनन्द मिलता है ! अन्यथा यदि वह उसे खर्च करने लग जाय तो उसके पास फिर बचेगा ही क्या ? लेकिन यदि वह इस धन को खर्च न करे तो फिर उसका संचय करने में आकर्षण ही क्या रह जाता है ? यदि रात और दिन, भय के कारण, अर्धमृत अवस्था में, दुष्ट चोरों से, आग अथवा चुराकर भाग जानेवाले गुलामों से अपने धन की अत्यन्त सावधानीपूर्वक रक्षा करने में किसी को सन्तोष प्राप्त होता है तो ऐसे सन्तोष से तो मैं कंगाल बनकर रहना ही अधिक पसन्द करूँगा। तात्पर्य यह कि लेखक किसी वस्तु की सीमा का अतिक्रमण न करने का समर्थन करता हुआ 'स्वर्णिम उपाय' स्वीकार करने को उत्कृष्ट समझता है।

होरेस के कथनानुसार यूनान के लोग व्यंग्यात्मक शैली से अपरिचित थे[१], यद्यपि इस शैली को उसने यूपोलिस, क्रैतिनोस और अरिस्तोफनीस की प्राचीन कॉमेडी का ही विकास कहा है। प्राचीन कॉमेडी की भाँति इसका उद्देश्य उन्हीं लोगों पर आक्रमण करना था जो आक्रमण किये जाने योग्य हैं।[२] विद्वेषपूर्ण निन्दा अथवा गर्हणा से इसका प्रयोजन नहीं था, इसका प्रयोजन था[३] ऐसी बुराइयों को

१—'आलोचकों को उत्तर' (१ १०, पृ० ३६)।
२—'किसी व्यंग्य लेखक को क्या करना चाहिए ?' (२ १, पृ० ४४)।
३—होरेस ने लिखा है—"मेरी लेखनी किसी व्यक्ति पर आक्रमण नहीं करेगी।"

दूर करना जिसे हम गम्भीर उक्तियों अथवा मुक्त प्रवृत्तियों द्वारा दूर करने में असमर्थ रहते हैं। इस दृष्टि से होरेस ने कवि को बहुत ऊँचा स्थान दिया है—पद्य में काव्यसर्जन करनेवाला रोम का यह प्रथम व्यंग्य लेखक है, उसके व्यंग्य बाण इतने प्रभावशाली हैं कि वे "नगर का कोढ़ों को मार दे" ठीक कर देते हैं, तथा उसकी सच्ची उक्तियाँ उसकी रचनाओं को उसके जीवन का दर्पण बना देती हैं।[1]

'एपिस्टल्स' (पत्रकाव्य)

पत्रकाव्य के दो भागों में होरेस के मुख्यतया साहित्यिक तथा दार्शनिक और व्यक्तिगत पत्रों का संग्रह है जो उसने अपनी प्रौढ़ अवस्था में समय समय पर अपने साहित्यिक मित्रों को लिखे थे। दरअसल 'ओड्स' समाप्त करने के पश्चात् गीतकाव्य लिखना छोड़कर होरेस ने जीवन सम्बन्धी अधिक गम्भीर विषयों पर विचार करने के लिए गुप्त पत्रों का माध्यम लिया जिनमें सदाचार, साहित्य और कला आदि की चर्चा की गयी। इस रचना में शास्त्रवादी (क्लासिकल) यूनानी काव्य पर आधारित लैटिन कविता के समर्थन की आवश्यकता पर जोर दिया गया है। यहाँ 'कविता से नाता क्यों तोड़ दिया' 'महान् साहित्य का मूल्य' प्राचीन यूनानियों के प्रति आधुनिक साहित्यिक मनोवृत्ति, 'काव्यसर्जन न करने के लिए क्षमा प्रार्थना' आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है। मुख्यतया पुस्तक के दूसरे भाग में कविता की विवेचना की गयी है। फ्लोरस को लिखे गये पत्रकाव्य में लेखक ने अपनी काव्य प्रवृत्तियों का परित्याग करने के कारण बताये हैं। कवि ने कला की अधिष्ठातृ देवी को प्रसन्न करना चाहा, लेकिन उसके इर्द गिर्द चक्कर काटनेवाली परिस्थितियों ने उसकी काव्यशक्ति का अपहरण कर लिया जिससे हास उपहास, प्रेम, मनोरंजन और आनन्ददायी क्षणों के प्रति उसकी रुचि नष्ट हो गयी। ऐसी हालत में काव्य सर्जन कैसे सम्भव था? उस समय जो रोम के कवि कविता के क्षेत्र में ख्याति प्राप्त करने के लिए एक-दूसरे की प्रशंसा करके नाम कमाना चाहते थे—उसकी भी होरेस ने गहणा की है। होरेस ने लिखा है कि इससे समीक्षा का ह्रास हो रहा था जो कविता के लिए अत्यन्त हानिकारक था, क्योंकि काव्यसर्जन के लिए अचूक निर्णय और कठोर परिश्रम की आवश्यकता होती है (एपिस्टल्स २ २)।

इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है आगस्टस को लिखा हुआ पत्र। यहाँ होरेस ने

यह मेरे अपने बचाव के लिए ढाल में रखी हुई तलवार का काम देगी। फिर मैं तब तक इसका उपयोग क्यों करूँ जब तक कि मैं डाकुओं के आक्रमण से सुरक्षित हूँ।" एक व्यंग्य-लेखक को क्या करना चाहिए', २ १, पृ० ४२।

१—फार फ्लागिंग द सिटी विथ हिज विट, 'आलोचकों को उत्तर' (१ १०पृ०३७)।

२—'किसी व्यंग्य लेखक को क्या करना चाहिए' (२ १), एटकिन्स वही, पृ०५६।

कविता सम्बन्धी नयी मान्यता का समर्थन किया है। पहले उसने काव्य का निर्णय करने में अपनाये जानेवाले गलत मापदण्डों की चर्चा की है। होरेस के अनुसार यदि कोई कवि सौ वर्ष का बूढ़ा है तो यह उसकी साहित्यिक श्रेष्ठता की कसौटी कैसे मानी जा सकती है? और फिर महीनों या कुछ ही वर्षों पुराने कवियों की गणना किस श्रेणी में की जायगी? आगे चलकर होरेस ने अपने सामयिक लेखकों के सम्बन्ध में अपना आलोचनात्मक मत व्यक्त किया है। होरेस ने बताया है कि उस समय बड़े छोटे और शिक्षित अशिक्षित सभी लोगों के मन में एक ही उत्कण्ठा थी और वह थी कवि बनकर यश प्राप्त करने की। और वह कवि भी कैसा? जिसे धन सम्पत्ति का लोभ न हो—लोभ हो केवल अपनी कविता का। रूखा सूखा खाकर वह सन्तुष्ट रहता था। यदि कोई नुकसान हो जाता, कोई गुलाम भाग जाता या आग लग जाती तो वह इन बातों को हँसकर टाल देता। वह कभी किसी को धोखा न देता और अपने नगर की सेवा करने में दत्तचित्त रहता। नवयुवकों को अपनी कला द्वारा वह प्रोत्साहित करता तथा दरिद्र और रोगियों को सान्त्वना देता। होरेस के अनुसार, महान पुरुषों के गुणगान करने तथा वर्जिल और वैरियस की भांति वीरों की यशोगाथा का उच्चारण करने में नयी कविता की सफलता है, और इस कार्य के लिए ऐसे कवियों की ओर से होरेस ने ऑगस्टस जैसे शक्तिशाली और उदारमना व्यक्ति द्वारा संरक्षण की आवश्यकता का समर्थन किया है। यहां होरेस उस नयी कविता का समर्थन करता हुआ दिखायी देता है जिसका आदर्श ऊँचा हो तथा प्राचीन यूनानी कविता से जो अनुप्राणित हो। इस कविता का उद्देश्य होगा सभ्यता का प्रचार करना, ऐसी कविता राज्य का भूषण होगी और उससे राजनीतिज्ञों को बल प्राप्त होगा (एपिस्टल्स २ १)।

'आर्स पोएटिक' (काव्यकला)

'काव्यकला' होरेस की अन्तिम रचना है। यहाँ कविता लिखने (विशेषकर नाटक) तथा कवियों को प्रशिक्षण देने के सम्बन्ध में चर्चा की गई है। सम्भवतः यह होरेस का अन्तिम पत्रकाव्य था जो उसने मित्रता के नाते काव्य रचना सम्बन्धी सलाह देते हुए कालपरनियस पीसो (Calpurnius piso) को लिखा था। ४७६ पंक्तियों का यह पत्र पीसो और उसके दो पुत्रों को लिखा गया था जो सम्भवतः अपूर्ण है और कवि की मृत्यु के पश्चात् प्रकाश में आया। काव्य-समीक्षा में अरस्तू के 'पोएटिक्स' के बाद इसी का नाम लिया जाता है। यही पत्र 'काव्यकला' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

सर्वप्रथम होरेस ने विषयवस्तु के सम्बन्ध में बताया है कि विषय चाहे कुछ भी हो परन्तु वह सरल होना चाहिए और उसमें अन्तर्विरोध नहीं होना चाहिए। लेखकों

को ऐसा विषय चुनना चाहिए जिसका वे निर्वाह कर सकें, और इस बात का उन्हें काफी समय तक विचार करना चाहिए कि वे उसका भार वहन कर सकेंगे या नहीं। जो लेखक अपने विषय का ठीक प्रकार से चयन करने का पूर्ण प्रयत्न करता है, उसे उपयुक्त शब्दावलि और प्रांजल वाक्य विन्यास के सम्बन्ध में कोई कठिनाई नहीं होती। कविता के सम्बन्ध में होरेस का कहना है कि उसका केवल उत्कृष्ट होना ही पर्याप्त नहीं उसे आकर्षक भी होना चाहिए, तथा श्रोता का मन बरबस उसकी ओर आकृष्ट हो जाना चाहिए। जैसे मनुष्य का चेहरा मुस्कान के बदले मुस्कान देता है, उसी प्रकार कविता आंसुओं का प्रत्युत्तर आंसुओं से देती है। यदि तुम मुझे रुलाना चाहते हो तो पहले तुम्हें स्वयं दुःख का अनुभव करना होगा।

नाटक के सम्बन्ध में होरेस ने लिखा है कि यदि तुम रंगमंच पर कोई ऐसा विषय प्रस्तुत करना चाहते हो जिसके लिए पहले कभी प्रयत्न न किया गया हो और तुम साहसपूर्वक किसी नये चरित्र का निर्माण कर रहे हो तो अन्त तक उसे वैसा ही चित्रित करो जैसा वह शुरू में था—सामजस्य से युक्त। अत्यन्त प्रचलित विषय को मौलिक रूप मे प्रस्तुत करना कठिन होता है। मेरा उद्देश्य होगा किसी ज्ञात विषय को लेकर इतनी कुशलतापूर्वक कविता करना कि कोई भी उसके अनुकरण के लिए लालायित हो उठे, लेकिन फिर भी कठिन परिश्रम के बावजूद सफल न हो। कवि का उद्देश्य आलोक मे से धुआं ग्रहण करना नहीं, बल्कि धुएं से आलोक ग्रहण करना है जिससे वह सजीव चित्रों द्वारा हमे चमत्कृत कर सके। कवि कथा की चरम परिणति की ओर द्रुतगति से अग्रसर होता है और श्रोताओं को कथानक के बीच इस प्रकार ले जाता है मानों वह उन्हें पूर्व विदित हो। जो कुछ वह अपने आलोक से स्पष्ट नहीं कर पाता उसे वह छोड़ देता है। वह अपने कथानक को इस तरह इस्तेमाल करता है, झूठ और सच को इस तरह मिश्रित करता है कि उसके आदि, मध्य और अन्त मे एक ही स्वर स्पंदित होता है। सुनिए मैं और सारी दुनिया आपसे क्या आशा रखती है? यदि आप चाहते हैं कि आपको ऐसे सहृदय श्रोता मिलें जो परदा गिरने तक शान्त बैठे रहें और हर्ष ध्वनि करते रहें तो आपको प्रत्येक युग की विशेषताओं पर ध्यान देना होगा और जो स्वभाव समय की गति के कारण बदल जाते हैं, उन्हें उपयुक्त सौन्दर्य गरिमा से विभूषित करना होगा।

किसी भी नाटक में, जिसकी मांग हो और जिसे फिर से खेलना हो पाँच अंक होने चाहिए—न कम, न ज्यादा। देवताओं का प्रवेश तब तक न हो जब तक कि कोई ऐसी कठिनाई उपस्थित न हो जाय जो उनके बिना दूर न हो सके। चौथे अभिनेता का बोलने के लिए अग्रसर नहीं होना चाहिए। सामूहिक गान को अभिनेता के पाट और उसके कर्तव्य को उत्साहपूर्वक निभाना चाहिए, तथा बीच में ऐसी कोई बात न करनी चाहिए जो कार्य को आगे न बढ़ाये, और कथानक के साथ उसकी

स्वाभाविक सगति न बैठे। सामूहिक गान को शिवत्व का पोषक और सत्परामर्शदाता होना चाहिए।

आलोचक के सम्बन्ध मे होरेस ने लिखा है—मैं सान के उस पत्थर के समान बनूँगा जो दूसरों को तेज करता है, लेकिन अपने आपको नहीं काटता। इसी तरह यद्यपि मैं कुछ भी न लिखू, पर तु मैं लेखक को उसका कर्तव्य और उसका दायित्व जरूर सिखा दूँगा। मैं यह बता सकूगा कि उसे सामग्री कहाँ से प्राप्त हो सकेगी, कौन सी ऐसी बातें हैं जो उस कवि के ढाँचे मे ढाल सकेंगी, कौन सी बातें उसकी अपनी हो जायेंगी और कौन सी नहीं, तथा कहाँ उसे ज्ञान की प्राप्ति होगी और कहाँ वह गलती करेगा।

उत्तम साहित्य का रहस्य है सद्विवेक। सुकरात के अनुयायियों की कृतियों मे इसके तथ्य मिल जायेंगे—निर्भ्रान्त दृष्टि से उन्हे ग्रहण करो और फिर शब्द स्वाभाविक रूप से स्वय निस्सृत होने लगेंगे।

कवि का उद्देश्य या तो उपयोगिता होता है, या मनोरजन करना, अथवा आनन्द और उपयोगिता दोनों का समन्वय। तुम्हे चाहे जो अभिप्रेत हो, लेकिन जो तुम कहो सक्षेप में कहो जिससे तुम्हारे श्रोता उसे शीघ्रता से समझ सकें और ठीक तरह याद रख सकें। अनावश्यक शब्द उसी की लेखनी से उद्भूत होते हैं जिसकी स्मृति में आवश्यकता से अधिक शब्दों का बोझ रहता है। उपन्यास वही आनन्द प्रदान कर सकता है जो यथार्थ के अधिक निकट हो। तुम्हारे नाटक ऐसे न होने चाहिए जिनपर विश्वास करना ही कठिन हो जाय।

कविता चित्रकारी की तरह होती है। कोई चित्र आपको निकट से अच्छा लगता है, कोई दूर से कोई मन्द प्रकाश मे अच्छा लगेगा, कोई तेज प्रकाश की पृष्ठभूमि में किसी के प्रति आकर्षण एक बार होकर रह जाता है, किसी के प्रति बार-बार होता है।

अन्त मे पीसो को लक्ष्य करके होरेस लिखता है—यदि वह कभी कुछ लिखे तो सर्वप्रथम आलोचक मायसियस को दिखा ले, फिर अपने पिता को, और फिर मुझे दिखाये और तत्पश्चात् अपनी पाण्डुलिपि को अपनी दराज मे दस वर्ष तक रख छोड़े। जो चीज अप्रकाशित है उसे तो रद्द किया जा सकता है, लेकिन यदि एक भी शब्द प्रकाशित हो जाय तो उसे वापिस नहीं लिया जा सकता।[1]

काव्य-समीक्षा के क्षेत्र में होरेस का स्थान

होरेस ने अपने समय में प्रचलित काव्य समीक्षा का निर्णय करनेवाली पद्धति की आलोचना की है। उस समय काव्य-समीक्षा का निर्णय प्राय व्याकरण के पण्डितो

१—आर्स पोएतिक, पृ० ३८७-४१२।

ट हाथ में था जो अध्यापन का काम करते थे। होरेस ने श्रॉगस्टस को लिखे हुए अपने पत्र-काव्य में इन लोगों की पुरातनता—प्राचीन रोमन कविता—के प्रति प्रेम का उपहास किया है। होरेस का कथन है कि विचारों की स्पष्टता में अभाव के कारण ही इन लोगों को पुरातनता का आश्रय लेना पड़ा। समीक्षा के क्षेत्र में उसने यूनानी समीक्षा के मापदण्डों का अनुकरण करने की ही सलाह दी है। होरेस ने अनुभूति के ऊपर जोर अवश्य दिया है, लेकिन उसका कथन है कि कवन अनुभूति ही कला नहीं। कला के लिए उसने रूप को प्रावश्यक माना है अर्थात् स्वच्छन्दतावादी शैली की जगह शास्त्रवादी कला को वह मुख्य मानता है। कला में रूप का निर्माण करने के लिए सतत यूनानी कविता के अध्ययन पर उसने जोर दिया है। होरेस ने कविता के लिए शब्दरचना को मुख्य माना है और इसके लिए शब्दों के चुनाव और उनके उचित विधान पर जोर दिया है। होरेस ने बताया है कि किसी श्रेष्ठ रचना के लिए आडम्बरयुक्त शब्दों का प्रयोग न हो, कर्कश शब्दों का परिमार्जन हो तथा गौरव और सामर्थ्य से हीन शब्दों को दूर ही रखा जाय। होरेस ने विभिन्न काव्य प्रकारों के लिए विभिन्न छन्दों का प्रयोग करने की सलाह दी है। जहाँ तक नाटक के कथानक, चरित्रचित्रण और शैली का सम्बन्ध है, उसने अरिस्टोटल का ही अनुकरण किया है।

होरेस का मानना था कि कविता हममें वीरत्व और विवेक जागृत करती है और इससे हमारे विश्राम के क्षण आनन्दपूर्वक व्यतीत होते हैं। कविता को होरेस ने दिव्य वस्तु कहा है और कवि को कला की अधिष्ठातृ देवी का अश्रुतपूर्व गीतों का गायक पुरोहित माना है। उसका कहना है कि कविता में मनोवेगों को आन्दोलित करने की सामर्थ्य हो, आनन्द प्रदान करने की शक्ति हो, चुने हुए आदर्शों पर वह आधारित हो, कला के सिद्धान्तों का उसमें समावेश हो तथा ठोस अर्थ रचना सामंजस्य और औचित्य उसमें विद्यमान हों। यद्यपि होरेस की काव्यगत मान्यताओं और काव्य-कला सम्बन्धी सिद्धान्तों को अन्तिम सिद्धान्त नहीं कहा जा सकता, फिर भी आधुनिक अंग्रेजी समीक्षा को उसने काफी प्रभावित किया है। फ्रांस के समीक्षक ब्वालो ने होरेस की रचना से प्रभावित होकर ही 'काव्यकला' नामक पुस्तक लिखी जिसका पाश्चात्य आलोचना जगत् में पर्याप्त आदर हुआ।

प्लिनी ज्येष्ठ (२३-७९ ई०)

प्लिनी ज्येष्ठ का पूरा नाम था कैयुस प्लिनियुस सेकंदुस (Caius Plinius Secundus)। वह एक प्रकृतिवादी और विश्वकोश का लेखक था। प्रकृति यानी प्राकृतिक शक्तियों के समूह को ही वह एकमात्र देवता मानता था। उसका कहना था कि शिक्षित और अशिक्षित दोनों इस बात मे विश्वास करते हैं कि जिन नक्षत्रों मे मनुष्य पैदा हुआ है, वे ही उसके भाग्य विधाता हैं।

प्लिनी यद्यपि अपने जीवन भर एक सैनिक, वकील, प्रशासनकर्ता और पश्चिम रोम की नौसेना का प्रमुख रहा है, फिर भी आश्चर्य है कि वक्तृत्व-कला, व्याकरण, भाला फेंकना और रोम का इतिहास आदि विषयो पर उसने ३७ पुस्तकें लिखीं। उसके विश्वकोश में इस भूमण्डल पर पायी जानेवाली ऐसी कोई भी चीज नही होगी जिसका विवरण यहाँ न दिया गया हो। ४७३ लेखकों की २००० पुस्तकों के आधार से किये गये २० हजार विषयों का यहाँ विवेचन है।

प्लिनी को पढ़ने लिखने का बहुत अधिक शौक था। रात रातभर बिना सोये वह पढता लिखता रहता। रात को एक या दो बजे उठकर वह लिखना प्रारभ कर देता। सूर्योदय के पूर्व ही वह राजा के दरबार मे उपस्थित हो जाता। जो कुछ कामकाज वहाँ उसे बताया जाता, उसे पूरा करके घर लौटता और फिर लिखने-पढ़ने मे जुट जाता। दुपहर को थोडा बहुत आराम करता, लेकिन इस समय कोई पुस्तक उसे पढ़कर सुनायी जाती। उसके बाद स्नान करके वह हल्का-सा नाश्ता करता और कुछ समय के लिए आराम करने चला जाता। तत्पश्चात् दुपहर का भोजन करने के समय तक पढ़ता रहता। जो पुस्तक उसे पढ़कर सुनायी जाती, उसके नोट्स ले लेता। स्नान के समय को छोडकर अपने बाकी के समय में—तेल-मालिश कराते समय भी—वह कुछ न कुछ पढता रहता, सुनता रहता अथवा बोलकर लिखवाता रहता।

केवल प्राकृतिक इतिहास के अध्ययन से ही वह सन्तुष्ट न था दार्शनिक बनने की भी उसकी अभिलाषा थी। अपनी रचनाओं म उसने अनेक स्थानो पर मानव-जीवन-संबंधी टीका टिप्पणियाँ लिखी हैं। मनुष्यों की अपेक्षा पशुओं के जीवन को बेहतर बताते हुए वह लिखता है पशु कभी मानप्रतिष्ठा, धन दौलत, महत्वाकांक्षा अथवा मृत्यु के बारे मे विचार नही करते। बिना सिखाये हो वे सीख जाते हैं, उन्हें पोशाक पहनना और टीम टाम करना पसन्द नही अपनी जाति के विरुद्ध वे कभी युद्ध नहीं ठानते। धन की खोज मानव का सुख प्राप्ति के लिए भयकर सिद्ध हुई है, इससे कुछ लोग आलसी बन गये और कुछ की काम करते-करते सारी जिन्दगी

बीत गई। जमींदार और किसान इसके उदाहरण हैं। लोहे के बारे में उसने लिखा है—"वह चाहता था कि लोहे की खोज न की जाती तो कितना अच्छा होता! इससे युद्धों की भीषणता बढ़ गयी है जिससे मनुष्य अधिक त्वरित गति से मृत्यु के मुख मे पहुंच जाता है। लोहे के पर लगा कर हमने उसे उड़ना सिखा दिया है।"

प्लिनी ने प्राचीन चित्रकला, मूर्तिकला उद्योग धंधे और रस्म रिवाजों का भी विस्तार से वर्णन किया है। उसके लेखों में बहुत सी बेतुकी बातें भी दिखाई दे जाती हैं। जैसे, यदि कोई उपवासा आदमी किसी साँप के ऊपर थूक दे तो साँप की मृत्यु हो जाती है, तथा यदि मासिक धर्म को प्राप्त कोई स्त्री बीजों को छू दे तो वे अपनी उत्पादन शक्ति खो बैठते हैं, जिस वृक्ष के नीचे वह बैठती है उसके पत्ते गिरने लगते हैं, उसकी नजर से इस्पात की धार भोंथरी हो जाती है, हाथी दांत की चमक नष्ट हो जाती है तथा मधुमक्खियों की मृत्यु हो जाती है। इन्हीं सब बातों को देखकर विलडयूराण्ट ने उसकी 'नैचुरल हिस्ट्री' (प्राकृतिक इतिहास) नामक रचना को 'रोमी अज्ञानता का एक स्थायी स्मारक' कहा है। वस्तुत तत्कालीन अधविश्वासों 'बिल्दारा वशीकरण मंत्र तथा जादू-टोटके से रोगी को स्वस्थ करना आदि विधियों का ही उसने अधिकतर वर्णन किया है, जिसमें कि उसका विश्वास था।[1]

१—विलड्यूराण्ट, सीजर एण्ड क्राइस्ट, पृ० ३०८।१

प्लिनी कनिष्ठ (६१–११३ ई०)

प्लिनी कनिष्ठ का पूरा नाम है पब्लियुस सिसीलुस सेकण्डुस (Publius Caecilius Secundus)। प्लिनी ज्येष्ठ का भतीजा होने का उसे गर्व था। प्लिनी ज्येष्ठ ने उसे अपना दत्तक पुत्र बनाकर रक्खा था। क्विण्टीलियन से रोम में उसने शिक्षा पाई। धनी होने के साथ वह उदार वृत्ति का था और अपने मुवक्किलों से मुकदमा लड़ने की फीस तक नहीं लेता था।

प्लिनी पढ़ लिखकर लोगों का मनोरंजन किया करता। प्रारम्भ में उसने यूनानी ट्रैजेडी-नाटक लिखे और तत्पश्चात् कविता। अपने महत्त्वपूर्ण पत्रों का प्रकाशन भी उसने किया जो काफी लोकप्रिय हुए। अपने किसी मित्र का भोजन निमन्त्रण स्वीकार करते हुए उसने लिखा था कि यदि भोजन करते समय दर्शन-सम्बन्धी चर्चा हो और उसे जल्दी ही लौटने की छुट्टी मिल जाय तो ही वह निमन्त्रण स्वीकार कर सकेगा। अपनी कीर्ति को स्थायी बनाने के लिए वह बहुत उत्सुक था। उसका कहना था कि यदि कोई दूसरे के गुणों की प्रशंसा करता है तो निश्चय ही वह भी गुणी है। लोगों को वह रुपया कर्ज देता, उन्हें पुरस्कार बाँटता और अपने मित्रों की कन्याओं के लिए वर की तलाश भी कर देता था। अपनी कन्या का विवाह करते समय जब उसका गुरु क्विण्टालियन उचित दहेज न दे सका तो उसने अपने पास से दहेज का प्रबन्ध किया। अपने संगी-साथियों को भी वह बहुत सा रुपया देता और सार्वजनिक कार्यों में दिल खोलकर व्यय करता था।[1]

प्लिनी कनिष्ठ के दिलचस्प पत्र (९६–११३ ई० के बीच लिखे हुए) अनेक दृष्टियों से उल्लेखनीय हैं। क्विण्टीलियन का शिष्य होने के कारण अपने समय के अनेक साहित्यिक विद्वानों से उसकी मित्रता थी और साहित्यिक गोष्ठियों में उसका बहुत नाम था। गोष्ठियों में सम्मिलित होनेवाले सदस्य सार्वजनिक स्थानों में कविता पाठ करते और भाषण देते। रोमन सम्राट् से भी उसका परिचय था। इन्हीं सब बातों से उसके पत्रों में तत्कालीन रोम का सामाजिक, राजनीतिक और बौद्धिक चित्र प्रतिबिंबित होता है। इनका साहित्यिक मूल्य भी कम नहीं है। साहित्यिक शैली के संबंध में जहाँ-तहाँ विचार व्यक्त किये गये हैं। शैली को सुधारने के लिए सर्वोत्कृष्ट लेखकों का अनुकरण करने का आदेश दिया गया है, यद्यपि इन लेखकों में केवल दिमोस्थनीस, सिसरो और काल्वुस (Calvus) का ही उल्लेख है। सावधानीपूर्वक विचारों की क्रमबद्धता, अलंकारों का कौशल और प्रस-

---

१—वही पृ ४३९–४०।

मद्धता के परिवजन पर जोर दिया गया है, क्योंकि प्लिनी के अनुसार, केवल पद-विन्यास ही पर्याप्त नही है। शली को विशद बनाने के लिए उसने यूनानी व लटिन और लैटिन से यूनानी भाषा म अनुवाद करने तथा लघु कविताएँ लिखने का सिफारिश की है। किसी बात को स क्षेप म कहने की अपेक्षा उसे विस्तार म लिखने को वह अधिक पसन्द करता है—जसे किसी ठोस पदाथ का आकार बनाने के लिए उसे बार बार लोहे से पीटना पडता है। अतएव जितना ही अधिक विस्तारपूर्वक किसी बात को कहा जायगा, उतना ही उसम गौरव और सौंदय आ सकेगा। शली में रग और ओज आवश्यक बताया गया है, भले ही ऐसा करने स अभिव्यक्ति म कुछ अयथार्थता आ जाय। वाकपटुता को पूण स्वतत्रता मिलनी चाहिए, तभी कोई महान् वक्ता अपनी अनुभूति से अनुप्राणित होकर ऊची उड़ान भर सकता है। वक्ता की तुलना रस्सी पर खेल करनेवाले नट स की गई है जो नीच गिरने का खतरा मोल लेकर भी अपना खेल दिखाता है। यदि रस्से पर चलने की बजाय वह जमीन पर चले, तो अवश्य ही उस गिरने का डर नही रहेगा लकिन ऐसा करने म कोई विशेषता नही रह जायगी, और यदि कोई रेंगकर चले तो न गिरने के कारण उसे कोई श्रेय, नहीं मिल सकेगा। मतलब यह कि अपने पूववर्ती लेखकों स मनोभाव ग्रहण कर अपनी रचना को साहसपूर्वक प्रस्तुत करना चाहिए। उसके अनुसार, किसी की रचना में जो सौंदय और भव्यता देखने म आती है, वह खतरा लेकर लिखने से ही आई है। निर्णयात्मक समीक्षा के सबध मे प्लिनी का मत है कि प्रत्येक कविता का अपनी अपनी श्रेणी और विशेषता के अनुरूप मूल्याकन किया जाना चाहिए। किसी दूसरे कलाकार की कृति का सही मूल्याकन करने की योग्यता रखनेवाले को ही कलाकार कहा जा सकता है।

प्लिनी कनिष्ठ के पत्रों के समीक्षासबधी उल्लेखों से उसकी व्यापक और उदार साहित्यिक अभिरुचि का पता लगता है, यद्यपि कलात्मक सूक्ष्मताओं को आंकने मे वह सफल न हो सका। उसने प्रकृति से सबध स्थापित कर कलात्मक प्रेरणा को मुख्य बताते हुए समीक्षा मे सौंदय-तत्त्व को प्रतिष्ठित किया है, लेकिन जहां तक वास्तविक साहित्यिक समीक्षा का प्रश्न है उसके सबध में उसने दिशा का निर्देश नही किया।[1]

फिर भी साहित्य के अध्ययन की दृष्टि से यह काल महत्त्वपूर्ण रहा। फ्रेंच इतिहासकार बुआस्ये (Boissier, १८२३ १६०८) के शब्दों मे 'ऐसा अन्य कोई काल नहीं जिसमें इतनी अधिकता से साहित्य के प्रति अनुराग दिखाई देता हो।"[2]

१—एटकि स वही, पृ० ३०३ ८

२—विल ड्यूराएट, वही, पृ० ४४०।

क्विण्टीलियन (३५-९५ ई०)

क्विएटीलियन स्पेन का निवासी था जिसका जन्म लगभग ३५ ईसवी में हुआ था। उसका पिता रोम का सफल वक्ता था, जिससे क्विएटीलियन को वक्तृत्वकला का अध्ययन करने के लिए रोम भेजा गया। अध्ययन समाप्त करने के पश्चात् क्विएटीलियन ने रोम में एक स्कूल खोल दिया जहाँ वह २० वर्ष तक अध्यापन करता रहा। वकालत में भी उसने नाम कमाया था। बडी उम्र मे उसकी शादी हुई। उसके दो पुत्र हुए लेकिन उसकी जीवित अवस्था में ही उसकी पत्नी और दोनो पुत्र चल बसे। नौकरी से अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् उसने 'वक्तृत्वकला का ह्रास' (De Causis Corruptae eloquentiae = द कौजिस कोरप्ताए एलोक्वेंशिआ) और 'वक्ता की शिक्षा' (Institutis Oratoria = इस्तित्यूतिस ओरतोरिआ)[1] नाम की पुस्तकें लिखीं। पहली पुस्तक आजकल उपलब्ध नहीं है। दूसरी पुस्तक उसने अपने पुत्र के मार्गदर्शन के लिए लिखी थी जिसके कारण उसे पर्याप्त यश मिला। इस पुस्तक को क्विएटीलियन ने दो वर्ष मे समाप्त किया था। उसने लिखा है–

"मैंने सोचा कि यह पुस्तक मेरे पुत्र की विरासत का बहुमूल्य अंश होगा—उस पुत्र की जिसकी योग्यता इतनी अद्भुत है कि उस योग्यता ने उसके पिता को अतिशय चिन्तापूर्वक इस कार्य को हाथ मे लेने के लिए बाध्य किया। रात और दिन इसके ढाँचे को मैं तैयार करता रहा और इसे शीघ्र ही समाप्त करने के लिए उत्सुक रहा जिससे कि काल की गति के कारण मेरा कार्य अधूरा ही न रह जाय। तब अचानक ही दुर्भाग्य ने मुझे पराभूत कर दिया फलत अपने परिश्रम की सफलता से जितना आनन्द अब मुझे होता है उतना और किसी को नही। मुझे एक दूसरा वियोग सहन करना पड गया है। अब वह व्यक्ति सदा के लिए बिछुड गया है जिससे मुझे बडी बडी आशाएँ थी और मैं सोचा करता करता था कि बुढ़ापे मे उससे मुझे सुख मिलेगा।[2]

१—एच० ई० बटलर द्वारा अनूदित, चार भागों मे, पहला भाग (दूसरा संस्करण, १९३३), दूसरा भाग (दूसरा संस्करण, १९३९), तीसरा भाग (दूसरा संस्करण, १९४३) चौथा भाग (दूसरा संस्करण, १९३६), द लोएब क्लासिकल लाइब्रेरी, लंदन। इस रचना की दसवीं पुस्तक डब्ल्यू० पीटसन के नोटस द्वारा आक्सफोर्ड से १८९१ में प्रकाशित हुई है।

२—६, भूमिका, १-२, पृ० ३७३।

वक्तृत्वकला सम्बन्धी विरोधी मान्यताएँ

इस युग में साहित्यिक विचारों के सम्बन्ध में काफी गड़बड़ी फैली हुई थी। इस समय की मुख्य समस्या थी वक्तृत्वकला और गद्य शैली को उन्नत बनाना। क्विण्टीलियन ने अपनी प्रथम पुस्तक की भूमिका में बताया है कि उसके मित्रों ने उससे वक्तृत्वकला के विषय में स्पष्ट और निश्चित मार्गदर्शन करने का आग्रह किया और उसने अपने मित्रों के आग्रह को शिरोधार्य किया, क्योंकि उन दिनों वक्तृत्वकला के सम्बन्ध में परस्पर विरोधी इतने मत प्रचलित थे कि कुछ निश्चय कर सकना कठिन था।[1] ऐसी हालत में क्विण्टीलियन ने वक्तृत्वकला सम्बन्धी केवल शास्त्रीय चर्चा न करके रचनात्मक सुझाव प्रस्तुत किये।

वक्ता की शिक्षा

सर्वप्रथम क्विण्टीलियन ने निपुण वक्ता के लिए समुचित शिक्षा की आवश्यकता बताई। उसने कहा कि वक्ता के जन्म लेने के पहले से ही उसकी शिक्षा प्रारम्भ हो जानी चाहिए। उसे पालनेवाली धाय एक आदर्श धाय होनी चाहिए जो शब्दों का शुद्ध उच्चारण कर सके। उसके माता पिता उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति होने चाहिये। उसके साथी-संगी तथा हमेशा साथ रहनेवाले शिक्षक सुयोग्य होने चाहिए जिससे कि उसे शुद्ध भाषण और शिष्ट आचार व्यवहार की शिक्षा मिल सके।[2] क्विण्टीलियन का कथन है कि एक ही पीढ़ी में सुशिक्षित और सुसभ्य दोनों का होना असम्भव है। सज्जनता वक्ता का प्रथम गुण स्वीकार किया गया है। वक्तृत्व की असाधारण योग्यता को महत्त्व न देकर उसकी सच्चरित्रता पर ही उसने विशेष जोर दिया है।[3] उसका कथन है कि वक्तृत्वकला अच्छे भाषण की एक कला है और जो व्यक्ति सदाचारी नहीं, वह अच्छा भाषण नहीं दे सकता।[4]

क्विण्टीलियन ने सिसरो को 'रोमन वक्ताओं का राजकुमार'[5] और वक्तृत्वकला को 'सारी दुनिया की रानी' बनाते हुए उसकी उन्नति के लिए साहित्य के अतिरिक्त, संगीत ज्यामिति और ज्योतिष आदि के ज्ञान की तथा अपने विचारों को शब्दों में अभिव्यक्त करने की महान्तम शक्ति की आवश्यकता का प्रतिपादन किया

१—१, भूमिका, १-२, पृ० ५।
२—'वक्ता की शिक्षा' (११) में वक्ता की प्राथमिक शिक्षा का विवेचन किया गया है, देखिए पृ० २१-२५।
३—वही, ६-१०, पृ० ६, ११।
४—वही, २, १५, ३४ पृ० ३१५।
५—८, ६, ३०, पृ० ३१६।

है।[1] अध्ययन के अतिरिक्त, इस बात पर भी जोर दिया गया है कि भावी वक्ता को एकान्त जीवन का सेवन न कर बचपन से ही समाज में मिल जुलकर रहना चाहिए,[2] उसकी स्मरण शक्ति अच्छी होनी चाहिए।[3] वक्ता में नैसर्गिक प्रतिभा को आवश्यक स्वीकार करते हुए कला को प्रकृति पर आधारित कहा गया है,[4] नैसर्गिक प्रतिभा के बिना वक्तृत्वकला सम्बन्धी नियम कार्यकारी नहीं हो सकते। अन्य नैसर्गिक वस्तुओं में सुस्वर, मजबूत फेफड़े, सुस्वास्थ्य तथा सहनशक्ति और शिष्टता की आवश्यकता है।[5]

भावी वक्ता तैयार करने के लिए सुयोग्य शिक्षकों की अत्यन्त आवश्यकता है। शिक्षक को सदाचारी होना चाहिए, उसमें इतनी योग्यता हो कि वह कठोर अनुशासन द्वारा विद्यार्थियों को नियन्त्रण में रख सके।[6] शिक्षक का कर्तव्य विद्यार्थी को केवल वक्तृत्वकला की शिक्षा देना ही नहीं, उसे सदाचरण सिखाना भी है।[7] नीरस शिक्षक को शिक्षा देने के अयोग्य कहा गया है।[8] शिक्षा के हित में अध्यापक और विद्यार्थी के बीच सहानुभूतिपूर्ण सम्बन्धों का होना आवश्यक है।[9]

वक्तृत्वशैली की समीक्षा

उन दिनों के शैलीकार सीधी सादी बोधगम्य भाषा के स्थान पर अलंकार और आडम्बरपूर्ण भाषा के पक्षपाती थे और वे किसी बात को बढ़ा-चढ़ाकर बोलना पसन्द करते थे। इस सम्बन्ध में क्विण्टीलियन ने प्राचीन लैटिन लेखकों की गौरवपूर्ण समृद्ध शब्दावली और नाटकीय विन्यास के प्रति सावधानी का, तथा संक्षिप्त व्यवस्थित को साहित्य-सृजन का एकमात्र गुण स्वीकार करनेवाले सामयिक लेखकों की कृत्रिम शैली का उल्लेख किया है।[10] उसने लिखा है—'शब्दों के प्रति तीव्र मोह के कारण, जिस बात को सीधी सादी सरल भाषा में कहा जा सकता है, उसको

१—वही १, १२, १८, पृ० १६६, १ १०, १, भूमिका १७, पृ० १५।
२—१ २ १८, प० ४६।
३—१, ३, १, प० ५५।
४—तुलना कीजिए पोप के मत से— कला के नियम प्रकृति के नियम हैं, कला व्यवस्थित की हुई प्रकृति है।"
५—१, भूमिका २६ २७ प० १६, २ १७ १, प० ३२६।
६—२, २, २-४, पृ० २११ २१२।
७—२ ३ १२, पृ० २२२।
८—२, ४ ८, प० २२६।
९—२ ६, ३, प० २७३।
१०—१, ८ ८-९, प० १५१।

हम व्याख्या करने लगते हैं, जो बात हम काफी विस्तार से कह चुके हैं उसे दुहराने लगते हैं जहाँ एक शब्द से काम चल सकता है, वहाँ शब्दों का ढेर लगा देते हैं तथा सीधी सादी भाषा का प्रयोग न कर उसे सांकेतिक बना देते हैं। पतनोन्मुख कवियों के अलंकार और रूपक ग्रहण कर हम समझते हैं कि हम अत्यंत प्रतिभाशाली हो गये हैं, और हमारा तात्पर्य समझने के लिए दूसरों में प्रतिभा की आवश्यकता है।"[१] क्विण्टीलियन ने इसके लिए तत्कालीन वक्ताओं और शिक्षकों का उत्तरदायी ठहराते हुए कहा है कि दोनों ही अपने कर्तव्य से च्युत हो गये हैं। वक्ता लोग दूसरों की आलोचना करना तथा आलोचना के सिद्धान्त और व्यवहार के सम्बन्ध में दूसरों को उपदेश देना अपना हक समझते थे, तथा केवल विचार और न्याय प्रधान विषयों तक अपनी प्रवृत्तियों को वे सीमित रखते थे। अपने काम से असन्तुष्ट साहित्य के शिक्षक भी दूसरों की आलोचना तथा विचार सम्बन्धी विषयों की ओर ही अधिक आकृष्ट थे।[२]

शैली का स्वरूप

क्विण्टीलियन के अनुसार, वक्तृत्व शैली का सर्वप्रमुख गुण है स्पष्टता।[३] शब्दों के औचित्य का होना इसमें आवश्यक है, शब्दों का क्रम सरल होना चाहिए। ऐसा न हो कि दीर्घकाल तक निष्कर्ष का पता ही न चले। वक्तृता में न किसी चीज का कमी हो और न निरर्थक बातों की भरमार।[४] वक्तृत्वकला के लिए पाँच बातें आवश्यक है—(१) सबसे पहले, वक्ता के मन में उसकी वक्तृता का उद्देश्य स्पष्ट हो (२) अवलोकन, अन्वेषण और अध्ययन के आधार पर समुचित सामग्री का संकलन किया जाय जिससे कि ज्यामिति की भाँति[५], प्रत्येक अंश अपने अपने स्थान पर ठीक बैठ जाय, (३) सुव्यवस्थित वक्तृता में भूमिका, प्रस्ताव प्रमाण, खण्डन मण्डन और निष्कर्ष का होना आवश्यक है जिससे कि समुचित शैली द्वारा भावों की अभिव्यक्ति की जा सके, (४) यदि भाषण देने के पहले उसे कण्ठस्थ करना हो तो उसे लिख लेना चाहिए, अन्यथा अव्यवस्थित रूप से याद रही हुई बातों के कारण धाराप्रवाह शैली में बाधा उपस्थित हो सकती है, (५) किसी प्रबन्ध की भाँति अपने मन के भावों

१—८, भूमिका, २४–२५, पृ० १८६ १६१।

२—२ १, १–२ पृ० २०५ तथा देखिए १२ ११, १४, पृ० ५०३, ९, ८ २१, पृ० १५७ २ १० ३ पृ० २७३।

३—२,३,८, पृ० २२१।

४—८, २, २२,पृ० २०६।

५—१, १०, ३४ आदि पृ० १७७।

को यथोचित रूप से प्रतिपादन करते समय भावावेश का होना आवश्यक है जिससे हम वाकपटु बन सकें। अनेक वक्ताओं का विश्वास है कि अपनी 'बाँहों को ऊपर उठाकर, चीखने और चिल्लाने से, जोर जोर से श्वास लेने से विक्षिप्त की भाँति सिर हिलाने से, हाथों को पटकने से, पाँव जमीन पर मारने से तथा जघाओं, छाती और सिर को पीटने से, वे श्रोताओं के अन्धकारमय हृदय में सीधे प्रवेश पा सकते हैं। मतलब यह कि वक्तागण अपने भाषण का प्रत्येक वाक्य और प्रत्येक अवतरण प्रभावशाली बना देने की खोज में रहते हैं। लेकिन क्विण्टीलियन ने वक्तृता देते समय भावावेश और कल्पनाशक्ति को ही मुख्य माना है।[1] होरेस और लांजाइनस की भाँति यहाँ भी यही स्वीकार किया है कि श्रोताओं या पाठकों के मन में भावावेश उत्पन्न करने के लिए आवश्यक है कि स्वयं वक्ता या लेखक भी उन भावावेशों की अनुभूति प्राप्त करे।[2] इस सम्बन्ध में क्विण्टीलियन का निम्न वाक्य ध्यान देने योग्य है– 'शीघ्रता से लिखो और तुम अच्छी तरह नहीं लिख पाओगे, लेकिन यदि तुम अच्छी तरह लिखो तो शीघ्रता से लिख सकोगे।'[3]

कहा जा चुका है कि स्पष्टता वक्तृत्वकला का सर्वप्रधान गुण है। उसके पश्चात् लाघव, सौन्दर्य और ओज का होना आवश्यक है। जहाँ तक शैलीगत स्पष्टता विशदता और सरल अभिव्यक्ति का सम्बन्ध है, क्विण्टीलियन ने अरिस्टोटल का ही अनुकरण किया है। उसका कथन है कि शैली में उन्हीं शब्दों का प्रयोग किया जाना चाहिए जो दूरान्वयी न होकर सरलता और वास्तविकता का प्रभाव पैदा करें, क्योंकि शब्दों को अत्यन्त सावधानीपूर्वक जोड़ तोड़कर उनके द्वारा जो कला की अभिव्यक्ति की जाती है, वह अपने उद्देश्य में सफल नहीं होती।[4] क्विण्टीलियन के अनुसार, शब्दों में इतनी स्पष्टता होनी चाहिए कि सूर्य की किरणों की भाँति, श्रोता के अन्य मनस्क होने पर भी, वे उसके मस्तिष्क में घुसते चले जायें।[5] अच्छी तरह भाषण देने और अच्छी तरह लिखने में यहाँ कोई मौलिक अन्तर नहीं माना गया।[6] उसने लिखा है कि बोलने अथवा लिखने का उद्देश्य श्रोता अथवा पाठक को केवल समझाना ही नहीं, बल्कि ऐसी स्थिति पैदा कर देना है जिससे कि श्रोता या पाठक को वक्ता या लेखक की बात को बरबस समझना पड़े।[7]

१—३, ३ पृ० ३८३ ६१, २ १२ ६ १०, पृ० २८७, ८, ५, १३, पृ० २८६।
२—६ २, २६ २९ पृ० ४३१ ३३।
३—१० ३ १० १९ पृ० ९७ १०१ ३।
४—८ भूमिका २३ पृ० १८६।
५—८, २, २३, पृ० २११।
६—१२ १०, ५२, पृ० ४७६।
७—८ २ २४, पृ० २११।

शैली के भेद

शैली के यहाँ तीन भेद बताये हैं—सरल शैली, भव्य और सशक्त शैली तथा बीच की अलकृत शैली। प्रथम शैली का उपयोग शिक्षा देने के लिए दूसरी का भावावेशों को आन्दोलित करने के लिए और तीसरी का श्रोताओं का मनोरंजन करने के लिए होता है।[1] तीसरी शैली में बहुधा रूपक तथा आकर्षक अलकारों का समावेश रहता है। मन को मुग्ध करनेवाले अप्रासगिक वचनों के कारण इस शैली में माधुर्य दृष्टिगोचर होता है, इसमे लय उत्पन्न हो जाती है और विचार करने,से इनमें बड़ा आनन्द आता है। इस शैली का प्रवाह कोमल रहता है—एक नदी की भाँति जिसमें स्वच्छ जल भरा हुआ हो और जो दोनों ओर हरे भरे किनारों से वेष्टित है।[2]

अलकृत शैली के सम्बन्ध में क्विण्टीलियन ने काफी विस्तारपूर्वक लिखा है। उसका कथन है कि यदि कोई वक्ता यथार्थता और स्पष्टतापूर्वक अपने विचारों को प्रकट करता है तो वह केवल थोड़ी बहुत प्रशसा का पात्र होता है, जब कि अलकारपूर्ण शैली को अपनानेवाले वक्ता को विशेष यश मिलता है।[3] इसी तथ्य को ध्यान में रखकर उपमा आदि अलकारों को आवश्यक बताया गया है। उदाहरण के लिए, क्विण्टीलियन ने कहा है कि उपमाओं की सहायता से कोई भी चित्र हमारी आँखों के सामने स्पष्टतया उपस्थित हो जाता है, लेकिन ये उपमाएँ दुर्बोध और अप्रतीत न होनी चाहिए।[4] शैली की उत्कृष्टता के लिए रूपक, अन्योक्ति, वाक्यालकार, अपरोक्ष अलकार अत्युक्ति अलकार और व्यग्योक्ति आदि का भी प्रतिपादन किया गया है, इनमें रूपक का सर्वोपरि स्थान है।[5] लेकिन अतिशय अलकृत शैली का क्विण्टीलियन ने विरोध किया है। उसका कहना है कि इससे केवल शैली का सौन्दर्य ही नष्ट नहीं होता, वरन् विषय की अभिव्यक्ति विशृंखलित हो जाती है, समस्त वाक्य इधर उधर बिखर जाते हैं और विसगति दिखाई पड़ने लगती है। इस प्रकार की शैली का प्रभाव ऐसा ही होता है जैसे धुएँ में से चिनगारियाँ निकल रही हों—स्थिर अग्नि में से स्पष्ट दिखायी देनेवाला देदीप्यमान प्रकाश न हो।[6] तात्पर्य यह है कि शैली को आकर्षक बनाने के लिए क्विण्टीलियन ने अलकारों को महत्त्वपूर्ण माना

१—सिसरो ने भी ये ही शैलियाँ स्वीकार की हैं।
२—१२ १० ५८–६० पृ० ४८३–८५।
३—८, ३ १ आदि पृ० २११–१३।
४—८, ३, ७२–७३, पृ० २५१।
५—८ २, ६ पृ० ११६।
६—८ ५ २६ पृ० २८७।

है, बशर्ते कि उनकी क्षति न हो जाय। अलंकारों के कारण सामान्यतया प्रयोग में आनेवाली शैली में नवीनता आती है भाषा में उर्वरा शक्ति पैदा होती है प्रति दिन बोली जानेवाली भाषा की थकान से हमें राहत मिलती है, तथा भाषा श्रेष्ठ और उदात्त सत्य की वाहक बन जाती है। फिर भी अलंकारों को ही उसने सब कुछ स्वीकार नहीं किया। क्विण्टीलियन का कथन है कि आलंकारिक भाषा का इतना प्रचार हुआ कि आगे आनेवाली पीढ़ी उसका इतना अधिक अनुकरण करने में लग गई[1] कि सामान्य सी बात भी अलंकृत शैली में व्यक्त की जाने लगी। ऐसी हालत में क्विण्टीलियन द्वारा इस शैली का विरोध किया जाना स्वाभाविक था।[2]

साहित्यिक समीक्षा

वक्ता के लिए दो बातें आवश्यक हैं—पहली शुद्ध भाषण और दूसरी कवियों की व्याख्या। लेकिन इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है लेखन और वक्तृत्वकला का सम्बन्ध। क्विण्टीलियन का मानना है कि सही तौर पर किया हुआ पठन-पाठन हमें काव्य की व्याख्या तक पहुँचाने में मदद करता है। मतलब यह है कि इससे हम साहित्यिक समीक्षा की ओर अग्रसर होते हैं।[3] अपनी 'वक्ता की शिक्षा' नामक पुस्तक में लेखक ने वक्ता बनने के इच्छुक व्यक्तियों के लिए पाठ्यक्रम की एक रूपरेखा प्रस्तुत की है जिससे कि विविध विषयों की ज्ञानप्राप्ति द्वारा वे अपनी वक्तृत्व शैली को प्रभावशाली बना सकें (११०)। तात्पर्य यह कि क्विण्टीलियन वक्ता के लिए साहित्य के अध्ययन को आवश्यक मानता है। उसकी मान्यता है कि हर प्रकार के साहित्य में—चाहे वह गद्य हो, चाहे पद्य—अपनी अपनी विशेषता रहती है।[4] तत्पश्चात् वह क्लासिकल युग के यूनानी और रोमन साहित्य का समीक्षात्मक सार प्रस्तुत करता है।[5] अध्ययन पर जोर देते हुए उसने कवियों, इतिहासवेत्ताओं, वक्ताओं और दार्शनिकों के साहित्य को पढ़ना आवश्यक बताया है।[6] कविता के पाँच विभाग किये गये हैं—महाकाव्य, गीतिकाव्य कॉमेडी, ट्रैजेडी, शोकगीत और व्यंग्य-काव्य। यूनान के आदिकवि होमर से लेकर वह अपने समकालीन कवियों तक की आलोचना करता है। होमर को समुद्र की उपमा देते हुए क्विण्टीलियन ने उसे ज्ञान का स्रोत बताकर वक्तृत्वकला के प्रत्येक क्षेत्र में स्फूर्तिदायक आदर्श माना है। हेसिओद की 'द थियोगोनी' को नामों

१—८ ३, १ पृ० ४४३।
२—८ १ १२ पृ० ३५५।
३—१, ४ २–३, पृ० ६३।
४—१० २, २२, पृ० ८७।
५—१०, १ पृ० ३–७५।
६ वही पृ० १७–४६।

से भरपूर बताकर उसे बीच का शैली के लेखकों म प्रमुख कहा गया है। गीतिकाव्य के रचयिताओं मे वाक्यविन्यास विचार और भाषा की दृष्टि से पिंडार को सर्वोत्कृष्ट माना गया है। प्राचीन कॉमेडी की संक्षिप्त चर्चा करते हुए क्विएटीलियन ने अरिस्तोफनीस यूपोलिस और क्रैतिनोस (५१९-४२२) को श्रेष्ठ बताया है। नवीन कामेडी के लेखकों में मीनाण्डर का उल्लेख है। ट्रैजडी को आगे लानेवालों म एस्किलस और उसे पूर्णता की ओर ले जानेवालों म सोफोक्लीस और यूरिपाइडिस का उल्लेख नीम कहा है। इस प्रसग मे सोफोक्लीस का शैली को अधिक उदात्त तथा यूरिपाइडिस की शैली को वक्तृता के योग्य कहा है, यूरिपाइडिस को करुण रस के चित्रण में श्रेष्ठ बताया गया है। शोकगीत और व्यग्य काव्य के रचयिताओं म क्रमश कैलिमैक्स और लुसिलिअस को श्रेष्ठ कहा गया है।[1]

रोमन महाकाव्यो के प्रणेता कवियों म वर्जिल को सवप्रथम माना गया है। यूनानी कवि होमर को क्विएटीलियन ने अधिक प्रतिभाशाली और रोमन कवि वर्जिल को श्रेष्ठतर कलाकार स्वीकार किया है। शोक गीतो की रचना में रोम के कवियों को यूनानी कवियो का प्रतिस्पर्धी कहा है। व्यग्य काव्य मे भी रोमन कवि यूनानी कवियो से बढ जाते हैं। गीति काव्य म यूनानी कवि होमर को ही उसने सवश्रेष्ठ माना है। ट्रैजेडी मे अक्सूस (Accius) और पकुव्यूस (Pacuvius) की प्रशसा की गई है। जहाँ तक कॉमेडी का सम्बन्ध है क्विएटीलियन के अनुसार रोमन साहित्य बहुत पिछडा हुआ है, इसलिए रोमन लेखकों के साहित्य मे यूनानी लेखको जसा माधुय और लोच नही आ सका।[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि क्विएटीलियन के लेखों में साहित्यिक मूल्यांकन उतना नहीं मालूम होता जितना कि शैली सम्बन्धी विश्लेषण।[3] वक्तृत्वकला की शिक्षा से सम्बन्ध रखनेवाले अमुक लेखकों का ही यहाँ मूल्यांकन किया गया है।

वक्तृत्वकला और कविता

वक्तृत्वकला और कविता इन दोना म वक्तृत्वकला को ही श्रेष्ठ बताया गया है। वक्ता को हर बात म विशेषकर जहाँ तक भाषा के स्वातन्त्र्य और अलकारो के प्रयोग का प्रश्न है कवियो का अनुकरण नही करना चाहिए। यहाँ कविता को दिखावे की वक्तृत्वकला बताते हुए कहा है कि कविता का उद्देश्य केवल आनन्द प्रदान करना है—ऐसा आनन्द जिसे वह केवल असत्य का ही नहीं बल्कि अविश्वसनीय बातों का

१—वही, पृ० ४८-४१, ५३।

२—वही, पृ० ४६-५६।

३—आगे चलकर कालरिज ने शैली का महत्व स्वीकार करते हुए लिखा है—'सर्वोत्तम क्रम में सर्वोत्तम शब्द ही उत्कृष्ट शैली है।"

भी आविष्कार करके सम्पादन करती है। छन्दोबद्ध होने के कारण कविता हमेशा सीधी, सरल और साहित्यिक भाषा का प्रयोग नहीं कर सकती, इसलिए सीधे मार्ग से हटकर वह अभिव्यक्ति की पगडण्डियो का अवलम्बन लेती है। इस प्रकार कविता केवल कुछ शब्दो म परिवर्तन ही नही कर देती, उन्हे विस्तृत कर देती है, सक्षिप्त कर देती है, स्थानान्तरित कर देती है, या विभाजित कर देती है जब कि वक्तृत्वकला युद्ध के क्षेत्र मे सबसे आगे की पंक्ति में सजी धजी डटी खडी रहती है, और अपनी जान की बाजी लगाकर विजय प्राप्त करने के लिए मोर्चा लेती है।[1]

अपनी वक्ता की शिक्षा नामक पुस्तक मे क्विण्टीलियन ने जगह जगह वक्तृत्वकला की प्रशसा की है। इस सम्बन्ध मे उसने महाकवि होमर की 'इलियड' के उद्धरण प्रस्तुत किये हैं। होमर ने लिखा है कि नेस्तर के होठो से शहद से भी मीठी आवाज निकलती थी, जिससे बढकर और कोई आनन्द नही हो सकता। होमर ने यूलिसस का वक्तृत्वकला की श्रेष्ठता और उससे निस्सृत शब्दों की ओजस्विता की तुलना शीत ऋतु में गिरनेवाली हिमराशि के साथ की है। होमर ने लिखा है, 'कोई भी मर्त्य पुरुष उसका प्रतिस्पर्धा नही करेगा और लोग उस देवता समझने लगेंगे।" वक्तृत्वकला की इसी प्रचण्ड शक्ति को पेरिक्लीस मे पाकर यूपालिस ने उसकी सराहना की थी। अरिस्तोफनीस ने वक्तृत्वशक्ति की वज्र से उपमा दी है।[2] क्विण्टीलियन ने अपनी उक्त पुस्तक के अन्त मे वक्तृत्वकला की इस महान् विभूति को ईश्वर प्रदत्त मानव का सर्वश्रेष्ठ उपहार बताया है, जिसके बिना समस्त वस्तुएँ मूक होकर रह जाती हैं, वर्तमान प्रतिष्ठा को गुमा देता हैं, तथा भावी सन्तान का अक्षय स्मृति से वंचित हो जाती हैं।[3]

क्विण्टीलियन की देन

क्विण्टीलियन ने शैली के ऊपर विशेष जोर दिया है। वक्ता, प्रसग और परिस्थितियो के कारण शैली में विविधता आती है। हमारे विचारों में क्रम और गति रहती है उसी का प्रभाव वक्ता की शैली मे प्रतिबिम्बित होता है। हम अपनी शैली को जितनी ही सीमित और नियन्त्रित रक्खेंगे, वह उतनी ही महान होगी। वक्ता की सामयिक सुरुचि और भाषा की समृद्धि के अनुसार शैली का विकास होता है। जो शब्द अर्थ के समझने मे अथवा शैली की दृष्टि से सहायक नही, वे सदोष हैं। इस प्रकार क्विण्टीलियन ने शैली का बुद्धिसम्मत मनोवैज्ञानिक विवेचन किया है। उसने शब्दो के समुचित चुनाव उनकी प्रभावोत्पादक परिपाटी अलकारो की महत्ता,

१ वही, १०, १ २८ २६ पृ० १७।
२—१२ १० ६३ ६५ पृ० ४८३।
३—१२ ११ ३०, पृ० ५१३।

नैसर्गिक प्रतिभा, कला की जानकारी और उसका अभ्यास, औचित्य, शुद्धता और सत्साहित्य का अनुकरण आदि विषयों का विशद विवेचन किया है। यद्यपि कितने ही स्थानों पर एक स्कूली अध्यापक के विवेचन की भांति यह विवेचन परिमाणामा वर्गीकरण और भेद प्रभेदों के कारण नीरस प्रतीत होता है, लेकिन फिर भी इसकी एक ओजपूर्ण शैली है जो मानवता और वाग्वैदग्ध्य से युक्त है। सिसरो, होरस, दिइनिसिग्रस और लांजाइनस की भांति क्विण्टीलियन के शैली सम्बन्धी सिद्धान्त मुख्यतया क्लासिकल यूनानी प्रमाणों और व्यवहार पर आधारित न होकर, लेखक की प्रकृति, बुद्धि और अनुभव पर आधारित हैं, जिनसे आगे चलकर पाश्चात्य समीक्षक प्रभावित हुए।

निष्कर्ष

यूनानी लोगों की प्रवृत्ति वनिज व्यापार की ओर होने से चिन्तन और मनन के लिये उन्हें अधिक अवकाश था जब कि रोमवासियों को समय समय पर युद्धों मे जूझना पडता था। वे लोग खेती बारी करते हुए युद्ध के लिये तैयार रहते थे। परिणाम यह हुआ कि यूनानियों-जैसी चिन्तन की सूक्ष्मता उनमे नही आ पाई, और वे यूनानियो की भाँति आदर्शवादी न बनकर, यथार्थवादी तथा कुछ कठोर बन गये। यूनान पर उन्होने विजय पाई, किन्तु इसी समय से रोम पर यूनानी सभ्यता और संस्कृति का प्रभाव पडना आरम्भ हो गया। वस्तुत रोमी संस्कृति यूनान और रोम की मिली जुली संस्कृति के रूप मे ही हमारे सामने आई। यूनानी प्रभाव से रोम के साहित्यकार इतने दब गये कि वे स्वतन्त्र रूप से साहित्यिक समीक्षा का विकास करने मे असमर्थ रहे। महाकाव्य के क्षेत्र मे वर्जिल ने होमर आदि कवियों का अनुकरण किया किन्तु गीतिकाव्य में किसी प्रतिभा के दर्शन नही हुए। वक्तृत्व कला मे रोम में काफी उन्नति हुई, और यह स्वाभाविक ही था क्योंकि रोम मे प्रजातंत्र शासन म सुयोग्य वक्ताओं की आवश्यकता थी। इस संबंध में सिसरो, प्लिनी और क्विण्टीलियन के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। आगे चलकर वर्जिल के संबंध में भी शंका की गई कि उसे वाकपटु वक्ता माना जाय या कवि। रोम में काव्य को प्रतिष्ठित करनेवालों में होरेस की कृतियाँ महत्वपूर्ण हैं जिनमें जहाँ-तहाँ साहित्यिक समीक्षा संबंधी सिद्धांत मिल जाते हैं, लेकिन देखा जाय तो ये सिद्धांत विशेषकर जीवन के ही अधिक निकट आते हैं, साहित्य के कम। रोम के समीक्षा संबंधी सिद्धांतों के मौलिक और ठोस न होने के कारण ही मध्ययुगीन समीक्षा भली भाँति विकसित न हो सकी।

तीसरा खण्ड

(३) मध्ययुगीन समीक्षा

मध्ययुगीन समीक्षा का सर्वेक्षण

सातवीं से चौदहवीं शताब्दी के समीक्षक

बीडी (६७५ ७३५ ई०)
आलकुइन (७३५ ८०४ ई०)
सालिसबरी का जॉन (१११०-८० ई०)
विनसाफ का ज्योफ्रे (१२ वीं शताब्दी ई०)
गारलैंड का जॉन (११८०-१२६० ई०)
रॉबर्ट ग्रोसेटेस्ट (११७५-१२५३ ई०)
राजर बेकन (१२१४-१२६२ ई०)
दान्ते अलिगेरो (१२६५-१३२१ ई०)
बरी का रिचार्ड (१२८१-१३४५ ई०)
'द आउल एण्ड द नाइटिंगल' (१२१० ई०)
जॉन विक्लिफ (१३२०-१३८४ ई०)
जेफ्री चॉसर (१३४०-१४००)
पन्द्रहवीं सोलहवीं शताब्दी के समीक्षक

(मध्ययुग अथवा अंधकारयुग—लगभग ५ वीं शताब्दी ई०—
लगभग १५ वीं शताब्दी)

मध्ययुगीन समीक्षा का सर्वेक्षण

क्विएटीलियन के पश्चात् लैटिन समीक्षा का महत्त्व कम होता गया। इंग्लैंड में नवजागरण युग (रेनासां) सोलहवीं शताब्दी से आरम्भ होता है। इसके पूर्व लगभग पांचवीं शताब्दी से लेकर पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त तक का काल मध्ययुग माना जाता है। यद्यपि इस युग को 'अंधकार युग' के नाम से कहा जाता है, लेकिन इस समय भी हमें कला और साहित्य की सर्जनात्मकता तथा जिज्ञासावृत्ति के दर्शन होते हैं। रोमन कैथोलिक धर्म की सत्ता का आधिपत्य होने से इस युग में धार्मिक बंधनों की जटिलता बढ गयी थी जिससे कि बौद्धिकता का स्वतन्त्र विकास न हो सका। परिणामतः जैसी चाहिये वैसी काव्यशास्त्रीय समीक्षा के योग्य भूमि इस युग में तैयार न हो सकी। फिर भी इस समय काव्यशास्त्र को लेकर अनेक रचनाएँ हुईं जो आगे चलकर इंग्लैंड की साहित्यिक समीक्षा का आधारशिला बनी।[१]

रोम में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन

ऑगस्टस के जमाने से ही रोमन संसार में राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण उलट पुलट हुई जब कि एक बड़ा साम्राज्य पतन की ओर अभिमुख हो रहा था। ईसा की प्रथम दो शताब्दियाँ संघटन का काल थी, लेकिन उसके बाद ही व्यापक अराजकता का समय आया। इस बीच में रोमन साम्राज्य दो हिस्सों में बँट गया – एक पूर्वी (यूनानी) और दूसरा पश्चिमी (रोमन)। पांचवीं शताब्दी के बर्बर आक्रमणों ने धर्म विशृंखलता को पूर्ण कर दिया, ईसाई धर्म पर अंकुश न रहा और यह धर्म राष्ट्र का धर्म बन गया। इससे यूरोप का नक्शा, उसकी सभ्यता ही बदल गई और एक नये संसार का निर्माण हुआ। परिणाम यह हुआ कि रोम का महत्त्व लुप्त हो गया और पांचवीं शताब्दी के बाद पश्चिमी यूरोप पर अभेद्य पर्दा पड़ गया जिससे राजनीतिक अस्त-व्यस्तता और बौद्धिक पंगुता का उदय हुआ।[२]

ईसवी सन् ४०० से लेकर ईसवी सन् ८०० तक का समय इसलिए महत्त्वपूर्ण कहा जाता है कि चार सौ वर्ष के इस संधिकाल में रोम की जातियों और परम्पराओं

१—जे० डब्ल्यू० एच० एटकिंस, इंग्लिश लिटरेरी क्रिटिसिज्म, द मैडीवल फेज पृ० १–३, लंदन, १९४३। प्रायः इसी पुस्तक के आधार पर यह प्रकरण लिखा गया है।

२—वही, पृ० ८–६

में इतने सफल हुए कि भूतकाल में जो मूल्यवान समझा जाता था, वह सब नष्ट हो गया। विद्या का ह्रास होता चला गया, प्राचीन ग्रन्थ लुप्त हो गये तथा रोम की शिक्षण पद्धति का, जिसने कि पश्चिमी यूरोप में अब तक भी प्राचीन पद्धति को बनाये रखा था, सहसा अन्त हो गया। इसी शताब्दी में इस ह्रास के चिह्न सर्वत्र स्पष्ट दिखाई देने लगे।[1]

मध्ययुगीन शिक्षा की नींव

फिर भी इस 'अन्धकार युग' में, प्राचीन संस्कृति के साथ जो संबंध चले आते थे, उनका पूर्ण रूप से भंग नहीं हुआ। रोमन स्कूलों के न रहने पर शिक्षण का काम ईसाई धर्म (चर्च) ने अपने हाथ में ले लिया। उदार वृत्तियों का प्राबल्य हुआ। प्राचीन शिक्षा में परिवर्तन हुआ जिसे मठधर्म (मॉनेस्टिसिज्म) की सहायता से सम्पन्न किया गया। इस संगठन की स्थापना चौथी शताब्दी में अख्रिस्तीय (पेगन) संस्कृति की प्रतिक्रिया के रूप में गाल में की गई थी। इसकी सहायता से जगह जगह शिक्षा के केंद्र खोले गये जिससे शिक्षा के क्षेत्र में नूतन जीवन का संचार हुआ। सात 'उदार कलाओं' (व्याकरण, वक्तृत्वकला, तर्कशास्त्र तथा गणित, ज्यामिति, संगीत और ज्योतिष) को शिक्षा के पाठ्यक्रम में प्रमुख स्थान मिला और इनसे धार्मिक अध्ययन को प्रेरणा मिलने लगी। ११ वीं शताब्दी के अन्त तक मठ और धर्मपीठ (कैथीड्रल) के स्कूल 'उदार शिक्षा' के मुख्य केंद्र बने रहे और इस तरह मध्ययुगीन शिक्षा की नींव पड़ी। इस शिक्षा में धार्मिक उद्देश्यों की ही प्रधानता रही, प्राचीन संस्कृति की भावना नष्ट हो गई।[2]

लैटिन संस्कृति का प्रभाव

इस समय यूनानी संस्कृति के स्थान पर लैटिन संस्कृति को प्रमुख स्थान मिला। ईसवी सन् की प्रथम शताब्दी से पश्चिमी यूरोप पर रोम की विजय होने के कारण उनके रहन-सहन, उनकी भाषा, शिक्षण पद्धति, धर्म तथा रीति रिवाजों का प्रसार यूरोप में होने लगा। आगे चलकर तीसरी शताब्दी के मध्य में लैटिन रोमन चर्च की भाषा बनी और पश्चिमी यूरोप की साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई। परिणाम यह हुआ कि यूरोप के अनेक प्रदेशों में लैटिन भाषा में ईसाई धर्म का विशाल साहित्य लिखा जाने लगा और यूनानी भाषा का ज्ञान बहुत कम हो गया। चौथी शताब्दी के बाद तो यूरोप में यूनानी विचारों का प्रभाव बिल्कुल ही समाप्त हो गया—जो विचार आगे चलकर सोलहवीं शताब्दी में पुनरुज्जीवित हुए। केवल यूनानी साहित्य की उत्कृष्ट कृतियाँ ही नहीं, बल्कि मध्य युग में प्लेटो और अरस्तू

१—वही, पृ० ६

आदि की कृतियाँ भी दुष्प्राप्य हो गईं, तथा मध्ययुगीन लेखकों को केवल लैटिन साहित्य का ही सहारा रह गया।[१]

ईसाई धर्म का महत्त्व

चौथी शताब्दी के बाद, राजनीतिक उपद्रवों के कारण बहुत सा साहित्य नष्ट हो गया जिससे लैटिन संस्कृति के प्रचार में गंभीर अवरोध उपस्थित हो गया। इस समय केवल 'साम्राज्यवादी युग' के साहित्यिक प्रभाव—जैसे कि वक्तृत्व कला—ही अवशेष रहे जो आगामी पीढ़ी तक पहुँच सके। प्रजातंत्र रोम की रचनाओं से लोग अपरिचित रहे तथा क्लासिकल युग की वे ही रचनाएँ मान्य की गई जिनका ईसाई धर्म द्वारा स्वीकृत विचारों से निकट संबंध था और जो धर्मोपदेश के लिए उपयुक्त थीं। सबसे उल्लेखनीय बात यह हुई कि इस समय बहुमूल्य साहित्यिक सिद्धान्तों के प्रभाव को भुला दिया गया जो रोम के क्लासिकल युग की विशेषता थी। केवल सिसरो और क्विण्टीलियन से ही लोग परिचित थे, बाकी रोम का क्लासिकल साहित्य उपेक्षित हो पड़ा हुआ था। सर्वश्रेष्ठ कलात्मक आदर्शों पर आधारित सिद्धान्तों की भी इस समय उपेक्षा कर दी गयी थी—'ऐसे सिद्धान्त जिनमें काव्य और गद्य दोनों के मूलभूत तत्त्वों का ठोस पक्ष था तथा जो प्रक्रिया और रचना-विधान के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण सूझ-बूझ देनेवाले थे, जो विशेषकर इस समय दृष्टि को निर्मल बना देते तथा समस्त पश्चिमी यूरोप में साहित्यिक इतिहास की गतिविधि को आवश्यक रूप से बदल देते।'[२]

प्राचीन साहित्यिक परम्पराओं का विशृंखलन

व्याकरण और वक्तृत्व कला के अध्ययन अध्यापन को इस समय प्रमुखता दी गया। मानव स्वभाव पर आधारित सर्व-सामान्य व्यापक सिद्धान्तों के स्थान पर यांत्रिक प्रयोग के उपयुक्त युक्ति प्रयुक्तियों के भेद प्रभेदों के प्रतिपादन को मुख्य बताया गया। अतएव इस युग की प्रारंभिक शताब्दियों में साहित्यिक चर्चाओं और सिद्धान्तों में कोई विशेष रुचि देखने में नहीं आती। साहित्य की भावना ही इस समय बड़ी धूमिल और भ्रान्त हो गयी थी। नयी परिस्थितियों के कारण यूनानी रोमन सिद्धान्तों का विशिष्ट रूप प्रस्तुत किया जा रहा था। साहित्य संबंधी प्रचलित मान्यताओं में धर्म का व्यापक प्रभाव दिखायी दे रहा था, जिसके कारण प्राचीन साहित्यिक परम्पराएँ विशृंखलित हो रही थीं और अप्रत्यक्ष रूप से साहित्य को क्षति पहुँच रही थी।[३]

१—वही पृ० ११-१३

२—वही, पृ० १३ १५

३—वही, पृ० १५ १६

साहित्य की भर्त्सना

लैटिन धर्म प्रचारकों ने अपने धार्मिक जोश में कितने ही धार्मिक मताग्रह सूचक उद्गार व्यक्त किये हैं। तरतूलियन ने साहित्य को 'खुदा की नजरों में बेवकूफी' बताया। धार्मिक नैतिक और मनोवैज्ञानिक आधारों पर साहित्य को निंद्य बताते हुए उसने घोषित किया, "एथेंस का जेरुसलम से क्या नाता ?" अपने कथन के समर्थन में उसने प्लेटो की मान्यता उद्धृत की जिसके अनुसार होमर जैसे सम्मान्य कवि का भी आदर्श राज्य में प्रवेश निषिद्ध कर दिया गया था। जेरोम, आगस्टाइन और ग्रेगरी ने भी साहित्य की भर्त्सना की। जेरोम ने कविता को 'शैतान की खुराक' कहा। अपने सुप्रसिद्ध स्वप्न का वर्णन करते हुए उसने कहा कि क्लासिक के प्रति अतिशय राग के कारण ही उसे स्वर्ग के सिंहासन के समक्ष अपमानित होना पड़ा था। ऑगस्टाइन ने नैतिकता को आधार मानकर कविता पर आक्रमण किया क्योंकि उसके अनुसार, कवियों ने अपनी अधार्मिकता के कारण ही, देवताओं को दुष्कृत्यों के कर्ता रूप में चित्रित किया है। ग्रेगरी का कहना था, "ईसा की प्रशंसा उन्हीं होठों से नहीं की जा सकती जिनसे जोव की।" इस प्रकार हम देखते हैं कि समस्त मध्यकालीन युग में साहित्य की भर्त्सना की गयी, यद्यपि यह बात ध्यान रखने की है कि नाटकों के अतिरिक्त, व्यवहार में, इहलौकिक साहित्य का पूर्ण रूप से बहिष्कार न हो सका।[१]

यूनानी-रोमन परम्परा का महत्त्व

साथ ही नयी परिस्थितियों के कारण कुछ नये आदर्श भी प्रस्तुत किये जा रहे थे जिनका प्राचीन साहित्य से सम्बन्ध न था। उदाहरण के लिए, जेरोम और ऑगस्टाइन के विचारों में काव्यशास्त्र संबंधी प्रवृत्तियाँ देखने में आती हैं। आगस्टाइन का कथन था 'सत्य जहाँ कहीं भी हो वहीं से लो।' उसकी मान्यता थी कि अख्रिस्तीय कृतियों में भी उपयोगी उपदेश—यहाँ तक कि ईश्वर की झलक भी—पाये जाते हैं। जेरोम ने भी ईसाई धर्म ग्राह्य साहित्य को धर्म के लिए उपयोगी बनाने का समर्थन किया। उसने कहा कि प्राचीन साहित्य और परम्परा में जो सर्वश्रेष्ठ है, उसे ईसाई धर्म की आवश्यकतानुसार उपयोगी बनाया जा सकता है। इस प्रकार शनैः शनैः साहित्य संबंधी यूनानी रोमन परम्परा को महत्त्व दिया जाने लगा, क्लासिकल साहित्य की काव्यशास्त्र संबंधी विशेषताओं की सराहना की जाने लगी, तथा सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि व्यावहारिक और शैक्षणिक प्रयोजन के लिए इसकी उपयोगिता स्वीकार कर ली गयी।[२]

१—वही, पृ० १७

२—वही, पृ० १८ १६

साहित्यिक परम्परा मे बाइबिल का प्रवेश

बाइबिल साहित्य में सौन्दर्य की चर्चा होने लगी। इस सम्बन्ध में जेरोम का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। बड़े उत्साहपूर्वक उसने स्तोत्रो (Psalms) के सामजस्य, पैगम्बरों की कृतियों के अप्रतिम सौन्दर्य, 'सोलोमन के गीत' की शालीनता और 'जाब' (Job) की पूर्णता की चर्चा की है। बाइबिल-साहित्य की ऐसी कितनी ही विशिष्टताओं को उसने प्रस्तुत किया जिनकी ओर अभी तक लोगों की दृष्टि नही गई थी। इस प्रकार साहित्यिक सीमा के अन्तर्गत बाइबिल-कविता का समावेश होने से, साहित्य की परम्परागत विचारधारा व्यापक बनी जिससे ईसाई धर्म सबधी साहित्य के प्रादुर्भाव से—जो तीसरी शताब्दी से सातवी शताब्दी तक फूला फला, और जिसमें क्लासिकल मानदण्डों से भिन्न तत्त्व सन्निहित थे—इस विचारधारा में परिवर्तन हुआ। कहने की आवश्यकता नही कि यह साहित्य ईसाई धर्म के अधीन रहकर इसीकी सेवा में सलग्न रहा। बाइबिल की कथावस्तुओं का महाकाव्यों के लिए उपयोग होने लगा और तत्कालीन साहित्यिक धारा क्लासिकल परम्परा से पृथक् हो गयी।[1]

अन्योक्ति का महत्त्व

और भी साहित्यिक उद्भावनाएँ साहित्यिक समीक्षा के क्षेत्र में इस काल में उद्घाटित हुई। अन्योक्ति (एलेगरी) को साहित्य के क्षेत्र मे महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। काव्यशास्त्र के प्राचीन सिद्धान्तो मे अन्योक्ति को काव्य का आवश्यक अग नही माना गया है। लेकिन इस काल में इस प्रवृत्ति को ईसाई लेखकों द्वारा प्रोत्साहन मिला और इससे साहित्यिक रचनाएँ प्रभावित हुई। क्रमश नूतन और विरोधी समाज को प्रबुद्ध करने के लिए चर्च की ओर से बाइबिल की अन्योक्तिपरक व्याख्या अपनायी गयी तथा जेरोम, आगस्टाइन और ग्रेगरी आदि ने बाइबिल की शाब्दिक प्ररूपात्मक (टिपिकल) तथा नैतिक व्याख्याएँ प्रस्तुत की। यह शैली बाइबिल साहित्य तक ही सीमित न रही बल्कि पण्डितों की वर्जिल की रचनाओं मे भी गूढ अर्थ दिखाई पडने लगे। "अन्योक्तिपरक सिद्धान्त ने—जो यूनान-रोमन परम्परा से सर्वथा पृथक् था—मध्ययुग को गम्भीर रूप से प्रभावित किया जैसा कि अन्य कोई सिद्धान्त न कर सका।" ऐसी स्थिति में पेट्रार्क को "अन्योक्ति को समस्त काव्य का प्राण" घोषित करना पडा।[2]

१—वही, पृ० १९-२०
२—वही, पृ० २१-२३

वक्तृत्व कला की शिक्षा

व्याकरण और वक्तृत्व कला के सम्बन्ध में कहा जा चुका है। इनके अध्ययन अध्यापन के ऊपर रोमन शिक्षा प्रणाली आधारित थी तथा सिसरो और क्विण्टी लियन की कृतियों के माध्यम से मध्य युग में इनकी शिक्षा दी जाने लगी थी।

रोमन स्कूलों में, चौथी शताब्दी के अन्त तक वक्तृत्व कला को प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ था। इस समय तक पश्चिम के अध्यापकों का अपना एक अलग दल बन चुका था, तथा थियोडोरिक (मृत्यु ११५०) के समय इस कला को "संसार पर शासन करनेवाली कलाओं में प्रथम" स्वीकार किया गया। वक्तृत्व कला के भेद प्रभेदों का प्रतिपादन करने के पश्चात् शैली का उल्लेख किया गया है। शैलीगत आवश्यक कौशल प्राप्त करने के लिए प्रकृतिप्रदत्त प्रतिभा कला का ज्ञान तथा अभ्यास आवश्यक बताया गया। तत्पश्चात् शैली के गुण दोषों की मीमांसा की गयी है। शैली को उत्कृष्ट बनानेवाले अलंकारों को यहाँ प्रमुख बताया है।

चौथी शताब्दी के पश्चात् वक्तृत्व कला का महत्त्व घटने लगा तथा आनेवाली शताब्दियों में उसकी उपेक्षा होने लगी। किन्तु नौवीं और दसवीं शताब्दियों में प्राचीन विषयों के अध्ययन के पुनः प्रतिष्ठित होने पर वक्तृत्वकला फिर से उज्जीवित हो गई। सोफिस्ट इससे प्रभावित हुए तथा बौद्धिक प्रक्रिया के समस्त क्षेत्रों में इसका प्रभाव दिखाई देने लगा। क्रमशः अभिव्यक्ति के कौशल की ओर साहित्यकारों का ध्यान आकर्षित हुआ जिससे वक्तृत्व कला के मौलिक सिद्धान्तों की उपेक्षा की जाने लगी।[1]

'व्याकरण साहित्य का अध्ययन है'

समसामयिक वैयाकरणों की कृतियों ने भी साहित्यिक अध्ययन का पथप्रदर्शन किया। पुरातनकाल की भाँति व्याकरण– शुद्ध भाषण की कला'–को अभी भी वक्तृत्व कला में सहायक माना जाता था। व्याकरण में भाषा के पारिभाषिक नियमों–– शब्द भेदों की परिभाषा, अक्षर, पदांश और पदों के स्वरूप की व्याख्या, शब्दों के उपयोग और दुरुपयोग की चर्चा तथा––अलंकार की मीमांसा की गई। पूर्वकालीन रोमन विद्वानों ने काव्य की व्याख्या करके व्याकरण को सजीव बनाया था। उन्होंने कवियों, वक्ताओं और इतिहासवेत्ताओं की रचनाओं में विशुद्धता का मानदण्ड खोजा जिससे साहित्य का सम्बन्ध व्याकरण के साथ जुड़ गया। अधिकांश वैयाकरणों ने क्लासिकल लेखकों की रचनाओं से उदाहरण प्रस्तुत कर छंद और शैली की मीमांसा की तथा काव्य के स्पष्टीकरण और उसके मूल्यांकन की ओर कदम बढ़ाया। इन्हीं

१—वही पृ० २३-२८

परिस्थितियों में दियोमीदिस (Diomedes) ने "व्याकरण को साहित्य का अध्ययन" घोषित किया।[1]

काव्य और वक्तृत्व कला की अभिन्नता

ईसवी सन् की प्रारम्भिक शताब्दियों मे काव्य को कला स्वीकार करने की कल्पना बडी अनिश्चित और अस्पष्ट हो गई थी। काव्य का एक स्वतन्त्र विषय के रूप में अथवा अपने सिद्धान्तो पर आधारित किसी बौद्धिक कार्य व्यापार के रूप मे अध्ययन बन्द हो गया था अतएव काव्यशास्त्र अथवा कला के साथ काव्य का सम्बन्ध नही रह गया था। लेकिन आगे चलकर काव्य को ज्ञान की शाखा माना जाने लगा। व्याकरण के साथ इसका सबध स्थापित कर इसे एक ऐसी "दासी (हैण्डमेड) बताया गया "जो मुख्य रूप से विशुद्ध अभिव्यक्ति का पथप्रदर्शन करने के कारण उपयोगी' है। आइसोर ने काव्य को धर्मविद्या (थियोलोजी) में सम्मिलित किया क्योंकि मौलिक रूप में काव्य का धार्मिक प्रवृत्ति से उद्भव होता है। सामान्यतया काव्य को वक्तृत्व कला की ही एक शाखा माना गया। प्रथम शताब्दी मे ही कविगण उत्साहपूर्वक वक्तृत्व कला की समस्त युक्तियो की साधना करने लगे थे। "वक्ता कवियों का और कवि वक्ताओ का अनुकरण करते थे। दूसरी शताब्दी म तो यह प्रश्न किया जाने लगा कि वर्जिल को वास्तव म कवि माना जाय या वाक्पटु वक्ता? इसी समय वक्तृत्व कला को शैली के विचाराथ सीमित किया जाने लगा तथा इसमें काव्यशैली तथा भाषणशैली या गद्य को सम्मिलित कर लिया गया। काव्य को पद्यमय वक्तृत्व कला कहा गया तथा वक्तृत्व कला ने प्रारम्भिक काव्यशास्त्र का कार्य अपने ऊपर ले लिया। इस प्रकार पूरे मध्ययुग में वक्तृत्व कला ने काव्य को आत्मसात् कर लिया तथा काव्य का अध्ययन तात्त्विक महत्त्व के विषयो को छोडकर, तत्कालीन प्रचलित वक्तृत्व कला सर्वथा शिक्षा तक ही सीमित हो गया। ध्यान रखने की बात है कि प्राचीनकालीन क्लासिकल परम्परा मे वक्तृत्व कला और काव्य दोनो परस्पर भिन्न माने जाते थे।[2]

काव्यप्रयोजन

काव्यशास्त्र सबधी इन मान्यताओं में यद्यपि क्लासिकल पुरातनता के विचार रक्षित नहीं हैं, फिर भी ये मान्यताए कम मूल्यवान नही। काव्यप्रयोजन का प्रतिपादन करते हुए यहाँ विभिन्न विचार व्यक्त किये गये हैं। जेरोम ने काव्य को एक गुह्य कला स्वीकार किया है जो गुह्य सत्यो की अभिव्यक्ति का साधन है। आँग

१—वही, पृ० २८

२—वही, पृ० २९–३०

रटाइन ने अरस्तू का अनुकरण करते हुए काव्य को 'कुशलतापूर्वक अगरय भाषण की कला' माना। दियोमीडिस ने 'उपयुक्त लय तथा छन्दयुक्त, वास्तविक और कल्पित वर्णन की कला' को काव्य कहा जो 'उपयोगिता और आनन्द दोनों की प्राप्ति में सहायक' होती है। आइसोडोर ने 'सच्ची कहानियों को, कल्पना तथा अलंकार की सहायता से अभिनव रूप प्रदान किए जाने' को काव्य माना।[1]

काव्य शैली

काव्य के उन प्रकारों का यहाँ उल्लेख है जिनमें काव्यसमीक्षा सिद्धान्त के चिह्न पाये जाते हैं। कविता से संबंधित शैलियाँ हैं–विवरण शैली, नाट्य शैली तथा मिश्रित अथवा महाकाव्य की शैली। नाट्य शैली में ट्रेजेडी और कामेडी का समावेश होता है।[2]

ट्रैजेडी और कॉमेडी

काव्य सिद्धान्तों के विषय में यहाँ विशेष कुछ नहीं कहा गया, फिर भी साहित्यिक रूपों के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है, वह महत्त्वपूर्ण है। ट्रेजेडी और कामेडी की जो परिभाषाएँ दी गयी हैं, उनका प्रभाव सोलहवीं शताब्दी के नवजागरण काल तक बना रहा। दियोमीडिस ने ट्रैजेडी को 'विपत्तिग्रस्त वीरोचित (अथवा अर्ध दवी) पात्रों के भाग्य की कहानी' माना है, जो यूनानी परिभाषा पर आधारित है। आइसोडोर ने 'राज्य संघ और राजाओं की दुखभरी कहानी' को ट्रेजेडी कहा है। कॉमेडी की भी परिभाषाएँ दी गयी हैं। डियोमीडिस ने 'व्यक्तिगत अथवा सार्वजनिक जीवन में, निर्दोष क्रिया व्यापार युक्त, मनुष्यों के भाग्य की कहानी' को कॉमेडी बताया है। यह परिभाषा भी यूनानी परिभाषा पर आधारित है। आइसोडोर के अनुसार, कॉमेडी प्राइवेट व्यक्तियों के कार्यकलाप का वर्णन है और इसकी कहानियाँ आनन्ददायक होती हैं। अन्यत्र शोकगीतिका छन्द में लोकप्रचलित शैली में सुखान्त कथा को कॉमेडी कहा है जिससे बारहवीं शताब्दी में एक अभिनव साहित्यिक रूप–मध्ययुगीन कॉमेडी–का जन्म हुआ, जो कि छन्दोबद्ध कथा के अतिरिक्त और कुछ नहीं थी। दोनेतुस (Donetus) के अनुसार कामेडी के पात्र दैनिक जीवन से लिए जाते हैं। कॉमेडी एक प्रकार की कथा है जिसमें दैनिक जीवन संबंधी विविध शिक्षा रहती है, जिससे इस बात की शिक्षा ग्रहण की जा सके कि कौन सी बात जीवनोपयोगी है और कौन सी नहीं। सिसरो का एक उद्धरण देते हुए कॉमेडी को उसने 'जीवन का अनुकरण, रीति रिवाजों का दर्पण और सत्य का

१—वही पृ० ३०
२—वही, पृ० ३१

प्रतिरूप' कहा है। इस प्रकार ट्रैजेडी को 'राजकुमारों के दुखमय पतन' तथा कॉमेडी को सामान्य लोगों की सुखान्त कथा के रूप में प्रस्तुत किया गया। मध्ययुग में ट्रैजेडी और कॉमेडी दोनों के नाट्यविहीन रूपों का आविर्भाव हुआ।[१]

कल्पित कथा

मध्यकालीन युग का दूसरा साहित्यिक रूप था कल्पित कथा (फेबल)। मैक्रोबिग्रस के अनुसार, 'कल्पना के वेष में, यह एक प्रकार का कथन है जो किसी विचार का स्पष्टीकरण या उसका समर्थन करता है।" आइसीडोर ने इसे 'एक कल्पना माना है जिसमें मूक पशुओं के वार्तालाप के माध्यम से, जीवन का प्रतिरूप प्रस्तुत किया जाता है।" अपने कल्पित स्वरूप के कारण इतिहास के यह विपरीत है जिसमें कि 'वास्तविक तथ्यों की कहानी' रहती है।[२]

इसके सिवाय, काव्यगत विषयवस्तु के विविध प्रकार—संभाव्य, असंगत, काल्पनिक, यथार्थ और वास्तविक स्वीकार किये गये हैं। इस वर्गीकरण को आजकल काव्य की विषयवस्तु न मानकर कथा का ही प्रकार (नरेटिव 'काइण्ड') माना जाता है।

काव्यशास्त्र के क्षेत्र में अप्रगति

इस प्रकार हम देखते हैं कि काव्यशास्त्र संबंधी उक्त सिद्धान्त प्रारंभिक शताब्दियों में वैयाकरणों के प्रयत्न से ही सुरक्षित रह सके। पूर्वकालीन परम्परा में कविता का मूल्यांकन वैयाकरणों के कार्य का ही एक अंश माना जाता था। लेकिन इससे काव्यशास्त्र के क्षेत्र में कोई खास प्रगति नहीं हुई, केवल अलंकार आदि का प्रवेश ही हुआ। सौंदर्य अनुभूति से मिलता जुलता कोई विचार भी इस युग में हम नहीं पाते हैं। हाँ, वर्जिल का अध्ययन इन दिनों विशेष रूप से हुआ और उसकी कृतियों की व्याख्या की गयी। 'कौंटीनेंटिया वर्जिलियना' (Continentia Virgiliana) में फुलगेंटिउस (Fulgentius : छठी शताब्दी) ने वर्जिल की 'एनीड (Aeneid) की अन्योक्तिपरक व्याख्या की जिसने दाँते आदि उत्तरकालीन लेखकों को प्रभावित किया, यद्यपि एटकिन्स के शब्दों में 'कवि के सच्चे मूल्यांकन के विषय में इसमें कोई नयी बात नहीं जोड़ी गयी।[३]

१—वही, पृ० ३१-३३
२—वही, पृ० ३३
३—वही, पृ० ३३-३५

सातवी शताब्दी में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन

ईसवी सन् का सातवी शता दी साहित्यक दृष्टि से 'सुवण युग मानी जाती है जब कि इग्लैंड ने पश्चिमा यूरोप के प्रमुख सास्कृतिक स्रोतो का आत्मसात् कर यूनान और रोम की विरासत को ग्रहण किया। इसके पूव टेसिटस के उल्लेखो से पता लगता है कि जहा कही रोमन सनाग्रो ने प्रवेश किया वहा रोमन साहित्य और सस्कृति के स्कूल खुल गये तथा वक्तृत्व कला क पद्धितो का आगमन होने लगा। फलस्वरूप ब्रिटेन में रोमन विजेताओ का शिक्षा पद्धति स्वीकार की गयी ब्रिटिश सरदारों की सतानो को उदार कलाओ का शिक्षा दी जाने लगी और लटिन भाषा का प्रचार होने लगा। उधर ईसाई धम का प्रचार भी शनै शनै हा रहा था। इस समय पाचवी शताब्दी के प्रारभ में (ई० ४१०) ब्रिटेन से रोमन सेनाओ के हट जाने पर ब्रिटिश चच ने लैटिन भाषा को सुरक्षित रक्खा। तत्पश्चात् एग्लो सैक्शन आक्रमण के कारण रोमन जीवन शक्ति के केंद्र नष्ट हो गय, तथा पाचवी और छठी शताब्दियाँ अधकार का शताब्दियाँ बनकर रह गइ जिससे पूवकाल मे प्राप्त की हुई वक्तृत्व कला और साहित्य शि ा सवथा विलुप्त हो गयी।[1]

आगे चलकर सातवी शता दी म ब्रिटेन में अनेक महत्त्वपूण परिवतन हुए जिससे बौद्धिक क्षेत्र म प्रगति हुई। ईसाई धम का प्रचार बढा और लैटिन सस्कृति पुनरुज्जीवित होती हुई दिखाने लगी। आयरिश मिशनरिया ने ब्रिटेन के उत्तरी भाग में धार्मिक स्कूल कायम किये जिनम प्राचीन विद्याओं की शिक्षा दी जाने लगी। दक्षिण में भी सस्कृति के नय केंद्र स्थापित हुए। कटरबरो म पादरिया का स्कूल खोला गया जो प्राचीन शिक्षा का एक महत्त्वपूण केंद्र बना। बेयरमाउथ और जैरो म मिशनरी स्कूलों की स्थापना हुई जिनकी लाइब्रेरी लेटिन पुस्तका का विशाल सग्रह बन गया। एँग्लो सैक्शन लोगों को साहित्य पढने का अवसर प्राप्त हुआ और प्राचीन सभ्यता स उनका परिचय बढ़ा। अग्रेजीं के लिए एक नूतन स्वग और नूतन जगत का द्वार खुल गया।[2]

लैटिन भाषा का यह ज्ञान अत्यन्त उपयोगा सिद्ध हुआ। पादरियों द्वारा स्थापित स्कूल शिक्षा के केन्द्र बने हुए थ जिन्ह जरोम आगस्टाइन कैसिओडारस और ग्रेगरी आदि की परम्परा विरासत में मिला था। पादरिया को धार्मिक उपदेश देने के लिए तयार करना, इन स्कूलो का मुख्य उद्देश्य था। इसके लिए लौकिक

१—वही, पृ० ३६ ३७
२—वही, पृ० ३८–४०

साहित्य और खासकर व्याकरण के नियमो का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक हो गया। ऐसी हालत में व्याकरण, जिसने कि रोम मे वक्तृत्व कला का मार्ग प्रशस्त किया था धर्मशास्त्रीय ज्ञान के लिए आवश्यक माना जाने लगा। शाही समय में जो स्थान वक्तृत्व कला को दिया जाता था, वही स्थान व्याकरण को दिया गया, और व्याकरण धार्मिक साहित्य से परिचय प्राप्त करने का प्रमुख माध्यम बना।[1]

बीडी (६७५–७३५)

वेनरेबुल' बीडी (Bede) इस युग का एक प्रतिष्ठित धार्मिक विद्वान् हो गया है जो जरो के प्रसिद्ध मठ में 'लिखने पढने और उपदेश देने' म समय व्यतीत करता था। 'ग्रॉन द मीट्रिकल ग्राट' (छन्द कला सम्बन्धी) म उसने प्राचीन और उत्तरकाल के ईसाई कवियों द्वारा वर्णित विविध छन्दो का प्रतिपादन किया है। काव्यगत लय का भी चर्चा की गई है। अन्त म कविता के प्रकारो का उल्लेख है। पूर्वकालीन कितने ही वयाकरणो का उल्लेख भी बीडी ने किया है जिससे उसके व्यापक अध्ययन का पता लगता है। लय छन्द के ही तुल्य है जिसम शब्दो का सामजस्य युक्त क्रम रहता है और जो लोकप्रिय कवियों के गीतो की भाति श्रुतिमधुर होता है। उसका कथन है, बिना छन्द के भी लय हो सकती है लेकिन बिना लय के छन्द का होना सभव नही। छन्द एक ऐसा क्रम है जो सामजस्य मे प्रकट होता है, जब कि लय क्रमरहित सामजस्य है।[2]

बीडी ने बाइबिल की आलकारिक (फिगरेटिव) अभिव्यक्ति पर जोर दिया, जो उसके व्याकरण के अध्ययन का ही एक अश था। इसका उद्देश्य भी ईसाई धर्म के साहित्य की व्याख्या ही था। उस समय विद्वानो की मान्यता थी कि धर्मशास्त्र म उल्लिखित अनेक बातें बिम्बो (इमेजेज) मे प्रस्तुत की गई हैं तथा यदि एक भी बात हम गलत समझते हैं तो उससे ईश्वर वाक्य मिथ्या सिद्ध होते हैं, इसलिए ऐसे अवतरणो को ठीक समझने के लिए अलकारों का ज्ञान आवश्यक है। इसके अलावा, उन दिनो अलकारों को कविता का आवश्यक तत्त्व माना जाता था, और बीडी के अनुसार वैयाकरणो द्वारा उनके सिद्धान्त स्थापित किये जाने के पहले ही धर्मशास्त्रों मे अलकारों का अस्तित्व था। अपनी पुस्तक म उसने अनेक अलकारो का सोदाहरण प्रतिपादन किया है।[3]

छन्द और अलकारों को साहित्य के लिए महत्त्वपूर्ण मानने के अतिरिक्त, बीडी ने दियोमीदिस की भाति काव्य के तीन प्रकार स्वीकार किये हैं। नाट्यात्मक

१—वही, पृ० ४१ ४२

२—वही, पृ० ४२ ४५

३—वही, पृ० ४६-४८

प्रकार में कवि के संवाद में बिना ही पात्र रंगमंच पर उपस्थित होते हैं, वर्णनात्मक प्रकार में केवल कवि का ही वार्तालाप होता है, मिश्रित प्रकार में कवि और उनके पात्र दोनों का वार्तालाप रहता है। बीडी के अनुसार बाइबिल-साहित्य में काव्य के उक्त तीनों प्रकार पाये जाते हैं। बाइबिल साहित्य की अन्योक्तिपरक व्याख्या के सिद्धान्त को उसने मान्य किया था।[१]

इस प्रकार हम देखते हैं कि इंग्लैंड में बीडी के साहित्यिक सिद्धान्तों से ही समीक्षात्मक प्रक्रिया आरंभ होती है, यद्यपि उसकी छंद अलंकार आदि की व्याख्या समीक्षा के क्षेत्र में हमें आगे नहीं ले जाती। इंग्लैण्ड में बीडी से ही व्याकरण की अध्ययन परम्परा चलती है जो साहित्य के मूल्यांकन का मार्ग प्रशस्त करने में सहायक हुई। बीडी के साहित्यिक सिद्धान्तों पर ईसाई धर्म का प्रभाव पड़ा, इसीलिए क्लासिकल साहित्य की अपेक्षा ईसाई धर्म की कविता को ही उसने अत्यधिक महत्त्व दिया। किन्तु इन सबके बावजूद, मानना होगा कि समीक्षात्मक इतिहास में बीडी का योगदान रहा है। बाइबिल साहित्य के मूल्यांकन करने का उसने प्रयत्न किया, जिसका महत्त्व आज भी कम नहीं हुआ है। व्याकरण को उसने धार्मिक साहित्य का अध्ययन करने के लिए आवश्यक माना। और सबसे बड़ी बात यह थी कि पुरातन युग और मध्ययुग के बीच की खाईं को पाटने में वह समर्थ हुआ।[२]

आलकुइन (७३५–८०४)

आलकुइन (Alcuin) इस युग का एक दूसरा विद्वान हो गया है जिसने बीडी की भांति यूरोप में यश अर्जित किया। बीडी के जीवनकाल में ही यार्क का मिशनरी स्कूल शिक्षा का एक महान केंद्र बन गया था जहाँ बीडी के शिष्य आर्च बिशप एग्बेट से आलकुइन ने 'उदार कलाओं' की शिक्षा ग्रहण की। यार्क की विशाल लाइब्रेरी का लाभ उसे पर्याप्त मात्रा में मिला।[३]

आलकुइन की रुचि शुरू से ही संस्कृति की ओर था जिसके अध्ययन से साहित्यिक सिद्धान्तों के पुरस्कर्ताओं में उसका नाम प्रसिद्ध हुआ। आलकुइन पादरियों का शिक्षक था, व्याकरण और वक्तृत्वकला के मूल तत्त्वों तथा बाइबिल और ईसाई धर्म की कविता के कतिपय तत्त्वों की स्थापना में उसने योगदान दिया था। उसका कहना था कि बिना शब्दज्ञान के धर्मशास्त्रों को हृदयंगम करना कठिन है इसलिए धर्मशास्त्र के प्रतिबिम्बों और अलंकारों का सही ज्ञान प्राप्त करने के लिए उचित अनुशासन आवश्यक है।[४]

१—वही पृ० ४८-४९
२—वही पृ० ४९-५१
३—वही, पृ० ५१
४—वही, पृ० ५२

'ऑन आर्थोग्राफी' (वर्णविचार सबधी), 'ऑन ग्रामर' (व्याकरण सम्बन्धी) और 'ऑन रैटारिक' (वक्तृत्व कला सबधी) आलकुइन की प्रमुख रचनाएँ हैं। इन रचनाओ म आलकुइन के काव्यशास्त्र सवधी सिद्धान्त देखन मे आते हैं। ग्रान ऑर्थोग्राफी में शब्दो की सही वतनी तथा लैटिन शब्दो के प्रयोग की चर्चा है। कितने ही शब्दो की विचित्र व्युत्पत्तिया दा गई हैं। उन दिना लैटिन बोलचाल की भाषा (लिग्वाफ्रका) का रूप धारण कर रही थी, इसलिए इन सब विषयो की जानकारी आवश्यक थी। 'ग्रान ग्रामर मे सात 'उदार कलाओ' को ज्ञानमदिर के सात स्तभ और धमविद्या की ऊँचाई तक पहुँचने के लिए सात सीढिया बताई गई हैं। शब्दो, पदार्थों और अक्षरा का यहाँ विस्तार से वर्णन है। व्याकरण को 'अक्षरो का विज्ञान, शुद्ध भाषण और लेखन का सरक्षक तथा प्रकृति, तक, शब्दप्रमाण (ग्रथोरिटी) और रीति रिवाज पर आधारित' बताया गया है। व्याकरण के अध्ययन को २६ भागो मे विभक्त किया है। शेष भाग में शब्द भेद और अलकार आदि का वर्णन है। मध्ययुगीन बीडी आदि चिन्तको की भाँति आलकुइन ने व्याकरण को साहित्य के मूल्याकन मे उपयोगी न मानकर, उसे एक 'अनुपजाऊ विज्ञान (बैरन साइस) तथा 'टक्निकल और यान्त्रिक अभ्यास' कहा है, 'जिसका साहित्यिक रुचि से सबध नही है।' 'लेखको' और कलाओ' का सम्बन्ध उसे स्वीकार्य नही है। 'ग्रान रेटोरिक' रोम के सम्राट् शालमान (Chilemagne) के अनुरोध पर लिखा गया था। राज्य के दीवानी मामलों मे किन नियमो का पालन किया जाय और इन मामलों का निपटारा किस प्रकार किया जाय, इसका प्रतिपादन यहाँ किया गया है। भलीभाँति बोलने की कला को वक्तृत्व कला कहा है जिससे हम सभ्य बनते हैं तथा मनुष्य और पशु के बीच का अन्तर स्पष्ट होता है। वक्तृत्व कला के तत्त्वो का वर्णन करते हुए शैली को महत्त्व दिया गया है। शब्दों के सम्बन्ध मे कहा है कि विरल तथा अप्रिय शब्दो का प्रयोग न करना चाहिए, अतिमधुर शब्द तथा रुपक आदि अलकार ग्राह्य हैं। 'जैसे टहलने जाते समय बिना उछल कूद अथवा बिना विलम्ब के धीरे धीरे चलना अच्छा है, वही बात बोलते समय भी होनी चाहिए।' सतत अभ्यास मुख्य है क्योंकि इसके विना न निसर्गजन्य प्रतिभा कार्यकारी होती है और न महान् विवेकपूर्ण शिक्षा।[1]

वर्जिल को आलकुइन ने आदर्श कवि कहा है। एक स्थान पर उसने उदात्त शैली के लिए क्लासिकल साहित्य अध्ययन करने की सिफारिश की है। फिर भी आलकुइन का झुकाव ईसाई धर्म की ओर ही अधिक था। सन् ७४७ के एक कानून द्वारा घोषणा की गयी थी कि मठो को कवियों, संगीतों और प्रहसना का निवास स्थान न

१—वही, पृ० ५२-५६

बनने देना चाहिए, और इसी को लेकर आलकुइन ने पादरियों को सलाह दी कि वे पवित्र और श्रद्धाविहीन गीतों को परस्पर संयुक्त न कर दें। वस्तुत आलकुइन का उद्देश्य शुद्ध पठन और शुद्ध लेखन तक ही सीमित था।[१]

आलकुइन का विषय प्रतिपादन यद्यपि पादरियों तथा तत्कालीन राजनीतिक आवश्यकताओं की पूर्ति तक ही सीमित है, फिर भी उसने मध्ययुग का प्राचीन रोमन शिक्षा से संबंध जोड़ा। उसने उक्ति की सादगी और स्पष्टता की आवश्यकता पर जोर दिया, शब्दों के चुनाव और उनके उपयोग के कौशल को महत्त्वपूर्ण बताया तथा सतत अभ्यास और मर्यादा पालन का आवश्यकता समझायी। ये सब बातें किसी भी युग के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण कही जा सकती हैं। अपने पूर्ववर्ती समीक्षक बीडी की भाँति मुख्य रूप से ईसाई साधुओं के लिए ही उसने साहित्य का सर्जन न कर, सर्वसामान्य के लिए उसे लिखा जिससे शिक्षा धार्मिक बंधनों से मुक्त हो सकी। यद्यपि सुप्रसिद्ध आलोचक एटकिन्स के शब्दों में, "उसके विचारों में न मौलिकता का अंश है और न कोई नूतनता ही" फिर भी संकटकाल में, पश्चिमी यूरोप में साहित्य के प्रति अभिरुचि जाग्रत करने में निश्चय ही आलकुइन का योगदान स्वीकार करना होगा।[२]

सालिसबरी का जॉन (१११०-८०)

बीडी और आलकुइन के पश्चात् तीन शताब्दियों तक साहित्यिक समीक्षा के क्षेत्र में कोई खास प्रगति नहीं हुई। उसके बाद हैनरी द्वितीय के राज्यकाल (११५४-८९) में तथा विदेशी प्रभाव के कारण अंग्रेज विद्वानों का ध्यान साहित्यिक विषयों की ओर आकर्षित हुआ। इंग्लैंड अब तक दुनिया से अलग थलग एक छोटा सा द्वीप था, लेकिन हैनरी द्वितीय के राज्यकाल में वह शक्तिशाली बन गया। हैनरी का राज्य स्कॉटलैंड से लेकर पायरिनीज पर्वत शृंखला तक फैल गया जिससे कि विदेशों के साथ इंग्लैंड का सम्बन्ध स्थापित होने से बौद्धिक तथा साहित्यिक प्रवृत्तियों में उन्नति होने लगी। इस बीच में डच और नॉरमन लोगों के आक्रमण हो चुके थे, और नॉरमन आक्रमण के बाद फ्रांस के सम्पर्क में आने से इंग्लैंड में विद्या की उन्नति हुई थी। हैनरी द्वितीय के दरबार में कैण्टरबरी का आर्चबिशप तथा धार्मिक विद्या के अन्य केन्द्रों में अनेक प्रतिभाशाली विद्वान् रहते थे जिन्होंने इंग्लैंड में बारहवीं शताब्दी के पुनर्जागरण युग को सामर्थ्य प्रदान की।[३]

सालिसबरी का जॉन इस युग का बड़ा विद्वान् हो गया है। प्राचीन क्लासिकल

१—वही, पृ० ५६-५७
२—वही, पृ० ५८
३—वही, पृ० ५९-६५

सिद्धान्त के पुरस्कर्ताओं की सहायता से उसने साहित्यिक अध्ययन को एक नयी दिशा प्रदान की और शब्दों की कलात्मक अभिव्यक्ति के सिद्धान्तों को वह प्रकाश में लाया। इंग्लैंड में मानववादी विचारों का प्रारम्भ सालिसबरी का जान से ही हुआ।

'पालिक्रेटिक्स' और 'मैटालोजिकन' नाम के साहित्यिक विषयों को लेकर लिखी हुई उसकी दो रचनाएँ हैं जो धाराप्रवाह लैटिन में लिखी गयी हैं। ये रचनाएँ तत्कालीन सामयिक विचारों के विश्वकोश ही अधिक हैं जिनमें कि प्राचीन और सामयिक इतिहास, तर्कशास्त्र, शासन सम्बन्धी विचार, दार्शनिक नैतिक और शैक्षणिक सिद्धान्त, न्यायालयों पर तीखे व्यंग्य तथा विद्वानों की सनक आदि का वर्णन है। 'मैटालोजिकन' में व्याकरण के अभ्यास पर जोर दिया गया है जो तर्कशास्त्र पढने के लिए आवश्यक है। इससे केवल शब्दों की अभिव्यक्ति की ओर ही नहीं, साहित्यिक अध्ययन की ओर भी लक्ष्य किया गया है।[1]

उन दिनों विविध विषयों को लेकर विद्वानों में विचार संघर्ष चल रहा था। अनेक विद्वानों ने व्याकरण और साहित्यिक अध्ययन पर जोर देते हुए व्याकरण को समस्त 'उदार कलाओं' का प्रवेशद्वार बताया था। प्राचीन साहित्य के अध्ययन को भी आवश्यक माना गया था। एक विद्वान् ने तो यहाँ तक कह दिया था, "आधुनिक और प्राचीनों का सम्बन्ध ऐसा ही है जैसे बौने दीर्घकाय लोगों के कंधों पर बैठे हों।" एक दूसरे विद्वान् का कथन है, "ज्ञान प्राचीनों के पास है। कोई व्यक्ति प्राचीनों की कृतियों का रुचिपूर्वक बार बार अध्ययन किये बिना अज्ञानता की छाया से ज्ञान के प्रकाश में प्रवेश नहीं कर सकता।" एक अन्य विद्वान् की उक्ति के अनुसार, "प्राचीनों का पढकर हम उनके उदात्ततम विचारों को पुनरुज्जीवित करते हैं जो विचार समय और लोगों के आलस्य के कारण नष्ट हो गये थे अथवा मृत समझे जाने लगे थे।"[2]

सालिसबरी के जान ने इन विचारों का समर्थन किया। तर्कविद्या के अध्ययन पर उसने जोर दिया तथा व्याकरण और साहित्यिक अध्ययन को आवश्यक बताया। तर्क से मनुष्य को विवेक प्राप्त होता है तथा वाक्पटुता से विवेक कार्यकारी बनता है, इसलिए दोनों की व्यवस्थित शिक्षा को आवश्यक बताया गया। भाषा पर नियन्त्रण रखने पर ही अभिव्यक्ति में शुद्धता और कुशलता आ सकती है और तब हम वाक्पटु कहे जा सकते हैं और वाक्पटुता के बिना विचारों में तार्किकता नहीं आती।[3]

यूनानी समीक्षा का चर्चा करते हुए हम देख आये हैं कि यूनान के विद्वानों ने वक्तृत्व कला को महत्त्व दिया था। सालिसबरी के जॉन ने भी प्रभावशाली वक्तृता

१—वही, पृ० ६५ ६७

२—वही, पृ० ६९–७०

३—वही, पृ० ७०–७१

को मानव जीवन के लिए एक शक्तिशाली साधन माना है। एक प्राचीन उल्लेख को उद्धत करते हुए 'मैटालाजिकन' मे उसने लिखा है, "वाक्पटुता नगरो की स्थापना करने और लोगो को सयुक्त करने मे सहायक रही है।" होरेस का उद्धत करते हुए वह कहता है, "वाक्पटुता" 'सही विचार' के पश्चात्, किन्तु यश, स्वास्थ्य और धन के पूर्व आती है।" सिसरो के शब्दो में, उसने इसे एक ऐसी कला बताया है जो असभव को सभव बना देती है, तथा जो भोडे और भयानक को परिष्कृत कर देती है।[1]

सालिसबरी के जॉन ने प्रकृति और कला का सम्बन्ध स्थापित करते हुए प्रकृति को कला की जननी कहा है। प्रकृति की सहायता करना कला का उद्देश्य है। इस प्रसग पर होरेस को उद्धत किया गया है जिसने काव्य सृजन के लिए प्रकृति और कला की आवश्यकता स्वीकार की है। सालिसबरी के जॉन ने कला को "एक सिद्धा त अथवा पद्धति' कहा है, 'जो सक्षेप मे प्रकृति के सहयोग से सभव बातो में कौशल प्राप्त करने में सहायक हो।" कला प्रतिभा को अनुप्राणित करती है। बिना निर्देश प्राप्त किये, प्रतिभा में आवश्यक रूप से कौशल नही आता। प्रकृति की सहायता से कला उन्नत होती है और पूर्णता प्राप्त करता है, इसलिए कला के अभ्यास स कलात्मक कौशल का सम्पादन किया जाता है। लेकिन यह अभ्यास सन्तुलित होना चाहिए, अन्यथा अत्यधिक श्रम से प्रतिभा के कुण्ठित हो जाने का अन्देशा रहता है। अभ्यास करते रहने से सुधार होता है तथा कला से पूर्णता आती है। बिना अभ्यास के कला निष्फल होती है तथा बिना कला के अभ्यास अनिश्चित फल की ओर ले जाता है। प्लेटो से लेकर क्विण्टीलियन तक सुन्दर भाषण (अथवा सुलेखन) के लिए स्वाभाविक गुण कला का ज्ञान तथा सतत अभ्यास को आवश्यक बताया गया है, और 'मैटालोजिकन' मे इन्ही बातो का प्रतिपादन है।[2]

सालिसबरी के जॉन ने इस बात का भी उल्लेख किया है कि लिखते समय किन दोषो का निराकरण करना चाहिए। सवप्रथम सदोष पदविन्यास (डिक्शन) से बचने का आदेश है। सीजर के शब्दो म, 'जसे मल्लाह लोग चट्टान से बचते हैं, इसी तरह विरल अथवा अप्रचलित शब्द से बचना चाहिए।" भाषा को निरन्तर प्रवाह शील बताया गया है जिसमें शब्द फूलते फलते हैं नष्ट हो जाते हैं और फिर स नय प्रयोगो के कारण पुन उज्जीवित हो जाते हैं और इन प्रयोगो म निर्णय, प्रमाण और नियम सन्निहित रहते हैं। सदोष मुहावरे अथवा सदोष वाक्य रचना से उत्पन्न हुए अशुद्ध प्रयोगों से बचना चाहिए। एक सफल लेखक के लिए प्रचुर शब्दावली,

१—वही, पृ० ७१-७२
२—वही, पृ० ७२ ७३

धाराप्रवाहिक भाषा तथा अभिव्यक्ति कौशल आवश्यक है। उसे कठोर नियन्त्रण रखना चाहिए, तथा जिन बातों से उसका परिचय है, उन्हें ही कहना चाहिए, जिनसे नहीं, उनके सम्बन्ध में चुप रहना चाहिए।[1]

सालिसबरी के जॉन ने क्लासिकल साहित्य को आध्यात्मिकता का एक विशाल कोष माना है। उसका कहना है कि सीजर की प्रसिद्धि का कारण अनेक नगरों से लूटा हुआ विशाल खजाना न होकर वर्जिल, वैरस और लूकान कवि ही हैं। सिसरो की भांति उसे भी क्लासिकल साहित्य के अध्ययन से शान्ति लाभ होता था। उसके अनुसार, साहित्य हमें 'दुख में शान्ति, श्रम में आमोद, दरिद्रता में आनन्द तथा समृद्धि में संयम' प्रदान करता है, तथा साहित्य जब तक जीवन के लिए उपयोगी नहीं तब तक उसे निरुपयोगी ही समझना चाहिए। होरेस की उसने प्रशंसा की है जिसे सुख दुख में उदासीन रहनेवाले स्टोइक्स नामक दार्शनिक के उपदेश की अपेक्षा होमर के अध्ययन से अधिक लाभ हुआ था। इसी प्रकार सिसरो ने जो कवियों और इतिहासज्ञों आदि की सराहना की है, उसे भी उसने उचित कहा है, क्योंकि इन लोगों ने बुराई को निकृष्ट माना है।[2]

बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास के लिए महान् साहित्य का अध्ययन आवश्यक है। सेनेका को उद्धृत करते हुए उसने लिखा है "बिना अध्ययन किये, फुर्सत के समय मृत्यु अपना जादू डालती है और मनुष्य के जिन्दा रहते हुए भी वह कब्र में दफन हो जाता है। जो साहित्य चरित्र अथवा शैली के निर्माण में सहायक हो, उसे प्रशंसनीय कहा गया है। पाठक को मधुमक्खियों का अनुकरण करने का आदेश दिया गया है जो स्वच्छन्द भाव से एक फूल से दूसरे फूल पर उड़ती हैं और जो रस उन्हें उपलब्ध होता है उसे मधु में बदल देती हैं। साहित्य का आलोचनात्मक दृष्टि से अध्ययन किया जाना चाहिए। अधिकांश रचनाओं के गूढ़ और असम्बद्ध अवतरणों के अध्ययन की गर्हणा करते हुए, क्विण्टीलियन के शब्दों में उसने लिखा है, "साहित्य के अध्यापक में कुछ बातें ऐसी होती हैं जिन्हें नहीं जानना ही श्रेयस्कर है।' "शब्दों की सरलतापूर्वक व्याख्या करनी चाहिए, बन्दी बनाये हुए दासों की भाँति उन्हें यातना न देना चाहिए, कहीं वे ऐसे अर्थ को न उगल दें जो अर्थ उनमें नहीं था।[3]

सालिसबरी के जॉन की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि उसने साहित्य के मूल्यांकन को प्रमुख स्वीकार करते हुए साहित्यिक शिक्षा पर जोर दिया। अब तक

१—वही, पृ० ७४ ७६
२—वही, पृ० ७६ ७८
३—वही, पृ० ७८ ७९

बाइबिल एवं ईसाईधर्म के सिद्धान्तों की ही साहित्य में गणना की जाती थी, लेकिन उसने यूनान और रोम के क्लासिकल साहित्य की ओर अपने युग का ध्यान आकर्षित किया। होरेस, क्विंटीलियन और सेनेका आदि विचारकों के प्राचीन सिद्धान्तों को उसने महत्वपूर्ण बताया। बीडी और आलकुइन की भांति उसने व्याकरण के ऊपर जोर न देकर वक्तृत्व कला अथवा साहित्य सृजन के लिए कला को मुख्य माना। यह सही है कि साहित्य सम्बन्धी उसकी मान्यता शिक्षा के माध्यम तक ही सीमित रही और वह उसे सौन्दर्यबोध प्रदान नहीं कर सका, फिर भी यह मानना होगा कि जब धर्म विद्या की दुहाई देकर परलोक चिन्ता को ही मुख्य माना जा रहा था, तब यूनान और रोम के साहित्य में मानवीय मूल्यों के प्रति इंगित कर समीक्षा साहित्य को उसने अभिनव जीवन प्रदान किया। इस दृष्टि से अंग्रेजी समीक्षा के इतिहास में एक मानववादी के रूप में सालिसबरी के जॉन का नाम स्मरणीय रहेगा।[1]

विनसाफ का ज्योफ्रे (१२ वीं शताब्दी का मध्य काल

समीक्षाशास्त्र की दृष्टि से बारहवीं तेरहवीं शताब्दी का काल महत्वपूर्ण रहा, क्योंकि इस काल में साहित्य के अध्ययन तथा साहित्यिक सिद्धान्तों पर कुछ महत्त्वपूर्ण कृतियाँ प्रकाशित हुईं। इस सम्बन्ध में विनसाफ का ज्योफ्रे और गारलैंड का जॉन के नाम उल्लेखनीय हैं। केवल काव्यकला सबंधी ही नहीं, बल्कि गद्य, पत्र-लेखन कला, और सामयिक वक्तृत्व कला पर भी इस समय ग्रन्थों की रचना हुई। इनमें काव्यसबंधी ग्रंथों का महत्त्व इसलिए है कि अनेक त्रुटियों के बावजूद, इनसे भावी समीक्षा पद्धति के विकास में सहायता मिली।[2]

बारहवीं तथा तेरहवीं शताब्दी के आरंभ में लोगों को पद्यरचना की धुन सवार थी। केवल दर्शन, साइंस अथवा ऐतिहासिक रचनाओं को ही नहीं, लैटिन व्याकरण, पत्रलेखन तथा धर्मोपदेश को भी कवितावद्ध करने की प्रवृत्ति जागृत हो उठी, और बाइबिल तक की भी पद्य में रचना की गयी। ऐसी हालत में, काव्यकला की शिक्षा देने के सम्बन्ध में अनेक गुटकों की रचना हुई। विनसाफ के ज्योफ्रे ने 'पोएट्रिआ नोवा' (१२०८-१३) आदि तथा गारलंड के जॉन ने 'पोएट्रिआ' आदि की रचना की। अन्य विद्वानों ने भी काव्यकला के सम्बन्ध में रचनाएँ प्रस्तुत कीं।[3]

विनसाफ का ज्योफ्रे की 'पोएट्रिआ नोवा' की तुलना होरेस की 'आर्स पोएतिका' से की जाती है। विषय का स्पष्टीकरण करते समय, यहाँ विशेषकर क्लासिकल साहित्य से उदाहरण दिये गये हैं। इस रचना को एक पारिभाषिक रचना ही कहना

१—वही, पृ० ८७-९०

२—वही, पृ० ९४

३—वही, पृ० ९५

चाहिए जो अपने विषय तक ही सीमित है। लेखक ने सर्वप्रथम कला के अध्ययन को प्रमुख बताया है। अपनी रचना आरम्भ करने के पूर्व कवि को सोच विचार करना चाहिए और फिर जो कुछ लिखना हो, उसे सम्यक् रीति से प्रस्तुत करना चाहिए। उसका कहना है कि जैसे किसी भवन का निर्माण करते समय हमें योजना का आवश्यकता पड़ती है, उसी प्रकार काव्य सृजन में साधना की आवश्यकता रहती है। जैसे जरा सा भी कड़ुवापन मधुघट को कड़ुवा बना देता है और जरा सा भी घाव मुख के सौंदर्य को बिगाड़ देता है, उसी प्रकार यदि रचना में कोई दोष रह जाय तो वह भ्रष्ट हो जाती है। अतएव यदि कविता को दोषों से दूर रखना हो तो उसके आदि, मध्य और अन्त को बहुत सँवार कर लिखने की आवश्यकता है। मध्यकालीन लेखकों की रचनाओं में ऐक्य और अनुपात की कमी इसलिए खटकती है कि उन दिनों मौखिक परम्परा के अनुसार, घटनाओं को आधार मानकर काव्य पाठ किया जाता था, पाठकों के समक्ष समस्त रचना नहीं रहती थी जिससे कि वे उसके सम्बन्ध में निर्णय दें।[1]

ज्योफ्रे ने अपनी रचना में मुख्यतया तीन बातों का विवेचन किया है—कविता का आरम्भ किस प्रकार किया जाय, उसका विस्तारपूर्वक और संक्षेप में किस प्रकार वर्णन हो, शैली से उसे किस प्रकार अलंकृत किया जाय। रचना के अधिकांश भाग में इन्हीं विषयों का वर्णन है। वक्तृत्व कला की शिक्षा काव्य सृजन के लिए आवश्यक है क्योंकि इससे काव्यकला के सिद्धान्त, शैली के प्रकार, कलाकौशल और अलंकार का निर्धारण होता है।[2]

ज्योफ्रे ने काव्य अभिव्यक्ति के लिए कतिपय नियमों का भी उल्लेख किया है। उदात्त शैली के लिए उसने उच्च विचारों की मौलिक आवश्यकता पर जोर दिया है। "किसी तुच्छ विचार को यदि विशेष रूप से सुसज्जित करके प्रस्तुत किया जाय तो वह एक ऐसे चित्र की भाँति प्रतीत होगा जो दूर से अच्छा लगता है, लेकिन साव धानीपूर्वक उसकी परीक्षा करने से अच्छा लगना बन्द हो जाता है", तथा 'शब्द मन वस्तुएँ हैं—यदि वे ठोस विचारों पर आधारित नहीं"। विचारों की स्पष्टता के सम्बन्ध में उसने कहा है, "गूढ़ शब्दावली का प्रयोग करना नदी में पानी उड़ेलने, सूखी जमीन में पौधे लगाने, हवा को ताड़ना करने अथवा बालू में हल चलाने की

१—वही, पृ० ९६-९९

२—वही, पृ० ९९ १००। (क) कविता के आरम्भ और अन्त करने के विविध प्रकारों, (ख) विस्तार (ऐम्प्लिफिकेशन) और संक्षिप्तीकरण (ऐब्रिविएशन) के प्रकारों तथा (ग) शैली के अलंकारों के विस्तृत वर्णन के लिए देखिए, पृ० १०० ३, परिशिष्ट, पृ० २०० ३।

भांति है। उसके कथनानुसार, बोलचाल के सामान्य शब्दों का ही कलाकार को प्रयोग करना चाहिए। हम "बोलना चाहिये सामान्य व्यक्तियों की भांति लेकिन सोचना चाहिये बुद्धिमानों की भांति।" अश्लील भाषा के प्रयोग न करने चाहिये। काव्य में नवीनता होनी चाहिए और यह नवीनता सामान्य शब्दों की सजावट से उद्भूत हो।[1]

शैली के सम्बन्ध में भी ज्योफ्रे की अनेक उक्तियाँ हैं। उसके अनुसार काव्य तथा गद्य के लिए एक ही कला का प्रयोग किया जाता है, उसमें केवल कम अथवा अधिक मात्रा का भी अन्तर रहता है। पाठक और प्रसंगविशेष का विचार करते हुए लेखक को अपनी कला की मर्यादा ध्यान में रखनी चाहिए तभी उसकी शैली सफल कही जा सकती है। इसके लिए काव्यकला के नियम ही उसके मार्गदर्शक हो सकते हैं। कलाकार की शैली में आदि से अन्त तक एकरूपता रहनी चाहिए, अन्यथा अभिव्यक्ति में असंगति प्रतीत होगी। विवेकपूर्ण आलंकारिक अभिव्यक्ति के प्रयोग पर यहाँ जोर दिया गया है। समय के अनुसार ही उसका प्रयोग करना चाहिए, क्योंकि "विविध प्रकार के सुगंधित पुष्पों से ही मनोहारी सुगंध पैदा हो सकती है।" किसी गंभीर विषय के लिए अलंकृत भाषा की आवश्यकता रहती है, जब कि हास परिहास संबंधी विषयों को सामान्य शब्दों द्वारा ही व्यक्त किया जा सकता है। प्राचीन पंडितों द्वारा उल्लिखित सामान्य दोषों का उल्लेख किया गया है जिनसे कि कलाकार को बचना चाहिए। "किसी भी कौशल का यदि आवश्यकता से अधिक उपयोग किया जाय तो वह प्रभावहीन हो जाता है।"[2]

गारलैंड का जॉन (११८०-१२६०)

ज्योफ्रे की भांति जॉन भी इंग्लैंड का निवासी था जिसने अधिकांश जीवन फ्रांस में व्यतीत किया था। पेरिस में वह व्याकरण का अध्यापन करता था। इस विषय पर उसने ने पुस्तकें भी लिखी हैं। उसकी 'पोएट्रिया नोवा' का उल्लेख किया जा चुका है। ज्योफ्रे आदि अपने पूर्ववर्ती विद्वानों के समीक्षा सिद्धांतों का अध्ययन उसने किया था। जान ने कविता का आरंभ और अन्त करने उसे विस्तृत रूप में लिखने, तथा शैली के अलंकारों के विभिन्न प्रकारों का विवेचन किया है, यह विवेचन ज्योफ्रे से भिन्न है। ऐतिहासिक विवेचन की ही प्रधानता यहाँ देखने में आती है।[3]

कविता के विविध प्रकारों का यहाँ वर्णन है। "ट्रेजेडी एक प्रकार की कविता ही है जो 'भव्य शैली में लिखी गयी हो, जिसमें लज्जाजनक और दुष्कृत्यों का वर्णन

१—वही पृ० १०६
२—वही, पृ० ११०
३—वही, पृ० ९७ ९८

हो तथा जिसका प्रारंभ आनन्द से हो और अंत दुख से।" कॉमिडी "एक हास्योत्पादक कविता है जो शोक से प्रारंभ होती है और आनन्द से उसका अंत होता है।" जॉन ने छंदोबद्ध रचना का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है जो कठोर नियमबद्ध होने के कारण नीरस जान पड़ता है। पत्रलेखन के नियमों का यहाँ विस्तृत विवेचन है। पत्रलेखन के अभिवादन (सेल्यूटेशन), प्रस्तावना (ऐक्सोरडियम), वर्णन (नरेशन), निवेदन (पेटीशन) और समाप्ति (कनक्लूजन) ये पाँच अंग बताये गये हैं। बारहवीं तेरहवीं शताब्दी में निजी और कूटनीति दोनों ही प्रकार के पत्रलेखन की यह नियत शैली मान्य थी।[1]

इस प्रकार कविता के प्राचीन अध्ययन के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट विचार प्रस्तुत नहीं किये जा रहे थे। उत्तर शास्त्रवादी युग में कविता कोई स्वतंत्र विषय नहीं था, 'उदार कलाओं' के शैक्षणिक पाठ्यक्रम में उसका स्थान नहीं रह गया था, वह व्याकरण अथवा वक्तृत्व कला की शाखा मानी जाने लगी थी। तेरहवीं शताब्दी में तर्कशास्त्र से इसका सम्बन्ध स्थापित कर दिया गया था।[2]

स्पष्ट है कि ज्योफ्रे और जॉन ने काव्यशास्त्र पर जो कुछ लिखा वह अत्यन्त सीमित था। उनकी रचनाओं को पद्यरचना की शिक्षा में लाभदायक केवल स्कूली छात्रोपयोगी पुस्तकें ही माना गया है। उनसे काव्य के स्वरूप, उसका प्रयोजन, विषयवस्तु, प्रक्रिया और काव्य प्रभाव पर प्रकाश नहीं पड़ता। इस प्रकार काव्य के संबंध में पर्याप्त विचार न हो सकने के कारण काव्य का क्षेत्र संकुचित हो गया जिससे वह बाह्य विवरण, अभिव्यक्ति कौशल और छंदरूपों तक ही सीमित रह गया। ऐसी स्थिति में इन्हीं विषयों को लेकर काव्यनियमों का सर्जन होने लगा, मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का समावेश उसमें नहीं हो सका। बारहवीं शताब्दी के चुने हुए पद्य लेखकों की रचनाओं को ही इन काव्य नियमों का आधार माना गया, और ये वे लेखक थे जिनके लिए वक्तृत्व कला का ही परिष्कृत रूप कविता था। क्लासिक सिद्धांतों के ये तत्त्व निश्चय ही महत्त्वपूर्ण थे, लेकिन उनका स्वरूप स्पष्ट समझ में न आ सका जिससे भावी पीढ़ी के लिए वे निर्जीव बनकर रह गये। ऐसी स्थिति में काव्यसंबंधी विस्तार (ऐम्प्लीफिकेशन) और अलंकार आदि में ही काव्य का महत्त्व सीमित हो गया—साहित्य मूल्यांकन के क्षेत्र में किसी सिद्धांत का स्थायी महत्त्व न हो सका। इससे अब तक ईसाई धर्म-स्थानों और मठ-मंदिरों में पोषित शास्त्रवादी परम्परा से, छंद रचना पर जोर देने वाले लेखकों का सम्बन्ध विच्छेद हो गया।[3]

१—वही, पृ० १११-१३

२—वही, पृ० ११४ १५

३—वही, पृ० ११७

फिर भी साहित्यिक अस्तव्यस्तता के इस युग म ल्योंके ने जो कुछ लिखा, आलोचना के इतिहास की दृष्टि से वह कम महत्वपूर्ण नहीं है। इस समय जो कुछ लिखा गया, वह तत्कालीन आवश्यकताओं की पूर्ति करने की दिशा में एक कदम था। इन रचनाओं को चित्र और उदाहरण आदि के साथ स्कूली छात्रों के लिए उपयोगी बनाया गया। इससे भी अधिक इन रचनाओं का ऐतिहासिक महत्व था। इस समय शास्त्रवादी प्राचीनता के समय से लेकर पहली बार कविता को निश्चित सिद्धांतो और नियमों के आधार पर कलारूप में प्रस्तुत करने का व्यवस्थित प्रयत्न किया गया। कहने की आवश्यकता नहीं, इन सब बातों का प्रभाव फ्रेंच कविता पर पड़ा जिससे समस्त पश्चिमी यूरोपीय काव्य साहित्य प्रभावित हुआ।[1]

शनै शनै मठ मंदिरो ने सुधार का नारा लगाते हुए शिक्षा के प्रति जो उत्साह का प्रदशन किया था, वह नष्ट हो गया तथा विद्याभ्यास के पुराने उद्देश्य क्षीण पड गये। साथ ही पूव आचार्यों की अख्रिस्तीय धम के प्रति जो विद्वेषपूर्ण धारणा चली आती थी वह अब भी सक्रिय बनी हुई थी जिससे कि मानववादी अध्ययन आगे नही बढ सका। इधर पूर्वीय देशो के साथ यातायात सम्बन्ध जारी होने से अरिस्टोटल की कृतियाँ पहली बार पश्चिम जगत् के पाठकों तक पहुँच सकी। सव प्रथम बारहवी शताब्दी मे इन कृतियो का सीरियायी और अरबी भाषाओ मे अनुवाद हुआ और फिर वे लैटिन मे अनूदित की गयीं। यद्यपि अरिस्टोटल की ये कृतियाँ सीधी यूनानी भाषा स अनूदित न होने के कारण सवथा दोषहीन नही कही जा सकती थी, फिर भी पाश्चात्य जगत् मे इनके अध्ययन से बौद्धिक जीवन का उदय हुआ। परिणामत अरिस्टोटल को केवल तकशास्त्र के क्षेत्र में ही नहीं, प्राकृतिक विज्ञान, अध्यात्मविद्या और नीतिशास्त्र क क्षेत्र मे भी मार्गदशक माना जाने लगा। इससे नये विचारो की व्याख्या की जाने लगी जिससे धमविद्या के अध्ययन को एक नयी दिशा मिली।[2]

इस समय शिक्षा के क्षेत्र म नयी प्रवृत्तियो का उदय हो रहा था। जिससे पूव कालीन शास्त्रवादी परम्परा के पुनरुज्जीवन मे प्रतिरोध पैदा हो गया था। सन् ११७० में पेरिस में विश्वविद्यालय की स्थापना हुई तथा तेरहवी शताब्दी में इस तरह के अ य अनेक विश्वविद्यालय खोल दिये गये। इससे एक नयी शक्ति का उदय हो रहा था जो शक्ति साहित्य के अधिकारो के प्रति उदासीन थी। पेरिस मे आरभ से ही तकशास्त्र की बडी दृढतापूवक रक्षा की जा रही थी—इसे शताब्दियो तक विश्वविद्यालय के आद्य पाठयक्रम म प्रमुख स्थान मिलता रहा। पाठयक्रम के अ य विषयों मे दशन और प्राकृतिक विज्ञान को प्रमुखता दी गयी। साथ ही शिक्षा

१—वही, पृ० ११७ १८
२—वही, पृ० ११६ २०

को व्यावहारिक और उपयोगी रूप दिया जा रहा था जिसके कारण कानून और डाक्टरी शिक्षा का महत्त्व बढ गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि मानववादी विद्या का अध्ययन महत्त्वपूर्ण बन रहा था, तथा व्याकरण जिसे अब तक सात कलाओं में प्रमुख स्थान प्राप्त था, ह्रासावस्था को प्राप्त हो रहा था। क्लासिकल साहित्य के नवयुवकों के लिए एक खतरा समझ कर उसके अध्ययन की उपेक्षा की जा रही थी। परिणामस्वरूप विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में से प्राचीनकालीन कवियों, इतिहासवेत्ताओं और वक्ताओं के अध्ययन को बहिष्कृत कर दिया गया।[1]

जॉन ऑफ गारलैंड के सम्बन्ध में कहा जा चुका है। मानववादी अध्ययन की रक्षा के लिए वह प्रयत्नशील रहा। 'उदार कलाओं' को ह्रासावस्था में देखकर उसने खेद प्रकट किया है। तत्कालीन प्रचलित व्याकरण की पाठ्यपुस्तकों में उसने दोषों का दिग्दर्शन कराया है। प्राचीन क्लासिकल साहित्य की प्रशंसा करते हुए इलियन की निन्दा करनेवालों को उसने गर्हणीय बताया है। जॉन ने ही सर्वप्रथम 'डिक्शनरी' (कोश) शब्द का प्रयोग किया है, उसकी 'डिक्शिओनारी' (Dictionarri) में छात्रोपयोगी शब्दों का संग्रह है। अपनी 'एपिथालमिकुम (Epithalmicum) रचना में विद्या की उन्नति की ओर संकेत करते हुए उसने बताया है कि ज्ञान जेरुसलम से एथेंस, एथेंस से रोम और रोम से पेरिस होता हुआ किस प्रकार पाश्चात्य जगत् में फैल गया। यद्यपि जॉन ने क्लासिकल लेखकों को प्रमुख मानकर साहित्यिक अध्ययन पर जोर दिया है, फिर भी तत्कालीन सामयिक साहित्यिक प्रवृत्तियों को वह अपने विचारों से प्रभावित न कर सका। होरेस की शब्दावली का प्रयोग करते हुए, उसने लिखा है, 'मैं सान के उस पत्थर के समान बनूँगा जो दूसरों को तो तेज करता है लेकिन अपने आपको नहीं काटता।'[2]

राबर्ट ग्रोसेटेस्ट (११७५-१२५३)

इस समय विशेषकर आक्सफोर्ड में बौद्धिक जीवन में त्वरित गति से परिवर्तन हो रहा था जिससे धर्म और विद्या के क्षेत्र में ही नये आदर्श नहीं आ रहे थे, नये विचार और जानकारी के नये स्रोत भी खुल रहे थे। धर्म और राज्य संबंधी मामलों में ग्रोसेटेस्ट एक प्रगतिशील व्यक्ति था जिसका ज्ञान के क्षेत्र में बहुत प्रभाव था। आक्सफोर्ड में उसने भाषण दिये तथा शैक्षणिक मामलों को संगठित करने में उसने अथक परिश्रम किया था। अपनी वैज्ञानिक और दार्शनिक रचनाओं द्वारा उसने वैज्ञानिक और दार्शनिक सिद्धान्तों का आलोचनात्मक संशोधन किया जिससे मध्ययुगीन धार्मिक विचारधारा के सृजन को बल प्राप्त हुआ। उसका कथन था कि जिस

१—वही, पृ० १२१
२—वही, पृ० १२२-२३

तार्किक और अनुमानिक प्रेरणा से पूर्वकालीन लेखकों को बल मिला था, वह शक्ति हीन हो गयी थी और अब किसी ऐसे ठोस ज्ञान की आवश्यकता थी जो सत्य के अन्वेषण मे सहायक हो सके।[1]

बाइबिल और अरिस्टोटल की रचनाओ के निर्दोष अनुवाद उपलब्ध नही थे और इसके लिए यूनानी, हिब्रू और अरबी भाषाओ के तथा साथ ही व्याकरण और अधिक सही अनुवाद पद्धति के ज्ञान की आवश्यकता पर जोर दिया जा रहा था। इस दिशा में ग्रोसेटेस्ट ने प्रशसनीय कार्य किया। इसके सिवाय, उसने विदेशो से यूनानी विद्वानो को बुलाकर, तथा एथेंस कुस्तुनुनिया आदि स्थानो से यूनानी पाण्डुलिपियाँ मगवाकर इग्लैड मे यूनानी विद्या अध्ययन को पुनरुज्जीवित किया। इस प्रकार पहली बार यूनानी विद्या और विशेषकर अरिस्टोटल के सिद्धान्तो की व्याख्या की गयी जिससे दर्शन और विज्ञान के क्षेत्र मे उन्नति हुई तथा साहित्य और उसके मूल्यांकन को बल प्राप्त हुआ।[2]

रोजेर बेकन (१२१४-९२)

रोजेर बेकन मध्ययुग का एक महान् विचारक हो गया है जिसने अपने मौलिक चिन्तन द्वारा समीक्षा-सिद्धान्तो को आगे बढाने में सहायता की। ऑक्सफोर्ड मे अध्ययन करते समय ग्रोसेटेस्ट से वह प्रभावित हुआ। वहाँ से वह पेरिस पहुँचा और वहाँ की विद्वन्मडली मे उसकी गणना होने लगी। सन् १२४७ के आसपास उसके विचारों मे क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए जिससे परम्परागत पद्धतियो को अमान्य करते हुए मध्ययुगीन तर्कशास्त्र को उसने सत्य का साधन मानना छोड दिया तथा विज्ञान को आधार बनाकर स्वतंत्र विचार की ओर वह प्रवृत्त हुआ। परिणामत पडित पुरोहितो को उसके धर्म विरोधी विचार सह्य न हुए और उसे पेरिस धर्मसंघ के प्रधान केंद्र में बन्दी बना दिया गया जहाँ वह १२६६ तक रहा। अपने पाण्डित्य के कारण रोजेर बेकन इतना प्रसिद्ध हो गया था कि तत्कालीन शासक पोप क्लेमेंट चतुर्थ ने उससे तत्कालीन चिन्तनधारा का पुन अवलोकन करते हुए प्रचलित बुराइयो को दूर करने के लिए सुझाव माँगे।[3]

बेकन ने कठिन परिस्थितियों के बावजूद केवल पन्द्रह महीने म 'ग्रोपस मजुस', 'ग्रापस माइनस' और 'ग्रोपस टरटियम' नामक तीन महत्वपूर्ण रचनाएँ प्रस्तुत कीं। इनमें ज्ञान के विविध विषयों पर बेकन ने अपने विचार व्यक्त किये हैं। उसके अनुसार, समस्त ज्ञान का उद्देश्य है प्राकृतिक शक्तियों पर विजय पाना। धर्मविद्या, दर्शन, गणित तथा विज्ञान सम्बन्धी अन्य विषयों की त्रुटियों की ओर लक्ष्य करते

१—वही, पृ० १२३ २४

२—वही पृ० १२४ २५

३—वही, पृ० १२५ २६

हुए बेकन ने उनपर अनेक भाषण दिये। धर्मगुरुओं की अवज्ञा, अपने विचार स्वातन्त्र्य तथा जादू-टोने के अभ्यास के कारण धर्म पुरोहितों द्वारा बेकन पर फिर से दोषारोपण किया गया। अब की बार उसे ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के अध्यापन-कार्य से पदच्युत कर दिया गया और उसे जीवन भर (१२७७-९२) एक मठ में बंदी के रूप में रहना पड़ा।[1]

बेकन की मूल रुचि साहित्य की ओर न होकर सत्यान्वेषण की ओर अधिक थी। धर्मविद्या, दर्शन और विज्ञान सम्बन्धी अभ्यास की प्रणालियों में वह सुधार करना चाहता था। ज्ञान की उन्नति में बाधक सामान्य कारणों का विश्लेषण करते हुए अंधानुकरण को उसने विनाशकारक बताया है। उसका कथन है, "धर्माधिकारियों का अनुकरण विश्वास पैदा कर सकता है लेकिन उससे ज्ञान सम्पन्नता नहीं आ सकती।" प्रमाण (ऑथोरिटी), तर्क और अनुभव को उसने ज्ञान का स्रोत माना है। ईश्वर से जो प्राप्त होता है, वही प्रमाण है, तर्क से हम अपूर्ण सत्य तक पहुंचते हैं, और अनुभव ही एक ऐसी कसौटी है जिसपर निर्भर रह सकते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि इन सब विचारों से मध्ययुगीन समस्त विचारधारा के विरुद्ध एक विद्रोह पैदा हो गया।[2]

बेकन ने अभिनव ज्ञान के उद्देश्य और पद्धतियों को सफल बनाने के लिए कुछ सुनिश्चित विचार भी प्रस्तुत किये। बेकन धर्मग्रन्थों को ज्ञान का भंडार स्वीकार करता था इसलिए इस ज्ञानराशि को उद्घाटित करने के लिए बाइबिल का शुद्ध अनुवाद करना अत्यन्त आवश्यक समझा गया। लेकिन बाइबिल में सत्य का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया, अतएव उसे समझने के लिए दर्शन और विज्ञान के अध्ययन की आवश्यकता बतायी गयी। दर्शन और विज्ञान के माध्यम से बेकन का उद्देश्य धर्म विज्ञान तक पहुँचना था जिसे उसने समस्त ज्ञानों में उत्कृष्ट माना है।

स्पष्ट है कि यहाँ साहित्य अथवा सैद्धांतिक समीक्षा की चर्चा नहीं की गयी है। यह चर्चा 'शक्तिशाली साहित्य' के स्थान पर 'ज्ञानप्रद साहित्य' तक ही सीमित है। दूसरे शब्दों में, उसका उद्देश्य उपयोगितावादी है जिसमें ठोस ज्ञान की मुख्यता प्रतिपादित की गयी है। यूनानी प्राचीन साहित्य के अध्ययन पर उसने जोर दिया, लेकिन साथ ही उसके अंधानुकरण का विरोध भी किया। उसने लिखा है, "अरिस्टोटल को भी प्रत्येक विषय का ज्ञान नहीं था, जो कुछ उसके युग में संभव था, वह उसने किया।" तथा "प्राचीनों में भी भूल की संभावना है क्योंकि वे मनुष्य हैं। लेकिन क्योंकि वे प्राचीन हैं, अतएव अधिक तरुणोचित युग के प्रतिनिधि भी हैं।" उसका कथन है, "हिब्रू, यूनानी और अरबी भाषाओं में ही प्राचीन विचार उपलब्ध

१—वही, पृ० १२६

२—वही, पृ० १२६-२७

होते हैं, अतएव इन भाषाओं के पढने से वे ठीक ठीक समझ मे आ सकते हैं और उनका मूल्यांकन किया जा सकता हैं जैसे "असली घडे मे से उडली हुई शराब ही शुद्ध हो सकती है।"[1]

बेकन ने व्याकरण के अध्ययन पर इसलिए जोर दिया है कि उससे भाषाओं का यथार्थ ज्ञान सभव है। भाषाओं को 'ज्ञान प्राप्त करने का प्रथम द्वार' कहा गया है। तर्कशास्त्र की अपेक्षा प्राचीन भाषाओं के व्याकरणज्ञान को यहाँ अधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है। यूनानी व्याकरण पर बेकन ने एक पुस्तक भी लिखी है। कहना न होगा कि बेकन के प्राचीन साहित्य सबधी विचार हम साहित्य के मूल्यांकन की ओर प्रेरित करते हैं।[2]

बेकन ने शब्द शक्ति की मुख्यता का प्रतिपादन किया है। उसके अनुसार 'प्रथम लेखकों ने भाषाओं का आविष्कार किया है," अथवा 'बैबल की मीनार पर दवी हस्तक्षेप ने भाषाओं की विविधता को जन्म दिया है।" शब्दों को उसने 'बुद्धिसम्पन्न आत्मा की सर्वोत्कृष्ट उपज' कहा है जो हमें सर्वोत्कृष्ट आनन्द प्रदान करते हैं। साहित्यिक रचना मे विषयवस्तु और शैली को मुख्य माना गया है। साहित्य मे वाक्पटुता और ज्ञान का सम्बन्ध स्थापित करते हुए कहा है "वाक्पटुता रहित ज्ञान एक ऐसा कृपाण है जो किसी पक्षाघात से ग्रस्त व्यक्ति के हाथ में हो, जब कि ज्ञान रहित वाक्पटुता किसी विक्षिप्त पुरुष के हाथ म दी हुई कृपाण है।' लेखक अथवा वक्ता के सम्बन्ध में तीन बातें बताई गई हैं—सत्य को उद्घाटित करना, पाठकों (अथवा श्रोताओं) को आनन्द प्रदान करना और उनमे विश्वास पैदा करना। उक्त तीन बातो के अनुरूप तीन शैलियों का उल्लेख किया गया है—सीधी-सादी सरल शैली बीच की शैली और उदात्त शैली। बेकन ने प्रथम शैली को ही स्वीकार किया है। किसी रचना म सबसे पहला स्थान विषयवस्तु का है। उसके बाद विषय सामग्री का विवेकपूर्ण चुनाव आता है। तत्पश्चात् विषयानुकूल शैली का उल्लेख किया गया है। शब्दाडम्बर के स्थान पर विवचन की संक्षिप्तता को बेकन ने अधिक महत्व दिया है। विषय की स्पष्टता को आवश्यक माना गया है। अरिस्टोटल के शब्दों में उसका कहना है '"हम बोलना चाहिए, सामान्य व्यक्तियों की भाँति, लेकिन सोचना चाहिए बुद्धिमानों की भाँति।' अभिव्यक्ति की विविधता के सम्बन्ध म सनेका को उद्धृत करते हुए उसने लिखा है— जब तक कोई बात अपने प्रभाव की विविधता से ताजगी पैदा नहीं करती तब तक वह आनन्दप्रद नहीं हो सकती।"[3]

१—वही, पृ० १२७ ३०
२—वही पृ० १३१ ३२
३—वही पृ० १३२–३४

बेकन ने सिसरो, सेनेका आदि क्लासिकल लेखकों की रचनाओं का अध्ययन करने की सिफ़ारिश की है। उसका कथन है, "नैतिक अथवा धर्मविद्या के ग्रंथ से युक्त काव्यात्मक सामग्री आवश्यक रूप से छन्द अथवा लय के सौंदर्य से आच्छन्न रहनी चाहिए," और वह "वक्तृत्व कला के समस्त रूपों से भूषित होनी चाहिए।" उदाहरण के लिए, बाइबिल में पाठकों को दिव्य ज्ञान की ओर आकर्षित करने के लिए छन्द और लय सम्बन्धी अवतरण दिये हुए हैं जिससे अपने संगीतात्मक गुणों के कारण पाठक ईश्वरीय रहस्यों से परिचय प्राप्त कर सकें। छन्द लय तथा समय स्थान और व्यक्ति विषयक मर्यादा (decorum) को लेकर बेकन ने अरिस्टोटल के 'पोएटिक्स'[1] में उल्लिखित सिद्धान्त का उल्लेख किया है। बेकन काव्यशास्त्र तथा वक्तृत्व कला को तर्कशास्त्र से बढ़कर स्वीकार करता था।[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि बेकन ने काव्यशास्त्र पर अपने छुटपुट विचार व्यक्त किये हैं। काव्य कला की विशेषताओं का प्रतिपादन करने की अपेक्षा विषयवस्तु को उसने अधिक महत्त्व दिया है। नैतिक उपदेशों तथा प्रगति में विश्वास के कारण सेनेका की सराहना की गई है। ओविड की रचनाओं को निरर्थक अंधविश्वासों और दूषित नैतिकता के कारण आत्मोन्नति में बाधक बताया गया है। इसी प्रकार अरिस्टोटल के तत्कालीन टीकाकारों की, उनकी असंगति और असम्बद्धता के कारण बेकन ने निन्दा की है।[3]

बेकन ने यद्यपि साहित्यिक समीक्षा के सिद्धान्तों को लेकर कोई मानदण्ड स्थापित नहीं किया, फिर भी इस युग के साहित्यिक अध्ययन के क्षेत्र में जो कुछ उसने किया, उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। उसने ज्ञान को एक ठोस आधार पर स्थापित करते हुए प्राचीन कृतियों की अमूल्य देन की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया। मध्यकालीन दर्शन के युग में जब कि मानववादी आशाएँ शीर्ण विशीर्ण हो रही थीं, बेकन ने एक अभिनव दिशा प्रदान कर आशा की किरण का संचार किया। ज्ञान के प्राचीन कोष का उद्‌घाटन कर उसने भावी पीढ़ी को अनुप्राणित किया जिससे कि आगे चलकर साहित्य में सौंदर्यबोध की नींव रक्खी जा सकी। बेकन ही

१ मध्ययुग में अरिस्टोटल की 'रेटोरिक' और 'पोएटिक्स' नामक दोनों रचनाएँ अज्ञात थीं। 'रेटोरिक' पर केवल बगदाद के आलफारबी (Alfarabi मृत्यु ९५०) की टीका, तथा 'पोएटिक्स' पर अवरोएज़ (Averroez मृत्यु ११९८) की व्याख्या उपलब्ध थी। अवरोएज़ की यह व्याख्या सीरियाई अनुवाद के आधार से किये गये अरबी (१० वीं शताब्दी) अनुवाद पर आधारित थी।

२—वही, पृ० १३४–३५

३—वही, पृ० १३५–३६

ऐसा अंग्रेजी विद्वान् है जिसने सर्वप्रथम अरिस्टोटल के 'पोएटिक्स' के महत्त्व की ओर साहित्यिकों का ध्यान आकर्षित किया और साथ ही उसकी सीमाओं और त्रुटियों पर भी प्रकाश डाला। उसने हर प्रकार के ज्ञान का प्रगतिशील होना आवश्यक बताया। लेकिन सामान्यतया बेकन की रचनाओं को उपेक्षा की दृष्टि से ही देखा गया। नवजागरण काल के पूर्व उसकी कृतियों के बहुत कम हवाले उपलब्ध होते हैं। निश्चय ही उसने बौद्धिक उन्नति की ओर लक्ष्य किया, जिसका आगे चलकर, उसकी मृत्यु के २०० वर्ष बाद, दुनिया ने अनुकरण किया।'[1]

दान्ते अलिगेरी (१२६५-१३२१)

मध्ययुग में इटली का महाकवि दान्ते एक अनोखा व्यक्तित्व लेकर जन्मा था। उसे यूरोप में *सांस्कृतिक जागरण का अग्रदूत माना जाता है* जिसने १००० वर्ष तक धार्मिकता के संकीर्ण मतवाद के नीचे दबी हुई मानवता के लिए आवाज बुलन्द की। 'दे वुलगरि एलोक्विओ (De Vulgari Eloquio = The Populr Speech) दान्ते की सुप्रसिद्ध रचना है जिसमें उसने सर्वप्रथम लैटिन के स्थान पर जनभाषा इतालवी को साहित्यिक भाषा बनाने का समर्थन किया। जाज सेंटसबरी के अनुसार, १००० ईसवी से १६ वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक दान्ते की इस कृति के अतिरिक्त एक भी उल्लेखनीय आलोचनात्मक कृति नहीं मिलती। उन दिनों लैटिन पंडितों की भाषा समझी जाती थी जिसके व्याकरण और वाक्यविन्यास में योग्यता प्राप्त करने के लिए *अत्यन्त श्रम की आवश्यकता थी।* प्रचलित जनभाषाओं की परीक्षा करते हुए काव्य, भाषा, शैली और विषयवस्तु आदि के सम्बन्ध में दान्ते ने अपने महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किये हैं। काव्य के ह्रास होने के कारणों की जाँच करते हुए प्रश्न उठाया गया कि उस युग के कवि वर्जिल (७०-१६ ई० पू०) की भाँति सशक्त भाषा में क्यों नहीं लिख पाते? उत्तर में दान्ते ने कॉमेडिया डिविना (डिवाइन कॉमेडी) नामक अपने महाकाव्य की इतालवी में रचना कर जनसामान्य की भाषा की उपयोगिता सिद्ध की। उसका कथन था कि भाषा की यह शक्ति मनुष्य को ही प्राप्त है देवदूतों और पशुओं को इसकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि मनुष्य को ही विचार शक्ति और समझ की आवश्यकता होती है।

सहज स्वाभाविक स्वतः निस्सृत भावावेग और भाषा के प्रवाह में दान्ते का विश्वास न था। ग्राम्य भाषा (वल्गर टंग)—जिसे हम अपनी धात्रियों से अनुकरण से सीखते हैं—प्रयोग का सर्वथा वर्जित कहकर काव्योचित भाषा में परिनिष्ठित रूप को ही उसने स्वीकार किया है। नागरिक शब्दों में भी दान्ते ने अत्यन्त भव्य और सुंदर शब्दों को ही विहित माना है। यह भाषा संस्कृति की भाषा होनी

[1]—वही पृ० १३७-३८

चाहिये जो विभिन्न प्रदेशो के विद्वानो के लिये सर्वसामान्य हो तथा समाज, कला और अक्षरो के अनुकूल हो। दान्ते के अनुसार, ऐसी भाषा मातृभाषा ही हो सकता है जिसमे कि प्रान्तीय शब्दो का अभाव हो। ऐसी भाषा को आदर्श भाषा कहा गया है। कवि के लिये भाषा को उसने इतना ही महत्वपूर्ण बताया है जितना कि किसी सैनिक के लिए घोडा, और किसी अच्छे सैनिक के पास अच्छा घोडा होना आवश्यक है। वह लिखता है, "बडे कष्टपूर्वक अत्यन्त भव्य शब्दो का चुनाव कर उन्हे उत्कृष्ट शैली मे श्रेणीबद्ध करना चाहिए। फिर उन्हें सर्वश्रेष्ठ पक्ति मे—जिसमे अनुभव और प्रतिभा दोनो सयुक्त हो—प्रस्तुत करना चाहिए और तत्पश्चात् इन पक्तियो को अपनी कला द्वारा कौशलपूर्ण रचना मे सम्बद्ध करना चाहिए। दान्ते की 'डिवाइन कॉमेडी' मे कही एक भी पक्ति ऐसी न मिलेगी जहा शब्द, वाक्यांश और पक्ति की खोज तथा कविता के चरणो का मेल स्पष्ट दिखाई न देता हो। यहाँ ऐसा कोई स्थान नहीं, जहाँ यह खोज पूर्णतया सफल न हुई हो। ऐसे शब्द, वाक्याश और रूप का चुनाव करके उसने अर्थ के प्रति दान्ते अत्यन्त सावधानी बरतता है। कदाचित् वह कभी गूढ भी हो गया हो तो इसलिए नही कि धुध के कारण वह स्पष्ट नही देख सकता। कदाचित् वह अपनी शिल्पविधि का प्रयोग करता हुआ भी दिखाई दे सकता है, लेकिन केवल इसीलिए कि वह 'विचित्र और ऊचे' विचार तथा आशय (*thought and intention*) *को अलग अलग जामा पहनाना चाहता है।* वस्तु और उसके रूप को वह कभी पृथक रूप मे प्रस्तुत नही करता, उनकी सलग्नता दो विभिन्न वस्तुओ की न होकर आत्मा और शरीर की ही सलग्नता है।"[1]

काव्य मे विषयवस्तु को मुख्य बताते हुए दान्ते ने युद्ध (राष्ट्र प्रेम), प्रेम और नैतिक सौंदर्य को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना है, जो उच्च काव्य के विषय हो सकते हैं। युद्ध तथा नीति के साथ काव्य के क्षेत्र मे प्रेम का समानता का स्थान देकर वह प्राचीनो से भी आगे निकल जाता है क्योंकि उन्होंने प्रेम को काव्य मे ऊँचा स्थान नही दिया।

दान्ते की दूसरी आलोचनात्मक कृति है उसका वह प्रसिद्ध पत्र जो उसके सरक्षक कान ग्रान्दे डेलान स्काला (Can Grande Dellan Scala) को लिखा हुआ बताया जाता है। इसे उसने अपने 'पारादीजो' (Paradiso = Paradise) की भूमिका के रूप मे प्रस्तुत किया है। यहाँ 'कोमेडिआ' के अर्थों की भूमियो का स्पष्टीकरण किया गया है। धर्मशास्त्रो के टीकाकारो का अनुकरण करते हुए उसने केवल शाब्दिक अर्थ का ही प्ररूपण नही किया, वरन् अन्योक्तिपरक (साकेतिक, allegorical), गुह्य (परलोक सम्बन्धी, anagogical) और लाक्षणिक

१—जार्ज सेंट्सबरी, ए हिस्ट्री आफ इंग्लिश क्रिटिसिज्म, पृ० ३२५ २६, लदन, १९३६

के कतिपय रूपो के आपेक्षिक मूल्यो का अकन किया गया। यह रचना गिल्डफोड के निकोलस की बतायी जाती है। यह एक सवाद काव्य है जिसमें उल्लू और बुलबुल अपने अपने गुणो का बखान करते हैं। अनुप्रास को छोड़कर इसमें तुकात को अपनाया गया है। यहाँ साहित्यिक समीक्षा के जिन तत्त्वो का प्रतिपादन किया गया है, वे महत्वपूर्ण हैं। प्राचीन परम्परागत उपदेशात्मक विषयो का आपेक्षिक मूल्याकन करते हुए यहाँ प्रेमकाव्य का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। सारी चर्चा अन्योक्तिपरक रूप में प्रस्तुत है।[1]

धार्मिक तथा उपदेशात्मक काव्य की चर्चा करते हुए कहा गया है कि इसमे प्रमुख रूप से नैतिक उपदेशो की ओर लक्ष्य रहता है जिससे कि मनुष्य पश्चाताप, भावी बातो का अग्रिम दशन, तथा अप्रत्यक्ष सत्य और साकेतिक अर्थों के उद्घाटन द्वारा आध्यात्मिकता की ओर उ मुख हो सके। लेखक के मतानुसार इस प्रकार की कविता कलात्मक माधुय के अभाव में बहुत कम लोगो को आनन्दप्रद हो सकती है। प्रेमकाव्य का उद्देश्य पाठका को आनन्द प्रदान करना है इसलिए उसे उत्कृष्ट बताया गया है। इसकी अभिव्यक्ति में शिल्पकला का कौशल रहता है अतएव यह काव्य प्रभावकारी होता है। प्रेमकाव्य में रूढिगत प्रेम की चर्चा को अनैतिक माना गया है यद्यपि समस्त मानवीय प्रेम को—बशर्ते कि वह दूषित न हो—स्वभाव स शुद्ध स्वीकार किया है। इस प्रकार उक्त कविता में पहली बार अंग्रेजी भाषा में समीक्षा की चर्चा की गयी है जिसका आगे चलकर चौदहवीं शताब्दी में विकास हुआ।[2]

जॉन विक्लिफ (१३२०-८४)

चौदहवी शताब्दी के उत्तराध में एक और प्रवृत्ति देखने में आती है जिसम अंग्रेजी गद्य को अभिव्यक्ति का प्रभावशाली माध्यम स्वीकार किया गया। अब तक अंग्रेजी गद्य को दस्तावेज, धर्मोपदेश तथा अपील आदि व्यावहारिक कार्यों के लिए ही उपयुक्त माना जाता था अतएव यह ग्रामीण बोलियों के नजदीक होने के कारण अपरिष्कृत था अथवा कृत्रिम अलकारों तथा नियमित छदों की प्रयुक्तियों से रंजित था। किन्तु राष्ट्रीय चेतना के उद्भव होने से इस समय अधिक कायनम गद्यनिर्माण का प्रयत्न किया जाने लगा जिससे कि अपनी भाषा में धार्मिक उपदेशों के प्रस्तुत किये जाने की अंग्रेजी जनता की इच्छा पूर्ण हो सके, और लोग बाइबिल तथा लौकिक ग्रन्थों का अपनी भाषा में अध्ययन कर सकें। जॉन विक्लिफ[3] और ट्रेविसा

१—वही पृ० १४३

२—वही पृ० १४४ ४५

३—विक्लिफ ने अपने शिष्यों की सहायता से सन् १३८० में सवप्रथम न्यू टस्टामेंट का लन्दिन से अंग्रेजी अनुवाद करके यूरोप में क्रांति मचा दी थी। पडित-पुरोहितों

(१३२६-१४१२) के नाम इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं।[1]

विक्लिफ को 'धर्म सुधार आन्दोलन का शुक्र' कहा गया है। उसने अपने जीवन को इंग्लैण्ड में आध्यात्मिक ईसाई मत को पुनरुज्जीवित करने में लगा दिया। इस सबंध मे उसने अनेक धार्मिक 'पैम्पलेट' लिखे और पादरियों को दूर दूर तक धर्म का प्रचार करने के लिये भेजा। विक्लिफ ने धर्मोपदेश की कला और सामान्यतया गद्य लेखन के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किये हैं। उसके कथनानुसार, आलंकारिक भाषा से बचना चाहिए। अन्यथा आवश्यक उपदेश गूढ बनकर रह जाते हैं। इसलिए धर्मोपदेश देते समय श्रोताओं की आवश्यकताओं का ध्यान रक्खा जाय तथा उपदेश मे सादगी और सरलता हो। विषयवस्तु के अनुसार ही शैली होनी चाहिए, तथा धर्मविद्या सबंधी विषयों के उदात्त होने में विषय-अभिव्यक्ति भी उदात्त हो। शब्दों के सौन्दर्य मे ज्ञान सन्निहित नहीं है, इसलिए कृत्रिम शब्दावली की आवश्यकता का उसने निषेध किया है। उक्ति की सचाई तथा सरल और सुबोध सत्य की अभिव्यक्ति को यहा प्रमुख माना गया है। गीतों और भविष्यवाणियों के लिए छन्दमय उक्तियां प्रभावकारी हो सकती हैं, विषयवस्तु के स्थान पर शैली का महत्त्व बढ़ जाता है और फिर ये उक्तियाँ केवल क्षणिक आनन्द उत्पन्न करने मे ही सहायक हो सकती हैं।[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि मध्ययुगीन आलंकारिक भाषा के स्थान पर सरल और सुबोध भाषा का समर्थन कर विक्लिफ ने अंग्रेजी गद्यरचना के विकास मे महत्वपूर्ण योगदान दिया। वक्ता और श्रोता दोनों के ही लिए उसने सरल भाषा की आवश्यकता पर जोर देते हुए कृत्रिम भावुकतापूर्ण आलंकारिक अथवा लयात्मक भाषा का निषेध करके अरिस्टोटल के ही सिद्धान्त को मान्य किया। इस प्रकार विक्लिफ ने अप्रत्यक्ष रूप से स्थायी मूल्य वाली प्राचीन क्लासिकल शिक्षा के तत्त्वो को इंग्लैंड में पुनरुज्जीवित करने का कार्य सम्पादन किया।[3]

को यह बात पसन्द न पड़ी। इंग्लैंड की पार्लियामेंट द्वारा कानून पास कराकर इस समय बाइबिल की समस्त प्रतियाँ जलाकर नष्ट कर दी गयीं। राज्य की ओर से घोषणा कर दी गयी कि जो कोई अंग्रेजी बाइबिल पढ़ेगा उसे जाति से बहिष्कृत कर दिया जायगा। इतना ही नहीं बाइबिल के अनुवादक विक्लिफ की कब्र उखाड़कर उसकी हड्डियों को दरिया मे बहा दिया गया! हडसन ने विक्लिफ की बाइबिल को ओजपूर्ण, अकृत्रिम अंग्रेजी भाषा का सुन्दर उदाहरण बताया है।

१—वही पृ० १४७-४८
२—वही पृ० १४९ ५०
३—वही, पृ० १५० ५१

जेफ्री चॉसर (लगभग १३४०-१४००)

चॉसर का जन्म चौदहवीं शताब्दी के उस मध्यकालीन वातावरण में हुआ था जब मनुष्य लोकप्रचलित पद्धति के अनुसार जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य था। उसकी रचनाओं में उसकी शताब्दी पूर्ण रूप से प्रतिबिम्बित दिखाई देती है। वह जहाँ कहीं भी पहुँचता—चाहे वह कोर्ट-कचहरी में हो, चाहे व्यापारियों और क्लर्कों के साथ हो और चाहे किसी जन-समूह में हो—वहीं से कुछ न कुछ लेकर आता। उसके जीवन का ऐसा कोई भी क्षण नहीं था जहाँ से वह आनन्द न प्राप्त करता हो। उसके 'टेल ऑफ सर थोपस' (सर थोपस की कहानी) नामक हास्योत्पादक प्रेमाख्यान में साहित्यिक समीक्षा के सिद्धान्त दृष्टिगोचर होते हैं। चॉसर यद्यपि प्राचीन परम्पराओं से मुक्त नहीं हो सका, फिर भी उसकी उत्तरकालीन रचनाओं से पता लगता है कि उसने सरल और स्वाभाविक तथा कलात्मक अभिव्यंजना शैली पर जोर दिया जब कि प्राचीन शैली में रूढिगत परम्पराओं की ही मुख्यता थी। उसके अनुसार, पद विन्यास (डिक्शन) और शैली, पात्र और विषयवस्तु के अनुकूल होने चाहिए, इस सम्बन्ध में चॉसर ने प्लेटो और बाइबिल का उल्लेख किया है। वर्णन प्रधान कवि के लिए आवश्यक है कि सामान्य पाठकों के लिए वह सीधी-सादी सरल भाषा में अपनी रचना प्रस्तुत करे। इस प्रकार वर्णनप्रधान काव्य में सरल और यथार्थ शैली की आवश्यकता का प्रतिपादन कर उसने मध्ययुगीन अलकार-प्रधान मोहक शैली से काव्यसिद्धान्त को मुक्त किया। कहना न होगा कि चॉसर यहाँ बेकन और विन्सिफ़ का ही अनुकरण कर रहा था।[1]

अन्यत्र प्राचीन साहित्य के प्रति उत्साह प्रदर्शित करते हुए चॉसर ने साहित्य तथा साहित्यिक कला सम्बन्धी अपने विचार व्यक्त किये हैं। प्राचीन रचनाओं को उसने 'ऐसे पुराने खेत कहा है जहाँ प्रति वर्ष नया धान्य पैदा होता है।' प्राचीन घटनाओं, सिद्धान्तों और कथा-कहानियों का स्मरण करते हुए इन रचनाओं को 'स्मृति की कुंजी' कहा गया है। तत्कालीन प्रचलित मान्यताओं और मध्ययुगीन काव्य सिद्धान्त को मुख्य मानकर चॉसर ने काव्य का मुख्य उद्देश्य प्राय उपदेशात्मकता बताया है। उसकी कितनी ही कहानियाँ नैतिकता और उपदेशात्मकता लिये हुए हैं।[2]

चॉसर ने काव्य-प्रक्रिया में कला को तर्कसंगत (रीजण्ड फॉर्म) बनाने पर जोर दिया जब कि सामान्यतया मध्ययुगीन साहित्य में इस प्रवृत्ति का अभाव था। बहुत पहले, प्लेटो ने कलात्मक सर्जन में विचारशक्ति की मुख्यता प्रतिपादित करते

१—वही, पृ० १२२, १५४-५६
२—वही, पृ० १५६-५७

हुए कहा था कि कोई भी सच्चा कलाकार, चाहे वह चित्रकार हो या कवि, स्वेच्छा-पूर्वक काम नहीं करता। विनसाफ का ज्योफे ने इसी बात को दुहराया और यही बात चॉसर ने भी कही। चॉसर ने शैली की संक्षिप्तता पर जोर देते हुए अप्रासंगिक विस्तार से बचने के लिए कहा है, क्योंकि संक्षिप्त रचनाएँ केवल कण्ठस्थ रखने मे ही सुगम नहीं होतीं, वे प्रभावशाली भी होती हैं।[1]

पत्र-लेखन में चासर ने एक नई पद्धति का समावेश किया है। मध्ययुग में पत्र लेखन कला पर पर्याप्त ध्यान दिया जाता था लेकिन यह कला यांत्रिक और अपरिवर्तनीय बनकर रह गई थी। चॉसर ने पत्र लेखन की पद्धति में अधिक उदारता से काम लिया। उसने यहाँ विद्वेषहीन उचित स्वर को आवश्यकता को मुख्य बताया और व्यावसायिक ढग से दूर रहने का आदेश दिया। लेखक की भावनाएँ आकस्मिक ढग से व्यक्त की जायें तथा किसी सुन्दर सार वाक्य ,को न विस्तार से कहा जाय और न उसकी पुनरावृत्ति ही हो, अन्यथा उसके प्रभावहीन होने का अंदेशा रहता है। रम्य प्रेम की शिष्ट मर्यादा सवत्र हो, अन्विति की भावना व्यापक रूप में विद्यमान हो और विरोधी तत्त्वों का समावेश न हो, अन्यथा वही दशा होगी जैसी किसी मछली के गधे की टाँगें और बन्दर का सिर जोड दिया जाय। इस प्रकार लेखन म नियत्रण, मर्यादा, वैयक्तिक भावनाओं की अभिव्यक्ति तथा प्रभाव की अन्विति की मुख्यता का प्रतिपादन कर चॉसर ने पूर्वकालीन सिद्धान्तो और आदेशों से हटकर, ठोस मनोवैज्ञानिक आधार पर अपने समीक्षा सिद्धा त स्थापित किये।[2]

चॉसर के साहित्यिक जीवन को सामान्यतया तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—फ्रांसीसी काल, इतालवी काल और अंग्रेजी काल। उसकी प्रारम्भिक रचनायें फ्रांसीसी आदर्शों के आधार पर लिखी गई। अपनी इटली की यात्राओं के परिणामस्वरूप वह इटली के साहित्य से प्रभावित हुआ। इस काल मे लिखी हुई उसकी 'द हाउस आँफ फेम' (ख्याति का गृह) नामक रचना दान्ते से प्रभावित है।[3] इस काल की दूसरी प्रसिद्ध रचना 'ट्रोयलस एण्ड क्रेसीडे' (Troylus and Criseyde, १३८५–८६) चॉसर की प्रथम मुख्य कविता है जिसे ट्रोयलस के द्विगुणित दुख से आक्रान्त होने के कारण ट्रैजेडी कहा गया है। इस रचना की कथावस्तु होमर से चली आती है। चॉसर ने इस कहानी को बोकाचिओ (Bocaccio १३१३–७५) की 'फिलॅस्ट्राटो' (Filastrato) नामक कविता से लिया है। ट्रोयलस ट्राय के

१—वही, पृ० १५७–५८

२—वही, पृ० १५६

३—हडसन, द हिस्ट्री आँफ इगलिश लिटरेचर (अंग्रेजी साहित्य का इतिहास) पृ० २२

प्रायम नामक राजा का पुत्र था जो एक पुजारी की लड़की क्रेसीडे से प्रेम करता था। यूनानियों ने जब ट्राय पर चढ़ाई की तो क्रेसीडे का पिता अपनी लड़की को छोड़कर यूनानियों से जा मिला, क्रेसीडे ने ट्रोयलस के प्रेम को स्वीकार कर लिया। यूनानियों द्वारा विजय प्राप्त करने के बाद युद्ध में बन्दी अपने देशों को वापिस भेज दिये गये जिनमें क्रेसीडे भी थी। यूनान पहुँच कर क्रेसीडे दियोमिदीस (Diomedes) नामक यूनानी युवक से प्रेम करने लगी और ट्रोयलस को भूल गई। दियोमिदीस और ट्रोयलस दोनों युद्ध के मैदान में एक-दूसरे से मिलते हैं लेकिन एक-दूसरे की हत्या वे नहीं करते। अन्त में ट्रोयलस एचिलीज के हाथों मारा जाता है। चॉसर ने यहाँ क्रेसीडे के प्रेम का विश्लेषण करते हुए प्रेम प्रेरणा के मनोवैज्ञानिक तत्वों का दिग्दर्शन कराया है। इस रचना में नियति देवी को 'नियति की अधिष्ठातृ' कहा है, जो 'ईश्वर के अधीन' रहकर घटनाओं और उनके रहस्यात्मक कारणों का नियमन करती है। अन्त में ट्रोयलस स्वीकार करता है कि उसके अपने दोष ही उसके पतन में कारण हुए हैं।[1]

तत्पश्चात् फ्रांस और इटली के प्रभाव से मुक्त होकर वह स्वतन्त्र रचना करने लगा। इस काल में उसने अनेक लघु कविताओं और 'कैण्टरबरी टेल्स' (१३८७) की रचना की। कैण्टरबरी में सेण्ट थामस की यात्रा के लिये जाते समय और वहाँ से लौटते समय तीर्थयात्री साउथवर्क में टैबर्ड नाम की सराय में एकत्र होकर कहानी सुनाते हैं। उसी का परिणाम यह कहानी-संग्रह है। इसमें स्त्री मठाधिपति, भिक्षुणी, मठाधीश, क्षमापत्रों का विक्रेता (पार्डनर) आदि अनेक पात्र हैं जिनके चित्रण में चॉसर की प्रतिभा प्रस्फुटित हुई है।[2]

इस समय मध्यकालीन युग में एक नवचेतना का संचार हो रहा था जिससे इस युग के संकुचित विचारों, धार्मिक बंधनों और काव्यगत परम्पराओं का जाल टूट रहा था। मानव इस समय अपने आपको जीवन के उस कठोर संविधान से मुक्त करना चाहता था जहाँ पंडित पुरोहितों और सामन्तों का एकछत्र राज्य था। चर्च की भ्रष्टता के कारण इन दिनों आध्यात्मिक उत्साह और बल की बहुत कमी हो गई थी। पादरी लोग धन-संपत्ति एकत्र करने में लगे थे जिससे अपने लोभ और दुराचार के कारण वे कुख्यात हो गये थे। निस्सन्देह चॉसर ने अपनी साहित्यिक *मान्यताओं द्वारा इस दिशा में योगदान दिया।* उसने *अलंकारशास्त्र के नियमों में* बद्ध परम्परागत काव्यशास्त्र को चुनौती देते हुए काव्यकला को अधिक स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत कर मनोवैज्ञानिक आधार को मुख्य बताया, और कला के तर्कसंगत रूप में प्रस्तुत किये जाने पर जोर दिया।

१—वही, पृ० १५६ ६१

२—हडसन वही पृ० २३ २४

अंग्रेजी भाषा को परिष्कृत बनाने मे भी चासर का कम योगदान नही रहा। चॉसर अपने युग का अंग्रेजो का प्रथम कवि घोषित किया गया है। शेक्सपियर के पूर्व अंग्रेजी साहित्य मे उसी का नाम लिया जाता है। उसे स्वयं जोव की उपस्थिति मे कला की नौ अधिष्ठातृ देवियो के साथ गान करते हुए चित्रित किया गया है। वाक्पटुता मे उसे सिसरो दर्शन में अरिस्टोटल और कविता मे वर्जिल का प्रतिस्पर्धी बताया गया है। उसके 'छन्दा म पूर्णता, अभिव्यक्ति में ताजगी, वर्णन में सक्षिप्तता तथा शैली मे सम्वेदनशीलता और स्पष्टता' बतायी गयी है। अंग्रेजी पद्य में उसी ने लघु गुरु द्विमात्रिक पचपदी छद (आयबिक पेंटामीटर) का सर्वप्रथम प्रवेश कराया। सिडनी ने लिखा है, 'मैं नहीं, कह सकता कि मुझे यह जानकर क्या अधिक आश्चर्य चकित नही होना चाहिए कि कोहरे से आच्छन्न उस युग मे वह इतना साफ साफ स्पष्ट देख सका, जब कि हम इस स्पष्ट युग मे भी, उसका अनुकरण करने के बाद, लडखडाते हुए चल रहे हैं।"[1] हडसन ने चासर को 'नवजागरण काल का शुक्र कहा है।[2]

पन्द्रहवी सोलहवी शताब्दी के समीक्षक

पन्द्रहवी तथा सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ की समीक्षा यद्यपि प्रयोगात्मक रूप में ही थी फिर भी उसने एक नया रूप धारण किया। इस समय लटिन भाषा का प्रयोग प्राय बन्द हो गया था, अंग्रेजो अंग्रेजो की बोलचाल की भाषा बन गई और उसम अनेक परिवर्तन हुए जिससे उसके शब्दभंडार मे वृद्धि हुई तथा काव्यशैली में विकास।[3]

चॉसर और विलिफ ने मध्यकालीन परम्परागत नियमो के विरुद्ध कविता और गद्य दोनों म ही अधिक नैसर्गिक अभिव्यक्ति की आवश्यकता का प्रतिपादन किया था, लेकिन इस समय अलकारशास्त्र के अध्ययन का महत्व फिर से बढ़ा और उसे अंग्रेजी साहित्य की आवश्यकताओं के अनुकूल ढालने का प्रयत्न किया जाने लगा। परिणामत आलंकारिक, गूढ़ शब्दाडम्बर वाली अलकारयोजना और क्लासिकल सकनो से बोझिल तथा असामान्य पद विन्यास से युक्त भाषा के उपयोग में वृद्धि होने लगी। अलकारशास्त्र का अध्ययन कवियों के लिए आवश्यक घोषित कर दिया

१—एटकिंस, वही, पृ० १७८ ८०
२—हडसन, वही पृ० २८
३—वही, पृ० १६३

गया और सात 'उदार कलाओं' की शिक्षा प्राप्त करने के लिए उन्हें प्रज्ञा के भवन मे प्रविष्ट कराया गया।[1]

'एनीडोज' (Eneydoz) के अनुवाद की भूमिका (१४९०) में कैक्सटन ने भाषा में आशु परिवर्तन की ओर इंगित करते हुए बताया है कि उसके बचपन मे प्रयुक्त होनेवाली अंग्रेजी और उसके समय मे प्रयुक्त होनेवाली अंग्रेजी दोनों मे महान् अन्तर है, तथा एक पीढ़ी पूर्व जो विषय सुबोध था वह अब अभिव्यक्ति के अपरिष्कृत और गूढ होने से दुरूह हो गया है। स्कैल्टेन ने भी कुछ समय बाद, तत्कालीन भाषा को काव्य के लिए अनुपयुक्त बताया। अपनी 'फिलिप स्पारो' (Phyllyp Sparrow, १५०८ के पूर्व) रचना मे उसने अंग्रेजी भाषा को "मोर्चा लगी हुई 'क्षीयमाण' ग्राम्य तथा सुघड बनाने के लिए कठिन" कहा है। उसका कहना है, "जब उसने आलंकारिक भाषा लिखने का प्रयत्न किया तो उसकी समझ में नही आया कि कहां से समुचित शब्दों को खोजकर निकाला जाय।" चॉसर तक की भाषा पर इस समय लोग उँगली उठाने लगे थे, जिसकी कुछ समय पूर्व प्रशंसा की जाती थी।[2]

लेकिन साथ ही कुछ लोग ऐसे भी थे जो कवियों की अलंकारपूर्ण गूढ भाषा के पक्षपाती नहीं थे। उदाहरण के लिए, स्कैल्टन ने यद्यपि 'मुलम्मा का हुई' भाषा शैली के प्रति आदरभाव प्रदर्शित किया है, लेकिन उसका यह भी कहना है कि ऐसी भाषा समझने में दुरूह हो जाती है, और चॉसर जैसी शैली की स्पष्टता उसमे नही रहती।[3]

कविता के स्वरूप के सम्बन्ध मे भी इस समय नूतन विचार व्यक्त किये जा रहे थे। अब तक छन्दमय आलंकारिक भाषा को ही कविता कहा जाता था, उसे वक्तृत्व कला, व्याकरण अथवा तर्कशास्त्र की शाखा माना जाता था, अथवा होरेस की शब्दावली में कविता को आनन्द और शिक्षाप्रद स्वीकार किया जाता था। मतलब यह कि अभी तक कविता के सम्बन्ध में गंभीरतापूर्वक दार्शनिक दृष्टि से विचार नहीं किया गया था। लेकिन आगे चलकर अंग्रेजी लेखकों ने बोकाचिओ से प्रेरणा प्राप्त कर, पहली बार कविता के सम्बन्ध में अधिक व्यापक और उदार विचार प्रतिपादित किये। बोकाचिओ का मुख्य उद्देश्य था क्लासिकल कविता का पौराणिक कथाओं का संग्रह करके उनकी व्याख्यापूर्वक उसके ओज और उसकी भव्यता का उद्घाटन करना। बोकाचिओ ने अपनी 'दे जीनिओलोजिआ देओरुम' (De

---

१—वही पृ० १६४-६५

२—वही पृ० १६७-६८

३—वही पृ० १६८

Genealogia Deorum, १४ वी और १५ वीं पुस्तक) रचना में कविता की वकालत करते हुए प्लेटो से लगाकर तत्कालीन कविता विरोधी आक्षेपों का खण्डन किया है।[१]

बोकाचिओ के अनुसार, कविता केवल छन्दमय आलंकारिक रचना ही नहीं बल्कि इससे कुछ अधिक ही है। कविता को उसने विज्ञान अर्थात् स्थायी सत्य या ज्ञान बताया है, जो केवल व्यवहार पर आधारित परिवर्तनशील तथा अस्थिर कानून (law) से भिन्न है। उसकी मान्यता है कि कविता का सत्य कथा साहित्य मे प्रच्छन्न रहता है, जिसकी अन्योक्तिपरक व्याख्या करने से कवि का नैतिक उपदेश प्रकट होता है। अतएव ' जिस किसी विषय की प्रच्छन्न रचना की जाती है और इस तरह उसे उत्तम रीति से व्यक्त किया जाता है—वह कविता है, केवल वही कविता है।" अन्योक्ति के इस ताने बाने को ही बोकाचिओ के मत में कविता कहा गया है जिसकी सहायता से बहुत समय तक कविता का बचाव किया जाता रहा। बोकाचिओ का कथन है कि उक्ति की गूढता को कवि का दोष इसलिए नहीं समझना चाहिए क्योंकि अनेक कारणों से वशीभूत होकर कवि को अपने सत्य को अस्पष्ट रखना पड़ता है, असम्बद्ध हो जाने के भय से उसे गुप्त रखना होता है तथा अन्त में जब सत्य उद्घाटित हो जाता है तो वह अधिक मूल्यवान समझा जाने लगता है।[२]

बोकाचिओ ने कविता को प्रेरणाजन्य स्वीकार करते हुए उसके उद्भव में उसे दिव्य तथा प्रभाव मे उदात्त बताया है, कविता आत्मा मे नये और विचित्र भावो की सृष्टि करती है। कविता वक्तृत्व कला से तथा दर्शन और इतिहास से भिन्न है। समसामयिक बौद्धिक जीवन मे कविता को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। उदार कलाओं, वैद्यकशास्त्र और कानून के अध्ययन अध्यापन के कारण अब तक कविता की उपेक्षा होती आ रही थी, बोकाचिओ ने कविता को आदरपूर्ण स्थान प्रदान किया। कविता के विरुद्ध अयथार्थता, अनैतिकता और निरर्थकता आदि दोषों का परिहार करते हुए जोरदार शब्दों में उसने लिखा है कि प्लेटो ने कभी भी कवियों का नगर में प्रवेश निषिद्ध नहीं किया। बोकाचिओ की मान्यता है कि कवि मनुष्यों को अमरता प्रदान करते हैं, और बाइबिल सरस कविता से पूर्ण है। कविता के समर्थन में उसने जैरोम, आगस्टाइन, सेंटपाल और प्राचीन कला सबधी उल्लेखों को उद्धृत किया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि बोकाचिओ के इन विचारों का प्रभाव दो सौ वर्ष से भी अधिक समय तक रहा तथा अंग्रेजी लेखकों

१—वही पृ० १७१

२—वही, पृ० १७१–७२

ने इ ही को आधार मान अपने काव्य सिद्धान्त स्थापित किये।[1]

स्टीफेन हॉज़ (Hawes, मृत्यु १५२३) की 'पासटाइम ऑफ प्लेज़र' (सुख का विनोद) तथा जॉन स्केल्टन (१४६० १५२८) की 'रिप्लिकैशियन अगेंस्ट सरटेन यग स्कालस एब्जड आफ लेट' (किसी नवयुवक विद्वान् को उत्तर—जिसे हाल मे मुक्त कर दिया गया है, १५२८ ई०) नामक कविताओं मे पहली बार कविता के स्वरूप की चर्चा का प्रयास दिखाई देता है। अब तक कविता के रचना-शिल्प सबधी बाह्य विस्तार को ही मुख्यता दी जाती थी, लेकिन बोकाचिओ की विचारधारा के प्रभाव से अब कविता के तत्त्व, उसका प्रयोजन और उसकी प्रक्रिया का चर्चा होने लगी। यद्यपि यह प्रभाव बहुत आशाजनक नही रहा फिर भी इससे कविता के प्रति एक नया दृष्टिकोण उत्पन्न हुआ जो आगे चलकर समीक्षा पद्धति के विकास मे कारण बना।[2]

बोकाचिओ के चरण चिह्नो का अनुकरण करते हुए हाज ने प्राचीन कवियो की सराहना की। कविता को उसने अन्योक्तिपरक स्वीकार करते हुए अभिव्यक्ति की अस्पष्टता और दुर्बोधता का अनुमोदन किया। स्केल्टन ने भी धर्मविद्या तथा अन्य गभीर विषयों के चित्रण करने को कवियो का अधिकार बताते हुए कविता का बचाव किया है। कविता इतनी ऊँची नही उड सकती जिससे कि वह धर्मविज्ञान और दशन आदि तक पहुँच सक'—इसके उत्तर मे स्केल्टन ने लिखा है, 'स्तोत्र (Pslam) मे डैविड ने महानतम विषयों की चर्चा की है और जैरोम ने उसे पगम्बरों का पैगम्बर कवियों का कवि तथा होरेस, कैटूलस (Catullus) आदि प्राचीन कवियों की अपेक्षा श्रेष्ठ कहा है।" बोकाचिओ की भाँति उसने भी कविता को दिव्य प्रेरणा माना है। कवि के हृदय मे कोई रहस्यमयी शक्ति काम करती है जो अन्तर्वासी ईश्वर द्वारा जागृत की जाती है और जिससे कवि अपने लेखनकार्य में प्रवृत्त हो जाता है—"कभी प्रेम के निमित्त कभी गभीर निर्देशन के निमित्त और कभी सुधार के निमित्त।" कहने की आवश्यकता नहीं कि यहाँ पहली बार अंग्रेजी काव्यमीमांसा में काव्य प्रेरणा के सिद्धान्त को स्थापित किया जा रहा था।[3]

गोवर (Gower) चॉसर और लिडगेट (१३७०–१४५०) तत्कालीन नई कविता के अग्रदूत माने जाते थे। निम्नलिखित काव्य प्रवृत्तियाँ इस समय प्रमुख

१—वही, पृ० १७२–७३, जॉर्ज सेंटसबरी हिस्ट्री आफ क्रिटिसिज्म १, पृ०, ४५७–६२
२—वही पृ० १७३
३—वही, पृ० १७५–७६

रूप से देखने में आती हैं—परम्परागत आलंकारिक शैली में स्वीकार करने के परिणामस्वरूप उदात्त और कृत्रिम पदविन्यास, रोचक कथानक में प्रच्छन्न नैतिक उपदेश, सूक्ष्मतापूर्वक अन्योक्ति को आधार मानकर सत्य का उद्घाटन। वस्तुत सोलहवीं शताब्दी के साहित्य का मूल्यांकन यहीं तक सीमित रह गया।[1]

निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते हैं कि लगभग ५ वीं शताब्दी से लेकर १५ वीं शताब्दी तक के एक हजार वर्ष लम्बे काल में कैथोलिक चर्च की ही प्रधानता रही जिसके कारण साहित्य और साहित्यिक समीक्षा में प्रगति न होने के कारण यह युग 'अंधकार-युग' बनकर रह गया। परलोकचिन्ता ही इस काल का प्रमुख विषय बन गया तथा नाटक देखना, नृत्य-संगीत आदि में भाग लेना, लौकिक काव्य और कथाओं का अध्ययन अध्यापन—इन सब बातों पर प्रतिबंध लगा दिया गया, तथा खिलाड़ियों, जादूगरों और विदूषकों के खिलाफ फतवा दे दिया गया जिससे साहित्यिक समीक्षा की गति रुक गई। 'आँकासिन और निकोलेट' (Aucassin and Nicolette) में एक रोचक प्रेम-कहानी आती है। आँकासिन से प्रश्न किया गया कि वह अपनी प्रेयसी और स्वर्ग इन दोनों में किसे पसंद करेगा ? उत्तर में उसने कहा—वह नरक जाना पसंद करेगा क्योंकि सोना चांदी, वीणावादक-गायक और दुनिया के राजा महाराजा सब वहीं जाते हैं। वह भी इनके साथ जायगा जिससे उसकी प्रियतमा उसके संग रह सके। मतलब यह कि मध्ययुग में धार्मिक मान्यताएं जन जीवन पर इतनी अधिक छा गयी कि कला और सहित्य के लिए कोई स्थान न रह गया जिससे समीक्षा की गति आगे बढ सके। स्कॉट जेम्स ने लिखा है 'पंडितों की भाषा लैटिन का प्रयोग साहित्यिक अभिव्यंजना में बहुत बडी बाधा थी, तथा धार्मिक एवं सैद्धांतिकता की कट्टरता का प्रतिबंध साहित्य सृजन में ईमानदारी और समालोचना में विचारों का स्वातन्त्र्य दोनों ही के लिये अत्यंत घातक था।"[2]

मध्ययुग प्राचीन और आधुनिक युग की कुंजी होने के कारण महत्त्वपूर्ण है। छंदशास्त्र को यहाँ प्रमुखता रही। यूनान और रोम में यद्यपि छंद का साहित्य के साथ संबंध बताया गया है, लेकिन साहित्यिक रूप छंद को न मिल सका। वक्तृत्व कला और व्याकरण की भी मुख्यता इस युग में रही। ईश्वर के नियमों की अपेक्षा व्याकरण को अधिक महत्त्व मिला। महाकाव्य की रचना करते समय जीव अथवा

१—वही, पृ० १७८

२—द मेकिंग ऑफ लिटरेचर पृ० ९९, लंदन १९३९

अन्य किसी सुदेवता की स्तुति से उसे आरंभ करना पड़ता था। शैली और छंद की यहाँ सूक्ष्म समीक्षा देखने में आती है। अन्योक्ति को भी साहित्यिक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ।

पुरोहित पादरियों को साहित्य के अध्ययन की आवश्यकता थी, बारहवीं शताब्दी में पश्चिमी यूरोप में पद्य रचना की लोकप्रियता बढ़ रही थी, तथा आगे चलकर चौदहवीं शताब्दी में लैटिन भाषा के स्थान पर जन-साधारण की भाषा अंग्रेजी को प्रमुख स्थान प्राप्त हो रहा था। कहना न होगा कि इन सब परिस्थितियों ने काव्य-समीक्षा तथा विभिन्न दृष्टिकोणों से की जाने वाली साहित्यिक व्याख्या को जन्म दिया।

बोकाचियो ने सबसे अधिक साहसपूर्वक धर्मविद्या की आलोचना करते हुए कविता की वकालत की। देखिए—

"मेरा कहना है कि धर्मविद्या और कविता जब एक ही विषय का प्रतिपादन करते हैं तो दोनों लगभग एक हो हैं। मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि धर्मविद्या ईश्वर की कविता के सिवाय और कुछ भी नहीं। अन्यथा जब धर्मग्रन्थों में कहा ईसामसीह को सिंह, कहीं मेमना, कहीं कीट कहीं पक्षधर सर्प और कहीं शिला आदि के रूप में चित्रित किया गया है तो यह काव्यात्मक कल्पना प्रधान क्या नहीं तो और क्या है? हमारे परित्राता के दिव्य शब्द यदि ऐसा प्रवचन नहीं तो और क्या है जो दृश्यमान वस्तु का निर्देश न करे? इसके लिए हम अन्योक्ति शब्द का प्रयोग करते हैं। इससे स्पष्ट है कि केवल कविता ही धर्मविद्या नहीं है, बल्कि धर्मविद्या कविता है। तथा निश्चय ही ऐसे आवश्यक विषय में यदि मेरे शब्दों पर कम विश्वास किया जाय तो इससे मैं क्षुब्ध नहीं होता। क्योंकि अरिस्टोटल पर मेरा विश्वास है जो किसी भी महत्त्वपूर्ण विषय में सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है। उसकी मान्यता है कि सबसे पहले कवियों ने ही धर्मविज्ञान की रचना प्रारंभ की।"[1]

जाज सट्सबरा ने मध्ययुगीन उपलब्धियों के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है वह मननीय है—

'विश्वास के युग' के रूप में प्रशंसित और तिरस्कृत यह युग तार्किक युक्ति तथा विनोदशील अन्ध सन्देहवाद का युग था। इसे घृणापूर्वक 'अज्ञान का युग' कहा जाता था। इस युग में जो कुछ भी ज्ञात था, वह पूर्णतया ज्ञात था और यह बात अन्य युगों के सम्बन्ध में नहीं कही जा सकती। केवल तैयारी के रूप में सुरक्षित इस युग ने इतनी उपलब्धि की है जिसे प्राप्त करने में हम पाँच सौ साल तक असफल प्रयत्न करते रहे। मुझे यह बात फौरन ही स्वीकार कर लेनी चाहिए कि मध्य

१—विलियम के० विमसेट, वही पृ० १५२

युग चाहे कुछ भी रहा हो, आलोचना का युग वह कभी नही रहा। इस तरह का वह युग कभी हो नही सकता था। यदि वह युग ऐसा होने का प्रयत्न करता तो उसका सब व्यापार नष्ट हो जाता और उसका कार्य अवरुद्ध हो जाता। यदि ऐसा होता तो विजय मे उल्लसित मौलिकता—जिसने व्यवहार मे प्रेमाख्यानों का सर्जन किया, नाटक मे क्रांतिकारी परिवर्तन उपस्थित कर दिया, इतिहास को बदल दिया, नये प्रगीतों का निर्माण किया—सिद्धान्त के समक्ष संकुचित और पक्षाघात से ग्रस्त हो जाती।"[1]

विलियम के० विमसेट ने प्रकारान्तर से इन्हीं विचारो का समर्थन किया है—

मध्ययुग वस्तुतः साहित्यिक सिद्धान्त अथवा आलोचना का युग नहीं था। यह युग साहित्यिक सर्जन का युग था जब लौकिक और धार्मिक दोनों प्रकार के प्रेमाख्यान और प्रगीतों का निर्माण हुआ, नाटक का पुनर्जन्म हुआ, कल्पित कथा, व्यग्य, परियों की कहानियाँ, अन्योक्ति, आख्यान आदि पुष्पित और पल्लवित हुए जिससे समृद्धिशाली भावी आलोचना की भूमि उन्नत बनी। इस युग की सैद्धांतिक विचारणा का ध्यान दूसरी ओर आध्यात्मिकता की ओर था जो हमें मीमांसात्मक धर्मविज्ञान की ओर उन्मुख करता है अथवा धर्मशास्त्रों मे उल्लिखित प्रकाश से जोड देता है। संक्षेप में, यह युग धर्मविज्ञान के अनुकूल धर्मतांत्रिक समाज में धर्मप्रधान चिन्तन का युग था। ऐसे समाज में स्वभावतः साहित्यिक समालोचना की मूलतः मानवीय प्रक्रिया को प्रोत्साहन नही मिलता।[2]

१—जॉर्ज सेंटसबरी, ए हिस्ट्री ऑफ क्रिटिसिज्म एण्ड लिटरेरी टेस्ट इन यूरोप, भाग १, पृ० ३७२-७३

२—विलियम के० विमसेट, वही, पृ० १५४

चौथा खण्ड

(४) आधुनिक समीक्षा

(क) नवजागरण काल (१५वी–१७वी शताब्दी)
(ख) नव्यशास्त्रवाद (१७वी–लगभग १८वी शताब्दी)
(ग) स्वच्छदतावादी काल (१८वी–१९वी शताब्दी
(घ) यथार्थवादी आलोचना (१९वी शताब्दी)
(ङ) कलावादी सिद्धान्त (१९वी शताब्दी)
(च) बीसवी शताब्दी की आलोचना
(छ) समसामयिक आलोचना

●

सर फिलिप सिडनी (१५५४–८६)
बेन जॉनसन (१५७३–१६३७)
जॉन ड्राइडन (१६३१–१७००)
अठारहवीं शतान्दी
ब्वालो (१,३६–१७११)
जॉन डेनिस (१६५७–१७३४)
जोसेफ एडीसन (१६७२–१७१९)
एडवर्ड यग (१६८३–१७६५)
रिचर्ड हर्ड (१७२०–१८०८)
अलेक्जेंडर पोप (१६८८–१७४४)
डाक्टर सैमुअल जासन (१७०९–८४)

●

(क) नवजागरण काल

पन्द्रहवीं-सतरहवीं शताब्दी

❖

- सर फिलिप सिडनी (१५५४–८६)
- बेन जॉनसन (१५७३–१६३७)

❖

(क) नवजागरण काल

पन्द्रहवीं-सतरहवीं शताब्दी

- सर फिलिप सिडनी (१५५४–८६)
- बेन जॉनसन (१५७३–१६३७)

नवजागरणकाल (रेनासा) १५वी–१७वी शताब्दी का आरभकाल

मध्यकालीन युग में मनुष्य धार्मिक नियमो के कठोर अनुशासन में जकड गया था और उससे मुक्ति पान के लिये छटपटा रहा था। स्वतत्रतापूर्वक विचार करन और उन विचारो को व्यक्त करने के लिये वह व्याकुल हो उठा था। इस बीच में आपसी कारणों से ईसाई चर्च का सगठन कायम न रह सका जिससे लोग उसके नियत्रण मे न रहे। जैसे जैसे यह नियत्रण शिथिल होता गया, लोग परलोक की चिन्ता से विमुख हुए तथा वैज्ञानिक अनुभवो द्वारा ससार के रहस्यों का पता लगाने तथा कला और साहित्य द्वारा जीवन को सरस और सुखद बनाने की प्रवृत्ति प्रबल होती गई। आत्मविश्वास के कारण उनमे वैज्ञानिक भावना न जोर पकडा और जो माग अबतक उनके लिये निषिद्ध घोषित किया गया था उसकी ओर वे प्रवृत्त हुए।

यूरोप के मध्ययुग और आधुनिक युग के बीच की सक्रांति की अवस्था का यह काल है जब कि ईसाई जीवन प्रणाली एव जीवन-दशन के स्थान पर यूनानी रोमीय जीवन प्रणाली और जीवन दशन से अनुप्राणित नयी चेतना का उद्भव हो रहा था। इस समय यूरोप की सस्कृति मे एक नतन जीवन का सचार हुआ जो लगभग १६वी शताब्दी के अन्त तक बना रहा। सन् १४५३ का समय यूरोप के इतिहास म अत्यत महत्वपूण समय है जब कि रोमन राज्य की राजधानी और यूनानी विद्या के केंद्र कुस्तुन्तुनिया पर तुर्क लोगो ने विजय प्राप्त की। इस समय यहाँ के विद्वान् हस्त लिखित ग्रन्थ लेकर पश्चिम की ओर चले और सारे यूरोप मे फैल गये। सबसे अधिक आश्रय उन्हें इटली मे मिला जिससे यहाँ यूनानी साहित्य का अध्ययन आरम्भ हुआ। यूनानी विद्वान् हजारों हस्तलिखित पुस्तकें लेकर इटली आये और अपनी आजीविका के लिये वहाँ पढाने का काम करने लगे। प्रत्येक नगर में यूनानी विद्या के केंद्र स्थापित हो गये और दूर दूर से लोग विद्योपाजन के लिये आने लगे। इटली ललित कलाओं के क्षेत्र में यूरोप का अगुआ बना और यूनानी विद्वानो द्वारा लायी हुई विद्या की चर्चा सवत्र फैलने लगी। यह वह समय था जब यूरोप मे भौतिकवादी प्रवृत्तियों के चरम शिखर पर पहुचने के फलस्वरूप नये नये आविष्कार हुए, लबी यात्राओं से नय नये देशो की खोज हुई, छापेखाने का ईजाद हुआ, धम और दशन का नया संस्करण हुआ, बाइबिल धर्माधिकारियो के चगुल से निकल कर जनता के हाथ में जा पहुँची, तथा सामन्तशाही का ह्रास होने से राजनीति और समाजव्यवस्था में मौलिक क्रांति का सूत्रपात हुआ। परिणामस्वरूप, पश्चिमी यूरोप, खास करके इटली, स्पेन, फ्रांस, जमनी और इग्लैंड एक सास्कृतिक चेतना से मुखरित हो उठे।

अंग्रेजी लेखकों ने लौकिक कथा कहानी और प्रेमाख्यान ग्रहण कर इस दिशा में विशेष योगदान दिया। विलियम कैक्सटन—जिसने वेस्टमिनिस्टर में १४७६ में छापा प्रेस स्थापित किया—बौद्धिक जागरण का अग्रदूत बना, कोपरनिकस (१४७३ १५४३), ब्रूनो (१५४८ १६००), फ्रांसिस बेकन (१५६१ १६२६) और गैलिलियो (१५६४ १६४२) आदि महानिबों का इसी समय आविर्भाव हुआ। रोमन साम्राज्य के पतन तथा मसीही धर्म के उत्थान के साथ साथ यूरोप के साहित्यशास्त्र के इतिहास में जो 'अंधकार-युग' का सूत्रपात हुआ था, इटली में नवजागरणकाल के साथ उसका अन्त हुआ। कला उन्मुक्त रूप से विचरण करने लगी। ज्ञान की असीम पिपासा जागृत हो उठी तथा यूनान और रोम के प्राचीन साहित्य के अध्ययन के प्रति अभिरुचि जागृत हुई। नवमानववाद का युग आरंभ हुआ।

सर फिलिप सिडनी (१५५४–८६)

सर फिलिप सिडनी का नाम इस सदर्भ में विशेष उल्लेखनीय है। वह अपने युग का प्रमुख विद्वान्, इग्लैंड का दरबारी कवि और योद्धा था। गद्य और पद्य लिखने में वह समान रूप से कुशल माना गया है। उसकी 'आर्केडिया (१५९०) अपनी बहन का मनोरंजन करने के लिए तथा उसके चतुर्दश पदियों के संग्रह 'एस्ट्रोफेल एण्ड स्टेला (१५९१) का प्रणय-सम्बन्धी रचनाएँ कुमारी पेना लोप को लक्ष्य करके लिखी गई हैं। यद्यपि इस समय तक इग्लैंड में चॉसर, जॉन लिली, स्पेंसर और मार्लो आदि सुप्रसिद्ध कवि, तथा शेक्सपियर और बेन जॉनसन जैसी प्रतिभाओं का पदार्पण हो चुका था, फिर भी प्यूरिटन (शुद्धतावादी) धर्म का प्रभाव बाकी था जिससे कविता विशेष आदर की दृष्टि से नहीं देखी जाती थी।

इंगलैण्ड के साहित्यकारों में इस विषय को लेकर मतभेद चल रहा था कि अंग्रेजी साहित्य के निर्माण में यूनान और रोम की प्राचीन प्रणाली अपनाई जाय या अपनी स्वतन्त्र प्रणाली का अवलंबन किया जाय। सिडनी ने जोरदार शब्दों में स्वतन्त्र प्रणाली का ही समर्थन किया।

कविता की वकालत

सिडनी ने द डिफेंस ऑफ पोयजी (कविता की वकालत, इसका दूसरा संस्करण ऐन अपोलोजी फार पोयट्री के नाम से प्रकाशित)[1] नामक निबन्ध की रचना की, जो उसकी मृत्यु के बाद, १५९५ ईसवी में प्रकाशित हुआ। [उल्लेखनीय बात है कि १५९५ ई० में भी सिडनी को कविता के लिये क्षमायाचना' करनी पड़ी। इसी समय से आधुनिक पाश्चात्य समीक्षा की अविच्छिन्न परम्परा का प्रारम्भ समझना चाहिए।

१—सिडनी का यह निबन्ध स्टेफेन गोसोन नामक पादरी के १५७९ ई० में लिखे हुए 'स्कूल आफ ऐब्यूज' पैम्फलेट के उत्तर में लिखा गया बताया जाता है।

उन दिनों इग्लैंड में प्लेटो का व्यक्तित्व छाया हुआ था। प्लेटो की मान्यता थी कि राष्ट्र के शासन को सुरक्षित रखने के लिए कवियों को नगर के अन्दर प्रवेश न करने देना चाहिए, और प्लेटो के इसी कथन को लेकर प्यूरिटेन कविता को अनैतिक, मिथ्या और भ्रष्टाचार को उत्तेजन प्रदान करनेवाली कहने लगे थे।

कविता के समर्थन मे सिडनी ने अनेक तर्क उपस्थित किये। उसका कहना था कि जो कविता आदिकाल से चली आ रही है, जिसने मनुष्य को सभ्य और सुसंस्कृत बनाने मे योगदान दिया है, और जो अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखी जाती रही है, वह अचानक 'शिशुओं का उपहासपात्र'[१] कैसे बन गई? तथा इग्लड तो सदा से विद्वानो और साहित्यिकों का जन्मदाता रहा है, फिर वह कवियों के प्रति एक सौतेली माँ सा कठोर व्यवहार क्यों करने लगा?[२] इससे यही पता लगता है कि विद्वान् और सामान्य लोगों की दृष्टि मे भी कविता उपादेय नहीं थी, तभी तो सिडनी को कविता के लिये क्षमायाचना करनी पड रही थी।

कविता के समर्थन में प्रमाण

वस्तुत काव्य का बचाव करने के लिए जो स्थिति अरिस्टोटल की हुई थी, वही स्थिति सिडनी की भी हुई। कविता के समर्थन में सिडनी ने यूनानी कवि ओरफेफ्स (Orpheus) और आम्फिओन के उदाहरण प्रस्तुत किये, जिनकी कविता में जगली पशु और निर्जीव पाषाणों तक को मन्त्रमुग्ध कर देने की शक्ति थी। सिडनी ने इतालवी और अंग्रेजी भाषाओं के दाते, और चॉसर आदि सुश्रुत कवियों का उल्लेख किया है जिन्होंने काव्य जगत् को नेतृत्व प्रदान कर पाठकों को आह्लादित किया और अपनी अपनी भाषाओं के भडार को समृद्ध बनाया।[३]

काव्य की पुरातनता

काव्य की पुरातनता का प्रतिपादन करते हुए सिडनी ने कहा है कि प्रथम दार्शनिकों और वैज्ञानिकों ने पद्य में ही लिखना आरम्भ किया। उसने थेलीज, एम्वेदोक्लीस, पेरेमेनिदिस और पाइथागोरस आदि यूनान के प्राचीन विचारकों का नामोल्लेख किया जो कवियों के वेष में ही दुनिया के सम्मुख उपस्थित हुए थे।[४]

१—ऐन अपोलोजी फॉर पोयट्री, पृ० २, व यरबस इक्सासिस्स, इग्लिश क्रिटिकल ऐसेज, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, १९४७।

२—वही, पृ० ४१

३—वही, पृ० २ ३।

४—यद्यपि अरिस्टोटल का कथन है कि होमर और एम्वेदोक्लीस में छन्द के साम्य को छोड़कर और कोई साम्य नहीं है। एक को कवि और दूसरे को भौतिक

यूनान का विधायक सालोन भी महत्वाकांक्षी और भी कथा का पद्य में लिखने के कारण ही कवि के रूप में प्रसिद्ध हुआ। बाइबिल के डेविड के स्तोत्रों (Psalms) में भी काव्य को ही मुख्य माना गया है।

काव्य का महत्त्व

सिडनी ने बताया कि रोमन भाषा में कवि को 'वेटेस' (Vates) अर्थात् दिव्य शक्तिदाता, भविष्यद्रष्टा अथवा पैगम्बर तथा यूनानी भाषा में उसे 'पोयत' अर्थात् निर्माणक कहा गया है।[1] कविता को उसने समस्त विद्याओं का स्रोत माना है। कविता के सर्वव्यापक होने के कारण कोई भी शिक्षित देश इसकी उपेक्षा नहीं कर सकता, तथा कोई भी असभ्य देश इसके बिना नहीं रह सकता। कविता हमें सदाचार की शिक्षा देती है और साथ ही आनन्द प्रदान करती है अतएव उसके प्रति सम्मान प्रदर्शित करना आवश्यक है।[2] सिडनी प्रश्न करता है क्या कोई अब तक ऐसा विद्वान् हुआ है जिसे वर्जिल होरेस या केटो की कविताएँ याद न हों जिन्हें उसने अपनी युवावस्था में पढ़ा था, और जो उसे वृद्धावस्था में समय समय पर सीख न देती हों।[3]

प्लेटो का समर्थन

प्लेटो के कथन का समर्थन करते हुए सिडनी ने बताया कि प्लेटो ने कहीं भी साहित्यमात्र का विरोध नहीं किया केवल अनैतिक साहित्य का ही विरोध किया है। सिडनी के कथनानुसार, लोग द्वेषपूर्ण भावना से ही, प्लेटो के दार्शनिक होने के कारण, उसे कवियों का स्वाभाविक शत्रु कहते हैं।[4] वस्तुतः केवल आभ्यन्तरिक रूप से ही वह दार्शनिक है, कलेवर उसकी कविता का बना है और उसका सौंदर्य कविता पर आधारित है।[5] दूसरी बात, प्लेटो ने कवियों के ऊपर प्रहार न कर काव्य की बुराइयों के ऊपर प्रहार किया है। उसने ऐसे ही कवियों को दोषी ठहराया है जिन्होंने निष्कलंक देवताओं के सम्बन्ध में हलकी-फुलकी कहानियों का प्रचार कर दुनिया की नजरों में उन्हें गिराया है। इससे यही सिद्ध होता है कि प्लेटो देवताओं

विज्ञानवेत्ता कहना ही ठीक होगा। डेविड डचीज, क्रिटिकल अप्रोचेज टू लिटरेचर, पृ० ५१, लंदन १९५४।

1—एन अपोलोजी फार पोयट्री पृ० ४, ६।

2—वही, पृ० २९

3—वही पृ० ३२

4—वही, पृ० ३८

5—वही, पृ० ३

के सम्बन्ध में प्रचारित भ्रांत धारणाओं का विरोधी था, कवियों का नहीं। अतएव "कविता मिथ्या भाषण की कला नहीं, उसमें प्राय कटु सिद्धांत (true doctrine) रहते हैं, वह भीरुत्व की कला नहीं, उत्तेजनात्मक साहस पैदा करती है, वह मनुष्य के वाग्वैदग्ध्य का दुरुपयोग न होकर उसे शक्तिशाली बनाती है—और ऐसी कविता प्लेटो द्वारा सम्मानित थी।"[1]

कविता की विशिष्टता

सिडनी के कथनानुसार, कवि अपनी सृजनात्मक कला द्वारा, प्रकृति का निरीक्षण कर एक जुदा प्रकृति का ही निर्माण करता है। यह मूल प्रकृति से श्रेष्ठ होती है, और इसमें एक अभूतपूर्व रूप का निर्माण हो जाता है जो पहले कभी देखने में नहीं आया था। इस प्रकार यद्यपि कवि प्रकृति के साथ साथ चलता है, वह प्रकृतिदत्त वरदानों की संकुचित सीमा में अपने को बाधकर नहीं रखता बल्कि अपनी कलाज य प्रतिभा की परिधि में एक अभिनव संसार का निर्माण करता है। "वास्तविक संसार पीतल का संसार है जब कि कवि स्वर्णिम संसार का निर्माण करता है।' यह एक आदर्श संसार होता है 'जहां 'आनन्ददायी नदियाँ प्रवाहित होती हैं, वृक्ष फलते फूलते हैं, और सुगंधित पुष्प खिला करते हैं"[2] 'कविता के पुष्पों के बिना हमअपोलो के उद्यान में प्रवेश नहीं कर सकते।'[3]

अनुकरण अर्थात् सृजनात्मकता

सिडनी ने काव्य को अनुकरण की कला स्वीकार किया है (अरिस्टोटल की भी यही मान्यता थी)[4] वस्तुत अनुकरण का अभिप्राय यहाँ 'आदर्श अनुकरण' अथवा सृजन ही हो सकता है। यूनान के कवि सोलोन के उल्लेख से भी यही सूचित होता है कि सिडनी असत्य को ज्ञान की अभिव्यक्ति का एक मूल्यवान साधन स्वीकार करता है (अरिस्टोटल ने इसे स्वीकार नहीं किया)। असत्य या अन्योक्ति के रूप में उपयोग करके उससे नैतिकता की शिक्षा दी जा सकती है, अतएव उसे उपादेय माना गया है। ऐसी दशा में यही कहना होगा कि जो बातें मौजूद नहीं हैं, कवि न उनका अनुकरण करता है न प्रतिनिधित्व करता है, न उनकी अभिव्यक्ति करता है और न उनका प्रतिपादन ही करता है। सृजनात्मकता कवि का अनन्य लक्षण है क्योंकि अपनी प्रतिभा के बल से वह नयी वस्तुओं का सृजन करता है।[5]

१—वही, पृ० ३८ ४१
२—वही, पृ० ७
३—वही पृ० ८
४—वही, पृ० ८
५—डेविड डचीज, क्रिटिकल अप्रोच टु लिटरेचर, पृ० ५२,५६ ५८

कविता दर्शन और इतिहास से श्रेष्ठतर

कवि को दार्शनिक और इतिहासकार की अपेक्षा श्रेष्ठ बताते हुए सिडनी ने कहा है, "जब तक दार्शनिक और इतिहासकार को कविता का पासपोर्ट नहीं मिल जाता, तब तक वे लोकसम्मत निर्णय के द्वार के अन्दर प्रवेश नहीं कर सकते।"[१] "दार्शनिक की दलीलें पेचीदगी से भरी हुई रहती हैं, जिनमें केवल सिद्धान्त का ही प्रतिपादन रहता है, उसकी उक्तियाँ नीरस रहती हैं जो साफ समझ में नहीं आतीं।" "उसका ज्ञान गूढ़ और सामान्य रहता है। ऐसी हालत में जो उसकी बात समझ सकें वे सुखी हैं और उनसे भी सुखी वे हैं जो उसे समझकर उसपर आचरण कर सकें।" इतिहास के सम्बन्ध में वह लिखता है—'इतिहासकार के कोई सिद्धान्त नहीं रहते। वह 'क्या होना चाहिए' का प्रतिपादन न कर, 'जो है' उसका प्रतिपादन करता है—वह वस्तुओं के सामान्य कारण को प्रस्तुत न कर उनके विशेष सत्य को प्रस्तुत करता है। इससे उसके द्वारा दिये हुए उदाहरणों का कोई परिणाम नहीं होता, अतएव उसके सिद्धान्त भी सफल नहीं कहे जा सकते।'[२]

आगे चलकर उसने लिखा है—'दार्शनिक के उपदेश गूढ़ होते हैं जिन्हें केवल विद्वान् ही समझ सकते हैं, जब कि कवि कोमल-से कोमल आत्माओं के लिए खाद्य प्रदान करता है और वही सचमुच सही लोकमान्य दार्शनिक है।'[३] 'इतिहासकार कितनी ही बातों को निश्चयपूर्वक प्रतिपादन करता है, इसलिए अनेक असत्य कथनों के दोष से वह मुक्त नहीं कहा जा सकता। लेकिन कवि किसी भी बात को निश्चयपूर्वक नहीं कहता, इसलिए वह असत्य भाषण के दोष से मुक्त रहता है। कवि जो कुछ लिखता है, उसे सत्य प्रमाणित करने के लिए, वह हमारी कल्पना के इर्दगिर्द वृत्त नहीं बनाता। दूसरे इतिहासों के प्रमाण भी वह उद्धृत नहीं करता। वह तो सौम्य अधिष्ठातृ देवी का केवल आह्वान करता है जिससे वह नूतन सृजन के लिए प्रेरणा प्राप्त कर सके।'[४] कवि केवल ज्ञान प्रदान करने में ही इतिहासकार से आगे नहीं बढ़ जाता, पाठकों को वह सदाचरण की ओर भी प्रवृत्त करता है।'[५]

काव्य-न्याय

कवि का दुनिया में सदाचारी हमेशा उन्नति करता है और दुराचारी दण्ड का भागी होता है, इसे काव्य न्याय कहा गया है, इस बात में कवि इतिहासकार से बढ़कर है।[६] जब तक यह सिद्ध न हो जाय कि कविता पाठकों को नैतिक सुधार की ओर प्रवृत्त करती है तब तक कविता का समर्थन नहीं किया जा सकता। सिडनी ने

१—ऐन अपोलोजी फॉर पोयट्री, पृ० ४
२—वही, पृ० १४
३—वही, पृ० १७
४—वही पृ० ३३
५—वही पृ० २०
६—वही, पृ० १९

काव्य को समस्त विद्याओं का अधिपति कहा है। "वह केवल मार्गदर्शन ही नहीं करता बल्कि एक मधुर भविष्य की ओर ले जाता है जिससे कि कोई भी व्यक्ति इसकी ओर आकृष्ट हो। ठीक ऐसे ही जैसे कोई अंगूरों के बगीचे में से होकर गुजरे, पहले उसे खाने के लिए अंगूरों का स्वादिष्ट गुच्छा मिले और फिर वह आगे बढ़ने के लिए लालायित हो।" कवि की परिभाषाएँ गूढ़ नहीं रहती जिन्हें समझने के लिए व्याख्या की जरूरत हो। स्मृति को सदेहात्मकता के बोझ से भी वह बाझिल नहीं बना देता। कवि संगीत की मोहक कला को लेकर हमारी ओर ज्ञान ददायक तारतम्ययुक्त शब्दों के साथ अग्रसर होता है। कवि की यह कला 'बालकों को उनकी क्रीडा से पराङ्मुख कर देती है, तथा अपनी चिमनी के एक कोने में बैठे हुए वृद्धों को बाहर निकाल लाती है।'[1]

काव्य का प्रयोजन

होरेस के अनुसार, कवि आनन्द और शिक्षा प्रदान करने के लिए काव्य की रचना करता है। सिडनी होरेस के मत से प्रभावित था। अन्तर दोनों में यही है कि सिडनी ने आनन्द को साधन और शिक्षा को साध्य माना है। अच्छाई प्राप्त करने के लिए जब तक किसी व्यक्ति के मन में आनन्द पैदा नहीं होता, तब तक अच्छाई से वह ऐसा ही डरता है जैसे कोई किसी अजनबी से। इसलिए आनन्द साधन है और शिक्षा साध्य क्योंकि इससे हम अच्छाई का परिचय प्राप्त होता है जिसकी ओर हम अग्रसर हुए हैं।[2] सदाचार सवश्रेष्ठ गुण है और कवि अपने काव्य द्वारा इसकी शिक्षा देने के लिए बड़े गौरव के साथ प्रवृत्त होता है इसलिए वह सबसे कुशल कारीगर है।[3] सिडनी ने लिखा है 'कविता को कान पकडकर नहीं ले जाना चाहिए उसे कोमलता से ले जाने की आवश्यकता है अथवा वह ही हमें ले जाय—हमारा मार्ग-दर्शन करे। और इसलिए प्राचीन काल के विद्वानों ने कविता को मानवीय कला न मानकर दिव्यशक्ति घोषित किया है।"[4]

सिडनी ने पद्य को कविता का हेतु न मानकर उसे केवल अलंकार माना है। उसका कथन है कि कितने ही श्रेष्ठ कवि ऐसे हो गये हैं जिन्होंने पद्यबद्ध कविता नहीं की। तुकबन्दी अथवा पद्यबद्ध रचना करने से कोई कवि नहीं बन जाता जैसे कि लम्बा चोगा पहनने से कोई वकील नहीं बनता। इसलिए आनन्दपूर्ण शिक्षा को ही सिडनी ने कविता का लक्षण स्वीकार किया है।[5] कविता को प्रभावशाली बनाने के लिए सजीवता और भावावेग मुख्य हैं[6] तभी हम उससे आन्दोलित हो सकते हैं।

१—वही पृ० २१, २२
२—वही, पृ० १०
३—वही, पृ० २४
४—वही, पृ० ४३
५—वही, पृ० १०
६—वही, पृ० ५२

कविता की सर्वोत्कृष्टता

अपनी रचना के अन्त मे कविता की उत्कृष्टता का जयघोष करते हुए यूनान और रोम के अनेक कवियो की साक्षीपूर्वक सिडनी ने लिखा है "स्याही बर्बाद करने वाला मेरी इस क्षुद्र रचना को पढकर कोई कविता के पवित्र रहस्यो का तिरस्कार न करे 'कवियों' को मूर्खों का उत्तराधिकारी समझ उनका उपहास न करे, और उन्हें 'तुकबन्दी करनेवाला' कहकर उनका मजाक न उडाये। हमे विश्वास करना चाहिए कि कवि यूनानी दिव्यता के प्राचीन कोषाध्यक्ष हैं, और हैं सभ्यता के प्रथम वाहक। किसी भी दार्शनिक के सिद्धान्तो के अध्ययन की अपेक्षा वर्जिल का काव्य हमें शीघ्रता से ईमानदार बना सकता है। काव्य से स्वर्ग के देवता प्रसन्न होते है। हेसिओद और होमर का कथा कहानियो के बहाने लिखी हुई कविता ने हमे न्याय, अलकारशास्त्र दर्शन, विज्ञान और नीतिशास्त्र का ज्ञान प्रदान किया है। आप लोग मेरे कहने से विश्वास करें कि कविता मे अनेक गूढ रहस्य अन्तर्हित हैं, जो अस्पष्टतापूर्वक इसलिए लिखे गये थे जिससे कि श्रद्धाहीन लोग उनका दुरुपयोग न करने लगें। आप विश्वास करें कि कवि देवताओ को भी प्रिय हैं और जो कुछ वे लिखते हैं उससे दैवी प्रकोप का आविर्भाव होता है। और अन्तिम बात जिसे गाठ बाध लेना चाहिए यह है कि यदि वे चाहेगे तो अपनी कविता द्वारा आपको अवश्य ही अमर बनाकर छोडेंगे।"[1] यह थी कविता की वकालत जो सिडनी को कविता विरोधियो को परास्त करने के लिये करनी पडी थी।

सिडनी के मत की समीक्षा

(१) इग्लैंड के शुद्धतावादियो के आक्षेपों से कविता की रक्षा करने के लिए सिडनी ने कदम उठाया, यह अग्रेजी समीक्षा को सिडनी की अमूल्य देन है। वस्तुत पाश्चात्य समीक्षा की परम्परा यही से शुरू होती है।

(२) प्लेटो ने कविता की अपेक्षा दार्शनिक आदर्श अथवा सत्य की खोज पर जोर देते हुए कविता को नैतिक उत्तरदायित्व के उच्चतम विकास का विरोधी बताया है। लेकिन सिडनी ने शुद्धतावादियों की मान्यता के खण्डन मे प्लेटो का मत उद्धृत किया है। प्लेटो का बचाव करते हुए सिडनी ने कहा है कि प्लेटो के समय साहित्य मे अनेक दोष पैदा हो गये थे जिससे उसे निम्न कोटि के काव्य की गर्हणा करने के लिए बाध्य होना पडा।

(३) सिडनी ने कविता को अनुकरण की कला स्वीकार करते हुए अरिस्टोटल को प्रमाण रूप मे उद्धृत किया है। लेकिन वस्तुत अरिस्टोटल ने जिस अर्थ मे अनु-करण का प्रयोग किया है, उससे भिन्न अर्थ मे ही सिडनी ने प्रयोग किया है।

१—वही, पृ० ५३

अरिस्टोटल ने प्लेटो की काव्यसम्बन्धी मान्यता में सुधार करते हुए बताया था कि कविता जीवन की मूलभूत सम्भावनाओं का अनुकरण है जिसमें सम्भाव्य और आवश्यक अनुक्रम के अनुसार कार्य-कारण की सम्बद्धता और संगति रहती है, और इसी कारण कवि इतिहासकार और दार्शनिक की अपेक्षा जीवन की वास्तविकता की प्रतीति अधिक गहराई से करा सकता है। लेकिन सिडनी के अनुसार कविता किसी भी वस्तु का अनुकरण नहीं करती, वह सृजन ही करती है। इसीलिए कवि वास्तविक जगत के स्थान पर एक काल्पनिक जगत का निर्माण करता है जो वास्तविक जगत की अपेक्षा श्रेष्ठ है। दूसरे शब्दों में, सिडनी ने 'आदर्श अनुकरण' का सिद्धान्त स्वीकार किया है।

(४) कविता को इतिहास की अपेक्षा श्रेष्ठ सिद्ध करते हुए भी सिडनी ने अरिस्टाटल का ही आश्रय लिया है। अरिस्टाटल की भाँति उसने इतिहास की अपेक्षा कविता को इसलिए अधिक दार्शनिक और अधिक गंभीर बताया, क्योंकि कविता में विशेष की अपेक्षा सामान्य की अभिव्यक्ति रहती है। लेकिन यहाँ भी उसकी मान्यता अरिस्टोटल से भिन्न पड़ जाती है। सिडनी यहाँ कहना चाहता है कि कवि अपने आदर्श जगत में वस्तुओं को उनके मौजूदा रूप में न दिखाकर, उनके आदर्श रूप में दिखाता है जिसमें कि उन्हें होना चाहिए। तात्पर्य यह कि कविता को नैतिक शिक्षा प्रदान करने और धार्मिकता की ओर प्रेरित करने का प्रभावकारी माध्यम बताकर वह पाठकों को सदाचार की ओर प्रवृत्त करना चाहता है। सिडनी कविता का बचाव करने के लिए ऐसे आदर्श जगत का निर्माण करता है जहाँ लोग कविता द्वारा सदाचार की ओर प्रवृत्त हों और दुराचार से विमुख हों। यही उसका काव्य-न्याय का सिद्धान्त है। अरिस्टोटल की स्थिति इसके विपरीत थी। उसने कविता को नैतिकता के बंधन से निकालकर उसका सम्बन्ध सौंदर्यवाद से जोड़ा था।

(५) सिडनी काव्य के मूलभूत तथ्यों का निरूपण कर पाश्चात्य समीक्षाशास्त्र को गति प्रदान न कर सका और कविता के बचाव में उसके आदर्शवादी वक्तव्य प्रायः उच्छ्वासपूर्ण उद्गार बनकर रह गये। फिर भी हमें यह न भूलना चाहिए कि वह शुद्धतावादियों के आक्षेपों से कविता की रक्षा करने में संलग्न था। उसकी रचनाओं से निश्चय ही उसके समकालीन लेखक और उसके बाद में आनेवाली पीढ़ी असाधारण रूप से प्रभावित हुई।

बेन जॉनसन (१५७३–१६३७)

बेन जानसन शेक्सपियर का मित्र था और उसकी नाट्य रचना के उद्देश्य व सिद्धान्त शेक्सपियर के उद्देश्य व सिद्धान्तों से भिन्न थे। १५९२ में वह अभिनेता

मना। १५९८ में उसने 'एव्रीमैन इन हिज ह्यूमर (प्रत्येक व्यक्ति अपने विनोद में)' नामक व्यग्यात्मक कॉमिडी की रचना कर नाट्य रचना के क्षेत्र में प्रवेश किया। उसने राजदरबारी रंगमंच और लोक रंगमंच दोनों के ही लिए नाटकों की रचना की। अपने सुखांत नाटकों में उसने लंदन के जीवन का यथार्थवादी चित्र प्रस्तुत किया है। इन नाटकों में उसका उद्देश्य केवल मनोरंजन करना ही नहीं, मनोरंजन के साथ-साथ समाज की प्रचलित कुरीतियों पर व्यग्यबाणों द्वारा प्रहार करके समाज सुधार करना भी रहा है।

क्लासिकल साहित्य का अनुकरण

लंदन की बहुरंगी नगरी में इस समय कुकुरमुत्ते की भाँति सामाजिक साहित्य की रचना हो रही थी जिससे साहित्यिक संसार में सर्वत्र अव्यवस्था दिखाई देने लगी थी। ऐसी हालत में बेन जॉनसन ने प्राचीन क्लासिकल साहित्य के अनुकरण की सिफारिश की। किसी साहित्यिक कृति को मुख्य रूप से वैयक्तिक अभिव्यक्ति न मानकर वह उसे वस्तुगत अनुकरण मानता था—यह अनुकरण सीधे प्रकृति का हो या किसी ऐसे लेखक का जिसने प्रामाणिक रूप में प्रकृति का अनुकरण किया है। जॉनसन के 'टिम्बर' में दूसरों से लिये हुए और अनुवाद किये हुए कितने ही अंशों में शैली की ऐसी सावधानी और शक्ति टपकती है मानो ये विचार स्वयं लेखक के हों। कारण स्पष्ट है कि जानसन अपने स्वयं के तथा अपने प्रिय क्विण्टीलियन और सेनेका के विचारों का साहित्यिक मूल्यांकन करते समय दोनों में कोई अंतर नहीं मानता। 'टिम्बर' में अनुकरण को काव्यसृजन का मुख्य साधन प्रतिपादित करते हुए वह लिखता है, "जब हम किसी दूसरे कवि के सारांश अथवा वशिष्ट्य को अपने अनुकूल बना सकने में समर्थ हैं तो वह अनुकरण है। हम अनेकों में से एक सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति का चुनाव करते हैं, और तब तक उसका अनुकरण करते हैं जब तक हम स्वयं वही अथवा उसके जैसे न बन जायें, और यहाँ तक कि अनुकरण को लोग आदर्श समझने लगें।" प्राचीनों और आधुनिकों में शहद और मधुमक्खी का सम्बन्ध बताते हुए इसी बात को प्रकारान्तर से कहा गया है, "यह किसी ऐसे प्राणी की भाँति नहीं जो कच्चे बिनपके खाद्य पदार्थ को निगल जाता है जो कि उसे पचता नहीं है बल्कि यह वह खुराक है जो भूख को शान्त करती है, और पचने के बाद पोषण प्रदान करती है। जैसा होरेस ने कहा है, अंधानुकरण न करो लेकिन मधुमक्खी की भाँति चुने हुए सर्वश्रेष्ठ फूलों में से रस पीकर उसका शहद तैयार कर लो।'[1]

---

[1]—विलियम के० विमसट, लिटरेरी क्रिटिसिज्म, पृ० १७८-७९

साहित्य में अनुशासन

जो लोग अतिशय रूप में यूनानी लेखकों का अनुकरण करने के पक्ष म थे, उनके लिए जॉनसन का कहना था कि केवल चुनी हुई बातो को ही उपयुक्त और संक्षिप्त शैली में ग्रहण करना चाहिए। उसके अनुसार, काव्य नियमा का आविष्कार यद्यपि अरिस्टोटल ने नही किया—अरिस्टोटल के पूववर्ती सोफोक्लीस ने उन्हें अधिक परिपूर्ण बनाया—फिर भी अरिस्टोटल ही "वस्तुओ के कारणों को समझता था", 'जिन बातों को दूसरे लोग सयोगवश या अमुक रूढि के कारण करते थे, उन्हें वह बुद्धि अथवा तक से करता था। उसने केवल गलती न करने के माग की ही खोज नही की, वरन् गलती न करने के सीधे और सरल माग का भी पता लगाया था।" दरअसल, उन दिनों इग्लैंड में क्लासिकल सिद्धात को न तो बढा चढाकर प्रतिपादित किया जा रहा था और न उसकी रक्षा ही की जा रही थी। ऐसी दशा मे जॉनसन यूनानी पद्धतियों को खोज न कर एलिजाबेथ-कालीन पद्धतियो की खोज में ही अधिक व्यस्त था। उत्कृष्टता के ऐसे निर्विवाद मानदण्डो को वह प्रतिष्ठित करना चाहता था जो साहित्य मे विश्रृंखलता के स्थान पर अनुशासन और अतिशयोक्ति के स्थान पर उचित सीमाएँ कायम कर, नियन्त्रण द्वारा साहित्य को सम्पन्न बना, उसे अन्तःकरण और अन्त प्रेरणा का विषय बना सकें। वाणी की रूढि—जो विद्वानों की स्वीकृति है—जीवन की रूढि की,—जो सदाचार की स्वीकृति है"—के साथ तुलना की है। मतलब यह कि जसे नैतिक चरित्र सही और गलत होता है वैसे ही कला और साहित्य को भी सही और गलत माना गया है।[1]

लेखकों के लिए आदेश

जॉनसन ने लेखको के लिए अनेक उपयोगी आदेश दिये हैं, जिनमें तीन बातें मुख्य हैं—सवश्रेष्ठ लेखको की रचनाओ का अध्ययन, सवश्रेष्ठ वक्ताओं के भाषणो का श्रवण तथा अपनी स्वय की शैली का अभ्यास, लेकिन "मूर्खों के लिए कोई भी आदेश उपयोगी नही हो सकता।" कवि के लिए चार बातें आवश्यक हैं—नैसर्गिकता, अभ्यास, अनुकरण और अध्ययन। सवप्रथम उसमें नैसर्गिक प्रतिभा होनी चाहिए जिससे कि वह "अपने सहज बोध से अपने मस्तिष्क का खजाना उडेल सके।' कवि को अनुप्राणित करनेवाले हर्षोन्माद को उसका खुद का न मानकर ईश्वरप्रदत्त माना गया है। दूसरी बात, प्रतिभा के लिए अभ्यास की आवश्यकता है जिससे सब चीजें भली भाँति प्रस्तुत की जा सकें। इस सम्बन्ध में जॉनसन ने वड्सवथ का भाँति कविता को 'स्वत निस्सृत वाकशक्ति' (स्पॉण्टेनियस अटरेंस) स्वीकार न कर दान्ते के शब्दो मे 'सपादित और कष्टसाध्य श्रम' माना है। उदाहरण के लिए,

---

१—स्काट जेम्स द मेकिंग आफ लिटरेचर, पृ० १२३ २५

तथा यूनान और रोम की आलोचनात्मक कृतियों का पुनः अन्वेषण हो रहा था। अरिस्टोटल के विरेचन सिद्धान्त की सर्वप्रथम व्याख्या इसी समय की गयी। शेक्स-पियर की रचनाएं प्रकाश में आ चुकी थीं। महाकवि दान्ते को छोड़कर लोग शेक्स-पियर की ओर आकर्षित हो रहे थे। धर्म का स्थान मानवता ने ले लिया था। इन परिस्थितियों में सिडनी ने कविता को जोरदार वकालत कर काव्य का महत्त्व प्रतिपादन किया। कविता को उसने आनन्द और शिक्षाप्रद दोनों स्वीकार किया। यूनान और रोम की प्राचीन पद्धति स्वीकार करने के बजाय उसने स्वतन्त्र प्रणाली की आवश्यकता का प्रतिपादन किया। बेन जॉनसन ने क्लासिकल साहित्य के अनुकरण को श्रेयस्कर मान उसे काव्यसृजन का मुख्य साधन बताया। साहित्य में विशृंखलता के स्थान पर अनुशासन को महत्त्व देते हुए कविता को श्रमसाध्य प्रतिपादित किया गया। नव्यशास्त्रवाद का मार्ग उसने प्रशस्त किया।

(ख) नव्य शास्त्रवाद

सतरहवीं—लगभग अठारहवीं शताब्दी

❖

- ○ जॉन ड्राइडन (१६३१–१७००)
- ○ ब्वालो (१६३६–१७११)
- ○ जॉन डेनिस (१६५७–१७३४)
- ○ जोसेफ एडीसन (१६७२–१७१६)
- ○ एडवड यग (१६८३–१७६५)
- ○ रिचड हड (१७२०–१८०८)
- ○ एलकजण्डर पोप (१६८८–१७४४)
- ○ सेमुअल जॉन्सन (१७०६–१७८४)

नव्यशास्त्रवाद (लगभग १७ वीं शताब्दी—लगभग १८ वीं शताब्दी)

यूनान और रोम के साहित्य की श्रेष्ठता]

प्रारम्भ म ॱ ,ान समीक्षाशास्त्र का केंद्र रहा जब कि होमर, प्लेटो और अरिस्टोटल आदि विचारकों ने काव्य सम्बन्धी ऊहापोह उपस्थित कर अपनी मौलिकता का परिचय दिया। तत्पश्चात् यह श्रेय रोम को प्राप्त हुआ जब कि सिसरो वक्तृत्वकला और होरेस ने काव्यकला के सिद्धान्तों को निर्धारित कर साहित्य चिन्तन के क्षेत्र को विस्तृत किया। फलस्वरूप, पन्द्रहवीं सोलहवीं शताब्दी में यूरोप में यूनान और रोम का साहित्य उच्च कोटि का साहित्य माना जाने लगा और शैली की दृष्टि से साहित्यिकों के लिए वह आदर्श हो गया। इसी समय से यूनान और रोम के साहित्य के लिए 'क्लासिज्म' अथवा शास्त्रवाद का प्रयोग रूढ़ हो गया।

क्लासिकल धारा की विशेषताएँ

विलियम हेनरी हडसन ने क्लासिकल कविता की जो निम्नलिखित विशेषताएँ बतायी हैं, वे ध्यान देने योग्य हैं—

१— क्लासिकल काव्य मुख्य रूप से जीवन के ऊपरी धरातल तक ही सीमित रहनेवाली बुद्धि की सृष्टि है। भावना एवं कल्पना की दृष्टि से उसकी अपूर्णता स्पष्ट है। साधारणतया वह उपदेशात्मक और व्यंग्यात्मक है।

२—वह प्राय पूर्णरूपेण एक 'नगर' काव्य है जो संस्कृति के महान् केंद्रों के शिष्ट समाज की रुचियों पर आधारित है। इसमें जीवन के निम्न पक्षों की उपेक्षा हुई है तथा इससे प्रकृति दृश्यचित्रों अथवा ग्रामीण जनों और वस्तुओं के प्रति किसी वास्तविक प्रेम का पता नहीं चलता।

३—इसमें उन सभी तत्त्वों का प्राय पूर्ण अभाव है जिन्हें हम कुल मिलाकर 'रोमांटिक' के नाम से पुकारते हैं, यद्यपि यह नाम बहुत स्पष्ट नहीं है। 'रोमांटिकता' और उत्साह दोनों ही उस युग के विवेक एवं सद्बुद्धि सम्बन्धी सभी विचारों के विरुद्ध थे। आलोचना के क्षेत्र में लोगों की रुचि हमारे प्राचीन साहित्य के आचार्यों, जैसे चासर, स्पेंसर और यहां तक कि शेक्सपियर तक के विरुद्ध थी और उन्हें असंस्कृत मानती थी।

४—शैली के प्रति अत्यधिक ध्यान तथा बाह्य परिष्कार के प्रेम के कारण एक अत्यन्त कृत्रिम तथा रूढ़िवादी शैली विकसित हो गयी जो शीघ्र ही एक परम्परागत काव्यभाषा के रूप में रूढ़ हो गयी। वस्तु विषय अत्यन्त साधारण कोटि का

होने पर भी सीधी सादी भाषा के स्थान पर आडम्बरपूर्ण शब्दजाल एवं वाग्विस्तार का प्रयोग होने लगा।

५—क्लासिकल कवियों का विश्वास था कि गंभीर प्रकार की कविता केवल एक ही छंद में संभव है और वह है तुकांत दोहा छंद।[1]

नये युग का आरम्भ

सिडनी की 'डिफेंस आफ पोएट्री' (कविता का बचाव) और ड्राइडन की 'द राइवल लेडीज़' (प्रतिद्वंद्वी महिलाएँ—१६६४ में प्रकाशित) रचना के बीच के काल में, समीक्षाशास्त्र का केंद्र इटली से हटकर फ्रांस चला गया। पुनर्जागरण का काल अब समाप्त हो चुका था। सन् १६६० से अंग्रेजी साहित्य में एक नये युग का आरंभ हुआ और अगले ४० वर्षों तक जीवन और साहित्य में फ्रांसीसी आदर्शों का अनुकरण होता रहा। साहित्य के प्रेमी कितने ही इंग्लैंडनिवासी अंग्रेज सन् १६४६ में चार्ल्स प्रथम के परिवार के साथ भागकर फ्रांस चले गये थे। फ्रांस के सिद्धांतों से प्रभावित होकर १६६० में जब वे चार्ल्स द्वितीय के साथ इंग्लैंड लौटकर आये तो अंग्रेजी भाषा और साहित्य में भी उन्होंने फ्रांस के कला सिद्धांतों का प्रचार करना आरंभ कर दिया। यह प्रभाव केवल दर्शन और साहित्य के क्षेत्र में ही नहीं, फैशन के क्षेत्र में भी दिखायी दिया। इस काल में बेकन (१५६१–१६२८), देकार्त (Descartes १५९६–१६५०), हाब्स (१५८८–१६७९), न्यूटन (१६४३–१७२७) और लाक (१६३२–१७०४) जैसे फ्रांसीसी चिन्तकों का आविर्भाव हुआ जिनके विचार तर्क और बुद्धिवाद पर आधारित थे। वैज्ञानिक अनुसंधान की नींव भी इस समय पड़ी।

इसके अतिरिक्त, महाकवि मिल्टन, 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस' के रचयिता जॉन बनियन (१६२८–१६८८) 'द हिस्ट्री आफ द रिबेलियन एण्ड सिविल वार्स इन इंग्लैंड' के लेखक अर्ल आफ क्लैरेण्डन, और बिशप गिलबर्ट बरनेट आदि सुप्रसिद्ध लेखकों का जन्म इसी काल में हुआ जिन्होंने अपनी कृतियों से अंग्रेजी साहित्य के भंडार को समृद्ध बनाया। जीवनचरित्र सम्बन्धी पुस्तकें तथा महत्वपूर्ण डायरियाँ इस समय लिखी गयीं। सेमुअल पीप्स ने अपने अनेक वर्षों के बहुमूल्य अनुभवों को गुप्त भाषा में अपनी डायरी में अंकित किया। आधुनिक गद्य के विकास का यह काल है जब कि प्राचीन लैटिन गद्य की परम्परा को छोड़कर, लेखकों ने सुसंस्कृत फ्रेंच लोगों की बोलचाल की भाषा को आदर्श मान अंग्रेजी गद्य लिखना

१—इंट्रोडक्शन टु द स्टडी आफ लिटरेचर (अंग्रेजी साहित्य का इतिहास), अनुवादक जगदीश बिहारी मिश्र, पृ० १३२–३४

प्रारंभ किया। ड्राइडेन की रचनाओं में इस प्रकार के गद्य का उत्कृष्ट रूप मिलता है। व्यंग्य काव्य भी इन्हीं दिनों लिखे गये। सेमुअल बटलर ने तीन खंडों में अपना 'हुडिब्रास' काव्य लिखा जिसमें डॉन क्विकजोट की परम्परा पर प्यूरिटन (शुद्धतावादी) लोगों पर व्यंग्य किये गये। इस युग के सबसे महान् कवि जान ड्राइडेन ने भी अपने लेखों में व्यंग्यात्मक शैली को अपनाया। नाट्यगृहों की पुनः स्थापना इस समय की गई। सन १६६० के बाद पहले-पहल अंग्रेजी रंगमंच पर अभिनेत्रियों ने काम करना शुरू किया और रँगे हुए पर्दों का प्रयोग किया जाने लगा। शेक्सपियर, बेन जॉनसन आदि नाटककारों के पुराने नाटकों के स्थान पर नये ढंग के दुखान्त नाटक लिखे गये। ड्राइडेन आदि नाटककारों ने रंगमंच पर खेले जाने के लिए सुन्दर नाटकों की रचना की। ड्राइडेन ने दुखान्त नाटकों की रचना अतुकांत छंद में तथा वीर (हीरोइक) नाटकों की रचना तुकान्त 'हीरोइक' छंद[1] में की।

नव्यशास्त्रवाद

सन १६५० से १८०० तक का युग न्व्यक्लासिकी (नव्यशास्त्रवाद) का युग कहा जाता है। १६५० के आसपास बुद्धिवाद और वैज्ञानिक विचार पद्धति का बीजारोपण हुआ जिसका प्राधान्य प्रायः डेढ़ सौ वर्ष तक बना रहा। इस समय अंग्रेजी विचार और साहित्यिक सिद्धान्तों में आमूल परिवर्तन हुआ, अंग्रेजी भाषा नियन्त्रित हुई और उसका रूप निर्धारित किया गया। नव्यशास्त्रवाद का प्रभाव फ्रांस के नाटककार कार्नील (१६०६–८४) और रैसीन (१६३९–९९) की रचनाओं में देखा जा सकता है।

मलहाब (१५५५–१६२८) काव्य को प्रेरणाजनित न मानकर उसे एक कला मानता था। उसकी मृत्यु के पश्चात् काव्य में कलात्मक अनुशासन पर जोर दिया जाने लगा। १६३० और १६६० के बीच मोटे तौर पर काव्य सम्बन्धी एक घोषणापत्र तैयार किया गया जिसमें काव्यरचना को कठोर नियमों में बाँधने का प्रयत्न हुआ। इस घोषणापत्र के अनुसार, अरिस्टोटल आदि प्राचीन लेखकों की कृतियों के अनुकरणपूर्वक कविता में सुधार की आवश्यकता बताते हुए कहा गया कि यह सुधार प्राचीन नियमों का पालन करने से ही सम्भव है। इतालवी क्लासिसिज्म और फ्रांसीसी क्लासिसिज्म में यही अन्तर था कि एक में काव्य के नियमों के बंधन नहीं थे जब कि दूसरा इन बंधनों को स्वीकार करके चलता था।

कहना न होगा कि १४ वें लुइस के राज्य (१६६१–१७१५) में नव्यशास्त्रवाद अपने अंतिम व्यवस्थित रूप पर पहुँच गया जब कि इसमें विचारों और भावों की एकता का समावेश हुआ। काव्यरचना के नियम प्रकृति का व्यवस्था और

१—पंचपदीय 'आयम्बिक' जो तुकांत छंद में प्रयुक्त किया जाता है। वीरों के साहसिक वर्णन के लिये सर्वाधिक उपयुक्त छंद।

सामंजस्य प्रदान करते थे, इसलिए उनका अक्षरशः पालन करना जरूरी बताया गया। वस्तुतः साहित्य-समीक्षा के क्षेत्र में यह एक नया सिद्धान्त माना गया जो अपने रूप में अभिजात्य, भाव में रूढ़िवादी तथा शैली में दरबारी जीवन की शैली का अनुकरण करता था। नव्यशास्त्रवाद के अनुसार कवि में प्रतिभा की आवश्यकता बतायी गयी जिससे वह काव्य के नियमों का ज्ञान प्राप्त कर, अपनी कला का सृजन कर सके। इसके अनुसार, नैतिक शिक्षा प्रदान करना काव्य का मुख्य उद्देश्य प्रतिपादित किया गया। १८ वीं शताब्दी में, होमर, वर्जिल, होरेस और अरिस्टोटल को इंग्लैंड के साहित्यकार अपना आदर्श मानने लगे।[1]

नव्यशास्त्रवाद के प्रवर्तक फ्रेंच आलोचक ब्वालो (१६३६–१७११) ने किसी विषय पर सही तौर पर विचार करने के नियम बनाये। इन नियमों का अनुसरण कर एडीसन ने एक सदोष नाटक की ही रचना कर डाला। पोप का एसे ऑन क्रिटिसिज्म (आलोचना पर निबन्ध) भी ब्वालो का 'ल आर्ट पोएतिक' (काव्य-कला) के आधार से ही लिखा गया। इस समय काव्य के नियमों का इतनी ही सख्ती से पालन किया जा रहा था जितनी सख्ती से सनिक कवायद के नियमों को पालते हैं।

महान् आलोचक जान ड्राइडन (१६३१-१७००)

इंग्लैंड का प्रसिद्ध कवि, गद्य लेखक, नाटककार और व्यंग्यकार ड्राइडन अपने युग का सर्वप्रथम महान आलोचक हो गया है जिसे एक क्षुद्रतम युग का महानतम व्यक्ति कहा गया है। इस समय कविता गद्य के समान नीरस हो गयी थी और उससे गद्य का काम लिया जाने लगा था। गद्य के मानदण्डों से ही कविता का मूल्यांकन होने लगा था। छंदोबद्ध पैम्फलेटों का आरंभ भी इस समय से हुआ। इस युग में कार्नील रैसीन निकोलस और ब्वालो आदि फ्रांसीसी आलोचकों का प्रभाव बढ़ रहा था जिससे काव्यरचना में कठोर नियमों को महत्त्व दिया जा रहा था। किन्तु ड्राइडन ने नव्यशास्त्रवादियों की इन रूढ़िग्रस्त मान्यताओं का विरोध कर बड़े साहस से काम लिया। वस्तुतः ड्राइडन इंग्लैंड का प्रथम आलोचक था जिसने साहित्य

१—आगे चलकर टी० एस० इलियट ने अपने आपको शास्त्रवादी (क्लासिकल) कवि घोषित किया है। इसे नव्यशास्त्रवाद के सिद्धान्तों का ही पुनरुज्जीवन कहा जा सकता है। सामयिक समीक्षा में जो अभिव्यक्ति की मितव्ययिता, कला विधान और वाक्पटुता के प्रति रुचि दिखायी देती है, उसे भी नव्यशास्त्रवाद का ही प्रकार कह सकते हैं। अमरीका के अधिकांश नये आलोचकों ने, जैसा कि सुप्रसिद्ध आलोचक रैने वेले ने लिखा है विशेषकर शैली आदि स्वच्छन्दतावादी कवियों की अत्यन्त कठोरतापूर्वक आलोचना की है। ए हिस्ट्री आफ माडर्न क्रिटिसिज्म, इण्ट्रोडक्शन, पृ० २

की व्यवस्थित आलोचना की। जॉनसन ने उसे 'अंग्रेजी आलोचना का जनक' कहा है।[1]

ड्राइडन राजकवि (पोएट लॉरेट) था।[2] सन् १६६५ मे जेम्स द्वितीय के सिंहासन पर आरूढ होने पर ड्राइडन ने रोमन कैथोलिक धर्म स्वीकार कर लिया। सन् १६६५ ६६ में ताऊन की भयकर बीमारी फैलने पर वह एक गाव म जाकर रहने लगा। १६६८ मे उसने 'ऐन ऐसे ऑफ ड्रेमेटिक पोएजी' (नाटकीय कविता पर निबध) नामक सवाद के रूप मे एक श्रेष्ठ आलोचनात्मक निबन्ध लिखा जिसमें यूनानियो व रोमनो के क्लासिकल नाट्य, फ्रासीसियो के नव्य क्लासिकल नाट्य और अग्रेजों के रोमाटिक नाट्य सिद्धातों पर विचार किया गया। इसी समय राजा की नाट्यशाला के साथ उसने एक वर्ष में तीन नाटक लिखकर देने का समझौता किया। इसके कुछ ही दिन बाद उसे राजकवि[3] की उपाधि से विभूषित किया गया।

ड्राइडन अपने युग का एक बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार हो गया है। उसकी रचनाओ मे काफी विविधता पायी जाती है। उसकी 'एनस मिरेबिलिस' (१६६७) काव्यरचना मे लदन के भीषण अग्निकाण्ड और डच युद्ध का वर्णन है,

---

१—वह ऐसा लेखक था जिसने पहले पहल हमें किसी रचना के सिद्धातों का निश्चय करना सिखाया। हमारे पूर्वकालीन कवि और महानतम नाटककार बिना नियमों के ही लिखा करते थे। वे लोग अपनी प्रतिभाशक्ति से लिखते थे। शेष लेखक रचना के सिद्धान्तो को जानते थे लेकिन उन्हें दूसरो को सिखाने की ओर उनका उपेक्षा भाव था। जॉनसन, लाइफ आफ ड्राइडन, पृ० ५६, डब्ल्यू० एच० शाप, बम्बई।

२—ड्राइडन ने लिखा है, 'यदि आप जानना चाहते हैं कि हमारा वार्तालाप इतना परिष्कृत कैसे हो गया तो बिना किसी झिझक और किसी की चाटुकारिता के मैं कहूँगा कि राज दरबार और खासकर राजा के सपर्क के कारण ऐसा हुआ है—जिस राजा का उदाहरण इस सम्बन्ध मे कानून का निर्माण करता है। इसे मेरा खुद का और राष्ट्र का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए कि मुझे सफर करने और यूरोप के राज दरबारों के अत्यन्त शिष्ट और परिष्कृत कायदे कानूनों से अभिज्ञ होने का अवसर मिला—ऐसा अवसर जो बडे बडे सत्ताधिकारी राजकुमारो को भी दुर्लभ है।"—विलियम के० विमसेट, लिटरेरी क्रिटिसिज्म पृ० २००।

३—यह उपाधि एडवर्ड चतुर्थ के राज्य मे किसी राजघराने के व्यक्ति को दी जाती थी। राजा के जन्म दिवस आदि के अवसर पर कविता पढ़कर सुनाना उपाधिधारी का कर्तव्य समझा जाता था। आगे चलकर यह उपाधि किसी भी योग्य कवि को प्रदान की जाने लगी।

'मैक फ्लेकनो' में अपने प्रतिद्वन्द्वी कवि और नाटककार टामस शेडवेल को व्यंग्य का विषय बनाया है, 'रिलीजिओ लायची (१६८२) में एग्लिकन मत का समर्थन है, और 'द हाइएंड ऐंड द पैंथर' (१६८७) में रोमन कैथोलिक धर्म का यशोगान किया गया है। अंतिम दो रचनायें इसलिये उल्लेखनीय हैं कि उनसे ड्राइडन में छंद के माध्यम से तर्क करने की शक्ति का पता लगता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि ड्राइडन अपनी हाजिर जवाबी के कारण किसी भी पक्ष की वकालत करने में असाधारण रूप से कुशल था। ड्राइडन की विभिन्न कृतियों की बहुसंख्यक भूमिकाओं और समर्पण-पत्रों में बोलचाल की सरल और प्रवाहबद्ध भाषा में उसकी आलोचनाएँ उपलब्ध होती हैं।

तुलनात्मक समीक्षा

नवजागरण काल के उत्तरकालीन समीक्षक आधुनिक साहित्य की यूनानी और लैटिन साहित्य के साथ तुलना करते हुए यूनानी और लैटिन साहित्य को ही सदा समस्त भाषाओं के लिये आदर्श मानते रहे। क्विण्टीलियन के पूर्व लालित्य सूक्ष्मता और औचित्य की दृष्टि से लैटिन की अपेक्षा यूनानी साहित्य को ही उत्कृष्ट कहा गया। लेकिन ड्राइडन ने इससे आगे बढ़कर बताया कि प्रत्येक युग अथवा राष्ट्र की अपनी अपनी प्रतिभा के अनुसार साहित्य का विकास होता है। वह लिखता है, " शेक्सपियर और फ्लेचर ने युग और राष्ट्र की प्रतिभा के अनुसार लिखा है, जिस युग और राष्ट्र में वे विद्यमान थे। यद्यपि सर्वत्र प्रकृति एक सी है, और बुद्धि भी एक जैसी ही है, फिर भी जलवायु, युग तथा जनता की मनोवृत्ति—जिसके लिये कवि लिखता है, इतनी भिन्न हो सकती है कि जो बात यूनानियों को अच्छी लगती है वह कदाचित् अंग्रेजी श्रोताओं को अच्छी न लगे।' इस प्रकार ड्राइडन ने पहिली बार साहित्य को एक सुव्यवस्थित शक्ति मानकर उसके विकास को प्रत्येक अभिनव युग के राष्ट्रीय विकास पर आधारित माना।[1]

कविता अनुकृति है

प्लेटो ने कविता को प्रकृति अर्थात् वास्तविकता की अनुकृति स्वीकार किया था। अरिस्टोटल का कहना था कि वस्तु के सम्यक चयन और घटनाओं की संघटना द्वारा कवि वास्तविकता तक पहुँचता है—ऐसी वास्तविकता जो साधारण अनुभव द्वारा संभव नहीं है। सिडनी ने वास्तविक जगत् की अपेक्षा एक श्रेष्ठतर काल्पनिक जगत् का निर्माण किया जिससे कि कविता के पाठकों का नैतिक स्तर ऊंचा उठ सके। लेकिन ड्राइडन ने इन सबसे भिन्न कवि के लिए ऐसे जीवन को मुख्य माना जैसा कि कवि यथार्थ में देखता है। स्पष्ट है कि यहाँ ड्राइडन ने सिडनी के स्वर्णिम

१—स्कॉट जेम्स, मेकिंग ऑफ लिटरेचर, पृ० १४०

संसार' की कल्पना मान्य नही की जिसे सिडनी ने वास्तविक जगत् से श्रेष्ठ माना है।

ड्राइडेन ने भी कविता को वस्तुओं का अनुकरण माना है, लेकिन कब ? जब कि वे वस्तुएँ अपने आदर्श रूप मे हो, अर्थात् ऐसी हो जैसा आरम्भ म उनका निर्माण किया गया था और जैसा कि उन्हे होना चाहिए। इस प्रसग मे ड्राइडन ने प्रकृति के ज्ञान को सर्वोपरि बताते हुए उसे कवियो के लिए आवश्यक बताया है—इतना ही आवश्यक जैसे कि प्रकृति की व्याख्या करनेवाले अरिस्टोटल और होरेस का अध्ययन आवश्यक है। अतएव ड्राइडन का कथन है कि प्रत्येक युग म आनन्द प्रदान करने वाली समस्त वस्तुओं को प्रकृति का अनुकर्ता होना चाहिए।[१]

यहाँ शका हो सकती है कि प्राकृतिक घटनाएँ परिवर्तनशील और नाशवान होने के कारण कभी पूर्ण नही होती, ऐसी हालत में प्रकृति का अनुकरण करने के कारण काव्य निर्दोष कैसे कहा जा सकेगा ? उत्तर में कहा गया है कि प्रकृति अपने सृजन मे पूर्णता की ओर अग्रसर होती हुई अपने दोषों को दूर करने के लिए प्रयत्न शील रहती है। इसी प्रकार कला भी, प्रकृति की सृजनात्मक प्रक्रिया का अनुकरण करती हुई वस्तुओं को उनके आदर्श रूप मे प्रस्तुत करने का प्रयत्न करती रहती है। इसलिए चित्रकला की भाँति कविता म भी जीवन और मानवतावाद का आदर्श रूप चित्रित होता है। "कविता मे बिना किसी दोष अथवा त्रुटि के सुखद रसायनशास्त्र से मिश्रित प्राकृतिक सौंदर्य बिखरा पडा है।" दूसरे शब्दों मे, इसे अरिस्टोटल का 'आदर्श अनुकरण' ही कहना होगा जिसे सिडनी ने स्वीकार किया था।[२]

काव्य का प्रयोजन आनन्द

होरेस ने 'शिक्षा देना और मनोरंजन करना' काव्य का उद्देश्य माना था। सिडनी ने नैतिक शिक्षा को प्रमुख मानकर आनन्द को उसका साधन स्वीकार किया। लेकिन ड्राइडन ने नैतिक शिक्षा की अपेक्षा काव्य में आनन्द की मुख्यता स्वीकार की है। उसने लिखा है, "जिस युग म मैं रहता हूँ, उसे आनन्दित करना मेरा मुख्य प्रयोजन है।'[३] गद्य की अपेक्षा पद्य को मुख्य बताते हुए ड्राइडन ने कहा है, 'यदि पद्य से आनन्द प्राप्त होता है तो मुझे सन्तोष है, क्योंकि आनन्द यदि एकमात्र नहीं, तो कविता का मुख्य प्रयोजन अवश्य है। शिक्षा को दूसरा स्थान दिया जा

१—ड्राइडन, हीरोइक पोयट्री एण्ड पोएटिक लाइसेंस, पृ० ११२, ड्रेमेटिक पोएज़ी ऐंड अदर एसेज, अर्नेस्ट राइस, लदन १६३६।

२—एटकिन्स इंग्लिश लिटरेरी क्रिटिसिज्म सेविंटीन्थ एण्ड एटीन्थ सेंचुरीज पृ० ११२

३—ऐन ऐसे आफ ड्रेमेटिक पोएज़ी, पृ० ६४।

सकता है, क्योंकि कविता आनन्दप्रद होने पर ही शिक्षाप्रद होती है।[1]

अनुकृति का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि किसी वस्तु का इस प्रकार अनुकरण करे जिससे कि आत्मा के प्रभावित होने से मनोवेगों मे उत्तेजना पैदा हो और पाठक आह्लादित होकर गतिशील हो उठे।[2] ड्राइडन ने चित्रकार के साथ कवि की तुलना की है कि जिस प्रकार कोई चतुर चितेरा किसी वस्तु को देखकर उससे बिल्कुल मिलता जुलता चित्र बनाकर रख देता है उसी प्रकार कुशल कवि प्रकृति का बडी कुशलता से अनुकरण करता है जिससे कि उसके अमुक हिस्सों का सौंदय उभर कर दिखायी देने लगता है और उसके दोष छिप जाते हैं।[3] कवि की तुलना किसी बन्दूक बनाने वाले अथवा घडीसाज़ के साथ की गई है। बन्दूक बनाने वाले अथवा घडीसाज़ के पास जो लोहा अथवा चाँदी होती है, उसका महत्त्व केवल उसकी कारीगरी म है। इसी प्रकार कवि जिन वस्तुओं को देखता है, वे इतनी महत्त्वपूर्ण नही जितना कि उसका कला-कौशल जिसके आधार से वह काव्य सृजन करता है।

दूसरे शब्दो में कह सकते हैं कि कलाकार केवल चित्रण करने के लिए ही जीवन का चित्रण नहीं करता, वह उसका इस प्रकार चित्रण करता है जिससे वह सुन्दर दिखायी दे। वह जिस प्रकार वस्तु को देखता है, उसका वसा ही चित्रण करके नही छोड देता, बल्कि वह उसम निखार पैदा करता है जिससे कि वह सौंदय से चमक उठे और अभिनव रूप मे दिखायी देने लगे। इस कथन के अनुसार जब हम कविता या कला के बारे मे कुछ कहते हैं तो हम सौंदय के बारे मे कहते हैं, और जब हम कविता के आनन्द के विषय म चर्चा करते हैं तो हम सौंदय से उत्पन्न आनन्द के विषय मे चर्चा करते हैं। मतलब यह है कि कवि को मानव-स्वभाव का चित्रण पाठकों के समक्ष इस प्रकार प्रस्तुत करना चाहिए जो प्राणवान हो और उन्हें रुचिकर लगे।

अच्छा अनुकरण चोरी नहीं

अन्त में प्लेटो द्वारा होमर के अनुकरण करने के सम्बन्ध में लांजाइनस[4] का उद्धरण देते हुए ड्राइडन लिखता है, एक अच्छे अनुकरण को हम चोरी नहीं समझना चाहिए बल्कि उसे अनुकरण करने वाले का एक सुन्दर विचार समझना चाहिए,

---

१—वही, पृ० ६२

२—वही,

३—वही पृ० ६३

४—अरिस्टोटल, होरेस और लांजाइनस के अध्ययन से प्रकाश पाने का उल्लेख ड्राइडन ने किया है, प्राउण्ड्स आफ क्रिटिसिज्म इन ट्रेजेडी प० १२९। ड्राइडन ने लांजाइनस को यूनानी आलोचकों में अरिस्टोटल के बाद सबसे बड़ा आलोचक माना है। होरेशन पोएट्री एण्ड पोएटिक साइंसेस, पृ० १०९।

जो किसी दूसरे की खोज और काम मे निर्मित होता है। यहा अनुकर्ता किसी नये मल्लयोद्धा की भांति, पहले योद्धा के साथ मैदान मे उतर कर पुरस्कार जीतने के लिए अपना नाम योद्धाओं की सूची में लिखवाता है।"[1] ड्राइडन की मान्यता है कि जीवन के निरीक्षण मात्र से काव्य का सृजन नही होता, किन्तु कवि को अपनी कल्पना का सहायता से निरीक्षण किये हुए जीवन की सामग्री को सजाना पडता है। यदि कलाकार कोरे यथार्थवाद अथवा जीवन की यांत्रिक नक्ल को लेकर ही आगे बढे तो उसे केवल प्रकृति की चोरी ही कहा जायगा, कल्पना द्वारा जीवन का रूपातरण नही। कल्पना को उसने जीवन सस्पर्श (लाइफ टचेज) प्रदान करने वाला कहा है।[2]

कविता का सत्य से सम्बन्ध

ड्राइडन ने कविता और नैतिक सत्य का घनिष्ठ सम्बन्ध स्वीकार किया है। उसका कहना है कि जिस कविता के मूल में ही सत्य नही, उस कविता से आधा सतोष होता है। वर्जिल के काव्य में उसने सत्य को स्वीकार किया है—ऐसा सत्य जो मन पर आनन्द की शक्तिशाली छाप छोड जाता है।[3]

नाटक मानव-स्वभाव का एक चित्र

ड्राइडन कवि होने के साथ साथ कुशल नाटककार भी था। रगमच से सम्बद्ध अनेक विषयो और वार नाटको का उसने गभीर चिन्तन और मनन किया है। वर्डसवर्थ और कीट्स के समय से 'ओड' (लघुगीत) या 'सॉनेट' (चतुष्पदी) रूप में लघु पद्यशाली कविता को ही कविता कहा जाता रहा है, लेकिन ड्राइडन के के समय पद्यो में वर्णित किसी लम्बी कहानी (महाकाव्य अथवा वीर काव्य) अथवा महाकाव्य की भाति नाटक को श्रेष्ठ कविता माना जाने लगा। 'ऐन ऐसे ऑफ ड्रेमेटिक पोएजी' में ड्राइडन ने काव्यात्मक नाटक की चर्चा करते हुए प्राचीन और अर्वाचीन फ्रेंच और एलिजाबेथ के समकालीन नाटक साहित्य तथा नाटको की पुन स्थापना पर विचार किया है। नाटक की चर्चा के प्रसग में ही यहा पर काव्य के सम्बन्ध में भी महत्वपूर्ण विचार प्रकट किये गये हैं।

काव्य की भाँति नाटक का प्रयोजन भी ड्राइडन ने मानव-स्वभाव के सजीव मानस चित्रों द्वारा आनन्द और शिक्षा प्रदान करना माना है। वह लिखता है, "नाटक मानव स्वभाव का एक प्राणवान मानस चित्र है, जो मानवजाति को आनन्द

१—ग्राउण्डस आफ क्रिटिसिज्म इन ट्रेजेडी, प० १२६।

२—स्कॉट जेम्स द मेकिंग आफ लिटरेचर पृ० १४४ ४५।

३—ऐन ऐसे आफ ड्रेमेटिक पोएज़ी पृ० ६८।

और शिक्षा देने के लिए, उसके मनोभावों, मनोदशाओं, तथा जीवन में होनेवाले परिवर्तनों को प्रस्तुत करता है।"[1]

ड्राइडन की उक्त परिभाषा सामान्यतया कल्पनात्मक साहित्य के लिए लागू होती है, भले ही वह साहित्य नाटक के रूप में हो या अन्य किसी रूप में। सबसे पहले, नाटक (अथवा काव्य) मनुष्य स्वभाव का एक चित्र उपस्थित करता है, जिससे पता लग सके कि मनुष्य का स्वभाव कैसा है। यहां चित्र अथवा 'बिम्बचित्र' (इमेज) से लेखक का अभिप्राय मानव स्वभाव के 'सत्य' से है। यह चित्र यदि यथार्थ है तो उससे सत्य की प्रतीति होना अनिवार्य है। लेकिन यह चित्र केवल यथार्थ ही न हो इसे प्राणवान भी होना चाहिए। स्पष्ट है कि इससे ड्राइडन साहित्यिक शैली पर जोर देना चाहता है। मतलब यह है कि काव्य मानव स्वभाव का ऐसा चित्र है जो यथार्थ और प्राणवान हो। उदाहरण के लिए, कोई मनोविज्ञान का पंडित मानव-स्वभाव का यथार्थ वर्णन प्रस्तुत कर सकता है, किन्तु उसका प्राणवान होना और चित्र के रूप मे प्रस्तुत किया जाना आवश्यक नहीं। इसी प्रकार कोई चित्र प्राणवान हो सकता है लेकिन यह आवश्यक नहीं कि वह यथार्थ भी हो। इसी प्रकार कोई यथार्थ चित्र ऐसा भी हो सकता है जो प्राणवान न होकर निष्प्रभ हो। इसलिए नाटक अथवा काव्य में उक्त सभी तत्त्वों का होना आवश्यक है।[2]

नाटक में संकलनत्रय अनावश्यक

ड्राइडन ने नाटक मे अरिस्टोटल द्वारा प्रतिपादित काल, देश और कथानक की अन्विति की चर्चा करते हुए बताया है कि फ्रांसीसी नाटककारों और आलोचकों ने इन नियमों को नाटक रचना के लिए अनिवार्य माना है। लेकिन ड्राइडन इस मत से सहमत नही है। उसका कहना है कि संकलनत्रय के इस आधार पर हम आधुनिक नाटकों के सम्बन्ध में कोई निर्णय नहीं दे सकते। उदाहरण के लिए, कुछ नाटक ऐसे भी हो सकते हैं जो एक दिन की जगह एक युग ही ले लें, एक कथानक की जगह सारे मानव जीवन का सार ग्रहण कर लें, तथा किसी स्थानविशेष की जगह नक्शा में प्रदर्शित देशों से भी अधिक देशों को समेट लें।[3] फिर संकलनत्रय के इस नियम का स्वयं अरिस्टोटल, होरेस तथा यूनान के नाटककारों ने पालन नहीं किया केवल फ्रांस के लेखक ही इसका पालन करते हुए देखे जाते हैं।[4]

१—वही पृ० १०।
२—रिचर्ड्स वीमेज, क्रिटिकल अप्रोचेज टू लिटरेचर पृ० ७८
३—ऐन ऐसे आफ ड्रेमेटिक पोएजी, पृ १२–४।
४—वही, पृ० १८ २४।

आधुनिककालीन नाटकों की उत्कृष्टता

ड्राइडन की मान्यता है कि आधुनिक नाटककारों ने प्राचीन नाटककारों की कृतियों में सुधार किया है। उसके अनुसार, जहाँ तक प्राचीन नाटकों की रचना कथानक और चरित्रचित्रण का प्रश्न है, सभी दोषपूर्ण थे।[1] सोफोक्लीस यूरिपाइडिस मिनेण्डर्स और वर्जिल को उसने केवल पढ़ा ही नहीं था बल्कि हृदयगम भी किया था। शेक्सपियर, बेन जॉनसन और फ्लेचर का भी उसने गंभीर अध्ययन किया था। इनके दुखान्त नाटकों ने उसे दुखरूप में और सुखान्त नाटकों ने सुखरूप में प्रभावित किया था यद्यपि ये नाटककार यूनानी नहीं थे। अतुकान्त छंद के स्थान पर उसने तुकान्त छंद का औचित्य सिद्ध किया। ड्राइडेन ने अरिस्टोटल के ट्रेजेडी की कल्पना को सोफोक्लीस और यूरिपाइडिस के नाटकों पर आधारित बताते हुए कहा है, "यदि अरिस्टोटल ने हमारे नाटकों को देखा होता तो उसका विचार ही कुछ दूसरा होता।' शेक्सपियर के सम्बन्ध में वह लिखता है, "वह एक ऐसा व्यक्ति था जो समस्त आधुनिक तथा संभवतः प्राचीन कवियों की अपेक्षा सबसे बड़ा और समझदार था। प्रकृति के समस्त चित्र उसके समक्ष थे, उसने उन्हें श्रम से नहीं, अपनी प्रतिभा के बल से चित्रित किया। जब वह किसी वस्तु का वर्णन करता है तो उसका चित्र हमारी आँखों के सामने उपस्थित हो जाता है—हम उसका अनुभव करने लगते हैं।[2] शेक्सपियर को उसने होमर और जॉनसन को वर्जिल कहकर उच्च स्थान दिया है।[3]

ड्राइडन की देन

ड्राइडेन अपने युग का एक जागरूक कवि और आलोचक हो गया है जो अपने निर्णय में स्पष्ट और दृढ़ था और अपनी बात को असाधारण ढंग से प्रस्तुत कर सकता था। प्राचीनता का अन्धानुकरण न कर वह युग के साथ चलना चाहता था। साहित्य संहिता में वह अरिस्टोटल होरेस अथवा ब्वालो किसी का अनुयायी नहीं था। उसका स्पष्ट मत था कि इतिहास के विभिन्न युगों में महान् कलाकारों के रुचिवैचित्र्य और शिल्पविद्या आदि की विभिन्नता के कारण साहित्य का प्रस्तुतीकरण भिन्न भिन्न रूपों में उपलब्ध होता है अतएव एक युग के साहित्य का दूसरे युग में उपादेय होना आवश्यक नहीं।

ड्राइडन के अनुसार कलाकार का मुख्य कार्य है आनन्द प्रदान करना, अतएव कोई सृजनशील कलाकार अपने युग के प्रति उदासीन नहीं रह सकता। साहित्य का

१—एटकिन्स, वही, पृ० ५६
२—वही, पृ० ४०
३—वही, पृ० ४२

उद्देश्य उसने उपदेशात्मक स्वीकार नहीं किया। कला और सौन्दर्य को परस्पर पृथक नहीं किया जा सकता, अतएव जब हम कविता अथवा कला की बात करते हैं तो हमारा लक्ष्य सौन्दर्य की ओर ही होता है।

भाषा को पंडिताऊ बनाने के पक्ष में भी वह न था। भाषा का वह परिष्कार करना चाहता था। उत्तरवर्ती लेखकों के लिये पद्यरचना के विविध आदर्श उसने उपस्थित किये। यह उसी का प्रभाव था कि क्लासिक दोहा छंद को अंग्रेजी काव्य में उच्च स्थान प्राप्त हो सका जो अनेक वर्षों तक प्रतिष्ठित रहा। यदि वह किसी प्रतिभाशाली व्यक्ति के संपर्क में आता तो उसकी समीक्षा करने से न चूकता। चॉसर से वह अनभिज्ञ था फिर भी जो कुछ उसने चॉसर के संबंध में लिखा उसे बहुत कम लोग लिख सके। इसी प्रकार शेक्सपियर, फ्लेचर और जॉनसन संबंधी उसके द्वारा निरूपित विचार सदोष थे, लेकिन जो कुछ उसकी लेखनी से लिखा गया वह आज सर्वोत्कृष्ट माना जाता है। सेमुअल जॉनसन के शब्दों में उसकी समीक्षा 'प्राय एक कवि की समीक्षा है जो सिद्धांतों का न तो नीरस संग्रह है और न दोषों का रूक्ष निदर्शन अपितु वह एक प्रसन्न और ओजस्वी निबंध है जिसमें आनन्द और शिक्षा दोनों का मिश्रण हुआ है।'

❖

अठारहवीं शताब्दी

पाश्चात्य समीक्षा में नया मोड़

सन् १७०० में जॉन ड्राइडन की मृत्यु के बाद पश्चिम के समीक्षाशास्त्र में एक नया मोड़ आया। वैसे तो १७ वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही इंग्लैंड के साहित्यकारों पर फ्रांस का प्रभाव पड़ता रहा लेकिन १७०० के बाद ब्वालो, रापिन और ला बासु (Le Bassu), नामक फ्रांसीसी विद्वानों का प्रभाव विशेष रूप से परिलक्षित हुआ। इस समय कुछ अंग्रेज समीक्षकों ने शास्त्रवाद (क्लासिसिज्म) का पांडित्य-पूर्ण अध्ययन किया जिससे होरेस, क्विंटोलियन और अरिस्टोटल आदि प्राचीन समीक्षकों की मान्यता को प्रश्रय मिला। फ्रांस का नव्यशास्त्रवाद इस समय स्वीकार नहीं किया गया, किन्तु दार्शनिक विचारधारा और तर्क के सहारे प्राचीन नियमों की नवीन व्याख्यायें की गयी। देकार्त, लॉक और ह्यूम (१७११-७६) इत्यादि दार्शनिकों के चिन्तन ने इस युग को एक नयी दिशा प्रदान की। लॉक ने मनोवैज्ञानिक जिज्ञासाओं को उठाया। परिणाम यह हुआ कि बौद्धिक विचारधारा में अभिवृद्धि होने से राजनीति, धर्मविद्या और नैतिकता की बुद्धिसंगत छानबीन की जाने लगी। इस समय किसी मान्य सिद्धान्त का प्रतिपादन करने अथवा किन्हीं विशेष प्रश्नों की चर्चा करने के बजाय सामान्यतया समीक्षा के उद्देश्यों और प्रणालियों की खोज करने पर ही अधिक जोर दिया गया।

लेखकों की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति

अठारहवीं शताब्दी की समीक्षा को समुन्नत बनाने में सामाजिक और बौद्धिक कारणों का भी हाथ रहा। उदाहरण के लिए पहले एडीसन, प्रायर, टिकेल, स्टील आदि साहित्यकार बड़े बड़े सरकारी ओहदों पर काम करते थे, लेकिन जैसे जैसे बुद्धि-जीवी लेखक वर्ग अपने इर्दगिर्द के समाज से प्रभावित हुआ, अपने आश्रयदाताओं की उँगलियों के इशारे पर नाचने से उसने इन्कार कर दिया और अब वह अधिक स्वतन्त्रता और आत्मविश्वासपूर्वक अपने विचारों को अभिव्यक्त करने लगा।

ऑगस्टन युग अथवा पोप युग (१७००-४०) के आरम्भकाल में महारानी एन द्वारा कविता को विशेष प्रश्रय मिला। वैसे देखा जाय तो यह युग गद्य के ही विकास का युग था जिसे पत्रकारिता से विशेष बल मिला। इस काल के साहित्यिकों ने काफीगृहों और क्लबों के आलोचकों तथा अभिजात-वर्ग और अपनी राजनीतिक पार्टी के लिए लिखना शुरू किया जिससे उनकी रचनाओं की लोकप्रियता बढ़ने

उद्देश्य उसने उपदेशात्मक स्वीकार नहीं किया। कला और सौंदर्य को परस्पर पृथक नहीं किया जा सकता, अतएव जब हम कविता अथवा कला की बात करते हैं तो हमारा लक्ष्य सौंदर्य की ओर ही होना है।

भाषा को पंडिताऊ बनाने के पक्ष में भी वह न था, भाषा का वह परिष्कार करना चाहता था। उत्तरवर्ती लेखकों के लिये पद्यरचना के विविध आदर्श उसने उपस्थित किये। यह उसी का प्रभाव था कि क्लासिक दोहा छंद को अंग्रेजी काव्य में उच्च स्थान प्राप्त हो सका जो अनेक वर्षों तक प्रतिष्ठित रहा। यदि वह किसी प्रतिभाशाली व्यक्ति के संपर्क में आता तो उसकी समीक्षा करने से न चूकता। चॉसर से वह अनभिज्ञ था फिर भी जो कुछ उसने चॉसर के संबंध में लिखा उसे बहुत कम लोग लिख सके। इसी प्रकार शेक्सपियर फ्लेचर और जॉनसन संबंधी उसके द्वारा निरूपित विचार सदोष थे, लेकिन जो कुछ उसकी लेखनी से लिखा गया वह आज सर्वोत्कृष्ट माना जाता है। सेमुअल जॉनसन के शब्दों में उसकी समीक्षा प्रायः एक कवि की समीक्षा है जो सिद्धांतों का न तो नीरस संग्रह है और न दोषों का रूक्ष निदर्शन अपितु वह एक प्रसन्न और ओजस्वी निबंध है जिसमें आनंद और शिक्षा दोनों का मिश्रण हुआ है।'

❖

अठारहवीं शताब्दी

पाश्चात्य समीक्षा में नया मोड़

सन् १७०० में जॉन ड्राइडन की मृत्यु के बाद पश्चिम के समीक्षाशास्त्र में एक नया मोड़ आया। वैसे तो १७ वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही इग्लैंड के साहित्यकारों पर फ्रांस का प्रभाव पडता रहा लेकिन १७०० के बाद ब्वालो रापिन और ल बासु (Le Bassu), नामक फ्रांसीसी विद्वानों का प्रभाव विशेष रूप से परिलक्षित हुआ। इस समय कुछ अंग्रेज समीक्षकों ने शास्त्रवाद (क्लासिसिज्म) का पाण्डित्य पूर्ण अध्ययन किया जिससे होरेस, क्विंटालियन और अरिस्टोटल आदि प्राचीन समीक्षकों की मान्यता को प्रश्रय मिला। फ्रांस का नव्यशास्त्रवाद इस समय स्वीकार नहीं किया गया, किन्तु दार्शनिक विचारधारा और तर्क के सहारे प्राचीन नियमों की नवीन व्याख्याएँ की गयीं। देकार्त, लॉक और ह्यूम (१७११–७६) इत्यादि दार्शनिकों के चिन्तन ने इस युग को एक नयी दिशा प्रदान की। लॉक ने मनोवैज्ञानिक जिज्ञासाओं को उठाया। परिणाम यह हुआ कि बौद्धिक विचारधारा में अभिवृद्धि होने से राजनीति, धर्मविद्या और नैतिकता की बुद्धिसगत छानबीन की जाने लगी। इस समय किसी मान्य सिद्धान्त का प्रतिपादन करने अथवा किन्हीं विशेष प्रश्नों की चर्चा करने के बजाय सामान्यतया समीक्षा के उद्देश्यों और प्रणालियों की खोज करने पर ही अधिक जोर दिया गया।

लेखकों की स्वतंत्र अभिव्यक्ति

अठारहवीं शताब्दी की समीक्षा को समुन्नत बनाने में सामाजिक और बौद्धिक कारणों का भी हाथ रहा। उदाहरण के लिए पहले एडीसन, प्रायर, टिकेल, स्टील आदि साहित्यकार बडे बडे सरकारी ओहदों पर काम करते थे लेकिन जैसे जैसे बुद्धिजीवी लेखक वर्ग अपने इर्दगिर्द के समाज से प्रभावित हुआ, अपने आश्रयदाताओं की उँगलियों के इशारे पर नाचने से उसने इन्कार कर दिया और अब वह अधिक स्वतन्त्रता और आत्मविश्वासपूर्वक अपने विचारों को अभिव्यक्त करने लगा।

ऑगस्टन युग अथवा पोप युग (१७०० ४०) के आरम्भकाल में महारानी एन द्वारा कविता को विशेष प्रश्रय मिला। वैसे देखा जाय तो यह युग गद्य का ही विकास का युग था जिसे पत्रकारिता से विशेष बल मिला। इस काल के साहित्यिकों ने काफीगृहों और क्लबों के आलोचकों तथा अभिजात वर्ग और अपनी राजनीतिक पार्टी के लिए लिखना शुरू किया जिससे उनकी रचनाओं की लोकप्रियता बढ़ने

लगी। यूरोप और इंग्लैण्ड में अनेक समाचार पत्रों का प्रकाशन हुआ जिनमें सामाजिक और राजनीतिक विषयों की चर्चा हुई, जिसका परिणाम पाश्चात्य समीक्षा पर पड़ा जिससे कि उसमें विविधता आती गयी और अब वह पुस्तकों की भूमिकाओं के रूप में लिखी जाकर अपना स्वतंत्र स्थान बनाने लगी।

सामाजिक दशा

अठारहवीं शताब्दी के प्रथमार्ध में सामाजिक दृष्टि से इंग्लैंड एक बहुत पिछड़ा हुआ देश था। लंदन में आने जाने की सड़कें दुर्गम और खतरनाक थीं। राहगीरों को हमेशा चोर डाकुओं का भय बना रहता था। सर रोजर ड कवरले जब कोई नाटक देखने जाते, तो गुंडों से उनकी रक्षा करने के लिए उनके नौकर चाकर भी साथ चलते थे।[1] इसके अलावा, तत्कालीन कवियों या राजनीतिज्ञों के साहित्यकार, आलोचकों को हमेशा जान का खतरा बना रहता था। एलेक्जेंडर पोप के व्यंग्य बाणों ने तो ऐसी भयावह परिस्थिति उत्पन्न कर दी थी कि अपने विरोधियों से रक्षा के लिये उन्हें पिस्तौल साथ में रखकर चलना पड़ता था। कुमारी कन्याओं की शादी उनके माता पिता की मर्जी से होती थी और माता पिता को जिस व्यक्ति से अधिक धन-सम्पत्ति मिलने की उम्मीद होती, उसी से वे अपनी कन्या का विवाह करते थे—चाहे वह वृद्ध ही क्या न हो। कन्याओं का अपहरण साधारण सी बात थी। स्त्रियों की दशा दयनीय थी, वे पुरुषों के आमोद प्रमोद का साधन मात्र समझी जाती थीं।[2] राज्य के उच्च कर्मचारियों और सभ्य कहे जानेवाले नागरिकों में मदिरा पान का रिवाज था। स्टुअर्ट मिल के शब्दों में, यह युग जघन्य अपराधों का युग था, जिसमें कठोर दण्ड दिये जाते और निर्दय क्रीडाएँ की जाती थीं, सरकारी महकमों में राजनीतिक भ्रष्टाचार का बोलबाला था—जीवन के परिष्कार और सौंदर्य के चिह्न इस युग में दिखायी नहीं पड़ते थे।[3]

१—देखिए, जोजेफ एडीसन का 'स्पैक्टेटर' में प्रकाशित 'सर रोजर ड कवरले' (सर रोजर एँट द प्ले) नामक निबन्ध, जान रिचर्ड ग्रीन, एसेज आफ जोजेफ एडीसन, पृ० ३७, लंदन १९३४।

२—विक्टर ह्यूगो ने लिखा है 'पत्नी अपने पति को बाहर निकालकर अन्दर से सकल कुंडा लगा लेती है। वह एडन में शैतान के साथ अपने आपको बन्द कर लेती है और आदमी बाहर खड़ा मुँह ताकता रहता है।'—जॉन डेनिस, एज आफ पोप पृ० १७।

३—वही पृ० १०-२२। लार्ड चेस्टरफील्ड ने एक शरीफ आदमी का लक्षण बताते हुए कहा है, "शरीफ आदमी एक कामचलाऊ सूट पहनकर, तलवार लटकाकर तथा

इन्हीं सब परिस्थितियों में उन दिनों साहित्य में नैतिकता को विशेष स्थान मिला था और लोग अंग्रेजी समाज के तमाम ढाँचे में सुधार की आवश्यकता का अनुभव कर रहे थे। जिन नैतिक उपदेशों को पढ़कर आज हम नाक भौं सिकोड़ने लगते हैं, अठारहवीं शताब्दी के साहित्य के वे एक प्रमुख अंग बन गये थे। इन सब बातों का प्रभाव तत्कालीन समीक्षा-पद्धति पर पड़ना स्वाभाविक था। इससे समीक्षा के स्वस्थ सिद्धान्तों की स्थापना हुई और उस ओर समीक्षकों का ध्यान आकर्षित हुआ। नव्यशास्त्रवाद की परम्परा के लिए निश्चय ही यह एक चुनौती थी।

जेबी घड़ी और सुँघनी की डिबिया जेब में रखकर चलता है। वह अपने आपको शरीफ कहता है और सारी शक्ति से कसम खाता है कि उसके साथ शराफत का बर्ताव किया जाए, तथा वह उस आदमी का गला काट डालेगा जो उसके साथ ऐसा बर्ताव न करेगा।"

लगी। यूरोप और इग्लैण्ड म अनक समाचार पत्रो का प्रकाशन हुआ जिनमे सामाजिक और राजनीतिक विषया को चर्चा हुई, जिसका परिणाम पाश्चात्य समीक्षा पर पडा जिससे कि उसमे विविधता आती गयी और अब वह पुस्तको की भूमिकाओ के रूप म लिखी जाकर अपना स्वतत्र स्थान बनाने लगा।

सामाजिक दशा

अठारहवी शताब्दी के प्रथमाध में सामाजिक दृष्टि मे इग्लैंड एक बहुत पिछडा हुआ दश था। लदन मे आने जाने की सडक दुगम और खतरनाक थी। राहगीरा का हमेशा चोर डाकुओ का भय बना रहता था। सर रोजर ड कवरले जब कोई नाटक देखने जाते तो गुडो से उनकी रक्षा करने के लिए उनके नौकर चाकर भी साथ चलते थ।[1] इसके अलावा, तत्कालीन कवियो या राजनीतिज्ञो के साहित्यकार, आलोचको को हमेशा जान का खतरा बना रहता था। एलेक्जेंडर पोप के व्यग्य-बाणो न तो ऐसी भयानक परिस्थिति उत्पन्न कर दी थी कि अपने विरोधिया स रक्षा क लिये उन्हे पिस्तौल साथ म रखकर चलना पडता था। कुमारी कन्याओं का शादी उनके माता पिता की मर्जी से होती थी और माता पिता को जिस व्यक्ति से अधिक धन-सम्पत्ति मिलने का उम्मीद होती, उसी से वे अपनी कन्या का विवाह करते थे—चाहे वह वृद्ध ही क्या न हो। कन्याओ का अपहरण साधारण सी बात था। स्त्रियो की दशा दयनीय थी, वे पुरुषो के आमोद प्रमोद का साधन मात्र समझी जाती थीं।[2] राज्य के उच्च कमचारियो और सभ्य कहे जानेवाले नागरिको में मदिरा पान का रिवाज था। स्टुअर्ट मिल क शब्दों में, यह युग जघन्य अपराधों का युग था, जिसमें कठोर दण्ड दिये जाते और निदय क्रीडाएँ की जाती थी, सरकारी महकमो में राजनीतिक भ्रष्टाचार का बोलबाला था—जीवन के परिष्कार और सौंदय के चिह्न इस युग मे दिखायी नही पडते थ।[3]

१—देखिए, जोजेफ एडीसन का 'स्पेक्टेटर' मे प्रकाशित 'सर रोजर ड कवरले' (सर रोजर एँट द प्ले) नामक निबध, जान रिचड ग्रीन, एसेज आफ जोजेफ एडीसन, पृ० ३७, लदन १९३४।

२—विक्टर ह्यूगो ने लिखा है 'पत्नी अपने पति को बाहर निकालकर अन्दर से सख्त कुडा लगा लेती है। वह एडन मे शैतान के साथ अपने आपको बन्द कर लेती है और आदमी बाहर खडा मुँह ताकता रहता है।'—जोन डेनिस, एज आफ पोप पृ० १७।

३—वही पृ० १० २२। लार्ड चेस्टरफील्ड ने एक शरीफ आदमी का लक्षण बताते हुए कहा है, "शरीफ आदमी एक कामचलाऊ सूट पहनकर, तलवार लटकाकर तथा

इन्हीं सब परिस्थितियों में उन दिनों साहित्य में नैतिकता को विशेष स्थान ला था और लोग अंग्रेजी समाज के तमाम ढाँचे में सुधार की आवश्यकता का नुभव कर रहे थे। जिन नैतिक उपदेशों को पढ़कर आज हम नाक भौं सिकोड़ने गते हैं, अठारहवीं शताब्दी के साहित्य में वे एक प्रमुख अंग बन गये थे। इन सब तों का प्रभाव तत्कालीन समीक्षा-पद्धति पर पड़ना स्वाभाविक था। इससे समीक्षा स्वस्थ सिद्धान्तों की स्थापना हुई और उस ओर समीक्षकों का ध्यान आकर्षित या। नव्यशास्त्रवाद की परम्परा के लिए निश्चय ही यह एक चुनौती थी।

जेबी घड़ी और सुँघनी की डिबिया जेब में रखकर चलता है। वह अपने आपको शरीफ कहता है और सारी शक्ति से कसम खाता है कि उसके साथ शराफत का बर्ताव किया जाय, तथा वह उस आदमी का गला काट डालेगा जो उसके साथ ऐसा बर्ताव न करेगा।"

ब्वालो (१६३६–१७११)

ब्वालो का उल्लेख किया जा चुका है। पाश्चात्य समीक्षा में नव्यशास्त्रवाद का प्रवर्तक ब्वालो ड्राइडन का समकालीन था। दोनों साहित्य के सच्चे उपासक और सशक्त व्यंग्य लेखक थे तथा काव्यरचना में दोनों ही साहित्यिक नियमों का पालन आवश्यक मानते थे। सन् १६७३ में ब्वालो की 'ल आर्त पोएतिक' (काव्य कला) प्रकाशित हुई जिसने पाश्चात्य समीक्षा को विशेष रूप से प्रभावित किया। ब्वालो का यह कृति होरेस की 'ल आर्स पोएतिक' के सिद्धान्तों पर आधारित थी। यह चार अध्यायों में है। पहले अध्याय में काव्य कला के सामान्य सिद्धान्तों का विवेचन है जिन्हें फ्रेंच लेखकों के आलोचनात्मक मतों के उद्धरणपूर्वक समझाया गया है। दूसरे अध्याय में ग्रामकाव्य शोकगीत (एलेजी), चतुष्पदी (सॉनेट) तथा गीतिकाव्य और व्यंग्य के विविध रूपों का वर्णन है। तीसरे अध्याय में नाटयकाव्य और महाकाव्य का प्रतिपादन किया गया है। चौथे अध्याय में पुनः सामान्य सिद्धान्तों के प्रतिपादनपूर्वक समकालीन लेखकों को अपनी कला की प्रतिष्ठा के प्रति आदर भाव व्यक्त करने का अनुरोध किया है।

लेखकों का शिक्षक

डेमोजिओट (Demogeot) ने ब्वालो के सम्बन्ध में लिखा है, 'वह अपनी शताब्दी का शिक्षक था, और अपनी शताब्दी में उसने जनता की अपेक्षा लेखकों को अधिक शिक्षा दी है।" सुप्रसिद्ध आधुनिक फ्रेंच आलोचक सन्त ब्यव ने कहा है, 'जब से मैंने आलोचना के क्षेत्र में प्रवेश किया, ब्वालो एक ऐसे व्यक्ति थे जिनके साथ मेरा सबसे अधिक काम पड़ा और जिनके विचारों के साथ मैं अनवरत रहा।'

पाश्चात्य समीक्षा पर प्रभाव

फ्रांस की भाँति इंग्लैंड में भी ब्वालो की रचनाओं का प्रभाव पड़ा। एलेक्जेंडर पोप के 'ऐसे ऑन क्रिटिसिज्म' पर ब्वालो की 'काव्य कला' का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। सन १६७६ से लेकर अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक समीक्षाशास्त्र पर जो पुस्तकें लिखी गयीं, वे भी इस रचना के प्रभाव से अछूती न रह सकीं।[1]

प्राचीनों का मार्गदर्शन

ब्वालो ने प्राचीनों को अपना मार्गदर्शक स्वीकार करते हुए आधुनिकों के लिये उनका अनुकरण आवश्यक बताया, उनकी पुरातनता के कारण नहीं, बल्कि इसलिए

१—जॉन चरटन कॉलिंस पोप्स ऐसे आन क्रिटिसिज्म, भूमिका, पृ० २६–३०, लंदन, १८६६।

कि वे प्रकृति अथवा बुद्धि के आदेशो को मानते हैं। उनका अन्धानुकरण न करते हुए ब्वालो ने उनके सिद्धान्तों को अपना बौद्धिक आधार बनाया। महाकाव्य, नाटक, ग्रामकाव्य, लोकगीत और लघुगीत की रचना करने का अब एक ही निर्दिष्ट मार्ग शेष रह गया। लांजाइनस की 'ऑन द सब्लाइम' (काव्य में उदात्त तत्त्व) का उसने फ्रेंच भाषा मे अनुवाद किया। सत्य और सुन्दर को उसने अन्योन्याश्रित माना। उसके मत में जो सत्य नही, वह सुन्दर नही और जो प्रकृति मे विद्यमान नहीं, उसे सत्य नही कहा जा सकता। शैली की मृदुता का प्रतिपादन करते हुए उसने भाषा के प्रति सावधानी बरतने पर जोर दिया।

स्कॉट जेम्स के कथनानुसार साहित्य इस युग मे कायदे कानूनो तक सीमित हो गया था तथा साहित्य के नियमो की व्याख्या, 'जन्मजात निर्णायक' ही कर सकते थे। उसीके शब्दों में, "ब्वालो साहित्य की नीरस अस्थियो के बीच निवास करता था—काय सलग्न बुद्धिजीवियो के बीच, जो तुच्छ वस्तुओ को भी अत्यत महत्त्वपूर्ण मानकर चलते थे।"[1] अवश्य ही इससे साहित्य संहिता के नियमों को कठोरता से पालने के कारण काव्य में यान्त्रिकता आ गई थी, जसे कोई सनिक कूच करते समय कदम से कदम मिला कर चलता हो।

जॉन डेनिस (१६५७-१७३४)

समीक्षा का स्तर

समीक्षा का स्तर उन दिनो बहुत ऊँचा नही उठ पाया था। इसलिये सामान्य विषयो को लेकर आलोचना प्रत्यालोचना होने लगती थी। डेनिस के 'ऐपिअस एण्ड वरजीनिया' नामक नाटक को एलेक्जेंडर पोप ने इसलिए नही सराहा, क्योकि डेनिस ने उसके 'पेस्टोरलस' की प्रशसा नहीं की थी। प्रत्युत्तर मे डेनिस ने भी पोप को कामुकतापूर्ण गडरिया के गवारू गीतो का लेखक बताकर उसका मजाक उडाया। डेनिस एडीसन राइमर, ब्लैकमोर और कोलिअर आदि लेखको की मान्यताओं की आलोचना करने से भी न चूका।[2]

डेनिस की रचनाएँ

आगे चलकर सन् १७०१ मे डेनिस ने 'एडवासमट एण्ड रिफार्मेशन आफ माडन पोएट्री (आधुनिक कविता की प्रगति और सुधार)'[3] पुस्तक लिखी। उसके

१—द मेकिंग आफ लिटरेचर पृ० १२९ १३५

२—एटकिंस वही, प० १४९।

३—इस रचना के ४–६ अध्याय 'द वर्ल्ड क्लासिक्स' के अन्तगत इंग्लिश क्रिटिकल

बाद १७०२ म लाज मकाउण्ट प्राफ टेस्ट इन पोएट्री' (कविता के रस का व्यापक विवेचन) और १७०३ म ग्राउण्डस इन क्रिटिसिज्म इन पोएट्री' (कविता मे आलोचना के आधार) की रचना की।

आवेगयुक्त कविता की आवश्यक्ता

डेनिस न धार्मिक 'उत्साह' से पूरा आवेगयुक्त कविता की आवश्यक्ता पर जोर दिया है। कविता को उसने प्रकृति की अनुकृति कहा है जो भावावेग से पूर्ण लययुक्त वाणा द्वारा अभिव्यक्त का जानी है। डेनिस का कथन है कि कला होने के कारण कविता प्रकृति का अनुकरण है, और जिस साधन के द्वारा वह प्रकृति का अनुकरण करती है, वह साधन है भाषा। यह भाषा सगीतात्मक होनी चाहिए, क्योंकि तभी यह गद्य से भिन्न कही जा सकती है। काव्य की भाषा में भावावेग का होना, लय अथवा सगति की अपेक्षा अधिक आवश्यक है, क्योंकि सगति अथवा लय तो कविता को केवल गद्य से ही भिन्न करती है किन्तु भावावेग कविता का अपना स्वभाव है।[1] जैसे कोई चित्रकार भावावेग के विना चित्र नही बना सकता, वैसे ही कवि भी भावावेग के विना कविता का सृजन नही कर सकता।[2]

सामान्य और उत्तेजित भावावेग

डेनिस ने भावावेग को सामान्य भावावेग से पृथक करते हुए उसे उत्साह की सज्ञा दी है। दोनों में यही अन्तर है कि प्रशसा, भय और प्रसन्नता आदि सामान्य भावावेग का जो कोई अनुभव करता है, वह उसका कारण समझता है, जब कि उत्साह में उसका कारण स्पष्ट समझ म नही आता।[3] सामान्य भावावेग का हम वास्तविक जावन में अनुभव करते हैं जब कि उत्साह' अथवा उत्तेजित भावावेग 'चिन्तन का भावना' से पैदा होता है, जैसे सूय को केवल चमकता हुआ गोला न कहकर 'देवता की प्रतिमा' कहना।[4] जैसे आत्मा शरीर का प्राण है वैसे ही भावावेग कविता का प्राण है। दूसरे शब्दों में काव्यशैली में जिससे आनन्द प्राप्त होता हो, और जो पाठक का आन्दोलित करता हो, उस भावावेग अथवा उत्साह समझना चाहिए।[5]

ऐतेव (१६ १७ और १८ वां सेंचुरीज), एडमड डी गोस्स, पृ० २०१–२०७ पर प्रकाशित हैं।

१—डेनिस, एडवांसमेंट एण्ड रिफार्मेशन आफ माडन पोएट्री पृ० २०२।

२—वही पृ० २०३।

३—वही पृ० २०३ २०४।

४—एर्नेस्ट वही, पृ० १५१-५२।

५—डेनिस, एडवांसमेंट एंड रिफार्मेशन आफ मॉडन पोएट्री, पृ० २०४।

कविता में धार्मिक विषय

भावावेग लौकिक विषयों की अपेक्षा धार्मिक विषयों से अधिक ग्राह्य है।[१] अतएव निश्चय ही कविता का उद्देश्य धार्मिक और नैतिक है। डेनिस की मान्यता है कि धार्मिक कविता मे ही ऐसे उच्च विचार व्यक्त किये जा सकते हैं जो मनुष्य के हृदय में उदात्त भावों को अनुप्राणित कर सकें। "धर्म में जो महान् है, वह अत्यन्त उच्च और विस्मयकारी है, जो आनन्ददायी है वह मन को हर्षातिरेक से भर देता है, जो शोककर है वह निराशाजनक है और जो भयानक है वह आश्चर्यमुग्ध कर देता है।[२] कविता यहाँ धर्मक्रिया के अंश के रूप में हमारे समक्ष आती है जिससे मध्य-युगीन प्रवृत्ति ही लक्षित होती है।

कविता में प्रेरणा तत्त्व

कविता हृदय को अनुप्राणित करनेवाली है, इसलिए डेनिस ने कविता मे कवि के अपने दृष्टिकोण, आत्मप्रशंसा तथा उसके वाग्वैदग्ध्य के लिए कोई स्थान स्वीकार नहीं किया। डेनिस की इस मान्यता पर केवल लांजाइनस का ही प्रभाव नही, बल्कि कविता में भावावेग का मुख्य माननेवाले फ्रेंच आलोचकों का प्रभाव भी परिलक्षित होता है।[३]

जहाँ तक महाकाव्य ट्रेजेडी तथा लघु गीत (ओड) का सम्बन्ध है, डेनिस ने अर्वाचीनो की अपेक्षा प्राचीनों को ही महान् बताया है।[४]

काव्यसृजन के नियम

नव्यशास्त्रवादियों की भांति डेनिस ने भी काव्यसृजन के नियमों को स्वीकार किया है। उसका कहना है कि जो बौद्धिक व्यवस्था और संगति सारे विश्व पर शासन करती है, उसे सुरक्षित रखने के लिए नियमों का होना आवश्यक है। आगे चलकर वह शंका करता है कि प्रकृति में भी कतिपय अनियमितताएँ देखने मे आती हैं। इसका उत्तर है कि वे सम्पूर्ण का संगति रखने में ही सहायता करती हैं, और यही बात कविता के सम्बन्ध में भी समझनी चाहिए। अपने इस कथन को डेनिस ने मिल्टन के 'पैरेडाइस लॉस्ट' का उदाहरण देकर स्पष्ट किया है जो 'अपने नये विचार, नये बिम्ब और अपने मौलिक भावों के कारण होमर और वर्जिल को

१—वही, पृ० २०४ २०५
२—वही पृ० २०७
३—एटकिन्स, वही पृ० १५१
४—डेनिस वही पृ० २०१

रचनाओं से भिन्न है।"[1] कहने की आवश्यकता नहीं कि डेनिस मिल्टन की उक्त रचना का उग्र प्रशंसक और अतुकान्त कविता का समर्थक था। बुरे कवियों को उसने केवल दोषपूर्ण कलाकार ही नहीं, दुष्ट भी कहा है।

काव्य-न्याय

डेनिस ने काव्य-न्याय को दुखान्त नाटक और महाकाव्य के लिए आवश्यक स्वीकार किया है, क्योंकि उसके अनुसार, दुखान्त नाटक में बिना करुणा और भय के तथा महाकाव्य में *बिना स्तुतिगान के उनमें उल्लिखित कथा-कहानियाँ* और नैतिक शिक्षा कार्यकारी नहीं हो सकती।[2]

डेनिस का योगदान

डेनिस की गिनती यद्यपि पश्चिम के महान् समीक्षकों में नहीं की जाती, लेकिन उसके सिद्धान्तों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। मिल्टन के मूल्यांकन की भाँति 'एसे, ऑन द जीनियस ऐंण्ड राईटिंग्स ऑफ शेक्सपियर' (१७११) में उसने शेक्सपियर का भी मूल्यांकन किया है।

जोसेफ एडीसन (१६७२–१७१६)

साहित्य की लोकप्रियता

एडीसन ने लिखा है, "सुकरात के विषय में कहा जाता है कि उसने दर्शन को स्वर्ग से उतार कर भूमण्डल पर ला रक्खा। इसी तरह मैं चाहूँगा कि लोग कहें कि मैं भी दर्शन को राजघरानों, लाइब्रेरियों, स्कूल और कालेजों से हटाकर क्लबों, सभागृहों, चाय की मेजों और काफीगृहों में ले आया हूँ।" इन स्थानों में सब तरह के नागरिक व्यापारी और ग्रामीण भद्रपुरुष एकत्र होते और खुलकर मन की बातें करते। इससे उनके शिष्टाचार और उनकी प्रवृत्तियों का पता लगता था। इन लोगों की ओर लेखकों और सुधारकों का ध्यान आकर्षित हुआ और इनके लिये साहित्य का निर्माण होने लगा। एडीसन ने 'टैटलर' (१७०९-१०), 'स्पक्टेटर' (१७११-१२), 'गार्जियन' (१७१३), 'स्पक्टेटर' (१७१४, फिर से), और 'फ्री होल्डर' (१७१५) नामक समाचारपत्रों के माध्यम से जो अंग्रेजी-साहित्य को लोकप्रिय बनाया, वह सदा स्मरणीय रहेगा। इनमें 'स्पॅक्टेटर' सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। यहाँ सच्ची और झूठी वाग्विदग्धता, ट्रेजेडी, मिल्टन की समीक्षा तथा *कल्पना का आनन्द*—

१—एटकिंस, वही पृ० १५२

२—वही, १५३

इन विषयों पर चर्चा की गई है। कहा जा चुका है कि अठारहवीं शती के प्रथमार्ध में सामाजिक और नैतिक दृष्टि से इंग्लैंड की दशा बहुत पिछड़ी हुई थी। इसी परिस्थिति को ध्यान में रखकर एडीसन को जोर देकर लिखना पड़ा, "मेरे इन विचारों का महान् उद्देश्य है ग्रेट ब्रिटेन से दुराचार और अज्ञानता का भगा देना।"

जीवन को संयत और परिष्कृत बनाना

अब तक संक्षेप में, केवल दो चार पन्नों में ही साहित्य सम्बन्धी चर्चा हो जाया करती थी, लेकिन अब इस चर्चा ने छोटी-मोटी पुस्तिकाओं और निबन्धों का रूप धारण किया। पहले इस चर्चा के लिए बड़ी बड़ी दलीलों और भारी भरकम वाक्यों का प्रयोग किया जाता लेकिन अब संक्षिप्त शब्दावली और बोलचाल की भाषा प्रयोग की जाने लगी। लेखक का उद्देश्य शिक्षा देना हो गया था, लेकिन यह शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जो रुचिकर हो और ज्ञात उपायों द्वारा दी जा सके। एडीसन ने समाज के दुर्गुणों को तत्काल उपहासास्पद रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जिसके लिए व्यंग्य और हास्य का आश्रय लिया गया। मतलब यह कि सामाजिक जीवन को संयत और परिष्कृत बनाने का अधिक से अधिक प्रयत्न किया गया। फलतः विषयवस्तु के साथ साथ साहित्य की विधा में भी परिवर्तन दिखायी देने लगा।[१]

आलोचना के पुरातन मानदण्डों की समीक्षा

एडीसन के निबन्धों के अध्ययन से पता लगता है कि उसने साहित्य को मानव संस्कृति का साधन बनाकर जीवन के पुरातन मूल्यों में परिवर्तन करने का प्रयत्न किया। उसने आलोचना के मानदण्डों और पद्धतियों की समीक्षा करते हुए परम्परागत मान्यताओं पर आक्रमण किया। 'टैटलर' में उसने लिखा है, "आजकल वही आलोचक माना जाता है जो किसी लेखक के भाव अथवा अभिप्राय को समझे बिना, यांत्रिक औजारों की भांति, कतिपय सामान्य नियमों का प्रयोग कर देता है। वह एकता स्वाभाविक, भाव, और मनोभाव आदि शब्दावली के प्रयोग में कुशल होता है। रापिन और ल बासु आदि की कृतियों के आधार से वह अपना निर्णय देता है और जब तक उसके पास किसी फ्रेंच लेखक का प्रमाण न हो, वह किसी की भी प्रशंसा नहीं करता।"[२]

रुचि के अनुरूप कला का महत्त्व

दर असल नव्यशास्त्रवाद के अन्तर्गत काव्यसृजन में जिन यांत्रिक नियमों को मान्य किया गया था, एडीसन ने उन्हें स्वीकार नहीं किया। अपने कथन के समर्थन

१—जान रिचर्ड ग्रीन, एसेज़ ऑफ जोसेफ एडीसन, भूमिका

२—एटकिन्स वही, पृ० १५६

में उसने शेक्सपियर के नाटकों का उदाहरण दिया जिनमें रंगमंच के एक भी नियम का पालन नहीं किया गया, फिर भी लोग उन्हें पढ़ने के लिए उत्सुक रहते हैं, तथा आधुनिक आलोचकों द्वारा लिखे हुए नाटकों में एक भी नियम का भंग नहीं किया गया, फिर भी कितने लोग उन्हें पढ़ना चाहते हैं ? स्पष्ट है कि एडीसन ने काव्य-सौंदय के लिए किसी साहित्य-संहिता पर जोर न देकर साहित्य के प्रति पाठकों की सुरुचि को महत्त्व दिया। उसी के शब्दों में, "अपनी रुचि को हमें कला के अनुरूप नहीं बनाना चाहिए बल्कि हमारी रुचि के अनुरूप कला होनी चाहिए।"[1]

साहित्य सम्बन्धी निर्णय

एडीसन का मत है कि केवल फ्रेंच लेखकों के थोड़े बहुत सामान्य नियमों के आधार पर हम अच्छे बुरे साहित्य का निर्णय नहीं दे सकते, इसके लिए तो किसी उत्तम कृति के अन्तस्तल में प्रवेश करके उसके भाव को हृदयंगम करना होगा, तथा उसका अध्ययन करके मन में जो आनन्द पैदा हो, उसके स्रोतों को दिखाना होगा, तभी हमारा निर्णय सही माना जा सकता है। एडीसन अरिस्टोटल लांजाइनस, फ्रेंच आलोचक और ड्राइडन के सिद्धान्तों का उपयोग करता है, लेकिन वहीं तक जहाँ तक कि वे उसके अनुकूल हैं। देखा जाय तो अपने सामान्य पाठकों को कविता के कलात्मक गुणों से परिचित कराना ही उसका उद्देश्य है। इन कलात्मक गुणों का परिचय किस प्रकार होता है ? कहा जा चुका है कि साहित्य संहिता के नियम इसमें उपयोगी नहीं होते। इसका निर्णय तो तभी हो सकता है जब कि किसी सरस रचना के असली अभिप्राय को ठीक ठीक समझ कर हमारा मस्तिष्क ऊपर उठकर वीर और उदात्त भावों से अनुप्राणित हो।[2]

उसका कथन है कि समीक्षा-कला के ऊपर बहुत कम प्रमाणिक पुस्तकें हैं, अतएव समीक्षा सजनात्मक कला पर निर्भर न रहकर पठन पाठन पर ही अधिक निर्भर करती है। एडीसन के अनुसार, कोई भी समीक्षक आरंभ में गलतियाँ करने के बाद ही समय समीक्षक बन पाता है। समीक्षक को यहाँ 'चाय का आस्वादन-कर्ता' (tea taster) के समान बताया गया है।[3]

रुचि और वाग्वैदग्ध्य

एडीसन ने रुचि, वाग्वैदग्ध्य और कल्पना शब्दों की व्याख्या की है। इन शब्दों का प्रयोग उन दिनों बड़ा अनिश्चित था। रुचि को उसने आत्मा का एक गुण माना

१—वही, पृ० १५७

२—एटकिंस वही, पृ० १५९-६०, १६३

३—जाज सेण्टसबरी, ए हिस्ट्री ऑफ इगलिश क्रिटिसिज्म, पृ० १७३-७४

है जिससे हम किसी साहित्यिक कृति के गुण और दोषों को भली भांति परख सकते हैं। भावना को आनन्द प्रदान करनेवाले विचारों के सादृश्य और सामंजस्य को वाग्वैदग्ध्य कहा गया है। वस्तुत यह लॉक की परिभाषा है। एडीसन ने इसमें इतना और जोड दिया है कि इस प्रकार आनन्द में चातुर्य और आश्चर्य का भाव होना आवश्यक है।[1]

कल्पनाजन्य आनन्द

एडीसन ने कल्पना के आनन्द को काव्य के आह्लान का रहस्य माना है।[2] दूसरे शब्दों में, काव्य का लक्ष्य है कल्पना को प्रभावित करना। एडीसन के अनुसार, चक्षु इंद्रिय ही एक ऐसी इंद्रिय है जो हमारी कल्पना का विचारों से भर देती है। उसीके शब्दों में, "कल्पना का आनन्द' से मेरा अभिप्राय है जो दृश्यमान वस्तुओं से उत्पन्न होता है—या तो हम उनका स्वयं साक्षात्कार करते हैं, और या किसी चित्र या मूर्ति को देखकर या कोई वर्णन आदि सुनकर देखे या सुने हुए भाव को मन में लाते हैं।"[3]

इसी आधार पर एडीसन ने कल्पनाजन्य आनन्द के दो भेद स्वीकार किये हैं—वस्तुओं के प्रत्यक्ष दर्शन से उत्पन्न आनन्द जिसे कल्पना की प्रत्यक्ष अनुभूति कह सकते हैं, और देखे हुए चित्र आदि को स्मरण करने से उत्पन्न हुआ आनन्द जिसे कल्पना की परोक्ष अनुभूति कहा जा सकता है। पहले प्रकार का आनन्द प्राथमिक आनन्द है जो महान्, विलक्षण तथा सुन्दर है और जो किसी विशाल पर्वतमाला, विस्मयकारक प्राकृतिक दृश्य अथवा ताजगी पैदा करनेवाले मनोहर रूप को देखकर उत्पन्न होता है। दूसरे प्रकार का आनन्द माध्यमिक आनन्द है जो स्मृति से संयुक्त रहता है। यह आनन्द केवल महान्, विलक्षण और सुन्दर के द्वारा ही अनुप्राणित नहीं रहता, बल्कि उससे भी अनुप्राणित होता है जो कुरूप और अप्रीतिकर है, बशर्ते कि इन वस्तुओं का सही तौर पर आस्थापूर्वक अंकन किया जाय। कला और साहित्य का संबंध एडीसन ने माध्यमिक आनन्द से जोडा है, जो वास्तविक वस्तुओं से उत्पन्न न होकर इन वस्तुओं के कला प्रतीकों से उत्पन्न होता है। ये कला प्रतीक दो प्रकार के बताये गये हैं—दृश्य कला प्रतीक और ध्वनि कला प्रतीक। माध्यमिक आनन्द को यहाँ एक प्रकार की मानसिक क्रिया बताया है जो मौलिक या वास्तविक वस्तुओं से उत्पन्न होनेवाली भावना और उनको मूर्त करनेवाली कलाओं-मूर्ति, चित्र,

---

१—एटकिन्स वही, पृ० १६२ ६३
२—वही, पृ० १६३
३—जार्ज सेंट्सबरी, ए हिस्ट्री आफ इंग्लिश क्रिटिसिज्म, पृ० १७६–७७

काव्य और संगीत से उद्भूत भावना की तुलना करती है। रचनात्मक साहित्य में जहाँ शब्दों द्वारा भावनाओं को मूर्त किया जाता है, कल्पना दुहरा कार्य करती है। सबसे पहले कल्पना कवि मन में सक्रिय होती है। क्योंकि मानव मन प्रत्यक्ष वस्तु में कुछ और पूर्णता चाहता है और वह कभी भी प्रकृति में कोई ऐसा दृश्य नहीं पाता जो उसकी रमणीयता की चरम भावना को तुष्ट कर सके। इसलिये कवि जब वस्तु स्थिति का वर्णन करता है तब उसका कर्त्तव्य हो जाता है कि वह प्रकृति के यथार्थ स्वरूप में परिवर्धन और परिवर्तन लाकर उसे पूर्णता प्रदान करके कल्पना शक्ति को तुष्ट करे। दूसरी बात यह है कि इस प्रकार विरचित रचनात्मक साहित्य में श्रोता या पाठक की कल्पना को प्रभावित करने की विशिष्ट क्षमता होती है।[1]

परियों का साहित्य

इसके सिवाय, परियों, जादूगरनियों और जादूगरों की कहानियाँ सुनकर भी मस्तिष्क में गुप्त उत्तेजना पैदा हो सकती है।[2] इस प्रकार के साहित्य में प्रकृति के स्थान पर कवि ऐसे पात्रों के चरित्र और क्रियाकलाप का वर्णन करता है जो विद्यमान नहीं हैं और जिन्हें समझने के लिए पाठकों को अपनी कल्पना से काम लेना पड़ता है। इस प्रकार के साहित्य को ड्राइडन ने 'फैअरी वे आफ राइटिंग' (परियों सम्बन्धी लिखने का तरीका) कहा है। एडीसन ने इस प्रकार के साहित्य का सृजन कठिन बताया है।[3]

आधुनिक नाटकों की श्रेष्ठता

दुखान्त नाटक को एडीसन ने 'मानव जाति की भव्यतम उपज' स्वीकार किया है क्योंकि यह औदार्य को कोमल बनाने और पीड़ितों को शान्त करने के लिए प्रभावशाली है। 'कैटो' एडीसन का सुप्रसिद्ध नाटक है जिसकी रचना १७१३ में हुई थी। यह नाटक लंदन में काफी लोकप्रिय रहा। फ्रेंच उपन्यासकार वोल्तायर नाटक से अत्यन्त प्रभावित था। उसने इसे एक व्यवस्थित दुखान्त नाटक बताकर एक उत्कृष्ट कृति सिद्ध किया है। 'कैटो' में एडीसन ने दुखान्त नाटक के नायक के गुणों का उल्लेख करते हुए 'अपने दुर्भाग्य से संघर्ष करनेवाला सद्गुणी व्यक्ति' कहा है। एडीसन ने कथा की जटिलता और विन्यास की दृष्टि से यूनान और रोम के प्राचीन

१—वर्सफील्ड, जजमेण्ट इन लिटरेचर, साहित्य का मूल्यांकन (हिन्दी अनुवाद), रामचन्द्र तिवारी पृ० ६६ ६८

२—एटकिन्स, वही, पृ० १६३–६४

३—एडीसन, इंग्लिश क्रिटिकल एसेज (१६, १७ और १८ वीं सेन्चुरीज) फेअरी वे आफ राइटिंग, पृ० २६१

दुखान्त नाटकों की अपेक्षा आधुनिक नाटकों को श्रेष्ठ माना है, आधुनिक नाटकों को उसने केवल नैतिक शिक्षा की दृष्टि से हीन बताया है।[1]

डेनिस के 'काव्य-न्याय' का विरोध

एडीसन का कहना है कि यदि डेनिस के कथनानुसार हमेशा सदाचार की ही विजय होती है तो फिर दुखान्त नाटकों में असमंजस ही पैदा न हो सकेगा जो कि इन नाटकों की जान है। दुखान्त नाटकों का उद्देश्य होना चाहिए करुणा और भय को उत्तेजित करना। सदाचार की विजय मानने से यह कैसे सम्भव होगा? एडीसन ने दुखद अन्त होने के कारण प्राचीन दुखान्त नाटकों को अधिक प्रभावशाली बताया है, ये नाटक यथार्थ जीवन के नजदीक होते हैं।[2]

'पैरेडाइस लॉस्ट' की आलोचना

मिल्टन के 'परेडाइस लास्ट' की एडीसन ने प्रथम बार विस्तृत आलोचना की जो 'स्पक्टेटर' के अंतिम अठारह अंकों में प्रकाशित हुई।[3] इस रचना को न्यायसिद्ध प्रतिपादन करते हुए इस अरस्तू के सिद्धांतों के सर्वथा अनुकूल बताया गया है। इस रचना को ल वासु की भांति एडीसन ने भी अपनी आलोचना को कथानक, चरित्र मनोभाव और अभिव्यक्ति--इन चार भागों में विभक्त किया। कथानक को यहाँ दोषपूर्ण बताया गया है। नव्यशास्त्रवाद के सिद्धांतों को आधार मानकर यह आलोचना की गई थी।

समीक्षाशास्त्र को देन

वसफोल्टने 'प्रिंसिपल्स ऑफ क्रिटिसिज्म' में कहा है कि समीक्षा सिद्धांत में कल्पना का समावेश करने के कारण एडीसन को वही स्थान प्राप्त हुआ है जो समीक्षा शास्त्र में अरिस्टोटल और लाजाइनस का है। लेकिन जॉर्ज सेंटसबरी वसफील्ड के इस मत से सहमत नहीं। उसका कहना है कि एडीसन का यह मौलिक खोज नहीं है। 'क्या एडीसन कल्पना को कविता की कसौटी मानता है?' इस प्रश्न का निषेधात्मक उत्तर देते हुए उसने बताया है कि कल्पना के माध्यम से एडीसन ने सामान्यतया कला पर ही जोर दिया है चाहे वह कला गद्य की हो, चाहे कविता की, चाहे चित्रकला की चाहे शिल्पकला की चाहे स्थापत्यकला की अथवा साहित्य की।

१—एटकिन्स, वही, पृ० १५८।

२—वही

३—एडीसन, इंग्लिश क्रिटिकल एसेज क्रिटिसिज्मस ऑफ पैरेडाइज् लॉस्ट, पृ० २४० ६०

जल्दी खिल जाते हैं और जल्दी ही मुरझा भी जाते हैं। अनुकरणकर्ता लेखक, जो कुछ हमारे पास मौजूद था, उसी की कुछ अच्छी सी प्रतिलिपि तयार करके हमे दे देते हैं। वे केवल पुस्तकों की संख्या मे ही वृद्धि करते हैं, और जो कुछ कीमती है ज्ञान है और प्रतिभा है, वह सामने नहीं आ पाता है। मौलिक लेखक की लेखनी से, जादू की छडी की भाँति बजर पडी हुई जमीन मे से वसन्त ऋतु खिल उठती है जब कि अनुकरणकर्ता लेखक पुष्पमालाओं को दूसरी जगह उठाकर रखता है, और इन्हें उठाकर रखने में ये कितनी ही बार विदेशी भूमि मे पहुंचकर निर्जीव बन जाती हैं।[1] प्रतिभा को यग ने एक चतुर शिल्पी और विद्या को एक उपकरण माना है—ऐसा उपकरण जो बहुत कीमती जरूर है लेकिन अनिवार्य नही है। प्रतिभा बुद्धि से ऐसे ही भिन्न होती है जैसे कोई जादूगर एक अच्छे शिल्पी से, एक अदृश्य उपकरणों द्वारा और दूसरा साधारण उपकरणों के कुशल उपयोग द्वारा अपना कार्य करता है।[2] प्रतिभा की सदाचरण और विद्या की लक्ष्मी से उपमा दी गयी है। जहाँ कम से कम सद्गुण होते हैं, वहाँ अधिक से अधिक लक्ष्मी का वास होता है, तथा जहाँ विद्या होती है, वहाँ कम से कम प्रतिभा रहती है। जैसे, बहुत लक्ष्मी के अभाव में सद्गुणों से हमे सुख प्राप्त होता है, वैसे ही बिना अधिक विद्या के प्रतिभा के कारण मनुष्य यश का भागी होता है।[3]

प्राचीनों का अनुकरण

उन दिनों प्राचीनों और आधुनिकों के सम्बन्ध मे वाद विवाद चल रहा था। कुछ लोग प्राचीनों का अनुकरण करने के पक्षपाती थे, कुछ उसके विरोधी थे। यग ने प्राचीनों के अनुकरण का समर्थन नहीं किया। उसका कहना है कि यदि किसी को प्राचीनों का अनुकरण करना हो तो करे लेकिन यह अनुकरण ठीक ढग से होना चाहिए केवल रचना का अनुकरण न करके, रचनाकार का अनुकरण करना चाहिए। जितना ही कम हम सुविख्यात प्राचीन पंडितों का अनुकरण करेंगे उतना ही अधिक हम उनकी बराबरी कर सकेंगे।'[4]

१—एडवर्ड यग, कजेक्चर्स आन ओरिजनल कम्पोजीशन, पृ० २७३, इंग्लिश क्रिटिकल एसेज (१६,१७ और १८ वीं सेन्चुरीज), एडमण्ड डी० जोन्स, लदन, १९४७

२—वही, पृ० २७९

३—वही, पृ० २८०

४—वही, पृ० २७७

काव्य सृजनोपयोगी यान्त्रिक नियमों का विरोध

नव्यशास्त्रवाद के काव्यसृजनोपयोगी नियमों के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए यंग ने कहा है कि ये नियम स्वाभाविक तथा बिना अध्ययन के उत्पन्न लालित्य विरोधी, तथा कवि की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति मे रुकावट पैदा करनेवाले होते हैं। इन नियमों को लँगड़े की बैसाखी कहा गया है जो लगड़े आदमी को चलने मे सहायक होती है, लेकिन वही बसाखी बलवान आदमी के चलने मे रुकावट पैदा करता है। यंग के कथनानुसार साहित्य सृजन के नियमो का अनुकरण करने के कारण, आधुनिक बुद्धिजीवी लेखकों का लेखनशक्ति मे ह्रास ही हुआ है और इससे प्राचीनों के प्रति केवल हमारा अन्धविश्वास ही सूचित होता है। कविता गद्यजन्य तर्क के बाह्य होती है उसमे रहस्य अन्तर्हित रहता है जिसकी व्याख्या न करके केवल सराहना ही की जा सकती है। ऐसी हालत में यह आधुनिक लेखकों पर निर्भर है कि वे अपने काव्य की स्वतन्त्रता की रक्षा करना चाहते हैं या सरल अनुकरण के सुकुमार बंधनों में बंधे रहना पसन्द करते हैं।[१]

प्राचीनों का महत्त्व

लेकिन इसका यह अभिप्राय नहीं कि यंग प्राचीनों को कोई महत्त्व नहीं देता। उसने लिखा है, "क्या उनका सौंदर्य नक्षत्रों की भाँति हम मार्गदर्शन नहीं करता? क्या हम उनके दोषों को चट्टानों की भाँति नहीं त्याग देते? क्या उनके गुणों का निर्णय मानचित्र की भाँति हमारा सचालन नहीं करता? और क्या उनकी नाव की पतवार हम उनकी अपेक्षा अधिक सुरक्षित मार्ग पर ले जाकर नहीं छोड़ देती है?"[२] यंग को केवल इसी बात की आशंका है कि उनका अनुकरण करने से हम कहीं उनके दास न बन जायँ और उनसे आतंकित न हो उठें। इसलिए वह कहता है 'न तो हम उनकी प्रशंसनीय रचनाओं की उपेक्षा ही करने लगें और न उनकी नकल ही करने में लग जायँ। हमारी बुद्धि उनकी बुद्धि से पोषित हो। वे हमें पुष्टिकारक भोजन देते हैं, लेकिन वे हमें पुष्ट ही करें, नष्ट न कर डालें। जब हम पढ़ते हैं तो हमारी कल्पना उनकी रमणीयता से प्रज्वलित हो उठे, जब हम लिखते हैं तो अपना निष्कर्ष निकालते समय वे हमारे विचारों के बाहर हो खड़े रहें।"[३] आधुनिक लेखकों को सम्बोधन करते हुए उसने कहा है "जब वे कोई रचना करते हैं तो प्राचीनों की आत्मा और सुरुचि का उपयोग करके करनी

१—वही, पृ० २७९–८०, २७९

२—वही, पृ० २७८

३–वही, पृ० २७६-७७

चाहिए, उनकी सामग्री लेकर नहीं।"[1] यंग अनुकरण सम्बन्धी सिद्धान्त में लांजाइनस का ही अनुकरण करता हुआ दिखायी देता है।

यंग की पाश्चात्य समीक्षा को देन

साहित्य सृजन को यांत्रिक नियमों के बंधन से छुड़ाकर यंग प्रतिभा की मुख्यता का प्रतिपादन करता है जिससे कि अनुप्राणित कवि स्वच्छन्द उड़ानें भरने लगे। उसका कहना है कि प्रत्येक युग के साहित्यिकों ने अपना अपना कर्तव्य निबाहा है, तथा आधुनिक कालीन ज्ञान विज्ञान की उन्नति ने मौलिक प्रतिभा के विकास के लिए नया क्षेत्र तैयार कर दिया है। आधुनिक काल के प्रतिभाशाली लेखकों में उसने शेक्सपियर, बेकन मिल्टन और न्यूटन के नामों का उल्लेख किया है। प्राचीनकाल में राजनीतिक और सामाजिक स्वतन्त्रता के समय यूनान और रोम के लेखकों की चर्चा की गई है। यांत्रिक नियमों का उपेक्षा करके उच्च कोटि के साहित्य का अभ्युदय लीक छोड़कर चलने पर ही हो सकता है।[2] वह लिखता है, "जब कि किसी मौलिक कृति की प्रशंसा खूब होनी चाहिए, निश्चय ही वह निन्दा की पात्र होती है।"[3] यंग ने काव्य अनुकरण की परम्परा को तोड़कर काव्य प्रतिभा पर ही जोर दिया है।

रिचार्ड हर्ड (१७२०-१८०८)

हर्ड की रचनाएँ

रिचार्ड हर्ड ने फ्रांस के नव्यशास्त्रवाद के सिद्धान्तों पर डटकर आक्रमण किया। उसकी रचनाओं में 'क्रिटिकल डिसर्टेशन' (समीक्षात्मक निबंध, १७५३ में प्रकाशित), 'मारल एण्ड पॉलिटिकल डायलाग्स (नैतिक और राजनैतिक संवाद, १७५९ में प्रकाशित) 'लटर्स ऑन शिवलरी एँण्ड रोमान्स' (वीरता और प्रेमाख्यान पर पत्र, १७६२ में प्रकाशित),[4] तथा होरेस और एडीसन की रचनाओं की व्याख्याएँ उल्लेखनीय हैं।

१—वही पृ० २७७

२—वही

३—वही पृ० २८०

४—इंगलिश क्रिटिकल एसेज (१६वीं, १७वीं और १८वीं सेंचुरीज), एडमण्ड जोन्स, पृ० ३१२-२५ पर रिचार्ड हर्ड के लैटर्स आन शिवलरी एँड रोमान्स का छठा, सातवां और आठवां पत्र प्रकाशित है।

नव्यशास्त्रवाद का खण्डन

'क्रिटिकल डिसर्टेशन' मे कविता नाटक तथा कविता म अनुकरण की चर्चा करते हुए लेखको के सम्बन्ध म कहा है कि उन्हें नव्यशास्त्रवाद के सिद्धान्तों से चिपके रहने की आवश्यकता नही। हर्ड ने शब्दों के अपप्रयोग को सदोष समीक्षा का स्रोत कहा है। पहले वह नव्यशास्त्रवादी आलोचको द्वारा प्रयुक्त 'प्रकृति' शब्द को लेता है। कवि को 'प्रकृति का अनुकरण' करना चाहिए, यह इन आलोचको की मौलिक मान्यता है, और उनके अनुसार प्रकृति का अर्थ है 'ससार का ज्ञात और अनुभवप्राप्त कार्य कलाप'। लेकिन हर्ड का कहना है कि कवि का ससार तो अपना निज का ससार होता है, जहाँ सगतिपूर्ण कल्पना की अपेक्षा अनुभव का काम ही अधिक पडता है, और जिसमें अलौकिक विश्व का अन्तर्भाव होता है जिससे कि उसके काव्य म सब कुछ विस्मयकारी और असाधारण होकर भी कुछ भी अप्राकृतिक नही होता।

दूसरी बात यह है कि कविता 'प्रकृति का अनुकरण है'—नव्यशास्त्रवादियों का यह सिद्धान्त प्रत्येक कविता के लिए लागू किया जाता है। लेकिन हर्ड का कहना है कि जो कविता मानव और उसके मानोभावों का चित्रण करती है, उस कविता का मानव प्रकृति के नियमों के अनुरूप होना आवश्यक है, जब कि अधिक उदात्त तत्त्वों से युक्त कविता (उदाहरण के लिए महाकाव्य) मे विषय में यह बात नहीं है, क्योंकि इस कविता में कल्पना की ही प्रधानता रहती है। इसका कारण बताते हुए हर्ड ने कहा है कि कविता प्रकृति का अनुकरण है—यह सिद्धान्त वस्तुत नाटक के लिए मान्य किया गया था। नाटक म जो कुछ हम आँखों के सामने देखते हैं, वह सत्य के समान आभासित होना चाहिए, जब कि महाकाव्य के वर्णन म कल्पना की अतिशयता होने से अधिक स्वतन्त्रता की आवश्यकता रहती है।'[1]

हर्ड ने कविता को ही एक ऐसी रचना माना है जिसका उद्देश्य आनन्द प्रदान करना है तथा पद्यबद्ध कविता से ही आनन्द प्राप्त हो सकता है इसलिये उसने कविता म पद्य की आवश्यकता बताई है। कथा अथवा अनुकृति को उसने कविता की आत्मा और शैली को शरीर कहा है।[2]

'गोथिक' अथवा रोमांटिक कविता

हर्ड ने क्लासिकल कविता की अपेक्षा 'गोथिक' या रोमांटिक कविता को विशेष महत्त्व दिया है। स्पेन्सर की उसने इसलिए प्रशंसा की है कि वह पहला लेखक

१—एर्टकिन्स, वही, पृ० २२१

२—ऐटकिन्स, इंग्लिश लिटररी क्रिटिसिज्म, पृ० २६७

था जिसने अपनी रचनाओं को क्लासिकल बंधनों से मुक्त रखा।[1] स्पेंसर और मिल्टन के सम्बन्ध में उसका कहना है कि यद्यपि मूल रूप से उन्हें क्लासिकल परम्परा से ही प्रेरणा प्राप्त हुई थी, फिर भी 'वीरता की गोथिक कहानियों' के सौंदर्य का उन्होंने अनुभव किया। स्पेंसर ने तो जान बूझकर वीरता के युग को चुना जिसमें उसने अपनी रचनाओं में परियों का चित्रण किया। ऐसी हालत में उसकी 'फेयरी क्वीन' नाम की कविता की समीक्षा गोथिक शैली के आधार पर ही होनी चाहिए, न कि क्लासिकल शैली पर। मिल्टन के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि उसने 'गोथिक' शैली की अपेक्षा क्लासिकल शैली को अपनाकर प्राचीन रोमांस के रचनात्मक दोषों का निवारण किया। लेकिन यह उसने काफी हिचकिचाहट के बाद किया। अन्ततोगत्वा वह रोमांटिक शैली की ओर ही आकर्षित हुआ। उसके महाकाव्य में आर्थर और उसके सरदार उसका प्रिय विषय था लेकिन आगे चलकर उसने उनका परित्याग कर दिया, सम्भवतः इसलिए कि शूरवीरता की कहानियाँ व्यंग्य का शिकार होने लगी थीं। फिर भी उसका समस्त कविताओं में वीरतापूर्ण कहानियों के प्रति थोड़ा बहुत पक्षपात दिखायी देता ही है।[2]

हर्ड के अनुसार, कविता को क्लासिकल के रूप में पढ़कर 'गोथिक' या 'रोमांटिक' रूप में पढ़ना चाहिए, और तदनुसार ही उसका निर्णय किया जाना चाहिए, प्राचीनों के सिद्धान्तों के आधार पर नहीं। उदाहरण के लिए, स्पेंसर की 'फेयरी क्वीन' की यदि हम क्लासिकल पद्धति से परीक्षा करें तो उसकी हीनता देखकर हम आश्चर्य में पड़ जायेंगे। लेकिन इसे ही यदि 'गोथिक' पद्धति में जाँचा जाय तो इसमें क्रम मालूम देगा। क्लासिकल शैली में एकता और सादगी अधिक पूर्ण होती है जब कि 'गोथिक' शैली की एकता और सादगी उसकी प्रकृति के अनुकूल होती है। हर्ड का कहना है कि 'गोथिक' या 'रोमांटिक' कविता का विषय और उसका प्रतिपादन दोनों ही का वीरता सम्बन्धी विचारों के साथ आवश्यक रूप से सम्बन्ध रहता है।[3]

हर्ड की देन

पाश्चात्य समीक्षाशास्त्र को समुन्नत बनाने के लिए देखा जाय तो हर्ड की कोई खास देन नहीं है। फिर भी समीक्षा के क्षेत्र में उसकी कितनी ही ऐसी मान्यताएँ हैं जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। उसने नव्यशास्त्रवाद पर प्रहार करते हुए बताया कि रोमांटिक साहित्य की समीक्षा केवल क्लासिकल मानदण्डों के आधार

१—हर्ड, लटर्स ऑन शिवलरी एण्ड रोमांस स्पेंसर एण्ड मिल्टन पृ० ३१६

२—वही पृ० ३१७-१८

३—वही, पृ० ३१६ २०

पर ही नहीं की जानी चाहिए। यद्यपि इसकी चर्चा पूर्वकालीन समीक्षकों ने भी की है, लेकिन इतने विस्तारपूर्वक नहीं। कविता के गद्य और कार्य की एकता के ऊपर उसने जोर दिया। फिर समीक्षाशास्त्र सम्बन्धी शब्दावली जो अब तक अनिश्चित थी, उसने उसे स्पष्ट किया। प्राचीन काल के प्रति रुचि को जागृत कर साहित्य-जगत् में ऐतिहासिक भावना को महत्वपूर्ण बताते हुए उसने प्राचीन साहित्य के सही मूल्यांकन के लिए तत्कालीन परिस्थितियों का अध्ययन आवश्यक माना।

एलैक्जेण्डर पोप (१६८८–१७४४)

अंग्रेजी साहित्य का ब्वालो

पोप युग अंग्रेजी-साहित्य का स्वर्णकाल था। पोप को अंग्रेजी-साहित्य का ब्वालो कहा जाता है, ड्राइडन से वह विशेष रूप से प्रभावित था। १७११ में पोप ने कुल २३ वर्ष की अवस्था में एसे ऑन क्रिटिसिज्म' (आलोचना पर निबन्ध) की छन्दोबद्ध (दोहा-छंद में) रचना की, जिसमें होरेस और ब्वालो के ढंग पर काव्य सिद्धांतों की विवेचना की गयी। यह केवल होरेस, विदा (Vida, १४८० १५६६) ब्वालो शेफील्ड, रोसकामन (Roscommon, १६३३ ८५) और ग्रानविले (Granville, १६६७ ८६) का ही निचोड़ नहीं था बल्कि अरिस्टोटल सिसरो, दियोनिसीयस क्विण्टीलियन और लांजाइनस के गम्भीर अध्ययन का भी परिणाम था।

काव्य-सिद्धान्तों का विवरण-ग्रन्थ

वस्तुत ऐसे ऑन क्रिटिसिज्म' में किसी विषय का क्रमबद्ध व्यवस्थित विवेचन नहीं है, काव्य-समीक्षा के स्फुट विचार यहाँ बड़े आकर्षक ढंग से व्यक्त किये गये हैं। जोसफ एडीसन की भांति पोप का प्रयत्न रहा है सामान्य रूप से समीक्षा की प्रणाली और मानदण्डों को समुन्नत बनाना, यद्यपि उसकी उक्त रचना के अध्ययन से यही प्रतीत होता है कि समीक्षागत दोषों को दूर करने में ही उसकी दिलचस्पी अधिक रही। फिर भी ऐसे ऑन क्रिटिसिज्म' को पोप के काव्य सिद्धान्तों का महत्त्व पूर्ण विवरण ग्रंथ माना जाता है जिसमें नव्यशास्त्रवादी सिद्धान्तों का समर्थन किया गया है।

समीक्षा सम्बन्धी विवरण

पोप का काव्यात्मक निबन्ध तीन भागों में विभक्त है। सर्वप्रथम समीक्षाकला के नियमों का प्रतिपादन है। 'निबन्ध' के प्रारम्भ में कहा गया है कि जैसे सदोष

काव्यरचना एक महान् दोष समझा जाता है वैसे ही सदोष वा यपरीक्षण भी दोष है, एक मे हमारे धैर्य की परीक्षा है, दूसरे मे हम अपनी बुद्धि को भ्रम म डालते हैं।[1] तत्कालीन साहित्यकार काव्य के प्रति सुरुचि पर जोर देते थे, लेकिन पोप का कथन है कि सच्ची प्रतिभा की भांति सच्ची सुरुचि भी किसी विरले ही समीक्षक मे देखी जाती है।[2] हो सकता है कि कुछ समीक्षकों का आविर्भाव सुरुचि को लेकर ही हुआ हो, लेकिन जैसे वेढग रग भरने स कोई चित्र बिगड जाता है, वसे ही नकली ज्ञान से सुरुचि बिगड जाती है।[3] पोप की मान्यता के अनुसार, प्रकृति का अनुकरण करने से ही समीक्षात्मक निर्णय पर पहुँचा जा सकता है और तभी कला की परीक्षा हो सकती है। यह प्रकृति दैवी शक्ति से सम्पन्न है तथा सबको जीवन शक्ति और सौंदय प्रदान करती है।[4] प्राचीन लेखकों द्वारा निर्धारित का यनियमों के अध्ययन पर जोर देते हुए पोप न कहा है कि समीक्षक को प्राचीनो के चरित्र, उनकी कहानी, कहानी का विषय, पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ का प्रयोजन तथा धर्म, देश और युगीन प्रतिभा का ज्ञान आवश्यक है। इसके बिना वितण्डा कोई भले ही कर ले, आलोचना तक नही पहुच सकता। उसने आलोचकों से होमर की कृतियों का अवगाहन करते हुए दिन मे उनका अध्ययन और रात्रि के समय उनके चिन्तन का आदेश दिया है।[5] प्रकृति के अनुकरण करने और होमर के अनुकरण करने को पोप ने एक ही माना है।[6] वह लिखता है 'कविता देवी के अश्व को एड लगाने की अपेक्षा उसका माग निर्देशन करना अधिक अपेक्षित है उसके आवेश पर अकुश लगाना चाहिये, न कि उसके वेग को बढाना। अ य अच्छे घोडो की भांति यह उडन घोडा भी अपनी सच्ची प्रतिभा तभी दिखलाता है जब इसकी चाल को नियत्रित रक्खा जाय। प्राचीन काल मे जिन नियमो की खोज की गई थी, वे कल्पित नियम नही थे—वे अब भी प्रकृति के समान हैं यद्यपि यह प्रकृति का व्यवस्थित रूप है। स्वतन्त्रता की भांति प्रकृति पर भी उन्ही नियमो का बधन रहता है जिन्हे पहले स्वय उसी ने बनाया था। अतएव प्राचीन नियमो का उचित सम्मान करना सीखो, उनका अनुकरण करना ही प्रकृति का अनुकरण करना है।"[7] इन विचारों से नव्यशास्त्रवाद के सिद्धान्तो का समथन ही होता है।

१—ऐन एसे आन क्रिटिसिज्म' १, पक्ति १ ४, जॉन कटम कोलिंस लदन, १८६६

२—वही, १ ११ १२

३—वही, १, २४ २५

४—वही, १, ६८ ७३

५—वही १ ११६ २५

६—वही, १, १३५

७—हडसनन इण्ट्रोडक्शन टु द स्टडी आफ लिटरेचर का हिन्दी अनुवाद पृ० १३१

लेकिन फिर भी पोप को नव्यशास्त्रवाद के सिद्धान्तों का प्रतिनिधि नहीं कहा जा सकता। होमर में वह कवि के चिंतन को 'शुद्धता' अथवा काव्यसृजन के नियमों के अनुकरण पर जोर नहीं देता उसके 'काव्य चमत्कार' और कल्पनावैभव को ही मुख्य ठहराता है।[1] अपने 'निबंध' में उसने स्पष्ट कहा है कि अपने निश्चित मानदण्डों के साथ केवल नियमों का अनुसरण करना ही पर्याप्त नहीं, बल्कि समीक्षा-सम्बन्धी निर्णय तक पहुँचने में कवि के प्रयोजन और उसके वातावरण का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है।[2] प्रत्येक रचना का उसी भावना से अध्ययन करना चाहिए जिस भावना से वह लिखी गयी है—कवि की रचना का आद्योपान्त अध्ययन आवश्यक है केवल इधर उधर से कतिपय अंश पढ़कर दोष निकालना उचित नहीं।[3] इससे भी प्राचीन नियमों के अनुकरण की बात पीछे रह जाती है। इसके अलावा, पोप के अनुसार, काव्य में कितनी ही बार ऐसे माधुर्य का विवेचन मिलता है जिसके लिए काव्यसृजन के नियम कार्यकारी नहीं हो सकते, कोई अत्यन्त कुशल कवि ही इस तरह का विवेचन कर सकता है।[4]

समीक्षकों के गुण दोष

समीक्षात्मक निर्णय पर पहुँचने में बाधक अनेक कारणों का यहाँ उल्लेख है। कितनी ही बार अहंकार के वशीभूत होकर हम उचित निर्णय देने में असमर्थ रहते हैं।[5] पोप का कहना है कि समीक्षक को निष्पक्ष रहना चाहिए और इसके लिए उसे अपना भी विश्वास न करना चाहिए—अपने दोषों की ओर उसे ध्यान देना चाहिए, तथा निर्णय पर पहुँचने के लिए मित्र और शत्रु दोनों का ही उचित उपयोग करना चाहिए।[6] अधकचरे ज्ञान को पोप ने बहुत खतरनाक कहा है, इसलिए समीक्षक बनने के लिए गहरे पैठकर अमृतपान करने की आवश्यकता है क्योंकि छिछली घूँट हमें उन्मत्त बना देती है।[7]

पोप ने लिखा है कि बहुत से समीक्षक अकुशल चित्रकार की भाँति, कला के अभाव में वाग्वैदग्ध्य भाषा और अपनी तुकबन्दी की सहायता से ही प्रकृति और जीवन-सौंदर्य का निरूपण करना चाहते हैं, लेकिन यह ऐसी ही बात है जैसे कोई आभूषणों और हीरे जवाहरात धारण कर अपनी असलियत छिपाना चाहे।[8] ये लोग भाषा शैली के सम्बन्ध में आवश्यकता से अधिक सावधानी बरतते हैं, जैसे कि

१—एटकिन्स, वही पृ० १६७
२—वही पृ० १६८
३—ऐन ऐसे आन क्रिटिसिज्म २, २३३ ३५
४—वही १ १४४-४५
५—वही २, २०४
६—वही २, २१३ १४
७—वही, २, २१५ १८
८—वही, २, २९३ ९६

आजकल के नर नारी अपनी पोशाक और वेषभूषा से अपना मूल्य आंकना चाहते हैं।[1]

कुछ समीक्षक विदेशी लेखकों से घृणा करते हैं, कुछ स्वदेशियों से, कुछ केवल प्राचीनों का और कुछ केवल आधुनिकों को ही महत्त्व देते हैं। इस प्रकार हर कोई अपने धार्मिक विश्वास की भांति काव्य वैदग्ध्य को एक सम्प्रदाय में सीमित मानता है।[2] कुछ लोग अपनी निज की सम्मति नही देते, जनसाधारण मे प्रचलित मान्यता को ही ग्रहण कर लेते हैं।[3] कुछ केवल लेखक का नाम देखकर ही उसकी प्रशसा करने लगते हैं उसकी रचना से उन्हें प्रयोजन नही होता।[4] कुछ लोगो का स्वभाव होता है कि रात को वे जिस बात की निन्दा करते हैं, सवेरे उसी की प्रशसा करने लगते हैं, और जो उनकी अतिम सम्मति होती है उसे ठीक समझते हैं।[5] कितनी ही बार समीक्षक अपना कर्तव्य चूक कर आत्मप्रेम और दूसरो से ईर्ष्या करने लगता है।[6] परिणाम यह होता है कि जसे पीलिया के रोगी को सब कुछ पीला-ही पीला दिखायी देता है, उसी प्रकार ऐसे समीक्षक को सब जगह दोष ही दोष दृष्टिगत होने लगते हैं।[7] इसलिए पोप का कथन है कि समीक्षक को चाहिए कि न वह किसी का पक्षपात करे और न किसी से घृणा करे। उसे ऐसा कोई आग्रह न होना चाहिए कि वह अपनी ही बात को आख मूदकर ठीक मानता चला जाय। उसे विद्वान्, अभिजात और निष्कपट होना चाहिए, उसे विनम्र होना चाहिए और साथ ही निर्भीक भी। उसमे इतना साहस होना चाहिए कि निश्शक होकर वह अपने मित्र के अवगुणो और अपने शत्रुओ के गुणों का प्रदर्शन कर सके। उसे पुस्तकीय तथा मानव-स्वभाव का ज्ञान होना चाहिए। पोप का कथन है कि इस प्रकार के महान समीक्षक एथेंस और रोम मे पदा हुए हैं।[8] अन्त मे पोप ने सोच-विचार कर भली भाँति काव्य रचना करने को ही प्रकृति की उत्कृष्टता बताया है, जो वाग्देवी के नियम हैं।[9]

पोप की अन्य रचनाएँ

पोप की अन्य रचनाओ में 'प्रीफेस टू शेक्सपियर' (शेक्सपियर की भूमिका), 'आर्ट ऑफ सिंकिग (डूबने की कला), और होरेस की पत्र शैली पर लिखी हुई 'एपिस्टल टू आगस्टस' (अगस्टस को पत्र) उल्लेखनीय हैं। पाँच वर्ष की कठिन

१—वही, २, ३०५ ७
२—वही, २, ३०४ ७
३—वही २, ४०८ ६
४—वही, २ ४१२-१३
५—वही, २ ४३० ३१
६—वही, २, ५१६
७—वही, २, ५५६
८—वही ३, ६३३-४४
९—वही ३ ७२३-२४

साधना के पश्चात् पोप होरेस की 'इलियड का अनुवाद करने में सफल हुए थे। इस अनुवाद की भूमिका में भी समीक्षा सम्बन्धी सामग्री उपलब्ध है। सन् १७१२ में पोप ने 'द रेप ऑफ द लॉक' (केश का अपहरण) नामक एक व्यंग्य काव्य लिखा जिसके कारण पोप को काफी ख्याति प्राप्त हुई, अंग्रेजी साहित्य में अपने ढंग की यह सर्वश्रेष्ठ रचना है। एरेबला फमर अपने दो घुंघराले केशों के कारण सुन्दरी के रूप में प्रसिद्ध थी। एक दिन एरेबला चाय पी रही थी कि लॉर्ड पीटर ने मौका पाकर उसके एक केश को चुपके से अपनी कैंची से कतर लिया। इस घटना को लेकर एरेबला और लॉर्ड पीटर के परिवार के लोगों में काफी द्वन्द्व मचा। लॉर्ड पीटर ने पोप से अनुरोध किया कि अपनी व्यंग्यात्मक शैली में इस विषय पर कुछ लिखकर वह इस विवाद को शान्त करे। इसपर पोप ने अपनी व्यंग्य और हास्यात्मक शैली में इस कविता की रचना की थी। अपने जीवन के अंतिम वर्षों में पोप का झुकाव व्यंग्य की ओर अधिक हुआ जिसके फलस्वरूप १७२८ में उसके 'डनसाएड' के चार भाग प्रकाशित हुए, इनमें लेखक ने समकालीन कवियों पर तीखे प्रहार किये। 'द ऐसे ऑन मैन' पोप की अंतिम रचना है। यह एक दार्शनिक काव्य है जिसमें कतिपय लेखकों के विचारों का काव्यशैली में प्रतिपादन किया गया है।

अंग्रेजी समीक्षा में पोप का स्थान

एलेक्जैण्डर पोप का नाम अपने समय के प्रमुख समीक्षकों में गिना जाता है। कुछ लोगों का कहना है कि पोप के समीक्षा सम्बन्धी सिद्धान्तों में मौलिकता का अभाव है, आलोचना पर लिखा हुआ उनका निबन्ध संग्रहात्मक है जो अब अपना महत्त्व खो चुका है। इसके विपरीत सेमुअल जॉनसन ने पोप की इस कृति को महानतम कृति बताया है जो उसे प्रथम श्रेणी के आलोचकों की पंक्ति में रख देती है। जो कुछ भी हो पोप की उक्त रचना में यद्यपि तीव्र प्रेरणा और सहज अनुभूति की कमी प्रतीत होती है फिर भी यह कहना पड़ेगा कि पोप के सिद्धान्त उसकी पीढ़ी के साहित्यकारों के लिये नये थे। उक्त निबन्ध में कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य ऐसे हैं जिनका समावेश नव्यशास्त्रवाद के सिद्धान्तों में नहीं होता इसलिए आधुनिक पाठकों के लिए उनका मूल्य केवल ऐतिहासिक मूल्य से कुछ अधिक ही समझना चाहिए। हडसन ने पोप के गुण-दोषों को क्लासिकल धारा के गुण दोष बताते हुए उसके वाक्चातुर्य की प्रशंसा की है। उनके अनुसार अपनी सीमाओं के भीतर वह आश्चर्यजनक रूप से एक चतुर एवं निपुण साहित्य शिल्पी था, तथा सुव्यवस्थित सुसंगत एवं अर्थ वैपरीत्य और छोटे छोटे परन्तु गंभीर अर्थ में पूर्ण वाक्ययुक्त शैली—जो क्लासिकल कविता का प्राण थी—उनके हाथों पूर्णता को प्राप्त हुई थी। क्लासिकल दोहा छन्द का उसे सर्वोत्कृष्ट अधिकारी लेखक माना गया है।

सेमुअल जान्सन (१७०९-८४)

युग के साहित्यिक डिक्टेटर

अंग्रेजी साहित्य में अठारहवीं शताब्दी अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। जो नव्यशास्त्रवाद साहित्यक सिद्धान्त के रूप में फ्रांस में आविर्भूत हुआ और इंग्लैंड में पनपा, उसे इस युग में चुनौती दी जा रही थी। कोई भी प्रमुख आलोचक नव्यशास्त्रवादियों के सिद्धान्त को पूर्ण रूप से स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं था। एडीसन और पोप आदि आलोचकों की साहित्यिक मान्यताओं में व्यापक मनोवृत्ति का ही परिचय देखने में आता है। ऐसे समय डाक्टर जॉन्सन ने पाश्चात्य समीक्षाशास्त्र को एक नयी दिशा प्रदान की जिससे वे अपने युग के साहित्यिक डिक्टेटर कहे जाने लगे। जॉन्सन शास्त्रवाद के प्रबल समर्थक होने के कारण साहित्यिक क्षेत्र में प्राचीन परम्परागत परिपाटियों को स्वीकार करते थे।

जॉन्सन की कृतियों में समीक्षात्मक विवेचन

जॉनसन की विविध कृतियों से उनके समीक्षात्मक सिद्धान्तों का पता लगता है। जेम्स बासवेल (१७४०-९५) के जॉन्सन के जीवनचरित में उनके समीक्षात्मक विवेचनों और प्रासंगिक निर्णयों का ब्यौरा दिया है। सन् १७३४ में लिखित 'द जैंटलमैन्स मैगजिन' (एक सभ्य पुरुष की पत्रिका) में प्राचीन और अर्वाचीन लेखकों के सम्बन्ध में समीक्षात्मक विवेचन प्रस्तुत है। जॉन्सन के बहुसंख्यक साहित्यिक निबन्ध 'रैम्बलर' (१७५० ५२) और 'आइडलर' (१७५८ ६०) नामक पत्रों में प्रकाशित हुए। इन पत्रों को एडीसन के 'स्पैक्टेटर' की परम्परा के ही पोषक समझना चाहिए। इनमें प्रकाशित छोटे छोटे निबन्ध जनता को सभ्य और शिष्ठ बनाने में सहायक हुए। 'रेसिलास' (१७५९) में जॉनसन ने कविता पर निबन्ध लिखा तथा 'द लाइव्स ऑफ द पोएट्स' (कवियों का जीवन) में ड्राइडन, एडीसन, पोप आदि कवियों की रचनाओं के मूल्यांकन के साथ उनका जीवनचरित लिपिबद्ध किया गया। जॉनसन ने शेक्सपियर के नाटकों की मौलिक भूमिकाएँ लिखी जिनसे *जॉन्सन के स्वतन्त्र चिन्तन का पता लगता है।*

समीक्षात्मक मानदण्डों को समुन्नत बनाने का यत्न

जॉनसन तत्कालीन समीक्षात्मक मानदण्डों और प्रणालियों को उन्नत बनाना चाहते थे जिससे कि साहित्य के मूल्य का सही अंकन किया जा सके। जोसेफ एडीसन ने समीक्षा के क्षेत्र में अधिक स्वस्थ साहित्यिक रुचि का समर्थन किया और एलैक्जैण्डर पोप ने पूर्वगामी साहित्यिकों के सिद्धान्तों की ओर समीक्षकों का ध्यान आकर्षित किया। ऐसी हालत में जॉनसन ने साहित्यिक समीक्षा को एक नया ही रूप दिया।

उसने प्रचलित समीक्षा के दोषों का दिग्दर्शन करते हुए समीक्षा के कुछ सुनिश्चित सिद्धान्तों की ओर साहित्यिकों का ध्यान खींचा। इस सम्बन्ध में उक्त समाचारपत्रों में समय समय पर जॉनसन के श्रेष्ठ मर्मोद्घाटक अथवा व्यंग्यात्मक लेख प्रकाशित हुए।

सामयिक आलोचना पर व्यंग्य

जॉनसन का कथन है कि समीक्षा के अध्ययन से मनुष्य को महत्त्वपूर्ण स्थान मिलता है और वह थोड़े ही व्यय से दुर्जय हो जाता है।[1] अपने इस कथन के समर्थन में जॉनसन ने डिक मिनिम का व्यंग्यात्मक विवेचन प्रस्तुत किया है जो एक मद्य बनानेवाले के यहाँ काम सीखा करता था, लेकिन अन्त में वह एक समीक्षक बन गया। वह नाट्यगृहों के पास काफ़ीगृहों में जाता और वहाँ प्रतिदिन आयन्त ध्यान पूर्वक वक्ताओं के 'भावावेश, एकता, दुखद घटना' आदि शब्दों को सुनता। जब वह नगर में लौटता तो 'कला का मुख्य प्रयोजन प्रकृति का अनुकरण करना है', 'आदर्श लेखक की प्रतीक्षा नहीं की जाती, क्योंकि जसे निर्णयशक्ति बढ़ती है वैसे प्रतिभा नष्ट होती जाती है', 'महान् कला उसे कहते हैं जो किसी मोटरे की भाँति किसी चीज को अपने अन्दर खींच लेती है', तथा 'होरेस के अनुसार किसी भी साहित्यिक रचना को नौ वर्ष तक डाले रखना चाहिए'—आदि आदि विषयों का प्रतिपादन करता। फिर वह शेक्सपियर, जॉन्सन, स्पेंसर, सिडनी आदि के गुण दोष बताता हुआ उनका चरित्रचित्रण करता। इस प्रकार अपनी योग्यता में विश्वास पैदा हो जाने पर वह नाट्य कविता के सम्बन्ध में चर्चा करना शुरू कर देता और वह यह सोचकर आश्चर्यचकित रह जाता कि वह हास्यप्रधान प्रतिभा कहाँ चली गई जो हमारे पूर्वजों को वाग्विदग्धता और हास्य प्रदान करती थी। धीरे धीरे उसकी गणना प्रख्यात आलोचकों में की जाने लगी और वह काफ़ीगृहों में समय-यापन करनेवाले दल का नेता बन गया। उसे रिहर्सलों में प्रवेश मिलने लगा, और कवि लोग उसे सुखद विचारों के कारण उसके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने लगे। डिक मिनिम ने समीक्षा की अकादमी स्थापित की जहाँ प्रकाशन के पूर्व प्रत्येक कल्पनात्मक रचना पढ़ी जाने लगी। मिनिम का कहना था कि इस संस्था के माध्यम से सारे यूरोप में अंग्रेजी साहित्य का प्रचार हो जायगा और इससे दुनिया भर के लोग लंदन में साहित्य की शिक्षा प्राप्त करने आया करेंगे। अब वह ऐसे अनेक प्रिय विशेषणों का प्रयोग करने लगा जिनके अर्थ से वह अनभिज्ञ था। ये विशेषण उन पुस्तकों में प्रयुक्त थे जिन्हें या तो उसने पढ़ा नहीं थीं या वे उसकी समझ के बाहर थीं। जब कोई विद्यार्थी उसके पास विद्याध्ययन के लिए लाया जाता तो वह अत्यन्त प्रसन्न होता और

१—द आइडलर, ६०, पृ० ३६, लदन, १९१७

शेखी बघारने लगता। वह विद्यार्थी को समझाता कि प्रत्येक व्यक्ति प्रतिभाशाली होता है तथा सिसरा कभी कवि नही कहा जा सकता।[1]

प्रचलित समीक्षापद्धतियों की आलोचना

जॉनसन केवल सामयिक आलोचना पर व्यंग्य करके ही छुट्टी नही पा लेता, वह तत्कालीन प्रचलित समीक्षा पद्धतियो की भी आलोचना करता है। कुछ लोग रुचि को काव्यसमीक्षा मे मुख्य मानते हुए उसे सौंदर्य-तत्त्व का कारण मानते हैं, लेकिन जॉन्सन ने इस मान्यता का विरोध किया। उसका कथन है कि सौंदर्य को साहित्य के मूल्यांकन की कसौटी नही माना जा सकता, क्योंकि सौंदर्य 'बड़ा अस्पष्ट और अनिश्चित है, भिन्न भिन्न लोग उसे भिन्न भिन्न रूप मे स्वीकार करते हैं तथा देश और काल की अपेक्षा उसमे भिन्नता दिखायी देती है।' तथा, 'सौंदर्य का अब तक यही अर्थ समझा जाता रहा जो हमें आनन्द प्रदान करे। लेकिन यह हम नही जानते कि वह आनन्द प्रदान क्यो करे।' बुराई की भाँति सौंदर्य को भी जॉन्सन ने एक रहस्य माना है जो एक ऐसी समस्या है जिसका कोई समाधान नही है। जॉन्सन के अनुसार, जैसे बुराई 'किसी अपवित्र कल्पना को प्रोत्साहित करती है अथवा व्यर्थ की जिज्ञासा को प्रेरित करती है, उसी प्रकार साहित्य जगत् मे जब कोई समीक्षक अपनी रुचि के अनुसार निर्णय देता है तो वह अमुक विचारों के लिये अपने और दूसरो पर शब्दों को लादकर समझता है कि वह प्रगति कर रहा है, लेकिन देखा जाय तो वह गोलाकार ही घूमता रहता है।'[2]

किसी रचना को बिना अच्छी तरह पढ़े, उसपर समीक्षात्मक निर्णय देने का भी जॉन्सन ने विरोध किया है। उसने रेपिन के सम्बन्ध में कहा है कि जिन पुस्तको की उसने अनुकूल या प्रतिकूल आलोचना की है, उन्हें शायद ही उसने पढ़ा हो। इसके सिवाय, समीक्षकों में और भी अनेक तरह के मताग्रह होते हैं, उदाहरण के लिए अपनी देशभक्ति के कारण कुछ लोग वर्जिल को अधिक पसन्द करते हैं कुछ होमर को। कुछ समीक्षक जीवित लेखकों के प्रति पक्षपात करते हैं। फिर, कुछ लोग खुर्दबीनी समीक्षा से और कुछ दूरबीनी समीक्षा से साहित्य का मूल्यांकन करते हैं। खुर्दबीनी समीक्षा से मूल्यांकन करनेवाले समीक्षक लेखक की छोटी छोटी त्रुटियो को बढ़ा-चढ़ाकर दिखाते हैं। ऐसी हालत मे किसी रचना का प्रभावोत्पादक गठन उसकी सामान्य आत्मा और अवयवो की संगति आदि विशेषताओं से वे वंचित रह जाते हैं। दूरबीनी समीक्षक दूसरे अन्त पर पहुँचकर, जिसे दूसरे लोग नही देख सकते, उसे स्पष्टतया देख लेते हैं और जो सबको दिखायी देता है उसे वे देख नही पाते। किसी

१—द आइडलर ६०, ६१

२—एटकिन्स, वही, पृ० २७२

रचना के प्रत्येक वाक्य में उन्हें कुछ गूढ़ अर्थ, कुछ दूरान्वयी संकेत अथवा कोई मार्मिक अनुकरण दिखायी पड़ता है जबकि उसमें और किसी को इस प्रकार की आशंका नहीं होती। ऐसे समीक्षक कल्पनाओं की दुनिया में उड़ते हुए अर्थों के काल्पनिक रूपों में मनोविनोद किया करते हैं।[1]

आलोचक का कर्तव्य

जॉनसन का कथन है कि '*अज्ञानजन्य अव्यवस्था, मन की उड़ानों और नियमों की निरंकुशता*' से साहित्यिक समीक्षाओं को दूर रखना तथा बौद्धिक आधारों पर साहित्य का मूल्यांकन करना, यह आलोचकों का कर्तव्य है। उसे चाहिए कि वह विवेक के आलोक में किसी रचना को देखे, न उसकी प्रशंसा करे और न निन्दा।[2]

साहित्य का मूल्यांकन

आगे चलकर क्वालो और लांजाइनस को प्रमाण मानते हुए जॉनसन ने लिखा है कि जो कृतियाँ समय की कसौटी पर खरी उतरी हैं, वे हमें मान्य हैं, क्योंकि 'यदि कोई कृति बहुत समय तक लगातार लोकप्रिय रही है तो वह हमारी योग्यता के *उपयुक्त है और प्रकृति के अनुकूल है।' उसका कथन है कि जो प्रकृति का सावधानी* पूर्वक अध्ययन करके उसका भलीभाँति वर्णन करने में सक्षम है, उसकी कृतियों से एक ऐसे साहित्य का निर्माण हो जाता है जिससे लेखक को दीर्घकालीन यश की प्राप्ति होती है।[3] किसी रचना का सही मूल्यांकन करने के लिए ऐतिहासिक दृष्टि को सामने रखकर भी उसका अध्ययन करना जरूरी है। इसके लिए समीक्षक को चाहिए कि वह लेखक के युग में प्रवेश करके यह जाने कि उस समय की क्या मांग थी और कौन से साधनों से उसे पूरा किया जाता था।[4]

पाश्चात्य समीक्षाशास्त्र में बुद्धिवाद का प्रवेश

इससे पता चलता है कि रचना के कुछ निश्चित नियमों पर आधारित नव्य शास्त्रवाद का जॉनसन ने समर्थन नहीं किया। जैसे हम देख आये हैं नव्यशास्त्रवाद के सिद्धान्त में प्राचीनों के अनुकरण को मुख्य मानकर उनके द्वारा निर्धारित नियमों का अनुकरण करने पर जोर दिया गया था, और जॉनसन ने साहित्य सृजन के इन कठोर नियमों को स्वीकार नहीं किया। इससे पाश्चात्य समीक्षाशास्त्र में अधिक बुद्धिवाद और प्रबुद्धता का ही समावेश हुआ।

१—एटकिन्स वही पृ० २७२ ७३

२—वही, पृ० २७३ ७४

३—वही, पृ० २७४

४—वही

काव्यसृजन में मौलिकता का महत्त्व

जहाँ तक ज्ञान का सम्बन्ध है, जॉनसन ने प्राचीन साहित्यिकों के पदचिह्नों का अनुकरण करने को श्रेयस्कर कहा है, लेकिन कला के क्षेत्र में इस बात को वह स्वीकार नहीं करता। वह प्राचीनों की महत्ता स्वीकार करता है तथा परंपरा और सामान्य स्वीकृति पर आधारित युक्तियों को महत्त्वपूर्ण मानता है लेकिन साहित्य को उसने प्राचीनों का अनुकरण स्वीकार नहीं किया। उसका कहना है कि साहित्य में अनगिनत सम्भावनाएँ रहती हैं—सहस्रों विराम स्थल रहते हैं जिनकी खोज बीन अभी नहीं हुई, सहस्रों पुष्प रहते हैं जिन्हें अभी तोड़ा नहीं गया, सहस्रों झरने बहते हैं जो अभी खाली नहीं हुए, तथा कितनी ही कल्पनाओं का मिश्रण रहता है जो अभी तक अनदेखा है। इसके विपरीत, अनुकरणकर्ता पिटी पिटाई लीक पर ही चलता है और सारी शक्ति व्यय करने के बाद वह कतिपय पुष्पों को ही प्राप्त कर सकता है।[1] अनुकरण से कोई कभी महान् नहीं बन सकता इसके लिए मौलिकता की आवश्यकता है। 'रैम्बलर' में वह लिखता है, "मनुष्य जाति के सम्मान के लिए जो भी आशाएँ हों, उनके गठन अथवा कार्यान्विति में मौलिकता अवश्य होनी चाहिए या तो जो सत्य अभी तक अज्ञात थे उनका पता लगना चाहिए, अथवा जो ज्ञात हैं उन्हें सशक्त प्रमाणों अधिक स्पष्ट पद्धतियों तथा अधिक उज्ज्वल उदाहरणों के साथ प्रस्तुत किया जाना चाहिए"।[2] जॉनसन की मान्यता है कि नागरिक कानूनों या परिभाषाओं की भांति कला सृजन को नियमों में नहीं बांधा जा सकता, विशेषकर कला के लिए महत्त्वपूर्ण समझी जानेवाली 'कल्पना' तो एक ऐसी नियमबाह्य शक्ति है जो किसी भी सीमा या नियन्त्रण के परे है।[3]

नव्यशास्त्रवाद के विरुद्ध यही जॉनसन का मुख्य दलील है कि इस वाद के नियम किसी निश्चित सिद्धान्त अथवा वस्तुओं की स्वाभाविक और स्थिर व्यवस्था पर आधारित नहीं हैं। "वे व्यवस्थापकों के मनमाने आदेश हैं जो अपने आपमें स्वयं प्रमाण हैं जो नये प्रयोगों का निषेध करते हैं और जो कल्पना के किसी साहसिक कार्य को करने पर नियन्त्रण लगाते हैं।"[4] तात्पर्य यह कि जॉनसन ने नव्यशास्त्रवाद के नियमों को बदलती हुई आधारशिला पर स्थापित बताते हुए उनका सम्बन्ध पूर्व निर्देशित नियमों से न जोड़कर अपरिवर्तनीय प्रकृति या तर्क के साथ जोड़ा है जिससे कि साहित्य के मनोवैज्ञानिक अध्ययन की ओर हमारी रुचि जागृत हो सके।[5]

१—वही, पृ० २७५

२—वही, पृ० २७६

३—वही

४—वही, पृ० २७७

५—वही

साहित्य का आधार प्रकृति

जॉनसन ने केवल नव्यशास्त्रवादियों के सिद्धांतों का ही विरोध नहीं किया, उसने साहित्य को प्रकृति पर आधारित बताते हुए एक नवीन दिशा की ओर भी संकेत किया। दरअसल उन दिनों प्रकृति के नियम, तार्किक और बौद्धिक नियम होने के कारण स्थिर और निश्चित समझे जाते थे, इसलिए उन्होंने परस्पर विरोधी विचारों के युग में तत्कालीन धार्मिक, दार्शनिक, राजनतिक और कुछ अश तक साहित्यिक क्षेत्रों को भी प्रभावित किया था। ऐसी दशा में जॉनसन ने अपने समीक्षात्मक सिद्धान्तों को प्रकृति में दिखायी देनेवाले क्रम व्यवस्था, अनुपात, औचित्य और स्वाभाविकता आदि गुणों पर आधारित किया जो गुण बुद्धिवादी व्यक्ति को सन्तुष्ट कर सकते हैं।[1]

काव्य की परिभाषा

जॉनसन ने काव्य को एक ऐसी कला माना है जो आनन्द और सत्य का समिश्रण करे। काव्य अभिव्यक्ति के लिए उसने स्पष्टता और सरलता पर जोर दिया है। जॉनसन के अनुसार, सरल कविता वह है जिसमें भाषा पर जोर जबदस्ती किये बिना स्वाभाविक रूप में विचार व्यक्त किये जा सकें। काव्य में अलकारों के प्रयोग को उसने उत्तम स्वीकार नहीं किया, जो अलकार ड्राइडन के युग से संचित किये जा रहे थे।[2] इस सम्बन्ध में उसने लिखा है 'नग्न सौंदर्य युक्त कतिपय दोहों का रचना करने की अपेक्षा विशेषणों से परिपूर्ण, अलकारों से सुशोभित और विपर्यासों से युक्त एक पुस्तक लिख डालना कम कठिन है इसमें सावधानी और कौशल की आवश्यकता होती है।"[3] जॉनसन ने किसी नयी वस्तु के आविष्कार करने को कविता का तत्व बताया है जिससे कि अप्रत्याशित आश्चर्य और आनन्द की उपलब्धि होती हो।[4]

जॉन्सन की समीक्षाशास्त्र को देन

जॉनसन पोप के बाद आनेवाले तीस वर्षों के काल (१७४० १७७०) के प्रतिनिधि साहित्यकार माने जाते हैं। उन्होंने अपने ज्ञान और व्यक्तित्व से अपने समकालीन साहित्यकारों को प्रभावित किया। इस समय एक ओर पोप के युग के शास्त्रवाद अथवा नव्यशास्त्रवाद का प्रभाव सशक्त रूप में दिखायी देता था, और दूसरी ओर भावप्रवणता जोर पकड़ रही थी। एक ओर व्यंग्यात्मक काव्यों का

१—वही, पृ० २७९

२—आइडलर, ७७, पृ० १३६ ३७

३—वही, पृ० १४०

४—एटकिन्स, पृ० २८७ ८८

प्रणयन हो रहा था और दूसरी ओर प्रकृति और ग्राम्य जीवन सबधी कविताओ व
रचना की जा रही थी। जॉनसन ने प्रकृति अथवा तर्क को साहित्यिक मूल्याकन क
एक प्रमुख साधन स्वीकार किया था, कल्पना को वह केवल बुद्धिविलास मानत
था। नव्यशास्त्रवाद के सिद्धान्तो को स्वीकार करने से उसने इकार कर दिया था
व्यक्तिगत रुचि को भी उसने साहित्यिक मूल्याकन का आधार नही माना। प्रकृ
अथवा तर्क को अपना मार्गदर्शक मानकर उसने बुद्धिवादी मानव के मस्तिष्क
अपील की और इस प्रकार अधिक प्रभावशाली बुद्धिसगत मनोवैज्ञानिक प्रणाली
लिए मार्ग प्रशस्त किया।

अरिस्टोटल से प्रभावित होने के कारण जानसन ने प्रत्येक महान् कविता
स्थायित्व के लिए उसमे सवमान्य तत्त्व स्वीकार किया है। इसे साहित्यिक कसौ
का उसने मानदण्ड माना है। उसने लिखा है, "जो सामान्य सिद्धान्तो अथवा सवमा
सत्यो को लेकर साहित्य की रचना करता है उसे आशा रखनी चाहिए कि उसक
रचनाए बार बार पढी जायेंगी, क्योकि सवकाल और सवदेशों मे उनका समा
उपयोग होगा।"[1]

जॉनसन के रहन सहन की विचित्र आदतें, वार्तालाप और सामाजिक जीवन
रुचि, अद्भुत स्मरण शक्ति तथा मानव स्वभाव और साहित्य का अध्ययन कर
की प्रवृत्ति—इन सब बातो ने उसे निश्चय ही अपने युग का असाधारण व्यक्ति
प्रदान किया।

आलोचक की हैसियत से जॉनसन का स्थान काफी ऊचा है लेकिन उसमे सहा
भूतिपूर्ण कल्पनात्मक प्रकृति का अभाव होने से साहित्यिक प्रभाव की उत्कृष्ट
व्यक्त नही हो पाती। अपने समकालीन साहित्यकारो की समीक्षा करते समय अने
बार वह उनके साथ पक्षपात भी कर जाता है। टामस ग्रे (१७१६ ७१) आ
कवियो के जीवनचरित इसके प्रमाण हैं। अनेक आलोचको ने उसे घोर नीतिवा
तथा परिवर्तन का कट्टर शत्रु कहा है। मेकाले के शब्दों म, "अ य लेखकों की रचना
उनकी स्मृति को जीवित रखती हैं परन्तु जॉनसन की ख्याति उसकी अनेक रचनाअ
को जीवित रखती हैं।"

निष्कर्ष

सतरहवी–अठारहवी शताब्दी मे आलोचनों का केन्द्र इटली से फ्रास चला गया
ब्वालो रापिन और ल बासु ने नव्यशास्त्रवाद के सिद्धान्तो का नीव रक्खी। सोलहव
शताब्दी म समीक्षा सिद्धान्त सबधी कायदे कानूनों का अस्तित्व नही था जिनक
आधार मानकर साहित्य की समीक्षा की जा सके। इतालवी काव्य सिद्धान्तो

१—आइडलर ५९ पृ० ३७

अन्तर्विरोधों की भरमार थी, इन अन्तर्विरोधों को हटाकर एक साहित्य संहिता तैयार की गयी। इसके पूर्व की शताब्दियों में समीक्षा तो थी लेकिन कोई समीक्षक दिखाई नहीं देता था जबकि अठारहवीं शताब्दी ने सुप्रसिद्ध समीक्षकों को जन्म दिया।

फ्रांस के नव्यशास्त्रवादियों ने इंग्लैंड को भी प्रभावित किया जिसके फलस्वरूप पोप, ड्राइडन एडीसन और डाक्टर जॉनसन ने नव्यशास्त्रवाद के सिद्धान्तों से प्रभावित होकर अंग्रेजी समीक्षा के मानदण्डों को स्थापित किया। एडीसन, जॉनसन, और पोप को तो साहित्य का डिक्टेटर कहा गया है जिनकी यश कीर्ति इंग्लैंड के बाहर भी पहुंचा। ये सभी लेखक आलोचक भी थे।

ड्राइडन पाश्चात्य समीक्षा का महान् आलोचक था। समीक्षा के क्षेत्र में उसने तुलनात्मक और ऐतिहासिक समीक्षा को जन्म दिया। प्राचीनता के अंधानुकरण का पक्षपाती वह नहीं था। नाट्य साहित्य और काव्य सम्बन्धी उसने महत्त्वपूर्ण विचार प्रकट किये हैं। अंग्रेजी कविता में क्लासिकल दोहा छंद को उसने उच्च स्थान प्रदान किया। पोप ड्राइडन से विशेष रूप से प्रभावित हुआ था। नव्यशास्त्रवादी सिद्धान्तों का प्रभाव उसके समीक्षा सिद्धान्तों में ही नहीं, उसकी अन्य रचनाओं में भी देखने में आता है।

अठारहवीं शताब्दी पत्र पत्रिकाओं का युग था। पत्र पत्रिकाओं ने आलोचना को विस्तृत और लोकप्रिय बनाने में योगदान दिया। इन दिनों साहित्यिक इतिहास संबंधी बड़े बड़े ग्रंथों से लगाकर छोटी छोटी पुस्तकों की आलोचनाएँ प्रकाशित होने लगीं। उपन्यास-साहित्य इस युग में विशेष रूप से लिखा गया, जिस साहित्य का प्राचीन युग में अभाव था। पत्र पत्रिकाओं में वृद्धि होने के कारण नये नये लेखकों ने साहित्यिक क्षेत्र में पदार्पण किया। ये लेखक ऐसे थे जिनके समक्ष कोई प्राचीन साहित्य संहिता नहीं थी और उन्हें ऐसे विषयों पर लेखनी चलानी पड़ती थी जिनके सम्बन्ध में प्राचीनों ने कभी विचार भी नहीं किया था।

एडीसन ने समीक्षा सिद्धान्त में कल्पना का समावेश कर काव्य के आनन्द को कल्पना का आनन्द प्रतिपादित किया। कल्पना तत्त्व का उसने मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया। एडीसन ने ऐसे अनेक विषयों की चर्चा की जो उस स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति की ओर उन्मुख करते हैं। डाक्टर जॉनसन ने सामयिक आलोचना पर व्यंग्य करते हुए उसके मानदण्डों को समुन्नत बनाने का प्रयत्न किया। नव्यशास्त्रवादियों के सिद्धान्तों का वह विरोधी था। उसकी चिन्तनधारा स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति की ओर ही उन्मुख होती हुई दिखायी देती है।

(ग) स्वछंदतावादी काल

अठारहवीं-उन्नीसवीं शताब्दी

स्वच्छन्दतावादी धारा का उदय

अठारहवीं-उन्नीसवीं शताब्दी

कहा जा चुका है कि सन् १६६० के पश्चात् अंग्रेजी साहित्य में शास्त्रवाद और नव्यशास्त्रवाद के सिद्धान्त मान्य किये गये और लगभग १७७० तक इन सिद्धान्तों का आधिपत्य बना रहा। १७७० के पूर्व ही नव्यशास्त्रवाद का विरोध होने लगा क्योंकि इसकी प्रक्रिया काव्य सृजन की परम्परागत रूढ़ियों में जकड़ी जाने के कारण निर्जीव हो चली थी। ऐसे समय साहित्य में इस प्रकार के प्रयोग हुए जिन्होंने साहित्य को स्वच्छन्दतावाद की ओर प्रेरित किया। अठारहवीं शताब्दी में बौद्धिकता के अतिरेक के कारण क्रमश: कल्पना और भावना का दमन हुआ जिससे कविता रूढ़िवादी होकर अपनी स्वतन्त्रता खो बैठी थी। स्वच्छन्दतावादी युग में कल्पना और भावना की प्रवृत्तियों का फिर से आविर्भाव होने लगा। देखा जाय तो स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन मनुष्य के उस प्रयत्न का फल था जो सामाजिक बंधनों तथा रूढ़ियों से मुक्ति पाने के लिए चला आ रहा था। इसके लिए बाह्य प्रकृति और कल्पना का आश्रय लिया गया तथा प्रकृति से प्रेरणा प्राप्त करने के लिए प्राकृतिक जीवन व्यतीत करना आवश्यक माना गया।

रूसो (Rousseau १७१२-७८) स्वच्छन्दतावादी धारा का प्रथम प्रतिनिधि हो गया है—साहित्य के क्षेत्र में उसने इतनी चुनौती नहीं दी जितनी कि सामाजिक क्षेत्र में। कलाकारों की स्वतन्त्रता के लिए उसने इतनी आवाज नहीं उठाई जितनी कि मानव की स्वतन्त्रता के लिये। उसका कहना था, "मानव स्वतन्त्र पैदा हुआ है, लेकिन वह जकड़ा हुआ है सर्वत्र शृंखलाओं में।" फ्रेंच साहित्य में उसकी शैली सर्वथा नूतन थी—स्वतन्त्र, आवेशपूर्ण और हृदय से उद्भूत, इसे ही स्वच्छंदतावाद (रोमांटिक) कहा गया है। प्राचीन अंधविश्वासों और रीति रिवाजों के विरुद्ध तर्क और विवेक को प्रतिष्ठित करते हुए उसने मनुष्य के स्वातंत्र्य को मुख्य बताया। 'एमिली' नामक अपनी पुस्तक में उसने शिक्षा सम्बन्धी विचारों को व्यक्त किया कि मनुष्य की सारी शिक्षा प्रकृति के नियमों के अनुसार होनी चाहिए। १८ वीं शताब्दी के चतुर्थ चरण में शिक्षा विषयक जितने उपन्यास लिखे गये उन पर रूसो की इस कृति का प्रभाव लक्षित होता है। फलस्वरूप प्राचीन धर्म और परम्परागत सामाजिक संस्कारों के स्थान पर स्वातंत्र्य की प्रवृत्ति का अभ्युदय हुआ जिससे साहित्य अपनी सीमा, नियम, आदर्श और उद्देश्य आदि के रूढ़िगत बंधनों से मुक्ति पाकर व्यापक बन गया।

रूसो की स्वच्छदतावादी विचारधारा ने ही सन् १७८९ म फ्रांस की राज्यक्रांति का माग प्रशस्त किया। शताब्दियो से चली माती वस्तुएँ मदृश्य हो गयी। हाथ उद्योगो के स्थान पर कारखाने खडे हो गये, गाँवो ने शहरो का रूप ले लिया। रेल, मोटर मौर हवाई जहाज का गमनागमन होने लगा तथा जहरीली गैस, बम मौर स्फोटक पदार्थों का माविष्कार हो गया। 'लिबर्टी' (स्वातन्त्र्य), 'ईक्वैलिटी' (समानता) मौर 'फ्रटर्निटी' (भ्रातृत्व) का नारा बुलन्द हुमा। स्वच्छन्दतावादी धारा ने शास्त्रवादी (क्लासिकल) प्रवृत्ति का मूलोच्छेद किया जिसमें प्राचीनों के मनुकरण करने का मादेश दिया गया था। व्यक्ति की महत्ता प्रतिष्ठित हुई मौर समसामयिक जीवन की यथार्थता की भभिव्यक्ति पर जोर दिया जाने लगा। हैजलिट, शेली मौर बायरन मादि मंग्रेजी कवियों के स्वातन्त्र्य प्रेम में फ्रांसीसी क्रांति के ही चिह्न दृष्टिगोचर होते हैं। फिलिप सिडनी ने सोलहवी शताब्दी में 'ऐन मपोलोजी फॉर पोएट्री' लिख कर क्षमायाचनापूवक कविता का बचाव करते हुए इसी माधुनिक प्रवृत्ति का परिचय दिया था। तत्पश्चात् शेली की 'डिफेंस माफ पोएट्री' मौर कालरिज की 'बायोग्राफिमा लिटरेरिमा' मादि रचनाएँ तो स्पष्ट रूप से स्वच्छन्दतावाद के ही समथन में लिखी गयी। जमन के मध्यात्म दशन मौर सौन्दय दशन का प्रभाव भी मंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद पर पडे बिना न रहा।[1]

१—स्काट-जेम्स ने शास्त्रवादी मौर स्वच्छन्दतावादी धाराओं का मन्तर स्पष्ट किया है। दोनों में केवल इतना ही मन्तर नहीं कि एक यूनान मौर रोम के प्राचीन साहित्य के मथ मे प्रयुक्त होती है मौर दूसरी माधुनिक साहित्य के मथ में। दोनों धाराएँ विभिन्न प्रवृत्तियों की सूचक हैं—एक वस्तुपरक अभिव्यक्ति की, दूसरी मात्मपरक मभिव्यक्ति की। शास्त्रवादीधारा सादृश्य, सन्तुलन, क्रम मौर मनुपात से विशिष्ट बाह्य सौंदय को तथा स्वच्छन्दवादी धारा बाह्य रूप की मन्तरात्मा को इंगित करती है। बाह्य रूप की यह मन्तरात्मा रूपविहीन नहीं, यह एक स्वतन्त्र मभिव्यक्ति है जो कभी एक रूप को मौर कभी किसी दूसरे रूप को धारण करती है। पहली मभिव्यक्ति इहलौकिक' है मौर दूसरी 'पारलौकिक'। पहली के 'उपयुक्त मध्ययन का विषय मानव है' दूसरी उसे विचित्र मौर मज्ञात स्थानो तथा प्राकृतिक दृश्यों म खोजती फिरती है। एक मौसत का खोज करती है, दूसरी मत की। एक विश्राम चाहती है दूसरी को साहसिक काय पसन्द है। एक को परम्परा मच्छी लगती है दूसरी को नूतनता। एक को मौचित्य मर्यादा परिमाण मनिश्चय रूढ़िवादिता मधिकार, शांति, मनुभव मौर माधुर्य तथा दूसरी को उत्तेजना शक्ति मशांति, माध्यात्मिकता, जिज्ञासा कष्ट, प्रगति, स्वातन्त्र्य प्रयोग मौर क्षोभ पसन्द है। द मेकिंग मॉफ लिटरेचर पृ० १९६ ९७।

विंकलमैन (१७१७-६८)

समीक्षा में सौंदर्यशास्त्र

अठारहवीं शताब्दी में पाश्चात्य समीक्षा क्षेत्र प्राय ईश्वर मस्तिष्क और नाट का विस्तार आदि के विचारों तक ही सीमित था, व्यापक रूप में कला के सिद्धान्तों की चर्चा इस समय तक नहीं की गयी थी। लेकिन इस शताब्दी के अन्त में समीक्षा के क्षेत्र मे एक उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ जिससे कि साहित्यकारों का ध्यान कला के नियामक सिद्धान्तों की ओर गया, तथा इंग्लैंड, फ्रांस और जर्मनी में समीक्षा के अन्तर्गत सौंदर्यशास्त्र की चर्चा होने लगी।

इसमें सन्देह नहीं कि बेकन, हाब्स, लॉक, डेकार्त और लाइब्नीज आदि चिन्तकों ने साहित्य मे मनोवैज्ञानिक और विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति को जन्म देकर समीक्षा का मार्ग प्रशस्त किया था, लेकिन कुछ और भी ऐसे कारण थे जिनसे तत्कालीन साहित्यकार कला के संबंध में सूक्ष्मता से विचार करने के लिए बाध्य हुए।

इस समय क्लासिकल पुरातत्त्वविद्या तथा इटली और डच के चित्रकारों के सम्प्रदायों की ओर लोगों की दिलचस्पी बढ़ रही थी। १७ वीं शताब्दी के मध्य के पूर्व यूनानी मूर्तिकला (ई० पू० ५ वीं शताब्दी) के स्वर्णयुग से लोग अपरिचित थे—इसका सम्बन्ध रोमन काल के साथ जोड़ा जाता था। लेकिन हरक्यूलेनिम (१७३८) और पाम्पेइ (१७५५) में प्राचीनकालीन यूनानी स्मारकों का पता लगने पर इनका विशेष रूप से अध्ययन किया गया जिसके परिणामस्वरूप विंकलमैन और लेसिंग के लेख हमारे सामने आये।

स्वच्छन्दतावादी युग मे यूनान की प्राचीन कलात्मक कृतियों का अध्ययन हुआ, लेकिन अनुकरण की दृष्टि से नहीं, पुनर्मूल्यांकन की दृष्टि से। यह प्रवृत्ति जर्मनी के सुप्रसिद्ध कला समीक्षक विंकलमैन में दिखायी देती है। अपनी 'प्राचीनों की चित्रकला और मूर्तिकला का अनुकरण' नामक रचना में विंकलमैन ने यूनानी कलाकारों की चित्रकला और मूर्तिकला को अनुकरणीय कहा है। उसके अनुसार इस कला में उसके भावों और उसकी अभिव्यक्ति में उदात्त सरलता तथा सौम्य भव्यता विद्यमान है।[1] यूनानियों के कला कौशल से प्रभावित होकर उसने प्राचीनों का इतना गुण गौरव किया कि नव्यशास्त्रवादियों ने भी न किया होगा। फिर भी अन्तरंग से स्वच्छन्दतावादी होने के कारण उसकी विचारधारा से स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति को ही बल मिला। यद्यपि ध्यान रखने की बात है कि अभिव्यंजना के क्षेत्र

१—लेसिंग, लाओकून, १ पृ० ५६, सर राबर्ट फिलिमोर, ४, लंदन, १९१०

में प्राचीन नियमों और सिद्धांतों की दुहाई देने के कारण पाश्चात्य विद्वान् उसे पूर्णतया स्वच्छ दतावादी आलोचक मानने से इनकार करते हैं।

यूनानियों की मूर्तिकला के शारीरिक सौंदर्य से वह असाधारण रूप से अभिभूत था, जिस कला के द्वारा मानव एक आदर्श और सुंदर रूप में चित्रित किया जा सकता है। इन मूर्तियों की आँख, नाक, भौंह और चिबुक को अत्यन्त आकर्षक प्रतिपादित कर उसने इनके अप्रतिम सौंदर्य की सराहना करते हुए कहा है कि यूनान जैसे स्वच्छन्द वातावरण में ही स्त्री और पुरुषों के लिए ऐसे सन्तुलित शरीर और सामंजस्ययुक्त मस्तिष्क का विकास करना संभव था। अवश्य ही विकलमैन यहाँ बाह्य रूप को मुख्य मानकर मूर्तियों का हूबहू वर्णन कर रहा है। लेकिन इस बाह्य रूप के अध्ययन की सहायता से वह यूनानियों के साथ आध्यात्मिक सम्बन्ध स्थापित करने में समर्थ हो सका। यही उसकी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति का संकेत है।

कविता की भाँति मूर्तिकला को ही विकलमैन ने बाह्य वस्तु माना है जो हमें आन्तरिक अनुभूति की ओर प्रेरित करती है, अतएव किसी कलाकृति के लिए आन्तरिक और बाह्य दोनों रूपों को महत्त्वपूर्ण माना गया है। कला के माध्यम द्वारा आत्मा ही बाह्य रूप धारण करती है, अतएव साधन को यहाँ निम्न स्थान नहीं दिया गया, क्योंकि कलाकार अपने आपको अपने माध्यम की स्थिति के अनुकूल बना लेता है। यही कारण है कि कवि और मूर्तिकार में माध्यमों की भिन्नता के कारण दोनों में उसने भेद स्वीकार नहीं किया। उसने कलाकार के माध्यम की आवश्यकताओं का अवश्य ही ठीक ठीक अध्ययन किया क्योंकि अमुक माध्यम के द्वारा ही सरस भावावेश की उत्पत्ति संभव है। स्काट जेम्स के शब्दों में, "विकलमैन का आदर्श मस्तिष्क का स्वस्थ सामंजस्य है, यह एक स्थिरता है जो हर्षातिरेक को पूर्ण कर देती है। मस्तिष्क के इस सामंजस्य को मूर्तिकार शरीर के संतुलन द्वारा, कवि पद्य की संगति द्वारा तथा नाट्यकार क्रिया-व्यापार की समता द्वारा अभिव्यक्त करता है। विकलमैन के लिए कला की समस्या बाह्य रूप की समस्या थी जो इस मुख्य विचार पर आधारित है कि बिना आत्मा के शरीर और बिना शरीर के आत्मा का अस्तित्व संभव नहीं।"[1] विकलमैन का कथन था कि कवि और चित्रकार दोनों को केवल सम्भाव्य विषय को ग्रहण करने की अपेक्षा ऐसा विषय लेना चाहिए जो सम्भाव्य होकर भी असाध्य हो।[2]

विकलमैन पहला समीक्षक था जिसने कला के इतिहास की वैज्ञानिक खोज की। उसके अनुसार कला के विकास का दो प्रकार से निश्चय किया जा सकता है—एक

१—द मेकिंग ऑफ लिटरेचर, पृ० १६६–७३

२—लसिंग, लाओकून, २६, पृ० २०६

प्राकृतिक साधनों और दूसरे सामाजिक साधनों से। विंकलमैन ने अपने कला और सौंदर्य सम्बन्धी विचारों द्वारा पाश्चात्य समीक्षा को प्रभावित किया। हर्डर और गेटे ने उसकी याद मे स्मारक खड़ा किया, शिलर ने अपनी रचनाओं में उसका अनेक बार उल्लेख किया तथा लेसिंग ने अपना 'लाओकून' उसीके वक्तव्य से प्रारंभ किया।

कला और साहित्य की नये ढंग से चर्चा

इस प्रकार हम देखते हैं कि जर्मनी में[1] जब विंकलमैन ने शास्त्रीय पद्धति और स्वच्छन्दतावादी धारा के बीच का मार्ग अपनाकर कला सम्बन्धी अपनी मान्यताएँ स्थापित की तो वहाँ के अन्य विचारकों ने भी कला और साहित्य के सम्बन्ध में नये ढंग से विचार करना प्रारम्भ कर दिया।

चित्र सम्बन्धी कला (पिक्टोरिअल आर्ट) की ओर लोगों का ध्यान गया। इस समय होगर्थ (१६९८ १७६४), गेंसबोरो, रेनोल्ड और विल्सन आदि सुप्रसिद्ध चित्रकारों का आविर्भाव हुआ जिससे चित्र सम्बन्धी कला की चर्चा होने लगी। दू फ्रेसनोय, द पाइल्स ड्राइडन जोनाथन रिचर्डसन, चार्ल्स लमोटे आबे दूबो (Abbe Du Bos), डनियल वैब, जेम्स हैरिस और जाजेफ स्पेंस आदि विद्वानों ने चित्रकला, कविता संगीत और सौंदर्य आदि विषयों पर महत्त्वपूर्ण रचनाएँ प्रस्तुत की।

'जैसी चित्रकारी, वैसी कविता'

यूनानी समीक्षकों ने कला को अनुकरणात्मक माना है, अरिस्टोटल ने काव्य, संगीत, नृत्य चित्र और मूर्तिकला को 'उदार' कलाओं में अन्तर्हित किया, लैटिन कवि होरेस ने कविता और चित्रकला को एक जैसा बताया। होरेस के अनुकरण पर, सिमोनिदीस का उद्धरण देते हुए प्लूटार्क ने चित्र को मूक कविता और कविता को बोलता हुआ चित्र' कहा। प्लूटार्क लिखता है, "जो वस्तु चित्रकार द्वारा चित्रित की जाती है, चित्रन किये जाने के बाद, शब्दों द्वारा उसका प्रतिपादन और वर्णन किया जाता है। एक में वर्ण तथा आकृतियों द्वारा तथा दूसरे में नामों तथा वाक्यांशों द्वारा वस्तुका चित्रण रहता है—दोनों का सामग्री और दोनों के अनुकरण के प्रकार भिन्न भिन्न हैं। लेकिन उद्देश्य दोनों का एक है, तथा श्रेष्ठ इतिहासकार वह है जो अपनी कहानी के मनोभावों और पात्रों मे ऐसी कल्पनाओं की शृंखला प्रस्तुत करे मानो वह किसी चित्र मे चित्रित हो।"[2]

दु फ्रेसनोय की भांति आबे दू बो भी 'जैसे चित्रकारी में वैसे कविता में' के ही सिद्धान्त को स्वीकार करता था, यद्यपि यह उल्लेखनीय है कि मूलत दु बो के साथ

१—सन् १७५८ से विंकलमैन इटली मे आकर रहने लगा था। जब वह यहाँ से अपने घर लौट रहा था तो १७६८ मे उसकी हत्या कर दी गई।

२—लेसिंग, लाओकून, भूमिका, पृ० ६।

मतभेद रखते हुए भी लेसिंग ने उसके बहुत से सिद्धान्तों को अंगीकार किया है।[1] डैनियल वेब कविता को संगीत और चित्रकला की शक्ति का संयोग स्वीकार करता था। टीटियन की भाँति शेक्सपियर को भी उसने एक महान् चित्रकार माना है।[2]

जोजेफ स्पेन्स ने भी द्रू बो का ही अनुसरण किया है। उसका कहना है कि जब हम किसी पुराने चित्र या मूर्तिकला को देखते हैं तो हम उन व्यक्तियों की रचना की ओर दृष्टिपात करते हैं जो प्राचीन कवियों की शृंखला में बद्ध होकर ही विचार करते हैं। साधारणतया दोनों की रचनाओं में अधिक से अधिक मेल पाया जाता है, और जब वे दोनों किसी एक ही विषय का प्रतिपादन करने में संलग्न होते हैं तो एक दूसरे की उत्तम व्याख्या करते हैं। स्पेंस ने लिखा है कि निस्सन्देह, प्राचीन कवियों की यदि हम उत्तम आलोचना करना चाहें तो इस हम तत्कालीन चित्रकारों की रचनाओं से प्राप्त कर सकते हैं, तथा एक की जो कृति हमारे आँखों के सामने आती है, वही दूसरा शब्दों के द्वारा व्यक्त करता है।[3]

काउण्ट केलस ने कहा है कि कलाकारों को श्रेष्ठ चित्रकार-कवियों का अधिक परिचय प्राप्त करना चाहिए, होमर को प्रकृति का दूसरा रूप समझना चाहिए तथा चित्रकार जितनी ही निकटता से कवि की परिस्थितियों का निरीक्षण करेगा उतनी ही उसकी कला पूर्ण बन सकेगी।[4]

१—द्रू बो के अनुसार कविता उदात्त तत्त्व को प्राप्त कर सकती है जबकि चित्रकला नहीं, क्योंकि कविता निरन्तर होनेवाले कार्य के एक क्षण का प्रतिनिधित्व करने तक ही सीमित है। वही, पृ० १५-१६।

२—वही, पृ० १६।

३—लाओकून ८ पृ० १०२, भूमिका, पृ० १३ १६। इस मत की लेसिंग द्वारा की गयी आलोचना के लिए देखिए ७ पृ० ६६, ८ पृ० १०३, १० पृ० १११

४—वही ११ पृ० ११४, १४, पृ० १२७। इस मत की आलोचना के लिए देखिए १२ पृ० १२१, भूमिका पृ० १६।

लेसिंग (१७२६–१७८१)

लेसिंग की रुचि विंकलमैन को अपेक्षा अधिक व्यापक थी। वह एक आलोचक, कवि और नाटककार था जिसने क्लासिकल साहित्य के साथ साथ आधुनिक साहित्य का भी गभीर अध्ययन किया था। लेसिंग को आधुनिक जर्मन साहित्य का प्रतिष्ठाता कहा गया है जिसने जर्मन विचारधारा को फ्रांस के नव्यशास्त्रवाद से मुक्त किया।

कला का उद्देश्य

इस समय भावुकता के सदर्भ में कला का मूल्यांकन किया जा रहा था। लोगो की मान्यता थी कि चित्रकारों, कवियों, दार्शनिकों और इतिहासकारों को नियमों के समस्त बंधनों से मुक्त कर देना चाहिए जिससे कि वे सार्वभौम चिरन्तन सत्य की अभिव्यक्ति की ओर उन्मुख हो सकें—भले ही सौंदर्य की रक्षा में इससे बाधा उत्पन्न हो। लेसिंग ने भी कला का क्षेत्र व्यापक स्वीकार करते हुए सत्य और अभिव्यजनाशक्ति को उसका आवश्यक गुण स्वीकार किया, 'जिसके कारण प्रकृति की कुरूपसे कुरूप वस्तु भी सुन्दर कलाकृति मे परिवर्तित हो जाती है।'[1] कला की अभिव्यजनाशक्ति कलाकार की चेतना अथवा उसके आध्यात्मिक संतोष तक ही सीमित नही। वह तभी सफल कही जा सकती है जब वह बोधगम्य हो, और कलाकार अपने विचारो को दूसरों तक पहुँचा सके। कलाकार के लिए अभिव्यजनाशक्ति सम्प्रेषण (कम्यूनिकेशन) है—अर्थात् कलाकार की मानसिक स्थिति दर्शक या श्रोता के समक्ष स्पष्ट होनी चाहिए। यदि ऐसा न हो तो आलोचक उसकी कृति का मूल्याकन कैसे कर सकेगा ?[2]

कविता सबधी मान्यता

लेसिंग ने घोषित किया कि प्रत्येक कला, अपने माध्यमो साधनो और रचना-पद्धतियों की विविधता के कारण दर्शकों और श्रोताओं पर विभिन्न प्रभाव उत्पन्न करती है। उसने प्लूटार्क की उक्त मान्यता का खडन किया कि 'चित्र मूक कविता है और कविता बोलता हुआ चित्र'।

लेसिंग का कथन है कि कविता और चित्रकला का साम्य इतना महत्त्वपूर्ण नही

१—स्कॉट जेम्स द मेकिंग आफ लिटरेचर, पृ० १७४ ७५

२—वही, पृ० १८१।

किया कि इन दोनों का पार्थक्य।[1] उसके अनुसार, दोनों में मौलिक अन्तर है और वह है कालक्रम और देश के माध्यम का। देश के माध्यम द्वारा हम रंगों या रूप तथा आकृति पदार्थों को प्रस्तुत कर सकते हैं लेकिन यदि हम पदार्थों के कार्यों को इस माध्यम से प्रस्तुत करना चाहें तो यह सम्भव नहीं। इन्हें तो अप्रत्यक्ष रूप में अथवा स्वयं पदार्थों के प्रतिबिम्बों द्वारा ही व्यक्त किया जा सकता है। इसके विपरीत, कालक्रम के माध्यम से हम कार्यों को सीधे और स्पष्टतया व्यक्त कर सकते हैं, जब कि पदार्थों को हम अप्रत्यक्ष रूप में अथवा कार्यों द्वारा ही व्यक्त कर सकेंगे। इस प्रकार हम देखते हैं कि चित्रकला में देश के माध्यम द्वारा आकृति और रंग का उपयोग किया जाता है जबकि कविता में कालक्रम के माध्यम से स्पष्ट शब्दों का उपयोग किया जाता है, अतएव दोनों को एक नहीं माना जा सकता।[2]

कविता को यहाँ समस्त कलाओं की अपेक्षा श्रेष्ठ माना गया है। होमर के सिद्धान्त का समर्थन करते हुए लेसिंग ने कविता को कोरे अनुकरण के क्षेत्र से बाहर माना है। वह लिखता है कि एकिलीज की ढाल जब बन कर तैयार हुई था, तब होमर ने उसका वर्णन नहीं किया, उसके निर्माण के कार्य का उसने चित्रण किया है, और इस प्रकार वह सारी चीजें हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है। हेलेन के कपोल, मुख नासिका आदि अलौकिक सौन्दर्य का चित्रण होमर नहीं करता, अपितु ट्रॉय के वृद्ध परामर्शदाताओं पर जो नारी-सौन्दर्य का प्रभाव पड़ा, उसी का चित्रण किया गया है कि जिसे देखकर वे उसके सारे अपराधों को भूल गए जो कि उसने मुल्क पर ढाये थे।[3]

प्राचीन कला का सबसे प्रथम और सबसे उत्तम नियम है सौन्दर्य का निर्माण इसलिए इस कला में जो कुत्सोत्पादक है, उसके समीपवर्ती समस्त कर्म्यविषय तथा तीव्र मनोवेग दूर ही रहते हैं। इसलिए कला का वास्तविक और यथार्थ सत्य है कि वह बिना अन्य किसी कला की सहायता के ही अपने लिए सदा प्रयत्नशील रहे और यह

१—१७ वीं और १८ वीं शताब्दी में और भी ऐसे विद्वान् हुए हैं जिन्होंने कविता और चित्रकला में अन्तर माना है। उदाहरण के लिए आबे डू बो चित्रकला के वास्तविक अनुकरण और कविता के कृत्रिम अनुकरण में भिन्न भिन्न बताया है। एडमण्ड बर्क का कहना है कि शब्दों को दृश्यमान जगत् के चित्रों के स्थान पर नहीं रखा जा सकता। विलियम के० विमसेट, लिटरेरी क्रिटिसिज्म, ए शॉर्ट हिस्ट्री पृ० २६८ ६९, एटकिन्स, इंग्लिश लिटरेरी क्रिटिसिज्म सेविन्टीन्थ ऐण्ड एटीन्थ सेंचुरीज, पृ० ३३७ ३४५।

२—वही, १९, पृ० १३१-३२, १८, १४५

३—वही, १८, पृ० १४४, २० पृ० १५८, २१ पृ० १६५

लक्ष्य पार्थिव सौंदर्य है जो मादश गुणों के कारण केवल मनुष्यों में ही परिलक्षित होता है। यही कला की विशिष्टता है, जो प्रत्येक कला में पायी जाती है।[1]

नाट्य-कविता की उत्कृष्टता

लेसिंग फ्रांस के नव्यशास्त्रवाद के सिद्धान्तों को नहीं मानता था। वह कविता को, और विशेषकर नाटक को, मादश स्वीकार करता है। इस सम्बन्ध में अपने किसी मित्र को लेसिंग ने लिखा है—"कविता को चाहिए कि वह अपने कृत्रिम सकेतों का त्याग कर स्वाभाविक सकेतों की ओर अग्रसर हो, इसी बात में यह गद्य से भिन्न है और कविता बन जाती है। जिन उपकरणों द्वारा यह काम सम्पन्न होता है, वे हैं शब्दों की ध्वनि, शब्दों की स्थिति, परिमाण, अलकार, उपमा आदि। इनसे कृत्रिम सकेत निर्मित होते हैं जो स्वाभाविक सकेत जैसे लगते हैं, किन्तु वस्तुत इनसे वे सकेत स्वाभाविक सकेतों के रूप में नहीं बदल जाते। परिणामत केवल इन्हीं उपकरणों का प्रयोग करनेवाली समस्त शैलियों को निम्न कोटि की कविता कहना चाहिए। उच्च कोटि की कविता वह है जो कृत्रिम सकेतों को पूर्णतया स्वाभाविक सकेतों में बदल देती है, इसे नाट्य कविता कहते हैं।"[2]

'लाओकून'

लाओकून (१७८८) लेसिंग की सुप्रसिद्ध आलोचनात्मक कृति है जिसमें कलाओं के परस्पर सम्बन्ध और उनके मूल भेदों का वर्णन किया गया है। जर्मनी का सुप्रसिद्ध कवि और आलोचक गेटे अपने यौवन काल में लेसिंग और विकेलमैन दोनों से ही प्रभावित हुआ था। 'लाओकून' के सम्बन्ध में उसने लिखा है, "यह उसकी एक सैद्धान्तिक रचना है। यहाँ वह हमें कभी सीधे निष्कर्षों पर न पहुँचाकर, हमेशा दार्शनिक मतों, प्रतिमतों और शकाओं द्वारा निश्चित मार्ग पर पहुँचाती है। हम विचार और अन्वेषण की प्रक्रियाओं को देखते हैं, तत्पश्चात् विचारशक्ति को उत्तेजित करनेवाले और हममें मजनात्मकता उत्पन्न करनेवाले महान् अभिप्रायों तथा महान् सत्यों को प्राप्त करते हैं।"[3] अन्यत्र वह कहता है, "लेसिंग के 'लाओकून' का प्रभाव हृदयगम करने के लिए हमें युवक बनना चाहिए। यह हमें तुच्छ निरीक्षण के क्षेत्र से हटाकर विचारों के स्वतत्र क्षेत्र में ले जाता है। 'जैसा चित्र में वैसा कविता में' वाले सिद्धात का यह सर्वथा उन्मूलन कर देता है, तथा कला और कविता का भेद स्पष्ट

१—वही, भूमिका, पृ० ८

२—विलियम के० विमसेट, वही पृ० २७० पर उद्धृत।

३—कॉनवरसेशन आफ गेटे विद एकरमैन, जॉन आक्सेनफोर्ड, पृ० १९१, लदन, १९३०।

हो जाता है ।"[1] वस्तुत लेसिंग की इस कृति ने जर्मनी को आश्चर्यकारक रूप में प्रभावित किया और ऐसा लगा कि लोगों के सुपुप्त मस्तिष्क जाग उठे हैं। साहित्य और संस्कृति के सौंदर्य सम्बन्धी क्षेत्रों में इससे एक नवीन युग का आविर्भाव हो गया। इससे केवल कला के पंडितों के अध्यापन और व्यवहार की ही कायापलट नहीं हुई, अपितु अनेक व्यक्तियों की रुचि तथा मस्तिष्क भी परिष्कृत हुआ।

लाओकून रोम के वैटिकन नगर में संगमरमर की एक बहुप्रशंसित विख्यात मूर्ति है जिसका पता सन् १५०६ में लगा था। इसमें सूर्य देवता का आदेश पाकर दो विषधर सर्पों द्वारा डसे जाते हुए ट्रोजन के पुरोहित लाओकून तथा उसके दो पुत्रों को अंकित किया गया है। सूर्य देवता ने उन्हें काष्ठ के अश्व को ट्राय नगर में ले जाने के लिये मना किया था। इसी प्राचीन आख्यान का आधार लेकर लेसिंग ने व्यावहारिक आलोचना सम्बन्धी प्रश्न उठाते हुए चित्रकला, मूर्तिकला एवं कविता के वशिष्ट्य की विवेचना की है।

इस मनोरम मूर्ति की सरलता और भव्यता ने विंकलमैन को विशेष रूप से प्रभावित किया। विंकेलमैन लिखता है "लाओकून पुरोहित की व्यथा और वेदना में—जो मूर्ति की प्रत्येक मांसपेशी और उसके स्नायुओं में दिखायी गई है—हम एक महान् पुरुष की तपी हुई आत्मा को देखते हैं जो अन्तर्व्यथा के साथ जूझती है तथा सम्वेदनशक्ति के स्फोट का दमन करने और उसे अपने में सीमित रखने का प्रयत्न करती है। वह जोर से चीख और चिल्ला नहीं उठती, जैसा कि वर्जिल ने चित्रण किया है,[2] किन्तु एक दुखभरी नीरव आह उसमें से प्रस्फुटित होती है।"[3] यह मूर्ति अपनी वेदना की अभिव्यक्ति न कर उसे चुपचाप पी जाती है—उसके चेहरे पर क्रोध का लवलेश भी दिखाई नहीं देता। इसे ही विंकेलमैन ने कला की उत्कृष्टता कहा है।

विंकेलमैन के इसी वक्तव्य को लेकर तथा जोसेफ स्पेन्स और काउण्ट केलस के कला सम्बन्धी विचारों का अध्ययन कर, लेसिंग जैसा चित्र में वैसा कविता में सिद्धान्त की समीक्षा करने में प्रवृत्त हुआ तथा कविता और चित्रकला के अन्तर को

१—विलियम के० विमसेट, वही, पृ० २६६ पर उद्धृत।

२—'एनीड' (Aeneid) में वर्जिल ने लिखा है, "उसी समय लाओकून भीषण यंत्रणा से पीड़ित होकर ठीक उसी प्रकार चीख उठा जिस प्रकार कोई बैल अपनी गर्दन पर पड़नेवाले भीषण परशु का प्रहार चूक जाने पर डकारता हुआ वधभूमि से भाग उठता है। डबल्यू बेसिल वसफोल्ड, 'जजमेण्ट इन लिटरेचर' (साहित्य का मूल्यांकन), पृ० ७७, विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर १९६४

३—लाओकून भूमिका, पृ० ८ पर उद्धृत।

उसने स्पष्ट किया। बसफोल्ड के शब्दो मे उनका कहना है, "मूर्ति के माध्यम से यदि इस यन्त्रणा को व्यक्त करने का प्रयत्न किया जाता तो मूर्ति विद्रूप हो जाती और उपहासास्पद या भयानक प्रतीत होती क्योंकि मूर्ति स्थूल सौंदय को स्थिर और शान्त स्थिति में व्यक्त कर सकती है। इसके विपरीत, यदि वर्जिल ने मूर्ति शिल्प को देखा होता और उसने अपने काव्यगत वर्णन को उस पर आधारित किया होता तो वह मूर्ति द्वारा व्यंजित सहनशीलता की उदात्त भावना को व्यक्त करने का लोभ सवरण न कर पाता, क्योंकि शब्द प्रतीको के माध्यम से जितना सहज भीषण यन्त्रणा जनित चीख को व्यक्त करना है उतना ही सहज सहनशीलता की उदात्त भावना को भी।"[1] इसी तुलना के आधार पर लेसिंग ने चित्रकला और काव्यकला के रचना विधान का विवेचन किया है। चित्रकला को नेत्र ग्राह्य कलाओं का और काव्य-कला को उसने श्रवण ग्राह्य कलाओं का प्रतिनिधि माना है। कला का उद्देश्य प्रभावोत्पादकता है। चित्र का आनन्द उसे देखकर उठाया जा सकता है, कविता का सुनकर। चित्रकारी मे यह प्रभावोत्पादकता विशद वर्णन के रूप मे देखी जा सकती है, कविता म नही।

शिलर (१७५६-१८०५)

क्लासिक और रोमाटिक

जर्मनी म इस समय शास्त्रवादी (क्लासिक) और स्वच्छंदतावादी (रोमांटिक) धारणाएँ जोर पकड रही थी। आलोचको ने सीधी वस्तुनिष्ठ तथा अनुकूलतापूर्वक प्रकृति के साथ विशुद्ध सयोग को क्लासिकल, तथा व्यक्तिनिष्ठ आत्मतत्त्व की विविध अवस्थाओं के कारण, किंचित् प्रतिकूलतायुक्त जटिल प्रकृति के सिंहावलोकन को रोमांटिक अथवा आधुनिक कला का नाम दिया। शिलर ने आधुनिक कला के सम्बन्ध मे लिखा है कि कला बुद्धि और भावना के आदर्शवादी समन्वय को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील है, जिसका अपने रूप मे अनुभव नही हो सकता, लेकिन फिर भी वह, जो कभी पूर्ण समझी जानेवाली और आजकल अखण्ड ऐसी कलाविहीन सरल वस्तु की अपेक्षा महत्तर है।[2] जर्मन समीक्षको ने क्लासिक कला को 'सौंदर्य' और रोमांटिक कला को 'शक्ति' माना है। उनके अनुसार क्लासिकल कला सर्वव्यापक

१—'जजमेण्ट इन लिटरेचर' का हिन्दी अनुवाद, पृ० ७७

२— विलियम के० विमसेट, वही, पृ० ३६८।

और आदर्श है, जबकि रोमांटिक कला को व्यक्तिगत और विशेषतासूचक' कहा गया है। क्लासिकल कला को मूर्तिकला की भांति सांचे मे ढालने योग्य, सीमित तथा शुद्ध शैली युक्त, तथा रोमांटिक कला को चित्रकला की भांति नयनाभिराम, असीमित, अनन्त, तथा मिश्रित शैली युक्त कहा गया है।[1]

क्लासिक और रोमांटिक का समन्वय

लेकिन फ्रांस के स्वच्छंदतावादियों की आलोचना करते हुए गेटे ने क्लासिक और रोमांटिक की जुदा ही परिभाषा की है। वह लिखता है क्लासिक को मैं स्वस्थ तथा रोमांटिक को रुग्ण कहता हूँ। इस ग्रंथ में" "निबेलुंगेनलाइड"[2] को इतना ही क्लासिक समझना चाहिए जितना इलियड को क्योंकि दोनों ही रचनाएं ओजपूर्ण और स्वस्थ हैं। आधुनिक अधिकांश रचनाएं रोमांटिक हैं, इसलिए नहीं कि वे अभिनव हैं, बल्कि इसलिए कि वे दुर्बल हैं कुंठित हैं और रुग्ण हैं। तथा पुरातन रचनाएँ क्लासिक हैं इसलिए नहीं कि वे प्राचीन हैं, बल्कि इसलिए कि वे सशक्त हैं, चिर नवीन हैं, आनन्ददायी हैं और स्वस्थ हैं।"[3] तात्पर्य यह कि गेटे ने स्वच्छंदतावाद की मोहकता मे न फँसकर शास्त्रवाद का ही समर्थन किया है। स्वच्छंदतावादियों को वह वास्तविक जीवन से विषय चुनने का तथा शास्त्रवादियों को नवीन के प्रति अधिक सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करने का आदेश देते हुए क्लासिक और रोमांटिक दोनों का समन्वय करता है। आगे चलकर यही बात वह फ्रांसवासियों के मुख से कहलवाता है। वह कहता है, 'अब इन बातों पर फ्रांस वाले सही तौर पर सोचने लगे हैं। उनका कहना है कि क्लासिक और रोमांटिक दोनों एक जैसे ही श्रेष्ठ हैं। केवल इतना ही बात है कि इनका उपयोग निर्णयपूर्वक किया जाना चाहिए, जिससे कि य श्रेष्ठता के योग्य बन सकें। कोई दोनों का विरोधी हो सकता है और उस समय एक को उतना ही निरर्थक कहा जायगा जितना कि दूसरे को। यह बात, मैं समझता हूँ, बुद्धिसंगत है और इससे हमें कुछ समय के लिए संतोष हो सकता है।"[4]

शिलर के साथ गेटे का मतभेद

शास्त्रवादी और स्वच्छंदतावादी कविता में भिन्नता प्रतिपादन करते हुए आगे चलकर गेटे ने कहा है 'क्लासिकल और रोमांटिक कविता का भेद अब सारी दुनिया

१—वही

२—१३वीं शताब्दी की एक जर्मन कविता।

३—कानवरसेशन आफ गेटे विद एकरमैन, पृ० ३०५।

४—वही पृ० ३३५।

में फैल गया है और इसके अनेक झगडे झमट और मतभेद पैदा हो गये हैं। यह भिन्नता मूलत शिलर और मुझसे आरम्भ हुई है। मैंने कविता के वस्तुनिष्ठ प्रतिपादन के सिद्धात को ही मान्य किया,[1] दूसरे किसी सिद्धात को नही। लेकिन शिलर ने अपने ढग से कविता के व्यक्तिनिष्ठ सिद्धात को स्वीकार करके, मेरे आक्षेपो के उत्तर मे 'नाइव एण्ड सेंटीमेंट पोएट्री' (सरल तथा भावप्रवण कविता, १७९५ ९६) नामक पुस्तक लिखी। इसम उसने सिद्ध किया कि मैं अनिच्छा स स्वच्छदतावादी हूँ, तथा मेरी 'इफिजेनिया' रचना, भावप्रवण होने के कारण, न इतना शास्त्रवादी रचना है और न इतनी प्राचीन भावना से ही वह लिखी गयी है जसा कि कुछ लोगो की मान्यता है।[2]

जर्मन और अंग्रेजी स्वच्छन्दतावादी कविता में अन्तर

जिस अथ मे अग्रेजी स्वच्छदतावादी कविता प्राचीन अथवा प्राकृतिक कही जाती है, उस अथ मे जमन स्वच्छदतावादी कविता और आलोचना नही कही जाती। वस्तुत जमन स्वच्छदतावादी कविता ऐतिहासिक थी, यूनान से इसका सम्बध अधिक था और यह शास्त्रवादी ही थी। अरिस्टोटल पर आधारित न होकर यह होमर तथा ट्रेजेडी नाटककारो पर आधारित थी। विकलमैन के शास्त्रवाद का ही यह एक आग्रहपूण सशोधन समझना चाहिए। स्वच्छदतावादी मस्तिष्क का यह मुख्य विरोधाभास था कि उसे प्राचीन अथवा प्रत्यक्ष प्रकृति के पास पहुँचने की लालसा थी, लेकिन इस लालसा तक वह ऐतिहासिक चेतना तथा अ तदशक गुणो के माध्यम से ही पहुँच सका।[3]

१—गेटे ने वस्तुनिष्ठ कविता को ही उच्च कोटि की कविता माना है, क्योंकि उसका कथन है कि यदि कविता बाह्य जगत् से परावृत होकर आत्मनिष्ठ बन जाती है तो उसका पतन हो जाता है। यदि कोई कवि केवल आत्मनिष्ठ अनुभूति को ही अभिव्यक्ति देता रहता है तो उसे कवि कहलाने का अधिकार नहीं।

२—कानवरसेशन आफ गेटे पृ० ३६६। इसी समय से प्राचीन क्लासिसिज्म के ऊपर आधारित होने के कारण गेटे की कला क्लासिक कही जाने लगी। १८०४ मे उसने हम्बोल्ट को लिखा, "जब हम पुरातनता के सामने आते हैं और इससे कुछ सीखने के इरादे से गभीरतापूवक इसका निरीक्षण करते हैं तो हमे लगता है, जसे हम पहली बार इसान बन रहे हैं।" वाल्टर होयेर गेटेंज लाइफ इन पिक्चस १०० १०१, लाइप्जिग १९६३।

३—विलियम के० विमसेट वही पृ० ३६६। हीगल ने कला को तीन भागों में विभक्त किया है—(१) प्रतीकात्मक, जसे मिस्र की पिरामिडों अथवा मदिरों में।

सरल तथा भावप्रवण कविता

शिलर जर्मनी का एक सुप्रसिद्ध कवि, नाटककार और दार्शनिक हो गया है। सन् १७८० में शिलर का प्रथम सुप्रसिद्ध नाटक 'द रॉबर' (डाकू) प्रकाशित हुआ जिसका तत्कालीन समाज पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। अपना 'सरल तथा भावप्रवण कविता' में उसने सौंदर्य सिद्धान्त के आधार पर काव्यकला का विवेचन करते हुए कहा कि सौंदर्य की उपासना द्वारा शिव तक पहुँचते पहुँचते मनुष्य ऐसी स्थिति पर पहुँच जाता है जब उस तक या बुद्धि के आश्रय की आवश्यकता नहीं रह जाती। यहाँ उसने साहित्य के विभिन्न रूपों का वर्गीकरण करते हुए 'प्राचीन तथा नवीन', 'शास्त्रवादी और स्वच्छंदतावादी' आदि प्रवृत्तियों का प्रतिपादन करते हुए गेटे के सहज और शास्त्रवादी सिद्धान्त के विरुद्ध अपनी भावप्रवण स्वच्छंद प्रतिभा का परिचय दिया।

अपने उक्त निबन्ध मे शिलर ने प्राचीन यूनानी कविता और अपने समय की यूरोपीय कविता की तुलना करते हुए कहा है कि यूनानी कविता प्रकृति के अधिक निकट थी, तथा प्रकृति का याथातथ्य और वस्तुनिष्ठ वर्णन करने मे वह सबसे आगे बढ जाती है, इसलिए यूनानी कविता सरल है और आधुनिक लेखको की भाँति प्रकृति का भावुकतापूर्ण वर्णन उसमे नही मिलता। यूनानी कवियों को, नैतिक भावना के बजाय, प्रकृति अधिक आकृष्ट करती है, जबकि वर्तमान कवि का तादात्म्य प्रकृति के साथ इतना नही, तथा उसके प्रति उसकी गहरी आसक्ति है और प्रकृति का खोज में वह निरन्तर लगा हुआ है। क्योंकि वस्तुत प्रकृति ही कवि हृदय को आलोकित कर उसमे भावोष्णता पैदा करती है। शिलर का कथन है कि यूनानियो के समय सभ्यता का ह्रास नही हुआ था, और न वह अनिवार्यता की सीमा तक ही पहुँची थी जिससे कि प्रकृति के साथ उनका सम्बन्ध विच्छेद हो जाता, जैसा कि हम आधुनिक समय में देखते हैं। यूनानियो की अनुभूति सहज हुआ करती थी, जैसी कि हम होमर और वर्जिल आदि कवियो की रचनाओं मे पाते हैं, जब कि जिस भावना से आज हम प्रकृति का निरीक्षण करते हैं उसे एक रोगी की भावना जैसी कहा जा सकता है जो स्वास्थ्यकर नही है। इसीलिए शिलर ने स्वच्छंदतावादी आधुनिक कविता को भावप्रवण कहा है जिसमें यूनानी कविता की स्वाभाविक सरलता नहीं आ सकी।

---

(२) क्लासिक, जसे यूनानी मूर्तिकला में। (३) रोमांटिक, जसे, आधुनिक सगीत, चित्रकला और कविता मे (जहा आत्मा भौतिक पदार्थ को आवृत कर लेती है)। रोमांटिक कला मे क्लासिक कला की अपेक्षा नैतिक शक्ति अधिक है और सौंदर्य कम। वही।

शिलर ने कवि को कविता के मूलभूत विचार के अनुसार, सर्वत्र ही प्रकृति का संरक्षक माना है। उसके अनुसार, या तो वह प्रकृतिस्वरूप होता है, या प्रकृति का अन्वेषी। पहली अवस्था में उसकी अनुभूति सरल और दूसरी में भावप्रवण होती है, पहली अवस्था में कवि यथासंभव यथार्थ का अनुकरण करने में प्रवृत्त होता है और दूसरी में आदर्श का प्रतिनिधित्व करता है। इस प्रकार शिलर ने काव्य प्रतिभा की दो अभिव्यक्तियाँ स्वीकार की हैं।[1]

१– देखिए डाक्टर सावित्री सिन्हा द्वारा सम्पादित पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परम्परा, पृ० १३४–४१। गेटे ने शिलर की इस मान्यता का विरोध करते हुए लिखा है कि शिलर ने भावप्रवण कविता को सरल कविता से पृथक सिद्ध करने के लिए एडी से चोटी तक का पसीना बहाया है। इसका कारण कि भाव प्रवण कविता के लिए उसे अनुकूल भूमि नहीं मिली और इससे उसके सामने अनगिनत उलझनें पैदा हो गयीं। शिवदानसिंह चौहान, आलोचना के सिद्धान्त पृ० ११४।

जोहान वोल्फ गाँग गेटे (१७४९–१८३२)

शास्त्रवादी विचारधारा का समर्थक

विश्व-कवि गेटे जर्मनी का एक अन्य महान् समीक्षक हो गया है जिसे अंग्रेजी कवि बायरन ने 'यूरोप के कवियों और बुद्धिजीवियों का शिरोमणि' कहा है। गेटे की शास्त्रवाद और स्वच्छन्दतावाद सम्बन्धी मान्यताओं का उल्लेख किया जा चुका है। उसने इन दोनों धाराओं का समन्वय करने का प्रयत्न किया है, लेकिन वस्तुतः शास्त्रवादी रचना को ही उसने स्वस्थ माना है। एकरमैन के साथ वार्तालाप करते हुए उसने कहा है, 'स्वच्छन्द रचना एक प्रकार का शारीरिक रोग है, जिन अंगों में आवश्यकता नहीं वहाँ रस का प्रचुरता हो जाती है, और जहाँ आवश्यकता है, वहाँ से रस खींच लिया जाता है। विषय तो अच्छा था, लेकिन जिन दृश्यों की मुझे अपेक्षा थी, वे वहाँ नहीं थे, और जिन दृश्यों को मैं नहीं चाहता था वे बड़ी तत्परता और अनुरागपूर्वक उपस्थित हो गये थे। इसे मैं शारीरिक रोग अथवा हमारे अभिनव सिद्धान्तों के अनुसार, स्वच्छन्द कहता हूँ।'[1]

गेटे ने बाह्य रूप को शास्त्रवाद का विशिष्ट तत्त्व माना है, जिस पर सौंदर्य का बाह्य रूप अपने सन्तुलन, क्रम, व्यवस्था, तारतम्य तथा संयम के साथ आधारित है। और इसका विरोधी है स्वच्छन्दतावाद, जो बाह्य रूप के पीछे रहनेवाले तत्त्व पर जोर देता है। एक परम्परा का अनुगामी है, दूसरा अभिनवता की माँग करता है।

कला में व्यक्तित्व की प्रधानता

लेसिंग और विंकलमैन पर पड़नेवाले यूनानी मूर्तिकला के प्रभाव का उल्लेख किया जा चुका है। गेटे भी प्राचीन शिल्प में मानव आकृति की भव्यता से विशेष रूप से प्रभावित हुआ, और यह प्रभाव, उसके कलादर्शन में जीवन भर बना रहा। यूनानी देवताओं की मूर्तियों को उसने विश्व की शक्तियों का उद्गार बताते हुए उन्हें एक साथ कविता, प्रकृति और कला स्वीकार किया है। प्रकृति की यह सर्वोत्कृष्ट सृष्टि है जिसका मानव ने सच्चे और प्राकृतिक नियमों का अवलंबन लेकर निर्माण किया है। उन दिनों वैटिकन के अपोलो[2] की मूर्ति (४०० ई० पू०) यूनान की सर्वश्रेष्ठ मूर्तियों में गिनी जाती थी। गेटे ने इस विशालकाय मूर्ति की कमनीयता का

१—कानवरसेशन आफ गेटे, पृ० ३१०।

२—यूनान और रोम का सूर्य देवता जिसे कविता और संगीत का रक्षक माना गया है।

'पोएट्री ऍण्ड ट्रुथ (कविता और सत्य) में वर्णन किया है। ईसवी पूर्व प्रथम शताब्दी की लाम्रोकून नामक पुरोहित का मूर्ति ने भी गेटे का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया, और इस प्रकार यह मनुष्य और प्रकृति की एकता का अनुभव करने में समर्थ हो सका। इसके आधार पर ही लेसिंग ने एक ओर कविता तथा दूसरी ओर चित्रकला और मूर्तिकला में अन्तर स्थापित किया था।[1]

गेटे ने समस्त कलाओं में पौरुष को मुख्य माना है। उसकी मान्यता है कि कोई प्रखर और मेधावी व्यक्ति ही महान् कला का निर्माण कर सकता है। वह कहता है, 'तुम्हारे सामने प्रखर मेधावियों की कृतियाँ हैं, जिन्होंने ज्ञान प्राप्त किया है और जिनकी कलात्मक रुचि कुछ कम नहीं है। लेकिन फिर भी इन चित्रों में पौरुष की कमी है। यहाँ 'पौरुष' शब्द विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। इन चित्रों में एक विशिष्ट आवश्यक शक्ति की कमी है, जो प्राचीन काल में सामान्यतया अभिव्यक्त की जाती थी लेकिन वर्तमान काल में इसका ह्रास हो गया है। यह बात केवल चित्रकला के ही सम्बन्ध में नहीं, अन्य कलाओं के सम्बन्ध में भी है। आजकल की जाति दुर्बल हो गयी है, पता नहीं क्यों ? क्या वह जन्म से ही कमजोर है, अथवा कुछ शिक्षा का कमी है, या फिर खानपान का यह परिणाम है ?"

आगे चलकर गेटे ने कहा है "व्यक्तित्व कला और कविता का सर्वस्व है फिर भी आधुनिक समीक्षकों में कितने ही ऐसे दुर्बल व्यक्ति हैं जो इस बात को स्वीकार नहीं करते। उल्टे वे कविता अथवा कलाकृति में महान् व्यक्तित्व को एक क्षुद्र अनुबन्ध मानते हैं।" गेटे ने व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति को ही समस्त कलाओं का आदि और अन्त स्वीकार किया है। हम कह सकते हैं कि लेखक की शैली को ही उसने उसकी अन्तरात्मा की अभिव्यक्ति माना है। शैली को यहाँ केवल वस्तुनिष्ठ और केवल आत्मनिष्ठ अनुकरण के बाह्य बताया है। वह कहता है, "महान् व्यक्तित्व को समझने और उसके प्रति आदरभाव व्यक्त करने के लिए हमें स्वयं भी कुछ होना चाहिए। जिन लोगों ने यूरीपाइडिस की उदात्तता को स्वीकार नहीं किया, वे या तो इस उदात्तता को हृदयंगम करने में असमर्थ दीन हीन प्राणी थे, अथवा वे निर्लज्ज वंचक थे जो अपनी मान्यताओं द्वारा अपना बड़प्पन सिद्ध करना चाहते थे, और किया भी उन्होंने ऐसा ही।"[2]

कविता का विषय क्या हो ?

यथार्थ पर जोर देते हुए गेटे ने अपने वार्तालाप में कहा है, "दुनिया इतनी विशाल और समृद्ध है तथा जीवन में इतनी विविधता है कि कविता के अवसरों के

१—वाल्टर होयेर गेटेज लाइफ इन पिक्चर्स, ४३,४४,४५, लाइप्जिग, १९६३।
२—कॉनवरसेशन आफ गेटे, पृ० ३८१—८२, ५६।

अभाव की कभी नौबत नहीं आयेगी। लेकिन ये सब अवसर प्रेरित कविताएँ होनी चाहिए, मतलब यह कि उनकी रचना की प्रेरणा और सामग्री दोनों यथार्थ से उपलब्ध होनी चाहिए। कोई विशिष्ट घटना कवि द्वारा प्रतिपादित परिस्थितियों के कारण सर्वव्यापक और काव्यात्मक बन जाती है।"[१] यहाँ पर गेटे ने अपनी समस्त कविताओं को अवसर-प्रेरित प्रतिपादन कर उन्हें वास्तविक जीवन से प्रेरणा प्राप्त करनेवाली कहा है, जिनका एक सुदृढ़ आधार है, "हवा में झपट्टा मारकर वे नहीं लिखी गयीं।"

यथार्थता में काव्यात्मक रोचकता

आगे चलकर वह कहता है, "यह कहना ठीक नहीं कि यथार्थता में काव्यात्मक रोचकता का अभाव रहता है, क्योंकि इसी में तो कवि का व्यवसाय निहित है। सामान्य विषय में किसी मनोरंजक पक्ष के उद्घाटन में उसकी कला की सार्थकता है। यथार्थता से ही प्रेरक हेतु, अभिव्यंजनीय कथन और सारतत्त्व की उपलब्धि होती है, लेकिन इसमें से एक सुन्दर सजीव रचना का निर्माण करना, यह कवि का काम है। मतलब यह कि ऐसा ही विषय चुनना चाहिए जिस पर कवि का पूरा अधिकार हो। बड़ी कविता में यह संभव नहीं, उसके किसी भी अंश की उपेक्षा नहीं की जा सकती। युवावस्था का ज्ञान एकांगी होता है। किसी महान् कृति में अनेक पक्षों का ज्ञान आवश्यक है और युवा लेखक इस चट्टान से टकराकर चकनाचूर हो जाता है।"[२]

कविता की वस्तुनिष्ठता

कविता आत्मनिष्ठ हो या वस्तुनिष्ठ? इस सम्बन्ध में चर्चा करते हुए गेटे ने कहा है, 'हमारे अधिकांश नवयुवक कवियों में केवल यही दोष है कि उनकी आत्म-निष्ठता महत्त्वपूर्ण नहीं है और वस्तुनिष्ठता में कोई सामग्री उन्हें दिखाई नहीं देती। अधिक से-अधिक, उन्हें ऐसी सामग्री मिलती है जो उनके अपने ही समान हो जो उनके आत्म-तत्त्व से मिलती-जुलती हो। लेकिन जहाँ तक सामग्री को अपने गुण के आधार पर लेने का प्रश्न है—केवल इसलिए कि वह काव्यात्मक है, चाहे वह भी नवत्व व प्रतिकूल ही क्यों न हो—उसे कोई सोच भी नहीं सकता।"[३] गेटे ने कविता की आत्मनिष्ठता को 'अपने युग का सामान्य रोग'[४] घोषित कर अस्वीकार किया है कविता का मूल वास्तु वस्तुता में सन्निहित है।

गेटे की मान्यता है कि किसी वस्तु का काव्यात्मक अथवा अकाव्यात्मक होना कवि के उचित प्रयोग पर ही निर्भर है। वह कहता है, 'हमारे जर्मन सौंदर्यशास्त्र

१—वही, पृ० ८
२—वह
३—वही पृ० ३२, ५७
४—वही पृ० १३५

वे पंडित सदैव काव्यात्मक और अकाव्यात्मक वस्तुओं के सम्बंध में चर्चा किया करते हैं, और किसी अंश में उनका कथन बिल्कुल गलत भी नहीं है। फिर भी मूलत कोई वास्तविक वस्तु अकाव्यात्मक नहीं होती, बशर्ते कि कवि अपनी कविता में उसका समुचित प्रयोग कर सके।"[1] वस्तुत परिस्थितियों की सजीव अनुभूति और उसकी अभिव्यंजना शक्ति को ही गेटे ने कवित्व शक्ति माना है।[2] स्वयं गेटे ने ऐसी कोई चीज नहीं लिखी जिसका अनुभव उसने स्वयं न किया हो और जिसे लिखने के लिए उसे अन्त प्रेरणा न मिली हो। वह कहता है, 'प्रेम करने के बाद ही मैंने प्रेम गीतों की रचना की है, अब बिना घृणा किये घृणा के गीत कैसे लिखूं।"[3]

कविता में नैतिकता

गेटे के अनुसार, कविता शिक्षात्मक होनी चाहिए लेकिन प्रच्छन्न रूप से।[4] कविता का काम है कि पाठक का ध्यान उस विचार की ओर आकर्षित करे जो मूल्यवान् होकर उसके पास पहुंचने वाला है, लेकिन पाठक को इससे स्वयमेव शिक्षा ग्रहण करना चाहिए जैसे कि वह जीवन से ग्रहण करता है। उपदेशात्मक कविता को गेटे ने कविता और वक्तृत्व कला के बीच की रचना माना है। कभी वह एक ओर झुक जाती है कभी दूसरी ओर, और तदनुसार उसका काव्य मूल्य आंका जाता है। परन्तु वर्णनात्मक और व्यंग्यात्मक कविता की भांति वह हमेशा गौण एवं अप्रधान काव्य का प्रकार मानी जाती है। परन्तु लय और स्वरमाधुर्य तथा कल्पनाशक्ति से अलंकृत, तथा मोहक और ओजपूर्ण शैली में लिखी हुई उपदेशात्मक कविता—अर्थात्, उत्कृष्ट कलाकृति - की आंतरिक महत्ता किसी भी प्रकार कम नहीं समझनी चाहिए।

उपदेशात्मक कविता को गेटे ने इसलिए महत्त्वपूर्ण स्वीकार किया है कि वह लोक हृदय को स्पर्श करता है। उपयोगी ज्ञान के एक परिच्छेद को इस शैली में लिखकर अत्यन्त प्रतिभाशाली कवि भी अपने आपको सम्मानित अनुभव करते हैं।

१—वही, पृ० २११

२—वही, पृ० ११६

३—वही, पृ० ३६१

४—अन्यत्र गेटे ने लिखा है कि कोई सुंदर कलाकृति नैतिक प्रभाव पैदा कर सकती है और वह करेगी लेकिन कलाकार से किसी नैतिक प्रयोजन की अपेक्षा करना, उसकी कला का सर्वनाश करना है। द आटोबायोग्राफी ३, १२ (१८१४), २४ ३-२ एव० जे० वेइगड, गेटे, विज्डम एँड एक्सपीरिएन्स, पृ० २२६ लंदन १९४६ पर से।

अग्रेजी के पास इस शैली के अत्यन्त प्रशंसनीय उदाहरण हैं। इसके लिए गेटे ने उपयुक्त हास्य को सबसे प्रभावशाली बताया है।[1]

कलासौंदर्य

गेटे के अनुसार, कला का उच्चतम उद्देश्य है, यथासंभव मानव रूपों का इस प्रकार चित्रण करना जिससे कि वे अधिक से अधिक प्रभावशाली और सुन्दर बन सकें।[2] कला रचनात्मक होती है जो सौन्दर्य का निश्चय करती है।[3] सौंदर्यवादियों ने सौंदर्य को एक ऐसी अनिर्वचनीय वस्तु माना है जिसकी कल्पना गूढ़ शब्दों द्वारा की जाती है। लेकिन गेटे इस परिभाषा से सहमत नहीं है। उसके अनुसार, "सौंदर्य एक ऐसा मौलिक विषय है जो कभी दृष्टिगोचर नहीं होता, लेकिन इसका प्रतिबिम्ब सृजनशील मस्तिष्क की हजारों विविध उक्तियों में दिखायी देता है तथा इसमें इतनी विविधता है जितनी स्वयं प्रकृति में।" इस प्रसंग पर एकरमैन ने प्रश्न किया, 'क्या प्रकृति सदैव सुन्दर है?' उत्तर में गेटे ने कहा, 'प्रकृति प्रायः अप्राप्य सौन्दर्य का उद्घाटन करती है, किन्तु मेरी समझ में यह कदापि ठीक नहीं कि वह अपने समस्त रूपों में सुन्दर ही हो। प्रकृति का आशय निश्चय ही उत्तम है, लेकिन उसे पूर्ण रूप से अभिव्यक्त करनेवाली परिस्थितियाँ ऐसी नहीं हैं।"[4]

प्राचीनों के प्रति आस्था

गेटे ने यूनान और रोम के प्राचीन कवियों और समीक्षकों को अनुकरणीय बताया है। उसने लिखा है कि लोग प्राचीन साहित्य के अध्ययन की बात करते हैं, लेकिन उसका यही तात्पर्य समझना चाहिए कि हम अपना ध्यान यथार्थ विश्व की ओर केंद्रित कर उसे अभिव्यक्त करें।[5] उसका कहना है कि यदि कोई कुलीन व्यक्ति अपने चरित्र और मानसिक उन्नयन में उन्नत होना चाहता है तो उसे यूनान और रोम के प्राचीन साहित्यकारों की रचनाओं का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए जिससे कि वह उन जैसा बन सके।[6] इस सम्बन्ध में गेटे ने होमर, और हेसिओद आदि कवियों का नामोल्लेख किया है जिनकी दी हुई वसीयत का हम श्रद्धा के साथ सम्मान करना चाहिये।[7]

१—गेटेज लिटरेरी एसेज, ऑन डाइडक्टिक पोएट्री, पृ० १३०–३१।
२—टू मेयर, अप्रैल २७, १७८९, गेटे, विज्डम एँड एक्सपीरिएंस, पृ० २२३ पर से।
३—वही पृ० २२४।
४—कॉनवरसेशन्स आफ गेटे, पृ० १९२।
५—वही पृ० १२६
६—वही, पृ० १८६, १६६
७—गेटे, विज्डम एंड एक्सपीरिएंस, पृ २३१

यूनानियो के सम्बन्ध मे गेटे ने कहा है कि उन्होंने ही जीवन के स्वप्नों का सुन्दरतम रूप मे साक्षात्कार किया था।[1] प्राचीनों के कब्रिस्तान से बहकर आनेवाली सुगधी को गेटे ने इतनी ही आकर्षक बताया है जितनी कि गुलाबो के वन से बहकर आनेवाली सुगधी को।[2]

गेटे ने अग्रेजी साहित्य की भी खूब प्रशसा की है। जर्मन साहित्य को उसने अग्रेजी साहित्य की ही उपज बताया है। एकरमैन को सम्बोधन करके उसने कहा है, "हमारे उपन्यास और दुखान्त नाटको का कहाँ से आविर्भाव हुआ? गोल्डस्मिथ, फील्डिग और शेक्सपियर से ही न?" तथा जर्मनी में क्या कोई ऐसे तीन लेखको का नाम गिना सकते हो जो लॉर्ड बायरन, मूर और वाल्टर स्कॉट की बराबरी कर सकें?"[3] वस्तुत केवल जर्मन कवि और उपन्यासकार ही अग्रेजी लेखकों से प्रभावित नहीं हुए स्वच्छन्दतावादी लेखकों के समीक्षा सिद्धान्तों को भी उन्होंने प्रभावित किया।

स्वच्छन्दतावादी और यथार्थवादी धाराओं का विकास

इस प्रकार हम देखते हैं कि गेटे ने अपने स्फुट निबन्धो तथा वार्तालापों में महाकाव्य, नाट्य कविता, समीक्षा, फ्रेंच समीक्षा की पद्धति, कविता की सर्वव्यापकता, सौंदर्य, अरिस्टोटल के काव्यशास्त्र का परिशिष्ट, तथा शेक्सपियर बायरन और मोलियर आदि की रचनाओं पर महत्त्वपूर्ण विचार प्रकट किये हैं।

गेटे के साथ ही हम उन्नीसवी शताब्दी में प्रवेश करते हैं—जिस शताब्दी में स्वच्छन्दतावादी और यथार्थवादी ये दोनों साहित्यिक धाराएँ चरम विकास को प्राप्त हुई। इसी शताब्दी में फ्रांस में बाल्जाक, विक्टर ह्यूगो, ड्यूमा, मोपासा, अनातोले फ्रास जैसे उपन्यासकारों और कहानी लेखकों, जर्मनी में इब्सन और हॉप्टमैन जैसे नाटककारों, तथा हीगल, मार्क्स और नीत्शे जैसे दार्शनिकों, रूस में पुश्किन, गोगोल, तुर्गनेव, तालस्ताय, दास्तायवस्की और चेखव जैसे कवि, कथाकारों और नाटककारों, बेलिन्स्की और चर्निशेव्स्की जसे आलोचकों, तथा इग्लैड में वर्ड्सवर्थ, कॉलरिज बायरन शैली, कीट्स, टेनासेन जैसे कवि, तथा वाल्टर स्कॉट, चार्ल्स डिकेन्स, थैकरे, जॉर्ज इलियट और टामस हार्डी जैसे उपन्यासकारों और मैथ्यू आर्नल्ड, रस्किन और विलियम मौरिस जैसे आलोचकों का प्रादुर्भाव हुआ जिन्होंने पाश्चात्य साहित्य के गुण गौरव को समृद्ध और समुन्नत बनाया।

कहना न होगा कि गेटे के विचारों और उसकी रचनाओ का प्रभाव उत्तरकालीन स्वच्छन्दतावाद पर पर्याप्त रूप में पडा।

१—वही पृ० २३४
२—वही पृ० २३०
३—कानवरसेशन आफ गेटे, पृ० ७४

विलियम वर्ड्सवर्थ (१७७०–१८५०)

स्वच्छन्दतावादी काव्ययुग का प्रवर्तक

वर्ड्सवर्थ स्वच्छन्दतावादी काव्ययुग का प्रवर्तक माना जाता है। इसके पूर्व नव्यशास्त्रवादी परम्परा का जोर था। परम्परावादी आलोचक काव्यरचना में काव्यरूढ़ियों के पालन, प्रकृति के अनुकरण, और काव्य की परिशुद्धता आदि के सम्बन्ध में वाद विवाद किया करते थे। इन वाद विवादों का अन्त हुआ सन् १७९८ में वर्ड्सवर्थ और कॉलरिज की युगान्तरकारी लिरिकल बैलेड्स (गीतात्मक लोक-गीत) नामक रचना के प्रकाशन से। दो वर्ष बाद ही इस काव्यसंग्रह का दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ जिसकी भूमिका में साहित्य समीक्षा सम्बन्धी सिद्धान्तों की स्थापना की गयी, जिसे स्वच्छन्दतावाद के मूलभूत घोषणापत्र के रूप में मान्य किया गया। भूमिका के प्रारम्भ में वर्ड्सवर्थ ने लिखा है, "ऐसे कितने कारण हैं जो पहले समय में अज्ञात थे—आज अपनी संयुक्त शक्ति के साथ, मस्तिष्क की विवेक-बुद्धि को कुंठित करने, उसे स्वतन्त्र प्रयत्नों के लिए अयोग्य बनाने तथा उसे एकदम अगम्य और जड़ दशा को पहुँचाने में संलग्न हैं। इनमें सबसे प्रभावशाली कारण है प्रतिदिन होनेवाली राष्ट्रीय घटनाएँ तथा नगरों की जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि। परिणाम यह हुआ कि पेशों की एकरूपता के कारण असाधारण घटनाओं के प्रति लोगों में प्रबल आकांक्षा जागृत हुई, जिसे द्रुतगति से प्रकाशित होने वाले समाचारपत्र घंटे घंटे में तृप्त करने लगे। साहित्य तथा नाट्य प्रदर्शनों ने अपने को जीवन की इस प्रवृत्ति तथा आचार विचार के अनुकूल बना लिया।' शेक्सपियर और मिल्टन जैसे कवियों की उपेक्षा के सम्बन्ध में वर्ड्सवर्थ ने लिखा है 'शेक्सपियर और मिल्टन जैसे हमारे वयोवृद्ध लेखकों की बहुमूल्य कृतियों की उपेक्षा होने लगी है। उनका स्थान उत्तेजनात्मक उपन्यास, रुग्ण तथा बेहूदा जर्मन ट्रेजेडी तथा पद्यबद्ध निरर्थक मर्यादाविहीन कहानियों ने ले लिया है।"[1]

दरअसल १७९८ के पूर्व प्रायः तीस वर्षों के काल में, शास्त्रवाद के विघटन की प्रक्रिया आरम्भ हो चुकी थी जिससे स्वच्छन्दतावाद की भूमिका तैयार होती आ रही थी। १७७० के बाद केवल कविता में ही नहीं गद्य में भी परंपरा और रूढ़िवाद को तिलांजलि देकर, साहित्य में होनेवाले नवीन प्रयोग समीक्षा को स्वच्छन्दतावाद की ओर ढकेल रहे थे। कल्पनाप्रधान साहित्य के इस नवीन युग

१—विलियम वर्ड्सवर्थ पोएट्री एण्ड पोएटिक डिक्शन, पृ० १, नाइण्टीन्थ सेंचुरी क्रिटिकल एसेज, एडमण्ड जोन्स।

में अनेक विशेषताएँ दृष्टिगोचर होने लगी—जैसे, प्रकृति के प्रति उत्कट प्रेम, अज्ञात अलौकिक रहस्य भावना में गहरी आस्था, जीवन के कौतूहल और अध्यात्मवाद की ओर सकेत, व्यक्तिवाद, नये पूजीवादी सामाजिक सम्बन्धो के प्रति असन्तोष, सरलता तथा मानवता।

वड्र्सवथ मनोवैज्ञानिक आलोचक

वड्सवथ की कविता में स्वच्छन्दवाद की प्राय सभी विशेषताएँ दिखायी देती हैं। उसने प्रकृति और मानव का एक मानववादी अभिनव दृष्टिकोण से अवलोकन कर नूतन शैली में अपने विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान की। वस्तुत उन दिनों साहित्यिक समीक्षा में मनोविज्ञान का महत्व बढ़ रहा था। जिज्ञासाएँ की जा रही थी कि साहित्य का जन्म किन परिस्थितियों में हुआ। इसका उत्तर साहित्य के मनोवैज्ञानिक मौलिक तत्त्वो का लेखा जोखा प्रस्तुत करने पर ही दिया जा सकता था। 'लिरिकल बैलेडस' की भूमिका में वड्सवथ ने इन प्रश्नों का समाधान किया। वह लिखता है, "सामान्य भूमि पर इस विषय का विवेचन करते हुए, मैं पूछना चाहूँगा कवि शब्द का क्या अथ है? कवि किसे कहते हैं? वह किसको सम्बोधन करके लिखता है? उससे किस भाषा की अपेक्षा की जाती है?—वह मानव है, जो मानव को सम्बोधित करके लिखता है: हाँ, वह ऐसा मानव है जिसमें अधिक प्रौढ सम्वेदना शक्ति है, अधिक उत्साह है और अधिक सौकुमाय है, मानव स्वभाव का उसे अधिक ज्ञान है, तथा सामान्य मानव का अपेक्षा उसकी आत्मा अधिक व्यापक है। वह एक ऐसा मानव है जो अपने राग विराग और सकल्प विकल्प से सन्तुष्ट रहता है, तथा वह अपने जीवन के तत्त्वों में औरों की अपेक्षा अधिक रस लेता है। इसी प्रकार के सकल्प विकल्प और राग विराग जो विश्व में दिखायी देते हैं, उनका विचार कर वह आनन्दित होता है, तथा जहाँ उसे वे दृष्टिगोचर नहीं होते, वहाँ स्वभावत उनका सृजन करने के लिए वह प्रेरित होता है। इसमें उसने एक और मनोवृत्ति जोड दी है, वह यह कि अप्रत्यक्ष वस्तुओं से हम ऐसे प्रभावित होते हैं मानो वे प्रत्यक्ष हों। यह एक ऐसी योग्यता है जो अपने आपमे भावावेशों का एक जादुई असर पैदा करती है—ऐसे भावावेग जो वास्तविक घटनाओं से उत्पन्न भावावेशो से नितान्त भिन्न होते हैं—फिर भी वास्तविक घटनाओं से उत्पन्न भावावेशों से साम्य रखते हैं।"[1]

कवि का वैशिष्ट्य

प्रश्न होता है कि किन बातों में कवि दूसरों से भिन्न है। वडसवथ का कथन है कि वह उनसे केवल मात्रा में भिन्न है प्रकार का भेद उसमें नहीं है। यह

१—वही प० ११-१२

लिखता है, "कवि तात्कालिक बाह्य उत्तेजना के बिना भी, सामान्य मानव की अपेक्षा अधिक तत्परता से विचार और अनुभव कर सकता है, तथा इस प्रकार के विचारों और भावों को अभिव्यक्ति प्रदान करने की उसमें अधिक क्षमता है।"[1] इस प्रकार के विचार और भाव सामान्य मानव के ही विचार और भाव होते हैं। उनका सम्बन्ध किससे होता है ? वर्डसवर्थ ने इनका सम्बन्ध नैतिक भावनाओं, प्राकृतिक सम्वेदनाओं तथा उन कारणों से बताया है जो इनकी उत्पत्ति में कारण होते हैं। कवि इसी प्रकार के भावों और सम्वेदनाओं का प्ररूपण करता है, क्योंकि ये ही भाव और सम्वेदनाएँ अन्य मानवों में पायी जाती हैं, और इसी प्रकार के विषयों में उनकी रुचि होती है। वर्डसवर्थ ने लिखा है, कवि मानवीय मनोभावों के अनुरूप ही सोचता और अनुभव करता है। ऐसी हालत में, विशद तथा स्पष्ट रूप में सोचनेवाले अन्य मानवों से, उसकी भाषा तात्विक रूप से भिन्न कैसे हो सकती है ?' इसी को और स्पष्ट करते हुए वर्डसवर्थ कहता है "लेकिन कवि कवियों के लिए नहीं लिखते, जनसाधारण के लिए लिखते हैं। इसलिए यदि हम अज्ञानजन्य प्रशंसा तथा जिस बात को हम नहीं समझते, उससे उत्पन्न आनन्द के समर्थक नहीं हैं तो कवि को अपनी कल्पित ऊँचाई से उतरना होगा, तथा बौद्धिक सहानुभूति जागृत करने के लिए, उसे अन्य लोगों की भाँति ही अपनी अभिव्यक्ति करनी होगी।"[2] कवि जब जन साधारण की वास्तविक भाषा को आधार बनाकर अपनी रचना करता है तो उसके "कदम सुरक्षित भूमि की ओर पड़ते हैं।" इस प्रकार वर्ड्सवर्थ काव्य सृजन में कवि की मानसिक स्थिति का विश्लेषण करते हुए साहित्य के मूलभूत मनोवैज्ञानिक तत्त्वों की ओर लक्ष्य करता है।

काव्यशैली

रूप से कवि की दया का पात्र रहना पडता है, जिस किसी बिम्ब अथवा शैली से वह मनोभावों का सम्बन्ध स्थापित करे, उसके प्रति उसे सम्मान का भाव प्रदर्शित करना होता है। दूसरी अवस्था में, छन्द कतिपय नियमों में बंधकर चलता है—जिसे कवि और पाठक दोनो स्वेच्छा से स्वीकार करते हैं, क्योंकि वे निश्चित होते हैं तथा उनकी ओर से मनोभावो मे किसी प्रकार का अवरोध उपस्थित नही किया जाता।"[१]

वर्ड्सवर्थ की मान्यता है कि लय और छन्द में कविता लिखने से ही वह जन-सामान्य की भाषा[२] में लिखी जा सकती है। लय और छन्द के समर्थन की प्रारम्भिक अवस्था के लिए आवश्यक काव्यसृजन की पद्धति के सम्बन्ध में उसने लिखा है, "कविता उदात्त अनुभूतियों का स्वतः स्फूर्त प्रवाह है, और उसका जन्म शान्ति के क्षणों में स्मरण किये हुए आवेगों से होता है।" अरिस्टोटल की भाँति उसने कथानक अथवा परिस्थिति को मुख्य न मानकर अनुभूति को ही मुख्य बताया है। इसकी प्रक्रिया के सम्बन्ध मे वर्ड्सवर्थ लिखता है, "इस भाव का चिन्तन किया जाता है एक प्रकार की प्रतिक्रिया द्वारा। अक्षुब्ध अवस्था का शनैः-शनैः लोप हो जाता है, तथा पहले भाव के समान—जो कि चिन्तन का विषय था—एक नये भाव का शनैः-शनैः उद्भव होता है और वह मानस में स्थित हो जाता है। इसी मानसिक स्थिति में सामान्यतया सफल रचना का सूत्रपात होता है और इसी स्थिति मे यह आगे बढ़ती जाती है। लेकिन विविध कारणों से उत्पन्न भावावेग, वह चाहे किसी प्रकार का क्यों न हो और चाहे कितनी ही मात्रा में क्या न हो विविध प्रकार की आनन्द भावनाओं से संयुक्त होता है जिससे कि किन्हीं भी मनोभावों का निरूपण करते हुए—जिनका स्वेच्छा से निरूपण किया गया है—मस्तिष्क, कुल मिलाकर, आनन्द की अवस्था को प्राप्त होता है।"[३]

काव्य निर्णय के लिये वर्ड्सवर्थ ने 'सचाई' (सिन्सियरिटी) पर जोर दिया है। कवि के लिये यह आवश्यक है कि काव्यसृजन के समय वह अनुप्राणित हुआ हो—उसका हृदय निष्प्राण न पड़ा रह गया हो, उसकी आत्मा उद्यमशील रही हो। यदि कवि में भावपूर्ण हृदय की कमी है तो वह कार्यशील नही हो सकता। इस प्रकार संवेदना और निर्णय को लेखक की मनोदशा की अनुभूति पर आश्रित बताया गया है।[४]

१—वही प० १८–१९।

२—ड्राइडन, इलियट और एजरा पाउण्ड ने भी कविता के लिए बोलचाल की भाषा का समर्थन किया है।

३—वही, प० २२

४—रेने वले, ए हिस्ट्री आफ माडर्न क्रिटिसिज्म २, पृ० १३७

काव्य की भाषा

कवि के सम्बन्ध में टी० एस० इलियट ने लिखा है, "कवि के पास अभिव्यक्त करने के लिए कोई 'व्यक्तित्व' नहीं है, किन्तु एक माध्यम है जो कि केवल एक माध्यम है, व्यक्तित्व नहीं—जिसमें मन पर पड़े हुए प्रभाव और अनुभव एक विचित्र और आशातीत रूप में मिश्रित होते हैं ।" कहने की आवश्यकता नहीं कि कविता का यह माध्यम भाषा है और निश्चय ही भाषा में बहुत क्षमता है। सिडनी के अनुसार, कवि वह होता है जो समुन्नत जगत् को प्रत्ययात्मक रूप में प्रस्तुत कर सके। ड्राइडन की मान्यता थी कि नाटकीय कवि का कर्तव्य है कि वह मानव स्वभाव का एक समुचित और सजीव चित्र उपस्थित करे जो भाषा द्वारा ही सम्भव हो सकता है। लेकिन वर्ड्सवर्थ ने शब्दों के प्रयोग की अपेक्षा कवि के लिए उसकी मानसिक दशा को अधिक महत्त्वपूर्ण बताया है[1] जिससे कि वह पाठकों के मस्तिष्क को आवश्यक रूप से अमुक अंश में प्रबुद्ध बना सके।

रूपतत्त्व और विषयवस्तु की समस्या ?

वर्ड्सवर्थ ने कहा है कि कवि क्या लिखता है और जो कुछ वह लिखता है वह क्यों महत्त्वपूर्ण है। लेकिन इस कथन से यह स्पष्ट नहीं होता कि कवि अपनी रचना शैली को किस प्रकार प्रभावित करता है तथा कविता—जो कि एक व्यक्तिगत साहित्यिक कला है—किस प्रकार अभिव्यक्ति के अन्य रूपों से भिन्न है। कविता के छन्दों को उसने कविता की वैकल्पिक शोभा माना, तथा काव्यशैली के सम्बन्ध में उसने घोषित किया कि चूँकि कविता का सम्बन्ध मानव और प्रकृति सम्बन्धी भव्य और मूलभूत तथ्यों से होता है, अतएव कवि को 'क्षणिक और प्रासंगिक अलंकारों' से दूर रहते हुए सरल तथा तात्त्विक भाषा का ही प्रयोग करना चाहिए। लेकिन फिर भी रूपतत्त्व और विषयवस्तु की पुरातन समस्या ज्यों-की त्यों बनी रह गयी। एलैक्जैण्डर पोप और जॉन ड्राइडन की भाँति, वर्ड्सवर्थ ने कविता को, व्याख्यायोग्य विषयवस्तु को कौशलपूर्ण मनोहर छन्द-रचना में प्रस्तुत करनेवाली स्वीकार नहीं किया—उसे अनुभूति की अपूर्वता ही माना। लेकिन इस अपूर्व अनुभूति की सहायता से कवि किस प्रकार अपूर्व विषयवस्तु तक पहुँचता है, यह फिर भी स्पष्ट नहीं हो सका।

१—डब्ल्यू० एस० ऑडेन प्रश्न करता है—"तुम कविता क्यों लिखना चाहते हो ?" यदि नवयुवक उत्तर देता है : "मुझे कुछ महत्त्वपूर्ण बातें कहनी हैं", तो उसे कवि नहीं कहा जा सकता। यदि उसका उत्तर है : 'मैं शब्दों के इर्दगिर्द लटका रहकर सुनना चाहता हूँ कि वे क्या कहते हैं," तो सम्भव है वह कवि होने जा रहा है। डेविड डैचीज़, क्रिटिकल अप्रोचेज टू लिटरेचर, पृ० १२१।

कहा जा चुका है कि सिडनी ने कविता को एक आदर्श जगत् की रचना स्वीकार किया है, लेकिन यह आदर्श जगत् एक प्रत्ययात्मक रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए जिससे कि पाठकगण इसका अनुकरण करने के लिए क्रियाशील हो सकें। इस प्रकार हम देखते हैं कि सिडनी ने रूपतत्व और विषयवस्तु के भेद को स्पष्ट कर दिया। ड्राइडन की मान्यता है कि कवि 'मानव प्रकृति के समुचित और सजीव चित्र" प्रस्तुत करता है। यहाँ 'समुचित' शब्द से उसने विषयवस्तु तथा 'सजीव' शब्द से रूपतत्त्व पर जोर देते हुए दोनों का अन्तर प्रतिपादित किया है। किन्तु वर्ड्सवर्थ के कथन के अन्तर्गत कवि की अनुभूति से औचित्य और सजीवता ही परिलक्षित होती है, रूपतत्त्व और विषयवस्तु की समस्या का हल इससे नहीं होता। कॉलरिज ने अपने ढंग से इसे हल करने का प्रयत्न किया है।[1] अरिस्टोटल की विवेचन प्रणाली का अनुसरण करके उसने सौन्दर्य तत्त्व के विवेचन को दार्शनिक चिन्तन का विषय बना दिया।

आनन्द, कविता का नैतिक धर्म

अरिस्टोटल ने कविता में सौंदर्यवाद की प्रतिष्ठा करते हुए उसमें आनंद को मुख्य माना है लेकिन यह आनन्द नैतिक सिद्धान्तों की ओर हमें नहीं ले जाता। सिडनी ने काव्य न्याय में सदाचार को प्रमुख स्थान दिया है, लेकिन उसने जो आदर्श संसार की कल्पना की है—ऐसा संसार जिसका अनुकरण करना कोई भी पाठक पसन्द करेगा—वह वर्ड्सवर्थ की मान्यता से मेल नहीं खाता। वर्ड्सवर्थ ने कवि को 'मानव की नैसर्गिक और अपरिच्छिन्न गरिमा के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए' चित्रित किया है। वह लिखता है, "तात्कालिक आनन्द प्रदान करने को कविकला का अपकर्ष न समझा जाय। बात इससे बिल्कुल उल्टी है। यह सृष्टि के सौंदर्य की स्वीकृति है, यह एक ऐसी स्वीकृति है जो अधिक अकृत्रिम है, क्योंकि यह औपचारिक नहीं वरन् अप्रत्यक्ष है। यह कार्य उनके लिए सरल और सहज है जो संसार को प्रेमभाव से देखता है। यह मानव की नैसर्गिक और अपरिच्छिन्न गरिमा के प्रति श्रद्धांजलि है, आनन्द के भव्य और मूलभूत सिद्धान्तों के प्रति सम्मान की भावना है जिसके द्वारा कवि अनुभव करता है, जीवित रहता है और सक्रिय रहता है। हमारी केवल उसी के प्रति सहानुभूति होती है जो आनन्द से उत्पन्न होता है। हम जहाँ कहीं किसी के दुख में सहानुभूति व्यक्त करते हैं, वह सहानुभूति आनन्द के सूक्ष्म संयोग से उत्पन्न और अग्रसर होती है।"[2] मतलब यह कि काव्यगत आनन्द को वर्ड्सवर्थ ने उदात्त स्वीकार किया है।

१—वही, पृ० ९७-९८

२—विलियम वर्ड्सवर्थ, पोयट्री एण्ड पोएटिक डिक्शन, पृ० १४।

हडसन ने नैतिक शिक्षा की अपेक्षा आनन्द को ही काव्य का मुख्य प्रयोजन स्वीकार किया है, इससे भी वर्ड्सवर्थ सहमत नहीं है। जॉनसन ने काव्य में आनन्द और सत्य का सम्मिश्रण स्वीकार किया है, यह भी वर्ड्सवर्थ को मान्य नहीं। वर्ड्सवर्थ के अनुसार, न समुन्नत स्वभाववाले कवि जगत् से, न कवि के सावधानीपूर्ण निरीक्षण की परिशुद्धता से और न उसकी पद्यबद्ध रचना की परिष्कृति और रमणीयता से ही आनन्द की प्राप्ति होती है। मानव तथा प्रकृति में परिभाषा में समान रूप से निर्दिष्ट मौलिक सिद्धान्तों को ठोस तथा इन्द्रियग्राह्य शब्दावली द्वारा अभिव्यक्त करने की कवि योग्यता को उसने आनन्द स्वीकार किया है। मानव और प्रकृति को परस्पर सम्बद्ध प्रतिपादित करते हुए वह लिखता है 'कवि समझता है कि मानव और प्रकृति मूलतः एक-दूसरे में मिले हुए हैं, तथा मानव मन स्वभावतः प्रकृति के सर्वोत्कृष्ट और सर्वाधिक सुन्दर तत्वों का दर्पण है। और इस प्रकार कवि आनन्द की भावना से—जो उसके सम्पूर्ण अध्ययनक्रम में साथ रहती है—प्रेरित होकर सामान्य प्रकृति से वार्तालाप करता है ।'[1]

वर्ड्सवर्थ ने कविता को समस्त ज्ञान का प्राण तथा उत्कृष्ट आत्मा कहा है, यह एक भावावेशपूर्ण अभिव्यक्ति है जो समस्त विज्ञान की मुखाकृति से प्रकट होती है। शेक्सपियर के शब्दों में 'कवि आगे और पीछे दोनों तरफ देखता है।' कवि मानव स्वभाव की सुरक्षा के लिए चट्टान का काम करता है, वह समर्थक और रक्षक है, अपने साथ वह सम्बन्ध और प्रेम लिये रहता है। भूमि और जलवायु भाषा और तौर तरीके, कायदे कानून और रीति रिवाज का भेदभाव रहते हुए भी, तथा कुछ चीजों के चुपचाप मस्तिष्क से बाहर निकल जाने और कुछ के भीषण रूप से नष्ट हो जाने पर भी, कवि समस्त भूमंडल पर सदैव फैले हुए मानव समाज के विशाल साम्राज्य को अपने भावावेश और ज्ञान के द्वारा एक सूत्र में बाँध देता है।"[2] वर्ड्सवर्थ ने कविता को समस्त ज्ञान का आदि और अंत स्वीकार किया है। कविता को मानव हृदय की भाँति उसने अमर बताया है। उसने लिखा है 'यदि वैज्ञानिकों के प्रयत्न कभी हमारी स्थिति में तथा जिन प्रभावों को हम स्वाभावतः ग्रहण करते हैं उनमें, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, कोई तात्विक क्रांति उत्पन्न कर दें, तो भी कवि सोता नहीं रहेगा—जैसा कि वह आजकल नहीं सोता हुआ है। वह वैज्ञानिकों के चरण चिह्नों का अनुकरण करने के लिए प्रस्तुत रहेगा—केवल उन सामान्य अप्रत्यक्ष प्रभावों में ही नहीं वरन् स्वयं विज्ञान सम्बन्धी विषयों में संवेदना जागृत करने के लिए भी वह उनके साथ रहेगा।"[3]

१—वही, पृ० १५।
२—वही, पृ० १६
३—वही

इस प्रकार वर्ड्सवर्थ ने मानव तथा प्राकृतिक कार्यकलाप के अन्तस्तल में विद्यमान आनन्द को काव्य का नैतिक धर्म प्रतिपादित कर 'सम्बन्धों और प्रेम' के आधार पर मानव और प्रकृति के मौलिक मूल्यों की ओर लक्ष्य किया है। यूनानी समीक्षकों की भाँति, कविता को अनुकृति की अनुकृति न मानकर, उसे एक ठोस और इंद्रिय ग्राह्य चित्र कहा है जो हमें आनन्द प्रदान करता है तथा साथ ही आनन्द का व्यापक महत्ता पर प्रकाश डालता है।

काव्यसिद्धान्त

वर्ड्सवर्थ के काव्यसिद्धान्त प्रकृतिप्रेम पर आधारित हैं। उसके संबंध में कहा गया है, 'प्रकृति में जो कुछ प्रगाढ़ और सारभूत है उसके लिये वर्ड्सवर्थ में जो दृष्टि थी, वह समस्त आधुनिक कवियों में सबसे पैनी थी।" प्रकृति का चिन्तन करते हुए ही कवि की मनोदशा अपने सर्वोत्तम रूप में अभिव्यक्ति प्राप्त करता है। प्रकृति के मूलभूत सिद्धान्तों को उसने सामान्य जीवन से पृथक स्वीकार कर काव्य के अन्तरंग की प्रतिष्ठा की है। परिष्कृत और परिमार्जित शैली के स्थान पर उसने कविता में स्वतःनिस्सृत अभिव्यक्ति को मुख्य माना है। काव्य की कथावस्तु के स्थान पर कवि की अनुभूति पर जोर देते हुए कहा गया है कि अनुभूति के कारण ही काव्य में मनोभावों और स्थिति को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त होता है। कला के लिए ही अनुभूति को उसने महत्त्व दिया अनुभूति के लिए कला को नहीं। 'आवश्यक मनोभावों' के लिए उत्कृष्ट भूमि तैयार करना ही काव्य का उद्देश्य माना गया है। अलंकारपूर्ण भाषा को छोड़ सरल ग्रामीण जनों की भाषा को अपनाने का उसने कवियों को आदेश दिया है।[1] उस समय कवि परियों और देवियों के वर्णन में विशेष रूप से संलग्न थे। उसका कहना था ग्राम्य कथाओं और कृषकों की गहन अनुभूतियों का चित्रण क्यों न किया जाय? और इसके लिए सामान्य जीवन से घटनाओं और परिस्थितियों का चयन करना मुख्य है। इन घटनाओं और परिस्थितियों पर कवि अपनी कल्पना का रंग चढ़ाता है जिससे साधारण वस्तुएँ भी असाधारण रूप में दिखायी देने लगती हैं। वस्तुतः पाठकों के मानस को प्रबुद्ध करना ही यहाँ काव्य का मूल्य स्वीकार किया गया है। वर्ड्सवर्थ ने लिखा है, "इन कविताओं का मुख्य उद्देश्य था घटनाओं और परिस्थितियों का

१—लांजाइनस या दांते का मत इससे विपरीत था। दांते ने लिखा है "कविता तथा उसके उपयुक्त भाषा एक श्रमसम्पादित कष्टसाध्य कार्य है।" इसलिए उसने 'ग्राम्य भाषा से बचने का" आदेश दिया है। देखिए इसी पुस्तक का 'मध्ययुगीन समीक्षा' में दांते 'प्रकरण, पृ० १२६, जॉर्ज सेंटसबरी हिस्ट्री ऑफ इंग्लिश क्रिटिसिज्म, पृ० ३२४–२६।

सामान्य जीवन से चयन करना तथा उनके वर्णन में आदि से अंत तक, यथासम्भव ऐसी भाषा का चुनाव करना जिसका व्यवहार लोग वास्तव में करते हैं। और इसके साथ ही उन्हें कल्पना का ऐसा पुट देना जिससे कि साधारण वस्तुएँ भी अद्भुत रूप धारण कर लें।' आगे चलकर वह लिखता है 'सामान्यतया निम्न और ग्रामीण जीवन का चयन इसलिए किया गया है कि उस परिस्थिति में हृदय के आवश्यक मनोवेगों को अपेक्षाकृत अधिक उवरा भूमि मिलती है जिसमें वे प्रौढ़ता प्राप्त कर सकते हैं, उनपर नियंत्रण कम रहता है तथा उनकी अभिव्यक्ति अपेक्षाकृत सीधी सादी और सशक्त भाषा में होती है।'"[1]

वर्ड्सवर्थ ने जब ग्रामीण जनों की 'स्वाभाविक भाषा' का समर्थन किया तो समीक्षा जगत् में खिल्लयाँ मच गयीं। स्कॉट जेम्स ने अलंकारविहीन उसके स्वच्छन्दतावादी विचारों को कलाहीनता के सिद्धान्त घोषित करते हुए कहा कि किसी ग्रामीणजन के मनोभावों को इसलिए अधिक गंभीर नहीं कहा जा सकता क्योंकि उसका अनुभव संकीर्ण है।[2] देखा जाय तो उसकी 'लिरिकल बैलेड्स' के कुछ ही गीत, उसकी स्वयं की कसौटी पर खरे उतरते हैं। आगे चलकर उसने अपने इन विचारों में संशोधन किया। ग्राम्यभाषा का समर्थन करते समय दो प्रकार का समाज कवि के मस्तिष्क में था—आयर्लैण्ड का ग्रामीण समाज और लंदन का नागरिक समाज। लंदन का नागरिक समाज सुबह से शाम तक भाग दौड़, मिलने जुलने और सभा सोसायटी में व्यस्त रहता था। इसके अतिरिक्त, बड़े बड़े कवियों की रचनाएँ भी शुरू में प्रशंसित नहीं होती थीं, इसलिए पाठकों के मन में इन रचनाओं के प्रति रुचि उत्पन्न करना भी कवि का कर्त्तव्य समझा जाता था।[3]

वर्ड्सवर्थ की देन

वर्ड्सवर्थ ने नव्यशास्त्रवाद से प्रकृति के अनुकरण का सिद्धान्त ग्रहण किया जिसे उसने एक खास सामाजिक मोड़ दिया। इसी प्रकार १८ वीं शताब्दी में कविता को जो भावावेश कहा गया था उसी के आधार पर उसने कविता का लक्षण प्रस्तुत किया। काव्य के सामाजिक प्रभाव को भी वर्ड्सवर्थ ने स्वीकार किया है जिससे मानव-समाज प्रेम में बँधकर सुखी बनता है। काव्य शैली का विरोध, ग्रामीण भाषा का अनुकरण तथा अनुभूतियों को स्वतःस्फूर्त रूप से कविता में प्रतिपादित करना—वर्ड्सवर्थ के ये सिद्धान्त आधुनिक समीक्षा के साथ भले ही मेल न खाते हों, फिर भी उसने समीक्षा सम्बन्धी जो विचार व्यक्त किये हैं, वे महत्त्वपूर्ण हैं।

१—विलियम वर्ड्सवर्थ, वही पृ० ३।

२—द मेकिंग ऑफ लिटरेचर, पृ० २०६-७

३—रेने वेलेक ए हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न क्रिटिसिज्म, २, पृ० १३३

सैमुअल टेलर कॉलरिज (१७७२-१८३४)

वड्सवर्थ और कॉलरिज का सम्मिलित प्रयत्न

वडसवथ का मित्र और सहयोगी कॉलरिज स्वच्छ दतावाद का समथक कवि हो गया है। दोनों एक दूसरे के पडोसी थे और उनमें प्राय [कविता को लेकर चर्चा हुआ करती थी। कविता मे नैसर्गिक सत्य के प्रति यथार्थ लगाव रहता है जिसके कारण वह पाठकों की सहानुभूति को उत्तेजित करती है, तथा कल्पना के परिवर्तित रगों के कारण उसमें अभिनव रोचकता उत्पन्न होती है'[१]-यही उनकी चर्चा का विषय होता। कालान्तर में इस चर्चा के आधार पर योजना बनायी गयी कि दो विभिन्न प्रकार की कविताओं की रचना की जाय—'एक मे घटनाएँ और चरित्र-आंशिक रूप में ही सही-अलौकिक रूप में रहे', दूसरी में 'विषयो का चुनाव सामान्य जीवन से हो, चरित्र और घटनाए ऐसी हों जो प्रत्येक गाव में और उसके आसपास दिखायी दें।'[२] इनमें अलौकिकता का क्षेत्र चुना कालरिज ने अलौकिक विषयो को शुद्ध काव्यात्मक रूप में प्रस्तुत कर, तथा नसर्गिकता का क्षेत्र चुना वड्सवथ ने इतिवृत्तात्मक कविताओं की रचना कर। कॉलरिज की 'ऐंशियेंट मैरीनर' और 'क्रिस्टाबेल' स्वच्छ दतावादी कविता, तथा वड्सवथ की 'गुडी ब्लैक', और 'द थॉन' आदि नैसर्गिकवादी कविताएँ उदाहरण रूप में उपस्थित की जा सकती हैं।

परिणामस्वरूप, आगे चलकर 'लिरिकल बैलेड्स' नाम का युगान्तरकारी काव्यसग्रह प्रकाशित हुआ जिससे अंग्रेजी काव्य क इतिहास मे एक नया मोड प्रारम्भ हुआ। इस सग्रह में कालरिज की स्वच्छ दतावादी तथा वडसवथ की नैसर्गिकतावादी कविताओं का समावेश होने से उस युग के इन दोनों ही प्रमुख वादो का पूण विकास दृष्टिगोचर होता है। इस पुस्तक के दूसरे सस्करण में वडसवथ ने अपनी लम्बी भूमिका म काव्यसिद्धान्तों का प्रतिपादन किया, जिसकी चर्चा की जा चुकी है।

'बायोग्राफिया लिटरेरिया'

वडसवथ की भाँति कॉलरिज ने भी अट्ठारहवीं शताब्दी की काव्यरूढ मान्यताओं का उन्मूलन कर स्वच्छ दतावादी प्रवृत्ति की प्रतिष्ठा म योगदान दिया। यद्यपि कॉलरिज की उत्कृष्ट काव्य रचनाओं की सख्या अत्यन्त अल्प है, फिर भी जो कुछ उसने लिखा, वह असाधारण है।

१—कॉलरिज, बायोग्राफिया लिटरेरिया, अध्याय १४, पृ० ५२, सपादक जॉज सम्पसन, कम्ब्रिज, १९२०।

२—वही

भाषा तक सीमित नहीं रहतीं।[1] इस व्यापक अर्थ में, कविता मनुष्य की सम्पूर्ण आत्मा को सक्रिय बना देती है जिससे कि इसकी प्रत्येक शक्ति अपने आपेक्षिक मूल्य और गरिमा के अनुसार कार्य करने में प्रवृत्त होती है। लेकिन यह तभी सम्भव है जब कि कवि अपनी कल्पना से काम ले। वह एकता के स्वर और भावना को प्रसारित करता है और अपनी संश्लेषात्मक जादुई शक्ति से एक अंश को दूसरे के साथ इस तरह मिला देता है जिससे वे परस्पर घुल मिलकर, एक हो जायं। इसी शक्ति को *कल्पना नाम से अभिहित किया गया है*।[2]

देखा जाय तो कविता की सुस्पष्ट व्याख्या करने के बजाय, कॉलरिज कवि का वर्णन करके ही सन्तोष कर लेता है, और फिर वह कल्पना की चर्चा पर आ जाता है। कॉलरिज ने लिखा है, 'काव्य क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर 'कवि' क्या है ? इस प्रश्न के उत्तर में सन्निहित है। क्योंकि यह कवि की प्रतिभा से ही निष्पन्न भेद है, जो कवि के अपने मानस बिम्बों, विचारों और मनोभावों को अवलम्बन देता है और उनका संशोधन करता है।[3] अन्त में कॉलरिज ने "सद्बुद्धि को काव्य प्रतिभा का शरीर, भाव-तरंग (फैन्सी) को आच्छादन गतिशक्ति को जीवन तथा कल्पना को उसकी आत्मा" कहा है, जो सर्वत्र विद्यमान रहती है तथा सबको मिलाकर एक लालित्यपूर्ण बोधयुक्त सम्पूर्णता का निर्माण करती है।[4]

कॉलरिज ने कविता को काव्य का अंग स्वीकार किया है, इसलिए उसका तात्कालिक उद्देश्य आनन्द प्रदान करना माना गया है, यद्यपि यह उसका सम्पूर्ण उद्देश्य नहीं है। कविता अन्य कलाओं से भिन्न इसलिए है कि इसका माध्यम भाषा है। "कविता एक विशिष्ट रचना है जो वैज्ञानिक कृतियों से इस बात में भिन्न है कि उसका तात्कालिक उद्देश्य आनन्द होता है सत्य नहीं। अन्य साहित्यिक कृतियों से वह इसलिए भिन्न है कि *उसमें सम्पूर्ण कृति से वही आनन्द प्राप्त होता है* जो कृति के प्रत्येक अवयव से होनेवाले विशिष्ट परितोष के अनुकूल हो।"[5] 'शेक्स-

---

१—कॉलरिज के अनुसार, प्लेटो और जर्मी टेलर के लेखों तथा टामस बर्नेट की 'थियोरिया सक्रा' में इस बात के अकाट्य प्रमाण हैं कि सर्वोत्कृष्ट कविता बिना छन्द के हो सकती है। वही अध्याय १४ पृ० ५७।

२—वही

३—वही, अध्याय १४ पृ० ५७

४—वही, पृ० ५८। भावतरंग (फैन्सी) को रस्किन ने एक गिलहरी के समान बताया है जो अपने बन्दीगृह में गोलाकार चक्कर काटती हुई सुखी रहती है, कल्पना एक तीर्थयात्री है जो इस पृथ्वी पर वास करता है और घर उसका स्वर्ग में है। रेने वेले हिस्ट्री आफ माडर्न क्रिटिसिज्म, ४ पृ० १४२

५—बायोग्राफिया लिटरेरिया, पृ० ५६

पियरिन क्रिटिसिज्म' में इसी कथन को स्पष्ट किया गया है—"काव्य अभिव्यक्ति की कला है—जो कुछ भी हम अभिव्यक्त करना चाहते हैं—जिससे उत्तेजना की अभिव्यक्ति और उत्पत्ति हो सके, लेकिन उसका उद्देश्य हो तात्कालिक आनन्द, तथा प्रत्येक अवयव से इतने अधिक आनन्द की प्राप्ति हो जो कि सम्पूर्ण की महानतम राशि के उपयुक्त हो।"[1]

छन्द और कविता

अरिस्टोटल ने छन्द को कविता के लिए अनिवार्य नही माना। इसी मत को ग्रहण करते हुए वर्डसवर्थ ने कहा है, 'गद्य तथा छन्दोबद्ध रचना की भाषा में न कोई मौलिक अन्तर है और न हो सकता है।'[2] लेकिन वर्ड्सवर्थ ने आगे चलकर यह भी स्वीकार किया है कि यदि कविता में ऊपर से छन्द जोड दिया जाय तो वह साधारण जीवन की अशुद्धता और अशिष्टता से मुक्त हो जाती है।

कॉलरिज ने अपने सहयोगी मित्र की इस मान्यता का विस्तार से खडन किया है। वह कहता है कि कविता में भी वही तत्त्व होते हैं जो किसी गद्य रचना में, क्योंकि दोनों ही शब्दों का उपयोग करते हैं। इसलिए दोनो में माध्यम का भेद तो हो नही सकता, क्योकि दोनो का माध्यम शब्द है। अतएव दोनो में यही अन्तर हो सकता है कि भिन्न प्रयोजनो के परिणामस्वरूप उनमे शब्दयोजना भिन्न रूप से उपलब्ध हो। उदाहरण के लिए, कविता में शब्दयोजना इस ढग से नियोजित की जा सकती है जिससे कि उसके स्मरण रखने में सुविधा हो। यह रचना कविता केवल इसलिए कहलायेगी कि वह छन्द, तुक अथवा दोनों के कारण गद्य रचना से भिन्न होगी। कॉलरिज ने यद्यपि इसे कविता का निम्नतम रूप बताया है फिर भी उसका कथन है कि वह अपनी ध्वनियों तथा अमुक अश की पुनरावृत्ति के कारण आनन्द प्रदान करती है। अतएव छन्द और तुक के आकर्षण से युक्त सभी रचनाएँ—यद्यपि छन्द और तुक उनमें ऊपर से जोडे गये हैं—कविता कही जाती है, विषयवस्तु उसकी चाहे जो हो।[3]

कॉलरिज का कहना है कि जो कृति छन्दोबद्ध न हो, फिर भी उसका तात्कालिक प्रयोजन आनन्द प्रदान करना हो सकता है, उदाहरण के लिए, उपन्यास और प्रेम कथाएँ। वह प्रश्न करता है कि तब क्या तुकान्त अथवा अतुकान्त छन्द में बाँध देन भर से इन रचनाओ को कविता कहा जा सकेगा? उत्तर मे कहा गया कि कोई भी

१—जे० ए० एप्लेयार्ड, कॉलरिजस फिलोसाफी ऑफ लिटरेचर, पृ० १२६, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, १६६५।

२—कालरिज बायोग्राफिया लिटरेरिया, अध्याय १८, पृ० ८६-८७।

३—वही, अध्याय १४ पृ० ५५।

कृति तब तक शाश्वत आनन्द प्रदान नही कर सकती जब तक कि उसमें इस बात का कारण निहित न हो कि वह वैसा ही क्यों है, अन्यथा क्यों नही। अब यदि जैसा वर्ड्सवर्थ ने माना है, कविता में छन्द ऊपर से जोड दिये जायें तो उसमे शाश्वत आनन्द की उपलब्धि नही हो सकती। क्योंकि यदि ऊपर से छन्द जोडने से कविता बनी है तो उस कविता की अभिव्यक्ति भिन्न प्रकार से भी हो सकती थी। और यदि उसकी अभिव्यक्ति अनिवार्य अभिव्यक्ति नहीं है तो वह शाश्वत आनन्द प्रदान नहीं कर सकती। तात्पर्य यह है कि छन्द कविता में ऊपर से जोडा हुआ न होकर कविता का स्वाभाविक अंश होना चाहिए अतएव कॉलरिज ने छन्द को कविता के लिए अनिवार्य नही माना है। अपने इस कथन के समर्थन में उसने प्लेटो जर्मी, टेलर, बर्नेट आदि की कविताओं के उदाहरण दिये हैं जो छन्द के अभाव में भी उत्कृष्ट कवितायें मानी जाती है। वास्तविक कविता, उसके अनुसार ऐसी होनी चाहिए "जिसके विभिन्न भाग परस्पर एक दूसरे का समर्थन करें, और एक दूसरे की व्याख्या करें, तथा अपने अनुपात में छन्दोविधान के साथ उनका सामजस्य हो तथा छन्दोविधान के उद्देश्य और ज्ञात प्रभावों को वे प्रोत्साहन दें।[१]

कविता और गद्य

'गद्य तथा छन्दोबद्ध रचना में कोई अन्तर नहीं'—वर्ड्सवर्थ की इस मान्यता का भी कॉलरिज ने खंडन किया है। कॉलरिज के अनुसार गद्य तथा साधारण बोलचाल में जो अन्तर है वही अन्तर छन्दोबद्ध रचना और गद्यरचना में माना जाना चाहिए।[२] उसका कहना है कि गद्य के लिए उपयोगी अभिव्यक्ति के ढंग और रचना-पद्धति कुछ इस प्रकार की होती है जो छन्दोबद्ध रचना के लिए उपयोगी नहीं ठहरती। इसी प्रकार छन्दोबद्ध कविता की रचना पद्धतियाँ गद्य के लिए लागू नहीं की जा सकती। यहाँ "श्रेष्ठ क्रम में शब्दों के प्रस्तुतीकरण को गद्य" तथा "श्रेष्ठ क्रम में श्रेष्ठ शब्दों के प्रस्तुतीकरण का पद्य" कहा है।[३]

छन्द का उद्गम कॉलरिज ने स्वत निस्सृत प्रयास से माना है जो भावावेशों पर नियन्त्रण रखने का काम करता है। उसके अनुसार, परस्पर प्रतिद्वन्द्वी भावावेशों के सन्तुलन रखने के प्रयास में ही छन्द की उत्पत्ति होती है। उसका कहना है कि भावातिरेक की दशा में हमारी वाणी के व्यवस्थित न रहने के कारण उससे टूटे-फूटे स्वरों का निकलना ही सम्भव है। ऐसी हालत में भावातिरेक का स्वाभाविक भाषा में छन्द के तत्वों का उदय होता है। य तरह कृत्रिम रूप से और प्रयत्नपूर्वक,

---

१—वही, पृ० ५५-५६।
२—वही अध्याय १८, पृ० ८७
३—रेने वेले ए हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न क्रिटिसिज्म २, पृ० १६१

आल्लाद को मनोभावो के साथ सश्लिष्ट करने के उद्देश्य और अभिप्राय से छ द के रूप में ढाले जाते हैं, और इस प्रकार हमें आनन्द की उपलब्धि होती है। अतएव यह कहना युक्तियुक्त नही कि छ द ऊपर से जोडे जाते हैं।

दूसरी बात छन्द के प्रभाव के सम्ब ध में कही गयी है। वह पाठक की सामान्य भावनाओ और उसके अवधान को अधिक उल्लासपूर्ण और ग्रहणशील बनाता है। यह प्रभाव विस्मयात्मक उत्तेजना तथा शान्त होकर फिर से उत्तेजित होनेवाली जिज्ञासा की पुनरावृत्ति से उत्पन्न होता है। छ द के कारण ही ऐसा होता है। ऐसी हालत में इस प्रकार उत्तेजित अवधान और भावनाओ के उपयुक्त खुराक न मिलने से निराशा का ही अनुभव करना होगा। और उस समय हमारी ऐसी ही स्थिति हो जायगी जैसे कि हम अधेरे म जीने की तीसर चौथी सीढ़ी से कूद पडें और कूदने पर पता चले कि वास्तव मे एक ही सीढी बाकी बची थी।

तीसरी बात, वर्डसवर्थ ने जो कविता मे भावावेश की प्रधानता स्वीकार की है, वह ठीक है। यहा भावावेश का अर्थ भावनाओ और वृत्तियो की उत्तेजित अवस्था ही लेना चाहिए। और प्रत्येक भावावेश का अपना स्पन्दन होता है और उसी प्रकार से उसकी विशिष्ट अभिव्यजना पद्धति होती है। यहाँ काव्यरचना की क्रिया उत्तेजना की असाधारण अवस्था होती है जो गद्यरचना से भिन्न कोटि की होती है और जिसमें से छ द स्वयनिस्सत होने लगता है।[1]

कल्पना

कल्पना की चर्चा की जा चुकी है। वस्तुत कल्पना के सिद्धान्त की प्रेरणा कालरिज को अपने सहयोगी वर्डसवर्थ स ही प्राप्त हुई थी।[2] कालरिज ने कल्पना

१—बायोग्रफिया लिटरेरिया, पृ० ६०–६६

२—कालरिज ने लिखा है 'जब मैं २४ वर्ष का था तो मुझे व्यक्तिगत रूप से वर्डसवर्थ से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। और जहा तक मुझे स्मरण है उन्होने जो अपना हस्तलिखित कविता मुझे पढकर सुनायी और उसने जो मेरे मन को अकस्मात् प्रभावित किया, उसे मैं कभी नही भूल सकता। यह एक गभीर विचार और गहन भावनाओं का सयोग था। देखने में यह सत्य का उत्कृष्ट सन्तुलन या साथ मे देखे हुए पदार्थों को रूपान्तरित करनेवाली कल्पना शक्ति भी इसमे थी। और इस सबके ऊपर इसमें स्वर तथा वातावरण को विस्तृत करनेवाली मौलिक प्रतिभा थी, जिसमें आकार प्रकारों, घटनाओं और परिस्थितियों के इर्दगिर्द एक आदर्श ससार की गभीरता और उच्चता विद्यमान थी, जिसकी दीप्ति को सर्वसाधारण के दृष्टिकोण ने धु धला कर दिया था, चिनगारी को बुझा दिया था और ओस कणों को सुखा दिया था।"
वही, अध्याय ४ प० ४६–४७

की अपनी प्राथमिक अभिव्यक्ति में एक विधायक सिद्धान्त अथवा प्रमुख माध्यम स्वीकार किया है जो हममें पृथक करने, क्रमबद्ध करने विश्लेषण करने और संश्लिष्ट करने की सामर्थ्य पैदा करता है जिससे कि हमारी अनुभूति कार्यकारी हो सके। कल्पना के अभाव में कवि की जो अभिव्यक्ति होगी, वह केवल अव्यवस्थित इन्द्रियग्राह्य ज्ञान के तथ्यों का संकलन मात्र माना जायगा। कॉलरिज ने कल्पना को एक ऐसी समन्वयकारी शक्ति माना है जो विभिन्न पक्षों को एक संश्लिष्ट प्रकृति के ढाँचे में ढालती है।

कल्पना की दो कोटियाँ स्वीकार की गयी हैं—एक प्राथमिक, दूसरी विशिष्ट। "प्राथमिक कल्पना एक जीवन्त शक्ति है जो सम्पूर्ण मानवीय ज्ञान का मूल हेतु है। यह शक्ति 'मैं हूँ' इस असीम में अनन्त सृजन प्रक्रिया की ससीम मन में पुनरावृत्ति है।" वस्तुतः प्राथमिक कल्पना तात्त्विक रूप से अव्यवस्था का नाश कर व्यवस्था का स्थापन करती है और इसलिए मूलतः वह सृजनात्मक शक्ति है। विशिष्ट कल्पना प्राथमिक कल्पनाशक्ति की ही प्रतिध्वनि है और सजग इच्छा शक्ति के साथ वह विद्यमान रहती है। फिर भी जहाँ तक इसके कर्तृत्व के प्रकार का प्रश्न है, वह प्राथमिक कल्पना जैसी है केवल उसकी प्रक्रिया की मात्रा और प्रणाली में ही भेद है। जब हम इन्द्रिय बोध की प्रक्रिया में अपनी प्राथमिक कल्पना का प्रयोग करते हैं, तो हम सजग इच्छाशक्ति से ऐसा नहीं करते, वरन् हम अपनी तथा बाह्य जगत् की चेतना की मौलिक शक्ति का ही सहज रूप से प्रयोग करते हैं। इसके विपरीत, विशिष्ट कल्पना अधिक सजग तथा कम तात्त्विक होती है, यद्यपि इसका प्रकार प्राथमिक कल्पना का ही प्रकार होता है। इससे अर्थ के अभिनव सामंजस्य का निर्माण होता है, अतएव काव्यसृजन के लिए यह उपयोगी है। चित्रकार, दार्शनिक और कवि आदि सभी इस कल्पनाशक्ति का प्रयोग करते हैं। दूसरे शब्दों में, प्राथमिक कल्पना प्रत्येक व्यक्ति में पायी जानेवाली एक सृजनात्मक शक्ति है जो हमारी इच्छा के बिना ही सहज रूप से काम करती है, जब कि विशिष्ट कल्पना सजग रूप से, हमारे इच्छानुसार कार्य करती है इसलिए उसे प्राथमिक कल्पना शक्ति का सजग मानवीय प्रयोग कहा गया है।[1]

काव्य सिद्धान्तों का आधार दर्शन

कहा जा चुका है कि कॉलरिज ने दर्शन और काव्य का अविच्छिन्न सम्बन्ध स्वीकार करते हुए दर्शन के आधार पर अपने काव्य सिद्धान्तों की स्थापना की है।

1—वही, अध्याय १३, पृ० १७७–७८ १४ पृ० ५८ डविड डचीज, वही पृ० १०७।

काण्ट आदि जर्मन चिन्तकों से प्रभावित होने के कारण[1], दर्शन और काव्य को समान कोटि मे रखने का उसमे तीव्र प्रलोभन देखने मे आता है। कॉलरिज ने अपने काव्य-सिद्धान्त की चर्चा करते हुए बताया है कि उसमें सृजनात्मक और बौद्धिक शक्तियाँ एक मल्लयुद्ध में गुथी हुई हैं।[2] कॉलरिज काव्य सम्बन्धी एक ऐसा निबन्ध लिखना चाहता था जो "अध्यात्मविद्या तथा नीति सम्बन्धी समस्त पुस्तकों से बढ़कर हो।" इसे उसने 'नीति तथा राजनीति का छद्मरूप"[3] कहा है।

काव्य की चर्चा के प्रसग में दो प्रकार के उद्देश्यो का उल्लेख किया जा चुका है—एक तात्कालिक उद्देश्य और दूसरा अन्तिम उद्देश्य। तात्कालिक उद्देश्य से सत्य और आनन्द की प्राप्ति होती है, तथा काव्यरचना मे तात्कालिक उद्देश्य आनन्द ही होता है, सत्य नही। लेकिन सत्य की अभिव्यक्ति से गहरे आनन्द की प्राप्ति हो सकती है जैसे कि विज्ञान और इतिहास को पुस्तक पढने से होती है। लेकिन कॉलरिज ने अन्तिम उद्देश्य और तात्कालिक उद्देश्य मे भेद स्वीकार किया है। उसने बताया है कि यदि तात्कालिक उद्देश्य आनन्द की प्राप्ति है तो सत्य अन्तिम साध्य हो सकता है, तथा आदर्श समाज मे जो सत्य नहीं, वह आनन्दप्रद नही हो सकता, और साहित्यिक जगत् मे कोई साहित्यिक कृति बिना "नैतिक और बौद्धिक सत्य" के ही आनन्द प्रदान कर सकती है।[4]

अन्य अंग्रेजी समीक्षकों से कॉलरिज इसी बात में अलग पड़ता है कि उसने समीक्षा की दार्शनिक पद्धति स्वीकार की। उसके पूर्ववर्ती ड्राइडन, और जॉनसन आदि समीक्षकों ने साहित्य में शिल्पविधि को ही महत्त्व दिया था। ये समीक्षक काव्यसृजन में नाट्य अन्विति आदि सामान्य नियमों को स्वीकार करते थे जिन्हें, केवल यान्त्रिक ही कहा जा सकता है। कुछ समीक्षक ऐसे भी थे जो समीक्षा के क्षेत्र, में व्यक्तिप्रधान दुराग्रहपूर्ण मनमाने आक्षेप किया करते थे, जैसा कि हम जॉनसन

१—कॉलरिज ने सन् १७९८ मे जर्मनी की यात्रा की। वहाँ जाकर केवल जर्मन भाषा ही नहीं, बल्कि रसायनशास्त्र शल्यक्रिया, यन्त्रविज्ञान (मैकेनिक्स), प्रकाशविज्ञान (ऑपटिक्स) भाषाविज्ञान और नृकुलविज्ञान की भी उसने शिक्षा प्राप्त की। वहाँ से लौटते समय वह कितनी ही अध्यात्मविद्या की पुस्तकें अपने साथ लाया। ज्ञानविज्ञान के अध्ययन करने के बाद, बीस वर्ष पश्चात् वह एक महाकाव्य की रचना चाहता था, हर्बर्ट रीड, कॉलरिज ऐज क्रिटिक, पृ० १३ लदन, १९४८।

२—वही, पृ १०

३—विलियम के० विमसेट, लिटरेरी क्रिटिसिज्म, पृ० ४०३ से उद्धत।

४—डविड डचीज, वही पृ० १०२।

द्वारा की हुई शेक्सपियर की समीक्षा में देखते हैं। कॉलरिज ने समीक्षा का इस पद्धति में संशोधन कर इसे अधिक व्यवस्थित बनाया। यह उनकी बड़ी भारी देन कही जायगी। इस पद्धति को उसने प्रादत वाक्य कहा है जिससे कि जिज्ञासुओं और ज्ञाता के पर्यावरण की ओर उनकी रुचि जागृत हुई। पद्धति का अर्थ यहाँ ऐक्य किया गया है जो अनेक वस्तुओं को मानव के मस्तिष्क में एक रूप में प्रस्तुत करती है। इसीलिये कॉलरिज ने कहा है, "कविता अपने समस्त माधुर्य, सौम्य और अपनी शक्ति के लिये पद्धति व दार्शनिक सिद्धांतों की ही ऋणी है।"[1]

कॉलरिज ने काव्य और ललित कलाओं के मूल में एक ही चेतना को स्वीकार किया है। ललित कलाओं को उसने काव्य का ही एक प्रकार मानकर उसके अनेक भेद स्वीकार किये हैं, जैसे भाषा का काव्य, वर्ण अथवा संगीत का काव्य नेत्रों का काव्य—जैसे ढाली जानेवाली मूर्तिकला और चित्र द्वारा अभिव्यक्त की जानेवाली चित्रकला।[2] सबके मूल में भावावेगों का उत्तेजना रहती है जिसका तात्कालिक उद्देश्य सौन्दर्य के माध्यम से आनन्द प्राप्त करना होता है। यहीं पर कविता विज्ञान से भिन्न पड़ती है, क्योंकि विज्ञान का तात्कालिक विषय और प्राथमिक प्रयोजन सत्य तथा संभाव्य उपयोगिता माना गया है।[3] स्पष्ट है कि कॉलरिज जब काव्य को तृप्त करनेवाले आनन्द से पृथक् कर देता है तो वह इसे पाशविक वृत्तियों को तृप्त करनेवाले आनन्द से पृथक् कर देता है। कॉलरिज ने सौन्दर्य के अन्तर्गत "एकता में विविधता" को स्वीकार किया है जिससे कि सौन्दर्यतत्त्व कला के औपचारिक और स्थूल तत्त्वों के साथ संयुक्त होता है।[4] इस प्रकार सौन्दर्य को शिवत्व से पृथक् बताकर सत्य के साथ उसका एकत्व स्थापित किया गया है। आगे चलकर यही सिद्धान्त क्रोचे आदि सौन्दर्यवादी समीक्षकों के काव्य दर्शन की आधार-भूमि बनी। कॉलरिज ने ज्ञानशास्त्र (एपिस्टेमोलॉजी) और अध्यात्मविद्या (मैटाफिजिक्स) के आधार से अपना सौन्दर्य-सिद्धांत स्थापित किया और उस पर से अपने समीक्षा-सिद्धांतों का प्ररूपण किया।

१—रेने वेलेक ए हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न क्रिटिसिज्म २, पृ० १५८

२—कान्ट ने अभिव्यक्ति की प्रणाली के आधार पर ललित कलाओं का विभाजन किया है, जैसे शब्द भावभंगी और स्वर जिनसे वाक्शक्ति की कला (काव्य और वक्तृत्व कला), इन्द्रियग्राह्य अन्तर्दृष्टिकला (मूर्तिकला और चित्रकला), और संवेदनाजन्य सुन्दर क्रीडा (संगीत और रंगों की कला) की उत्पत्ति होती है। जे० ए० अप्लेयार्ड वही, पृ० १५८, फुटनोट।

३—वही पृ० १५८

४—वही, पृ० १६१

बायरन (१७८८–१८२४)

जॉर्ज गार्डन बायरन के पिता इंग्लैंड के और माता स्काटलैंड की रहनेवाली थी। स्काटलैंड मे ही उसका पालन पोषण हुआ। दस वर्ष की अवस्था मे उत्तराधिकार में उसे काफी सम्पत्ति मिली और अब वह लॉर्ड बायरन के नाम से प्रसिद्ध हो गया। हैरो और कैम्ब्रिज में उसकी शिक्षा हुई। १८०७ में उसने 'अवर्स ऑफ आइडिलनैस' (अकर्मण्यता की घडी) नामक काव्यसग्रह प्रकाशित किया। 'एडिनबरा रिव्यू' मे इसकी कटु आलोचना प्रकाशित हुई जिसका उत्तर बायरन ने अपनी 'इंग्लिश बार्ड्स एँण्ड स्कॉच रिव्यूअर्स' (अग्रेजी चारण और स्कॉच समीक्षक, १८०८) नामक व्यग्यपूर्ण रचना में दिया। बायरन को इससे काफी प्रसिद्धि मिली। १८०९ में वह हॉबहाउस के साथ स्पेन और पूर्वी देशों के भ्रमण के लिय निकला, और चाइल्ड हैरोल्ड्स पिलग्रिमेज' (प्रथम दो भाग, १८१२, में तीसरा भाग १८१६ में, चौथा भाग १८१८ में) के प्रथम दो भागो में इसका वर्णन किया। इस यात्रा वर्णन के प्रकाशित हो जाने पर स्वय बायरन को लगा कि 'वह सोकर उठा और अकस्मात् ही विख्यात हो गया।' बायरन की यह रचना इतनी लोकप्रिय हुई कि वह प्रत्येक व्यक्ति की मेज पर पहुँच गयी और सवत्र इसी की चर्चा सुनायी देने लगी।[1]

पत्रव्यवहार

बायरन ने समय समय पर अपने मित्रों और सबधियों को पत्र लिखे हैं जिनसे उसके बहुरगी जीवन पर प्रकाश पडता है। इन पत्रों का सग्रह 'लॉर्ड बायरन इन हिज लैटर्स' (लार्ड बायरन अपने पत्रों में) में प्रकाशित है। कॉलरिज, ले हण्ट, शेली, वाल्टर स्कॉट और गेटे को उसने पत्र लिखे हैं। ले हण्ट को लिखे हुए पत्र में वर्ड्सवर्थ के सम्बन्ध में कहा गया है कि उसकी 'लिरिकल बैलेड्स' पढ़कर उससे जो आशा की जाती थी, उसे वह पूर्ण नहीं कर सका। उसकी 'ऐक्सकर्शन (पर्यटन) रचना को ऐसा ही बताया गया है जैसे किसी चट्टान पर या बालू के ढेर पर वर्षा होती है। एलैक्जैण्डर पोप की मान्यताओं का यहाँ समर्थन किया गया है।[2] शेली को लिखे हुए पत्र में उसने जॉन कीट्स की असामयिक मृत्यु पर खेद व्यक्त किया है।[3] वाल्टर स्कॉट की प्रशसा करते हुए उसके प्रति कृतज्ञता भाव प्रकट किया गया है।[4] शेली की मृत्यु के समाचार से क्षुब्ध होकर बायरन ने लिखा, "लीजिए, एक

१—वी० एच० कॉलिन्स, लॉर्ड बायरन इन हिज लैटर्स, पृ० ४८

२—वही पृ० १४३ ४५

३—वही पृ० २२५

४—वही २६१ २३७

और ऐसा व्यक्ति हमने खो दिया जिसे अपने कुस्वभाव अपनी अज्ञानता और निर्दयता के कारण समझने में हमने गलती की था।" बायरन ने आशा व्यक्त की कि कम-से कम अब जबकि वह नहीं रहा है, संसार उसके प्रति न्याय करेगा।[१]

यूनानियों का स्वातंत्र्य संग्राम

यूनानियों के विरुद्ध तुर्कों द्वारा युद्ध छेड़ दिये जाने पर बायरन चुप न रह सका। १६ जून, १८२३ को प्रकाशित एक पत्रिका में उसकी निम्नलिखित कविता छपी—

मत पुरुष जाग गये हैं—क्या मैं सोता रहूँ ?
अत्याचारियों के विरुद्ध दुनिया में लड़ाई छिड़ गयी है—
क्या मैं खुशामदी टट्टू बना रहूँ ?
फसल पक कर तयार है—और क्या मैं उसे काटने से रुका रहूँ ?
मैं सोता नहीं हूँ, मेरे बिस्तर में काँटा चुभ गया है,
हर रोज मेरे कानों में दुंदुभि की आवाज सुनाई पड़ती है,
इसकी प्रतिध्वनि मेरे हृदय में गूँजती है—[२]

बस बायरन अपना लिखना पढ़ना छोड़कर यूनानियों के स्वातंत्र्य-संग्राम में कूद पड़ा। यूनान की सरकार को लिखे हुए अपने एक पत्र में उसने लिखा, "मैं यूनान के हित की कामना करता हूँ, और कुछ नहीं। इसे सम्पादन करने के लिए मैं यथाशक्ति प्रयत्न करूँगा। लेकिन मैं इस बात से सहमत नहीं—कभी होऊँगा भी नहीं—कि अंग्रेज लोगों को यूनान की सच्ची घटनाओं से वंचित रखकर उन्हें धोखे में रखा जाय।"[३]

बायरन की मान्यताएँ

बायरन का साहित्य काफी विशाल है। इसमें गीति, व्यंग्य और कथात्मक कविताओं का समावेश होता है। इन कविताओं में कुछ गंभीर, कुछ गंभीर हास्ययुक्त तथा कुछ नाट्य कविताएँ हैं। स्वच्छन्दतावाद पर उसका विशेष जोर रहा जिससे उसका पाठकवर्ग प्रभावित हुआ था। अठारहवीं शताब्दी की कविता की तुलना बायरन ने यूनानी मंदिर से और तत्कालीन कविता की तुलना कलाहीन तुर्की मस्जिद से की है।[४] प्राचीनों से वह विशेष प्रभावित था, इस दृष्टि से उसकी प्रवृत्तियों को मुख्यतया क्लासिकल कहा जा सकता है। समस्त काव्यों में नैतिक काव्य को उसने सर्वश्रेष्ठ माना है। एलैक्ज़ेण्डर पोप को उसने समस्त सभ्यता का

१—वही, पृ० २४३, २६३-६४
२—वही, पृ० २८१
३—वही, पृ० २७७
४—हडसन, अंग्रेजी साहित्य का इतिहास (हिन्दी अनुवाद), पृ० :

नैतिक कवि स्वीकार करते हुए जो मानव जाति का राष्ट्रीय कवि बना है।' कविता 'शुभ भावावेग की अभिव्यक्ति है, कल्पना का यह भाग (I see) है', इसके आगे भी यह भावावेग ही है। 'जो सारे कार्य को सर्वोत्तम रूप से निश्चय करता है वही सर्वश्रेष्ठ कवि है', तथा कविता के सिद्धान्त इतने व्यापक नहीं हैं जिनमें कोई परिवर्तन न हो सके।[2]

समीक्षा व रचना

बायरन की रचना को निर्दोष नहीं कहा जा सकता, असावधानी व उसमें दोष होते हैं। अपनी 'चाइल्ड हैरोल्ड' रचना में उसने प्राचीन शैली के अनुकरण करने का प्रयत्न किया, लेकिन सफलता न मिल सकी। नैतिक विचारों की चर्चा करते हुए यह चमत्कार कला तथा गुरुता से न बच सका। सुधारक दृष्टि का स्रष्टा होने के बजाय अनुवर्ती ही उसे अधिक कहा जायगा। फिर भी जहाँ तक अभिव्यंजना शक्ति का प्रश्न है बायरन की गणना महान् लेखकों में की जायगी।[3] हडसन के शब्दों में, "वह आश्चर्यजनक सजीवता और शक्तिसामर्थ्य से सम्पन्न है तथा उसकी सर्वोचित भावावेगपूर्ण मनःस्थितियों में उसकी कविता प्रपात के समान दौड़ती हुई प्रतीत होती है। प्रकृति के कवि के रूप में वह प्रकृति के अपेक्षाकृत उग्र रूपों के वर्णन में सबसे सिद्धहस्त है। पर्वतों और तूफानों से उसे अनुराग है। सागर का वह यशोगान करता है क्योंकि सागर मानव के प्रति सर्वथा उदासीन और विरक्त है। व्यंग्य लेखक की दृष्टि से आधुनिक अंग्रेजी कवियों में कोई उसकी बराबरी नहीं कर सकता, 'द विज़न ऑफ जजमेंट (निर्णय का दर्शन, १८८२) और डोन जुआं' (Don Juan--१८१९-२४) इसके प्रमाण हैं।[4]

बायरन एक प्रतिभाशाली कवि था। प्राचीन व्यवस्था में उसे विश्वास नहीं। प्राचीन सामन्तवाद और राजतंत्र की उसने खूब ही खिल्ली उड़ाई है, यद्यपि उसके लेखों में कोई निष्ठा विशेष दिखायी नहीं देती। उसके जीवन दर्शन का अन्त नकारात्मकता में ही परिणत दिखायी देता है। उसकी स्वतंत्रता की कल्पना का अन्त भी शुद्ध वैयक्तिकता के रूप में ही हुआ। बायरन के नाम पर जो बायरनवाद का प्रचार हुआ वह भी निराशाजन्य विषाद, अतितृप्ति तथा अशान्त व्याकुलता की उस भावना

१—रेने वले, ए हिस्ट्री ऑफ मॉडन क्रिटिसिज्म २, पृ० १२३

२—रेने वले, वही, पृ० १२३

३—लग्वी और कजामिया, हिस्ट्री आफ इंगलिश लिटरेचर, पृ० १०८०, १६३३

४—हडसन अंग्रेजी साहित्य का इतिहास (हिन्दी अनुवाद), पृ० २३५

की ओर ही संकेत करता है जो बायरन की अधिकांश रचनाओं में पायी जाती है।[1]

स्कॉट-जेम्स ने बायरन की समीक्षा करते हुए मैथ्यू आर्नोल्ड के दो वाक्यों को उद्धृत किया है जो उसने गेटे से लिये थे 'वह शानदार और शक्तिशाली व्यक्तित्व हमारे देश की सर्वोच्च प्रतिभा है, लेकिन ज्योंही वह चिन्तन करने लगता है, वह शिशु बन जाता है।'[2] दरअसल आर्नोल्ड का नैतिकता में बहुत अधिक विश्वास था इसीलिए उसने शेली, कॉलरिज, कीट्स और बायरन इन स्वच्छन्दतावादी कवियों के विचारों से कभी सहमति प्रकट नहीं की। बायरन के सम्बन्ध में उसने लिखा है, "बायरन में व्यक्तित्व था, प्रतिभा थी, सचाई थी शक्ति और सामर्थ्य थी, किन्तु उसमें विषय (अर्थात् गंभीर नैतिक भाव) का अभाव था।'[3]

१—बायरन अपने एक पत्र में लिखता है, मेरी रचनाओं मे विषाद (मेलनकली) पढ़कर लोगों को आश्चर्य होता है। कुछ ऐसे हैं जिन्हें मेरे हर्षोन्माद पर आश्चर्य होता है। इस प्रसंग पर अपनी पत्नी के वाक्य उद्धृत करते हुए उसने कहा है हृदय से मनुष्य जाति के प्रति तुम अत्यधिक विषादमय हो तथा प्रायः ऊपर से प्रसन्न दिखाई पड़ते हो।" लार्ड बायरन इन हिज़ लैटर्स पृ० २३१-३२

२—द मेकिंग ऑफ लिटरेचर, पृ० २५६

३—विलियम के० विमसेट, लिटरेरी क्रिटिसिज्म, पृ० ४४३

पर्सी बीशी शेली (१७६२–१८२२)

स्वच्छन्दतावादी कवियों में प्रमुख

स्वच्छन्दतावादी कवियों मे शेली प्रमुख हो गया है जिसका विद्रोही मन सामाजिक रूढ़ियों से कभी समझौता नही कर सका । प्राचीन रूढ़ियों के बन्धन को विनष्ट करके उसने भावी जीवन का दिव्य सन्देश सुनाया । अपने युग की नृशंसता के विरुद्ध उसने अपनी आवाज बुलन्द की और 'द नैसेसिटी ऑफ एथीज्म' (निरीश्वरवाद की आवश्यकता) नामक पैम्फलेट प्रकाशित करने के कारण उसे आक्सफोर्ड छोड़कर चले जाना पड़ा ।

२१ वर्ष की अवस्था मे शेली की प्रारम्भिक रचना 'क्वीन मैब' (१८१३) प्रकाशित हुई । राजा और सरकार चर्च, सम्पत्ति, विवाह सभी प्रकार की संस्थाओं की यहाँ आलोचना की गई है । ईसाई धर्म भी इस आलोचना से नहीं बचा । फिर चार वर्ष बाद 'द रिवोल्ट ऑफ इस्लाम' (इस्लाम का विद्रोह) सामने आया । यह एक लंबा पद्यात्मक आख्यान है जो कवि की भावी आशाओं से ओत प्रोत है । १८१६ से १८२२ तक का काल शेली की अमर रचनाओं का काल है । इसी बीच १८२१ में उसने साहित्यिक समीक्षा सम्बन्धी अपना सुप्रसिद्ध निबन्ध 'ए डिफेंस ऑफ पोएट्री' (कविता की वकालत) समाप्त कर लिया था, यद्यपि उसका प्रकाशन हुआ १६ वर्ष बाद १८४० म । जुलाई १८२२ मे नौका विहार करते समय केवल तीस वर्ष की अवस्था में जल में डूब जाने से उसकी अकाल मृत्यु हो गया ।

पीकॉक द्वारा कविता का विरोध

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में शेली के मित्र और व्यंग्यात्मक उपन्यासकार थामस लव पीकॉक (१७८५ १८६६) ने 'कविता के चार युग' नामक अपना एक सुप्रसिद्ध लेख प्रकाशित किया जिसमें संस्कृति और कविता के इतिहास पर प्रकाश डालते हुए अंग्रेजी कविता की गर्हणा की गयी, जो कविता उपयोगिता व वर्तमान युग में नष्ट होती जा रही थी । इस लेख म कविता को चार युगों म विभाजित किया गया – (१) लौहयुग म अशिष्ट लेकिन सच्चे वीर पुरुषों का स्तुतिपाठ किया जाता है (२) होमर स लेकर सोफोक्लीस तक का युग सुवर्णयुग माना गया, जब कि इतिहास के शैशवकाल में पूर्वजों का सिंहावलोकन किया जाता है (३) रजतयुग में वर्जिल के महाकाव्य की भाँति, कविता को वीरतापूर्ण अनुकरण कहा गया, अथवा यूरिपिडीज की कॉमेडी की भाँति या होरेस के व्यंग्य की भाँति, उसे समाज की

आलोचना बताया गया, तथा (४) ताम्रयुग को कविता का दूसरा बाल्यकाल माना गया जो एक आदिम अवस्था को पुन प्राप्त करने का ही एक तुच्छ प्रयत्न था। अंग्रेजी कविता में मध्ययुग को लोहयुग, शेक्सपियर के युग को सुवर्णयुग ड्राइडन और पोप के युग को रजतयुग तथा स्वय पीकॉक के युग को ताम्रयुग कहा गया है।

इतिहासज्ञों और दार्शनिकों के सम्बन्ध में पीकॉक ने लिखा है कि वे ज्ञान की उन्नति के पथ पर बढ़े चले जा रहे हैं, जबकि कवि मृत अज्ञानता की गदगी मे लोट रहे हैं तथा परलोक को प्राप्त बबर लोगो की राख को चौरस बना रहे हैं, यह समझ कर कि शायद इसमें बालकों के लिए कोई खिलौना ही नजर पड जाय। पीकॉक ने लिखा है "हमारे युग का कवि सभ्य जाति में एक आधा बबर पुरुष है। यह गुजरे हुए जमाने में विचरण करता है। उसके विचार, भाव, अनुभूतियाँ और मिलन जुलने के सारे संबध बबर तौर-तरीकों, अप्रचलित रीति रिवाजो तथा विस्फोटित अधविश्वासों के साथ सम्बद्ध हैं। उसकी बुद्धि की गति केकडे का भाँति, पीछे की ओर होती है।"[1] इस प्रकार जब पीकॉक ने विज्ञान की महत्ता पर जोर देते हुए बायरन और कॉलरिज की समीक्षा की ओर काव्यसजन को निरथक बताया तो शेली ने डटकर कविता का समथन किया।

कविता का उद्भव

शेली ने कविता को "कल्पना की अभिव्यक्ति" बताते हुए मनुष्य की उत्पत्ति के साथ ही उसका उद्भव माना है।[2] सवप्रथम बबर मानव, अपने चारा ओर क पदार्थों को देखकर अपने भावों की अभिव्यक्ति करता है। मूर्ति तथा चित्र को देखकर किये हुए अनुकरण के साथ भाषा और हावभाव इस अभिव्यक्ति के कारण होते हैं जिससे कि इदगिर्द के पदार्थों का एक सयुक्त प्रभाव मन पर पडता है, और फिर

१—विलियम के० विमसेट, लिटरेरी क्रिटिसिज्म पृ० ४१६–१७। यह वक्तव्य शेली के ए डिफेंस ऑफ पोएट्री' नामक निबन्ध पृ० ४७ ६१ पर (ए० एस० कुक, बोस्टन, १८६१ का सस्करण) उद्धृत है। शेली का यह निबन्ध उसकी मृत्यु से एक वष पहले पीकॉक के उत्तर में लिखा गया था। आरम्भ मे इसे पीकॉक के प्रकाशक चाहस ओलियर के पास प्रकाशनाथ भेजा गया। उसके बाद जॉन हण्ट की द लिबरल' पत्रिका में छपने भेजा। निबन्ध को छापने से पहले सशोधन करते समय, शेली ने जो पीकॉक के निबन्ध के हवाले दिये थे, उन्हें हण्ट ने निकाल दिया। यह देखकर पीकॉक को कहना पडा "यह एक आक्रमणविहीन प्रतिरक्षा" मात्र रह गयी है।

२—शेली, ए डिफेंस ऑफ पोएट्री, पृ० १६१, सी० ई० वौघान, इंग्लिश लिटरेरी क्रिटिसिज्म ब्लकी एण्ड सन, ग्रेट ब्रिटेन।

उन पदार्थों का बोध होता है। इसके पश्चात सामाजिक मानव के राग विराग और मान द का विषय आता है। इस प्रकार जब जब उनके भावों में अभिवृद्धि होती है वैसे वैसे उसकी अभिव्यक्ति का भंडार समृद्ध होता है, तथा उसकी भाषा हावभाव और अनुकरणात्मक क्रियाएँ अभिव्यंजना का रूप धारण कर लेती हैं, और फिर संगीत और चित्र, छेनी और मूर्ति तथा तंत्र और स्वर के माध्यम से उनके भावों की अभिव्यक्ति होने लगती है।[1] यही कविता के उद्भव का क्रम है।

तत्पश्चात् संसार का यौवन आता है। उस समय लोग नाचते गाते हैं तथा प्राकृतिक पदार्थों का अनुकरण करते हैं। इन सब क्रियाओं में एक लय और क्रम होता है। और यद्यपि सभी लोग नृत्य की गति में गीत के राग में, भाषा की योजना में तथा प्राकृतिक पदार्थों के अनुकरण में एक जैसा क्रम रखते हैं, फिर भी यह क्रम एक ही जैसा नहीं होता। इन सबमें कोई विशिष्ट लय अथवा क्रम रहता जिससे श्रोता या दर्शक को तीव्रतर एवं विशुद्ध आनन्द की प्राप्ति होती है। इसी क्रम के निकट से बोध होने को 'रुचि' नाम दिया गया है। शेली ने कहा है कि कला के शैशव में प्रत्येक व्यक्ति उस क्रम का पालन करता है जो बहुत कुछ उस क्रम के अधिक निकट होता है जिससे उच्चतम आनन्द की प्राप्ति हो। उच्चतम आनन्द के कारण सौंदर्य के निकट पहुंचने की प्रवृत्ति जिनमें विशेष रूप से पायी जाती है, उन्हें कवि कहा गया है।[2]

भाषा और कविता

शेली का मानना है कि समाज के शैशवकाल में प्रत्येक लेखक आवश्यक रूप से कवि होता है क्योंकि अपने उद्गमकाल में प्रत्येक मौलिक भाषा अपने आपमें कविता का ही अव्यवस्थित रूप है। शब्दभंडार का बाहुल्य तथा व्याकरण सम्मत भेद प्रभेद उत्तरकालीन युग की उपज है जिसे काव्यसृजन की केवल एक नामावलि और प्रकार मात्र ही समझना चाहिए।[3] यहाँ आदिमकालीन भाषा को काव्यात्मक इसलिए कहा गया है कि बर्बर मानव को इससे यथार्थता का ज्ञान होता है। मानव सभ्यता के विकासक्रम में, आगे चलकर, जब भाषा घिस पिट जाती है और जब प्राणवान रूपक निर्जीव हो जाते हैं तो भाषा मानव सम्पर्क के महान् उद्देश्यों के लिए कार्यकारी नहीं रह पाती।

१—वही, पृ० १६२
२—वही पृ० १६३
३—वही, पृ० १६४

शेली ने भाषा को कल्पना का एक अत्यन्त प्रभावशाली वाहक कहा है, क्योंकि वह कल्पना अपने आवश्यकतानुसार भाषा को जन्म देती है, जबकि अन्य कलाओं का माध्यम कलाकार के सिवाय बाह्य शब्दों में रहता है।[1] इसीलिए कवि को अन्य कलाकारों की अपेक्षा उत्कृष्ट कहा गया है। भाषा की भाँति रंग, रूप आकार, तथा धार्मिक और नागरिक कार्य प्रवृत्तियों को भी कविता की साधन सामग्री माना गया है। 'लेकिन सीमित अर्थ में कविता–विशेषकर छन्दोबद्ध कविता–भाषा के उस विन्यास को व्यक्त करती है जिसका सृजन उस मायाजी शक्ति द्वारा होता है जिसका आगार मनुष्य के अदृश्य स्वभाव से ढँका हुआ है। और इसका उद्‌भव भाषा की प्रकृति से ही होता है जो हमारे अन्तरंग के क्रियाकलापों और भावनाओं का अधिक प्रत्यक्ष रूप में प्रतिनिधित्व करती है, तथा जो रंग रूप आकार या गति की अपेक्षा अधिक विविध और सुकुमार योजनाओं को ग्रहण करने में सक्षम है तथा जिस शक्ति ने इसका निर्माण किया है, उसके नियन्त्रण करने में यह अधिक लचीली और कर्तव्य परायण है।'[2] इस प्रकार शेली ने कविता को उस कला की परिसीमाओं में बाँध लिया है जो स्वयं उस शक्ति की सबसे अधिक परिचित एवं पूर्ण अभिव्यक्ति है।[3]

कविता जीवन का काव्य

शेली की मान्यता है कि जो कुछ हम जानते हैं, उसका कल्पना में समावेश करने के लिए हममें सृजनात्मक शक्ति होनी चाहिए, तथा जो हम कल्पना करते हैं उसे कार्यरूप में बदलने के लिए एक उदार अन्तःप्रेरणा को–जीवन के काव्य की–आवश्यकता है। इस प्रसंग पर आधुनिक काल की वैज्ञानिक उपलब्धियों पर कटाक्ष करते हुए शेली ने कहा है "जितना हम पचा सकते हैं, उससे अधिक हमने खा लिया है। जिस ज्ञान विज्ञान ने बाह्य जगत् में मानव साम्राज्य की सीमाओं को विस्तृत कर दिया है, उस पर अधिक ध्यान देने से, काव्यात्मक शक्ति के अभाव में, परिणाम यह हुआ है कि आन्तरिक जगत् की सीमाएँ भी उसी अनुपात में संकुचित हो गयी हैं। और भौतिक तत्वों को गुलाम बनाकर, रखनेवाला मनुष्य स्वयं उनका गुलाम बन गया है। ऐसी हालत में वर्तमान युग में शेली ने कविता की अधिक से-अधिक आवश्यकता बतायी है जबकि स्वार्थपरता और हिसाबी सिद्धान्तों की अतिशयता के कारण, बाह्य जीवन सम्बन्धी सामग्री का इतना अधिक संचय हमने कर लिया है कि वह मानव-प्रकृति के आन्तरिक नियमों के अनुकूल बनाने की शक्ति की मात्रा से भी बढ़ गया है।[4]

१—डविड डचीज क्रिटिकल अप्रोचेज, पृ० ११५

२—शेली, ए डिफेंस ऑफ पोएट्री पृ० १६५।

३—वही, पृ० १६६

४—वही, पृ० १६१

शेली ने कविता को एक दिव्य शक्ति माना है जो एक साथ ही ज्ञान का केंद्र बिन्दु भी है और परिधि भी। इसमें समस्त विज्ञान का अन्तर्भाव हो जाता है। कविता को समस्त विचारप्रणाली का मूल तथा फूल माना गया है जिससे सबका उद्भव होता है और जो सबको शोभा प्रदान करती है। यदि इसका क्षय हो जाय तो यह बजर जगत् जीवन वृक्ष के अकुर से ही वचित हो जाय। कविता को गुलाब का रग उसकी सुगध और उसका निर्माण करनेवाले तत्त्वों का विन्यास कहा गया है। वह लिखता है, 'यदि कविता उस अमर देश स आलोक और ज्योति-पुंज के साथ उतर कर न आती–जहाँ उल्लू के पखों वाली हिसावी मनोवृत्ति प्रवेश करने का साहस नही करती–तो साधुता, प्रेम, राष्ट्रभक्ति और मैत्री का कोई अर्थ न रह जाता इस सुन्दर सृष्टि के दृश्य देखने को न मिलते मृत्यु के इस पार हमें किस वस्तु से शान्ति प्राप्त होती तथा मृत्यु के उस पार हमारी क्या उमगें होनी।"[1]

कविता में सामंजस्य

शेली ने दो प्रकार की कविता शक्ति स्वीकार की है--एक ज्ञान शक्ति और आनन्द की नयी सामग्री की सजना करती है, और दूसरी इन सबको एक विशेष लय और क्रम के अनुसार एक अभिनव रूप देने की इच्छा को जगाती है, इसे ही सुन्दर और शिव कहा गया है।[2] शेली ने कविता मे शब्दो की एकरूपता और सामजस्य के पुनरावतन को आवश्यक माना है जिसके बिना कविता कविता नही कही जा सकती। इसी से आगे चलकर छन्द का जन्म हुआ। शेली ने लिखा है कवि मन से निस्सत भाषा के सामजस्य के पुनरावतन का नियमित प्रणाली तथा सगीत के साथ उसके सम्बन्ध का ध्यान रखने से छन्द का जन्म होता है।" छन्द को सामजस्य और भाषा का एक परम्परागत रूप बताया गया है और शेली ने उसे कविता के लिए अनिवाय नहीं माना। यद्यपि काव्य मे छन्दोरचना को उसने सुविधाजनक और लोकप्रिय बताया है, और विशेषकर कार्यकलापवाली रचनाओं के लिए उसे उपयोगी कहा है, लेकिन प्रत्येक उत्कृष्ट कवि के लिए उसका कहना है कि उसे अपनी पद्यबद्ध रचना में अपने पूर्वजों की अपेक्षा कोई नूतनता प्रस्तुत करना चाहिए।[3]

शली ने प्लेटो को प्रमुख रूप म कवि ही माना है, क्योंकि उसकी बिम्बयोजना की यथार्थता और मधुरता तथा उसकी भाषा का माधुर्य अत्यन्त तीव्रतापूर्वक प्रभावित करते हैं। शेली ने महाकाव्य नाटक तथा गीत्यात्मक छदों का इसलिए निषेध किया कि वह मूलता पौर कार्यव्यापार मे रञ्जित विचारों में सामजस्य का ज्योति प्रदीप्त

१—वही पृ० १६२
२—वही पृ० १६२
३—वही पृ० १६६-६७

करना चाहता था तथा लय की किसी नियमित योजना के ग्राविष्कार से उसने अपने आपको मुक्त रक्खा था। मतलब यह है कि शेली ने विचारों मे क्रान्ति के जनक लेखकों को केवल इसलिए कवि नहीं माना कि वे आविष्कर्ता हैं न उन्हें इसलिए कवि बताया कि उनके शब्दों से सत्य जीवन से सम्बद्ध बिम्बों के द्वारा वस्तुओं के स्थायी सादृश्य का उद्घाटन होता है। वरन् उन्हें इसलिए कवि कहा गया कि उनके वाक्यों में सामजस्य और लय होती है और उनमें पद्य के तत्त्व विद्यमान रहते हैं—जो कि शाश्वत संगीत की प्रतिध्वनि है।[1]

कविता मे सत्य

'कविता शाश्वत सत्य में अभिव्यक्त जीवन का ही प्रतिबिम्ब है। दरअसल शेली प्लेटो से बहुत प्रभावित था, इसीलिए उसने सत्य को शाश्वत माना है। इसके साथ ही साथ, कवि होने के कारण वह कविता का बचाव कर रहा था, इसलिए प्लेटो की भाँति वह काव्य को मिथ्या नहीं कह सकता था। इसी प्रसंग को लेकर उसने कविता के सत्य को सामान्य और देश काल से निरपेक्ष स्वीकार कर अरिस्टोटल के सामान्यता के सिद्धान्त को मान्य किया है।

कविता और इतिहास (स्टोरी) मे अन्तर बताते हुए उसने इतिहास का असम्बद्ध तथ्यों का सग्रहमात्र कहा है जिनमे समय स्थान, परिस्थितियों तथा कार्य कारण का कोई सम्बन्ध नहीं रहता। किन्तु कविता म मानव प्रकृति के अपरिवर्तनीय रूपों के अनुसार—जैसे कि वे स्रष्टा के मन में विद्यमान रहते हैं—कार्यव्यापारों की सृष्टि होती है। इतिहास एकांगी होता है और उसका सम्बन्ध एक विशेष युग और ऐसे घटना समूहों के साथ होता है जो फिर से घटित नहीं होते। और काव्य का सम्बन्ध सामान्य से होता है। समय इतिहास (कहानी) के विशेष तथ्यों के सौंदर्य और उपयोग को नष्ट कर देता है। वही समय कविता के सौन्दर्य में वृद्धि करता है और उसमें अन्तर्हित शाश्वत सत्य के अभिनव और आश्चर्यकारी प्रयोगों को सदा विकसित करता रहता है। इसलिए शेली ने विशेष तथ्यों पर आधारित इतिहास (कहानी) को एक ऐसा दर्पण कहा है जो सुन्दरता को विकृत और आच्छन्न कर देता है जब कि कविता एक ऐसा दर्पण है जो विकृत को सुन्दर बना देता है।[2]

अपने कथन का समर्थन करते हुए शेली ने लिखा है किसी रचना के अंश काव्यात्मक हो सकते हैं, लेकिन कुल मिलाकर सारी रचना कविता नहीं कही जा सकती। एक वाक्य अपने आपमें पूर्ण हो सकता है भले ही वह असमान अंशों के एकसूत्र में बद्ध हो। अकेला एक शब्द भी चिरदीप्त विचार का एक स्फुलिंग हो सकता

१—वही पृ० १६७–६८
२—वही, पृ० १६८–६६

है।" और इस दृष्टि से सभी महान् इतिहासकारों या शेली ने मवि के रूप में उल्लेख किया है जिन्होंने अपने विषयों के बीच सजीव प्रतिबिम्बों का वैभव देकर अपनी पराजय का परिहार कर दिया है।[1]

काव्य का प्रयोजन-आनन्द

वर्डसवर्थ और कॉलरिज की भाँति शेली ने भी काव्य का प्रयोजन आनन्द माना है। वह लिखता है, 'कविता हमेशा आनन्द की सहचरी है। जिन भावों का यह स्पर्श करती है, वे आनन्द मिश्रित ज्ञान को ग्रहण करने के लिए उन्मुक्त हो जाते हैं।"[2] शेली ने "सबसे सुखी और सर्वोत्कृष्ट मस्तिष्कों के श्रेष्ठतम और सर्वाधिक सुखमय क्षणों के लिखित विवरण को" कविता कहा है। उसका कथन है कि हमारे मन में उत्पन्न होनेवाले हमारे विचार अनायास ही पैदा होकर सहसा विलीन हो जाते हैं, लेकिन ये विचार अनिवचनीय रूप से उन्नयनकारी और आनन्ददायक होते हैं। ऐसी हालत मे वे जो अभिलाषा और शोक हमारे मन में छोड जाते हैं, उससे भी आनन्द की ही प्राप्ति होती है। इस समय ऐसा लगता है जैसे कोई दिव्यतर शक्ति हमारे अन्दर प्रवेश कर गयी हो। परन्तु इसके पदचिह्न ऐसे होते हैं जैसे हवा समुद्र पर बहती है, ये पदचिह्न शान्ति छा जाने पर लुप्त हो जाते हैं और उनके अवशेष नदी तट पर एकत्र वालू की लहरियों के रूप में रह जाते हैं। इन परिस्थितियों का अनुभव मुख्यत उन्हीं को होता है जो अत्यन्त सूक्ष्म संवेदनशीलता और व्यापक कल्पना शक्ति से सम्पन्न होते हैं।[3]

वर्डसवर्थ की भाँति शेली आनन्द के उद्गम की चर्चा नही करता और न वह इसी बात की परीक्षा ही करता है कि आनन्द का काव्य से क्या सम्बन्ध है। शेली ने लिखा है कि आनन्द की परिभाषा करना कठिन है लेकिन फिर भी उसे समझाने का उसने प्रयत्न किया है। वह लिखता है, निम्न जनों का दुख प्राय हमारे उत्कृष्ट आनन्द के साथ सम्बद्ध रहता है। ट्रेजेडी से हमें आनन्द मिलता है क्योंकि इससे दुख में निहित आनन्द का उपलब्धि होती है। विषाद का भी स्रोत यही है जो मधुरतम राग से पृथक नही किया जा सकता। दुख का आनन्द सुख के आनन्द की अपेक्षा मधुर है। इसीलिए कहा गया है 'सुखी गृह में जाने की अपेक्षा दुखी गृह में जाना बहतर है'। किन्तु काव्यगत उत्कृष्ट आनन्द अनिवार्य रूप से दुखमूलक ही नहीं होता। प्रेम और मित्रता का आनन्द, प्रकृति सौंदर्य का आनन्द, अनुभूति का आनन्द तथा सबसे अधिक काव्यरचना का आनन्द प्राय सम्पूर्ण रूप से शुद्ध आनन्द माना गया है।[4]

१—वही, पृ० १९६
२—वही,
३—वही, पृ० १९४
४—वही, पृ० १८९ ९०

शेली ने कहा है कि आधुनिक काल में भी कोई जीवित कवि अपने यश की पराकाष्ठा तक नही पहुँच पाया। कवि को उसने एक बुलबुल की उपमा दी है जो अँधेरे मे बैठकर अपनी निजनता को मधुर स्वरों से भर देती है। उसके परीक्षक वे लोग हैं जो अदृश्य सगीतज्ञ के स्वरमाधुर्य से मुग्ध हो जाते हैं। वे अनुभव करते हैं कि वे अनुप्राणित और स्निग्धता से ओतप्रोत हो गये हैं पर वे यह जान नही पाते कि क्यो और कैसे? होमर के पात्रों को उसने मानव चरित्र का आदर्शरूप बताते हुए उसकी अमर कृतियो म मैत्री, देशभक्ति और किसी वस्तु के प्रति दृढ निष्ठा के सत्य और सुदर रूपो मे उद्‌घाटन को प्रशसनीय माना है।[1]

शेली के अनुसार, दुनिया में जो सबसे श्रेष्ठ और सुदर है, कविता उसे अमर कर देती है। जीवन के बीच-बीच में जो विलीन होनेवाली छवियाँ आ जाती हैं, उन्हें वह पकड लेती है और उन्हें भाषा अथवा अन्य कोई आकार देकर मानव के समक्ष प्रस्तुत कर देती है। कविता मानव द्वारा अनुभूत भावनाओं को क्षय से बचाती है। शेली ने लिखा है 'कविता प्रत्येक वस्तु को सौदर्य प्रदान करती है। जो परम सुदर है उसके सौदर्य में यह वृद्धि करती है और जो अत्यन्त कुरूप है, उसे भी सौदर्य प्रदान करती है। वह जिसका भी स्पर्श करती है, उसमें परिवर्तन ला देती है, तथा उसकी जगमगाहट की परिधि में आनेवाली प्रत्येक वस्तु आश्चर्य-कारक समवेदना द्वारा सहज आत्मतत्व से सम्पन्न हो उठती है। वह ससार के ऊपर से परिचित भाव का पर्दा हटाकर अनावृत एव सुप्त सौंदर्य का उद्घाटन करती है, जो उसके रूपों का प्राण है।"[2]

काव्य और नैतिकता

सिडनी ने नैतिक सुधार की ओर ले जानेवाली कविता का समर्थन किया था। नीति का उपदेश देनेवाले दार्शनिको के सम्बन्ध म उसने कहा है कि नैतिक सिद्धातों का बडे निर्जीव और गूढ़ ढग से प्रतिपादन करते हैं जबकि कवि उनका भावपूर्ण और ठोस चित्र प्रस्तुत करता है। लेकिन शेली ने इस विषय पर कुछ अधिक सूक्ष्मतापूर्वक विचार किया है। उसके अनुसार, काव्य नैतिकता का 'बोलता चित्र' नही है, नैतिकता को सशक्त बनाने में कल्पना का हाथ है। शेली का कथन है कि समवेदना नैतिकता में कारण है तथा कल्पना समवेदना में कारण होती है इसलिए कल्पना को नैतिकता म कारण बताया गया है। अब चूँकि कविता कल्पना को सामर्थ्य प्रदान करती है अतएव कविता को नैतिकता का मुख्य कारण माना गया है। "बहुत अच्छा होने के लिए आदमी के पास उत्कट और व्यापक कल्पना होनी चाहिए।"

१—वही पृ० १६६–७०।

२—वही पृ० १६४–६५।

कविता मनुष्य में किस प्रकार नैतिक सुधार उत्पन्न करती है, इस सम्बन्ध में शेली ने विस्तार से चर्चा की है। वह लिखता है, "जिन तत्वों का कविता ने सृजन किया है, नीतिशास्त्र उन्हें क्रमबद्ध करता है तथा नागरिक और पारिवारिक जीवन की योजनाओं पर विचार करता है और उदाहरणों को प्रस्तुत करता है। कविता एक और अधिक दिव्य रूप से अपना काम करती है। मानस को यह विचारों के सहस्रों अनुभूत संयोगों का भंडार बनाकर उसे जागृत और परिवर्धित करती है। कविता संसार के प्रच्छन्न सौंदर्य पर से पर्दा उठा देती है जिससे परिचित पदार्थ भी ऐसे लगने लगते हैं मानो वे अपरिचित हों।"

शेली ने प्रेम को नैतिकता का एक महान् रहस्य कहा है। प्रेम का अर्थ उसने किया है—अपनी वैयक्तिकता के बाहर जाकर बहिर्जगत् के व्यक्ति, विचार अथवा क्रियाकलाप में जो सुन्दर है, उसके साथ तादात्म्य स्थापित करना। शेली का कहना है कि जिस व्यक्ति में कल्पना की मात्रा जितनी अधिक होती है, वह उतना ही अधिक नैतिक होता है। उस व्यक्ति को अपने आपको दूसरों की परिस्थिति में रखना चाहिए, जिससे कि दूसरों के सुख दुख उसके अपने हो जायँ। इसके लिए शेली ने कल्पना को मुख्य माना है और यह कल्पना कविता द्वारा उसी तरह पुष्ट होती है जैसे व्यायाम करने से शरीर के अवयव पुष्ट होते हैं।

इसलिए शेली के कथनानुसार, कवि अपनी रचनाओं में सही और गलत की धारणाओं का समावेश नहीं करता, क्योंकि उसकी ये धारणाएँ देश काल में सीमित रहती हैं, और कविता देश और काल से निरपेक्ष है। शेली का कथन है कि जिनमें कवित्व शक्ति महान् होने पर भी उत्कृष्ट नहीं होती, और वे उसमें किसी नैतिक प्रयोजन का समावेश करते हैं, तो जिस अनुपात में वे हम अपना ध्यान इस उद्देश्य की ओर केंद्रित करने के लिए विवश करते हैं, उसी अनुपात में उनकी कविता का प्रभाव घट जाता है।[1]

कवि का स्थान

काव्य की उत्कृष्टता प्रतिपादन करने के लिए कवि को उत्कृष्ट सिद्ध करना आवश्यक है। अवश्य ही इस संबंध में शेली प्लेटो से प्रभावित था। शेली ने कवि उनको कहा है जो काव्यसृजन के अक्षय विधान की कल्पना कर उसकी अभिव्यक्ति करते हैं। वे केवल भाषा, संगीत, नृत्य, स्थापत्यकला मूर्तिकला और चित्रकला के ही निर्माता नहीं होते, वरन् नियमों के विधायक, नागरिक समाज के स्थापक तथा जीवनकला के उन्नायक भी होते हैं। वे जो अदृश्य जगत् की शक्तियों के आंशिक बोध को—जिसे धर्म कहते हैं—सत्य और सौन्दर्य के सान्निध्य में लाते हैं।

१—वही, पृ० १७१ ७२

अपने अपने युग और राष्ट्र की परिस्थितियो के अनुसार, शैली ने कवियों को विधायक अथवा स्वप्नद्रष्टा कहा है। उसमे ये दोनो गुण होने हैं। वह केवल वर्तमान का ही उत्कटता से दर्शन नही करता, वरन् वर्तमान मे भविष्य का साक्षात्कार करता है, तथा उसके विचारों मे आधुनिकतम समय के फल और फूलो का बीज निहित रहता है।

शैली के अनुसार कवि का सम्बन्ध शाश्वत, असीम और एक-सा रहता है। जहाँ तक उसके दर्शन का प्रश्न है, उसमे देश, काल और सख्या का अस्तित्व नही रहता। देश, काल और व्यक्तिबोधक व्याकरण सम्बन्धी शब्दरूपो को बदल देने पर भी उत्कृष्ट काव्य में कोई अन्तर नहीं पडता।[१]

कवि का मस्तिष्क पूर्ण रूप से निष्क्रिय बताया गया है, इसलिये शेली के कथनानुसार कोई भी व्यक्ति यह नही कह सकता कि वह कविता लिखेगा, बडे से बडा कवि भी इस बात का दावा नहीं कर सकता। क्योंकि कविता के एक दिव्य शक्ति होने के कारण स्रष्टा का मन एक बुझते हुए अगारे की भाँति है जिसे कभी-कभी आनेवाले हवा के झोके की भाति कोई अदृश्य प्रभाव क्षणभर के लिए उद्दीप्त कर देता है। कवि की शक्ति उसके अन्तरग से उद्भूत होती है जैसे कि फूल का रग उसके खिलने के साथ मुरझाता और बदलता रहता है। हमारी चेतना को न उसके आविर्भाव के और न तिरोभाव के सम्बन्ध मे पहले से कुछ पता लगता है। शेली ने कहा है कि जब कोई काव्यरचना आरम्भ की जाती है, तो प्रेरणा का ह्रास शुरू हो जाता है तथा उत्कृष्ट से उत्कृष्ट कोटि की जो कविता आज तक दुनिया म लिखी गयी है, वह सभवत कवि की मूल अनुभूति की एक धूमिल छाया-मात्र है। शेली अपने युग के महानतम कवियों से प्रश्न करता है कि क्या यह समझना गलत नही है कि कविता के श्रेष्ठतम अश केवल अध्यवसाय और अध्ययन के फलस्वरूप ही अस्तित्व में आये हैं?[२]

कवि के सम्बन्ध में शैली ने लिखा है कि वह जब दूसरो के लिए परम बुद्धिमत्ता, आनन्द, सदाचार और यश गौरव का जन्मदाता है, तो स्वय भी उसे सबसे सुखी, सबसे श्रेष्ठ सबसे बुद्धिमान् तथा सबसे अधिक लब्धप्रतिष्ठ होना चाहिए। जहाँ तक यश गौरव का प्रश्न है मानव जीवन के अन्य किसी भी नियामक के साथ उसकी तुलना नहीं की जा सकती।[३] शैली ने दाँते, चाँसर और शेक्सपियर आदि कवियों का गौरव करते हुए लिखा है कि यदि लॉक, ह्यूम, गिबन, वोल्तायर और रूसो तथा

१—वही, पृ० १६४-६५
२—वही, पृ० १६२-६३
३—वही, पृ० १६५-६६

उनके शिष्य आदि पैदा न हुए होते तो हम समझ सकते हैं कि दुनिया में नैतिक और बौद्धिक उन्नति कहाँ तक पहुँचती। लेकिन यदि दांते, पेट्रार्क, चॉसर, शेक्सपियर और मिल्टन आदि कवि न हुए होते तो लोगों की क्या नैतिक दशा हुई होती, इसकी कल्पना करना भी कठिन है।'[1]

निबन्ध में अन्त में शेली ने लिखा है, 'कवि अगाध प्रेरणा के उद्गाता होते हैं, वे वर्तमान पर भविष्य की विराट् छाया फेंकनेवाले दर्पण हैं, वे एस शब्द हैं जो ऐसी बात की अभिव्यंजना करते हैं जिसे खुद नहीं समझते, वे ऐसी तुरहो हैं जो युद्ध का तो आह्वान करती हैं लेकिन उनकी समझ में नहीं आता कि वह किस बात की प्रेरणा दे रही हैं, वे ऐसे प्रभाव का तरह हैं जो स्वयं अस्थिर रहता है लेकिन दूसरों को गतिशील बनाता है। कवि संसार के बिना माने हुए नियामक हैं।'[2] शेली यहाँ एक अभिनव युग की ओर लक्ष्य कर रहा है जिसका वह अपने आपको अग्रदूत मानता है।

शेली का पाश्चात्य समीक्षा पर प्रभाव

यहाँ जो गौरवपूर्ण रूप में कविता का बचाव किया गया है, उसके सम्बन्ध में यह जान लेना जरूरी है कि यहाँ थॉमस लव पीकॉक के कविता सम्बन्धी आक्षेपों का उत्तर दिया जा रहा है। अतएव काव्यसृजन की अन्त प्रेरणा के उन्नयन सम्बन्धी वक्तव्य को सीमित रूप में ही स्वीकार करना ठीक होगा। कविता को यहाँ दर्शन, नैतिकता और कला इन तीनों से अभिन्न माना है जिसका मतलब है कि जो विशेषता इन तीनों में अथवा कविता को छोड़कर अन्य दोनों में होगी, वह केवल कविता में नहीं मिल सकती। दरअसल शेली यहाँ सिडनी की 'डिफेंस ऑफ पोयट्री' का ही अनुकरण कर रहा है जिसका उसने अपनी रचना को लिपिबद्ध करने के पूर्व अध्ययन किया था। इसके सिवाय, शेली अपनी रचना को बार बार दुहराता भी रहा है, और इस समय उसने प्रथम अन्त प्रेरणा को इतना अधिक महत्त्व नहीं दिया।

स्काट-जेम्स के अनुसार, शेली और वर्ड्सवर्थ के सिद्धान्त सुखद प्रेरणा के सिद्धान्त पर आधारित होने के कारण कवि की काव्यरचना को अत्यन्त सुगम बना देते हैं। इससे कवि अकर्मण्यता की ओर उन्मुख होता है और हम उसकी सराहना करते हैं जबकि वह इन्द्रियजन्य प्रलोभनों के वशीभूत होकर किसी देवदूत की अत्यन्त सुगम और 'निष्प्रभ' उड़ान की भाँति उड़ानें भरने लगता है। दैवी सहायता में अत्यधिक विश्वास रखने के कारण वे इस बात को भूल जाते हैं कि कवि को अपनी साधना द्वारा अपने विचारों को मूर्त रूप देने के लिए सौंदर्य की कठोरता

१—वही, पृ० १६०

२—वही, पृ० १६६। तासो (Tasso) ने एक ईश्वर के सिवाय कवि को ही कर्ता स्वीकार किया है। रेने वैले, ए हिस्ट्री ऑफ माडर्न क्रिटिसिज्म २, पृ० १२५

का सामना करना पड़ता है। कला को वस्तुतः हमारे जीवन के प्रति तथा हमारी अनुभूति के प्रति सच्ची होनी चाहिए।[1]

उन्नीसवीं शताब्दी में बढ़ते हुए वैज्ञानिक युग में, वर्ड्सवर्थ और कॉलरिज के सिद्धान्तों के आधार पर शेली ने काव्यगौरव को प्रतिष्ठित किया, यह उसकी सबसे बड़ी देन है। वर्ड्सवर्थ की भाँति शेली ने भी कविता को आनन्दातिरेक की अवस्था स्वीकार कर उसे सत्य का प्रेरक माना। दोनों ने ही कला को अनुभूति का वाहक बताया है। उनके अनुसार, न कविता चातुर्य है, न छन्दशास्त्र, न केवल विशुद्धता है और न नियमों का प्रतिपालन ही, न इसे किसी पैमाने अथवा व्याकरण की पुस्तक से मापा जा सकता है, और न विद्वत्ता की परिधि में सीमित रखा जा सकता है।[2] वर्ड्सवर्थ और कॉलरिज की भाँति शेली भी कविता का उद्देश्य आनन्द प्रदान करना मानता है लेकिन शिवत्व के साथ वह सत्य का सम्बन्ध भी जोड़ देता है। "कविता को न चूकने वाला दूत, साथी, तथा विचारों और समाज में लाभदायक परिवर्तन पैदा करने के लिए, महान् पुरुषों की जागृति का अनुयायी"[3] प्रतिपादन कर निश्चय ही शेली ने काव्य की प्रतिष्ठा को गौरवान्वित किया है।

शेली अपने युग का एक गीतिकाव्य लेखक दार्शनिक, आदर्शवादी और ईश्वर के अस्तित्व को नकारने वाला समाजसुधारक समीक्षक हो गया है। उसकी बौद्धिक स्पृहा में गूढ़ अथवा आदर्श सौंदर्य का अन्तर्भाव होता है, तथा उसका उत्कट भावावेग मानवता को आवृत कर लेनेवाला अनुराग बन गया है। आगे चलकर शेली के काव्य सिद्धान्तों ने अनेक पाश्चात्य समीक्षकों को प्रभावित किया।

१—द मेकिंग ऑफ लिटरेचर, पृ० २१२-१३
२—वही, पृ० २१३
३—वही, पृ० १६८

जॉन कीट्स (१७९५—१८२१)

कीटस उत्तरकालीन क्रांतिकारी कवियों मे सबसे छोटा था। १५ वर्ष की अवस्था में वह अनाथ हो गया। वह बनना चाहता था डाक्टर, लेकिन भाग्य में बदा था होना कवि। यह ले हण्ट आदि उसके मित्रों की कृपा का ही फल समझना चाहिए कि १८१७ में, केवल २२ वर्ष की अवस्था में, उसकी कविताओं का संग्रह प्रकाशित हो सका। इस संग्रह का प्रथम भाग ले हण्ट को समर्पित किया गया है। ले हण्ट की कारागार मुक्ति पर भी इसमें एक कविता है। तत्पश्चात् 'इडीमियन', 'लामिया' (अपूर्ण), 'हाइपीरियन', तथा 'इजाबेला', 'द ईव आफ सेंट ऐग्निस, 'ला बेल दाम सा मर्सी' (La Belle Dame Sans Merci), आँन द ग्रीशियन अर्न'— उसकी सुप्रसिद्ध रचनाएँ प्रकाशित हुईं। १८१९ मे उसने ओड्स (लघु गीत) की रचना की जिनमे कवि का सामंजस्य और कौशलपूर्ण संक्षिप्त और सुसम्पादित स्वच्छंदतावादी रूप निखर कर आया। इनमें 'ओड टू ए नाईटिंगल', 'ओड ऑन ए ग्रीशियन अर्न', 'ओड आँन मैलनकली'[1] आदि मुख्य हैं। 'ओड टू नाईटिंगल' की रचना १८१९ की वसन्त ऋतु में नाईटिंगल की सुरीली ध्वनि सुनकर की गयी थी जिसने कि कीट्स के निवासस्थान के पास एक घोंसला बना रक्खा था।

शैली और छंद आदि की दृष्टि से कीट्स समस्त स्वच्छंदतावादी कवियों मे सबसे अधिक स्वच्छंदतावादी था। उसकी मान्यता थी कि यूनानी कला का वर्णन भी यूनानी कला के संयम और प्रतिबन्ध से बहुत दूर चला गया है। क्लासिकल दोहे का उसने पूर्ण बहिष्कार किया। उसकी रचनाओं से फ्रांसीसी क्रांति

१—अंतिम गीत में कीटस ने प्रियमाण सौंदर्य को श्रेष्ठ माना है। रेनोल्ड को लिखे हुए अपने एक पत्र में उसने लिखा है, "जब तक हम घायल नहीं होते, हम समझते नहीं।" बायरन ने ज्ञान को दुख माना है, लेकिन कीटस ने दुख को विवेक कहा है। लॉर्ड हॉगटन लाइफ ऐंड लैटर्स ऑफ जॉन कीटस, भाग २, पृ० ८५। इसी विचार से प्रभावित होकर बोद्लेयर ने विषाद और सौंदय को अभिन्न स्वीकार किया है। स्वच्छंदतावादी कवियों ने सौंदय तथा मृत्यु को परस्पर बहनें माना है। देखिए मारियो प्राज द रोमांटिक अगोनी, पृ० ३०—३१, लदन, १९५१। 'ओड टू नाईटिंगल' और 'ला बेल दाम सां मर्सी' आदि में भी फ्रांसीसी विद्वानों ने रहस्यवाद और प्रतीकवाद की खोज की है। देखिए वही, पृ० २०१—३

द्वारा उत्पन्न सामाजिक क्षोभ एवं मानवकल्याण सम्बन्धी उत्साह के ह्रास का परिचय मिलता है।[1]

'रुचि की गम्भीरता'

कीट्स ने नवजागरण काल के लेखकों का अध्ययन किया था। स्पेंसर, फ्लेचर और मिल्टन उसके प्रिय कवियों में थे, शेक्सपियर और ले हण्ट से वह प्रभावित था, तथा समसामयिक कवियों में वर्डसवर्थ का प्रशंसक था, और बायरन पर उसने कविता लिखी थी। हैज़लिट के 'करैक्टर्स आफ़ शेक्सपियर'स प्लेज' (शेक्सपियर के नाटकों के पात्र) की उसने व्याख्या की थी। 'रुचि की गंभीरता' को वह 'अपने युग की आनन्ददायक तीन वस्तुओं' में स्वीकार करता था।[2]

आत्माभिव्यक्ति ही कविता है

कीटस ने अपने पत्रों में कवि की निर्वैयक्तिकता (इम्पर्सनेलिटी) अथवा 'निषेधात्मक योग्यता' (नेगेटिव कैपेबिलिटी) पर जोर दिया है। एक पत्र में वह लिखता है "किसी विद्यमान वस्तु में कवि अकाव्यात्मक (अनपोएटिकल) है, क्योंकि उसकी कोई पहचान (आइडेंटिटी) नहीं। सूर्य, चन्द्र, समुद्र, पुरुष और स्त्री जो अन्त प्रेरणा के जीव हैं, काव्यात्मक हैं तथा उनमें अपरिवर्तनीय गुण विद्यमान हैं। कवि में यह सब नहीं है, उसकी कोई पहचान नहीं। निश्चय ही वह ईश्वर के प्राणियों में सर्वाधिक अकाव्यात्मक है। ऐसी हालत में उसमें स्वत्व नहीं, और यदि मैं कवि हूँ तो इसमें आश्चर्य की कौन बात है कि मैं कहूँ कि अब मैं न लिखूँगा।"[3] कीट्स के अनुसार कवि में, तथ्य और युक्तियों पर उत्तेजना-पूर्ण पहुँच के बिना, अनिश्चितताओं रहस्यों और सन्देहों में रहने की" योग्यता होनी चाहिए। अतएव कवि को कोई बात निश्चय से न कहनी चाहिए न उसे कॉलरिज की भाँति दार्शनिक बनना चाहिए, "जो अपूर्ण ज्ञान से सन्तुष्ट रहने के अयोग्य हो। इस प्रकार कीटस कविता के बौद्धिक अथवा नैतिक स्वरूप को स्वीकार न कर उसकी सौंदर्यानुभूति को मुख्य मानता है। जब वर्डसवर्थ कविता के किसी स्पष्ट उद्देश्य की चर्चा करता है तो कीटस को यह मान्य नहीं है। शेली को लिखे हुए अपने पत्र में कीट्स ने उसे 'अपनी महानुभावता पर नियन्त्रण रखने की" सलाह देते हुए, अधिक कलाकार बनने और "अपने विषय की प्रत्येक दरार को धातु से

१—हडसन अंग्रेजी साहित्य का इतिहास (हिन्दी अनुवाद), पृ० २४० ४१

२—लाथी रैंड बजामिया वही पृ० १०६२, रेने वले, वही, २, पृ० २१२

३—लॉर्ड होगटन वही, भाग २, पृ० १३४

भर देने" का अनुरोध किया था।[1] कीट्स ने "अपनी कविता की एक भी पंक्ति ऐसी नहीं लिखी जिसमें जनसामान्य के विचार का तनिक भी आभास मिलता हो।" स्वयं कीट्स के शब्दों में, उसके सर्वश्रेष्ठ क्षणों में कविता का आविर्भाव होता है—"स्वाभाविक रूप में जैसे कि वृक्ष से पत्तियाँ फूटती हैं, यदि ऐसा न हो तो कविता का आविर्भाव ही न हो।"[2] कीट्स लिखता है "कविता की प्रतिभा को अपनी मुक्ति के लिए मनुष्य में स्वयं प्रयत्न करना चाहिए नियम-कायदे और आदेशों से नहीं, किन्तु अपने आप में सम्वेदन और सतर्कता से यह परिपक्वता प्राप्त कर सकती है। जो सृजनात्मक है, उसे अपने आपका सृजन करना चाहिए।" इस प्रकार कीट्स ने मुख्यतया आत्माभिव्यक्ति को, विचारों और नैतिक आदर्शों की जगह अनुभूति की अभिव्यक्ति को ही कविता कहा है।[3]

सौंदर्य ही परम सत्य

कीट्स के लिए सौंदर्य सबसे बड़ा धर्म है और वही परम सत्य है। वोडहाउस के नाम अपने एक पत्र में वह लिखता है, जहाँ तक काव्यात्मक लक्षण का प्रश्न है, वह अपने आप में नहीं है—उसमें स्वत्व नहीं है—यह प्रत्येक वस्तु है और कोई भी वस्तु नहीं है—इसका कोई लक्षण नहीं—प्रकाश और छाया का यह उपभोग करता है—*यह आनन्द में लीन रहता है, चाहे यह आनन्द वीभत्स हो या सुन्दर, उच्च हो* अथवा नीच, मूल्यवान हो या दरिद्र निम्न हो अथवा उन्नत । जिससे किसी गुणी दार्शनिक को आघात पहुँचता है, उसी से रंग बदलने वाले (chameleon) कवि को आनन्द प्राप्त होता है।"[4] 'इंडीमिशन' की सुविख्यात प्रथम पंक्ति में यही स्वर मुखरित हुआ है—'सौंदर्य की वस्तु सदा आनन्द के लिए होती है (ए थिंग फॉर ब्यूटी इज ए जॉय फॉर ऐवेर)[5] इसकी कमनीयता बढ़ती ही जाती है, कभी शून्यता को प्राप्त नहीं होती।' कीट्स के शब्दों में "जिसे कल्पना सुन्दर

१—लॉर्ड हॉगटन ने 'द पोएम्स ऑफ जान कीट्स विद द लाइफ एण्ड लेटर्स' की भूमिका (पृ० १६) में लिखा है कीट्स कविता को एक शानदार बाना पहनाता है जब कि वर्डसवर्थ ने सुव्यवस्थित सादगी से लिखी हुई भाषा के कँकाल से ही काम चलाया और तब उसने विचार किया कि गीतिकाव्य के लिए पुराना कोट ही ठीक है।"

२—लॉर्ड हॉगटन वही भाग २, पृ० ७०

३—रेने वले, वही पृ० २१२ १३

४—लार्ड हॉगटन वही २ पृ० १३२

५—तथा देखिये ई० ए० ग्रेनिंग लम्बोल, रुडीमेण्टस ऑफ क्रिटिसिज्म, 'पोएट्री इज फॉमल ब्यूटी' नामक अध्याय

समझती है, वही सत्य होना चाहिए।" उसकी सुप्रसिद्ध 'ओड ऑन द ग्रोशियन अर्न' कविता में कहा गया है—

"सौंदय सत्य है, सत्य सौंदर्य है–बस इसे ही
तुम पृथ्वी पर जानते हो, और बस यही जानने की जरूरत है।"

रैनोल्ड्स को अपने एक पत्र मे वह लिखता है, 'हृदय के प्रेम की पवित्रता और कल्पना के सत्य के सिवाय मुझे और किसी बात का निश्चय नही है। कल्पना इस बात को ग्रहण करती है कि निश्चय से सौंदय को सत्य होना चाहिए चाहे वह पूवकाल में विद्यमान रहा हो या नहीं,—क्योंकि मैं अपने समस्त भावावेशों को प्रेम ही समझता हूँ, वे सब अपनी उदात्त अवस्था मे परमावश्यक सौंदय के सजक हैं।" कल्पना की तुलना कीट्स ने आदम के स्वप्न से की है वह सोकर उठा और उसने उसे सत्य पाया।[1] सौंदय का स्पश करने की कीटस ने मनाही की है, उसका दूर से ही निरीक्षण करके आनन्द प्राप्त करना चाहिए। काय की अमरता मे उसका अटल विश्वास था, कविता उसके लिए शाश्वत है। अपनी मृत्यु के कुछ ही वर्ष पूर्व १७ अप्रैल, १८१७ को कैरिस्ब्रुक को उसने लिखा था—"मुझे लगता है कविता के बिना–शाश्वत कविता के बिना–मैं नहीं रह सकता–आधे दिन भी रह सकना सम्भव नहीं।'[2] उसकी 'आन द ग्रासहॉपर एंण्ड क्रिकेट' (टिड्डे और झिंगुर पर) नामक कविता[3] देखिए—

"इस भू पर कविता सदा अमर है जब पक्षी सूर्य की उष्णता
से मूर्च्छित हो जाते हैं, और वृक्षों की शीतल छाया में अपने
आपको छिपा लेते हैं, उस समय ताजे कटे हुए चरागाह के आसपास,
एक झाड़ी से दूसरी झाड़ी पर फुदकते हुए टिड्डे की आवाज
सुनाई पड़ती है।"

सौंदय की इसी आन्तरिक अनुभूति से विभोर होकर कवि को अपनी 'ओड टू ए नाइटिंगल' कविता म नाइटिंगल की मोहक ध्वनि सुनकर लिखना पड़ा—

'मेरे हृदय में टीस उठती है और एक उनींदी बेहोशी मेरी इन्द्रियों
में व्यथा पैदा कर देती है, मानो मैंने भाग खा ली हो।"

१—लॉर्ड हॉगटन, द पोएम्स ऑफ जॉन कीट्स विद द लाइफ एंण्ड लैटर्स भाग २, पृ० ४५ लंदन, १९३३।

२—लाड हॉगटन, वही भाग २ पृ० २९

३—कीट्स और ले हण्ट मे प्रतियोगिता हुई कि 'टिड्डे और झिंगुर' पर कौन कम-से-कम समय मे कविता लिख सकता है। कीटस की यह कविता इसी प्रतियोगिता का परिणाम है।

काव्य की परिष्कृत अतिशयता

कीट्स के अनुसार, "परिष्कृत अतिशयता (फाइन ऐक्सेस) के कारण कविता को हमें आश्चर्यचकित कर देना चाहिए अपनी असाधारणता (सिंगुलैरिटी) के कारण नहीं, इसे किसी पाठक को अपने उच्चतम विचारों के रूप में ही प्रभावित करना चाहिए जिससे कि यह लगभग कोई स्मृति जैसा प्रतीत होने लगे।'[1] वह लिखता है, 'कविता का अतिमधुर अवतरण ऐंद्रिय और आध्यात्मिक दोनों प्रकार के आनन्द से परिपूर्ण है। जब किसी विचित्र भाषा के अक्षर और वि[illegible] चित्रलिपि (hieroglyph) की भांति, हमारी अमर गुप्त संसद् के रहस्यमय चित्रों को प्रदर्शित करते हैं तो हम आध्यात्मिक आनन्द को प्राप्त होते हैं। दरअसल वर्ड्सवर्थ और हैजलिट की शब्दावली में कीट्स ने काव्य को अतिशयता, अन्वेषण, भावतरंग अथवा कल्पना के नाम से अभिहित किया है।[2]

प्रकृतिप्रेम

विलियम हेनरी हडसन ने लिखा है, आधुनिक संसार कठोर भावना विहीन तथा शुष्क एवं नीरस लगने के कारण कीट्स की रचनाओं में एक कल्पनात्मक पलायन करने का प्रयत्न दृष्टिगोचर होता है। यह प्रयत्न यूनानी पौराणिक कथाओं के रूप में अथवा मध्ययुगीन प्रेमाख्यानों के संसार के रूप में उसकी रचनाओं में देखा जा सकता है। कीट्स न किसी विद्रोही कवि के रूप में और न आदर्श काल्पनिक समाज के स्वप्नद्रष्टा के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होता है। प्रकृति से शुद्ध कलात्मक होने के कारण संघर्षों के प्रति वह उदासीन रहा। शेली के लोकहित सम्बन्धी उत्साह और संसार को परिष्कृत करने की प्रवृत्ति का उसमें अभाव है। आशामय भावी संसार की कल्पना भी उसके मन में उदित नहीं होती। इसीलिए वर्ड्सवर्थ और शेली की भांति कोई आध्यात्मिक संदेश वह नहीं दे पाता। इहलौकिक काव्य के प्रति ही उसका अनुराग दिखायी देता है। उसका प्रकृतिप्रेम, प्रकृति के ही लिए—उसी के 'वैभव और सौंदर्य' के लिए—व्यक्त हुआ है।[3]

कीट्स की काव्य समीक्षा

कीट्स कोई पेशेवर समीक्षक नहीं था। फिर भी इधर-उधर बिखरे हुए उसके लेखों में कवि एवं कविता सम्बन्धी जो विचार व्यक्त किये गये हैं, काव्यसमीक्षा

१—लॉर्ड हौगटन, वही, भाग २ पृ० ७०

२—रेने वले, वही, पृ० २१४

३—हडसन, वही, पृ० २३६

की दृष्टि से वे महत्त्वपूर्ण हैं। उसके साहित्य मे कुछ ही पंक्तियाँ ऐसी होंगी जिन्होंने उसे कवियों के उच्च आसन पर आसीन कर दिया। यह कवि जब तक जीवित रहा, तब तक उसके प्रति अन्याय ही होता रहा—या तो लोग उसकी रचनाओं के प्रति उदासीन रहे, या उनका विरोध करते रहे। कीट्स के मृत्यु के २० वर्ष बाद तक भी उसकी कविताओं का कोई संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ। १८४४में जेफ्रे ने कीट्स संबंधी एक लेख को पुनः मुद्रित किया जिसमें कहा गया था कि शेली और कीट्स की 'प्रचुर लय' (रिच मैलोडीज) विस्मृत की जा रही हैं। तत्पश्चात् सुप्रसिद्ध साहित्यकार थामस डिक्वेंसी ने घोषित किया—"कीटस ने इस मातृभाषा को—इस अंग्रेजी भाषा को—इस तरह से रौंद दिया, जैसे कोई भैंसा अपने खुरों से रौंद देता है।" वस्तुतः शेक्सपियर और मिल्टन के बाद कीटस अंग्रेजी भाषा का अधिकारी विद्वान् माना जाता है। राबर्ट लीण्ड के शब्दों में, वर्डसवर्थ और शेली से बढ़कर कवि उसे नहीं माना जा सकता लेकिन जहाँ तक उसकी मुग्धकारी जादुई शैली का प्रश्न है, वह दोनों से आगे है।[१]

१—लार्ड हॉगटन, द पोएम्स ऑफ जॉन कीट्स विद द लाइफ एँण्ड लैटर्स, भाग २ की भूमिका पृ० ८।

ले हण्ट (१७८४-१८५९)

जेम्स हैनरी ले हण्ट एक पादरी का पुत्र था। 'एक्जामिनर' नाम की अपनी पत्रिका में शासकों की आलोचना करने के कारण उसे दो वर्ष की सजा भुगतनी पड़ी। कुछ समय बाद बायरन के साथ मिलकर उसने 'लिबरल' (१८२२-२३) नाम का एक राजनीतिक पत्रिका का सम्पादन शुरू किया जो अधिक समय तक न चल सकी। ले हण्ट ने लगभग ५० पुस्तकें और सैकड़ों लेख प्रकाशित किये हैं जिससे उसकी अध्यवसायीक वृत्ति का पता लगता है। पत्रकार होने के साथ साथ वह कवि, आलोचक, उपन्यासकार और नाटककार भी था। उसकी सर्वोत्कृष्ट कविता उसकी लयात्मक गद्यरचनाओं में देखी जा सकती हैं। इटालवी साहित्य का वह पंडित था। शेली और कीट्स के साथ ले हण्ट का घनिष्ठ सम्बन्ध था। रचनापद्धति में वह लैम्ब और हैजलिट के निकट था तथा अपने कल्पना सिद्धान्त के विवेचन में उसने कॉलरिज का अनुकरण किया था। कॉलरिज द्वारा की हुई वर्ड्सवर्थ की समीक्षा को उसने 'काव्य कला का सर्वोत्कृष्ट व्याख्यान' कहा है।

कविता भावावेश की उक्ति

'ऐन आन्सर टू द क्वश्चन व्हाट इज् पोएट्री ?' (कविता क्या है ? इस प्रश्न के उत्तर में), 'इमैजिनेशन ऐंण्ड फैन्सी' (कल्पना और भावतरंग), 'विट ऐंण्ड ह्यूमर' (वाग्वैदग्ध्य और विनोद) उसकी आलोचनात्मक कृतियाँ हैं। उसकी 'ऑटोबायोग्राफी' (आत्मकथा) एक सुन्दर रचना है। हण्ट ने कविता को "सत्य, सौंदर्य और शक्ति के एसे भावावेश (पैशन) की उक्ति" कहा है जो अपनी धारणाओं को कल्पना तथा भावतरंग के बल से मूर्त रूप देती है और उनका स्पष्टीकरण करती है तथा एकता में भिन्नता के सिद्धान्त पर भाषा का नियन्त्रण करती है।" कविता भावावेश इसलिए है क्योंकि वह हमारे गंभीरतम प्रभावों की खोज करती है, तथा इन भावों को दूसरों तक पहुँचाने के लिए प्रयत्नशील रहती है। यह सत्य का भावावेश होना चाहिए क्योंकि सत्य के बिना हमारा प्रभाव मिथ्या अथवा सदोष कहा जायेगा, यह सौंदर्य का भावावेश होना चाहिए क्योंकि आनन्द के माध्यम से ही यह समुन्नत और परिष्कृत होती है, तथा आनन्द का सर्वोत्कृष्ट रूप ही सौन्दर्य है, यह शक्ति का भावावेश होना चाहिए क्योंकि शक्ति एक विजयी प्रभाव है, चाहे उसका सम्बन्ध कवि से हो या पाठक से। कवि अपने मनोज्ञ प्रभावों को अपनी कल्पना और भावतरंग के बल से मूर्तिमान रूप देता है और उनका स्पष्टीकरण करता है। कलाकार जो कुछ प्रतिपादन करता है, उस

पर उसका नियन्त्रण होना चाहिए, क्योंकि उसके कथन में शब्द-सौंदय का होना आवश्यक है। इस नियन्त्रण मे कविता की रूपरेखा में एकता और उसके अशो मे भिन्नता होनी चाहिए। कविता एक कल्पनात्मक भावावेश है, अतएव जिसमे विचार, अनुभव, अभिव्यक्ति, कल्पना, क्रियाव्यापार, चरित्र और अखण्डता अधिकाधिक मात्रा मे मौजूद हो, उसे ही महानतम कवि कहा गया है।[1]

कविता का आरम्भ

जहाँ प्रकृति अथवा विज्ञान की समाप्ति होने से किसी सत्य का प्रदशन होता है—मनोवेगो की दुनिया से सम्बन्ध स्थापित होता है, तथा इसमें कल्पनात्मक आनन्द उत्पन्न करने की शक्ति पैदा हो जाती है, वहाँ कविता का आरम्भ होता है।[2] कविता में अनुभूति और कल्पना का होना आवश्यक है। अनुभूति और कल्पना की सहायता से हमे ज्ञात हो सकता है कि किस बात का प्ररूपण करना चाहिए और किसका नहीं, तथा कौनसी बात उपयुक्त, प्रभावोत्पादक और आवश्यक हो सकती है। अनुभूति के अभाव मे सौकुमार्य और वर्षिष्ट्य, तथा कल्पना के अभाव में विषय का सच्चा साकार रूप प्रस्तुत नही किया जा सकता।[3]

कल्पना और भावतरग

हण्ट ने कल्पना और भावतरग में अन्तर प्रतिपादन करते हुए "भावतरग को कल्पना की छोटी बहन" कहा है 'जिसमें कल्पना के विचार और अनुभूति का वजन नहीं रहता।' कल्पना शुद्ध अनुभूति है—सूक्ष्मतम और प्रभावोत्पादक समानताओं की अनुभूति यह वस्तुओं के स्वभाव अथवा उनके सावजनिक वैशिष्ट्यों के प्रति सहानुभूतियों का इन्द्रियबोध है। उन वस्तुओं के वास्तविक अथवा काल्पनिक सादृश्य तथा वास्तवी और काल्पनिक सृष्टि के साथ क्रीडा करना भावतरग है।' "कल्पना का सम्बन्ध ट्रैजेडी अथवा गभीर कला की देवी (म्यूज) से है, भावतरग का हास्य (कॉमिक) से।" "कल्पना अत्यधिक सीमित, और प्राय अत्यधिक स्थूल होती है। यह बिना अत्यधिक परिवतन के किसी ठोस पदाथ का भाव उपस्थित करती है।" "भावतरग केवल आध्यात्मिक प्रतिबिम्ब अथवा एक काल्पनिक दृश्य है और चक्षुग्राह्यता (विजिबिलिटी) से वह क्वचित् ही मुक्त रहती है जो कि कल्पना का सर्वोच्च गुण है।" हण्ट ने विषाद (मेलनकली) को कल्पना का शिक्षक बताया है, 'वह तारों मे से झाँकती है तथा विश्व की आध्यात्मिक समानताओं

१—ले हण्ट ऐन आन्सर टू द क्वश्चन व्हाट इज पोएट्री ?, पृ० ३०० २, एँडमण्ड जोन्स इंगलिश क्रिटिकल ऐसेज नाइन्टीन्थ सेंचुअरी

२—वही पृ० ३०२

३—वही, पृ० ३१६

और रहस्यों में सलग्न रहती है। भावतरग अपनी बहन के मायावी औजारो
तिलोनो में परिवर्तित कर देती है। अपने हाथ में दूरबीन लेकर यह एक अनुकर
शील (मिमिक) तारे को अपने मस्तक पर लगाती है और ज्योतिष की ध्व
बनकर निकल पड़ती है। उसकी प्रवृत्ति बच्चो जैसी खेलकूद की होती है।
तितलियों के पीछे दौड़ता है जबकि उसकी बहन देवदूतों के साथ उड़ा करती है
'वह वाग्वैदग्ध्य काव्यात्मक मय है। वाग्वैदग्ध्य के प्रतिबिम्बों में वह पत्त म
अनुभूति जोड़ देता है।' भावतरग प्राय कल्पना के साथ पाया जाता है, जैसा
हम महान्तम कवियो म हमेशा देखते हैं, भावतरग की मात्रा ही कवियों में अधि
होती है।[1]

पद्य, कविता के लिए आवश्यक

हण्ट ने कविता की परिभाषा देते समय एकता में भिन्नता के सिद्धात द्वा
पद्य पर नियत्रण रखने का उल्लेख करते हुए प्रभाव की एकता का प्रतिपादन कि
है। इसपर से कुछ लोगों का मानना है कि कविता को पद्य में लिखने की बिल्कु
भी आवश्यकता नहीं, और इस दशा में गद्य कविता का एक अच्छा माध्यम ह
सकता है। लेकिन ऐसी बात नही है। हण्ट ने पद्य को कविता के लिए आवश्य
माना है क्योंकि काव्यात्मा की पूर्णता के लिए इसकी आवश्यकता है, बिना इस
उत्साह, सौंदर्य और शक्ति का दायरा अपूर्ण ही रहता है। जैसे कवि की अन्य प्रेरणा
उसके उत्साह से उद्भूत होती हैं, वैसे ही पद्य भी होता है, जो उसकी अन्त प्रेरणाअ
के सतोष और प्रभाव के लिए आवश्यक है। पद्य और कवि को यहाँ "एक–दूसरे क
प्रेमी' बताया गया है "जो खेल खेल मे परस्पर के शासन को चुनौती देते हुए एक-
दूसरे पर समानतापूर्वक शासन करके और आज्ञापालन करने मे प्रसन्न होते हैं।'
कविता की सौंदर्य के साथ पूर्ण सहानुभूति रहती है, तथा अनिवार्य रूप से यह सौंदर्य
के किसी अश और रूप की किसी शक्ति को अस्पष्ट नही रहने देती, तथा इसकी
अखड अवस्था को पूर्ण करने के लिए पद्य का प्रवाहित होना आवश्यक है। बाइबिल
भी अपने मूल रूप में पद्य में ही लिखी गयी थी।[2]

श्रेष्ठ कवि के गुण

हण्ट ने उस कवि को सर्वश्रेष्ठ माना है जिसके पद्य मे अधिकाधिक शक्ति,
माधुर्य, स्पष्टवादिता सार्थकता विविधता और एकता की मात्रा विद्यमान हो।[3]
कौन कवि सर्वश्रेष्ठ है, यह जानने के लिए कवियों की रचनाओं को अत्यधिक ध्यान

१—वही, पृ० ३२१–२३
२—वही पृ० २६–२७
३—वही, पृ० ३२८ आदि

से पढ़ने तथा उस सत्य और सौंदर्य का मनन करने की आवश्यकता है जिसने उन्हें उस अवस्था तक पहुँचाया है जो उन्होंने प्राप्त की है। इसके लिए हाथ में पेंसिल लेकर अध्ययन करने का आदेश है जिससे कि मनोनुकूल अथवा संदिग्ध स्थानों को चिह्नांकित किया जा सके। महाकाव्य सर्वोत्तम है जिसमें नाटक, पात्रों के भाषण और कार्यकलाप तथा कवि की उक्ति आदि अन्तर्भूत होते हैं। इस प्रसंग पर होमर, शेक्सपियर, दान्ते, मिल्टन, चॉसर, स्पेंसर आदि कवियों का नामोल्लेख किया गया है।

सर्वप्रथम कवि में कल्पना का होना आवश्यक है। उसके बाद अनुभूति और विचार, फिर भावतरंग और अन्त में वाग्वैदग्ध्य आता है। केवल विचार ग्रहण करने से कोई कवि नहीं बन सकता। हाँ, अनुभूति से काम चल सकता है, भले ही उसमें विचार की मात्रा न भी हो। रुचि को निर्णय का निर्माता कहा गया है। अपने आपको और दूसरों को आनन्द प्रदान करना उन कवियों का गुण है, जो अनुभूति के सत्य का उल्लंघन नहीं करते। सत्य महान् कृति के लिए आवश्यक है।

कविता की विज्ञान से तुलना करते हुए हण्ट ने मिल्टन के शब्दों में कविता को 'सरल, इंद्रियग्राह्य (सेंसुअस) और भावप्रवण'' कहा है। 'प्रेम और सत्य को कविता में मुख्य स्थान मिलना चाहिए, तथा जो कुछ अस्थायी (फ्लीटिंग) और मिथ्या है उसका विष के समान त्याग किया जाना चाहिए।'' कॉलरिज की हण्ट ने सराहना की है। कॉलरिज के शब्दों में कविता ''अपने आपमें एक अतिशय महान् पुरस्कार है,' इसने मेरी यथाशा का घात किया है, मेरे आनन्द को द्विगुणित और परिष्कृत किया है, मेरे एकान्त को प्रिय बनाया है तथा जिस किसी के सम्पर्क में मैं आता हूँ और जिससे मैं परिवेष्टित हूँ, उसमें शिव और सुन्दर की खोज करने की आकांक्षा मुझमें जागृत हुई है।'' शेली के शब्दों में, 'कविता दुनिया के गुप्त सौंदर्य का पर्दा उठाकर, उन वस्तुओं से हमें परिचित कराती है जिनसे लगता है कि हम पहले परिचित नहीं थे।''[1]

हण्ट ने वर्ड्सवर्थ को ''आधुनिक युग का महानतम कवि'' कहा है। स्पेंसर उसका प्रिय कवि था। स्पेंसर को उसने ''इंग्लैंड का महानतम चित्रकार'' बताया है, ''उसकी पदरचना को चिरस्थायी मधु'' की उपमा दी गई है। शेली और कीट्स का भी वह प्रशंसक था। अपनी 'स्टोरी आफ रिमिनी' (रिमिनी की कहानी) में उसने क्लासिकल दोहे का बहिष्कार कर अपेक्षाकृत अधिक स्वच्छन्द रूप को अपनाया।

समीक्षा में स्थान

पाश्चात्य समीक्षा में ऐतिहासिक दृष्टि से ले हण्ट का स्थान महत्त्वपूर्ण रहा है। वह कल्पनाप्रधान 'शुद्ध' कविता का पक्षपाती था, प्राचीन इतालवी साहित्य की उसने मध्यस्थता की थी तथा कीट्स और शेली का वह समर्थक था। लेकिन अपने

१—वही, पृ० ३४७-५३

कल्पना के सिद्धान्त को वह विकसित न कर सका, वह अस्पष्ट रह गया। साहित्य के प्रति उसने रुचि का प्रदर्शन अवश्य किया लेकिन समीक्षात्मक निर्णय की उसमें कमी रही। उसकी समीक्षा पद्धति की सराहना करते हुए जॉर्ज सेंटसबरी ने उसे कॉलरिज, लैम्ब और हैजलिट के समकक्ष रक्खा है,[१] किन्तु रेने वेले ने इस विचार से असहमति व्यक्त की है।[२]

निष्कर्ष

स्वच्छन्दतावादी धारा का यह युग था जब कि कविता परम्परागत रूढ़ियों से मुक्ति प्राप्त कर रही थी। इस समय जर्मनी में यूनान की प्राचीन मूर्तिकला का अध्ययन किया गया। विंकलमैन ने कविता और मूर्तिकला की तुलना करते हुए कला को बाह्य वस्तु मानकर उसे आन्तरिक अनुभूति की प्रेरक बताया है। लेसिंग ने कला के विविध रूपों—काव्य, चित्र, संगीत और मूर्ति आदि—की अलग अलग विशेषता प्रतिपादित की। कला की प्रेषणीयता को उसने सर्वाधिक महत्त्व दिया। कला में सौंदर्य निर्माण पर अधिक जोर दिया गया। गेटे ने भी प्रभविष्णुता और सौंदर्य को कला का उच्चतम उद्देश्य स्वीकार किया।

गेटे के साथ ही उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोप में स्वच्छन्दतावादी और यथार्थवादी धाराओं का प्रवेश हुआ। स्वच्छन्दतावादी भावना नव्यशास्त्रवादी नीति और नियमों के विरुद्ध विद्रोह था। वर्डसवर्थ ने 'उदात्त अनुभूतियों के स्वत स्फूर्त प्रवाह' को तथा शैले ने 'सबसे सुखी और सर्वोत्कृष्ट मस्तिष्कों के श्रेष्ठतम और सर्वाधिक सुखमय क्षणों के लिखित विवरण' को कविता कहा। कॉलरिज इस युग का प्रतिनिधि चिन्तक कहा जा सकता है। उसकी 'बायोग्राफिया लिटरेरिया' अंग्रेजी समीक्षा की महानतम रचना कही गई है। जर्मन दर्शन और आलोचना से प्रभावित होकर उसने दर्शन के आधार पर काव्य सिद्धान्तों की स्थापना की। काव्य में कल्पना तत्त्व को मानदण्ड के रूप में स्थापित करने का श्रेय कॉलरिज को ही है। कलाओं के मूल में रहनेवाले भावावेग या उत्तेजना का उद्देश्य उसने सौन्दर्य के माध्यम से आनन्द प्राप्ति स्वीकार किया। आगे चलकर उसका यही सौंदर्यवादी सिद्धान्त क्रोचे आदि समीक्षकों के काव्यदर्शन का आधार बना। कीट्स यद्यपि अधिक समय तक जीवित न रह सका, फिर भी इस काल में जो कुछ उसने लिखा, उससे वह अमर हो गया। उसने प्रतिपादित किया कि कवि के सर्वश्रेष्ठ क्षणों में ही कविता का आविर्भाव होता है—साहित्य-महिमा की उसके लिए आवश्यकता नहीं। सौंदर्य और सत्य को उसने अभिन्न माना। सौन्दर्यमय आन्तरिक व्यथा को उसने परम आनन्द माना जिससे पाश्चात्य समीक्षा में प्रभाववाद का आविर्भाव हुआ।

१—देखिए ए हिस्ट्री ऑफ क्रिटिसिज्म, ३, पृ० २४६

२—ए हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न क्रिटिसिज्म, ३, पृ० १२५

(घ) यथार्थवादी आलोचना

[उन्नीसवी शताब्दी]

सैन्त ब्यव (१८०४-१८६६)

विस्सारियन ग्रिगोरियेविच बेलिंस्की (१८११-१८४८)

निकोलाई गाविलोविच चर्निशेव्स्की (१८२८-१८८९)

कार्ल मार्क्स (१८१८-१८८३)

मैथ्यू आर्नोल्ड (१८२२-१८८८)

लियो ताल्सताय (१८२८-१९१०)

जॉन रस्किन (१८१९-१९००)

⊕

यथार्थवादी आलोचना

अंग्रेजी साहित्य में महारानी विक्टोरिया का युग (१८३२-८०) अत्यन्त महत्त्वपूर्ण युग रहा है। विक्टोरिया सन् १८३२ मे सिंहासन पर आरूढ़ हुई। और उसका राज्यकाल उसकी मत्यु के साथ १९०१ में समाप्त हुआ। साहित्यिक गतिविधि की दृष्टि से नवीन युग का आरम्भ हम १८३२ से मान सकते हैं। सन् १८३२ में सर वाल्टर स्कॉट की मत्यु हुई तथा पार्लियामेंट का सुधार-कानून पास हुआ। बायरन, शेली और कीट्स की पहले ही मत्यु हो चुकी थी। कालरिज १८३४ तक जीवित था और वड्सवर्थ अपने जीवन के अंतिम क्षणों को गिन रहा था। इस प्रकार १८३२ से ही साहित्य में नवीन प्रवृत्तियों का उदय होने लगा था। शिक्षा में सुधार तथा गुलामी प्रथा का अन्त भी इसी समय हुआ। साहित्य की ये नवीन प्रवृत्तियाँ १८८० तक जोर पकडती रहीं। इस दृष्टि से इन ५० वर्षों में अंग्रेजी साहित्य में इतनी उथल पुथल रही जितनी कि पहले कभी नहीं हुई थी।

यहाँ इस युग के दो प्रमुख आन्दोलनों का उल्लेख कर देना आवश्यक है—एक, राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रों में प्रजातन्त्र की प्रगति, और दूसरा बौद्धिक क्षेत्र में विज्ञान का विकास। रानी विक्टोरिया के सिंहासन पर बैठने के प्रथम दस वर्षों में जन आन्दोलनों के कारण इग्लैंड मे काफी राजनीतिक अशान्ति रही जिससे यह काल 'आधुनिक अंग्रेजी साहित्य का एक उद्विग्नतापूर्ण सङ्कटापन्न काल' कहा जाने लगा। लेकिन इन कठिनाइयों और सङ्कटों के कारण देश में सामाजिक चेतना भी जाग्रत हुई जिससे लोकहित की भावना को प्रेरणा मिली।

विज्ञान भी प्रगति के पथ पर अग्रसर होता गया। इन ५० वर्षों मे विश्व सम्बन्धी ज्ञान में जितनी हमारी उन्नति हुई, उतनी उससे पूर्व १८०० वर्षों में भी नहीं हो सकी। यन्त्रकला तथा व्यापार-उद्योग के क्षेत्र में इतनी उन्नति हुई कि लोग इसी को सर्वोन्नति समझने लगे। ज्ञान विज्ञान के एक से एक नूतन आविष्कारों ने जीवन और साहित्य को असाधारण रूप से प्रभावित किया जिससे साहित्य के प्रचार में वृद्धि हुई। लेखकों ने भौतिकवादी प्रवृत्ति के विरुद्ध आवाज बुलन्द की। प्रत्येक लेखक एक वैद्य के समान माना जाने लगा जो अपनी रुचि और सामर्थ्य के अनुसार मनुष्य की घबड़ाहट और व्याकुलता दूर करने के लिये किसी न किसी औषधि का अनुपान बताने लगा। डार्विन के विकासवाद के सिद्धान्त ने तो मनुष्य के विचारों में अभूतपूर्व क्रान्ति उपस्थित कर दी। परिणामस्वरूप प्राचीन प्रचलित विश्वासों तथा नवीन सिद्धान्तों के बीच सघर्ष होने के कारण प्राचीन बौद्धिक चिन्तन प्रणाली की नींव

हिल गयी तथा उसके स्थान पर अन्वेषण और आलोचना के स्वर मुखरित होने लगे। इस सब का परिणाम था यथार्थवाद का विकास।

१८३२ के आसपास, यद्यपि स्वच्छन्दतावाद का महत्त्व क्षीण होने लगा था, फिर भी उसकी विशेषताओं का नितान्त लोप नहीं हुआ था। लेकिन जैसे-जैसे वैज्ञानिक चिन्तन का विकास हुआ, और भौतिकवादी एवं उपयोगितावादी प्रवृत्तियों ने जोर पकड़ा, वैसे-वैसे भावावेश पूर्ण उद्गारों पर आधारित स्वच्छन्दतावादी चिन्तनधारा का ह्रास होता गया। फिर, कविता में भले ही स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति का स्वर प्रधान रहा हो, लेकिन उपन्यास, कहानी और नाटक में यथार्थवादी प्रवृत्ति ही मुख्य थी। १९ वीं शताब्दी के आरम्भ से ही यथार्थवादी प्रवृत्ति को मुख्य मानकर चलनेवाले लेखकों की रचनाएँ प्रकाशित होने लगी थीं, ऐसी हालत में आलोचना के क्षेत्र में उनकी उपेक्षा करना संभव नहीं था। इन्हीं परिस्थितियों में पाश्चिमात्य समीक्षा-साहित्य में यथार्थवादी आलोचना का जन्म हुआ।

उन्नीसवीं शताब्दी की यथार्थवादी आलोचना के विकास का श्रेय मूलतः बेलिंस्की (१८११ ४८) और चर्निशेव्स्की (१८२८ ८९) को दिया जाना चाहिए। तत्पश्चात् काल मार्क्स (१८१८ १८८३), मैथ्यू आर्नोल्ड (१८२२ ८८) और लियो तास्सताय (१८२८-१९१०) ने इस चिन्तन धारा का विकास किया।

सैन्त ब्यव (१८०४-६९)

यहाँ फ्रांसीसी आलोचक सैन्त ब्यव का नामोल्लेख कर देना उचित होगा जिसने फ्रेंच आलोचना की श्रेष्ठता स्थापित करने के लिये बहुत कुछ किया। वह फ्रांस में ही नहीं, यूरोप और अमरीका में भी आलोचक के रूप में प्रसिद्ध हुआ। अपने युग की वैज्ञानिक धारा से वह प्रभावित था। उसकी आलोचना प्रणाली जीवविज्ञान की प्रणाली थी। किसी साहित्यकार की कृति का मूल्यांकन करने के लिए वह साहित्यकार के व्यक्तित्व के अध्ययन को आवश्यक मानता था। उसने लिखा है, "साहित्य साहित्यिक कृतियाँ—मेरे लिए, शेष मानवों और मानवीय संगठनों से भिन्न नहीं हैं। मैं किसी कृति का रसास्वादन कर सकता हूँ, लेकिन व्यक्ति के ज्ञान के बिना, उसका निर्णय करना मेरे लिए कठिन है। यह मैं बिना किसी हिचकिचाहट के कहता हूँ। जैसा वृक्ष होगा, वैसा ही फल होगा। इस प्रकार साहित्यिक अध्ययन मुझे स्वाभाभाविक रूप से नैतिकता के अध्ययन की ओर ले जाता है।"[1]

सैंत ब्यव का रुचि जीवनचरित की ओर विशेष थी। लेखक का अध्ययन करने के पूर्व वह उसकी वंशपरंपरा, उसके शरीर का गठन, वातावरण, प्रारंभिक शिक्षा अथवा उसके महत्त्वपूर्ण अनुभवों का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक मानता था। हमें लेखक के धर्म और उसके स्वभाव का ज्ञान होना चाहिये। वह धनी था या निर्धन ? महिलाओं के प्रति उसका कैसा व्यवहार था ? जिस स्त्री की ओर वह आकर्षित होता था, क्या वह सुन्दर थी ? क्या वह प्रेमपाश में फँसी थी ? उसके जीवन का कैसा रवैया था ? आदि बातों से हमें परिचित होना चाहिये। इसीलिये उसका कहना है "किसी लेखक के संबंध में निर्णय देना आसान है व्यक्ति के संबंध मे नहीं।" लेकिन इससे किसी लेखक के साहित्यिक अध्ययन की अपेक्षा, उसके जीवनचरित का अध्ययन ही मुख्य बन जाता है।[2]

सन्त ब्यव के अनुसार, आलोचना को ठीक-ठीक समझने के लिये यह जानना आवश्यक है कि किसी लेखक को विवेकपूर्वक किस तरह पढ़ा जाये और दूसरों को इस बात की शिक्षा कैसे दी जाये।" भावुकता का त्याग कर आलोचक को इस बात का ज्ञान आवश्यक है कि अच्छाई क्या है और क्या चीज टिकनेवाली है, तथा क्या किसी कला कृति में इतनी मौलिकता विद्यमान है कि उससे उसकी त्रुटियों की क्षतिपूर्ति हो सकेगी।[3]

१—विलियम विमसैट, लिटरेरी क्रिटिसिज्म, पृ० ५३५
२—रेने वले, ए हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न क्रिटिसिज्म ३, पृ० ३७
३—वही, पृ० ४८, ५०

सैन्त ब्यव का दृष्टिकोण मानवतावादी की अपेक्षा प्रकृतिवादी ही अधिक रहा है। नौ भागों में प्रकाशित अपने 'पोर्ट्रेट्स' (व्यक्तिचित्र, १८६२ ७१) नामक ग्रंथ में उसने लिखा है, "अब मेरे पास केवल एक ही विनोद है—मैं विश्लेषण करता हूँ, मेरा दृष्टिकोण वनस्पतिशास्त्र वेत्ता का दृष्टिकोण है, मैं मन का विश्लेषण प्रकृतवादी के रूप में करता हूँ।"[1]

सैन्त ब्यव ने विज्ञानवेत्ता, कलाकार और आलोचक का परस्पर गाढ़ सम्बन्ध स्वीकार किया। उसका कथन है, "पशु पक्षी अथवा पेड़-पौधों की भाँति मानव का ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता। एक दिन ऐसा आयेगा जब नया विज्ञान प्रतिष्ठित होगा और उसकी सहायता से हम मानव के वाग्वैदग्ध्य अथवा उसकी प्रतिभा के प्रकारों और उसके प्रमुख प्रशों को जान सकेंगे।" लेकिन उसके कथनानुसार इसके लिए ऐसे वैज्ञानिकों की आवश्यकता है जिनके पास एक कलाकार की दृष्टि है तथा किसी वस्तु के निरीक्षण के प्रति जिनके मन में स्वाभाविक अनुराग है और जो प्रतिभा स सम्पन्न हैं। यह सब होने पर ही, किसी कृति के कलाकार के व्यक्ति का ठीक ठीक ज्ञान हमें प्राप्त कर सकना सम्भव है।,

सैन्त ब्यव ने 'व्हाट इज क्लासिक (क्लासिक क्या है ? —१८५०) नामक अपनी पुस्तक में क्लासिक रचना के सम्बन्ध मे महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किये हैं। यहाँ उसने फ्रेंच अकादमी द्वारा प्रचारित इस मान्यता का खण्डन किया कि केवल प्राचीन और बहुप्रशंसित अथवा आदर्श रचनाएँ ही क्लासिक कही जा सकती हैं। क्लासिक साहित्यकार की परिभाषा देते हुए उसने लिखा है, 'वह ऐसा कृतिकार है जिसने मानव मन को समृद्ध किया हो, उसके ज्ञानभंडार की अभिवृद्धि की हो और उसे एक कदम आगे बढ़ाया हो जिसने नैतिक सत्य का अन्वेषण किया हो, या उस हृदय में, जहाँ सब कुछ अभिज्ञात और अनावृत प्रतीत होता था, किसी शाश्वत भावना का दिग्दर्शन कराया हो। यह अभिव्यक्ति किसी भी रूप में हुई हो, पर वह अपने आपमें उदार और महान् परिष्कृत और युक्तियुक्त स्वस्थ और सुन्दर होनी चाहिए जिसने अपनी विशिष्ट शैली में सबको सम्बोधित किया हो—एक ऐसी शैली में जो सम्पूर्ण विश्व की शैली प्रतीत होती हो जो किसी एक युग की भी शैली हो और युग युग की भी।"[2]

ब्यव ने गेटे का—जिसे उसने "समस्त आलोचकों में श्रेष्ठ" कहा है—वह प्रसिद्ध उद्धरण प्रस्तुत किया है जिसमें उसने क्लासिक रचना को स्वस्थ, और रोमांटिक रचना को रुग्ण बताते हुए पुरातन कृतियों को इसलिए क्लासिक कहा है

१—डाक्टर सावित्री सिनहा पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परम्परा, पृ० १८३
२—वही, पृ० १८५–८६

क्योंकि वे सजीव, चिरनवीन और आह्लादकारक होती हैं। उसी साहित्य को यहाँ क्लासिक कहा है जिसका अपने युग एवं सामाजिक वातावरण से सामंजस्य है, और जो अपने राष्ट्र अपने युग और अपनी सरकार को संतोष देता है, जिसकी छत्र छाया में यह फूला फला है।[1]

इस सम्बन्ध में अपना कोई मत निर्धारित करने के पूर्व पूर्वाग्रह से मुक्त होकर, ब्यव ने संसार पर्यटन करने की सिफारिश की है जिससे कि विभिन्न साहित्यों के गुण दोषों की परीक्षा की जा सके। यहाँ पर उसने क्लासिक जगत् के आदि-पुरुष होमर का समस्त युग और अर्ध बर्बर सभ्यता की जीवन्त अभिव्यक्ति के रूप में उल्लेख किया है। शेक्सपियर को उसने इंग्लैंड तथा सारी दुनिया का एक क्लासिकल साहित्यकार स्वीकार किया है।[2]

सैन्त ब्यव केवल साहित्यिक समीक्षक ही नहीं वरन् नीतिवादी भी था। राजनीतिज्ञों सेनापतियों संस्मरण लेखकों, पत्र लेखकों, डायरी लेखकों और इतिहास वेत्ताओं आदि के संबंध में ही उसने अधिक लिखा है। उदाहरण के लिये अपनी पाँच भागों की 'पोर्ट रॉयल' नामक रचना में उसने मठवासी साधु-साध्वियों का ही वर्णन किया है।[3]

सैन्त ब्यव की समीक्षा-पद्धति वैज्ञानिक अवश्य है कि लेकिन उसने जीवन और कला तथा मानव और उसके कार्य को परस्पर सम्मिश्रित कर दिया है। प्राउस्ट ने सैन्त ब्यव के संबंध में लिखा है, "वह अनुपम अव्यक्त संसार को—जो कवि का प्राण है—बाह्य जगत् के सम्पर्क के बिना" नहीं समझ सकता "लेखक और दुनियावी व्यक्ति को पृथक करनेवाली खाई को' वह नहीं देख सकता, और वह यह नहीं जानता कि "लेखक की आत्मा केवल उसकी कृतियों में देखी जा सकती है।[4]"

१—रेने वले, ए हिस्ट्री आफ माडर्न क्रिटिसिज्म ३, पृ० ५५

२—डॉक्टर सावित्री सिनहा वही, पृ० १८८-८९

३—रेने वले, ए हिस्ट्री आफ माडर्न क्रिटिसिज्म ३, पृ० ३७, ४२

४—वही, पृ० ३५

विस्सारियन ग्रिगोरियोविच बेलिस्की (१८११-१८४८)

रूसी समीक्षाशास्त्र के जनक बेलिंस्की, हर्जन, चर्निशेव्स्की और दोब्रोल्युबोव रूसी क्रान्ति के पूर्व उग्र विचारकों में से हो गये हैं जो कठिनाइयों और दमन के झंझावात के बावजूद, दर्शन और साहित्य को अग्रगामी बनाने में संलग्न रहे। इन्होंने रूसी जनता को गुलामी प्रथा से मुक्त कर जनतन्त्रवाद का नारा पहली बार बुलन्द किया।

बेलिंस्की सर्वाधिक सक्रिय और जुझारू प्रकृति का व्यक्ति हो गया है। १८४७ में गोगोल के नाम उसने जो पत्र[1] लिखा था, वह रूसी क्रांतिकारियों की कई पीढ़ियों तक 'घोषणापत्र' बना रहा। इसके पूर्व अपने 'दमित्री कालिनिन' नामक नाटक में उसने दासप्रथा और सामन्तवाद की कटु आलोचना की थी। उसकी 'ओतोचेस्तवेन्नीए जापिस्की' नामक पत्रिका नवयुवकों में अत्यधिक लोकप्रिय थी। 'राजकीय विज्ञान अकादमी' के एक सदस्य ने इस पत्रिका में छपे हुए बेलिंस्की के लेखों की कतरनें सात टोकरियों में भरकर, उनपर 'सरकार के विरुद्ध', 'नैतिकता के विरुद्ध' आदि लेबल चिपकाया और खुफिया-पुलिस के दफ्तर में पहुँचा दी।[2] अपनी साहित्यिक विवेचनाओं में, बेलिंस्की ने प्राच्य तत्त्वविद्या विशारदों के समीक्षात्मक लेख भी प्रकाशित किए थे। भारत जैसे प्राचीन देशों की संस्कृति के प्रति बेलिंस्की के मन में अनुराग था। उसका कहना था कि इतिहास में भारत को सम्मान का स्थान दिया जाना चाहिए। रूस के सुप्रसिद्ध कवि जुकोव्स्की के 'नल दमयन्ती' के रूसी अनुवाद

१—इस पत्र में कहा गया है—'नई शक्तियाँ जन्म लेने के लिये ऊपर आ रही हैं—किन्तु अत्याचारों के कारण उनका दमन कर दिया जाता है, बाहर आने के लिये उनके पास कोई मार्ग नहीं रह जाता। ऐसी दशा में वे केवल निराशा, थकान और निरुत्साह की भावना ही उत्पन्न करने में समर्थ हैं। टाटर सेन्सरशिप के बावजूद, केवल साहित्य में ही जीवन एवं अग्रगामी गति दिखाई देती है। यही कारण है कि हम साहित्य के व्यवसाय को इतने अधिक आदर की दृष्टि से देखते हैं। तथा हमारा जनता ठीक है वह रूसी लेखकों—जो कि उसके एकमात्र नेता हैं एवं एकाधिपत्य की एकान्तिकता, हठवादिता और राष्ट्रीयता से उसकी रक्षा करते हैं—की ओर निहारती है।"

२—दर्शन, साहित्य और आलोचना, बेलिंस्की, जीवन वृत्त, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९५८

को उसने बहुत सराहा था।[1] 'द जनरल मीनिंग ऑफ द वर्ल्ड लिटरेचर' (विश्व साहित्य का सामान्य अर्थ–१८४०), 'द वर्क्स ऑफ पुश्किन' (पुश्किन की कृतियाँ–१८४३ ४६), 'रशियन लिटरेचर इन १८४६' (१८४६ का रूसी साहित्य), और 'स्पीच एबाउट द क्रिटिक्स' (समीक्षकों संबंधी भाषण—१८४२)—उसकी मुख्य रचनायें हैं।

बेलिंस्की के पूर्व रूसी समीक्षाशास्त्र में कभी फ्रांस और कभी जर्मनी के साहित्यिक सिद्धान्त प्रतिबिम्बित होते थे। लेकिन बेलिंस्की के आगमन से रूसी समीक्षाशास्त्र को एक व्यवस्थित रूप मिला, जिससे समीक्षा जीवन के अधिकाधिक निकट आती गयी।[2]

बेलिंस्की आरम्भ में हेगेल के भाववादी दर्शन का खूब ही प्रशंसक था। उसके अनेक निबंध पूर्णतया हेगेल की शैली में लिखे गये हैं। मास्को में रहते हुए वह सैद्धांतिक दार्शनिकता में डूबा हुआ था। यद्यपि वह वास्तविकता को दुनियाभर के स्वप्नों से अधिक महत्त्वपूर्ण मानता था, फिर भी वह वास्तविकता की ओर एक भाववादी दृष्टि से ही देखता था। उसका विश्वास था कि भावना और वास्तविकता दोनों अलग अलग नहीं, उनका एक दूसरे से कुछ न कुछ सम्बंध अवश्य है। लेकिन आगे चलकर जैसे जैसे उसने जीवन की तात्कालिक समस्याओं का गंभीरता से अध्ययन किया, वैसे वैसे उसने हेगेल की मान्यताओं को उतार फेंका और कला के सामाजिक दृष्टिकोण को स्वीकार किया। मास्को से पीटर्सबर्ग चले जाने के बाद तो वह पूर्ण रूप से स्वतंत्र चिंतक बन गया। कारण कि यहाँ का सामाजिक परिस्थितियाँ इतनी अस्थिर थीं कि हेगेल के भाववादी दर्शन पर उसका विश्वास बना रहना संभव न था।[3]

कला का उद्देश्य क्या है? इस प्रश्न के उत्तर में बेलिंस्की ने कहा है—'कला का उद्देश्य है चित्रित करना—शब्दों ध्वनियों, रेखाओं और रंगों में प्रकृति के सार्वभौम जीवन को पुनः मूर्त करना।" उसके अनुसार कवि की प्रेरणा प्रकृति की

१—इसक्स, जरनल आफ दी इण्डो सोवियत कल्चरल सोसायटी, स्पेशल नंबर, १९५७, पृ० २९

२—बेलिंस्की के समकालीन सुप्रसिद्ध रूसी कवि पुश्किन ने मई-जून १८२५ में ए० ए० बेस्तुज़ेव को लिखे हुए अपने पत्र में लिखा है "हमारे यहाँ समीक्षाशास्त्र नहीं है एक भी टीका टिप्पणी नहीं, समीक्षा के ऊपर एक भी पुस्तक नहीं।" पुश्किन ऑन लिटरेचर, पृ० ७५, रेने वेले, ए हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न क्रिटिसिज्म ३, पृ० २४२ पर से

३—दर्शन, साहित्य और आलोचना, चर्निशेव्स्की का 'बेलिंस्की का युग' नामक लेख, पृ० १६४-६७, हर्जन का 'बेलिंस्की' पर लिखा हुआ लेख पृ० १४२-४६

रचनात्मक शक्तियों का प्रतिबिम्ब है।[1] जब तक कवि अपनी कल्पना की क्षणिक जोत का अनुसरण करता है, वह कवि रहता है और कवि रहता है। किन्तु जैसे ही वह किसी उद्देश्य को, किसी विषयवस्तु को, अपने सामने खड़ा करता है, वह दार्शनिक, विचारक और नीतिकार बन जाता है।[2]

बेलिंस्की ने कला के लिए सबसे पहले आवश्यक बताया है वास्तविकता को। उसने १८४० में 'ओतचेस्तवेन्नीए ज़ापिस्की' नामक पत्रिका में ग्रिबोइयेदोव की कामेडी' पर एक महत्त्वपूर्ण आलोचनात्मक निबन्ध लिखा है। इस निबन्ध में कला के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए, कल्पना की उस दुनिया पर आक्रमण किया गया है जिसमें वास्तविकता के लिए कोई स्थान नहीं। बेलिंस्की ने काव्यात्मक कृतियों को सर्वोच्च वास्तविकता की व्यंजना प्रतिपादित करते हुए लिखा है—"ऐसे लोग भी हैं जो अपने अन्तरतम में विश्वास करते हैं कि काव्य कल्पना की, सपनों का चीज है वास्तविकता की नहीं और यह कि हमारे आज के बुद्धिप्रधान तथा औद्योगिक युग में काव्य के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता। इसे कहते हैं चरम मूढ़ता! बेतुकपन की सीमा! आखिर स्वप्न क्या है? एक छाया, विषयवस्तु से शून्य एक स्वरूप, विकृत कल्पना, निठल्ले मस्तिष्क और चेतनाशून्य हृदय की उपज! यह विचार कि हमारा यह बुद्धिप्रधान और औद्योगिक युग कला का शत्रु है, किस मनहूसियत और पिछड़ेपन की देन है? क्या शिलर और गेटे इसी युग, के नहीं हैं? क्लासिकल कला तथा शेक्सपियर की कृतियों का मूल्यांकन करने तथा उन्हें समझने का श्रेय क्या हमारे इसी युग का नहीं है? निस्सन्देह यह युग स्वप्नों और स्वप्निलता का शत्रु है। किन्तु ठीक इसीलिए यह एक महान् युग भी है। उन्नीसवीं शती में स्वप्निलता उतनी ही हास्यास्पद, अटपटी और लिजलिजी है जितनी कि निपट भावुकता। वास्तविकता—यही हमारे युग का मुख्य तत्त्व और उसका सार है। हर क्षेत्र में वास्तविकता धर्म में, विज्ञान में, कला में और जीवन में।"[3]

कहा जा चुका है, बेलिंस्की के अनुसार कला समाज के लिए उपयोगी होनी चाहिए। वह अपने लिए उपयोगी है—अपने से बाहर उसका अन्य कोई उद्देश्य नहीं होता, इसलिए वह समाज के लिए भी उपयोगी है। उसकी विशेषता है कि वह वास्तविकता को शुद्ध रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है—अंधकार और कुरूपता कवि की कल्पना में प्रबुद्ध और एकरूप होकर पाठकों के समक्ष आती है।[4] कलाकार

१—वही, बेलिंस्की का 'कला का उद्देश्य' नामक निबन्ध, पृ० १६

२—वही, पृ० १८

३—वही, चर्निशेव्स्की का 'बेलिंस्की' नामक लेख, पृ० १९९-२००

४—कंटेम्पुररी ऍण्ड पॅन इन रशियन ऍण्ड सोवियट थॉट, सम्पादक एर्नेस्ट जे० साइमन्स, पृ० ३८३

वस्तुत अपने आदर्शो की सहायता से सामान्य वास्तविकता को असामान्य रूप में परिणत कर देता है और वह वास्तविकता बुद्धिगम्य होती है।

"कवि की सम्पूर्ण कला इस बात में निहित है कि वह पाठक को ऐसी दृष्टि प्रदान करे जिसस वह समूची प्रकृति को, नक्शे पर बने विश्व की भांति लघु आकार में, छोटी अनुकृति के रूप में देख सके, ऐसी सम्वेदनशीलता प्रदान करे जिससे वह उस श्वास को अनुभव कर सके जो विश्व मे व्याप्त है, और वह जोत जगाये जो आत्मा को गरमाती है।"[1] बेलिस्की के अनुसार कवि प्रकृति का अनुकरण नही करता, वरन् उसकी प्रतियोगिता करता है।

कलात्मकता के ऊपर जोर देते हुए बेलिस्की ने पहले कला का कला होना स्वीकार किया है, उसके बाद वह किसी युग की सामाजिक भावनाओ की अभिव्यक्ति हो सकती है। शुद्ध कला को उसने एक स्वप्निल शून्य कहा है जिसका कभी कही अस्तित्व नहीं रहता।[2] कला को सावजनिक जीवन के लिए उपयोगी होना चाहिए, नही तो वह अपनी जीवनशक्ति से वंचित कर दी जाती है।[3] ऐसी कला को 'ठडी, नीरस और मृत' कहा है। उसका कहना है कि "भले ही किसी कविता मे एक से एक सुन्दर विचार क्यों न गुथे हो और चाहे उसमे कितनी ही सामयिक समस्याओ का प्रतिपादन क्यों न हो, यदि उसमें काव्यतत्त्व नहीं, तो न वह सुन्दर विचारो से और न समस्याओं से पूर्ण कही जा सकती है।"

किसी कलाकृति में वर्णित वास्तविकता में कल्पना का पुट होना आवश्यक है, तथा इस कल्पना मे इतनी सामर्थ्य होनी चाहिए कि यह "कुछ सम्पूर्ण, अविकल, एकीकृत और स्वत पूर्ण" का सृजन कर सके। स्पष्ट है कि बेलिस्की सौंदयवादी

१—रूसी साहित्य और आलोचना, बेलिस्की का 'कला का उद्देश्य' नामक लेख पृ० १६

२—यद्यपि बेलिस्की ने 'शुद्ध' कला अथवा 'सपूर्ण कला' का विरोध किया है लेकिन उसने इटली स्कूल के १६ वीं शताब्दी के चित्रों को सपूर्ण कला का आदर्श स्वीकार किया है, क्योंकि वे ऐसे काल की उपज हैं जब कि कला का और समाज के शिक्षित लोगों की विशेष रुचि थी। जो० वो० प्लेखानोव, आर्ट एँड सोशल लाइफ बबई, १६५३, पृ० १६६

३—कटीन्युइटी एँन्ड चेंज इन रशियन सोवियट थॉट, पृ० ३८३, ३८५। बेलिस्की ने लिटरेरी रेवेरीज" (१८३४) मे साहित्य को राष्ट्रीय आत्मा की अभिव्यक्ति, राष्ट्र की अतरात्मा का प्रतीक और राष्ट्र का मुख बताया है। उसके ये विचार स्पष्ट रूप से फ्रेडेरिक श्लीगल के विचारों से प्रभावित हैं। रेने वले ए हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न क्रिटिसिज्म ३, पृ० २४६

में अपराधों के सम्बन्ध में प्रकाशित होनेवाली सच्ची कहानियाँ किसी लेखक की कहानियों की अपेक्षा अधिक पकड़वाली और पेचीदगियों से भरी रहती हैं।[१]"

सुन्दरता की प्राचीन मान्यता को रद्द करते हुए चर्निशेव्स्की ने लिखा है, "यदि सुन्दर 'परमभाव की वैयक्तिक रूप में पूर्ण अभिव्यंजना है' तो वास्तविक पदार्थों में सौंदर्य की कोई स्थिति नहीं रह जाती। कारण कि भाव या विचार केवल समूचे विश्व में ही अपनी पूर्ण अभिव्यक्ति प्राप्त करते हैं किसी एक पदार्थ में वे अपने आपको पूर्णतया चरितार्थ नहीं कर सकते। इसका तात्पर्य यह कि वास्तविकता में सुन्दर का समावेश हम केवल अपनी कल्पना द्वारा करते हैं। इसलिए सुन्दर का क्षेत्र कल्पना का क्षेत्र है, और इसीलिए कला, जो कल्पनाओं की अभिलाषाओं को चरितार्थ करती है वास्तविकता से ऊँचा स्थान रखती है।"[२]

चर्निशेव्स्की कल्पना को वास्तविकतासे बड़ा मानता है, और उसके अनुसार, जीवित वास्तविकता की तुलना में कलाकृतियाँ नहीं ठहर सकतीं। लेकिन प्रश्न होता है कि तब तो कला का कोई मूल्य ही नहीं रह जायगा? उत्तर में कहा गया है कि कला अपनी कृतियों की कलात्मक पूर्णता में वास्तविक जीवन से नीचे अवश्य है, लेकिन इससे कला का स्तर नीचे नहीं गिर जाता। वह लिखता है, "विज्ञान बिना किसी संकोच के स्वीकार करता है कि उसका कार्य वास्तविकता को समझना या समझाना, और तदनन्तर मानव के लिए उसका उपयोग करना है। कला को भी यह स्वीकार करने में कोई लज्जा नहीं मालूम होनी चाहिए कि उसका लक्ष्य यथाशक्ति, बहुमूल्य वास्तविकता की पुनरचना करना और उसकी व्याख्या द्वारा मानव को जगत् के पूर्ण सौ दर्योपभोग का अवसर प्रदान करना है, और ऐसे अवसरों का अभाव होने पर भी वह उनकी पूर्ति करती है।"[३]

चर्निशेव्स्की की मान्यता है कि वास्तविकता कल्पना से न केवल अधिक जीवनमय होती है, वरन् अधिक पूर्ण भी होती है। कल्पना के छविचित्रों को उसने वास्तविकता की क्षीण और प्रायः असफल अनुकृतिमात्र कहा है। उसके निष्कर्ष हैं—

> 'वस्तुगत यथार्थ में पूर्ण सुन्दर होता है।
> वस्तुगत यथार्थ ही सुन्दर मानव को पूर्ण तुष्टि प्रदान करता है।

१—क्रस्टीपुटा ऐंड चेंज इन रशियन ऐंड सोवियट थॉट पृ० ३८६

२—दर्शन, साहित्य और आलोचना चर्निशेव्स्की, 'कला का मूल उद्देश्य' नामक निबन्ध, पृ० १०१

३—वही पृ० १३२-३३

कला वास्तव मे सुन्दर की न्यूनताओं को पूर्ण करने की मानव आकांक्षा से नहीं उपजी।"[१]

चर्निशेव्स्की का कथन है कि मनुष्य कला को इसलिए महत्त्व देता है कि कला का उसने आत्मश्लाघा के कारण स्वयं सृजन किया है, अथवा कला उसके दिवा स्वप्न की मानसिक प्रवृत्ति को परितोष प्रदान करती है अथवा कह सकते हैं कि कला हमारी स्मरणशक्ति को दृढ़ करती है। उदाहरण के लिए, किसी चित्र को देखकर हमें अपने मित्र का स्मरण हो जाता है। हमारी कल्पनाशक्ति के कमजोर होने के कारण इस तरह की चीजों की हमें जरूरत होती है। इसके अलावा, कला में मुख्य रूप से किसी विषय के सम्बन्ध में बौद्धिक चर्चा के सिवाय और कुछ नहीं रहता। अतएव कला को यहाँ अधिक से अधिक उन लोगों की एक छोटी सी पुस्तिका बताया गया है जिन्होंने जीवन का अध्ययन आरम्भ किया है।[२]

बेलिस्की की भाँति चर्निशेव्स्की भी 'कला के लिए कला' के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करता। उसका कहना है कि यदि कोई शुद्ध कला की बात करता है तो वह केवल मदिरापान के गीतों और कामोत्तेजक वार्तालाप की ही चर्चा होगी। उसीके शब्दों में, "मैं कहूँगा कला, कला के लिए नहीं, बल्कि कला मदिरापान के लिए, कला सभोग के लिए।" इसलिए साहित्य को जीवन का एक ऐसा दर्पण कहा गया है जिसमे जीवन का प्रतिबिम्ब तो दिखाई दे, लेकिन वास्तविकता मे वह परिवर्तन पैदा न कर सके।[३]

चर्निशेव्स्की ने कला का जीवन के साथ ऐसा ही सम्बन्ध माना है जैसा इतिहास का। अन्तर केवल इतना ही है कि इतिहास सामाजिक जीवन का वर्णन करता है और कला व्यक्तिगत जीवन का। जीवन के घटनाक्रम के चित्रण द्वारा कलाकार हमारी कौतुक वृत्ति को तुष्ट करता है या जीवन सम्बन्धी स्मृतियों को सचेत करता है। किन्तु जब वह चित्रित घटनाक्रम की व्याख्या और उसके गुणदोषों का विवेचन करने लगता है तो वह विचारक के पद पर पहुँच जाता है और उसकी कृति, वैज्ञानिक महत्त्व धारण कर लेती है। इस प्रकार यहाँ जीवन में मानव की दिलचस्पी का हर चीज को पुनः मूर्त करना ही कला का मुख्य उद्देश्य स्वीकार किया गया है।[४]

बेलिस्की और चर्निशेव्स्की की यथार्थवादी चिन्तनधारा ने गोगोल से लेकर गोर्की तक, रूस के सभी महान् साहित्यकारों को प्रभावित किया, यह समीक्षा के क्षेत्र में इनकी महत्त्वपूर्ण देन समझी जायगी।

१—वही, पृ० १७८

२—कन्टीन्युइटी एण्ड चेंज इन रशियन एँण्ड सोवियट थॉट पृ० ३८९

३—वही, पृ० ३८९ ३९१

४—दर्शन, साहित्य और आलोचना चर्निशेव्स्की, कला का मूल उद्देश्य पृ० १६७ ६८

में अपराधों के सम्बन्ध में प्रकाशित होनेवाली सच्ची कहानियाँ किसी लेखक की कहानियों की अपेक्षा अधिक पकड़वाली और पेचीदगियों से भरी रहती हैं।[1]"

सुन्दरता की प्राचीन मान्यता को रद्द करते हुए चर्निशेव्स्की ने लिखा है, "यदि सुन्दर 'परमभाव की वैयक्तिक रूप में पूर्ण अभिव्यंजना है' तो वास्तविक पदार्थों में सौंदर्य की कोई स्थिति नहीं रह जाती। कारण कि भाव या विचार केवल समूचे विश्व में ही अपनी पूर्ण अभिव्यक्ति प्राप्त करते हैं, किसी एक पदार्थ में वे अपने आपको पूर्णतया चरितार्थ नहीं कर सकते। इसका तात्पर्य यह कि वास्तविकता में सुन्दर का समावेश हम केवल अपनी कल्पना द्वारा करते हैं। इसलिए सुन्दर का क्षेत्र कल्पना का क्षेत्र है, और इसीलिए कला, जो कल्पनाओं की अभिलाषाओं को चरितार्थ करती है वास्तविकता से ऊँचा स्थान रखती है।"[2]

चर्निशेव्स्की कल्पना को वास्तविकताश्रित मानता है, और उसके अनुसार, जीवित वास्तविकता की तुलना में कलाकृतियाँ नहीं ठहर सकतीं। लेकिन प्रश्न होता है कि तब तो कला का कोई मूल्य ही नहीं रह जायगा ? उत्तर में कहा गया है कि कला अपनी कृतियों की कलात्मक पूर्णता में वास्तविक जीवन से नीचे अवश्य है, लेकिन इससे कला का स्तर नीचे नहीं गिर जाता। वह लिखता है, "विज्ञान बिना किसी संकोच के स्वीकार करता है कि उसका कार्य वास्तविकता को समझना या समझाना, और तदनन्तर मानव के लिए उसका उपयोग करना है। कला को भी यह स्वीकार करने में कोई लज्जा नहीं मालूम होनी चाहिए कि उसका लक्ष्य यथाशक्ति, बहुमूल्य वास्तविकता की पुनर्रचना करना और उसकी व्याख्या द्वारा मानव को जगत् के पूर्ण सौंदर्योपभोग का अवसर प्रदान करना है, और ऐसे अवसरों का अभाव होने पर भी वह उनकी पूर्ति करती है।"[3]

चर्निशेव्स्की की मान्यता है कि वास्तविकता कल्पना से न केवल अधिक जीवनमय होती है, वरन् अधिक पूर्ण भी होती है। कल्पना के छविचित्रों को उसने वास्तविकता की केवल क्षीण और प्राय असफल अनुकृतिमात्र कहा है। उसके निष्कर्ष हैं—

> वस्तुगत पदार्थ में पूर्ण सुन्दर होता है।
> वह वस्तुगत पदार्थ ही सुन्दर मानव को पूर्ण तुष्टि प्रदान करता है।

१—कार्लगेयुस्प एण्ड बैंज इन रशियन एंड सोवियट थॉट पृ० ३८६

२—दर्शन, साहित्य और आलोचना चर्निशेव्स्की, 'कला का यथार्थ से सम्बन्ध' नामक निबंध, पृ० १०१

३—वहीं पृ० १३२–७१

कला वास्तव मे सुन्दर की न्यूनताओं को पूरा करने की मानव आकांक्षा से नही उपजी ।"[१]

चर्निशेव्स्की का कथन है कि मनुष्य कला को इसलिए महत्त्व देता है कि कला का उसने आत्मश्लाघा के कारण स्वयं सृजन किया है, अथवा कला उसके दिवा स्वप्न की मानसिक प्रवृत्ति को परितोष प्रदान करती है, अथवा कह सकते हैं कि कला हमारी स्मरणशक्ति को दृढ़ करती है। उदाहरण के लिए, किसी चित्र को देखकर हमें अपने मित्र का स्मरण हो जाता है। हमारी कल्पनाशक्ति के कमजोर होने के कारण इस तरह की चीजो की हमें जरूरत होती है। इसके अलावा, कला में मुख्य रूप से किसी विषय के सम्बन्ध में बौद्धिक चर्चा के सिवाय और कुछ नही रहता। अतएव कला को यहाँ अधिक से अधिक उन लोगों की एक छोटी-सी पुस्तिका बताया गया है जिन्होंने जीवन का अध्ययन आरम्भ किया है।[२]

बेलिंस्की की भाँति चर्निशेव्स्की भी 'कला के लिए कला' के सिद्धान्त को स्वीकार नही करता। उसका कहना है कि यदि कोई शुद्ध कला की बात करता है तो वह केवल मदिरापान के गीतों और कामोत्तेजक वार्तालाप की ही चर्चा होगी। उसीके शब्दों में, 'मैं कहूँगा कला, कला के लिए नहीं, बल्कि कला मदिरापान के लिए, कला सभोग के लिए।" इसलिए साहित्य को जीवन का एक ऐसा दर्पण कहा गया है जिसमे जीवन का प्रतिबिम्ब तो दिखाई दे, लेकिन वास्तविकता मे वह परिवर्तन पैदा न कर सके।[३]

चर्निशेव्स्की ने कला का जीवन के साथ ऐसा ही सम्बन्ध माना है जैसा इतिहास का। अन्तर केवल इतना ही है कि इतिहास सामाजिक जीवन का वर्णन करता है और कला व्यक्तिगत जीवन का। जीवन के घटनाक्रम के चित्रण द्वारा कलाकार हमारी कौतुक वृत्ति को तुष्ट करता है या जीवन सम्बन्धी स्मृतियों को सचेत करता है। किन्तु जब वह चित्रित घटनाक्रम की व्याख्या और उसके गुणदोषों का विवेचन करने लगता है तो वह विचारक के पद पर पहुँच जाता है और उसका कृति, वैज्ञानिक महत्त्व धारण कर लेती है। इस प्रकार यहाँ जीवन में मानव की दिलचस्पी की हर चीज को पुन मूर्त करना ही कला का मुख्य उद्देश्य स्वीकार किया गया है।[४]

बेलिंस्की और चर्निशेव्स्की की यथार्थवादी चिन्तनधारा ने गोगोल से लेकर गोर्की तक, रूस के सभी महान् साहित्यकारो को प्रभावित किया, यह समीक्षा के क्षेत्र में इनकी महत्त्वपूर्ण देन समझी जायगी।

१—वही, पृ० १७८

२—फ्रन्टीयुइटी एण्ड चेंज इन रशियन ऐंण्ड सोविएट थॉट पृ० ३८१

३—वही, पृ० ३८९ ३९१

४—दर्शन साहित्य और आलोचना, चर्निशेव्स्की कला का मूल उद्देश्य पृ० १९७-९८

कार्ल मार्क्स (१८१८–१८८३)

काल माक्स अपने युग का एक ख्यातनामा विद्वान् विचारक हो गया है जिसके
साहित्यिक सिद्धान्तों का सवव्यापी प्रभाव पडा। वह वज्ञानिक कम्युनिज्म, द्वन्द्वात्मक
दशन तथा ऐतिहासिक जिसे तकसम्मत भौतिकवाद, भौतिकवाद अथवा वैज्ञानिक
भौतिकवाद (डाइलैक्टिक मैटीरियलिज्म)' कह सकते हैं, का प्रतिष्ठाता था। यूरोप
की प्रमुख भाषाओं में वह निष्णात था। विदेशी भाषा को जीवनसघष का वह एक
हथियार मानता था। यूरोपीय भाषाओं के चुने हुए कितने ही कवियो की कवितायें उसे
कठस्थ थी। एस्किलस की रचनाओ को उसने यूनानी भाषा में पढ़ा था। बॉन में ए०
डब्ल्यू० श्लीगेल से उसने होमर का अध्ययन किया था। होमर दांते, और ब्रस
उसके प्रिय कवियो मे से थे और शेक्सपियर का उसका गभीर अध्ययन था। वाल्ट
स्काट के ओल्ड मॉरेलिटी' उपन्यास को वह सवश्रेष्ठ उपन्यासो म गिनता था।
फ्रेंच लेखको में बाल्जाक और रूसी लेखको म पुश्किन और गोगोल उसे सवप्रिय थे।
लेसिंग के लाओकून' को उसने पढा था। किसी बात की यथाथ और सही अभिव्यक्ति
पर वह जोर देता था।

माक्स मूलत जमनी का निवासी था। समाजवादी विचारों का अध्ययन करने
के लिए उसने पेरिस की यात्रा की और १८४४ मे यहां फ्रेडरिक एगेल्स (१८२०-
९५) से उसकी भेंट हो गई। दोनों की मित्रता बढी और दोनों ने साथ मिलकर
काम किया। अपने क्रातिकारी विचारों के कारण माक्स पर सरकारी मुकदमा
चलाया गया और १८४९ में जमनी से उसे निर्वासित कर दिया गया। माक्स लन्दन
में आकर रहने लगा, जहां उसने अपने सुप्रसिद्ध ग्रथ 'दास कैपिटल' (प्रथम भाग–
१८६७, द्वितीय भाग–१८८५ तृतीय भाग–१८९४) की रचना कर साहित्य के
भडार को समृद्ध किया।

माक्स और एगेल्स दोनों ही पेशेवर साहित्यिक समीक्षक नहीं थे। साहित्य
अथवा कला सबधी उनके विचार पूणतया आर्थिक भौतिकवाद के सिद्धान्तों पर ही
आधारित नहीं हैं। उनपर 'यंग जमनी' के लेखकों तथा हेगल के वामपंथी अनुयायी
आर्नोल्ड रूज का प्रभाव लक्षित होता है। 'यग जमनी' ग्रुप के अन्तर्गत हाइने, कार्ल
गुत्जको लूडोल्फ वाइनबार्ग, हाइनरिच लौबे और थियोडोर मुण्ट नाम के लेखकों
की एक साहित्यिक गोष्ठी अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया करती थी। जमन
सरकार की ओर से इन लेखकों की रचनाओं पर प्रतिबध लगा दिया गया था।

१—देखिये राहुल सांकृत्यायन, वज्ञानिक भौतिकवाद, इलाहबाद, १९४७

उदारवाद (लिबरलिज्म) इनका आदर्श था, और समयानुसार, साहित्य के सामाजिक उद्देश्य पर जोर देते हुए ये प्रगति में विश्वास करते थे। गुएट ने साहित्य को "एक सुसंगत राष्ट्रीय विज्ञान और राष्ट्रीय मानस की वास्तविक सचाई का एक ठोस अंश" बताया था। गेटे और शिलर के व्यक्तिवाद को उसने स्वीकार नहीं किया।[1]

आर्नोल्ड रूज (१८०२-८०) उदार एवं आमूल परिवर्तनवादी तथा प्रोटेस्टेंट मत की पुरातन परम्पराओं का घोर विरोधी था। उसके अनुसार, कवि एक ओर 'अपने युग का पुत्र' है, तो दूसरी ओर अपने युग में परिवर्तन करना उसका आवश्यक कर्तव्य है। उसे समाज का निश्चेष्ट दर्पण कहा गया है, जिसमें एक ओर समाज की दशा प्रतिबिंबित होती है और दूसरी ओर वह एक सुधारक है क्रांतिकारी भी है, जिसका काम है इतिहास की गति को समझना और इसके साथ उज्ज्वल भविष्य की ओर कदम बढ़ाना। रूज ने क्रांति और सर्जन को अभिन्न बताते हुए प्रत्येक कविता को 'संग्राम की कविता' कहा है। स्वच्छंदतावाद को उसने अनुत्तरदायित्व मन की तरंग तथा चिन्तन, दिवास्वप्न, और आत्मकेंद्रित इच्छातृप्ति की आसक्ति कहा है। इस चिंतनधारा में दुनिया उलट पलट जाती है", 'प्रकृति ऊपर आ जाती है, आत्मा नीचे रह जाती है, टाँगें ऊपर हो जाती हैं और सिर नीचे चला जाता है।'[2]

मार्क्स और एंगेल्स हाइने के प्रशंसक थे। एंगेल्स ने तो हाइने, वाइनमार्ग और गुत्जको का अध्ययन भी किया था। आरम्भ में वह गुत्जको का अनुयायी भी रहा, लेकिन बाद में उससे अलग हो गया।[3]

मार्क्स का दर्शन भौतिकवादी दर्शन है जिसमें भौतिक पदार्थ को मुख्यता दी गई है। उसके अनुसार, हमारे विचारों के बाहर भी एक संसार है जिसका स्वतन्त्र अस्तित्व है। दुनिया के सारे पदार्थों का एक इतिहास है जिससे उसमें सदा परिवर्तन होता रहता है, इसलिए कोई वस्तु कूटस्थ नित्य नहीं है।

भौतिक जीवन की उत्पादन पद्धति के आधार से यहाँ जीवन की सामाजिक, राजनीतिक और बौद्धिक प्रक्रियाओं का विकास माना गया है। भौतिक उत्पादन और परिवहन में परिवर्तन होने के साथ विचारों और विचारों के परिणाम में परिवर्तन होता है। इसलिए मार्क्स का कथन है "मनुष्य जीवन का अस्तित्व उसकी चेतना से निर्धारित नहीं होता, वरन् जीवन उसकी चेतना को निर्धारित करता है" (यह मान्यता जर्मन क्लासिकल भाववादी विचारधारा के प्रतिनिधि हेगल के विपरीत है)। मानव अपने इतिहास का स्वयं निर्माण करता है। किसी सामूहिक

१—रेने वेले, ए हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न क्रिटिसिज्म ३, पृ० २०१-४

२—वही, पृ० २२६-३२

३—वही पृ० २३३-३४

संकल्प अथवा सामूहिक योजना के आधार से किसी नियत निर्दिष्ट समाज में यह ऐसा नहीं करता। उसके प्रयत्न परस्पर टकराते हैं और इसी कारण इस प्रकार के समस्त समाज आवश्यकता से परिचालित होते हैं जिसका नाम है आर्थिक आवश्यकता।[1] द्वन्द्व को यहां एक ऐसा शक्ति कहा गया है 'जो हमें मानवजाति, समाज, प्रकृति और मनुष्य के साथ बांध कर रखती है।'[2]

मार्क्स के अनुसार उत्पादन के कारण, सारा समाज दो वर्गों में बंटा हुआ है—एक वर्ग श्रम[3] करके धन का उपार्जन करता है, दूसरा उसका उपभोग करता है, एक दास है दूसरा स्वामी। जैसे जैसे इन दोनों वर्गों में संघर्ष की तीव्रता होती है, वैसे वैसे हम उत्पादन की उच्च अवस्था को प्राप्त होते हैं। अन्त में सर्वहारा वर्ग का क्रांति सफल होने पर वर्गहीन समाज स्थापित होता है जिसमें श्रम का विभाजन नष्ट होने से समाजवादी समाज का जन्म होता है।[4]

मार्क्सवाद में समाजवादी यथार्थवाद को कलात्मक अभिव्यक्ति का पथदर्शक सिद्धान्त माना गया है। कलाकार का कर्त्तव्य है कि वह यथार्थता का उसके क्रांतिकार विकास के रूप में ऐतिहासिक और ठोस, सच्चा चित्रण करे। समाजवादी यथार्थवाद सरल न होकर एक जटिल सिद्धान्त है क्योंकि इसके द्वारा समय-समय पर 'यथार्थता' के विकास, उसके विश्लेषण और उसके अर्थ की पुनः व्याख्या करनी होती है। सामयिक कला के सम्बन्ध में बी० आइसोगैंसन ने लिखा है, यथार्थवादी कला तब होती है जब कि कोई कलाकार निश्चित और स्पष्ट रूप में अपने विचार को इतने उच्च रूप से व्यक्त करता है कि प्रारम्भ में पाठक को उसका पता ही नहीं लगता, वह अपने उत्तेजित हृदय की केवल ध्वनिमात्र सुनता है। रूप को पराभूत करके, प्रकृति पर विजय पाने से आनन्द को प्राप्त कलाकार अपने विचार और अपनी अनुभूति का पाठक तक पहुंचाता है। यथार्थवादी कला के उन्नत रूप में गंभीर मनोवैज्ञानिक विषयवस्तु के साथ संगति और सुगठन (प्लास्टिक) सम्बन्धी सिद्धान्तों का सम्मिश्रण रहता है।'[5] किसी कलाकृति की सबसे बड़ी कसौटी है कि वह पाठकों को बुद्धिगम्य हो सके और उत्कट आकांक्षा इसमें प्रतिबिंबित हो। चित्र-

---

१—मार्क्स एण्ड ऐंगेल्स, लिटरेचर ऐण्ड आर्ट बंबई, १९६५, पृ० १–६

२—वही पृ० ३०-३२

३—एमिली बर्न्स ह्वाट इज मार्क्सिज्म, पृ० २७ इत्यादि, बम्बई, १९४५

४—गोर्की ने श्रम को समस्त मानवीय संस्कृति का स्रोत माना है। लिटरेचर ऐण्ड लाइफ, लन्दन, १९४६, पृ० २०

५—नोटस ऑन आर्टिस्ट, सोवियत आर्ट, १६ नवम्बर, १९४५, जार्ज रवी, सोवियत लिटरेचर टुडे, लंदन, १९४६, पृ० २१ पर से

कला और साहित्य का विषय सर्वप्रथम मानव होना चाहिए जहाँ कि मानवीय भावावेग अपनी सामाजिक पृष्ठभूमि के साथ नियत हो। मनुष्य को उसके वातावरण से हम दूर नहीं कर सकते, उसके आध्यात्मिक (स्पिरिच्युअल) गुणों और समाज के क्रम में—जिसने उसका निर्माण किया है—घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसे ही मानववाद कहते हैं जिसमें 'नयी समाज व्यवस्था में नये मानव' के गुणों और आध्यात्मिक मूल्यों पर जोर दिया गया है।[1]

मार्क्सवादियों ने 'कला के लिए कला' सिद्धान्त का विरोध किया है। उनका कथन है कि इस प्रकार की कलावादी प्रवृत्ति वहीं उत्पन्न होती है जहाँ कलाकार का अपना सामाजिक वातावरण के साथ असामंजस्य हो।[2] उपयोगितावादी कला को ही यहाँ सार्थक माना गया है—ऐसी कला जो सामाजिक संघर्ष में प्रेरणा प्रदान करती हो तथा कलात्मक सृजन और समाज के निर्माण में थोड़ी बहुत सक्रिय रूप से रुचि लेनेवाले व्यक्तियों की पारस्परिक सहानुभूति से जो सुदृढ़ बनती हो।[3]

मार्क्सवाद के अनुसार, किसी पदार्थ अथवा घटना से प्रभावित होकर मनुष्य एक विशिष्ट आनन्द (सौंदर्य) का अनुभव करता है। लेकिन वास्तव में कौनसा पदार्थ और कौनसी घटना उसे आनन्द प्रदान करती है, यह इसपर निर्भर करता है कि वह मनुष्य किन परिस्थितियों में पला है, रहा है और काम करता आया है। मतलब यह है कि मनुष्य की सौंदर्याभिरुचि उसके स्वभाव से जाँची जाती है। इसी-

---

१—जाज रवी, वही, पृ० १९-२४, तथा देखिए गोर्की, लिटरेचर एँण्ड लाइफ, पृ० ३१

२—जी० वी० प्लेखनोव, आर्ट एँण्ड सोशल लाइफ, बम्बई, १९५३ पृ० १८४, १८९। १८४८ में क्रांति का तूफान जब फिर से आया तो फ्रांस के जिन कलाकारों ने कलावादी सिद्धान्त को मान्य किया था, उसका उन्होंने परित्याग कर दिया। बोद्लेयर तक—जो कला को सर्वोपरि स्वीकार करता था—ने भी 'ल सलूत पब्लिक' (द पब्लिक सैल्यूट =जनता को सलाम) नामक एक क्रांतिकारी पत्र का प्रकाशन आरम्भ कर दिया। आगे चलकर १८५२ में उसने कलावादी सिद्धान्त को बचकाना कहकर घोषित किया कि कला का लक्ष्य समाजगत होना चाहिए। लेकिन क्रांति के असफल होने पर बोद्लेयर तथा अन्य कलाकार फिर से अपने कलावादी बचकाना' सिद्धान्त के पक्षपाती हो गये। वही पृ० १९०।

३—वही, पृ० १९०। स्वच्छन्दतावादी नवयुवक कला के उपयोगितावाद को हेय समझते थे। गौतिए (Gautier) ने तो इस मत के समर्थकों को मूर्ख और पागल तक कहा। वही, पृ० १८८।

लिए भिन्न भिन्न मनुष्यों अथवा भिन्न वर्गों की सौंदर्याभिरुचि भिन्न होती है।[1] 'किसी रूप को तभी सुन्दर कहा गया है जब वह किसी धारणा पर आधारित हो। क्या बिना समझ-बूझ वाले चेहरे को सुन्दर कहा जा सकता है'?[2]

राल्फ फॉक्स (१९००-३७) ने अपनी 'नॉवल ऐंड द पीपुल' नामक पुस्तक के प्रथम अध्याय में मार्क्सवाद और साहित्य की चर्चा की है। मार्क्सवादी साहित्य के सम्बन्ध में अक्सर लोग शका करते हैं कि इसमें समाज पर अत्यधिक जोर दिये जाने के कारण व्यक्ति का कोई व्यक्तित्व नही रह जाता। इसका उत्तर देते हुए फॉक्स ने लिखा है, "मार्क्सवाद व्यक्तित्व का निषेध नहीं करता। यह केवल जनसमूह को ही कठोर आर्थिक शक्तियों के बंधन मे बँधा हुआ नहीं देखता। ठीक है कि कतिपय मार्क्सवादी साहित्यिक कृतियों ने, विशेषकर कतिपय 'सर्वहारावर्गीय' उपन्यासों ने, निरीह आलोचकों के मन में इस प्रकार का विश्वास पैदा करने का कारण उपस्थित किया है। लेकिन सभवत यह उपन्यासकारों की कमजोरी है कि वे बदलती हुई प्रकृति तथा नूतन आर्थिक शक्तियों के निर्माण के माध्यम से अपने आपको बदलते हुए मानव सम्बन्धी अपने विषय की महानता तक पहुँचने में असफल रहे। मार्क्सवाद

१—वही, पृ० ३१। गोर्की के अनुसार सौंदर्य-कल्पना, जो सौंदर्य का स्रोत है न प्रकृति है, न ईश्वर और न कोई बाह्य जगत, किन्तु वह मानव और उसका सर्जनात्मक क्रिया-व्यापार है, जिसने 'सौंदर्य के नियम' के अनुसार, दुनिया को बदल दिया है। लिटरेचर ऐंड लाइफ, पृ० २९।

२—वही, पृ० १९४। देखिए मास्को से प्रकाशित होनेवाला 'स्पुटनिक', मासिक डाइजेस्ट, अक १, जनवरी १९६७ पृ० १०४-११। यहाँ दो प्रोफेसरों के 'द ब्यूटी आफ वीमन' नामक सवाद मे बताया गया है कि स्त्री के सौंदर्य का परीक्षण उसके व्यक्तित्व के आधार पर किया जाना चाहिए, केवल शारीरिक सौंदर्य के आधार पर नहीं। यह व्यक्तित्व उसकी समझ-शक्ति पर निर्भर है जो कि उपज है। इसका केवल वातावरण से ही नहीं वरन् वातावरण के प्रतिरोध से भी निर्माण होता है। किसी स्त्री के शारीरिक सौंदर्य से आकृष्ट होकर हम उसके प्रेमपाश मे फँस सकते हैं, लेकिन यदि उसमे पर्याप्त समझ नहीं है अथवा वह झगडालू स्वभाव की है तो उसके सौंदर्य के बारे में हम अपनी धारणा बदल देते हैं, उसमे घृणा तक करने लगते हैं। अत आध्यात्मिक अथवा बौद्धिक तथा शारीरिक सौंदर्य के मिश्रण को ही स्त्री सौंदर्य का आदर्श मानना चाहिए। बल्गेरिया का 'ए साइड ट्रक' नामक फिल्म में प्रेम के लिये बनाई हुई पाँच आवश्यक बातों में से तीन हैं—सामान्य वर्ग उद्गम (common class origin) बौद्धिक सगति, शारीरिक आकर्षण।

मानव को अपने दर्शन के केंद्र बिन्दु में रखता है, क्योंकि वह इस बात का दावा करता है कि भौतिक शक्तियां मानव को बदल सकती हैं और साथ ही वह अत्यधिक बलपूर्वक इस बात की भी घोषणा करता है कि मानव ही भौतिक शक्तियों में परिवर्तन पैदा करता है और इस क्रम में वह अपने आपको भी परिवर्तित कर देता है।"

मैक्सिम गोर्की ने इस सम्बन्ध में लिखा है, "समाजवादी यथार्थवाद का समर्थक लेखक मानव को किसी चित्रकार की भांति निश्चल रूप में चित्रित नहीं करता। वह उसे सतत गतिशील, क्रियाशील तथा आपस में अंतहीन संघर्ष, वर्ग-संघर्ष, दल-गत संघर्ष और व्यक्तिगत संघर्ष में जुटा हुआ चित्रित करता है।"[1]

आजकल के मार्क्सवादी लेखकों द्वारा चुने हुए विषयों को देखने से यही पता लगता है कि वे साहित्य और जीवन का घनिष्ठ सम्बन्ध स्वीकार करते हैं। साहित्य द्वारा जीवन के अन्तर्विरोधों को खोलकर रख देने की तीव्र आकांक्षा इनमें देखने में आती है। इनकी रचनाओं में खोज और विश्लेषण की मुख्यता है और यहां ऐसे सक्रिय व्यक्तियों को गौरवान्वित रूप में चित्रित किया गया है जो कठिनाइयों का सामना करते हुए साहस और धैर्य से काम लेते हों और जिन्हें इस बात का ज्ञान हो कि कठिनाइयों पर किस प्रकार विजय प्राप्त की जाये।[2]

इन लेखकों के अनुसार, सच्ची कला अनुकरण नहीं करती, वरन् जीवन सम्बन्धी नियमों का अध्ययन करके और मानव की सर्वश्रेष्ठ शारीरिक विशेषताओं को उजागर करके जीवन का पुनर्निर्माण करती है। इस दृष्टिकोण को अपनाने से ही कला में जो विषय और वस्तु, सौन्दर्यमूलक यथार्थता, सौन्दर्य और असौन्दर्यगत तत्त्वों का सहअस्तित्व एवं उनकी प्रतिक्रिया कला और जीवन के रूपों के सम्बन्ध, कलात्मक बिम्ब का सर्जन, कलाकृति में लेखक की भूमिका, और कलात्मक साधनों की अभिव्यक्ति सम्बन्धी प्रश्न उपस्थित होते हैं, उनका समाधान किया जा सकता है। किसी विषय पर सोचने विचारने, उसका विश्लेषण करने और उसे व्यापक रूप देकर अपना निश्चित मत निर्धारित करने की इच्छा को जागृत करना ही सच्ची कला का मुख्य उद्देश्य है।[3]

१—लिटरेचर ऐंएड लाइफ, पृ० ३२।

२—सोवियत लिटरेचर, मथली, ७, १९६७ में मिखाइल कुचनेरसोव का 'टर्निंग पाइंट' नामक लेख पृ० १३६

३—यही, पृ० १४४ १४७। १९६६ में सोवियत संघ के लेखकों की यूनियन के साथ सम्मिलित विश्व साहित्य के गोर्की-संस्थान द्वारा आयोजित 'सामाजिक यथार्थवाद की प्रचलित समस्याओं' पर चर्चा करने के लिए जो कान्फ्रेंस हुई थी, उसका सिंहावलोकन यहां किया गया है।

मैथ्यू आर्नोल्ड (१८२२–८८)

यथार्थवादी महान् आलोचक

मैथ्यू आर्नोल्ड उन्नीसवीं शताब्दी का एक यथार्थवादी आलोचक और कवि हो गया है, यद्यपि संस्कृति और साहित्य में वह भाववादी विचारधारा से प्रभावित था। इस शताब्दी में एक ओर इंग्लैंड का मध्यम वर्ग धन सम्पत्ति का संचय करने में जुटा था, दूसरी ओर विशाल जनसमुदाय दुःख दारिद्र्य की चक्की में पीसा जा रहा था। लोग उच्च स्वर से कहते थे, "कोयला ही इंग्लैंड का राष्ट्रीय गौरव है और यदि कोयला न रहा तो इंग्लैंड का गौरव ही नष्ट हो जायेगा।" उन दिनों "दस में से नौ आदमियों का विश्वास था कि उनका बड़प्पन और कल्याण इसी में है कि वे इतने अधिक धनी हैं।' आर्नोल्ड ने ऐसे लोगों का 'असंस्कृत (फिलिस्टीन) कहकर उल्लेख किया है जो संस्कृति सभ्यता और साहित्य से हमेशा दूर भागते हैं। एलिजाबेथ के इंग्लैंड को सांस्कृतिक दृष्टि से उसने कहीं उन्नत माना है जबकि कोयला और कोयले की सहायता से चलनेवाले उद्योग धंधों का बहुत ही कम विकास हुआ था। ऐसी हालत में इंग्लैंड की प्रजा को सौंदर्य, कला अथवा नैतिकता का शिक्षण देना कितना कठिन काम था, यह आसानी से समझा जा सकता है। इन्हीं दिनों १८६६ में आर्नोल्ड की राजनैतिक और सामाजिक आलोचना सम्बन्धी 'कल्चरल ऐंड अनार्की' (संस्कृति और अराजकता) नामक रचना प्रकाशित हुई जिसमें जीवन को सुसंस्कृत बनानेवाली आध्यात्मिक परिस्थितियाँ पैदा करने पर जोर दिया गया जिससे कि हम प्रेम, सुरुचि और आह्लाद की ओर उन्मुख हो सकें।[1] यहाँ अन्य लेखकों की अपेक्षा अधिक स्पष्टतापूर्वक आलोचक का समाज के साथ सबंध प्रतिपादित किया गया। इन्हीं परिस्थितियों में आर्नोल्ड ने साहित्य को 'जीवन की आलोचना' स्वीकार किया।

क्लासिकल परम्परा के समर्थक

मैथ्यू आर्नोल्ड प्राचीन काव्य परम्परा का प्रबल समर्थक था। इंग्लैंड के साहित्य को उसने क्लासिकल मूल्यों पर आंकने की ही चेष्टा है। यूनानी साहित्य लातीनी साहित्य तथा अठारहवीं शताब्दी के क्लासिकल साहित्य को उसने प्रशस्त एवं अनुकरणीय बताया है। यहाँ क्लासिक का अर्थ किया गया है सर्वश्रेष्ठ। आर्नोल्ड का कहना है कि यदि किसी कवि की रचना क्लासिकल है तो हमें गंभीरता

१—कल्चर ऐंड अनार्की, पृ० १२–१३, लंदन, १९३५।

पूर्वक उसकी परीक्षा कर उसका रसास्वादन करना चाहिए। किसी रचना को आँख मूँदकर मान्य करने के बजाय, ठोक बजाकर उसकी जाँच पड़ताल करनी चाहिए। जितनी अच्छी तरह हमें किसी क्लासिकल रचना का ज्ञान होगा, उतनी ही अच्छी तरह हम उसका मूल्यांकन कर सकेंगे।' यहाँ किसी रचना का 'ऐतिहासिक' या 'व्यक्तिगत' मूल्यांकन न करके उसके वास्तविक मूल्यांकन करने पर ही जोर दिया गया है और यह तभी संभव है जब हममें क्लासिकल रचनाओं के समझने-बूझने और साधारण रचनाओं से उनका भेद करने की क्षमता हो।[२]

कविता का मूल्य

थॉमस लव पीकॉक ने विज्ञान की दुहाई देते हुए कहा था कि कविता के दिन बीत चुके। इसके विरुद्ध शैली ने कविता की वकालत करते हुए काव्य के महत्त्व का प्रतिपादन किया। लेकिन उन्नीसवीं शताब्दी का युग विज्ञान का युग था जब कि विज्ञान आशातीत उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रहा था। ऐसी हालत में कविता के महत्त्व को स्थापित करना आवश्यक हो गया था। आर्नोल्ड ने देखा कि आधुनिक विज्ञान के कारण धर्म की आधारशिला कमजोर होती जा रही है तो उसने मानव मूल्यों की रक्षा के लिए कविता का स्रोत ढूँढ निकाला जो विज्ञान के प्रभाव से अदूषित हो। काव्य को सब प्रकार के ज्ञान विज्ञान से उत्कृष्ट बताते हुए आर्नोल्ड ने लिखा है 'काव्य का भविष्य महान् है, क्योंकि जैसे जैसे यह उत्कृष्टता को प्राप्त होगा, मानव जाति को इसमें अधिकाधिक आश्रय मिलेगा। कोई ऐसा विश्वास नहीं रहा रहा जो हिल न गया हो, कोई ऐसा मान्य सिद्धांत नहीं रहा जिसके आगे प्रश्नचिह्न न लग गया हो, और कोई ऐसी परम्परा नहीं बची जो लुप्त न हो गयी हो। हमारा धर्म, तथ्य-कल्पित तथ्य-के रूप में परिणत हो गया है अपने भावों को उसने तथ्यों से जोड़ दिया है, लेकिन अब वही तथ्य इसे नष्ट कर रहा है। लेकिन कविता के लिए विचार ही सब कुछ है बाकी सब माया का, एक दिव्य माया का संसार है। कविता अपने भावों को विचार से संयुक्त करती है। विचार ही तथ्य है। हमारे धर्म का सर्वाधिक सबल अंश अनजाने में लिखी गयी कविता है।'[३]

विज्ञान की अपेक्षा काव्य को अधिक महत्त्वपूर्ण बताते हुए कहा गया है, 'मानव

१—द स्टडी ऑफ पोएट्री, टी० एच० वार्ड की 'द इंग्लिश पोएट्स' की भूमिका, १८८० मार्क शोरर द्वारा सम्पादित 'क्रिटिसिज्म, फाउण्डेशन्स आफ माडर्न लिटररी जजमेंट', पृ० ४६१ पर से। उक्त भूमिका 'एसेज इन क्रिटिसिज्म, सेकण्ड सीरीज' के रूप में १८८८ में पुनः प्रकाशित हुई।

२—वही पृ० ४६०

३—वही पृ० ४८६

जाति को अधिकाधिक ज्ञात होता रहेगा कि जीवन की व्याख्या के लिए, सांत्वना के लिए और पोषण के लिए उसे काव्य की ओर मुड़ना होगा। कविता के बिना हमारा विज्ञान अपूर्ण रहेगा, तथा जो स्थान धर्म एवं और दर्शन का प्राप्त है वह कविता को प्राप्त होगा।"[1] आर्नोल्ड ने प्रतिभा का धर्म शक्ति का और कविता को प्रतिभा का पर्याय बताया है और कहा है कि जिस देश में धर्म शक्ति की भावना प्रबल है, वह देश कविता में उत्कृष्ट हो सकता है। इस सम्बन्ध में शेक्सपियर का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है।[2]

आर्नोल्ड ने वर्ड्सवर्थ की कविता की परिभाषा उद्धृत करते हुए कहा है 'कविता एक आवेशपूर्ण अभिव्यक्ति है जो समस्त विज्ञान की मुखाकृति से प्रकट होती है।" धर्म और दर्शन को उसने ज्ञान की छाया, स्वप्न तथा मिथ्या प्रदर्शन कहा है। उसका कथन है कि एक दिन आयगा जब हम इस बात पर आश्चर्य करेंगे कि हम धर्म और दर्शन पर कैसे विश्वास करते थे और क्यों इन्हें गम्भीरता से लेते थे, और जैसे जैसे हमें इनका छिछलापन मालूम पड़ेगा, हम 'समस्त ज्ञान की प्राण और उत्कृष्ट आत्मा' (कविता) का मूल्य समझने लगेंगे।[3]

ध्यान रखने की बात है कि आर्नोल्ड ने यहाँ मतान्धतापूर्ण बनावटी धर्म का ही विरोध किया है, और उसीके स्थान पर कविता को प्रतिष्ठित करने की बात कही है, सच्चे ईसाई धर्म के मानवतावाद का विरोध उसने नहीं किया। लिटरेचर ऐंड डाग्मा (साहित्य और मताग्रह–१८७३) तथा 'गॉड ऐंड द बाइबिल' (ईश्वर तथा बाइबिल–१८७६) नामक अपनी रचनाओं द्वारा धर्मशास्त्र के क्षेत्र में पैठकर उसने शुद्ध नैसर्गिकता के आधार पर ईसाई धर्म के पुनर्निर्माण का बीड़ा उठाया। न्यूमन की भाँति कविता और धर्म दोनों में ही उसने मानवतावादी दृष्टिकोण को मुख्य माना। आर्नोल्ड के अनुसार, कविता और धर्म को एक दूसरे के स्थान पर प्रतिष्ठित नहीं किया जा सकता और न वे परस्पर प्रतिस्पर्धी ही कहे जा सकते हैं। उन्हें साथ-साथ प्रवाहित होनेवाले दो जुड़वा प्रवाह कहा गया है, प्रत्येक अपने आपको शुद्ध करके दूसरे के साथ सम्मिलित होता है।[4]

साहित्य में समीक्षा का महत्त्व

'एसेज़ इन क्रिटिसिज्म (आलोचना सम्बन्धी निबन्ध–१८६५-८८) के अन्तर्गत 'द फंक्शन ऑफ क्रिटिसिज्म एट द प्रेजेंट टाइम (आधुनिक काल में

१—वही

२—एसेज इन क्रिटिसिज्म लिटरेरी इनफ्लुएन्सेज ऑफ एकेडेमीज पृ० ४० ५१

३—द स्टडी ऑफ पोएट्री, पृ० ४८६

४—जॉर्ज वाटसन, द लिटरेरी क्रिटिक्स, पृ० १५७

ग्रालोचना का काय—१८६५) नामक निबन्ध मे ग्रार्नोल्ड ने 'साहित्य को जीवन की ग्रालोचना' कहकर उसका विवेचन किया है। उसका कहना है कि वतमान समय में फ्रास, जमनी तथा सामान्यतया यूरोप के साहित्य में समीक्षात्मक प्रयत्न विशेष रूप से देखने मे ग्राता है। इसी समीक्षात्मक दृष्टिकोण का परिणाम है कि धमशास्त्र, दशन, इतिहास, कला ग्रौर विज्ञान ग्रादि ज्ञान की सभी शाखाग्रो मे वस्तु को उसी रूप में देखने का प्रयत्न किया जा रहा है जैसी कि वह यथाथ रूप में है।[1]

समीक्षात्मक शक्ति की प्रमुखता

ग्रार्नोल्ड ने सजनात्मक शक्ति की अपेक्षा समीक्षात्मक शक्ति को विशेष महत्त्व दिया है, जबकि वड्सवथ ने समीक्षात्मक शक्ति को ग्रत्यधिक निम्न कोटि का बताया है। ग्रार्नोल्ड ने लिखा है, "सामान्यतया हर कोई समीक्षात्मक शक्ति को सजनात्मक शक्ति की ग्रपेक्षा निम्न कोटि की स्वीकार करना चाहेगा। लेकिन क्या यह सच है कि समीक्षा वास्तव मे हानिकारक ग्रौर विध्वसक होती है? क्या यह सही है कि किसी मौलिक रचना की ग्रपेक्षा दूसरों को रचनाग्रो पर समीक्षा प्रस्तुत करना ग्रधिक प्रशस्त है?" यह ठीक है कि इस बात से कोई इकार नहीं कर सकता कि सजनात्मक शक्ति मनुष्य का सर्वोत्कृष्ट व्यापार है, क्योंकि मनुष्य को इसमें सच्चे ग्रानन्द की प्राप्ति होती है। 'लेकिन इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि साहित्य या कला की महान् कृतियो की सजना के ग्रतिरिक्त ग्रन्य कार्यो मे भी इस शक्ति का उपयोग किया जा सकता है। यदि ऐसा न होता तो कुछ को छोडकर ग्रधिकाश लोग वास्तविक ग्रानन्द से वचित रह जाते। इस शक्ति का उपयोग मनुष्य के हित साधन में, ज्ञानाजन म तथा समीक्षा के लिए भी किया जा सकता है।' ग्रतएव यह कथन ठीक नही कि समीक्षा सजनात्मक शक्ति का काय नही।

इस सम्बन्ध मे दूसरी बात यह है कि साहित्य ग्रथवा कला की महान् कृतियों को रचना करने के लिए, *सजनाशक्ति—चाह वह कितनी ही उत्कृष्ट क्यों न हो*—हर काल मे ग्रौर हर परिस्थिति मे समथ नही है। यदि किसी साहित्यिक या कलात्मक कृति की रचना की जायगी तो वह तत्कालीन विषय को स्पश करने वाले उत्कृष्ट विचारों को लेकर ही हो सकती है, ग्रौर सजनात्मक *साहित्यिक प्रतिभा* मुख्य रूप से ग्रभिनव विचारो के उद्घाटन में व्यक्त नहीं होता, यह काय तो किसी दाशनिक का होता है। साहित्यिक प्रतिभा का काय सश्लेषण करना ग्रौर ग्रभिव्यक्तिकरण है विश्लेषण ग्रौर ग्रन्वेषण नहीं। इसकी विशेषता इसी मे है कि

१—एसेज इन क्रिटिसिज्म (फस्ट सीरीज) द फक्शन ग्राफ क्रिटिसिज्म एट द प्रेजट टाइम, पृ० १, लदन, १९३२

साहित्यिक प्रतिभा से सम्पन्न व्यक्ति किसी बौद्धिक या आध्यात्मिक वातावरण में विचारों के किसी क्रमको प्राप्त कर आनन्दविभोर हो उठता है। यही कारण है कि साहित्य में, जिन्हें हम महान् सजनात्मक युग कहते हैं, बहुत कम आते हैं।

उत्कृष्ट साहित्य की सृष्टि के लिए आर्नोल्ड ने दो प्रकार की शक्तियों को स्वीकार किया है - एक मनुष्य की शक्ति, जिसे सजनात्मक शक्ति कह सकते हैं, और दूसरी युग की शक्ति। युग की शक्ति के बिना मनुष्य की शक्ति अपर्याप्त रहती है। सजनात्मक शक्ति मे कुछ तत्त्व ऐसे रहते हैं जिनपर उसका नियन्त्रण नही रहता, जबकि समीक्षात्मक शक्ति का इन तत्त्वो पर नियन्त्रण रहता है। समीक्षात्मक शक्ति की सहायता से ही कला दर्शन और इतिहास आदि के द्वारा किसी वस्तु का यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो सकता है। सजनात्मक शक्ति में उत्कृष्ट विचारो की मुख्यता रहती है। ये नूतन विचार समाज मे पहुँचते हैं सत्य का स्पर्श जीवन का स्पर्श होता है जिससे सर्वत्र आन्दोलन और विकास होने लगता है और इसी आन्दोलन और विकास से साहित्य के सजनात्मक युग का आरम्भ होता है।

तात्पर्य यह कि समीक्षात्मक शक्ति के बिना सजनात्मक शक्ति कार्यकारी नही होती। साहित्यकार मे समीक्षात्मक शक्ति का होना आवश्यक है। आर्नोल्ड ने लिखा है, "कविता का सजन करने के पूर्व कवि को जीवन और जगत् का ज्ञान होना चाहिए। तथा जीवन और जगत् आजकल की दुनिया मे अनेक जटिलताओ से भरे हैं। अतएव किसी आधुनिक कवि की उत्कृष्ट रचना के पीछे समीक्षात्मक शक्ति का होना आवश्यक है। ऐसा न होने पर वह रचना अत्यन्त तुच्छ कोटि की हो जायगी।" इस प्रसग पर बायरन और गेटे की समीक्षा करते हुए आर्नोल्ड ने गेटे की समीक्षात्मक शक्ति को प्रशस्त कहा है, कारण कि बायरन की अपेक्षा गेटे को जीवन जगत्, और कवि के जानने-योग्य आवश्यक विषयो का अधिक व्यापक और पूर्ण ज्ञान था।[1]

आलोचना क्या है ?

जैसा कहा जा चुका है आर्नोल्ड ने साहित्य को मूल रूप से 'जीवन की आलोचना' माना है। उसका मुख्य उद्देश्य सम्बन्धित लेखकों के नैतिक मूल्यो पर विचार करना था। आलोचना की परिभाषा करते हुए उसने लिखा है, "ससार भर में सर्वश्रेष्ठ रूप में ज्ञात और विचारणीय बातो के सीखने और उनका प्रचार करने के निष्पक्ष प्रयत्न" को आलोचना कहते हैं।[2] लेकिन प्रश्न होता है कि आलोचना में निष्पक्षता कैसे आय ? उत्तर में कहा गया है 'उसे 'वस्तुओं की व्यावहारिकता'

१—वही, देखिए पृ० २-७
२—वही पृ० १७-२१

से दूर रहते हुए दृढ़तापूर्वक अपने नैसर्गिक नियमो का अनुकरण करना चाहिए"। बहुत से लोग अमुक विचारों पर कोई गूढ़, राजनीतिक अथवा व्यावहारिक रंग चढ़ा देते हैं, लेकिन आलोचना को इससे लेना देना नही।" आलोचना का बस इतना ही काम है कि जो बातें दुनिया में सर्वोत्कृष्ट रूप में प्रसिद्ध हैं अथवा सर्वोत्कृष्ट मानी जाती हैं, उन्हें जानना बूझना, तथा जान बूझकर दुनिया में उनका प्रचार करना जिससे कि वास्तविक और अभिनव विचारो का प्रसार हो सके। और यह काम बड़ी ईमानदारी और योग्यतापूर्वक किया जाना चाहिए।[1]

आलोचना को व्यावहारिक पक्ष से दूर रहना चाहिए। व्यावहारिक महत्त्व को ध्यान में रखते हुए उसे अपने लक्ष्य की ओर जल्दी-जल्दी कदम नही बढ़ाना चाहिए। आलोचक मे धैर्य होना आवश्यक है जिससे कि किसी बात की प्रतीक्षा की जा सके। लचीलापन आलोचना का दूसरा गुण है जिससे कि किसी चीज की ओर उन्मुख और किसी चीज से विमुख हुआ जा सके। आलोचना ऐसी होनी चाहिए कि आध्यात्मिक सिद्धि को परिपूर्ण बनानेवाले तत्त्वों का अध्ययन और उनकी सराहना करने की तथा व्यावहारिक क्षेत्र के लिए लाभदायक शक्तियों की आध्यात्मिक दुर्बलताएँ अथवा माया मोह को समझने बूझने की योग्यता उसमे हो।[2]

अवश्य ही इस दृष्टि से आर्नोल्ड के सिद्धात अरिस्टोटल से जुदा पड़ जाते हैं। अरिस्टोटल आलोचक का संबंध कला के साथ स्थापित करता है, आर्नोल्ड समाज के साथ। एक कला का विश्लेषण करता है तो दूसरा आलोचक का, एक काव्य रचना को नियंत्रित करनेवाले सिद्धान्तो की प्रतिष्ठा करता है तो दूसरा ऐसे सिद्धांतों को प्रतिपादित करता है जिनके द्वारा सर्वोत्कृष्ट कविताओं का चयन किया जा सके और वे ज्ञात हो सकें। अरिस्टोटल का आलोचक कलाकार के प्रति निष्ठावान रहता है जब कि आर्नोल्ड का आलोचक समाज के प्रति वफ़ादार रहता है।[3]

काव्य का प्रयोजन

आर्नोल्ड ने कहा है कि कवि के लिए यही पर्याप्त नही कि वह मनोरंजन करे, उससे यह भी अपेक्षित है कि वह पाठक का मन स्फूर्ति और आह्लाद से भर दे। 'वही कविता उत्तम है जिसमे निर्माण करने, पोषण करने और आनन्द प्रदान करने की शक्ति हो।" कविता से जो हम शक्ति और आनन्द प्राप्त करते हैं, वह हमारे लिए बहुत कामती है।[4] फ्रांस के समीक्षक सन्त ब्येव की निम्नलिखित मान्यता का

१—वही, पृ० १८-१९

२—वही, पृ० ३४, तथा एसे इन क्रिटिसिज्म, जाउबर्ट, पृ० ३०३

३—स्कॉट जेम्स, द मेकिंग ऑफ लिटरेचर, पृ० २६३

४—द स्टडी ऑफ पोएट्री पृ० ४६०

उसने समर्थन किया है—"किसी कलाकृति को पढ़कर हमारे मन में पहले यह विचार पैदा नहीं होता कि इससे हमें ज्ञान द प्राप्त हुआ है या नहीं। और यह भी विचार नहीं आता कि इससे हम आन्दोलित हुए हैं या नहीं। हम सर्वप्रथम यह जानना चाहते हैं कि जब इस कलाकृति ने हमें आनन्दित किया, अथवा हमने इसकी सराहना की, या इसने हमारे मन को आन्दोलित किया तो क्या यह ठीक था।"[1] शिलर की भाँति आर्नोल्ड ने भी उसी को काव्य कहा है जो उत्कृष्ट आनन्द पैदा करने में समर्थ हो।

आर्नोल्ड ने सौन्दर्य को साहित्य का लक्ष्य माना है। "यदि सौंदर्य दृष्टि से ओझल हो जाय तो केवल भयंकर वास्तविकता ही शेष रह जायगी।"[2] काव्यसौन्दर्य का आस्वादन करने के पश्चात् ही उसके कथनानुसार वास्तविक प्रश्न विगलित होते हैं।[3]

आलोचना और संस्कृति

कहा जा चुका है कि आर्नोल्ड के समय इंग्लैंड में चारों ओर सामाजिक अराजकता फैली हुई थी जिससे संस्कृति और सभ्यता पर जोर देना आवश्यक हो गया था। संस्कृति और सभ्यता से दूर जाकर लोग इतने धनलोलुप और स्वार्थी बन गये थे कि उनका निष्पक्ष रहना असंभव हो गया था, और जाहिर है कि आलोचना के लिए निष्पक्षता अत्यन्त आवश्यक है। अतएव आर्नोल्ड की मान्यता थी कि जब तक समाज सुसभ्य और सुसंस्कृत नहीं हो जाता—किसी विषय पर निष्पक्षतापूर्वक अपने विचारों की अभिव्यक्ति करने में समर्थ नहीं हो पाता—तब तक साहित्यिक समीक्षा समुन्नत नहीं हो सकती। इस प्रकार समुचित समीक्षा के अभाव में न महान् साहित्य का सृजन हो सकता है और न उसका सही मूल्यांकन ही। समीक्षा में निष्पक्ष भाव आने पर ही सभ्यता और संस्कृति के वातावरण में सुधार की संभावना है तथा उसी समय स्वार्थरूपी अंधकार से आच्छन्न औद्योगिक इंग्लैंड में 'माधुर्य और आलोक' का प्रसार हो सकता है जिससे सृजनात्मक रचना संभव हो।

अपनी कल्चर ऐंड अनार्की (संस्कृति और अराजकता–१८६९) नामक पुस्तक में आर्नोल्ड ने उदात्त मूल्यों और उद्देश्यों की सम्यक् प्रतिष्ठा करना संस्कृति का मुख्य लक्ष्य बताया है। संस्कृति को उसने पूर्णता का अध्ययन कहा है जो अपनी शक्ति के द्वारा शुद्ध ज्ञान प्राप्ति के लिए केवल वैज्ञानिक मनोभाव को ही आन्दोलित नहीं करती वरन् जन कल्याण के लिए नैतिक तथा सामाजिक मनोभावों को भी

१—एसे इन क्रिटिसिज्म लिटरेरी इनफ्लुएन्स ऑफ एकेडेमीज, पृ० ४८
२—एसेज इन क्रिटिसिज्म, जाउबर्ट पृ० २९३
३—वही पृ० २७७

संचालित करती है। संस्कृति को आर्नोल्ड ने मानव स्वभाव और मानवीय अनुभव का पूर्ण और निष्पक्ष अध्ययन माना है जो समस्त शक्तियों का सामंजस्यपूर्ण विस्तार है—ऐसी शक्तियां जो सौन्दर्य की रचना करती हैं और मानवीय स्वभाव को मूल्यवान बनाती हैं।

माधुर्य और आलोक संस्कृति के दो विशिष्ट गुण हैं। इन गुणों से युक्त संस्कृति कविता की आत्मा के सदृश होकर कविता के नियम का अनुकरण करने लगती है। आर्नोल्ड का कथन है, "कला और साहित्य की चरम उन्नति का समय तब माना जायगा जब कि राष्ट्रीय जीवन और विचार उद्दीप्त हो उठेंगे और जब सारा समाज विचारों की पूर्णता से भरपूर हो जायगा, सौंदर्य का रसास्वादन करने लगेगा तथा वह मेधावी और प्राणवान बन जायगा। केवल एक ही बात ध्यान में रखनी होगी कि वह विचार वास्तविक विचार हो और सौन्दर्य वास्तविक सौन्दर्य हो, माधुर्य वास्तविक हो और आलोक भी। जब संस्कृति पूर्णता को प्राप्त हो जाती है तो आध्यात्मिक क्रियाकलाप में, माधुर्य और आलोक में तथा जीवन और समवेदना में भी वृद्धि हो जाती है। तथा मताधिकार और औद्योगिक उन्नति के मुकाबले में जनतन्त्र को इन्हीं बातों की आवश्यकता भी है।'[1]

आर्नोल्ड मूल्यांकन

साहित्य और जीवन का घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर आर्नोल्ड ने निश्चय ही विक्टोरिया युग की समीक्षा को असाधारण रूप से प्रभावित किया था। उसने आलोचक को कवियों का संरक्षक मानकर उसे ऊँचा स्थान प्रदान किया था। कलाकार के सामाजिक कर्तव्य के प्रति वह विशेष रूप से जागरूक दिखायी देता है। उसका कहना है कि समाज में इस प्रकार का वातावरण तैयार किया जाना चाहिए जिससे कलाकार को प्रेरणा प्राप्त हो और फिर वह अपने समय की सर्वोत्कृष्ट रचनाओं को पाठकों तक पहुँचा सके। इसके लिए आवश्यक है कि आलोचक उच्च कोटि के गुणों से युक्त हो, विद्वत्ता से पूर्ण तथा सद्रुचि से सम्पन्न हो। इसके लिये तीन बातें आवश्यक बताई गई हैं। सर्वप्रथम उसे वस्तुओं का उनके यथार्थ रूप में ज्ञान होना चाहिये उसके बाद, दुनिया में श्रेष्ठ विचारों का प्रचार करना चाहिये, तत्पश्चात् भविष्य में सृजनात्मक शक्ति के पोषण के लिये अनुकूल वातावरण तैयार किया जाय।

लेकिन क्या कला वस्तुओं का यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति में सहायक होती है? कला में वस्तुओं के यथार्थ ज्ञान की अपेक्षा उन्हीं प्रभावों की मुख्यता रहती है जो वस्तुओं के द्वारा कलाकार के मन पर पड़ते हैं। कलाकार से हम सत्य की अपेक्षा

१—कल्चर एंण्ड अनार्की, पृ० ६, ६ १५, ३० २६

सचाई और ईमानदारी की मात्रा ही अधिक करत हैं। कलाकार की मनोदशा की अभिव्यक्ति ही वस्तुत कला है, वस्तुगत तथ्यों का चित्रण नहीं। उदाहरण के लिये, जैसा जा० के० चैस्टरटन ने हार्डी के कला सबधी सिद्धांत का खडन करते हुए कहा है कि यदि कवि की मनोदशा किसी प्रेमी की मनोदशा है तो उसे समुद्र स्मित हास्य करता हुआ, पवन प्रेमिका के नाम को कानों म फुसफुसाती हुई, तथा आकाश के नक्षत्र स्नेहपूर्ण नेत्रों से निहारते हुए प्रतीत होंगे, लेकिन उसकी मनोदशा भिन्न होने पर ये सब वस्तुयें प्रतिकूल प्रतीत होने लगेंगी।[1]

आर्नोल्ड की कुछ मान्यताए ऐसी हैं जिनका समीक्षा के सिद्धान्तों से मेल नही खाता। उदाहरण के लिए, यह स्पष्ट नही होता कि सभ्यता और सस्कृति जो एक प्रकार से मानसिक अवस्था है, आलोचना के विकास में कैसे कारणीभूत हो सकती है। समाज के प्रति उसका दायित्व ठीक है, लेकिन साहित्य में भी उसका प्रतिबिम्ब होना चाहिये। 'एसेज इन क्रिटिसिज्म' का अध्ययन कर आर्नोल्ड एक अच्छे आलोचक बनने के लिए प्रोत्साहित करता है, लेकिन यह ऐसी ही बात होगी जसे किसी को सदाचारी होने के लिए उपदेश दिया जाये।

आर्नोल्ड ने 'निष्पक्ष प्रयत्न' को आलोचना का एक विशिष्ट गुण माना है लेकिन विचारणीय है कि यह कहाँ तक व्यावहारिक है। स्वय लेखक की 'द एसेज् इन क्रिटिसिज्म' और बाइबिल की व्याख्या 'निष्पक्ष प्रयत्न' से काफी दूर जान पडती है। इन रचनाओं को 'एक कुशल और शिष्ट लेखक की भावप्रवण सहभागित्व की रचनाएँ' कहा गया है। एक आलोचक ने तो यहाँ तक कह दिया है, "यदि आर्नोल्ड गभीरतापूर्वक 'निष्पक्ष' रहने का प्रयत्न करता तो वह कभी भी आलोचना पथ का यात्री नही बन पाता।"[2]

इसके अलावा, आर्नोल्ड काव्यसम्बन्धी सिद्धान्तो मे सामजस्य देखने में नही आता। सादृश्यबोधक सत्यों को लेकर कुछ उखडी उखडी-सी भाषा में एक ही बात को फिर से दोहराया गया है। उत्कृष्ट कविता को हस्तगत करने की इच्छा उसने व्यक्त की है लेकिन किसे अच्छी कविता कहा जाय और किसे नही, यह स्पष्ट नही होता। कविता का विषय क्या होना चाहिए इस सम्बन्ध में भी कोई स्पष्ट मार्ग-दर्शन नही मिलता।

लेकिन फिर भी पाश्चात्य समीक्षा जगत् में आर्नोल्ड का महत्व कम नही। अपने समय की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों से वह असन्तुष्ट था, और तत्कालीन कवियों द्वारा लिखी हुई रचनाएँ भी उसके मन नहीं मानती थीं। ऐसी

१—ई० ए० ग्रीनिंग लम्बोन, रुडीमैण्टस आफ क्रिटिसिज्म, पृ० १३ १२६
२—जॉर्ज वाटसन, द लिटररी क्रिटिक्स, पृ० १६० ६१

दशा में उसने संस्कृति और निष्पक्षता का सम्बन्ध जोड़कर उसे साहित्यिक आलोचना के साथ मिला दिया। वस्तुतः आर्नोल्ड ने पहली बार व्यावहारिक आलोचना के नियमों का निरूपण किया। इन्हीं सब बातों से पाश्चात्य समीक्षा पर उसके सिद्धान्त का प्रभाव काफी समय तक बना रहा। ड्राइडेन के युग में जैसे अरिस्टोटल की दुहाई दी जाती थी, उसी तरह अब आर्नोल्ड को प्रमाण रूप में उद्धृत किया जाने लगा था। इंग्लैण्ड और अमरीका की विद्वन्मंडली में आज भी उसका प्रभाव लक्षित होता है। इर्विंग बैबिट, टी० एस० इलियट और एफ० आर० लीविस आदि आधुनिक काल के समीक्षकों में उसका दृष्टिकोण देखा जा सकता है।

लियो तालसताय (१८२८-१९१०)

प्रतिभाशाली समीक्षक

लियो तालसताय उन्नीसवीं शताब्दी का एक प्रतिभाशाली विचारक हो गया है। 'व्हाट इज आर्ट' (कला क्या है ?) नामक अपनी रचना द्वारा उसने अपने समीक्षकों को प्रभावित किया, और वह 'कला का अन्तःकरण', 'विश्व का अन्तःकरण' 'मानवता का अन्तःकरण' नाम से प्रख्यात हो गया। सन् १८९८ में यह पुस्तक रूसी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में साथ-साथ प्रकाशित हुई[1] और कहने की आवश्यकता नहीं कि अपनी महत्ता, विस्तार, गहन सूक्ष्म दृष्टि और तीव्र निष्ठा के कारण अंग्रेजी पाठकों के द्वारा विशेष रूप से सम्मानित की गयी। 'कला क्या है' पुस्तक के भूमिका लेखक एलमेर मौदे ने इस एक महान् कलाकार द्वारा सुविचारित रचना कहा है जिसमें मानव जाति की अत्यन्त उलझन भरी और महत्त्वपूर्ण समस्याओं का समाधान किया गया है। उसने इसे 'एक अत्यन्त स्वस्थ, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और अत्यन्त उपयोगी रचना' माना है जो उसकी याद में किसी जीवित व्यक्ति द्वारा लिखी गयी थी। मौदे का कहना है कि कला के सम्बन्ध में हजारों पुस्तकें लिखी गयी हैं लेकिन जितनी स्पष्टतया कला और जीवन का सम्बन्ध यहाँ बताया गया है, उतना और कहीं नहीं है।[2] देखा जाय तो तालसताय ही एक ऐसा लेखक हो गया है जिसने अरिस्टोटल के पश्चात् इतने समग्र रूप में कला का विवेचन किया।

कला का आधार धार्मिक बोध

अन्ना कैरेनिना' (१८७७) उपन्यास के प्रकाशन के पश्चात् तालसताय के मन में अपने देश की धर्मभावना के प्रति असन्तोष की वृद्धि हुई। १८७८ में उसने 'ए

१—तालसताय को इसे लिखने में पन्द्रह वर्ष लगे। पुस्तक के प्रथम प्रामाणिक संस्करण में लेखक ने बताया है कि सेंसर ने प्रत्येक बार उसकी रचना को भ्रष्ट करके छापा। सेंसर को उसने अनैतिक, अविवेकी, अत्यन्त अनभिज्ञ, घूसखोर जडमति और निरंकुश कहा है जिसके विरुद्ध कोई भी आवाज उठाना असंभव है। यदि कोई ऐसी पुस्तक सेंसर के हाथ पड जाये जो रूस के राज्यधर्म के *सिद्धान्तों के साथ मेल न खाती हो तो उसका बिल्कुल ही दमन कर उसे जला* दिया जाता है। तालसताय की समस्त धार्मिक रचनाओं के सम्बन्ध में यही हुआ जिन्हें कि वे रूस में प्रकाशित कराना चाहते थे। व्हाट इज आर्ट, ऐलमेर मौदे द्वारा अनूदित, पृ० ६५ ६८, २७६, लंदन, १९२९।

२—वही, भूमिका, पृ० १४

कन्फेशन' (मुक्ति की कहानी)[1] पुस्तक लिखी। तालस्ताय का कथन है, "प्रत्येक ऐतिहासिक काल में, प्रत्येक मानव समाज में, जीवन के अर्थ का विवेक देखा जाता है, जो उस उच्चतम स्तर का प्रतिनिधित्व करता है जिसे उस समाज में रहनेवाले मानवों ने प्राप्त किया है। यह विवेक उस उच्चतम भलाई की ओर इंगित करता है जिसकी ओर उस समाज का लक्ष्य रहता है।" जीवन के इस विवेक को तालस्ताय ने धार्मिक बोध कहा है जो उस युग और समाज का बोध माना गया है। इस धार्मिक बोध की अभिव्यक्ति सामान्यतया कतिपय विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा ही की जाती है। यदि हमे प्रतीत हो कि हमारे समाज मे धार्मिक बोध का अभाव है तो इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि धार्मिक बोध है ही नही। इसका अर्थ है कि उसके विद्यमान रहने पर भी हम उसे देखना नही चाहते।[2] "इस भूमंडल पर ईश्वरीय राज्य स्थापित करना ही वह मानवजाति का सर्वोच्च लक्ष्य" स्वीकार करता था।

धार्मिक बोध को बहती हुई नदी की दिशा कहा गया हैं। यदि नदी में प्रवाह है तो वह एक दिशा की ओर प्रवाहित होता है, इसी प्रकार प्रत्येक गतिशील समाज में कोई धार्मिक बोध होना चाहिए - ऐसा धार्मिक बोध जो उस दिशा की ओर इंगित करे जिसकी ओर समाज मे रहनेवाले मानव प्रवृत्त हो। इसी धार्मिक बोध के आधार पर मनुष्यों ने कला के अनंतहीन विविध क्षेत्रों में से उस कला का चुनाव किया है जो वास्तविक जीवन में धार्मिक बोध को कार्यकारी बनाकर विचारों का सम्प्रेषण करता है।[3] इस धार्मिक बोध को व्यापक रूप में स्वीकार करते हुए कहा गया है, 'हमारा भौतिक, आध्यात्मिक, वयक्तिक, सामूहिक, सामयिक और शाश्वत कल्याण मनुष्यों मे परस्पर भाईचारे की भावना के विकास में निहित है – इस तथ्य का बोध धार्मिक बोध के कारण ही होता है।'[4]

कला किसे कहते हैं ?

तालस्ताय ने कहा है कि रूस फ्रांस और जर्मनी के संग्रहालय, अकादमी, और नाट्यगृह आदि के निर्माण मे हजारों लाखो रुपया पानी की तरह बहाया जाता है, जिसके लिए हजारो लाखो राजगीर चित्रकार और शिल्पकार अपना खून पसीना एक कर देते हैं। क्यो ? कला की माग पूरी करने के लिए ही न ? कितने ही कलाकार नृत्य और संगीत आदि कलाओं मे कुशलता प्राप्त करने के लिए अपना समस्त जीवन यापन कर देते हैं। लाखों श्रमिकों का श्रम, उनका जीवन तथा मनुष्य मनुष्य

१—सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, १९४४

२—व्हाट इज आर्ट, पृ० २३२

३—वही

४—वही, पृ० २३४–३५, २८६, अध्याय १८

के बीच प्रेम का बलिदान कर दिया जाता है। लेकिन यह सब किस लिये ? इससे किसे आनन्द की प्राप्ति होती है ? कहा जाता है कि यह सब कला के लिए किया जाता है—यह कला जो कि बहुत महत्त्वपूर्ण है। लेकिन यह कोई भी नहीं कहता कि कला है क्या और उपयोगी कला किसे कहते हैं जिसके लिए यह सब करने की जरूरत होती है। इस कला के निर्माण के लिए लोगों से चंदा इकट्ठा किया जाता है और कितनी ही बार इसके लिए कितने लोगों को अपना एकमात्र गाय तक बेच देनी पड़ती है। और जाहिर है कि कला के आनन्द से वंचित ही रहते हैं।[1]

कला की परिभाषाएँ

सामान्य लोगों का मानना है कि कला एक ऐसी प्रक्रिया है जो सौंदर्य प्रदान करती है। ये लोग स्थापत्य, शिल्प, चित्र, संगीत तथा कविता के विविध प्रकारों को कला कहते हैं। लेकिन कला की व्याख्या आसान नहीं है। सन् १७५० में सौंदर्य शास्त्र के प्रतिष्ठाता बौमगारटेन (१७१४-६२)[2] से लेकर गत डेढ़ सौ वर्षों में बड़े बड़े विद्वानों ने कला की सैंकड़ों परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं, फिर भी कलाजन्य सौंदर्य क्या है यह आज भी एक रहस्य ही बना हुआ है। सुकरात, प्लेटो और अरिस्टोटल आदि यूनानी विचारकों के लिए सुन्दर और शिव पृथक् पृथक् नहीं थे, जब कि आधुनिक सौंदर्यवादी दोनों को पृथक स्वीकार करते हैं।[3]

कला आनन्द का साधन नहीं

तालस्ताय का कहना है कि कला की सही परिभाषा करने के लिए सबसे पहले उसे आनन्द का साधन मानना छोड़ उसे मानव जीवन की एक अवस्था स्वीकार

१—वही अध्याय २ पृ० ८१

२—निष्प्रयोजन इन्द्रियबोध के आनन्द की आलोचना करते हुए १७५० में उसने एस्थेटिका' (अपूर्ण, भाग पहला १७५०, भाग दूसरा १७५८) नामक पुस्तक लिखी तभी से सौन्दर्यशास्त्र 'एस्थेटिक्स' नाम से कहा जाने लगा। यूनानी भाषा में aisthetica का अर्थ होता है प्रत्यक्ष देखना (टू परसीव), 'एस्थेटिक अर्थात् प्रत्यक्ष बोध का विज्ञान' (साइंस ऑफ परसेप्शन)। बौमगारटेन कला के कार्यक्षेत्र को दर्शन, नैतिकता और आनन्द के कार्यक्षेत्र से भिन्न मानता है। कला और कविता को उसने बोध' (कॉगनिशन) माना है, विचार नहीं। दोनों को अबौद्धिक (नॉन इंटलक्चुअल) ज्ञान अर्थात् परसेप्शन' कहा गया है। इस प्रकार कला सैद्धांतिक अथवा नैतिक सत्य का मापन नहीं करती, इसका ज्ञान बुद्धि के पहले उद्भूत होता है। रने वेलेक, ए हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न क्रिटिसिज्म १ पृ० १४४–५

३—वही, पृ० ८२,८३,८६,८७ ६१

किया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों मे कह सकते हैं कि कला को मानव मानव के बीच पारस्परिक सम्पर्क का एक साधन माना जाय। कला को भाषा के समान बताते हुए तालस्ताय ने कहा है कि जैसे भाषा मनुष्यो के विचारों और अनुभवों का सम्प्रेषण करती हुई उनके सगठन के माध्यम का काय करता है उसी प्रकार कला भी इसी उद्देश्य की पूर्ति करती है।

'कला की क्रिया इस तथ्य पर आधारित है कि कोई मनुष्य अपनी कर्णेन्द्रिय अथवा नेत्रेन्द्रिय के द्वारा किसी अन्य व्यक्ति की भावाभिव्यक्ति को ग्रहण करता हुआ, उस भावावेश का अनुभूति करने मे समर्थ है जिसने उसे व्यक्त करनेवाले व्यक्ति को आन्दोलित किया था।" उदाहरण के लिए एक व्यक्ति हसता है और दूसरे को उससे आनन्द की प्राप्ति होती है, अथवा एक व्यक्ति रोता है और उसे सुनकर दूसरे को दुख होता है। मतलब यह कि अन्य व्यक्ति की भावनाओ की अभिव्यक्ति को ग्रहण करने तथा स्वय उन्हीं भावनाओ का अनुभव करने की सामर्थ्य पर ही कला की प्रक्रिया आधारित है।

कला का सूत्रपात कब होता है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए तालसताय ने लिखा है, 'जब कोई व्यक्ति अन्य किसी व्यक्ति या एक से अधिक व्यक्तियों को अपने साथ एक ही भावना में मग्न करने के लिए उस भावना को बाह्य सकेतों द्वारा व्यक्त करता है तो कला का सूत्रपात होता है।"

कला की प्रक्रिया क्या है? "जो भावना किसी ने पहले अनुभव की है, उसे अपने आप म जागृत करना तथा अपने आपमे जागृत करने के बाद उसे भगिमाओं, रेखाओ, रगो, ध्वनियो अथवा शब्दों में व्यजित रूपप्रकारों द्वारा व्यक्त करना जिससे कि दसरे भी भी उसी भावना का अनुभव कर सकें – यही कला की प्रक्रिया है।"

तालस्ताय लिखता है 'कला एक मानवीय क्रिया है जो इस बात में सन्निहित है कि कोई व्यक्ति चेतन मन से कतिपय बाह्य सकेता के माध्यम से, स्वानुभूत भावनाओ को दूसरो तक पहुँचाता है तथा दूसरे इन भावनाओ से प्रभावित होकर उनका अनुभव करत हैं। [१]

१—आगे चलकर एल० एबरक्रोम्बी ने इसे सप्रेषण के सिद्धात (Theory of Communication) के रूप मे स्वीकार किया ह। उसका कहना है कि सप्रेषण के बिना साहित्य हो नहीं कहा जा सकता। लेखक तथा पाठक के बीच जो सबध स्थापित होता ह, यही कला ह। लेखक अपनी भाषा के माध्यम से पाठक तक अपनी अभिव्यक्ति का सप्रेषण करता ह, और पाठक उसे ग्रहण कर लेखक के साथ तादात्म्य स्थापित करता है। प्रिंसिपल्स ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म, पृ० २४-२५

इस प्रकार हम देखते हैं कि तालस्ताय ने कला को सौंदर्य अथवा ईश्वर की कोई रहस्यात्मक भावना नहीं माना। उसके अनुसार, कला एक ऐसी क्रीड़ा भी नहीं है जिसमें मनुष्य अपनी संचित शक्ति के अतिरेक का उपयोग करता है। बाह्य संकेतों द्वारा मनुष्य के भावावेशों की अभिव्यक्ति भी कला नहीं है। आनन्ददायक वस्तुओं की उपज को भी कला नहीं माना गया। आनन्द भी कला नहीं है। किन्तु कला मनुष्य मनुष्य के बीच एकता का साधन है जो उन्हें सदृश भावनाओं के सूत्र में पिरो देता है तथा यह व्यक्ति और मानवता के कल्याण का प्रगति तथा जीवन के लिए अनिवार्य है।"[1]

कला के सिद्धान्त

तालस्ताय ने कला के तीन सिद्धान्त स्वीकार किये हैं। पहला सिद्धान्त धर्मवादी सिद्धान्त है जो कला में विषयवस्तु के ऊपर जोर देता है। इसके अनुसार, अपनी नैतिकता के कारण जिस विषय का कला द्वारा विवेचन किया जाये, वह विषय मानव के लिए महत्त्वपूर्ण, आवश्यक, उत्तम और शिक्षाप्रद होना चाहिए। इसके अनुसार, कलाकार को चाहिए कि वह युगीन समाज के लिए कोई रोचक विषय चुनकर, उसपर कलात्मक रंग चढ़ाकर उसे प्रस्तुत करे। दूसरा सिद्धान्त सौंदर्यवादी सिद्धान्त है जो 'कला के लिए कला' का समर्थक है। इसके अनुसार वही कला सच्ची कला कही जा सकती है जो सौंदर्य को प्रस्तुत करती है। कलाकार के अन्दर ऐसी निपुणता होनी चाहिए जिससे कि वह विषय का इस प्रकार चित्रण कर सके जो अधिक-से अधिक आनन्ददायी प्रभाव उत्पन्न करे। तीसरा सिद्धान्त यथार्थवादियों का है। इसके अनुसार वही कला सच्ची कही जायेगी जो वास्तविकता का यथार्थ और सही चित्रण करने में समर्थ है। कलाकार का विषय कुछ भी हो सकता है जो कि वह देखता या सुनता है। लेकिन जो कुछ वह चित्रण करता है उसमें न विषय की मुख्यता रहती है और न रूप विधान के सौंदर्य की—यथार्थ जीवन का चित्रण ही उसमें मुख्य है।[2]

कलात्मक सृजन की प्रक्रिया

तालस्ताय के मतानुसार, कलात्मक सृजन एक ऐसा मानसिक व्यापार है जो धुँधले अथवा अस्पष्ट विचारों को इतनी स्पष्टता प्रदान करता है जिससे कि वे दूसरों तक पहुँच सकें। सर्वप्रथम कोई व्यक्ति किसी ऐसी वस्तु का धुंधला-सा अनुभव करता है जो उसके लिए सर्वथा नवीन और अश्रुतपूर्व है। इस नवीन वस्तु से वह प्रभावित होता है, और इसे वह दूसरों के समक्ष प्रस्तुत करता है। वह आश्चर्य में पड़ जाता है जब उसे ज्ञात होता है कि वे लोग उससे सर्वथा अनभिज्ञ हैं। क्योंकि

१—व्हाट इज आर्ट पृ० १२०-२३
२—ऑन आर्ट पृ० ४८-४९, ५९

जो बात वह उनके समक्ष प्रस्तुत करता है, वे उसे नहीं समझ पाते। यह देखकर पहले तो उसके मन में उद्विग्नता पैदा होती है, लेकिन अपनी बात को दूसरों तक पहुँचाने के लिए वह अन्य उपायों का अवलंबन लेता है। लेकिन फिर भी लोग उसकी बात को उसी तरह हृदयंगम करने में असमर्थ रहते हैं। इसपर कलाकार को सन्देह होने लगता है कि जिस बात का उसे अस्पष्ट आभास हुआ है, वास्तव में उसका अस्तित्व है या नहीं। इस सन्देह के निराकरण के लिए वह अपनी सारी शक्ति लगा देता है जिससे कि उस तथ्य के विषय में न उसे खुद को कोई सन्देह रह जाता है और न दूसरों को। कलाकार के 'इस प्रयास को, जिसके द्वारा अपने आपको तथा दूसरों को अस्पष्ट लगनेवाली वस्तु स्पष्ट और असंदिग्ध रूप धारण करती है, सामान्यतया आध्यात्मिक क्रियाकलाप अथवा कलाकृति के सजन का स्रोत' कहा गया है। इसी से मनुष्य के मानसिक क्षितिज का विस्तार होता है तथा जिस बात को उसने पहले नहीं देखा परखा था, उसका अब वह अनुभव करने लगता है। अर्थात् जो बात पहले अजानी, अनदेखी और अनुभव के बाह्य थी, वह कलाकार की भावना की गहराई से इतनी मूर्तिमन्त हो उठती है कि सभी को ग्राह्य हो जाता है और इसी को कलाकृति माना गया है।[1]

कलाकृति के आवश्यक तत्त्व

जो कुछ कलाकार की भावना और विचार की तीव्रता द्वारा मानवता को नवीनता प्रदान करे, तालसताय ने उसी को कलाकृति कहा है। कला का महत्त्व एवं मूल्य इसी में है कि वह मानव के दृष्टिकोण को व्यापक बनाये और आध्यात्मिक सम्पदा में वृद्धि करे जो मानवता की सम्पत्ति है।

कलाकृति में तीन आवश्यक तत्त्व हैं। सर्वप्रथम, नया विचार मानवता के लिए महत्त्वपूर्ण हैं, दूसरे, इस विचार की अभिव्यक्ति इतनी स्पष्ट होनी चाहिए जिससे कि दूसरे की समझ में आ सके[2] तीसरे कलाकृति में प्रवृत्त करनेवाला प्रेरक तत्त्व कोई बाह्य प्रयोजन न होकर कलाकार की आन्तरिक आवश्यकता होनी चाहिए।

अतएव तालसताय ने किसी ऐसी रचना को कलाकृति नहीं माना जिसमें किसी नवीन तत्त्व की अभिव्यक्ति न की गयी हो। उसने ऐसी रचना को भी कलाकृति नहीं कहा जो मानव के लिए नगण्य होने से महत्त्वपूर्ण न हो, चाहे वह कितनी ही सुबोध क्यों न हो और कलाकार ने चाहे कितनी हो अन्त प्रेरणा से उसे अभि

१—वही, पृ० ५१ ५३

२—तालसताय के अनुसार, किसी भी महान दर्शन की कसौटी है कि १२ वर्ष का कोई बुद्धिशाली बालक उसे १५ मिनट के अन्दर समझ ले। वोलतायर ने सभी शैलियों को श्रेष्ठ बताया है, केवल उसी शैली को नहीं जो बोधगम्य न हो।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तालस्ताय ने कला को सौंदर्य अथवा ईश्वर की कोई रहस्यात्मक भावना नहीं माना। उसके अनुसार, कला एक ऐसी क्रीड़ा भी नहीं है जिसमें मनुष्य अपनी संचित शक्ति के अतिरेक का उपभोग करता है। बाह्य संकेतों द्वारा मनुष्य के भावावेशों की अभिव्यक्ति भी कला नहीं है। आनन्ददायक वस्तुओं की उपज को भी कला नहीं माना गया। आनन्द भी कला नहीं है। 'किन्तु कला मनुष्य मनुष्य के बीच एकता का साधन है जो उन्हें सदृश भावनाओं के सूत्र में पिरो देता है तथा यह व्यक्ति और मानवता के कल्याण का प्रगति तथा जीवन के लिए अनिवार्य है।''[1]

कला के सिद्धान्त

तालस्ताय ने कला के तीन सिद्धान्त स्वीकार किये हैं। पहला सिद्धान्त धर्मवादी सिद्धान्त है जो कला में विषयवस्तु के ऊपर जोर देता है। इसके अनुसार, अपनी नैतिकता के कारण जिस विषय का कला द्वारा विवेचन किया जाये, वह विषय मानव के लिए महत्त्वपूर्ण, आवश्यक, उत्तम और शिक्षाप्रद होना चाहिए। इसके अनुसार, कलाकार को चाहिए कि वह युगीन समाज के लिए कोई रोचक विषय चुनकर, उसपर कलात्मक रंग चढ़ाकर उसे प्रस्तुत करे। दूसरा सिद्धान्त सौन्दर्यवादी सिद्धान्त है जो 'कला के लिए कला' का समर्थक है। इसके अनुसार वही कला सच्ची कला कहा जा सकती है जो सौंदर्य को प्रस्तुत करती है। कलाकार के अन्दर ऐसी निपुणता होनी चाहिए जिससे कि वह विषय का इस प्रकार चित्रण कर सके जो अधिक से अधिक आनन्ददायी प्रभाव उत्पन्न करे। तीसरा सिद्धान्त यथार्थवादियों का है। इसके अनुसार वही कला सच्ची कही जायेगी जो वास्तविकता का यथार्थ और सही चित्रण करने में समर्थ है। कलाकार का विषय कुछ भी हो सकता है जो कि वह देखता या सुनता है। लेकिन जो कुछ वह चित्रण करता है उसमें न विषय की मुख्यता रहती है और न रूप विधान के सौंदर्य की–यथार्थ जीवन का चित्रण ही उसमें मुख्य है।[2]

कलात्मक सृजन की प्रक्रिया

तालस्ताय के मतानुसार, कलात्मक सृजन एक ऐसा मानसिक व्यापार है जो धुँधले अथवा अस्पष्ट विचारों को इतनी स्पष्टता प्रदान करता है जिससे कि वे दूसरों तक पहुँच सकें। सर्वप्रथम कोई व्यक्ति किसी ऐसी वस्तु का धुंधला-सा अनुभव करता है जो उसके लिए सर्वथा नवीन और अभूतपूर्व है। इस नवीन वस्तु से वह प्रभावित होता है, और इसे वह दूसरों के समक्ष प्रस्तुत करता है। वह आश्चर्य में पड़ जाता है जब उसे ज्ञात होता है कि वे लोग उससे सर्वथा अनभिज्ञ हैं। क्योंकि

१—ह्वाट इज आर्ट पृ० १२० २३

२—ऑन आर्ट पृ० ४८-४९, ५९

जो बात वह उनके समक्ष प्रस्तुत करता है, वे उसे नहीं समझ पाते। यह देखकर पहले तो उसके मन मे उद्विग्नता पैदा होती है, लेकिन अपनी बात को दूसरों तक पहुंचाने के लिए वह अन्य उपायों का अवलबन लेता है। लेकिन फिर भी लोग उसकी बात को उसी तरह हृदयगम करने में असमर्थ रहते हैं। इसपर कलाकार को सन्देह होने लगता है कि जिस बात का उसे अस्पष्ट आभास हुआ है, वास्तव में उसका अस्तित्व है या नहीं। इस सन्देह के निराकरण के लिए वह अपनी सारी शक्ति लगा देता है जिससे कि उस तथ्य के विषय में न उसे खुद को कोई सन्देह रह जाता है और न दूसरों को। कलाकार के 'इस प्रयास को, जिसके द्वारा अपने आपको तथा दूसरों को अस्पष्ट लगनेवाली वस्तु स्पष्ट और असदिग्ध रूप धारण करती है, सामान्यतया आध्यात्मिक क्रियाकलाप अथवा कलाकृति के सृजन का स्रोत' कहा गया है। इसी से मनुष्य के मानसिक क्षितिज का विस्तार होता है तथा जिस बात को उसने पहले नहीं देखा परखा था, उसका अब वह अनुभव करने लगता है। अर्थात् जो बात पहले अजानी, अनदेखी और अनुभव के बाह्य थी, वह कलाकार की भावना की गहराई से इतनी मूर्तिमन्त हो उठती है कि सभी को ग्राह्य हो जाती है और इसी को कलाकृति माना गया है।[1]

कलाकृति के आवश्यक तत्त्व

जो कुछ कलाकार की भावना और विचार की तीव्रता द्वारा मानवता को नवीनता प्रदान करे, तालसताय ने उसी को कलाकृति कहा है। कला का महत्त्व एव मूल्य इसी मे है कि वह मानव के दृष्टिकोण को व्यापक बनाये और आध्यात्मिक सम्पदा में वृद्धि करे जो मानवता की सम्पत्ति है।

कलाकृति मे तीन आवश्यक तत्त्व हैं। सर्वप्रथम, नया विचार मानवता के लिए महत्त्वपूर्ण हैं, दूसरे, इस विचार की अभिव्यक्ति इतनी स्पष्ट होनी चाहिए जिससे कि दूसरे की समझ मे आ सके,[2] तीसरे कलाकृति में प्रवृत्त करनेवाला प्रेरक तत्त्व कोई बाह्य प्रयोजन न होकर कलाकार की आन्तरिक आवश्यकता होनी चाहिए।

अतएव तालसताय ने किसी ऐसी रचना को कलाकृति नहीं माना जिसमें किसी नवीन तत्त्व की अभिव्यक्ति न की गयी हो। उसने ऐसी रचना को भी कलाकृति नहीं कहा जो मानव के लिए नगण्य होने से महत्त्वपूर्ण न हो, चाहे वह कितनी ही सुबोध क्यो न हो और कलाकार ने चाहे कितनी ही मन्द प्रेरणा से उस अभि-

---

१—वही पृ० ५१ ५३

२—तालसताय के अनुसार, किसी भी महान दर्शन की कसौटी है कि १२ वर्ष का कोई बुद्धिशाली बालक उसे १५ मिनट के अन्दर समझ ले। वोल्तेयर ने उन्हीं शैलियों को श्रेष्ठ बताया है, केवल उसी शैली को नहीं जो बोधगम्य न हो।

व्यक्त किया हो। उस रचना को भी तालस्ताय ने कलाकृति नहीं स्वीकार किया जो दुर्बोध हो, भले ही रचनाकार ने उसे निष्ठापूर्वक रचनाबद्ध किया हो। इसी प्रकार वह रचना भी कलाकृति नहीं मानी गयी है जो किसी आन्तरिक प्रेरणा के स्थान पर किसी बाह्य प्रयोजनवश लिखी गयी है, भले ही उसकी विषयवस्तु कितनी ही महत्वपूर्ण हो और उसकी अभिव्यक्ति कितनी ही बोधगम्य क्यों न हो।[1]

सत्य, शिव और सुंदर

कलाकृति में नवीनता के साथ तालस्ताय ने विषयवस्तु रूपविधान और कलाकार की ईमानदारी पर जोर दिया है। उसके अनुसार, विषयवस्तु में एम तथ्य का चित्रण होना चाहिए जो अब तक अज्ञात हो और जिसकी हमें आवश्यकता हो। विषयवस्तु का चित्रण इतना सुबोध होना चाहिए कि वह सामान्यतया बोधगम्य हो सके। तीसरे, वह कृति रचनाकार के किसी आन्तरिक सन्देह के समाधान की आवश्यकता स्वरूप प्रसूत हुई हो। इन तीनों शर्तों में से किसी एक का भी अभाव होने से किसी रचना को कलाकृति नहीं कहा जा सकता।

किसी भी कलाकृति में सत्य, शिव और सुंदर इन गुणों का होना आवश्यक है। तालस्ताय ने लिखा है "पूर्ण कलाकृति वही होगी जिसकी विषयवस्तु सब व्यक्तियों के लिए महत्त्वपूर्ण तथा सार्थक हो, और इसलिए उसमें नैतिकता होगी। कलाकृति की अभिव्यक्ति सबके लिए अत्यन्त स्पष्ट और बोधगम्य होगी इसलिए उसे सुंदर कहा जायगा। तथा कलाकार का अपनी रचना के साथ जो सम्बन्ध होगा, वह निष्ठापूर्ण और हार्दिक होगा, इसलिए उसे सत्य कहा जायगा।"[2]

महत्त्वपूर्ण, सत् और नैतिक क्या है? इसके उत्तर में तालस्ताय ने कहा है "जो मानवों को हिंसा से नहीं वल्कि प्रेमपूर्वक संगठित करता है, जो मानवों के संगठन के आनन्द का अभिव्यक्त करने में सहयोग देता है, वही 'महत्त्वपूर्ण' 'सत्' और नैतिक है। 'असत्' और 'अनैतिक' वह है जो मानव मानव में फूट डालता है और फूट से उत्पन्न दुख की ओर ले जाता है। 'महत्त्वपूर्ण' वह है जो मानवों को उस बात के समझने की बुद्धि देता है और उससे प्रेम करने के लिए प्रोत्साहित करता है जिस बात को वे पहले न तो समझते थे और न उससे प्रेम ही करते थे।"[3]

सौन्दर्यवादी सिद्धान्त

कहा जा चुका है कि यूनानी समीक्षक नैतिकता पर अधिक जोर देते थे, इसलिए उनकी रचनाओं में शिव और सुंदर में भेद नहीं किया गया। सुकरात ने स्पष्ट रूप

१—वही पृ० ५३ ५४
२—वही, पृ० ५४ ५६
३—आन आर्ट, पृ० ५५ फुटनोट

से सौंदर्य को नैतिकता की अपेक्षा निम्न कहा है प्लेटो ने दोनों के स्थान पर एक आध्यात्मिक सौंदर्य की कल्पना करके सन्तोष कर लिया है, और अरिस्टोटल ने जन-सामान्य पर कला का नैतिक प्रभाव स्वीकार किया है।[1] वस्तुतः जैसे कहा गया है, गत डेढ़ सौ वर्षों के अन्दर ही यूरोप के धनिक ईसाइयों में, कला के सौंदर्यवादी सिद्धान्त का उत्थान हुआ, और यह सिद्धान्त जर्मन, इतालवी डच, फ्रांसीसी और अंग्रेज जाति में फैल गया, आगे चलकर बॉमगार्टेन के हाथों इसे वैज्ञानिक रूप प्राप्त हुआ।[2]

यह सिद्धान्त इसी बात पर आधारित था कि ललित कला का निर्माण जनता की गुलामी पर ही अवलम्बित है और इस प्रकार की कला तभी तक कायम रह सकती है जब तक कि गुलामी मौजूद है, क्योंकि श्रमजीवियों के कठोर श्रम के कारण ही लेखक, संगीतज्ञ और अभिनेता आदि कलाकार ललित कला की पूर्णता को प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए तालस्ताय ने लिखा है "पूंजी के गुलामों को मुक्त कर दो और इस प्रकार की ललित कला का निर्माण ही असम्भव हो जायगा।"[3]

उच्चवर्गीय कला

इसी को तालस्ताय ने उच्चवर्गीय कला का नाम दिया है। उनका कहना है कि उच्चवर्गीय कला कलाकार की अन्तः प्रेरणा से उद्‌भूत न होकर, मुख्यतया इसलिए उद्‌भूत होती है कि उच्च-वर्ग के लोगों को आमोद प्रमोद की आवश्यकता है और उसके लिए वे काफी मात्रा में धन का व्यय करते हैं। वे इस तरह की कला की अपेक्षा करते हैं जिससे उन्हें आनन्द की प्राप्ति हो, और उनकी इस माँग को कलाकार पूरी करने का प्रयत्न करते हैं। लेकिन होता है, इससे उलटा क्योंकि आलस्य और ऐश आराम में जिन्दगी बिताने के कारण, धनिक कला से विमुख ही रह जाते हैं।[4]

१—वही, अध्याय ७ पृ० १३५

२—वही, प० १३९

३—वही अध्याय ८, प० १४६। प्लेटो ने ललित कला को अपेक्षा उपयोगी कला को सत्य के अधिक निकट माना है। यूनान में व्याकरण, वक्तृत्वकला, तर्कशास्त्र, गणित ज्यामिति संगीत और ज्योतिष की गणना सात उदार कलाओं में की जाती थी। देखिये इसी पुस्तक का प्लेटो नामक प्रकरण, पृ० १८। मध्ययुग में फ्रांस में ललितकला (the beautiful artsles Beaux arts ले बो आर्त) के रूप में साहित्य तथा अन्य कलाओं का समावेश किया गया और इन कलाओं के माध्यम से मानव जीवन की अधिकाधिक अभिव्यक्ति स्वीकार की गई।

४—वही, अध्याय ११ पृ० १८१

इस प्रकार की सौंदयवादी कला के अनेक दुष्परिणामों की चर्चा तालसताय ने की है।[1] उसने कहा है कि सौंदयवादी सिद्धान्त का अनुकरण करनेवाले उच्चवर्गीय लोग सौंदय और शिवत्व को परस्पर विरोधी बताते हुए सौंदय को आदर्श मानकर उसे नैतिकता से पृथक कर देते हैं। ऐसे लोगों का मानना है कि नैतिकता को कला के साथ संयुक्त करना, यह एक पुरातन विचार है, तथा विकास को प्राप्त बुद्धिमान् लोगों के लिए इसका आवश्यकता नहीं।[2] इस प्रकार की कला को तालसताय ने मानव जाति के लिए अत्यन्त हानिप्रद माना है क्योंकि इस कला में कामुकता का दृष्टिकोण ही प्रधान रहता है।[3] इस प्रकार की ह्रासोन्मुखी कला की प्रवृत्ति के सम्बन्ध में कहा गया है, 'हमारे युग और हमारे क्षेत्र म कला वेश्या बन गई है। -वास्तविक कलाकृति कभी कभी किसी कलाकार के हृदय म उत्प न होती है। यह उसके उस जीवन का फल है जिसने उसे जिया है। इस कला का इसी तरह आविर्भाव होता है जसे कि शिशु अपनी मा के गभ मे अवतरित होता है। लेकिन कृत्रिम कला कारीगरों और दस्तकारों द्वारा सदा निर्मित होती रहती है, बशर्ते कि उस कला के ग्राहक मिल सकें।'[4] वास्तविक कला को तालसताय ने पतिव्रता पत्नी की उपमा दी है जिसे आभूषणों की आवश्यकता नहीं, जब कि कृत्रिम कला एक वेश्या की भाँति सदा आभूषणों से सजी धजी रहती है।[5]

कला की दुर्बोधता

कहा जाता है कि कला सम्बन्धी श्रेष्ठ रचनाएं सव साधारण की बुद्धि के परे होती हैं जो कुछ गिने चुने लोगों की ही समझ म आ सकती हैं। कला की दुर्बोधता के समर्थकों का इस सम्बन्ध में कहना है कि यदि लोग कला को हृदयगम करने में असमथ रहते हैं तो समझना चाहिए कि उनका बौद्धिक विकास अभी नहीं हुआ है।[6] इस प्रकार के लोगों को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए जिससे कलाकृति उनके बोधगम्य हो सके। इस सम्बन्ध में प्रश्न होता है कि शिक्षा का ऐसा कौन सा माध्यम है जिसके द्वारा जनसाधारण को कला का प्रतिपादन किया जा सके। कलावादियों का कहना है कि कलासम्बन्धी श्रेष्ठ कृतियों को सुगमतापूवक समझने के लिए उनका बार बार मनन करना चाहिए लकिन तालसताय क शब्दों मे, यह तो कला का

१—अध्याय १७
२—वही, पृ० २५७
३—वही पृ० २५६-६०
४—वही पृ० २६६
५—वही
६—वही, पृ० १४६

प्रतिपादन करने की बात न होकर उसका अभ्यास करने की बात" हुई। तथा अभ्यास से तो किसी भी वस्तु को, चाहे वह बुरी से-बुरी क्यों न हो, सिद्ध किया जा सकता है।[१] "यह कहना कि कोई कलाकृति उत्तम है लेकिन अधिकांश लोगों को वह बोध-गम्य नहीं, ऐसी ही बात हुई कि भोजन अत्यंत स्वादिष्ट है लेकिन अधिकांश लोग उसे खा नहीं सकते।" तालस्ताय का मानना है कि जब तक लोगों के लिये समुचित साहित्य का निर्माण नहीं किया जाता तब तक उन्हें पढ़ना लिखना सिखाने से क्या लाभ ?

कला की प्रभविष्णुता

प्राय उसी रचना को कलात्मक कहा जाता है जो काव्यात्मक हो, यथार्थवादी हो विस्मयकारक हो अथवा रोचक हो। लेकिन तालस्ताय की मान्यता है कि इनमें से कोई भी लक्षण ऐसा नहीं जिससे कला की उत्कृष्टता सिद्ध की जा सके, इतना ही नहीं, कला का सादृश्य भी इन लक्षणों में कहीं देखने में नहीं आता।[२] तालस्ताय ने लिखा है "कोई कलाकृति कितनी ही काव्यात्मक, यथार्थवादी, विस्मयकारक अथवा रोचक क्यों न हो, जब तक वह आनन्द जागृत नहीं करती, तथा कलाकार और अन्य व्यक्तियों के साथ आध्यात्मिक एकता स्थापित नहीं कर लेती, तब तक वह कलाकृति कहे जाने के योग्य नहीं।"[३]

कला जितना ही अधिक प्रभविष्णु होगी, उतनी ही श्रेष्ठ मानी जायगी। इसके लिए कला में सबसे पहले कवि की अनुभूति की वैयक्तिकता, अनुभूति की स्पष्टता जिससे विचार दूसरों तक पहुँच सकें, तथा कलाकार की ईमानदारी जिससे कलाकार दूसरों तक पहुँचाये जानेवाले भावावेश का कम या अधिक मात्रा में अनुभव करता है, की आवश्यकता है। इन्हीं तीन बातों से कलाकृति की परीक्षा की जाती है। वयक्तिक लोलुपता और आत्मश्लाघा से प्रेरित कलाकारों द्वारा निर्मित उच्चवर्गीय कला मे उक्त गुणों का अभाव ही रहता है[४]

पाश्चात्य समीक्षा को नया आलोक

तालस्ताय ने कला को आमोद-प्रमोद का साधन न मान यह बताने की कोशिश की कि कला के द्वारा हम मानव जीवन को उपयोगी बना सकते हैं। 'मेरी मुक्ति की कहानी' में उसने लिखा है, "मैं नहीं जानता था कि मैं क्या लिख रहा हूँ और क्या शिक्षा दे रहा हूँ। मेरी एक ही अभिलाषा थी कि अधिक से

१—वही, पृ० १७६
२—वहा, प० १८६
३—वही अध्याय १५, पृ० २२७
४—वही, पृ० २२६-३०

अधिक धन और यश का सम्पादन किया जाये। किसी पागल की भांति अपने सिवाय मैं अन्य सबको पागल समझता था।" और इस 'पागलपन' को दूर करने के लिए ताल्सताय को पूरे छह वर्ष लग गये। अन्त में वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि जिन बातों को समझने में तुम असमर्थ हो, उन्हें कहते और लिखते न फिरो, तथा जिस विषय पर तुम लिखने जा रहे हो, उस विषय से तुम्हारा उत्कट प्रेम होना आवश्यक है। तथा इसलिए न लिखो कि आजीविका कमाना है, बल्कि लिखने से पहले कोई घटना इस कदर तुम्हारे दिमाग में चक्कर काट रही हो कि उसे दूसरों को बिना सुनाये चैन न पड़ती हो। निश्चय ही ताल्सताय का कला सम्बन्धी सिद्धान्त अत्यन्त व्यापक है, जिसने पाश्चात्य समीक्षा को एक नया आलोक प्रदान किया।

जॉन रस्किन (१८१६–१६००)

रस्किन ने कला को सभ्यता की रक्षा के लिए आवश्यक बताया है। कला को उसने "राष्ट्रीय मस्तिष्क का व्याख्याकार" "राष्ट्रीय चरित्र का दर्पण और सूची पत्र" तथा राष्ट्र का अत्यन्त उल्लेखनीय आत्मचरित" कहा है। उसकी मान्यता है कि औद्योगीकरण से उतनी हानि मानव की नहीं हुई जितनी कि कला और नव सृजन की हुई है। इससे श्रम का ही विभाजन नहीं हुआ, वरन् मानव खण्ड-खण्ड में विभाजित हो गया है।[1]

तालस्ताय की भाँति रस्किन ने भी कला में शिवत्व का समर्थन किया है। उसने लिखा है, "वह चित्र जिसमें अधिक उदात्त और बहुसंख्यक विचार, कितने ही भद्दे रूप में क्यों न व्यक्त किये गये हों उस चित्र की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण और श्रेष्ठ है जिसमें कम उदात्त और न्यूनसंख्यक विचार सुन्दर रूप में व्यक्त किये गये हैं। विचारों की अभिव्यक्ति का प्रकार चाहे कितना ही प्रभावशाली हो, कितना ही फैला हुआ हो और कितना ही सुन्दर हो, विचार के एक कण के सामने भी वह नहीं ठहर सकता।"[2] आगे चलकर उसने लिखा है, "इसलिए मैं यह नहीं कहता कि वही कला सर्वश्रेष्ठ है जो सर्वाधिक आह्लाद प्रदान करती है क्योंकि कुछ ऐसी भी कलाएँ हैं जिनका लक्ष्य आनन्द प्रदान करना नहीं शिक्षा प्रदान करना है। मैं यह भी नहीं कहता कि वही कला सर्वश्रेष्ठ है जो हमे सर्वाधिक शिक्षा प्रदान करती है क्योंकि कुछ कलाएँ ऐसी हैं जिनका लक्ष्य आनन्द प्रदान करना है शिक्षा देना नहीं। मैं ऐसा भी नहीं कह सकता कि वही कला सर्वश्रेष्ठ है जिसमें सर्वाधिक अनुकरण की प्रवृत्ति है क्योंकि बहुत सी कलाएँ ऐसी हैं जिनका लक्ष्य अनुकरण करना नहीं, सृजन करना है। मैं कहना चाहता हूँ कि वही कला सर्वश्रेष्ठ है जो दर्शक (श्रोता या पाठक) के मन में, चाहे जिस प्रक्रिया से सम्भव हो, महान् भावनाओं की उद्भावना करती है। मेरी दृष्टि में महान् भावना वह है जो उच्चतर मानसिक धरातल पर गृहीत होती है और मन की जिस वृत्ति द्वारा गृहीत होती है उसे भी उन्नत करती है। यदि महान् कला की यह परिभाषा स्वीकार कर ली जाय तो महान् कलाकार की भी यही परिभाषा मान्य होगी। महान् कलाकार वही है जिसने अपनी कृतियों में अधिक से अधिक महान् भावनाओं की उद्भावना की हो।"[3]

१—रेने वले, ए हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न क्रिटिसिज्म, ३, पृ १४८

२—मॉडर्न पेण्टर्स, खण्ड १, भाग १, अध्याय २, विलियम के० विमसेट के 'लिटरेरी क्रिटिसिज्म' पृ० ४८६—८७ पर से।

३—मॉडर्न पेण्टर्स, खण्ड १, भाग १, अध्याय २, पृ० ६, डब्ल्यू० बी० वर्सफोल्ड, साहित्य का मूल्यांकन (जजमेंट इन लिटरेचर का हिन्दी अनुवाद), पृ० ६७-६८

रस्किन ने समस्त कला का मूल ईश्वरीय माना है। "ईश्वरीय महिमा का यह साक्ष्य है।" "सौंदर्य हृदय की शुद्ध, समुचित और अनावृत दशा पर अवलंबित है" तथा इसकी पहुँच उन्हीं सौभाग्यशालियों तक है "जिनका हृदय शुद्ध है क्योंकि वे ईश्वर का दर्शन करेंगे।" समस्त ललित कलाओं को यहाँ "लोगों के लिए उपदेशात्मक" प्रतिपादित किया है और "यही उनका मुख्य उद्देश्य" है। कलाकार का काम श्रेष्ठता की शिक्षा देना है। यही शिक्षा हमें सामाजिक संकट से मुक्त कर सकती है। मॉडर्न पेंटर्स (भाग ३) में उसने कहा है, "जिसे हम सही तौर पर कला कहते हैं, वह पुनः सृजन नहीं है। अवकाश के क्षणों में इसकी शिक्षा ग्रहण नहीं की जा सकती, और न उस समय इसका अनुसरण किया जा सकता है जब कि हमारे पास कोई बेहतरीन काम करने को न हो। बैठकखाने की मेजों के लिए यह कोई हाथ की कारीगरी का काम नहीं है और न इससे महिलाओं के निजी कक्ष की क्लान्ति से मुक्ति ही प्राप्त होती है। इसे समझ बूझ कर गंभीरता से लेना चाहिए अथवा बिल्कुल छोड़ देना चाहिए।"[1]

कलाओं को यहाँ "अपने आपमें और अपने आपके लिए वांछनीय एवं प्रशंसनीय" कहा गया है। "जीवन पर अवलम्बित होने के दोष" से वे मुक्त हैं, अर्थात् "घर जमीन, तथा भोजन और वस्त्र" जो जीवन के अंश माने जाते हैं, उन पर अवलंबित नहीं हैं। इस निम्न अर्थ में कला की उपयोगिता को निरुपयोगी माना गया है। उच्च अर्थ में ही सर्वोपरि रूप से वह उपयोगी है जब कि वह मनुष्य को अपना वास्तविक उद्देश्य पूर्ण करने के योग्य बनाती है, जो उद्देश्य "ईश्वरीय महिमा का साक्ष्य है तथा अपनी तर्कसंगत आज्ञाकारिता और उससे उपलब्ध होनेवाले आनन्द द्वारा मनुष्य उस महिमा को वर्द्धिगत करता है।"[2]

रस्किन के अनुसार, सौंदर्य की अनुभूति इंद्रियों या बुद्धि पर निर्भर न होकर हृदय पर निर्भर करती है तथा इसका कारण है प्रकृतिजन्य पदार्थों में ईश्वर की कार्यकुशलता की स्वीकृति से उत्पन्न श्रद्धा, कृतज्ञता और परिपूर्ण आनन्द की अनुभूति। यही ईश्वरीय शक्ति कलाकार को अनुप्राणित करती है जिससे कि वह अपने मानसपटल पर पड़े हुए प्रभावों द्वारा किसी सुन्दर चित्र या काव्य का सर्जन करने के लिए प्रेरित होता है।[3] पूर्ण कला वास्तविकता के सौन्दर्य को उत्पन्न करती है और इससे नैतिक दृष्टि से मनुष्य समुन्नत होता है।

इसी सिद्धान्त से प्रेरित होकर रस्किन यह मानने के लिए बाध्य हुआ कि उच्चाशय वाला नैतिक व्यक्ति ही उच्च कोटि की कला का निर्माण करने में समर्थ

१—स्काट-जेम्स, द मेकिंग आफ लिटरेचर, पृ० २८८५

२—वही, पृ० २८५

३—वही

हो सकता है, कोई गर्वोन्मत्त स्वार्थी व्यक्ति ऐसा नहीं कर सकता, और साथ ही मात्र कुशलता या विशेष प्रतिभा के बल पर कोई महान् कलाकार नहीं बन सकता। उसी के शब्दों में, 'उसका उद्देश्य यही सिद्ध करना है कि कला की सर्वोच्च शक्ति किसी अधार्मिक व्यक्ति द्वारा उपलब्ध नहीं की जा सकती, तथा ईश्वरीय वस्तुओं की व्याख्या करनेवाली कला की उपेक्षा ही ईसाई समाज में दुष्परिणामों का कारण हुई है।"[१] रस्किन का विचार था कि उन्नीसवीं शताब्दी के इंग्लैण्ड को कला का उपदेश देना व्यर्थ है, क्योंकि जहाँ तक मध्य वर्ग का प्रश्न था वह निकृष्ट भौतिकता में डूबा हुआ था, जब कि विशाल जनसमुदाय दुख-दारिद्र्य की चक्की में पिस रहा था। ऐसी हालत में कला का पुनरुत्थान करने के लिये समस्त सामाजिक व्यवस्था के शुद्धीकरण—'सम्पूर्ण हृदयपरिवर्तन' की आवश्यकता थी। अतएव कलाप्रेमी की हैसियत से रस्किन इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि समाजसेवा के क्षेत्र में रहकर ही वह सर्वोत्तम कार्य कर सकता है।[२]

कला और नैतिकता संबंधी रस्किन के विचारों की तुलना प्लेटो से की जा सकती है। दोनों ने ही नीतिवाद का समर्थन किया है, फिर भी दोनों दो विभिन्न निष्कर्षों पर पहुचते हैं। प्लेटो के समय कलाओं को उपदेशप्रद और आनन्ददायक दोनों ही स्वीकार किया जाता था। प्लेटो ने इस मान्यता का विरोध किया। कलाओं का उसने नैतिकता से विरोध प्रदर्शित कर उन्हें अपने राज्य से बहिष्कृत कर दिया। किन्तु रस्किन ने नैतिकता के साथ उनका सम्बन्ध स्थापित कर उनका स्वागत किया। एक ने उनकी इसलिए गहणा की कि वे इन्द्रियों में भ्रांति की जनक हैं और दूसरे ने उनकी प्रशंसा की क्योंकि वे मनुष्य की कल्पना से ईश्वरीय बुद्धि से उत्पन्न हुई हैं

कहने की आवश्यकता नहीं कि रस्किन का कला सम्बन्धी यह दृष्टिकोण तत्कालीन समीक्षकों को अतिवादी और सकीर्ण लगा। उनके अनुसार, यहाँ नैतिक उपदेश को कला की कसौटी मान कर कला के मूल्यांकन को अत्यन्त सरल बना दिया गया है। रस्किन के उक्त कथन के विपरीत आस्कर वाइल्ड ने लिखा "सुन्दर वस्तुएँ केवल वही हैं जिनका हमसे कोई सम्बन्ध नहीं। जब तक कोई वस्तु हमारे लिए उपयोगी या आवश्यक है यह हमें सुख या दुख के रूप में प्रभावित करती है, अथवा हमारी सहानुभूति को दृढतापूर्वक जगाती है, अथवा जिस वातावरण में हम रहते हैं, उसका कोई महत्वपूर्ण अंग है तो इसे कला के क्षेत्र से बाह्य समझना चाहिए।"[४]

१—मॉडर्न पेण्टर्स, खण्ड ३, भाग १ अध्याय १५, स्कॉट-जेम्स, वही, पृ० २८७

२—हडसन अंग्रेजी साहित्य का इतिहास (हिन्दी अनुवाद) पृ० २९०

३—स्कॉट जेम्स वही, पृ० २८४

४—कम्प्लीट वर्क्स ऑफ ऑस्कर वाइल्ड, इण्टेशन्स, द डिके ऑफ लाइंग, पृ० १६ सम्पादक, रॉबर्ट रास, बास्टन।

रस्किन ने प्रकृतवाद और प्रतीकवाद दोनों को मिला दिया है। उसके अनुसार, प्रकृति ईश्वर का कार्य है तथा कलाकार का कार्य है इस संदेश को प्रसारित करना। कलाकार को एकाग्र मन से प्रकृति के समीप पहुंचना चाहिए जिससे कि वह उसके अंतरतम में प्रवेश करके श्रेष्ठतम रूप से उसके अर्थ को हृदयंगम कर सके। मनुष्य और प्रकृति दोनों को ही उसने ईश्वर की सृष्टि माना है। प्रकृति उससे प्रतीकवादी भाषा में सम्भाषण करती है तथा कलाकार इसकी व्याख्या करता है। चित्रकारी और कविता में अंतर न मानते हुए चित्रकार और कवि दोनों को ही उसने असीम का व्याख्याता कहा है।[1]

निष्कर्ष

यथार्थवादी विचारधारा स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति का ही एक भिन्न रूप था। जैसे-जैसे वैज्ञानिक चिन्तन बढ़ा तथा भौतिकवादी प्रवृत्ति में उन्नति हुई, भावावेशपूर्ण कल्पना का स्थान सामाजिक सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों को महत्त्व देनेवाली यथार्थवादी प्रवृत्ति ने ग्रहण किया। उपन्यास, कहानी और नाटक साहित्य में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से दृष्टिगोचर हुई। बेलिंस्की की विचार प्रणाली से रूसी समीक्षाशास्त्र का आरंभ हुआ। शुद्ध कला का अस्तित्व स्वीकार न कर कला को यहाँ वास्तविकता पर आधारित बनाया गया। चेर्निशेव्स्की ने भाववादी सौंदर्य-सिद्धांतों के स्थान पर यथार्थवादी सौंदर्य सिद्धांत को प्रतिष्ठित किया। जो जीवन को अभिव्यक्त करे, उसी को उसने सुंदर माना। मार्क्सवाद में यथार्थवादी प्रवृत्ति का सुव्यवस्थित अध्ययन प्रस्तुत किया गया। समाजवादी यथार्थवाद को प्रमुख मानकर यहाँ साहित्य और जीवन का घनिष्ठ संबंध स्वीकार किया गया। आर्नोल्ड ने साहित्य को जीवन की आलोचना मानकर संस्कृति और सभ्यता को आलोचना के लिये आवश्यक बनाया। तालस्ताय ने समग्र रूप से कला का निरूपण किया। कला को आनन्द का साधन न मान उसने कला को मानव मानव के बीच संपर्क का साधन कहा। उसने ललित कला को उच्चवर्गीय कला नाम से उल्लिखित कर सौन्दर्यवादी कला के दुष्परिणामों पर प्रकाश डाला। रस्किन ने कला को सभ्यता की रक्षा के लिये आवश्यक बताया। घोषणा की गई कि कोई उच्चाशय वाला व्यक्ति ही उच्च कोटि की कला का निर्माण कर सकता है। इस प्रकार यथार्थवादी विचारधारा का हर दृष्टिकोण से अध्ययन किया गया। निश्चय ही यह विचारधारा ने पाश्चात्य समीक्षा का भाग बढ़ाने में समर्थ हो सकी।

१—रैने वेले वही पृ० १३९-१४०

(ङ) कलावादी सिद्धांत

[उन्नीसवीं - बीसवीं शताब्दी]

जेम्स ह्विस्लर (१८३४–१९०३)

एडगर एलेन पो (१८०९–१८४९)

वाल्टर पेटर (१८३९–१८९४)

ऑस्कर वाइल्ड (१८५६–१९००)

ए सी ब्रेडले (१८५१–१९३५)

बेनेदेतो क्रोचे (१८६६–१९५२)

कलावादी सिद्धान्त

सन् १८६६ के आसपास फ्रांस में एक ऐसी विचारधारा का आविर्भाव हुआ जिसका सम्बन्ध 'कला के लिए कला'[1] के सिद्धान्त से माना जाता है। पुनरुत्थान-युगीन क्लासिकल सिद्धान्त के अनुसार, शिक्षा देने की अपेक्षा आनन्द प्रदान करना अधिक महत्वपूर्ण माना जाता था। फलस्वरूप १८ वीं शताब्दी में, क्लासिकल उपदेशात्मक काव्य सिद्धान्त के स्थान पर सौंदर्य सिद्धान्त का आविर्भाव हुआ। क्रमश सौंदर्य का कोई बाह्य अस्तित्व नहीं', काण्ट की इस मान्यता को बल मिला जिससे 'कला, कला के लिए सिद्धान्त को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।[2]

जेम्स ह्विस्लर (१८२४ १९०३)

कलावादी सिद्धान्त के पुरस्कर्ताओं में जेम्स एबाट मैकनील ह्विस्लर का नाम सबसे प्रमुख है। वह एक अमरीकी चित्रकार था जिसने अपनी माँ का चित्र बनाया था। इस चित्र का नाम था भूरे और काले की व्यवस्था' (अरेन्जमेण्ट इन ग्रे एण्ड ब्लैक)। अपने अन्य चित्रों के भी उसने इसी प्रकार के गूढ और व्यजनात्मक नाम रक्खे थे। उसका कहना था कि प्रकृति को हम मुश्किल से ही सही कह सकते हैं, वस्तुत सही हम होते हैं। इसलिये प्रकृति को जैसे के तैसे रूप में हम नही देख सकते। सन १८७० के आसपास इंग्लैंड में 'कला के लिए कला' के सिद्धान्त को लेकर एक महत्वपूर्ण वाद विवाद चला जब कि ह्विस्लर ने कला में नैतिक पक्ष के समर्थक रस्किन पर मुकदमा चलाया। इग्लैण्ड की चित्रों की प्रदर्शिनी में ह्विस्लर के 'ओल्ड बैटरसी ब्रिज' नामक एक चित्र का प्रदर्शन किया गया जिसमें वातावरण पर ज़ोर दिया गया था। इस चित्र की कीमत २०० गिनी थी। रस्किन ने चित्र की कड़ी आलोचना की। मामला अदालत में पहुचा। एक जूरी ने चित्र की निन्दा की, दो ने उसकी प्रशसा। जज ने ह्विस्लर से चित्र के सबध में प्रश्न किया। उत्तर में उसने कहा कि वह उसे बिलकुल भी नहीं समझा सकता। ह्विस्लर हार

१—'द आर्ट फॉर आर्ट'-यह फ्रेंच के ला' र पुर ला' र (L art pour' *l* art) का ही अनुवाद है।

२—फ्रेंच लेखक बेंजामिन कॉन्स्टट ने अपनी पत्रिका में, १८०५ में एक लेख प्रकाशित किया था जिसमे बताया गया है कि किस प्रकार बाइमार-येना वाद-विवाद में से काण्ट के सिद्धान्त से कलावादी सिद्धान्त का विकास हुआ। वह

गया। इस अवसर पर उसने कहा, "जब आलोचना हानिकारक होता है, केवल तभी मैं उसका विरोध नहीं करता, बल्कि जब वह अक्षम होती है तब भी मैं उसका विरोध करता हूँ। मेरे मत से केवल कलाकार ही एक समर्थ आलोचक हो सकता है।'[१] मतलब यह कि व्हिस्लर ने रस्किन का नैतिक मान्यता का तिरस्कार करके कला को स्वतन्त्र और स्वतः पूर्ण घोषित किया।

'व्हिस्लर ने लिखा है, '*कला स्वार्थवश अपनी पूर्णता में ही संलग्न है—शिक्षा* देने की इसमें इच्छा नहीं है—समस्त दशाओं और समस्त काल में इसका प्रयत्न सुन्दरता की खोज में ही लगा रहता है।"[२]

कला के सम्बन्ध में समीक्षाशास्त्र के प्रारम्भ काल से ही विविध विचार व्यक्त किये जाते रहे हैं। हम देख चुके हैं कि प्लेटो ने कला को प्रकृति का अनुकरण स्वीकार किया। १६ वीं शताब्दी में कला को उपदेशात्मक माना गया। मार्नोल्ड ने कला को 'जीवन की आलोचना' कहा, बशर्ते कि आलोचना अपने लक्ष्य के प्रति वफादार हो। कलावादी व्हिस्लर ने इसके विपरीत अपना मत प्रतिपादित करते हुए लिखा, "प्रकृति हमेशा सही ही होती है, यह कथन कला की दृष्टि से इसी तरह असत्य है जैसे इसे सार्वभौमिक दृष्टि से स्वयंसिद्ध मान लिया जाय। प्रकृति बहुत ही कम सही होती है, यहाँ तक कि यह भी कह सकते हैं कि वह प्रायः गलत होती है। दूसरे शब्दों में, किसी चित्र के उपयुक्त सामंजस्य की पूर्णता पैदा करनेवाली वस्तुओं का रूप प्रकृति में बहुत कम देखने में आता है।'[३]

लिखता है," शिलर की बुद्धि कला में तेज है, लेकिन वह लगभग सम्पूर्णतया कवि ही है। मैं शैलिंग के शिष्य रॉबिन्सन के साथ उससे मिला। काण्ट के सौंदर्यशास्त्र पर उसके कुछ बहुत ओजस्वी विचार हैं। उद्देश्यहीन 'सा' र पूर सा, र' हर हालत में कला को भ्रष्ट करता है। किन्तु इससे कला उस उद्देश्य को प्राप्त होती है जो उद्देश्य इसमें नहीं होता। विलियम विमसट वही, पृ० ४७७। उस समय काण्ट के विचारों को लेकर 'जर्मन सौंदर्यवाद, काण्ट का सौंदर्यवाद, 'स्वातन्त्र्य', निस्पृहता', 'शुद्ध कला', 'शुद्ध सौंदर्य', 'रूप' और 'प्रतिमा' शब्द प्रचलित हो गये थे, और इसके साथ ही 'कला के लिए कला' शब्द का प्रचार भी हो चला था। सर्वप्रथम पत्रकारिता की भिडन्त में यह शब्द १८३३ में एक पत्रिका में छपा। वही।

१—द जेंटल आर्ट आफ मेकिंग ऐनीमीज पृ० ६, न्यूयार्क, १८९०

२—वही, पृ० १३६

३—वही, पृ० १४३

एडगर एलेन पो (१८०६–१८४६)

पो एक सुप्रसिद्ध अमरीकी कथाकार और कवि हो गया है, जिसे टी० एस० इलियट ने प्रथम कोटि का समीक्षक माना है। आगे चलकर अपनी 'फिलासॉफी ऑफ कम्पोजीशन (रचना का दर्शन—१८४६), तथा उसकी मृत्यु के बाद १८५० में प्रकाशित 'द पोएटिक प्रिंसिपल' (काव्यात्मक सिद्धान्त) नामक रचनाओं में उसने कला सम्बन्धी विचार व्यक्त किये हैं। उसके विचारों पर काण्ट के सौंदर्य सम्बन्धी सिद्धान्तों का प्रभाव स्पष्ट है।

आलोचक का महत्त्वपूर्ण स्थान

पो ने 'द पोएटिक प्रिंसिपल' में बोकेलिनी की एक पौराणिक कथा उद्धृत की है। जोलियस ने एक बार सूर्य देवता अपोलो के समक्ष किसी सुन्दर पुस्तक की अत्यन्त कटु आलोचना प्रस्तुत की। उसे सुनकर अपोलो ने पुस्तक की विशेषताओं के सम्बन्ध में जिज्ञासा व्यक्त की। लेकिन जोलियस ने उत्तर दिया कि उसने तो केवल उसकी त्रुटियाँ ही देखी हैं। यह सुनकर अपोलो ने उसे भूसा मिले हुए गेहूँ की एक बोरी उठाकर दे दी और कहा कि इसमें से जो भूसा निकले, वही तुम्हारा पुरस्कार है।

पो का कथन है कि अपोलो ने यह ठीक नहीं किया, क्योंकि आलोचक की सीमाएँ हैं, फिर भी उसे गलत नहीं समझा जाना चाहिए। वह लिखता है, "स्वय-सिद्ध सत्य के आलोक में ही काव्य की उत्कृष्टता मान्य की जानी चाहिए, जिससे कि स्वयं अभिव्यक्त होने के लिए उसे भलीभाँति उपयुक्त बनाया जा सके।" तथा "यदि इसके प्रदर्शन करने की आवश्यकता हो तो यह उत्कृष्टता नहीं रहती। और इस प्रकार विशेष रूप से किसी कलाकृति के गुणों को लक्ष्य करने के लिए, यह स्वीकार करना होगा कि वे बिल्कुल भी उसके गुण नहीं हैं।"[1]

सुरुचि द्वारा सौंदर्य के प्रति आकर्षण

पो ने मानसिक जगत को तीन भागों में विभक्त किया है—शुद्ध ज्ञान-शक्ति, सुरुचि और नैतिक भावना। "ज्ञान शक्ति का सम्बन्ध सत्य से, सुरुचि का सुन्दरता से और नैतिक भावना का सम्बन्ध कर्तव्य से माना गया है। विवेक-बुद्धि हमें कर्तव्य की ओर, बुद्धि उपयोगिता की ओर तथा सुरुचि हमें सौंदर्य की ओर आकृष्ट करती

१—द पोएटिक प्रिंसिपल, पृ० ४८३, मार्क शोरेर, क्रिटिसिज्म, द फाउण्डेशन्स ऑफ माडर्न लिटरेरी जजमेंट, न्यूयार्क, १९४८।

है। सुरुचि अवगुणों के विरुद्ध संघर्ष करती है, इस आधार पर कि वह उपयुक्त, योग्य और सुसंगत–जिसे सुन्दरता कहते हैं—के समक्ष विरूपता, वैषम्य और विरोध को लिये हुए है।"[1]

सौंदर्य के चिन्तन से आत्मा का उन्नयन

"सौंदर्य के लयात्मक सृजन" को पो ने कविता कहा है जिसका मुख्य निर्णायक सुरुचि को बताया गया है। सुरुचि का कर्तव्य और सत्य के साथ कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। पो लिखता है, 'जो आनन्द एकदम अत्यन्त शुद्ध, समुन्नत और उत्कट है, वह मेरे मतानुसार सौंदर्य के चिन्तन से प्राप्त होता है। सौंदर्य के इस चिन्तन से केवल हमें ही आत्मा का आनन्ददायक उन्नयन अथवा उद्दात्तता प्राप्त करना संभव है जिसे हम काव्यात्मक भावावेश कहते हैं और जिसे आसानी से बुद्धि को परितोष देनेवाले सत्य से तथा मन को उत्तेजना देनेवाले भावावेग से पृथक किया जा सकता है।'[2] "कविता उदात्त अवस्था में आत्मा को प्रशान्त करती है। हृदय से उसका कुछ भी संबंध नहीं'। इसलिये 'कविता को भावप्रवण और शृंगारिक न मानकर, आध्यात्मिक ही माना गया है।[3] इस प्रकार पो ने सौंदर्य में उदात्त को समाविष्ट कर उसे काव्य का क्षेत्र स्वीकार किया है। 'द फिलॉसाफी ऑफ कम्पोजीशन' में उसने कहा है "सौंदर्य चाहे जिस प्रकार का हो, अपने उच्चतम विकास में वह अटल रूप में संवेदनशील आत्मा को रुला देने के लिये उत्तेजित करता है', तथा किसी सुन्दर महिला की मृत्यु निर्विवाद रूप से दुनिया में सबसे अधिक काव्य का विषय है।'[4]

कवि को शिव अथवा सत्य से प्रयोजन नहीं उसका मुख्य कार्य है सौंदर्य की प्राप्ति, क्योंकि इस जगत् में जो सुन्दरता है वह इसी सौंदर्य का प्रतिबिम्ब है। इसलिए जब हम सौंदर्य के सम्बन्ध में कुछ कहते हैं तो इससे हम किसी गुण की ओर लक्ष्य नहीं करते, कार्य की ओर ही लक्ष्य करते हैं और यह कार्य है आत्मा का तीव्र और शुद्ध उन्नमन, जिसका हम सौंदर्य के चिन्तन के परिणामस्वरूप अनुभव करते हैं।

काव्य और संगीत का निकट सम्बन्ध

काव्यात्मक भावावेश चित्रकला, शिल्पकला, स्थापत्यकला और विशेषतया नृत्य और संगीतकला के विविध रूपों में विकसित होता है। छंद, लय और तुक की विविधता के कारण पो ने संगीत को अत्यन्त आवश्यक बताया है। वह लिखता है,

---

१—वही, पृ० ४७६

२—वही, पृ० ४८०

३—रने वैले, ए हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न क्रिटिसिज्म ३, पृ० १५४

४—वही, पृ० १५७

"संगीत में आत्मा अत्यन्त निकटतापूर्वक उस महान् लक्ष्य का संपादन करती है, जिसके लिए वह काव्यात्मक भावावेश में अनुप्राणित होकर, संघर्ष करती है और तब उसे अलौकिक सौंदर्य की प्राप्ति होती है।"[1] पो की मान्यता है कि एक लघु कविता में ऐसी ही तीव्रता होनी चाहिए जैसी कि स्वप्न में होती है और साथ ही इसके तत्त्वों में इतनी कम 'निष्क्रिय' सामग्री रहनी चाहिए जितनी संगीतरचना के स्वरों में होती है। इस प्रकार कविता में एक विशिष्ट शुद्धता की मांग के लिए उसने स्वप्न और संगीत का उपयोग करना चाहा है। पो की इस मान्यता का प्रभाव चार्ल्स बोद्लेयर आदि फ्रांस के प्रतीकवादी लेखकों पर स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। स्वप्न तथा संगीत के साथ कविता की यह तुलना प्रतीकवादियों की विचारधारा में आदि से अन्त तक दृष्टिगोचर होती है। साहित्य में प्रकृतिवाद तथा रूपगत रूढ़ियों के विरुद्ध इन लोगों ने अपने शुद्ध गीतिकाव्य में तीव्रता लाने के लिए प्रतीकों के माध्यम से भावाभिव्यक्ति पर जोर दिया है।[2]

'कविता केवल कविता के लिए'

एडगर एलेन पो ने उपदेशात्मक काव्य को साहित्य को भ्रष्ट करनेवाला काव्य का शत्रु बताते हुए लिखा है, 'स्पष्ट और अस्पष्ट रूप से तथा प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से कहा जाता है कि समस्त काव्य का अंतिम लक्ष्य सत्य है। कहते हैं कि प्रत्येक कविता से नैतिकता की शिक्षा प्राप्त होनी चाहिए और इस नैतिक शिक्षा से ही किसी कृति में काव्यात्मक गुण का निर्णय किया जा सकता है। विशेषकर हम अमरीकियों ने इस सुंदर विचार को प्रोत्साहन दिया है, और खासकर, हम बोस्टन के निवासियों ने इसका पूर्णतया विकास किया है। हमने यह बात अपने गले उतार

१—द पोएटिक प्रिंसिपल, वही। ऑस्कर वाइल्ड ने भी संगीत को सम्पूर्ण प्रकार की कला माना है, क्योंकि यह अपने चरम रहस्य को कभी अभिव्यक्त नहीं करता। इण्टेशन्स, द क्रिटिक ऐज आर्टिस्ट, पृ० १५२–५३। वाल्टर पेटरने भी संगीत को समस्त कला का आदर्श माना है क्योंकि इसमें रूपविधान और विषयसामग्री तथा विषय और अभिव्यक्ति में भेद करना असम्भव है, अप्रेशिएशन्स, स्टाइल पृ० ३७।

२—विलियम विमसेट, वही, पृ० ५८६। २ जुलाई, १८४४ के जे० आर० लोवल को लिखे हुए अपने पत्र में पो लिखता है, "संगीत और कुछ कवताओं विशेषकर टेनीसेन एवं कीट्स, शेली, कॉलरिज (कभी-कभी) तथा समान विचार और अभिव्यक्तिवाले कतिपय अन्य कवियों की—द्वारा मैं गंभीर रूप से उत्तेजित हो जाता हूँ और इन्हें मैं एकमात्र कवि समझता हूँ। इन्हें असे वही, पृ० १५७ पर से।

ली है कि केवल कविता के लिए कविता लिखना और इसे अपना उद्देश्य स्वीकार करने का तात्पर्य होगा कि हम मूल रूप से सच्चे काव्य की प्रतिष्ठा और सक्षमता को हृदयंगम करने मे अक्षम हैं। लेकिन एक साधारण तथ्य यह है कि यदि हम अपनी आत्मा के अन्दर झांक कर देखें तो हमें तुरत पता चलेगा कि इस आकाश मडल के नीचे कोई भी कति इस कविता को अपेक्षा–जो केवल कविता के सिवाय और कुछ नही है, तथा केवल कविता के लिए ही लिखी गयी है–अधिक पूर्णतया सम्मानित और अधिक सर्वोपरि उदात्त नही है।"[1]

योर विएटस पो का उग्र आलोचक था। उसने लिखा है, "पो हम से समस्त विषयवस्तु को छीन लेता है, और वह परपरानुसार कविता को जो सपूर्ण बुद्धि-जन्य प्रक्रिया माना गया है उससे वचित कर, एक नगण्य दशा में ला पटकता है।"[2]

१—द पोएटिक प्रिंसिपल्स, पृ० ४७१
२—इन डिफेन्स ऑफ रीज़न पृ० २४१

वाल्टर पेटर (१८३९-९४)

'कला के लिए कला' का सैद्धांतिक निरूपण करनेवालों में पेटर का स्थान सबसे अग्रगण्य है। उसका मानना है कि 'समस्त कला उद्देश्यहीन' होती है, इसलिए वह नैतिकता के विचारों और आचार व्यवहार के प्रतिमानों से मुक्त रहती है। महान् कवियों का काय "न उपदेश देना है, न नियमों को लागू करना और न उच्च उद्देश्यों के लिये उद्दीपित करना ही, किन्तु उनका काय है कुछ समय के लिये केवल जीवन की मशीन से विचारों को हटा कर, उचित मनोवेग पूवक उन्हें मनुष्य के अस्तित्व सबधी उन महान् घटनाओं के दृश्यों पर स्थिर करना जो किसी भी मशीन से प्रभावित नहीं होते।' रस्किन ने कला को नतिकता का सेवक स्वीकार किया था, लेकिन पेटर ने कला को स्वामी का पद दिया है अतएव उसके अनुसार सर्वोच्च नतिकता को कलाकार के अधीन रहना पडता है।[1] पेटर की विचारधारा का केंद्र बिन्दु सौंदय था, और कहना न होगा कि जब उसे सौंदयवादी आ दोलन का नेता मान लिया गया तो उसे खुद को बडा आश्चय हुआ।

नैतिकता के सम्बन्ध में अस्पष्टता

कहा जा चुका है कि कला के लिए कला' पर आधारित सौंदयवाद का सिद्धान्त क्रमशः विकसित हुआ। पाश्चात्य समीक्षकों ने कीट्स, टैनीसन और रोसेटी की काव्यप्रवत्तियों पर दृष्टिपात करते हुए महान् स्वच्छ दतावादी कवियों की समीक्षा की। कविता जीवन की समीक्षा है' यह सिद्धान्त उत्तरकालीन स्वच्छन्दतावादी परम्परा का ही परिणाम था। नैतिकता के सम्ब ध में आर्नोल्ड के समय में जो अनिश्चितता फली हुई थी, उसकी ओर लक्ष्य करते हुए उसने लिखा है, 'नैतिकता का प्राय सकुचित और गलत अथ मे व्यवहार किया जाता है। प्राय नतिक नियम प्राचीन रूढियों और विश्वासों के साथ चिपके होते हैं—ऐसे विश्वास जिसमें उपादेय शक्ति समाप्त हो चुकी है। प्राय नैतिकता की व्याख्या आडबरधारी और ढोंगी धमनेता करते हैं और ये व्याख्यायें उबा देनेवाली होती हैं। कभी हम नैतिकता के विरुद्ध विद्रोह करनेवाली कविता की ओर भी आकृष्ट होते हैं—ऐसी कविता जिसमें उमर खयाम के शब्दों में "जो समय हमने मदिर मस्जिद में खराब किया है उसकी क्षतिपूर्ति मदिरालय में जाकर पूरी करो', को आदश वाक्य माना जाता है। अथवा हम ऐसी कविता की ओर आकृष्ट होते हैं जो नैतिकता की ओर से उदासीन है—ऐसी कविता जिसमें विषयवस्तु का प्रतिपादन चाहे जिस तरह का हो, लेकिन जहाँ

१—स्कॉट-जेम्स, वही, पृ० २९४

रूपविधान की ओर ध्यान दिया जाता है और यह रूपविधान उत्कृष्ट होता है। दोनों ही बातों में हम खोना सा जाते हैं और इस खोने का इलाज है कि 'जीवन' जैसे महान् और असीम शब्द पर हमारा ध्यान केंद्रित हो और हम इसके मर्म को समझें।"[1]

सौंदर्यवाद में भावावेश की सीमता

सौंदर्यवाद के सिद्धांत का विकास इन्हीं परिस्थितियों में हुआ। ध्यान देने की बात है कि इस सिद्धान्त को शुद्ध अथवा नीरस रूप में स्वीकार न कर हममें भावावेश के कारण तीव्र इंद्रियानुभूति' की सत्ता स्वीकार की गयी। पेटर के अनुसार, आर्नोल्ड का यह कथन ठीक है कि 'जो वस्तु वास्तव में जैसी है, उसे उसी रूप में देखना चाहिये', लेकिन "आलोचना का पहला कदम है अपने मन पर वास्तव में जैसा प्रभाव पड़ा है, उसे समझना उसमें अंतर करना और स्पष्ट रूप से उसका अनुभव करना।"[2] 'स्टडीज् इन द हिस्ट्री ऑफ द रेनेसाँ (पुनरुत्थान के इतिहास का अध्ययन) के निबन्ध स्वरूप में लिखे गये अंतिम अध्याय में[3] एक दर्शन और संस्कृति का आभास दिया गया है जो मानव मन में एक तीव्र और उत्साहपूर्ण निरीक्षण को उद्बुद्ध करता है। पेटर ने लिखा है, उस समय प्रतिक्षण हाथ में या मुख पर कोई रूप सम्पूर्ण हो उठता है, पहाड़ियों पर या समुद्र में कोई ध्वनि अन्य ध्वनियों की अपेक्षा उत्कृष्टतर होती है, कोई भावावेश अन्तर्दृष्टि अथवा बौद्धिक उत्तेजना अप्रतिहत रूप से यथार्थ और आकर्षक प्रतीत होती है—

१—एसेज इन क्रिटिसिज्म सेकण्ड सीरीज् पृ० १४४ लंदन, १८८८, विलियम विमसेट, लिटरेरी क्रिटिसिज्म पृ० ४८४-८५ पर से।

२—स्टडीज इन द हिस्ट्री ऑफ द रेनेसाँ, भूमिका, पृ० ८, रेने वेले, वही ४, पृ० ३८३ पर से

३—सर्वप्रथम यह पुस्तक १८७३ में प्रकाशित हुई थी। इसका दूसरा संस्करण द रेनेसाँ स्टडीज इन आर्ट ऐण्ड पोएट्री' १८७७ में प्रकाशित हुआ। १८८८ में प्रकाशित होनेवाले इसके तीसरे संस्करण में पेटर ने निम्नलिखित टिप्पणी जोड़ दी थी— 'यह संक्षिप्त निबन्ध' दूसरे संस्करण में इसलिए नहीं सम्मिलित किया गया था कि कहीं अशिष्ट सुखवाद (वलगर हेडोनिज्म) समझ लेने के कारण इससे नवयुवकों के मन में भ्रांति न पैदा हो जाये। कुल मिलाकर मैंने उसे यहां पुनः प्रकाशित करना श्रेष्ठ समझा है। मार्क शोरर, क्रिटिसिज्म, पृ० ४८७ पर से। पेटर ने "खाओ पीओ मौज करो, क्योंकि कल मर जाना है"—इसे सुखवाद न कह कर "जो यहां सामने मौजूद है उसमें पूर्णता प्राप्त करने को" सुखवाद माना है।

केवल उसी क्षण के लिए। "इस अनुभव का फल नहीं है, बल्कि स्वयं अनुभव ही ध्येय है।"[1] रंग बिरंगे नाट्य जीवन के कतिपय स्पन्दन ही हमें प्राप्त होते हैं। लेकिन हममें से कितने ऐसे हैं जो अपनी सूक्ष्म इंद्रियों द्वारा उन स्पन्दनों में वह सब देखते हैं जिसे देखने की जरूरत है? हम एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु को, अत्यन्त त्वरित गति के साथ पार कर, हमेशा उस केंद्रबिन्दु पर कैसे पहुंचें जहां अधिकाधिक प्राणभूत शक्तियां अपनी शुद्धतम ऊर्जस्विता में एकत्र हों?"[2]

भावावेश के प्रानन्दातिरेक की इस ज्वाला को 'रत्न के समान कठोर' बताते हुए जीवन की सफलता के लिए इसे आवश्यक माना गया है।[3] हमारी असफलता का कारण हमारी आदतें हैं—उदाहरण के लिए, आंखों के खुरदरेपन के कारण हम दो आदमी एक जैसे दिखाई पड़ते हैं। लेकिन फिर भी "हम किसी क्षण में किसी अद्भुत रंग, कुतूहलपूर्ण गंध अथवा किसी कलाकार की कृति को देखकर इंद्रियोरोजक भावावेश की पकड़ में आ जाते हैं।"[4] मतलब यह है कि "इस वृहत् भावावेश के

१—इस पर टीका करते हुए एफ० एल० लूकस ने व्यंग्य पूर्ण शैली में लिखा है सौन्दर्यानुभूति की यह सही परिभाषा हो सकती है लेकिन इससे 'अनुभव का फल कैसे नष्ट हो जाता है? हम केवल पुष्प ही पाकर नहीं रह सकते। यह लिखते हुए पेटर को शायद क्रिस्तिना रोसेटी की निम्नलिखित दुखद पंक्तियां याद आ गई हों—

मैंने अपने सेव के वृक्ष से गुलाबी सेव तोड़े
और उनसे मैं उस तमाम शाम अपने केशों को सजाती रही
फिर जब मैं फलों का मौसम आने पर देखने गई
तो मुझे वहां एक भी सेव न मिला।
(आई० प्लक्ड पिंक एप्पल्स फ्रॉम माइन एप्पल ट्री
ऍण्ड वोर दैम ग्राल दैट इवनिंग इन माई हेग्रर,
दन इन ड्यू सीजन ह्वेन आई वैण्ट टू सी
आई फाउण्ड नो एप्पल्स देग्रर)

—लिटरेचर ऍण्ड साइकोलोजी पृ० २५८

२—द पोएटिक प्रिंसिपल, पृ० ४८८

३—रने वले का कथन है कि आजकल बहुत कम लोग ऐसे मिलेंगे जो रत्न के समान कठोर ज्वाला से जाज्वल्यमान हों, और जो कोई थोड़े बहुत होंगे भी वे प्रायः निश्चय से ही कम उम्र के नवयुवक होंगे। ए हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न क्रिटिसिज्म ४, पृ० ३८२

४—द पोएटिक प्रिंसिपल, पृ० ४८८।

कारण ही जीवन की त्वरित भावना, हर्षातिरेक तथा प्रेम की प्रेरणा, और उत्साहपूर्ण क्रिया के विविध रूप, भले ही उनमें निस्पृहता का भाव हो अथवा नहीं, प्राप्त होते हैं, जो हममें से अधिकांश के पास स्वाभाविक रूप में पहुँचते हैं। केवल एक ही बात है कि हमें इसका निश्चय हो कि वह भावावेश है तथा यह त्वरित और बहुरूपी चेतना का फल प्रदान करता है। इस विवेक में काव्यात्मक भावावेश सौन्दर्य की आकांक्षा और कला के लिए कला के प्रति प्रेम सबसे अधिक मात्रा में विद्यमान है। क्योंकि जब कला तुम्हारे पास आती है तो वह स्पष्टतया यही उद्घोष करती आती है कि जो क्षण गुजरते हैं उन क्षणों को श्रेष्ठतम कोटि—और केवल उन्हीं क्षणों के लिए—के अतिरिक्त और कुछ वह प्रदान नहीं करती।'[1]

रूपविधान का महत्त्व

सौंदर्यवाद का दूसरा महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है रूपविधान। सौंदर्यवादियों के मत में भावावेश की अभिव्यक्ति के लिए रचनातंत्र को मुख्य माना गया है। १९ वीं शताब्दी में इसी के माध्यम से कविता तथा संगीत और दृश्य-कलाओं में साहित्यिक और लाक्षणिक सम्बन्ध स्थापित किया गया। यही विचारधारा आगे चलकर फ्रांस के प्रतीकवादियों की आधारशिला बनी। रूपविधान के सम्बन्ध में कहा गया कि जैसे सोने या ताँबे की तह पर चमकदार मुलम्मा चढ़ाने से अथवा कीमती पत्थरों पर नक्काशी का काम कर देने से वस्तु की कीमत बढ़ जाती है, यही बात भावावेश की अभिव्यक्ति के लिए भाषा के सम्बन्ध में समझनी चाहिए। भाषा का गंभीर अध्ययन करना चाहिए जिससे कि बहुमूल्य धातु की भाँति, प्रत्येक वाक्यांश और शब्द की शक्ति का ठीक ठीक अंकन हो सके।"[2]

पेटर ने कविता को ठोस, उत्कट, अकृत्रिम और वैयक्तिक मानकर उसमें विषय वस्तु और रूपविधान का ऐक्य स्वीकार किया है। उसने "उसी बिन्दु को समस्त कला का आदर्श कहा है जहाँ रूपविधान को विषयवस्तु से पृथक करना असंभव हो जाता है।"[3]

आत्मभावना की अभिव्यंजना

पेटर ने अपनी 'अप्रेसिएशन्स' (मूल्यांकन—१८८९) रचना के साथ संयुक्त

१—वही, पृ० ४८९। ऑस्कर वाइल्ड ने भी कहा है, "भावावेश के लिए भावावेश कला का उद्देश्य है तथा क्रिया के लिए भावावेश जीवन का उद्देश्य है"। इन्टेंशन्स, द क्रिटिक ऐज आर्टिस्ट, पृ० १७५

२—विलियम विमसेट, लिटरेरी क्रिटिसिज्म पृ० ४८९

३—अप्रसिएशन्स स्टाइल, पृ० ३७ ३८, रेने वले, ए हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न क्रिटिसिज्म ४, पृ० ३९१ पर से

'स्टाइल' (शैली) नामक निबन्ध में आलोचना के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुए कला के सम्बन्ध में अपने महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किये हैं। यहा किसी कृति में वास्तविकता को सत्य की कसौटी न मानकर उसके प्रति कलाकार की भावना की अभिव्यक्ति को मुख्य माना गया है। वास्तविकता के प्रति कलाकार का यही बोध स्वय उसके लिए "अधिक सामान्य, अधिक रुचिकर और अधिक सुन्दर" होता है। ललित कला और कोरी उपयोगी कला में यही अन्तर है। "साहित्यिक कला, जो अन्य समस्त कलाओं की भाँति, किसी तथ्य–रूप, रग अथवा कोई घटना–की अनुकृति या पुनरावृत्ति होती है, उस तथ्य का प्रतिनिधित्व करती है जो अभिरुचि इच्छा और सकल्पशक्ति में, किसी विशिष्ट व्यक्ति की आत्मा से सम्बद्ध है।" कोई साहित्यिक कला इसलिए सुन्दर नही कही जा सकती कि वह दीप्तिमान है, सन्तुलित है, समृद्ध है, अन्त प्रेरक है अथवा आवेगपूर्ण है बल्कि आत्मभावना की व्यजना होने के कारण ही वह श्रेष्ठ है।[1]

कलाकार की शब्दावली

पेटर ने साहित्यिक कलाकार के सम्बन्ध मे विस्तार से चर्चा की है। 'अनिवार्य रूप से वह विद्वान् होता है" और "अपनी आत्मसमीक्षा में वह ऐसे पाठक का अनुमान करता है जो सोच विचार कर सावधानीपूर्वक, बिना उसकी परवाह किये साहित्य का अध्ययन करता है।" "जिस शब्दसामग्री के माध्यम से वह अपनी कला की सृष्टि करता है, वह इसी प्रकार उसकी अपनी नही होती जैसे कि सगमरमर मूर्तिकार का नहीं होता।" साहित्यिक कला के निखार के लिए भाषा पर पेटर ने बहुत जोर दिया है। ' भाषा को सहस्रो विभिन्न मस्तिष्को और विरोधी वाणियो की उपज कहा गया है जो प्रच्छन्न और सूक्ष्म सम्बन्धो के कारण सुदृढ हो गयी है। भाषा के प्रचुर और प्राय गूढ़ नियम होते हैं जिसके अभ्यासगत और सारभूत ज्ञान मे पाडित्य रहता है। जो लेखक विषयसामग्री से समृद्ध होता है, सर्वप्रथम, वह अभिव्यक्ति के लिए व्यग्र रहता है। भाषा के उक्त नियमों, शब्दावली की सीमाओं तथा वाक्यविन्यास आदि को वह एक प्रतिबध मानता है जबकि एक वास्तविक कलाकार उन्ही में अभिव्यक्ति का अवसर खोज निकालता है।" मतलब यह कि कलाकार अत्यन्त सावधानीपूर्वक भाषा के नियमो को पालता है। वह "उस वातावरण के प्रति सजग रहता है जिसमे कि प्रत्येक शब्द अपनी अभिव्यक्ति की उत्कृष्टता को प्राप्त करता है।' 'उसे शब्दो का प्रेमी कहा गया है जो ऐसे लोगो से ईर्ष्या करता है जो भाषा की बारीकियो को नष्ट भ्रष्ट करने में सलग्न है।" उसमें "एक प्रकार का प्रयत्न आत्मनियन्त्रण एव परित्याग की प्रवृत्ति देखने में आती है जो एक

१—वही, पृ० १०,११

सवेदनशील पाठक की सूक्ष्म विचारणा के लिए एक चुनौती का काम करती है।"[१]

पेटर ने अपने निबन्ध में उपयुक्त शब्दावली पर विशेष जोर दिया है। कलाकार शब्दों के चुनाव में बहुत सावधानी से काम लेता है। वह इस बात का ध्यान रखता है कि कौन-से शब्द उसे ग्रहण करने हैं और कौन से नहीं। "पूर्ण, समृद्ध और जटिल सामग्री को यहाँ सुन्दर शैली के सघटन म मुख्य प्रेरक" माना गया है।[२] विचारों की अस्पष्टता से ही भाषा मे भ्रांति उत्पन्न होती है, अतएव विचारों का निर्भ्रांत होना आवश्यक है। शब्दालकार को यहाँ निरर्थक, मांसपिण्ड बताते हुए उसे 'अनादरसूचक शब्द' कहा है—

आत्मनियंत्रण में सौंदर्य

फ्रास के सुप्रसिद्ध निबन्ध लेखक मौंतेन्य (Montaigne) के वक्तव्य को उद्धत करते हुए पेटर ने कहा है, "रास्ते पर चलनेवाले सबसे पहले व्यक्ति को उपदेश देने लगना तथा सवप्रथम दिखाई देनेवाले व्यक्ति का शिक्षक बन बैठना—य दोनो ही ऐसी बातें हैं जिनसे मैं घृणा करता हूँ।" स्वभावत किसी भी विद्वान् के लिए यह कष्टदायी है। वह अपने पाठक की बुद्धि को बिना मागी सहायता देने मे झिझकता है।" 'जिन पाठकों मे सचमुच प्रयत्न की लगन होती है उन्हें सतत प्रयत्न की चुनौती में एक सुखद उत्तेजना मिलती है। और इसका पुरस्कार उन्हें इस बात से मिलता है कि वे लेखक के अभिप्राय को अधिक आत्मीयता के साथ समझ सकते हैं।' वस्तुत 'आत्मनियन्त्रण, साधनसामग्री की दक्षतापूर्ण मितव्ययिता और निग्रह मे एक प्रकार का अपना सौंदय माना गया है। तथा पाठक को शैली के उस मितव्ययी कसाव मे सौंदर्यात्मक सतोष प्राप्त होगा जहाँ प्रत्येक शब्द अपने उपयुक्त स्थान पर सयोजित है।"[३]

शिलर के शब्दों मे पेटर ने कहा है, कलाकार की परख इससे होती है कि वह कितना अनकहा छोड देता है।" साहित्य में भी उसी कलाकार को सवश्रेष्ठ माना जायेगा जिसने इस कला में निपुणता प्राप्त की है। उसने "कलाकार को शब्दों का प्रेमी' बताया है 'जो शब्दों की खातिर शब्दों से प्रेम करता है, शब्दो के सम्बन्ध मे उसे कोई भी बात महत्त्वहीन नहीं लगती और उनके रूप और आकृति का वह सूक्ष्म दृष्टि से सतत निरीक्षण करता रहता है। वह केवल स्पष्टतया परस्पर मिश्रित रूपकों के प्रति ही सजग नही रहता, वरन हमारी बोलचाल की भाषा मे घुलेमिले हुए रूपकों के प्रति भी सावधान रहता है, यद्यपि शीघ्रता से किये गये उनके प्रयोगो

१—वही, पृ० १२–१४
२—वही, पृ० १४–१६
३—वही, पृ० १७

मे उनका ज्ञान नही हो पाता।" अपनी विद्वत्ता के बल पर, वह चित्र के रग, रूप और छाया की भाँति, भाषा के प्रमुख अग-प्रत्यग का साक्षात्कार करता है।[1]

श्रेष्ठ शैली से ललित कला का जन्म

रचनाशैली पर जोर देते हुए कृति के गठन को यहा बहुत महत्त्वपूर्ण बताया गया है क्योंकि उसके अभाव में कोई रचना मूल्यवान नही हो पाती। ऐसी साहित्यिक रचना को जिसमे कि अतिम वाक्य उसी अप्रतिहत ओजस्विता के साथ प्रथम वाक्य का समर्थन न करे, तब तक उसे कलात्मक रचना नही माना गया।[2] एक अच्छे कलाकार की रचना में एक के बाद एक जो उल्लासपूर्ण और प्रसादवाले वाक्य आते चले जाते हैं, उन्हें "किसी बालक की माग" की भाति पेटर ने निश्चयात्मक बताया है।[3] "असख्य शब्दों के बीच एक विचार को व्यक्त करने के लिए एक ही शब्द होता है। किसी एक मानसिक विचार अथवा अन्तर्ज्ञान को अभिव्यक्त करने के लिए उसके सर्वथा उपयुक्त किसी अद्वितीय शब्द, वाक्याश, वाक्य अनुच्छेद, निबन्ध अथवा गीत का प्रयोग—यही शैली की समस्या है।' 'शैली किसी श्रेष्ठ कृति मे सर्वत्र विद्यमान रहती है। किसी विशेषण से लेकर समस्त पुस्तक की लय तक प्रत्येक बिन्दु मे उसकी गति होती है और इसी में साहित्य का विशिष्ट अनिवार्य और अत्यन्त बौद्धिक सौंदर्य निहित है। इसी सौंदर्य की सभावना ललित कला को जन्म देती है।[4]

शब्दावली के अन्वेषण में अध्यवसाय

रूपविधान को मुख्य बताते हुए कहा गया है "जो मस्तिष्क 'रूपविधान' के प्रति सम्वेदनशील रहता है उसमें बाह्य जगत् से अव्यवस्थित ध्वनियो, रगो और घटनाओं का अनवरत प्रवाह बना रहता है। फिर मस्तिष्क इस प्रवाह मे से सहानुभूतिपूर्वक चयन करता है और उसे अपने गठन का अग बना लेता है जिससे कि बाह्य जगत् का दृश्यमान रूपपरिधान और अभिव्यक्ति उसमें दिखाई देने लगती है।" फिर शत शत बिन्दुओं पर वह परिष्कार, विस्तार और शुद्धता को ग्रहण करती है। इसी समय सन्देहास्पद बिन्दुओ पर शैली का कार्यकौशल अथवा सुरुचि के रूप में प्रकट होता है। यह अद्वितीय शब्दावली किसी को जल्दी सूझ जाती है और किसी को देर से।" लेकिन जिस प्रकार शब्दावली के सरलता से मिलने में आकर्षण रहता है, वैसे ही उसे अध्यवसाय द्वारा अथवा अन्वेषणपूर्वक ढूढ निकालने मे भी एक विशिष्ट आकर्षण रहता है।[5]

१—वही, पृ० १८-२०
२—वही, पृ० २१
३—वही, पृ० २३
४—वही, पृ० २९-३०
५—वही, पृ० ३१

शैली में अभिव्यंजना शक्ति

'अभिव्यक्ति सत्य का सबसे सुन्दर एवं आत्मीय रूप" है।[1] जब हम कहते हैं शैली व्यक्ति है' तो इसका तात्पर्य है कि यह उस व्यक्ति की अभिव्यक्ति है जिसका व्यक्तित्व, जिसका उस विषय का सम्पूर्ण ज्ञान जिसे वह व्यक्त करना चाहता है, तथा ससार विषयक जिसकी धारणा जटिल अथवा सरल होती है। शैली के सम्बन्ध मे इसलिए सावधानी बरतने की आवश्यकता है कि उसके माध्यम के सम्बन्ध में कुछ स्वाभाविक सन्देह हो सकते हैं—ऐसा माध्यम जिसके द्वारा लेखक वस्तुओं की आन्तरिक अनुभूति को व्यक्त करता है। इसकी विशुद्धता पर वह जोर देता है और इसके नियमों अथवा कौशल का वह पालन करता है।" शैली के विविध प्रकार बताये गये हैं, लेकिन वह सार्थक तभी होती है जब वह अभिव्यजना शक्ति से युक्त हो।[2]

शैली की वैयक्तिकता ?

प्रश्न हो सकता है कि यदि शैली को आत्मपरक माना जायेगा तो वह व्यक्ति-विशेष के मन की तरग के साथ जुड़ जाने से एक प्रकार की सनक बन जायगी। उत्तर म पेटर का कहना है, "जिन अवस्थाओं की हमने कल्पना की है, उनमे मनुष्य क प्रत्यक भाव के लिए और उसके अन्तर्ज्ञान के प्रत्येक रूप के लिए सम्वेदनशील व्यक्तियों ने एक ही शब्द को ग्राह्य कहा है।" "मनुष्य की भाषा के परिवतनशील और नाजुक क्षेत्र मे यह शब्द सदा एक ही रहता है। इसलिए जब हम कहते हैं कि 'शैली व्यक्ति है' तो वह ऐसा व्यक्ति नहीं जिसके मन की तरग विवेकशून्य मनमानी, अनिच्छापूर्ण और कृत्रिम है, किन्तु उसकी अनुभूति पूर्णत सच्ची है और उसके लिए अत्यन्त यथाथ है। हम कह सकते हैं, "यदि वास्तविक समझ बूझ के समस्त रगों और तीव्रता में 'शैला व्यक्ति है' तो यथाथ म इसे अवैयक्तिक' ही मानना होगा।'[3]

कला की महत्ता

श्रेष्ठ कला के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह महान् भी हो। "साहित्यिक क्षेत्र में महान् कला और श्रेष्ठ कला का अन्तर तत्काल रूपविधान पर नहीं विषय वस्तु पर निभर करता है।' 'कला का महत्ता इस पर है कि जिस वस्तु का वह वणन करती है वह किस कोटि की है और यह बात उसकी विविधता, महान् उद्देश्यों के साथ उसका सम्बन्ध उसमें विद्रोह की गहराई अथवा आशा के सन्देश पर आधारित है।"[4]

१—वही, पृ० ३४
२—वही पृ० ३५–३६
३—वही, पृ० ३६-३७
४—वही, पृ० ३८

अन्त में कहा गया है, 'यदि कला मानवता के सुख में वृद्धि करती है, यदि शोषितों को शोषण से मुक्त करती है, हमारी पारस्परिक सहानुभूति का विस्तार करती है, अथवा यदि हमारे और विश्व के सम्बन्धों के विषय में ऐसे नये या पुराने सत्यों का उद्घाटन करती है जिससे हमारा जीवन समुन्नत और शक्तिशाली बन सके अथवा दांते की भाँति वह ईश्वर की महिमा को उद्घाटित करे तो वह महान् कला कही जायेगी।"[1]

पेटर की समीक्षा

सुप्रसिद्ध आलोचक रैने वैले के अनुसार, वाल्टर पेटर का आजकल विस्तृत रूप में अध्ययन नहीं किया जाता। उसे केवल 'प्रभाववादी' आलोचक मानकर छोड़ दिया जाता है। इलियट ने उसकी आलोचना को एक ऐसी आलोचना कहा है जो "ठूँठ होकर रह गई है" (इटिओलेटेड)। इलियट के शब्दों में, "यह अधिक विचारणीय इसलिये नहीं कि यह केवल उन्हीं दुर्बल और अकर्मण्य मस्तिष्कों को अच्छी लगती है जो किसी वास्तविक कलाकृति के सम्मुख जाने से घबराते हैं।"[2] वस्तुतः भाषा के औचित्य पर सारा जोर देने से जीवन सामग्री एक ओर पड़ी रह जाती है जिस पर सब कुछ निर्भर करता है।

१—वही

२—ए शोर्ट टीटीज आन द क्रिटिसिज्म ऑफ पोएट्री, चैपबुक न० २, मार्च १९२०, रैने वले, ए हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न क्रिटिसिज्म ४, पृ० ३८२ पर से।

ऑस्कर वाइल्ड (१८५६-१९००)

पाश्चात्य समीक्षा के क्षेत्र में ऑस्कर वाइल्ड ने यद्यपि कोई सिद्धान्तविशेष स्थापित नहीं किये, लेकिन वह कलावादी समीक्षकों में अग्रगण्य माना जाता है। उसके अनुसार, किसी अच्छे समीक्षक के लिए आवश्यक है कि वह सच्चा कलाकार हो। सामान्य अर्थ कोई समीक्षक न्यायी नहीं हो सकता। जो किसी प्रश्न को दोनों ओर से देखता है, वह बिलकुल भी कुछ नहीं देखता। कोई नीलाम करनेवाला ही कला के समस्त सिद्धांतों को समान भाव से निष्पक्षतया देख सकता है।" केवल अपने व्यक्तित्व को तीव्र करके ही कोई समीक्षक दूसरों के व्यक्तित्व और किसी कृति की व्याख्या कर सकता है।"[1]

पेटर के सिद्धान्तों की ओर वह आकर्षित हुआ था, जिसे उसने अंग्रेजी गद्य का एक अत्यन्त निर्दोष निपुण लेखक माना है। वाइल्ड अपने वाग्वैदग्ध्य, सूक्ष्मदर्शिता विरोधाभास और प्रगल्भता के लिए प्रसिद्ध है। अपने साहित्य और कला सम्बन्धी विचार उसने परिमार्जित गद्य शैली में लिखी गयी अपनी 'इण्टेंशन्स' नामक रचना में व्यक्त किये हैं। 'असत्य भाषण का ह्रास', 'कलम पेंसिल और विष तथा मुखौटों का सत्य' (ट्रुथ ऑफ मास्कस)[2] नामक निबन्ध इस रचना की विशेषता है।[3]

सौंदर्य का परम उपासक

सौन्दर्यविधान आन्दोलन का पुरस्कर्ता होने के साथ वाइल्ड स्वयं भी सौंदर्य का परम उपासक था। उसका मानना था कि हमें रंग सौंदर्य तथा जीवन की खुशियों के साथ सहानुभूति व्यक्त करनी चाहिए जीवन की व्यथाओं के सम्बन्ध में जितनी कम चर्चा की जाय उतना अच्छा। दरअसल उन दिनों सौंदर्यविधान के आन्दोलन ने सौन्दर्यपरक रंगीनता का रूप धारण कर लिया था जिससे कि बढ़िया पोशाक, घोड़ों की बग्घी, महीन मलमल जाकट, घुटनों तक के चुस्त पायजामे, हाथ में

१—इण्टेंशन्स पृ० १३१ १४७ १८६, १८४, रेने वेले, वही, ४, पृ० ४१५

२—इस निबन्ध में बताया गया है कि मुख की अपेक्षा मुखौटे से हमें अधिक बातों का पता लगता है।

३—तुलना कीजिए विलियम्स के 'हत्या पर—जिसे एक ललित कला माना गया है', तथा स्टीवेंसन के 'दुष्ट विद्यार्थी कवि और चोरी करनेवाले' नामक निबन्धों के रूप।

सुगंधित फूल तथा सुन्दर गाउनवाली रमणियाँ— ये सब चीजें सौंदर्यवर्धक मानी जाने लगी थीं।[1] वाइल्ड ने लिखा है 'आज सब जगह प्रेमलीला की गुहार मची है, घाटी मे पत्तियो का कम्पन हो रहा है तथा बैंगनी रंग की पहाड़ियों के शिखरों पर सुन्दरता सुवर्ण जटित नाजुक पदो से चक्रमण कर रही है।"[2]

कला सर्वोपरि वास्तविकता

'कला के लिए कला' सिद्धांत के समर्थक कला को प्रत्येक वस्तु से भिन्न मान कर उसे अत्यन्त पवित्र मानते थे। कला और जीवन की तुलना करते हुए वाइल्ड ने "कला को सर्वोपरि वास्तविकता और जीवन को केवल कल्पना का प्रकार" कहा है।[3] वह लिखता है 'जीवन कला का अनुकरण करता है, वास्तव में जीवन दर्पण है और कला वास्तविकता है।"[4] तथा "कोई भी तीन जिल्दों का उपन्यास लिख सकता है। केवल एक ही बात ध्यान में रखनी होगी कि वह जीवन और साहित्य दोनों से ही अनभिन्न हो।'[5] "सच्चा कलाकार जन सामान्य का ध्यान नहीं रखता।' 'लोगों के साथ वह नहीं रह सकता'। "कला किसी युग की प्रतीक नहीं है।' किसी भी हालत में वह अपने युग का पुनरुत्पादन नही कर सकती।" युगीन कला' से स्वयं युग तक पहुँचना, एक बडी गलती है जिसे सभी इतिहासवेत्ता करते हैं।'[6]

१—देखिए विलियम विमसेट, लिटरेरी क्रिटिसिज्म पृ० ४८५

२—इटेंशंस, द क्रिटिक ऐज आर्टिस्ट, पृ० १६२। किसी फ्रांसीसी इतिहासवेत्ता ने रोमांटिसिज्म का वास्तविक जीवन पर प्रभाव बताते हुए लिखा है कि १६ वीं शताब्दी मे लोग कवियों और उपन्यासकारों की रचनाएँ पढ़-पढ़कर उनमें वर्णित गुनाहों की नकल करने लगे थे। फ्रांस मे तो इन रचनाओं की प्रेम-गाथाएँ पढ़कर आत्महत्या की लहर ही आ गयी थी। इतालवी रमणियों के सौंदर्य को शिल्प में उकेरना इस बात का प्रमाण है कि ललित कला मानव के शारीरिक गठन को प्रभावित कर रही थी। अब तक तो प्रकृति को सामने रखकर कला का प्रतिरूप तयार किया जाता था, लेकिन अब कला से प्रकृति का प्रतिरूप बनाया जाने लगा। विलियम विमसेट, लिटरेरी क्रिटिसिज्म, पृ० ४६१ ६२।

३—डी प्रोफण्डिस, पृ० ७७, न्यूयार्क १६५०

४—इण्टेंशन्स द डिके आफ लाइंग, पृ० ३३

५—वही, द क्रिटिक ऐज आर्टिस्ट, पृ० १३०

६—मिससेलीज, लदन, १६०८, पृ० २६०, एसेज स० एच० पीएसन, पृ० २६०, २६३, इण्टेंशन्स, पृ० ४४, ५३, रेने वले, वही, ४, पृ० ४१४, ४१३ पर से

"सौंदय को उसने 'प्रतीकों का प्रतीक' बताते हुए लिखा है कि "सौंदय प्रत्येक वस्तु को उद्घाटित करता है क्योंकि वह कुछ भी अभिव्यक्त नही करता।"[१]

वाइल्ड कला को नैतिकता से भिन्न मानता था। लेखक के लिए जनसमाज के सम्पक की आवश्यकता के सम्बन्ध में अपनी विनोदपूर्ण शैली मे उसने लिखा है 'यदि लेखक समाज के सम्पक में न रहे तो उनकी रचनाएँ पढ़ने योग्य नही ठहरतीं, और यदि वे समाज के साथ सम्पक स्थापित करने मे ही लगे रहें तो फिर लिखने का समय उन्हें कहाँ से मिले? इस प्रसग पर अपनी खुद की रचनाओं के सम्बन्ध मे उसने कहा है, "मैं इसलिए लिखता हूँ कि लिखने से मुझे अधिक से अधिक कलात्मक आनद प्राप्त होता है। यदि मेरी रचना कुछ ही लोगों को पसन्द आय तो भी मुझे सतोष है। कदाचित् ऐसा न हो तो भी मुझे दुख नही। जहाँ तक जन-सामान्य का प्रश्न है, जन-सामान्य का उपन्यासकार होने की मुझे आकांक्षा नही है, यह बहुत आसान है। पुस्तकों की नैतिकता अथवा अनैतिकता के सम्बन्ध मे दो ही बातें सभव हैं—या तो कोई पुस्तक अच्छी लिखी गई है, या अच्छी नही लिखी गई, तथा यदि किसी रचना मे सौंदय अथवा वाग्वदग्ध्य विद्यमान है तो लेखक के लिए इतना पर्याप्त है।[२] गुण और दोष को उसने एसे ही स्वीकार किया है जसे किसी चित्रकार की मजूषा मे उसके रग भरे होते हैं।[३] यदि किसी पुस्तक को बार-बार पढ़कर हमें आनन्द नहीं मिलता तो उसके पढ़ने से कोई लाभ नही।[४] अपनी इसी कलावादी मान्यता के कारण वाइल्ड ने 'समस्त कला को अमर' कहा है।[५]

कला और प्रकृति

जो लोग प्रकृति को सौंदय का आदर्श मानते हैं उनके मत को वाइल्ड ने अमान्य किया है। प्रकृति कला की अपेक्षा हीन है तथा कला मे प्रकृति को पहले से जानने और उसमें सशोधन परिवर्तन करने की सामर्थ्य मौजूद है। अपने एक सवाद मे वह लिखता है, 'मेरा अनुभव है कि जितना ही अधिक हम कला का अध्ययन करते हैं, उतना ही कम प्रकृति की हम परवा करते हैं। कला इस बात को उद्घाटित

१—इन्टेन्शन्स, वही, पृ० १४६

२—देखिए जगदीशचन्द्र जन विश्व साहित्य के ज्योतिपुञ्ज, पृ० १०४

३—द पिक्चर आफ डोरियन ग्रे, भूमिका रन यले वही ४, पृ० ४१३

४—इन्टेन्शन्स, द क्रिटिक ऑफ साइग, पृ० २०

५—ह्विस्लर ने भी लिखा है मानवता कला का स्थान ग्रहण करती है, और ईश्वर की सृष्टि को उसकी उपयोगिता के कारण, क्षमा कर दिया जाता है", द जटल आर्ट ऑफ मेकिंग एनीमीज, पृ० १४३

करती है कि प्रकृति में उद्देश्य की कमी है उसमे एक कौतूहलपूर्ण अधकचरापन है, असाधारण नीरसता है तथा पूर्णतया अपरिष्कृत उसकी अवस्था है। अवश्य ही प्रकृति का उद्देश्य उत्तम है लेकिन जैसा अरिस्टोटल न कहा है, वह उसे कार्य रूप में परिणत नही कर सकती। जब मैं किसी प्राकृतिक दृश्य की ओर दृष्टिपात करता हूँ तो मैं उसके दोषों को देखने के लिए विवश हो जाता हूँ। हमारे लिए यह सौभाग्य की बात है कि प्रकृति इतनी अपूर्ण है, यदि ऐसा न होता तो हमें कला की बिल्कुल ही जरूरत न होती।[1] आगे चलकर, "जब मैं किसी बगीचे मे टहलता हूँ तो हमेशा सोचा करता हूँ कि मैं एक ढाल पर चरनेवाले पशु से, अथवा किसी गड्ढ में फलने फूलनेवाले पौधे से बढकर नही हूँ।"[2] तथा, "वर्ड्सवर्थ झीलों की ओर बढा, किन्तु वह कभी झील का कवि नही बना। अपने उपदेशों को उसने पाषाणों में प्राप्त किया जिन्हें उसने वहाँ पहले से छिपाकर रक्खा था। वह शहरों की नैतिकता का उपदेश देता फिरा, किन्तु उसको उत्तम रचना लिखी गई तब जब कि वह प्रकृति की ओर नही, कविता की ओर लौटकर आया।[3] इसी बात को और स्पष्ट करते हुए लिखा है, "वस्तुए इसलिए हैं क्योंकि हम उन्हें देखते हैं। तथा हम क्या देखते हैं और कैसे देखते हैं यह उस कला पर निर्भर है जिसने हमे प्रभावित किया है। किसी चीज पर नजर डालना और उसे देखना, ये दोनो बातें भिन्न हैं। जब तक कोई किसी वस्तु के सौंदर्य के दर्शन नही करता तब तक वह उसे नही देखता। तभी और केवल तभी वह वस्तु अपने अस्तित्व मे आती है। आजकल लोग कुहरे को देखते हैं, इसलिए नही कि कुहरा मौजूद है बल्कि इसलिए कि कवियों और चित्रकारों ने उन्हें इस रहस्यात्मक कमनीयता की शिक्षा दी है।"[4]

कला में रूपविधान

कलावादी सिद्धान्त का समर्थक होने के कारण वाइल्ड ने किसी कृति के लिए रचनातन्त्र को महत्वपूर्ण माना है। उसके अनुसार, 'किसी कलाकृति में रूपविधान और विषयवस्तु को एक दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता, वे सदा एक ही रहते हैं। लेकिन विश्लेषण करते समय, तथा क्षणभर के लिये सौन्दर्यात्मक प्रभाव की सपूर्णता को अलग करते हुए बौद्धिक दृष्टि से हम उन्हें पृथक कर सकते हैं।"[5] "सच्चा कलाकार वह है जो अनुभूति से रूपविधान की ओर नही, बल्कि रूपविधान

१—इन्टेशन्स द डिके आफ लाइंग, पृ० ३-४
२—वही पृ० ५
३—वही, पृ० २१
४—वही, पृ० ४२
५—एसेज, स० पोएसन, पृ० २५३, रेने वले, वही ४, पृ० ४१२

से विचार और भावावेश की ओर बढ़ता है।" "अपनी प्रेरणा वह रूपविधान से और शुद्ध रूप से रूपविधान से ही प्राप्त करता है।" "रूपविधान वस्तुओं का आरम्भ है।" "रूपविधान जो भावावेश को जन्म देता है, दुख का अंत भी है।"[१] उसने "रूपविधान को जीवन का रहस्य" स्वीकार किया है। वह लिखता है, "रूपविधान की उपासना से आरम्भ करो और कला में कोई ऐसा रहस्य अवशेष न रह जायेगा जो उद्घाटित न हो जाय।" तथा, "दुख को अभिव्यक्ति प्रदान करो और वह तुम्हें प्रिय लगने लगेगा, सुख को अभिव्यक्ति प्रदान करो और हर्षातिरेक गहरा हो जायगा। क्या तुम प्रेम करना चाहते हो? यदि हाँ, तो प्रेम की प्रार्थना करो और उसके शब्द हृदय में एक ललक पैदा कर देंगे जिससे कि दुनिया समझती है कि वे उद्भूत हुए हैं।"[२]

१—इन्टेंशन्स, पृ० ११७–१८, रेमे वेमे, वही, पृ० ४१३

२—इन्टेन्शन्स द क्रिटिक ऑफ आइज़ द क्रिटिक ऐज़ आर्टिस्ट पृ० २०८

ए० सी० ब्रैडले (१८५१–१९३५)

ह्विस्लर और वाल्टर पेटर आदि की भाँति ब्रैडले ने भी 'कला के लिए कला' सिद्धान्त का ही समर्थन किया है। पेटर को उसने रूपवादी सिद्धान्त का अधिकारी विद्वान् माना है। सुप्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक हेगेल की आदर्शवादी मान्यताओं से भी वह प्रभावित हुआ था जिसका प्रभाव उसकी 'शेक्सपियरियन ट्रेजेडी' (१९०४) पर पड़ा। ब्रैडले की यह रचना शेक्सपियर के नाटकों का अध्ययन करने के लिए समीक्षा जगत् में खूब ही लोकप्रिय हुई। ब्रैडले आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में अंग्रेजी कविता का प्रोफेसर था। इस समय समीक्षा सम्बन्धी अनेक विषयों पर उसने सारगर्भित व्याख्यान दिये। इन्हें संशोधित और परिवर्धित रूप में 'आक्सफोर्ड लेक्चर्स आन पोएट्री' (१९०९) नाम से प्रसिद्ध किया गया।

कविता में कल्पनात्मक अनुभव

अपने 'काव्य काव्य के लिए'[1] (१९०१) निबन्ध में ब्रैडले ने कलावादी सिद्धान्त सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण गंभीर विचार व्यक्त किये हैं जिनके कारण पाश्चात्य समीक्षा जगत् में यह सिद्धान्त सुप्रतिष्ठित हो सका। उसने "वास्तविक कविता को उन अनुभवों, ध्वनियों, बिम्बों, विचारों और भावावेशों का तारतम्य कहा है जिनसे होकर हम उस समय गुजरते हैं जब हम किसी कविता को, जितना हो सकता है, काव्यरूप में पढ़ते हैं।"[1] यह कल्पनात्मक अनुभव प्रत्येक पाठक के लिए, जब कभी वह कविता पढ़ता है, भिन्न होता है।

कल्पनात्मक अनुभव के सम्बन्ध में तीन बातें बतायी गयी हैं। "पहली तो यह कि यह अनुभव अपने आपमें साध्य है, अपने ही कारण यह ग्राह्य है और इसका आन्तरिक मूल्य है। दूसरे, जो काव्यात्मक मूल्य है, वही इसका आन्तरिक गुण है।" वैसे 'काव्य का परोक्ष मूल्य भी हो सकता है, क्योंकि वह संस्कृति और धर्म का साधन है, उससे शिक्षा मिलती है, मनोविकार शिथिल पड़ जाते हैं, श्रेयस्कर प्रयोजन को प्रोत्साहन मिलता है, तथा कवि को यश, धन अथवा निर्विकार अन्तःकरण की प्राप्ति होती है।" किन्तु काव्य के इस महत्त्व के कारण संतोषजनक कल्पनात्मक अनुभव के रूप में काव्यमूल्य का निर्धारण नहीं हो सकता। इसका निर्णय तो आभ्यन्तरिक ही होगा। एक तीसरी बात और है, यद्यपि उसे आवश्यक नहीं माना गया है। "कवि अपनी सृजन प्रक्रिया के अथवा पाठक अपनी अनुभव की

---

१ -आक्सफोर्ड लेक्चर्स आन पोएट्री, पृ० ४, लंदन, १९३४

प्रक्रिया के समय यदि परोक्ष मूल्यों की ओर ध्यान देता है तो काव्यमूल्य में हीन भाव आ जाता है।' कारण यही कि इससे अपने वातावरण के बाहर चले जाने से कविता की प्रकृति ही बदल जाती है। "क्योंकि उसकी प्रकृति वास्तविक जगत् का अंश अथवा प्रतिकृति न होकर स्वयं एक निरपेक्ष, सम्पूर्ण और स्वायत्त जगत् होती है। इसपर सम्पूर्णतया अधिकार प्राप्त करने के लिए, इस जगत् में प्रवेश पाकर इसके नियमों का पालन करना होता है। तथा उन विश्वासों, प्रयोजनों और विशिष्ट स्थितियों की उपेक्षा करनी होती है जिनका सम्बन्ध वास्तविक जगत् में हमसे रहता है।"[१]

कलावादी मत सम्बन्धी भ्रांतियों का निराकरण

'कला कला के लिए' के सम्बन्ध में अनेक भ्रांतियां हैं जिनका निराकरण आवश्यक है। कुछ लोगों का कहना है कि 'कला कला के लिए' का अर्थ यह नहीं कि 'कला अपने आपमें साध्य है', इसका अर्थ करना चाहिए कि 'कला मानव जीवन का सम्पूर्ण अथवा सर्वोच्च साध्य है'। लेकिन ब्रैडले का कथन है, 'कला अपने आपमें साध्य है—यह सिद्धान्त नैतिक निर्णयों से सम्बन्ध रखनेवाले उन विविध प्रश्नों के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहता जो इस तथ्य से उद्भूत होते हैं कि बहुमुखी जीवन में काव्य का अपना स्थान है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि काव्य मानवहित का विरोधी है क्योंकि ब्रैडले ने कविता को एक प्रकार का मानवहित ही स्वीकार किया है। "और इस हित के आन्तरिक मूल्य का निर्धारण दूसरे हित का प्रत्यक्ष निर्देश करके नहीं किया जा सकता।'[२]

दूसरा आक्षेप है, इस तरह तो कविता जीवन से बिल्कुल दूर हो जाती है। लेकिन ऐसी बात नहीं, क्योंकि ब्रैडले ने 'जीवन और काव्य में फुटकल सम्बन्ध स्वीकार किया है यद्यपि यह सम्बन्ध प्रच्छन्न है। दोनों एक ही वस्तु के विविध रूप कहे जा सकते हैं। एक में वास्तविकता रहती है जो क्वचित् ही पूर्ण रूप से कल्पना को सन्तोष प्रदान करता है, जबकि दूसरा कोई ऐसी चीज देता है जो कल्पना को सन्तोष प्रदान करे, लेकिन उसमें पूर्ण वास्तविकता नहीं रहती।' समानान्तर रूप से दोनों का विकास होता है इसलिए दोनों कहीं मिलते नहीं। दोनों एक जैसे हैं इसलिए हम एक की सहायता से दूसरे को समझते हैं, और एक के कारण दूसरे का परवा करते हैं। इसलिए ब्रैडले ने कविता को न जीवन स्वीकार किया है और न जीवन की प्रतिकृति। उनके अनुसार "काव्य में काव्यमूल्य होने का प्रमुख कारण यही है कि काव्य हमारे सम्मुख अपने ढंग से कोई ऐसी वस्तु प्रस्तुत करता है जो हमें प्रकृति अथवा जीवन में एक भिन्न रूप में प्राप्त होती है, तथा काव्य मूल्य

१—वही, पृ० ५

२—वही, पृ० ५६

का कसौटी केवल इसी बात में है कि वह हमारी कल्पना के लिए सन्तोषप्रद है या नहीं।"[1]

तीसरा आक्षेप है कि इससे काव्य अर्थहीन हो जाता है। वस्तुत ब्रैडले के लिए यह सिद्धान्त 'रूपविधान रूपविधान के लिए का है। जब तक कवि किसी बात को भलीभाति कहता है, तब तक यह महत्त्वपूर्ण नही कि वह क्या कहता है। कविता की दृष्टि से 'क्या' का महत्त्व नही, महत्त्व इसका है कि वह 'कैसे' कहता है। विषयसामग्री, विषय (सब्जैक्ट), विषयवस्तु और सारतत्त्व (सब्स्टैंस) का महत्त्व नही। ऐसा कोई विषय नही जिसका प्रतिपादन कविता न करती हो। दूसरे शब्दों में, "काव्य म रूपविधान और प्रतिपादन शैली ही सब कुछ है।" कला का रहस्य यही है कि 'रूपविधान के द्वारा वह विषयसामग्री (मैटर) का उन्मूलन करें'।"[2]

विषय और रूपविधान का पृथक्त्व

विषय, विषयसामग्री और सारतत्त्व को ब्रडले ने रूपविधान और शैली से पृथक स्वीकार किया है। विषय को उसने कविता के अन्दर नही, उसके बाहर माना है। वह लिखता है, "अतएव विषय बिल्कुल भी कविता की विषयसामग्री नही है, और विषय का जो उल्टा है, वह कविता का रूपविधान नही है, किन्तु वह सम्पूर्ण कविता है। विषय एक चीज है, कविता, विषयसामग्री और रूपविधान दूसरी।' अतएव "काव्य का मूल्य विषय मे न रहकर पूर्ण रूप से, उसके विपरीत कविता मे निहित है। विषय काव्यमूल्य का इसलिए निर्धारण नही कर सकता कि केवल एक ही विषय पर अच्छी बुरी कितने ही प्रकार की कविताएँ लिखी जा सकती हैं अथवा एक पालतू चिडिया जैसे मामूली से विषय पर भी सुन्दर कविता लिखी जा सकती है।[3]

कविता का विषय

किन विषयों पर कविता लिखी जाती है और किन पर नही ? इसके उत्तर में ब्रडले ने कुछ विषयो को सुन्दर और कुछ को असुन्दर मानकर काव्य रचना करने और तदनुरूप कविता के मूल्याकन करने को युक्तियुक्त स्वीकार नही किया। वह लिखता है, कविता मे क्या वस्तु है उसी के आधार पर कवि का मूल्याकन होना चाहिए न कि इस आधार पर कि उसकी कृति मे पूर्व वस्तु का क्या रूप था। पहले

१—वही, पृ० ६ ७
२—वही पृ० ७
३—वही, पृ० ६–१०

से यह कहने का साहस भी हम नहीं कर सकते कि जो वस्तु हमारे लिए आवश्यक, अनावश्यक अथवा घृणित है, वह कवि की सच्ची कविता का आधार नहीं हो सकती ?" तथा, "कविता लिखने के बाद उसे प्रकाशित कराना चाहिए या नहीं ? अथवा कवि की रचना में जो बात कही गयी है वह किसी अधम शुद्धतावादी या अधम भोगवादी के मन में स्थित विचार के साथ उलझ तो नहीं जायगी ? इत्यादि प्रश्नों का जितना नीति से सम्बन्ध है उतना कला से नहीं।"[1]

क्या रूपविधान ही सब कुछ है ?

ब्रैडले ने यहाँ ऐसे रूपवादियों के मत को अमान्य ठहराया है, जो सारतत्त्व और रूपविधान तथा विषय और कविता में विरोध प्रदर्शित करते हुए केवल रूपविधान पर ही सारा जोर लगा देते हैं, क्योंकि उनका कहना है कि रूपविधान का उलटा है केवल विषय। इससे सामान्य पाठक क्रुद्ध हो जाता है, लेकिन वह स्वयं भी यही भूल करता है, तथा जो प्रशंसा वास्तव में सारतत्त्व[2] (सब्स्टन्स) को मिलनी चाहिए वह विषय को मिलती है।'[3] ब्रैडले का कहना है कि जैसे हम रक्त में से जीवित रक्त और जीवन को अलग अलग नहीं कर सकते, उसी तरह सारतत्व और विषय को भी अलग नहीं किया जा सकता। इस ऐक्य के उसने विविध पक्ष स्वीकार किये हैं। उसने लिखा है, ' वे परस्पर 'सहमत नहीं होते क्योंकि वे पृथक नहीं हैं। विभिन्न दृष्टिकोणों से देखा जाय तो वे दोनों एक हैं और इस अर्थ में समान हैं। और उनकी यह अभिन्नता कोई आकस्मिक संयोग नहीं है। जहाँ तक काव्य काव्य है और कला कला है, यह अभिन्नता उनका सार है।" "जिस प्रकार संगीत में ध्वनि और अर्थ अलग अलग नहीं होते, वहाँ केवल एक व्यंजक ध्वनि होती है, और यदि कोई उसके अर्थ के सम्बन्ध में जानना चाहे तो ध्वनि की ओर ही संकेत कर दिया जाता है जिस प्रकार किसी चित्र में अर्थ और चित्रकारी अलग अलग नहीं होते, किन्तु चित्रकारी में ही अर्थ होता है इसी प्रकार कविता में यथार्थ सारतत्त्व (यहाँ 'कण्टेण्ट' शब्द का प्रयोग हुआ है) और यथार्थ रूपविधान का अस्तित्व न पृथक पृथक होता है और न उनके पृथक् अस्तित्व की कल्पना ही की जा सकती है।" अतएव जब प्रश्न उपस्थित होता है कि काव्य का मूल्य वस्तुतत्व में निहित है अथवा रूपविधान में ? तो उसका उत्तर है कि '*वह न वस्तुतत्त्व में निहित है न रूपविधान में और न उनके संयोग में*,वह तो काव्य में (अथवा काव्यानुभूति में—लेखक) निहित है, जहाँ वे नहीं हैं।[4]

१—वही पृ० १०-११

२—काव्य की कथा, दृश्य, पात्रों और मनोवेगों को सारतत्त्व कहा गया है।

३—वही, पृ० १३

४—वही पृ० १५-१६

इस तरह हम दो प्रकार का विरोध देखते हैं—एक विषय और कविता का विरोध, दूसरा, सारतत्त्व और रूपविधान का विरोध। विषय और कविता का विरोध स्पष्ट और संगत है। जब हम प्रश्न करते हैं कि काव्यमूल्य विषय में निहित है या कविता में ? तो इसका उत्तर है कविता मे। दूसरा विरोध सारतत्त्व और रूपविधान का है। "यदि सारतत्त्व का तात्पर्य केवल विचार और बिम्ब आदि से है तथा रूप-विधान का तात्पर्य केवल छन्दोबद्ध भाषा से है तो दोनों में संभवनीय अन्तर माना जा सकता है। लेकिन यह अन्तर उन वस्तुओं का है जो काव्य में नहीं है, और काव्यमूल्य उन दोनों में से किसी मे भी नहीं है। तथा यदि सारतत्त्व और रूपविधान का तात्पर्य किसी ऐसी वस्तु से है जो काव्य में है तो इसका मतलब हुआ कि वे एक-दूसरे में सन्निहित हैं और तब इस प्रश्न का कोई अर्थ नहीं रह जाता कि इन दोनों में से किसमें काव्य का मूल्य विद्यमान है।"[1]

रूपविधान अभिव्यंजना है

ब्रैडले के अनुसार, "काव्य में केवल रूपविधान जैसी कोई चीज नहीं है। सारा रूपविधान अभिव्यंजना है" शैली को उसने अभिव्यंजक माना है। लेखक के मस्तिष्क में घूमनेवाले विचारों को वह एक क्रम, सहजता और वेग के साथ प्रस्तुत करती है, किन्तु यह उस वाक्यविशेष के अर्थ की व्यंजक नहीं होती। इस सम्बन्ध में पेटर के सिद्धान्त को उद्धृत करते हुए उसने लिखा है कि 'पेटर के अनुसार, शैली का एक गुण सत्य अथवा संगति है, शब्दों, वाक्यांशों और वाक्यों को लेखक के भावों विचारों और अनुभूतियों को पूर्णतया अभिव्यक्त करना चाहिए जिससे कि हम किसी लेखक की कोई पंक्ति पढ़कर कह उठें कि यह तो स्वयं वस्तु ही है'। इसे ही रूप-विधान और सारतत्त्व की एकता कहा गया है। अतएव ब्रैडले के अनुसार, वास्तविक काव्य का अर्थ उसके अपने शब्दों में ही व्यक्त किया जा सकता है, अथवा अर्थ में हरफेर किये बिना शब्दों में हेरफेर करना असम्भव है। ऐसे काव्य के अनुवाद को उसने नये परिवेष में पुराना अर्थ स्वीकार नहीं किया, बल्कि उसे एक नया सृजन कहा है, जो रूपविधान की अपेक्षा, उसके अर्थ की दृष्टि से अधिक मिलता जुलता है।[2] ब्रैडले का कथन है, 'जब कविता अपने किसी भाव के उपयुक्त होती है तथा शुद्ध काव्यात्मक होती है तो उसमें रूपविधान और सारतत्त्व की एकता पायी जाती है तथा शुद्धता के परिमाण की परीक्षा तब होती है जब हमें इस बात का अनुभव होता है कि अपने खुद के रूपविधान के सिवाय अन्य किसी रूपविधान के द्वारा काव्य का प्रभाव पैदा करने में वह असफल रहती है।"[3]

१—वही, पृ० १६

२—वही, पृ० १८–१९

३—वही, पृ० २२

ब्रडले ने कविता को चित्रकला और संगीत से भिन्न स्वीकार नहीं किया। इन सभी में सारतत्त्व और रूपविधान की अभिन्नता रहती है। 'काव्य हमारे सर्वोत्तम ज्ञान अथवा विश्वास को कल्पना के समक्ष प्रस्तुत नहीं करता, हमारे स्वप्नों और अभिमतों को तो और भी कम। किन्तु सारतत्त्व और रूपविधान का ऐक्य हो जाने पर, यह किसी ऐसी असाधारण वस्तु को साकार करता है, जो स्वयं अन्य असाधारण रूपों में भी—उदाहरण के लिए, दर्शन अथवा धर्म में—साकार हो सकती है।'[1]

श्रेष्ठ कविता में असत्य संकेतों का सूचन

ब्रडले के अनुसार, श्रेष्ठ कविता में असत्य संकेतों का सूचन रहता है। 'कवि हमारे सम्मुख कोई बात प्रस्तुत करता है, लेकिन उसमें सबका रहस्य अन्तर्निहित है। वह वही कहता है जो उसका अभिप्राय होता है लेकिन उससे ऐसी बात का संकेत मिलता हुआ प्रतीत होता है जो उससे दूर है, अथवा वह किसी ऐसे असीम तक फैल जाना चाहता है जो असीम उसमें केंद्रित है। वह कुछ ऐसी बात है, जिसका हम अनुभव करते हैं। वह केवल हमारी कल्पना को ही सन्तोष प्रदान नहीं करता, लेकिन हमारे सम्पूर्णत्व को सन्तोष देता है। वह ऐसी वस्तु है जो हमारे अन्दर भी है और बाहर भी, जो सर्वत्र है, जो किसी स्वप्न के अंशों को जोड़ती हुई प्रतीत होती है, उसका कोई अंश सत्य सिद्ध होता है, और कोई अंश हृदय में धड़कन और कंपन पैदा करता है।'[2]

१—वही पृ० २५

२—वही, पृ० २६

वेनेदेतो क्रोचे (१८६६–१९५२)

सौंदर्यशास्त्र का प्रतिष्ठाता

क्रोचे आधुनिक युग का एक प्रतिभाशाली दार्शनिक हो गया है। सौंदयशास्त्र के पृथक अस्तित्व को सिद्ध करके पश्चिम के विचारकों को उसने इसी प्रकार आश्चर्य चकित कर दिया जैसे वरुण ग्रह की खोज से ज्योतिषियों और गणितज्ञों न वनानिकों को। अब तक आचारशास्त्र, अथशास्त्र और तकशास्त्र के साथ ही सौंदयशास्त्र की गणना होती थी, किन्तु क्रोचे ने उस स्वतन्त्र स्थान दिया।

क्रोचे का प्रारम्भिक शिक्षा नेपुल्स मे हुई—वहा नेपुल्स जहा थामस एक्विनास, गिओर्दानो, ब्रूनो और विचो को विशाल मूर्तियो पर सूयदव अपनी किरण फैलाकर प्रकृति की सुषमा बिखेरते थे। इटली म क्रोचे को अत्य त सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था—यहाँ तक कि यदि १८५० से १६०० तक के इटली को क्रोचे का इटली कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। १९२० २१ म वही इटली सरकार के केंद्रीय मन्त्रिमडल में शिक्षामन्त्री के पद पर रहा। कोलम्बिया विश्वविद्यालय ने उस साहित्य के क्षत्र मे उसकी मौलिक तथा महत्वपूण देन के कारण सुवण पदक प्रदान कर सम्मानित किया।

क्रोचे की रचनाएँ

क्रोचे एक आत्मवादी दार्शनिक था जिसने समय समय पर अपनी रचनाओं मे भौतिकवादी परम्परा पर सशक्त प्रहार किये हैं। आरम्भ म वह मार्क्सवादी विचार-धारा से प्रभावित हुआ लेकिन आगे चलकर उसने इस विचारधारा के दार्शनिक और आर्थिक सिद्धातों के साथ विरोध प्रकट किया। सन् १६०० में नेपुल्स की एकेडेमिया पोन्तानिआना के समक्ष 'फण्डेमैंटल थीसिस ऑफ ऐन ऐस्थेटिक ऐज साइन्स ऑफ एक्सप्रेशन एण्ड जनरल लिंग्विस्टिक' (अभिव्यक्ति तथा सामान्य भाषा-विज्ञान का शास्त्र के रूप में सौन्दय सम्बन्धी मौलिक सिद्धान्त) नामक एक निबन्ध प्रस्तुत किया जो एक युग प्रवतक सिद्धात के रूप में १६०२ में 'सौंदयशास्त्र' नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ। आगे चलकर १६१२ में राइस नामक सस्था के उद्घाटन के अवसर पर क्रोचे ने एक सारगर्भित भाषण दिया जो 'एसेन्स आफ ऐस्थेटिक्स' (सौंदयशास्त्र का मूलतत्त्व) नाम से १६२१ में प्रकाशित हुआ।[1] क्रोचे अन्य रचनाओं में 'गियांबातिस्ता विचो' 'हिस्टोरिकल मैटीरियलिज्म एण्ड द इकोनो

१— सौन्दयशास्त्र के मूल तत्त्व' नाम से हिन्दी में इलाहाबाद, १६६७ में प्रकाशित।

मेथड ऑफ कार्ल मार्क्स' (ऐतिहासिक भौतिकवाद तथा कार्ल मार्क्स का अर्थशास्त्र), पोएट्री ऑफ दान्ते' (मृत्यु की कविता), पॉलिटिक्स एँड मॉरल्स (राजनीति और नीतिशास्त्र), 'द डिफेंस ऑफ पोएट्री' (कविता की वकालत) तथा 'माई फिलासाफी' (मेरा जीवनदर्शन) आदि उल्लेखनीय हैं। *अन्तिम रचना में विविध* विषयों पर लिखे हुए निबन्धों का संग्रह है। ऐनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में सौंदर्यशास्त्र' पर लेख लिखकर क्रोचे ने अपने सिद्धान्त को अंग्रेजीभाषी पाठकों तक पहुँचाकर उसे अमर बना दिया।

सौंदर्यवादी सिद्धान्त की परम्परा

कला के अभिव्यक्तिवादी सिद्धान्त को प्रतिष्ठित करने में जर्मन दार्शनिकों और कॉलरिज का हाथ रहा है। आगे चलकर उन्नीसवीं शताब्दी में जैसे-जैसे इस सिद्धान्त को निरखा परखा गया उसमें प्रौढ़ता आती गयी। यद्यपि क्रोचे का सौंदर्यवादी सिद्धान्त बोदलेयर, ह्विस्लर और वाइल्ड के रूपवादी सिद्धान्तों से भिन्न है फिर भी इस सिद्धान्त को 'कला कला के लिए' सिद्धान्त का अधिनायक कहा जा सकता है जो कि कला की शुद्धता को युक्तियुक्त सिद्ध करने में सहायक हुआ।

हेगेल के मत में कला का ह्रास

हेगेल जर्मन क्लासिकल भाववादी विचारधारा का अग्रगण्य प्रतिनिधि हो गया है। उसी ने दर्शन को विज्ञान का रूप देते हुए विपरीत तत्वों की एकता को दर्शन का आधार घोषित किया था। उसका कथन था कि संघर्ष में ही सर्वोच्च अभिन्नता रहती है जो संघर्ष की काट करती है। इस प्रकार चिन्तन की द्वंद्वात्मक पद्धति को अपना कर उसने दार्शनिक जगत् को एक नया मोड़ दिया। लेकिन क्रोचे ने हेगेल के द्वंद्वात्मक चिन्तन की कमजोरी बताते हुए कहा है कि "जब वह विपरीत वस्तुओं की एकता की बात करता है तो वह दो भिन्न भिन्न वस्तुओं को भी विपरीत वस्तु समझने लगता है। उदाहरण के लिए, जब हेगेल पूर्वपक्ष, उत्तरपक्ष और समन्वय का त्र्यात्मक सिद्धान्त प्ररूपित करता है तो सत्य और असत्य सत् और असत् तथा अस्तित्व और नास्तित्व के लिए तो यह सिद्धान्त उचित कहा जा सकता है, लेकिन कला और दर्शन, उपयोगी और नैतिक तथा सौंदर्य और सत्य—जो विपरीत न होकर दो विभिन्न भिन्न वस्तुएँ हैं—के लिए उचित नहीं कहा जा सकता।" क्रोचे का कथन है कि अपनी इसी मान्यता के कारण 'हेगेल ने कला की मृत्यु की इतिहास के दर्शन की तथा प्रकृति के दर्शन के निर्माण के निरर्थक कार्य में प्राकृतिक विज्ञान का उपयोग करने की संभावना बतायी है।" क्रोचे के अनुसार, इस कठिनाई को हल करने का एक ही उपाय है वह यह कि "दो विपरीत तत्त्वों के संघर्ष से उत्पन्न होनेवाले समन्वय को भिन्न भिन्न वस्तुओं के संघर्ष से उत्पन्न हुआ न मानकर,

विपरीत तत्वों के संघर्ष से ही उत्पन्न मानना चाहिए। कारण कि दो भिन्न भिन्न वस्तुओं में एक उत्कृष्ट और दूसरी निकृष्ट हो सकती है, तथा निकृष्ट उत्कृष्ट के बिना भी रह सकती है, जबकि उत्कृष्ट निकृष्ट के बिना नहीं रह सकता है।" निष्कर्ष यह है कि इसी तरह "दर्शन कला के बिना नहीं रह सकता, तथा कला का स्थान दर्शन की अपेक्षा निम्न होने से वह दर्शन के बिना रह सकती है और रहती है।"[1]

क्रोचे ने लिखा है "हेगेल ने कला को धर्म और दर्शन के साथ, पूर्ण आत्मा के क्षेत्र में रखा है। ऐसी हालत में सशक्त और आक्रमणशील संगति में—खासतौर से हेगेल के मतानुसार आध्यात्मिक विकास के शिखर पर आसीन दर्शन के साथ—रहनेवाली कला अपना स्वतन्त्र अस्तित्व किस प्रकार कायम रख सकती है? यदि कला और धर्मपूर्ण के ज्ञान के सिवाय अन्य किसी कार्य को सम्पादित करते हैं, तो वे आत्मा के स्तर से निम्न कोटि के होंगे, यद्यपि फिर भी आवश्यक और अनिवार्य रहेंगे। लेकिन यदि उनका उद्देश्य वही होगा जो दर्शन का है और यदि वे दर्शन के साथ होड़ करेंगे तो फिर उनका क्या मूल्य रह जायगा? कुछ भी नहीं। अथवा अधिक से अधिक उनका वही मूल्य होगा जो मानवता के जीवन की अस्थायी ऐतिहासिक अवस्था को दिया जाता है। हेगेल के सिद्धान्त मूल में बौद्धिक तथा धर्म विरोधी हैं, कला के भी कम विरोधी वे नहीं हैं।"[2] इस प्रकार हम देखते हैं कि हेगेल के दर्शन को कला विरोधी सिद्ध कर क्रोचे ने कला की परिभाषा ही बदल दी।

अभिव्यंजनावाद के सिद्धांत के समर्थन में ही सहजज्ञान अथवा अन्तर्मन की अभिव्यंजना को उसने कला स्वीकार किया। उसके अनुसार कलाकार के हाथ में लेखनी, कूची अथवा छेनी आने के पहले ही उसके मस्तिष्क में कला का समावेश हो जाता है तथा अपने समस्त भावावेशों और अनुभूतियों को दूर हटाकर, वह किसी कलाकृति का सृजन करने में प्रवृत्त होता है।

कविता की वकालत

शेली की 'कविता की वकालत' का उल्लेख किया जा चुका है जिसे उसने थॉमस लव पीकॉक की कविता विरोधी मान्यता के विरोध में लिखा था। कहा जा चुका है कि पीकॉक कवि को एक अर्ध बर्बर पुरुष स्वीकार करता था जो अतीत युग में ही विचरण किया करता है। उसकी बुद्धि की गति को उसने केकड़े की भाँति प्रतिगामी बताया है। इसके उत्तर में शैली ने कविता को समस्त बौद्धिक, नैतिक और नागरिक जीवन शक्ति का स्थायी स्रोत बताते हुए उसे जीवन के लिए आवश्यक माना, विशेषकर ऐसी अवस्था में जब कि जीवन के मूल्य स्वार्थपरता और यांत्रिकता

१—ऐस्थेटिक, ऐबस्ट्रैक्ट फ्रॉम इन्ट्रोडक्शन पृ० २१-२२, लंदन, १९५३
२—ऐस्थेटिक, पृ० ३०१

से आबद्ध हो। एक ओर उसने क्रमश वृद्धिगत नैतिक ऐतिहासिक, राजनीतिक और आर्थिक विज्ञान, तथा दूसरी ओर कल्याणप्रद कार्य-व्यापार की ओर प्रवृत्त करनेवाली ह्राम को प्राप्त कल्पनात्मक शक्तियों के बीच एक भीषण वैषम्य के दर्शन किये। शेली से कुछ ही वर्ष पूर्व फ्रेडरिख शिलर ने भी, दासता और अराजकता के दलदल मे फँसी हुई मानवता का, कला और कविता की सहायता से, उद्धार करने का प्रयत्न किया।

क्रोचे ने भी कविता की वकालत की। अपनी 'डिफेंस आफ पोएट्री (कविता की वकालत) मे क्रोचे प्रश्न करता है कि क्या आज भी हम शेली और शिलर के युग में रह रहे हैं जो हमें जीवन मे कविता का मूल्य समझने की आवश्यकता है? इसका उत्तर हाँ में दिया गया है। उसने लिखा है कोई भी दिन ऐसा नही गुजरता जब यह विश्वव्यापी असन्तोष सुनने में न आता हो कि ससार मे उच्च उद्देश्य नही रहे हैं, केवल एक ही उद्देश्य बाकी बचा है वह है धन की प्रतियोगिता मे किस प्रकार सफलता प्राप्त की जाय केवल एक ही आनन्द शेष है वह है शारीरिक आनन्द केवल एक ही दृश्य हममें उत्तेजना अथवा आह्लाद की भावना उत्पन्न कर सकता है वह है शारीरिक शक्तियों का अजीब एवं लापरवाही का प्रदर्शन, तथा हमारी एकमात्र होड है राष्ट्रों और जातियों के बीच सर्वोच्च स्थान पाने के लिए भीषण सग्राम।'[1] "विज्ञान तभी रुचिकर होता है जब कि वह उत्पादन की नयी पद्धतियों को जुटा सके दर्शन तभी रुचि पैदा करता है जब वह किसी विशेष वर्ग, शासन और राष्ट्रों के उद्देश्यों को भ्रामक सूत्रों और ढीठ असत्यो से बाँध सके और कला तभी आकर्षक होती है जब कि वह शानदार अभिनय बेसुरी कल्पना अथवा नूतन और विचित्र अनुभूति के निरर्थक वायदो के द्वारा अपने श्रोताओं की मानसिक और आध्यात्मिक रिक्तता को भर सके। "हमारी सभ्यता यान्त्रिक दृष्टि से पूर्ण और आध्यात्मिक दृष्टि से बर्बर है धन समृद्धि का यह लोलुप है तथा हित की दृष्टि से निरपेक्ष है मानवता की चेतना को गति प्रदान करने के लिए यह अत्यन्त जड है। इन सबसे मुक्ति पाने के लिए क्रोचे ने 'कविता की निर्मल वृष्टि" की आवश्यकता स्वीकार की है। इसी से हम प्रेम तथा प्रेम अनुकम्पा के पाश मे फँस सकते हैं। उसी समय "हमारे अन्तःकरण में आशा और आनन्द की किरणों का सचार हो सकता है हमारे अश्रु बिन्दु सूख सकते हैं और हम खुलकर शुद्ध हँसी हँस सकते हैं।[2]

१—द डिफेंस आफ पोएट्री, पृ० ६ ऑक्सफोर्ड, १९३३

२—वही पृ० ७–८

कविता के सत्य और सरल स्वभाव की उपेक्षा

शैली और शिलर दोनों की आलोचना करते हुए क्रोचे का कथन है कि दोनों ने ही सौंदर्य व्यापार के बोध को ग्रहण किया, किन्तु उन्होंने या तो 'कविता के सत्य और सरल स्वभाव की उपेक्षा कर, उसे आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया, अथवा कोई एक कार्यविशेष उसे सौंपा जो उसके योग्य न था। उदाहरण के लिए, शैली ने आध्यात्मिक क्षेत्र में कविता का असाधारण महत्त्व स्वीकार करते हुए उसे मानव सम्पन्नता तथा समस्त सभ्यता का स्रोत बताया है। कवियों को उसने 'संसार के अस्वीकृत विधायक' माना है। "वे केवल भाषा, संगीत, नृत्य, स्थापत्य, मूर्ति और चित्रकला के ही निर्माता नहीं, वरन् कानूनों के व्यवस्थापक नागरिक समाज के संस्थापक, जीवन-कला के आविष्कारक तथा धर्म के शिक्षक भी हैं।' शैली ने कविता को 'सबसे सुखी और सर्वोत्कृष्ट मस्तिष्कों के श्रेष्ठतम और सर्वाधिक सुखमय क्षणों का लिखित विवरण" कहा है। क्रोचे के अनुसार, यह कविता की वास्तविक परिभाषा नहीं उसके सम्बन्ध में केवल काव्यात्मक अथवा कल्पनात्मक उक्ति है, अतः इस परिभाषा को तार्किक अथवा समीक्षात्मक न मानकर काव्यात्मक ही मानना होगा।[1] शिलर द्वारा प्रतिपादित कविता की परिभाषा को भी क्रोचे ने बड़ी अनिश्चित और अस्पष्ट कहा है।[2]

मानव-आत्मा की क्रियाएँ

मानव आत्मा की दो क्रियाएँ होती हैं—एक सैद्धांतिक (थियोरिटिकल) और दूसरी व्यावहारिक (प्रेक्टिकल)। सैद्धांतिक क्रिया द्वारा मनुष्य जीवन में व्यवहार करता है। सैद्धांतिक क्रिया के भी दो प्रकार माने गये हैं एक प्रतिभा अथवा सहजज्ञान संबंधी क्रिया (इंट्यूटिव), दूसरी, तार्किक क्रिया (लॉजिकल)। व्यावहारिक क्रिया दो प्रकार की है—आर्थिक क्रिया (इकानामिक—जीवन के लिए उपयोगी) और नैतिक क्रिया। (मारल)[3]। व्यावहारिक क्रिया सैद्धांतिक क्रिया पर, तथा तार्किक क्रिया सहजज्ञान सम्बन्धी क्रिया पर और नैतिक क्रिया आर्थिक क्रिया पर आधारित रहती है। इन चारों के सम्मिश्रण से आत्मा की रचना स्वीकार की गई है। ये चारों एक दूसरे की अनुगामिनी होकर या साथ साथ चलती हैं, फिर भी कवि की या हमारी आत्मा में इनकी एकान्वयिता प्रतीत होती है।

१—वही पृ० १०-१४

२—देखिए, वही, पृ० १४-१६, ऐस्थेटिक, पृ० २८६ ८८

३—देखिए, ऐस्थेटिक, अध्याय ७, पृ० ५४, डगलस एन्सली का अनुवाद, लंदन, १९५३

सहजज्ञान स्वयंप्रकाश्य ज्ञान

क्रोचे ने कला का सम्बन्ध स्वयंप्रकाश्य ज्ञान से माना है, जिसे सहजानुभूति कहा गया है। यह ज्ञान कल्पना द्वारा उपलब्ध होता है, यह व्यष्टि का अथवा विशिष्ट वस्तुओं का ज्ञान होता है, उसके द्वारा बिम्बों का निर्माण होता है। तार्किक ज्ञान इस सहजज्ञान से भिन्न है। यह बुद्धि के द्वारा उपलब्ध होता है यह सामान्य का अथवा विशिष्ट वस्तुओं के परस्पर सम्बन्धों का ज्ञान है उसके द्वारा सामान्य विचारों का बोध होता है।[1]

सामान्य जीवन में भी सहजज्ञान महत्त्वपूर्ण है। कुछ सत्य ऐसे होते हैं कि उनकी परिभाषा करना कठिन है, सहजज्ञान द्वारा ही उन्हें प्राप्त किया जा सकता है। व्यावहारिक मनुष्य तर्क की अपेक्षा सहजज्ञान का ही अधिक अवलम्बन लेता है। लेकिन प्रश्न होता है "बौद्धिक ज्ञान के प्रकाश के बिना सहजज्ञान क्या कर सकता है? यह ऐसी ही बात होगी, जैसे बिना मालिक का नौकर। यद्यपि मालिक के लिए नौकर उपयोगी है लेकिन नौकर के लिए भी मालिक की आवश्यकता है, क्योंकि वह उसे आजीविका देता है। सहजज्ञान अन्धा होता है बुद्धि उसे आँखें देती है।' क्रोचे का उत्तर है कि सहजज्ञान को किसी मालिक की आवश्यकता नहीं, और न उसे किसी की आँखों की ही आवश्यकता है, क्योंकि उसकी अपनी दृष्टि उत्तम है। वह लिखता है, "किसी चित्रकार द्वारा चित्रित ज्योत्स्ना का प्रभाव, किसी ग्राम्य दृश्य की रूपरेखा, कोमल तथा ओजपूर्ण संगीत की प्रेरणा, उच्छ्वासपूर्ण गीत की ध्वनि, अथवा वे सब चीजें जिन्हें हम अपने सामान्य जीवन में चाहते हैं, जिन पर अधिकार रखते हैं और जिनके लिए शोक करते हैं, वे सब सहजानुभूत तथ्य हो सकते हैं, इनपर बौद्धिक सम्बन्धों की छाया तक नहीं पड़ती।' किसी वैज्ञानिक कृति और कलाकृति में—किसी बौद्धिक और सहजानुभूत तथ्य में—जो अन्तर होता है, वह उन-उन कलाकारों के प्रभाव की समग्रता पर निर्भर करता है। यही प्रभाव की समग्रता इन कृतियों के विभिन्न अंगों को निश्चित और नियमित करती है।[2]

सहजज्ञान और प्रत्यक्ष बोध (परसेप्शन)

क्रोचे के अनुसार सहजानुभूति है प्रत्यक्ष बोध, अथवा वास्तविक सत्ता का ज्ञान—वस्तु के यथार्थ रूप का बोध। वह लिखता है, "जिस कमरे में बैठकर मैं लिख रहा हूँ अपने सामने रखे हुए जिस दावात और कागज का मैं उपयोग कर रहा हूँ, जिस कलम से मैं लिख रहा हूँ तथा जिन वस्तुओं का मैं स्पर्श करता हूँ और जिन्हें उपयोग में लाता हूँ—उन सब वस्तुओं का प्रत्यक्ष बोध सहजानुभूति है। लेकिन इस

१—वही, पृ० १
२—वही, पृ० २३

कमरे मे, दूसरे नगर मे, दूसरे कागज, कलम और दावात का उपयोग करते समय मेरे मन में जो भावना उठ रही है, वह भी सहजानुभूति ही है। तात्पर्य यह कि सहजज्ञान की वास्तविक प्रकृति के लिए यथार्थ और अयथार्थ का ज्ञान गौण है।" अत सहजानुभूति जो यथार्थ अथवा अयथार्थ की सहजानुभूति नही होती, उसे शुद्ध सहजानुभूति स्वाकार किया गया है—'जहाँ सब सत्य है, और कुछ भी सत्य नही है।" इस निश्छल दशा की उपमा उस बालक से दी गयी है जो अपनी बाल्यावस्था में सत्य और असत्य तथा इतिहास और असत्य कथा में कोई अन्तर नहीं समझता। अतएव 'वास्तविकता के प्रत्यक्ष बोध तथा सभव की सरल कल्पना के अभिन्न ऐक्य' को सहजज्ञान कहा गया है।"[1]

सहजानुभूति और सवेदन

सवेदन एक रूपहीन वस्तु है जिसको आत्मा कभी भी एक सरल वस्तु की भाँति अनुभव नहीं कर सकती। कितनी ही बार ऐसा लगता है कि हमारे अन्दर कुछ हो रहा है, लेकिन वह क्या है, इसे हमारा मस्तिष्क समझ नहीं पाता। इसी समय हम वस्तु (मैटर) और रूप (फार्म) के महत् अन्तर को अच्छी तरह जान पाते हैं। 'ये दोनों परस्पर विरोधी नहीं हैं। एक बाह्य तत्त्व है जो हम पर प्रहार करता है और हमारे पैर उखाड़ देता है, जबकि दूसरा अन्तरग तत्त्व है जो बाह्य वस्तु को अपने आपमें मिला लेता है और उसके साथ तादात्म्य स्थापित करने मे प्रवृत्त होता है। वस्तु, जब रूप से आच्छादित कर ली जाती है और जीत ली जाती है तो वह एक मूर्त रूप को उत्पन्न करती है। वस्तु (मैटर) विषयवस्तु (कण्टेंट) से ही एक सहजानुभूति का दूसरी सहजानुभूति से अन्तर जाना जा सकता है। रूप निरन्तर रहने वाला है, यह मानव आत्मा की क्रिया है, जबकि वस्तु परिवर्तनशील है। वस्तु के बिना आत्मिक क्रिया अपनी अमूर्तता छोड़कर मूर्त और वास्तविक क्रिया नहीं हो सकती, वस्तु से ही उसकी अन्तर्वस्तु और उसकी निश्चित सहजानुभूति प्रकट होती है।" यह रूप—'यह आत्मिक क्रिया—हम स्वय हैं, और इसकी प्राय हम उपेक्षा करते आये हैं।"[2] वस्तुत सम्वेदन या प्रतीति को उसने वस्तु, तथा अन्तर्मन की क्रिया को रूप या सहजानुभूति माना है जिसे अभिव्यजना कहा गया है—यह केवल अभिव्यजना है।

सहजानुभूति अभिव्यजना कैसे है?

सहजानुभूति यान्त्रिक, निष्क्रिय और स्वाभाविक तथ्य से भिन्न है। वास्तविक सहजानुभूति अभिव्यजना है। जो अभिव्यजना में मूर्त रूप में नही आता, उसे

१—वही पृ० ३४

२—वही, पृ० ६

सहजज्ञान स्वयंप्रकाश्य ज्ञान

क्रोचे ने कला का सम्बन्ध स्वयंप्रकाश्य ज्ञान से माना है, जिसे सहजानुभूति कहा गया है। यह ज्ञान कल्पना द्वारा उपलब्ध होता है, यह व्यष्टि का अथवा विशिष्ट वस्तुओं का ज्ञान होता है, उसके द्वारा बिम्बों का निर्माण होता है। तार्किक ज्ञान इस सहजज्ञान से भिन्न है। यह बुद्धि के द्वारा उपलब्ध होता है, यह सामान्य का अथवा विशिष्ट वस्तुओं के परस्पर सम्बन्धों का ज्ञान है उसके द्वारा सामान्य विचारों का बोध होता है।[1]

सामान्य जीवन में भी सहजज्ञान महत्वपूर्ण है। कुछ सत्य ऐसे होते हैं कि उनकी परिभाषा करना कठिन है, सहजज्ञान द्वारा ही उन्हें प्राप्त किया जा सकता है। व्यावहारिक मनुष्य तर्क की अपेक्षा सहजज्ञान का ही अधिक अवलम्बन लेता है। लेकिन प्रश्न होता है "बौद्धिक ज्ञान के प्रकाश के बिना सहजज्ञान क्या कर सकता है ? यह ऐसा ही बात होगी, जैसे बिना मालिक का नौकर। यद्यपि मालिक के लिए नौकर उपयोगी है लेकिन नौकर के लिए भी मालिक का आवश्यकता है, क्योंकि वह उसे आजीविका देता है। सहजज्ञान अंधा होता है बुद्धि उसे आँखें देती है।" क्रोचे का उत्तर है कि सहजज्ञान को किसी मालिक की आवश्यकता नहीं, और न उसे किसी की आँखों की ही आवश्यकता है, क्योंकि उसकी अपनी दृष्टि उत्तम है। वह लिखता है "किसी चित्रकार द्वारा चित्रित ज्योत्स्ना का प्रभाव, किसी ग्राम्य दृश्य का रूपरेखा, कोमल तथा ओजपूर्ण संगीत का प्ररणा, उच्छ्वासपूर्ण गीत की ध्वनि, अथवा वे सब चीजें जिन्हें हम अपने सामान्य जीवन मे चाहते हैं जिन पर अधिकार रखते हैं और जिनके लिए शोक करते हैं, वे सब सहजानुभूत तथ्य हो सकते हैं, इनपर बौद्धिक सम्बन्धो की छाया तक नहीं पड़ती।" किसी वैज्ञानिक कृति और कलाकृति में—किसी बौद्धिक और सहजानुभूत तथ्य में—जो अन्तर होता है, वह उन-उन कलाकारों के प्रभाव की समग्रता पर निर्भर करता है। यही प्रभाव की समग्रता इन कृतियों के विभिन्न अंगों को निश्चित और नियमित करती है।[2]

सहजज्ञान और प्रत्यक्ष बोध (परसेप्शन)

क्रोचे के अनुसार सहजानुभूति है प्रत्यक्ष बोध, अथवा वास्तविक सत्ता का ज्ञान—वस्तु के यथार्थ रूप का बोध। वह लिखता है, "जिस कमरे में बैठकर मैं लिख रहा हूँ अपने सामने रक्खे हुए जिस दावात और कागज का मैं उपयोग कर रहा हूँ, जिस कलम से मैं लिख रहा हूँ तथा जिन वस्तुओं का मैं स्पर्श करता हूँ और जिन्हें उपयोग में लाता हूँ—उन सब वस्तुओं का प्रत्यक्ष बोध सहजानुभूति है। लेकिन इस

१—वही पृ० १

२—वही, पृ० २-३

कमरे मे, दूसरे नगर में, दूसरे कागज, कलम और दावात का उपयोग करते समय मेरे मन में जो भावना उठ रही है, वह भी सहजानुभूति ही है। तात्पर्य यह कि सहजज्ञान की वास्तविक प्रकृति के लिए यथार्थ और अयथार्थ का ज्ञान गौण है।" अत सहजानुभूति जो यथार्थ अथवा अयथार्थ की सहजानुभूति नहीं होती, उसे शुद्ध सहजानुभूति स्वीकार किया गया है— जहाँ सब सत्य है, और कुछ भी सत्य नही है।" इस निश्छल दशा की उपमा उस बालक से दी गयी है जो अपनी बाल्यावस्था में सत्य और असत्य तथा इतिहास और असत्य कथा में कोई अन्तर नहीं समझता। अतएव 'वास्तविकता के प्रत्यक्ष बोध तथा सभव की सरल कल्पना के अभिन्न ऐक्य' को सहजज्ञान कहा गया है।"[1]

सहजानुभूति और सवेदन

सवेदन एक रूपहीन वस्तु है जिसको आत्मा कभी भी एक सरल वस्तु की भाँति अनुभव नहीं कर सकती। कितनी ही बार ऐसा लगता है कि हमारे अन्दर कुछ हो रहा है, लेकिन वह क्या है, इसे हमारा मस्तिष्क समझ नही पाता। इसी समय हम वस्तु (मैटर) और रूप (फार्म) के महत् अन्तर को अच्छी तरह जान पाते हैं। "ये दोनों परस्पर विरोधी नहीं हैं। एक बाह्य तत्त्व है जो हम पर प्रहार करता है और हमारे पैर उखाड देता है, जबकि दूसरा अन्तरग तत्त्व है जो बाह्य वस्तु को अपने आपमें मिला लेता है और उसके साथ तादात्म्य स्थापित करने मे प्रवृत्त होता है। वस्तु, जब रूप से आच्छादित कर ली जाती है और जीत ली जाती है तो वह एक मूर्त रूप को उत्पन्न करती है। वस्तु (मैटर) विषयवस्तु (कण्टेंट) से ही एक सहजानुभूति का दूसरी सहजानुभूति से अन्तर जाना जा सकता है। रूप निरन्तर रहने वाला है, यह मानव आत्मा की क्रिया है, जबकि वस्तु परिवर्तनशील है। वस्तु के बिना आत्मिक क्रिया अपनी अमूर्तता छोडकर मूर्त और वास्तविक क्रिया नहीं हो सकती, वस्तु से ही उसकी अन्तर्वस्तु और उसकी निश्चित सहजानुभूति प्रकट होती है।" यह रूप—'यह आत्मिक क्रिया—हम स्वयं हैं और इसकी प्राय हम उपेक्षा करते आये हैं।"[2] वस्तुत सम्वेदन या प्रतीति को उसने वस्तु, तथा अन्तर्मन की क्रिया को रूप या सहजानुभूति माना है जिसे अभिव्यंजना कहा गया है—यह केवल अभिव्यजना है।

सहजानुभूति अभिव्यजना कैसे है?

सहजानुभूति यांत्रिक, निष्क्रिय और स्वाभाविक तथ्य से भिन्न है। वास्तविक सहजानुभूति अभिव्यजना है। जो अभिव्यजना में मूर्त रूप में नहीं आता, उसे

१—वही, पृ० ३४
२—वही, पृ० ६

केवल संवेदन और प्राकृतिक तथ्य ही समझना चाहिए। यदि सहजानुभूति को अभिव्यंजना से पृथक् कर दिया जाय तो वे दोनो फिर से संयुक्त नहीं होते।[1]

सहजज्ञान को अन्तर की एक शक्तिविशेष स्वीकार कर तार्किक अथवा बौद्धिक ज्ञान से उसे निरपेक्ष माना गया है, जैसे कोई चित्र बनाते हुए किसी चित्रकार के मन में जो भाव उत्पन्न होता है—बौद्धिक ज्ञान से शून्य होते हुए भी उसमें सहजज्ञान रहता है। "सहजानुभूति की क्रिया में वहीं तक सहजानुभूति रहती है जहाँ तक वह उसे अभिव्यक्त करती है।" क्रोचे का कहना है कि अभिव्यंजना शब्द से प्राय शाब्दिक अभिव्यंजना का ही अर्थ समझा जाता है, लेकिन इसमें रेखा रग और शब्द की मूक अभिव्यंजना का भी अन्तर्भाव करना चाहिए जो कि किसी वक्ता, चित्रकार अथवा सगीतज्ञ के द्वारा अभिव्यक्त की जाती है। तात्पर्य यह कि अभिव्यंजना किसी भी प्रकार की क्यों न हो, सहजानुभूति से उसकी ऐसी एकता रहती है कि एक दूसरे को अलग नही किया जा सकता। उदाहरण के लिए "हमें किसी रेखा गणित की आकृति की सहजानुभूति तब तक कैसे हो सकती है जब तक कि हमारे मन में उसके सही रूप को किसी कागज पर अंकित करने की क्षमता न हो?' क्या हम किसी ऐसी चीज की कल्पना कर सकते हैं, जिसे जानते हुए भी हम शब्दों में न कह सकें, अथवा उसे चित्रित न कर सकें? दूसरे शब्दों में, 'हर कोई उस आन्तरिक प्रकाश का अनुभव करता है जो उस पर पड़े हुए प्रभाव और उसके भावों को एकत्र करने की सफलता पर निर्भर है। ये भाव अथवा यह प्रभाव शब्दो के माध्यम से, आत्मा के गुह्य प्रदेश से मिलकर अन्तमन की स्पष्टता को प्राप्त होता है। सहजज्ञान और अभिव्यंजना का अन्तर ज्ञात होना असंभव है क्योंकि दोनो एक हैं।"[2] क्रोचे ने लिखा है, "काव्यात्मक सहजानुभूति को तार्किक शब्दो द्वारा व्यक्त नही किया जा सकता। यह कुछ एक असीम वस्तु है जिसकी तुलना केवल उसी लय से की जा सकती है जिसके द्वारा इसकी अभिव्यक्ति होती है और जो गायी जा सकती है, वह कभी गद्य का रूप धारण नही करती।"[3]

अक्सर लोग कहते सुने जाते हैं कि उनके मस्तिष्क मे बड़े बड़े विचार उठते हैं लेकिन वे उन्हें व्यक्त नही कर पाते। इस सम्बन्ध में क्रोचे का कथन है कि यदि सचमुच उनके मस्तिष्क मे विचार उठते तो वे निश्चय ही सरस शब्दो के माध्यम से अभिव्यक्त हुए बिना न रहते। लेकिन यदि अभिव्यंजना की प्रक्रिया मे ये विचार हवा हो रहे हैं अथवा क्षीण होते जा रहे हैं तो समझना चाहिए कि वे थे ही नही, और यदि थे भी तो बहुत न्यून। लोग समझते हैं कि इटली के महान् चित्रकार

१—वही पृ० ८

२—वही, पृ० ८–९

३—डिफेंस ऑफ पोएट्री, पृ० २२

राफेल की भाँति वे भी मेडोना (ड्रेसडेन की वर्जिन मेरी की मूर्ति) की कल्पना कर सकते हैं, लेकिन उनमें और राफेल में यही अन्तर है कि उसने अपने जिस अद्‌भुत कलाकौशल से उसे जिस रूप मे व्यक्त किया है, उस रूप मे वे नहीं कर पाते। क्योंकि उनम राफेल जैसी शिल्प कला का अभाव है, वरना तो दोनो की कल्पना में कोई अन्तर नही।'

कलाकार और सामान्य जनों की सहजानुभूति में अन्तर प्रदर्शित करते हुए क्रोचे ने इटली के यशस्वी कलाकार माइकेल एंजेलो की एक उक्ति प्रस्तुत की है—"कलाकार हाथ से नही, मस्तिष्क से चित्र खीचता है।" लियोनार्डो के शब्दों मे, ' उदात्त प्रतिभावाले लोगों का मानस आविष्कार करते समय अत्यधिक सक्रिय रहता है जबकि वे बाह्य कार्य का कम से-कम करते हैं।" तथा, "कलाकार इसलिए कलाकार है कि वह उन चीजों को देखता है जिन्हें दूसरे लोग केवल महसूस करते हैं या उनकी थोडी सी झलक पा जाते हैं, लेकिन उन्हें देखते नहीं।' कहते हैं कि लियोनार्डो 'ए लास्ट सपर' नामक चित्र अंकित करने के लिए एक सप्ताह तक चित्र फलक के सामने, बिना तूलिका का स्पर्श किये, चुपचाप खडा रहा। इसलिए अन्तर्मन द्वारा साक्षात् किये गये दर्शन को ही यथार्थ दर्शन मानना चाहिए। एक और उदाहरण लें। "हम समझते हैं कि हम कोई मुस्कराहट देखते हैं, लेकिन वास्तव में देखा जाय तो हम पर उसकी एक धुंधली सी छाप पड़ती है। हम उन सब विशेषताओं को ग्रहण नहीं कर पाते जिनसे वह मुस्कराहट बनी है, जैसे कि कोई चित्रकार उन्हें ढूढ निकालता है और अपनी तूलिका के स्पर्श से उनका चित्रण करता है।" इसी प्रकार हर घडी और हमेशा साथ रहनेवाले अपने किसी अतरंग मित्र के बारे में हमें इससे अधिक सहजज्ञान नही होता कि हम केवल उसकी रूपाकृति की विशेषताओं के आधार पर उसे दूसरों से पृथक् कर सकते हैं।

क्रोचे के अनुसार, "हममें से हरेक के अन्दर कवि, मूर्तिकार, संगीतज्ञ, चित्रकार अथवा गद्य लेखक का थोडा सा अंश विद्यमान है। लेकिन इन कलाकारों की तुलना में यह कितना न्यून है ! क्योंकि इन कलाकारों मे मानव प्रकृति की अत्यन्त सार्वभौमिक प्रवृत्तियाँ और शक्तियाँ उत्कृष्ट मात्रा में वर्तमान होती हैं। फिर भी यह न्यून अंश ही हमारी सहजानुभूतियों अथवा उसके प्रतिरूपों की वास्तविक विरासत है। बाकी को तो केवल प्रभाव, संवेदन भाव, आवेश, आवेग अथवा इसी तरह की कोई संज्ञा दे सकते हैं, जो आत्मिक तत्त्व से रिक्त है और मनुष्य ने जिसे आत्मसात् नही किया है।"

अतएव, "सहजानुभूत ज्ञान अभिव्यंजनात्मक ज्ञान है। जहाँ तक बौद्धिक व्यापार का सम्बन्ध है, वह स्वतन्त्र और स्वायत्त है। बाद में होनेवाले अनुभवजन्य भेद प्रभेदों,

१—ऐस्थेटिक, पृ० ९

केवल संवेदन और प्राकृतिक तथ्य ही समझना चाहिए। यदि सहजानुभूति को अभिव्यंजना से पृथक कर दिया जाय तो ये दोनों फिर से संयुक्त नहीं होते।'

सहजज्ञान को अन्तर की एक वृत्तिविशेष स्वीकार कर तार्किक अथवा बौद्धिक ज्ञान से उसे निरपेक्ष माना गया है, जैसे कोई चित्र बनाते हुए किसी चित्रकार के मन में जो भाव उत्पन्न होता है—बौद्धिक ज्ञान से शून्य होने हुए भी उसमें सहजज्ञान रहता है। "सहजानुभूति की क्रिया में वहीं तक सहजानुभूति रहती है जहाँ तक वह उसे अभिव्यक्त करती है।" क्रोचे का कहना है कि अभिव्यंजना शब्द से प्राय शाब्दिक अभिव्यंजना का ही अर्थ समझा जाता है, लेकिन इसमें रेखा रंग और शब्द की मूक अभिव्यंजना का भी अन्तर्भाव करना चाहिए जो कि किसी वक्ता, चित्रकार अथवा संगीतज्ञ के द्वारा अभिव्यक्त की जाती है। तात्पर्य यह कि अभिव्यंजना किसी भी प्रकार की क्यों न हो, सहजानुभूति से उसकी ऐसी एकता रहती है कि एक दूसरे को अलग नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए, 'हमें किसी रेखा गणित की आकृति की सहजानुभूति तब तक कैसे हो सकती है जब तक कि हमारे मन में उसके सही रूप को किसी कागज पर अंकित करने की क्षमता न हो?' क्या हम किसी ऐसी चीज की कल्पना कर सकते हैं, जिसे जानते हुए भी हम शब्दों में न कह सकें, अथवा उसे चित्रित न कर सकें? दूसरे शब्दों में, 'हर कोई उस आन्तरिक प्रकाश का अनुभव करता है जो उस पर पड़े हुए प्रभाव और उसके भावों को एकत्र करने की सफलता पर निर्भर है। ये भाव अथवा यह प्रभाव शब्दों के माध्यम से, आत्मा के गुह्य प्रदेश से मिलकर अन्तमन की स्पष्टता को प्राप्त होता है। सहजज्ञान और अभिव्यंजना का अन्तर ज्ञात होना असम्भव है, क्योंकि दोनों एक हैं।"[२] क्रोचे ने लिखा है, "काव्यात्मक सहजानुभूति का तार्किक शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। यह कुछ एक असीम वस्तु है जिसका तुलना केवल उसी लय से की जा सकती है जिसके द्वारा इसकी अभिव्यक्ति होती है, और जो गायी जा सकती है, वह कभी गद्य का रूप धारण नहीं करती।"[३]

अक्सर लोग कहते सुने जाते हैं कि उनके मस्तिष्क में बड़े बड़े विचार उठते हैं लेकिन वे उन्हें व्यक्त नहीं कर पाते। इस सम्बन्ध में क्रोचे का कथन है कि यदि सचमुच उनके मस्तिष्क में विचार उठते तो वे निश्चय ही सरस शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त हुए बिना न रहते। लेकिन यदि अभिव्यंजना की प्रक्रिया में ये विचार हवा हो रहे हैं अथवा क्षीण होते जा रहे हैं तो समझना चाहिए कि वे थे ही नहीं, और यदि थे भी तो बहुत न्यून। लोग समझते हैं कि इटली के महान् चित्रकार

१—वही पृ० ८

२—वही पृ० ८-९

३—डिफेंस ऑफ पोएट्री, पृ० २२

राफेल की भाँति वे भी मेडोना (ड्रेसडेन की वर्जिन मेरी की मूर्ति) की कल्पना कर सकते हैं, लेकिन उनमे और राफेल में यही अन्तर है कि उसने अपने जिस अद्भुत कलाकौशल से उसे जिस रूप मे व्यक्त किया है, उस रूप में वे नही कर पाते। क्योंकि उनमे राफेल जैसी शिल्प कला का अभाव है, वरना तो दोनो की कल्पना में कोई अन्तर नही।'

कलाकार और सामान्य जनों की सहजानुभूति में अन्तर प्रदर्शित करते हुए क्रोचे ने इटली के यशस्वी कलाकार माइकेल एंजेलो की एक उक्ति प्रस्तुत की है—"कलाकार हाथ से नही, मस्तिष्क से चित्र खींचता है।" लियोनार्डो के शब्दों में, 'उदात्त प्रतिभावाले लोगों का मानस आविष्कार करते समय अत्यधिक सक्रिय रहता है जबकि वे बाह्य काम का कम से-कम करते हैं।" तथा, "कलाकार इसलिए कलाकार है कि वह उन चीजों को देखता है जिन्हें दूसरे लोग केवल महसूस करते हैं या उनकी थोडी सी झलक पा जाते हैं, लेकिन उन्हें देखते नहीं।" कहते हैं कि लियोनार्डो 'ए लास्ट सपर' नामक चित्र अंकित करने के लिए एक सप्ताह तक चित्र-फलक के सामने, बिना तूलिका का स्पर्श किये, चुपचाप खडा रहा। इसलिए अन्तमन द्वारा साक्षात् किये गये दर्शन को ही यथार्थ दर्शन मानना चाहिए। एक और उदाहरण लें। "हम समझते हैं कि हम कोई मुस्कराहट देखते हैं, लेकिन वास्तव में देखा जाय तो हम पर उसकी एक धुंधली सी छाप पडती है। हम उन सब विशेषताओं को ग्रहण नहीं कर पाते जिनसे वह मुस्कराहट बनी है, जैसे कि कोई चित्रकार उन्हें ढूंढ निकालता है और अपनी तूलिका के स्पर्श से उनका चित्रण करता है।" इसी प्रकार हर घडी और हमेशा साथ रहनेवाले अपने किसी अंतरंग मित्र के बारे में हमें इससे अधिक सहजज्ञान नही होता कि हम केवल उसकी रूपाकृति की विशेषताओं के आधार पर उसे दूसरो से पृथक कर सकते हैं।

क्रोचे के अनुसार, "हममें से हरेक के अन्दर कवि, मूर्तिकार, संगीतज्ञ, चित्रकार अथवा गद्य लेखक का थोडा सा अंश विद्यमान है। लेकिन इन कलाकारों की तुलना में यह कितना न्यून है! क्योंकि इन कलाकारों में मानव प्रकृति की अत्यन्त सार्वभौमिक प्रवृत्तियाँ और शक्तियाँ उत्कृष्ट मात्रा में वर्तमान होती हैं। फिर भी यह न्यून अंश ही हमारी सहजानुभूतियों अथवा उसके प्रतिरूपों की वास्तविक विरासत है। बाकी को तो केवल प्रभाव, संवेदन भाव, आवेश, आवेग अथवा इसी तरह की कोई संज्ञा दे सकते हैं, जो आत्मिक तत्त्व से रिक्त है और मनुष्य ने जिसे आत्मसात् नही किया है।"

अतएव, "सहजानुभूत ज्ञान अभिव्यंजनात्मक ज्ञान है। जहाँ तक बौद्धिक व्यापार का सम्बन्ध है, वह स्वतन्त्र और स्वायत्त है। बाद में होनेवाले अनुभवजन्य भेद प्रभेदों,

१—ऐस्थेटिक, पृ० ६

यथार्थता और अयथार्थता तथा देश और काल के रूप संघटनों और अनुभूतियों के प्रति वह उदासीन है। सहजानुभूति का होना अभिव्यंजित होना है—सिर्फ अभिव्यंजित होना (न इससे कुछ अधिक और न कम)।"[1]

सहजानुभूति और कला

इस प्रकार क्रोचे ने सहजानुभूति अथवा अभिव्यंजना को सौंदर्यात्मक अथवा कलात्मक तथ्य से अभिन्न स्वीकार किया है। कलात्मक कृतियों को उसने सहजानुभूत ज्ञान के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है। लेकिन बहुत-से लोगों का इस मान्यता से विरोध है। उनके अनुसार, कला एक बिल्कुल विशिष्ट प्रकार की सहजानुभूति है। उन्हींके शब्दों में, "कला सहजानुभूति है, फिर भी सहजानुभूति कला नहीं है। कलात्मक सहजानुभूति एक विशिष्ट जाति है जो सामान्यत कुछ तत्वों के कारण सहजानुभूति से भिन्न होती है।"

उत्तर में क्रोचे का कहना है कि ये तत्त्व कौन से हैं, इसके सम्बन्ध में कोई भी निर्देश नहीं कर सका। उसने लिखा है, "जिसे सामान्यतया हम सर्वोत्कृष्ट कला कहते हैं, वह उन सहजानुभूतियों का संकलन करती है जो सामान्य अनुभव में आनेवाली सहजानुभूतियों की अपेक्षा अधिक व्यापक और अधिक जटिल हैं, किन्तु ये सहजानुभूतियाँ हमेशा संवेदनों और प्रभावों की अनुभूतियाँ होती हैं।' अतएव "कला को अभिव्यंजना की अभिव्यंजना स्वीकार न कर प्रभावों की अभिव्यंजना" मानना चाहिए।

कहा जा चुका है, कलात्मक सहजानुभूति साधारण सहजानुभूति से तीव्रता में भी भिन्न नहीं होती। यह वस्तुस्थिति तब संभव होती जब कि वह एक ही विषय को लेकर भिन्न भिन्न कार्य करती। "कलात्मक सहजानुभूति का व्यापार-क्षेत्र अधिक विस्तृत है, फिर भी अपनी कार्य पद्धति में वह सामान्य सहजानुभूति से भिन्न नहीं होती। अत इन दोनों में विस्तार का ही अन्तर है, तीव्रता का अन्तर नहीं।" उदाहरण के लिए, हजारों नर नारियों के अधरों से फूट पड़नेवाले किसी लोकप्रिय प्रेमगीत की सहजानुभूति, अपनी सरलता में तीव्रता की दृष्टि से पूर्ण हो सकती है, भले ही विस्तार की दृष्टि से वह किसी सुप्रसिद्ध कवि की जटिल सहानुभूति की अपेक्षा अत्यन्त सीमित हो। क्रोचे की मान्यता है कि सहजानुभूतियाँ सब एक सी होती हैं, चाहे वह छोटी सहजानुभूति हो या बड़ी, चाहे वह सामान्य हो अथवा कलात्मक। उसके मत में 'सौंदर्यशास्त्र केवल एक है, वही सहजानुभूति अथवा अभिव्यंजनात्मक ज्ञान का शास्त्र है, वही सौंदर्यात्मक अथवा कलात्मक तथ्य है।'"[2] कला, सहजज्ञान और अभिव्यंजना—ये तीनों अभिन्न हैं। हम कह

१—वही, पृ० १०–११

२—वही, पृ० १२–१४

सकते हैं कि सहजज्ञान अथवा प्रभावों की अभिव्यक्ति ही कला है। सहजज्ञान कला में परिवर्तित हो जाता है जबकि इसमें आत्मा दृढ़तापूर्वक काम करती है। कलाकार का दर्शन बड़ा विशद होता है। अभिव्यक्ति की विशदता ही उसकी विशदता है। अपनी कल्पना शक्ति के माध्यम से कलाकार प्रभावों की अभिव्यक्ति करता है।

कलात्मक प्रतिभा जन्मजात नहीं

क्रोचे की मान्यता के अनुसार, किसी कलाकार की प्रतिभा और साधारण व्यक्ति की अप्रतिभा में अन्तर नहीं है। दर्शन शक्ति की अतिशयता के अतिरिक्त प्रतिभा कोई अलग वस्तु नहीं है। "महान् कलाकार हमें हमारी आत्मा का दर्शन कराते हैं। लेकिन यह कैसे सम्भव है जब तक उनकी और हमारी कल्पना में प्रकृति का सादृश्य न हो, और यदि कोई अन्तर हो तो केवल मात्रा का ? 'कवि जन्मजात होता है' इसकी अपेक्षा यही कहना अधिक संगत है कि 'मनुष्य जन्म से कवि होता है।' कुछ लोग जन्म से महान् कवि होते हैं, कुछ लघु।" प्रतिभा का अन्तर इसी परिमाण के अन्तर से पैदा हुआ है जिसे कि गुण का अन्तर मान लिया गया है। "यह भुला दिया गया है कि प्रतिभा कोई ऐसी चीज नहीं जो आसमान से टपकी हो, वह मनुष्य से ही सम्बद्ध है।"[1] अतएव प्रतिभा कोई अलौकिक शक्ति नहीं है।

सौंदर्यवाद की प्रतिष्ठा

दर्शन और काव्य की बहस यूनानी समीक्षक प्लेटो या उसके भी पहले से चली आ रही है। काव्य में नैतिकता अपेक्षित है, इस बात पर दार्शनिक और नीतिवादी दोनों ही जोर देते आये हैं। १९वीं शताब्दी में विज्ञान की उन्नति होने पर विज्ञान और काव्य सम्बन्धी वाद विवाद आरम्भ हो गया जिसमें वर्ड्सवर्थ,शैली आदि कवियों ने अपनी रचनाओं द्वारा कविता का समर्थन किया। क्रोचे ने अपने ढंग से काव्य का दर्शन और विज्ञान से बचाव कर सौंदर्यवाद को प्रतिष्ठित किया। उसके इस सिद्धान्त ने कला और साहित्य के सैद्धांतिक और व्यावहारिक क्षेत्रों को इतना प्रभावित किया कि दर्शनशास्त्र की अपेक्षा उसके सौंदर्यशास्त्र का ही अधिक प्रचार हुआ।

प्रकृति की सुन्दरता के सम्बन्ध में यूरोपीय विद्वानों में काफी मतभेद रहा है। एडीसन, बर्क, काण्ट और लाजाइनस आदि ने प्राकृतिक सौन्दर्य को स्वीकार किया, जब कि अरिस्टोटल से प्रभावित मध्ययुग के समीक्षकों ने इसे तुच्छ ठहराया। १९वीं शताब्दी में हेगेल तथा २०वीं शताब्दी में क्रोचे ने भी प्राकृतिक सौंदर्य को अमान्य किया। क्रोचे के अनुसार, किसी कलाकार के काव्य अथवा शिल्प में ही सौंदर्य को

१—वही पृ० १४१५

यथार्थ अभिव्यक्ति होती है, प्रकृति मे कोई सौंदर्य नही है। सौंदर्य की बाह्य सत्ता वह स्वीकार नही करता, उसके विचार से सौंदर्य बोध ही सौंदर्य अथवा सुन्दर होता है। अतएव किसी बाह्य वस्तु को सुन्दर कहना 'सुन्दर' शब्द का केवल लाक्षणिक प्रयोग मानना चाहिए। "सौंदर्यानुभूति के उत्तेजक कला के स्मारक को हम 'सुन्दर वस्तु' अथवा 'शारीरिक सौंदर्य' के नाम से कहते हैं। लेकिन यह शब्दों का विरोधाभास है, क्योंकि सौंदर्य शारीरिक कार्य नही है। इसका वस्तुओं से सम्बन्ध नही, मनुष्य के कार्य से सम्बन्ध है आध्यात्मिक शक्ति से सम्बन्ध है।"[1]

शारीरिक सौंदर्य दो प्रकार का है—एक स्वाभाविक और दूसरा कृत्रिम। जब हम हरियाली से आच्छादित पर्वत शृंखला का दर्शन कर सहसा कह उठते हैं कि 'अहा कितना सुन्दर दृश्य है' तो यहाँ हम 'सुन्दर' शब्द का केवल लाक्षणिक प्रयोग करते हैं। क्योंकि इससे हम केवल शारीरिक आनन्द का अनुभव करते हैं। लेकिन यदि हम वास्तविक सौंदर्य का अनुभव करना चाहें तो हमे अपनी कल्पना के सहारे उस स्थान या दृश्यविशेष को उसके प्राकृतिक परिवेश से अलग करके देखना चाहिए। उदाहरण के लिए, यदि हम किसी प्राकृतिक दृश्य को अपनी आँखें बन्द करके उस दृश्य को उसके परिवेश से दूर हटाकर देख तो इस काल्पनिक सृष्टि से हमें एक भिन्न प्रकार का आनन्द प्राप्त होगा। इसे ही सौंदर्यबोध का आनन्द कहा गया है। कहने का अभिप्राय यह कि प्रकृति तभी सुन्दर कही जायेगी जब कोई उसे किसी कलाकार की दृष्टि से देखे। दूसरे शब्दों में, प्राकृतिक सौंदर्य की खोज की जाती है तथा बिना कल्पना की सहायता के प्रकृति का कोई भी अंश सुन्दर नही कहा जा सकता। कलाकार की मनोवृत्ति के अनुसार यह प्राकृतिक पदार्थ कभी अर्थपूर्ण होता है, कभी नगण्य होता है कभी वह किसी एक बात पर जोर देता है कभी दूसरी पर कभी उदात्त होता है, कभी हास्यास्पद। तात्पर्य यह कि जब तक स्वाभाविक सौंदर्य किसी कलाकार द्वारा सवारा नही जाता, उसमे संशोधन या परिवर्तन नही किया जाता तब तक उसका अस्तित्व नही।[2]

रूपसौंदर्य का प्राण

कुछ लोगों ने विषयवस्तु (कण्टेण्ट) को, कुछ ने रूप को और किसी ने दोनों को ही सौंदर्य का आधार माना है। किन्तु क्रोचे ने रूप को ही सौंदर्य का प्राण बताया है। उसने कहा है कि जैसे पानी को 'फिल्टर' मे छानने से वही पानी होते हुए भी वह पहले पानी से भिन्न होता है उसी प्रकार मन पर पड़ा हुआ प्रभाव (विषयवस्तु) सहजज्ञान से निरन्तर परिष्कृत होकर सुन्दर अभिव्यंजना के

१—वही पृ० ६७
२—वही, पृ० ६८-६९

रूप मे दिखायी देता है। अतएव सौंदर्यात्मक तथ्य को क्रोचे ने रूप और कवल रूप कहा है। इसी शुद्ध सहज रूप को काव्य अथवा कला कहा गया है।

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि तब तो विषयवस्तु अनावश्यक है। लेकिन ऐसी बात नहीं है, अभिव्यजना तक पहुँचने के लिए इसकी जरूरत है। यह भी कहा जाता है कि "वस्तुतत्त्व को सौंदर्यात्मक होने के लिए, उसमें कुछ निर्धारित गुणों का होना आवश्यक है।" लेकिन क्राचे का कथन है, "ऐसा मानने पर रूप और विषयवस्तु—अभिव्यजना और प्रभाव–एक हो जायगे।" वह कहता है, "यह सच है कि विषयवस्तु रूप में परिवर्तित हो सकती है, किन्तु जब तक वह रूपान्तरित नही हो जाती, उसमें निर्धारित गुण नही रहते। इस सम्बन्ध में हम कुछ नही जानते। यह सौंदर्यात्मक तत्त्व तभी बनता है जब कि यह सचमुच रूपान्तरित हो जाये।"[1] अतएव विषयवस्तु और रूप की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार नही की जा सकती।

फल. प्रकृति का अधानुकरण नहीं

इस प्रकार सहजज्ञान द्वारा आत्मस्वरूप में प्रकाशमय रूप की अवस्थिति को ही सौदय विधायक कहा गया है। क्रोचे के मत में प्रकृति की अनुकृति अथवा उसके अधानुकरण को सौदय नहीं माना। ऐसा मानने पर कला को "प्राकृतिक वस्तुओं की यान्त्रिक प्रतिकृतियो अथवा उनकी हूबहू प्रतिलिपियो का प्रस्तुतकर्ता" कहा जायेगा, जो क्राचे को मा य नही है। यहा पर उसने मानव जीवन को अकित करने वाली रगीन पुतलियों का उदाहरण दिया है, जिन्हे किसी सग्रहालय में देखकर हम आश्चयचकित रह जाते हैं, फिर भी सौंदर्यात्मक सहजानुभूति उनसे जागृत नही होती। "इसके विपरीत यदि कोई कलाकार इन पुतलियो के सग्रहालय को अन्दर से चित्रित कर दे, अथवा कोई अभिनेता रगमच पर किसी मानव मूर्ति का हास्योत्पादक अभिनय प्रस्तुत करे तो इससे आत्मिक व्यापार और कलात्मक सहजानुभूति प्रकट होती है।' इसी प्रकार, किसी फोटोग्राफर द्वारा खींचे हुए फोटो मे वही सौदय जान पडेगा जहाँ उसकी सहजानुभूति–उसका दृष्टिकोण–सुचारु रप से प्रदर्शित हुआ है। "और यदि फोटोग्राफी कला नही है तो इसका मतलब है कि इसके अन्तगत जो प्रकृति के तत्त्व हैं, उन पर नियन्त्रण नही किया जा सका।"[2] कहने का अभिप्राय यह कि क्रोचे ने रूपग्रहण अथवा रूपप्रकाश के अतिरिक्त अन्यत्र कही सौदयवत्ति नही मानी। सहजानुभूति के व्यवहार करने पर रूप मात्र को सौंदय कहा जा सकता है। किसी भी इद्रिय पर पडनेवाला प्रभाव सहजानुभूति से ग्रहण किये जाने के साथ यदि वह व्यक्त भी किया जा सके तो वह सुदर प्रतीत हो सकता है।

१—वही, पृ० १५-१६

२—वही, पृ० १६-१७

कलाकृति की अखंडता

सामग्री की अखडता की धारणा को क्रोचे ने सौंदर्य का प्राण कहा है। उसके कथनानुसार, यदि हम किसी काव्य का विश्लेषण करके उसे खडश देखना चाहे तो उसकी सौंदर्यानुभूति में बाधा उपस्थित होती है इसलिए अभिव्यजना के काव्य-व्यापार के लिए किसी कलाकृति की अखडता को मुख्य माना गया है। क्रोचे के अनुसार, "प्रत्येक अभिव्यजना एक अकेली अभिव्यजना है।" "इसे अनेकों का एक में सम वय" अथवा "विविधता में एकता" कहा गया है। किसी भी कलाकार की कला उसके मन में समग्र रूप से प्रतीत होती है, खडश नही। लेकिन यदि ऐसी बात है तो फिर कोई कवि अपनी कलाकृति को दृश्य, घटनाएँ, उपमाएँ वाक्य, पृष्ठभूमि अग्रभूमि आदि हिस्सो में क्यों विभाजित करता है? उत्तर मे क्रोचे का कहना है, "इस प्रकार का विभाजन कलाकृति को ही नष्ट कर देता है, जसे यदि किसी प्राणी के हृदय, मस्तिष्क, स्नायु और मासपेशी आदि को अलग अलग कर दें तो क्या शेष रह जायेगा? केवल मिट्टी का एक लोंदा!"[1]

कला का प्रयोजन

क्रोचे ने कला को विज्ञान, उपयोगिता और नतिकता से स्वतत्र स्वीकार किया है। वह कला मे विषयवस्तु के चुनाव की सभवनीयता स्वीकार करता है, इसलिए वह 'कला के लिए कला' सिद्धा त का समर्थक है। वह लिखता है, 'प्रभावों और सवेदनों के चुनाव का मतलब है कि ये अभिव्यजना के रूप मे पहले से ही मौजूद हैं, अन्यथा निर तर प्रवाहमान और अस्पष्ट भावो का चुनाव कैसे किया जा सकता है? चुनाव करने का अर्थ है इच्छा करना—इसकी इच्छा करना और उसकी इच्छा न करना, तथा यह और वह, ये दोनो हमारे समक्ष रहने चाहिए, अर्थात् उनकी अभिव्यजना होनी चाहिए। व्यवहार सिद्धा त के बाद आता है, सिद्धा त के पहले नहीं। अभिव्यजना स्वतत्र प्रेरणा है।'[2]

"एक सच्चे कलाकार के मस्तिष्क मे कोई विषय चक्कर लगाता रहता है, वह नही जानता क्यों? उसे लगता है कि उसके ज म का क्षण नजदीक आता जा रहा है, लेकिन न वह इसकी इच्छा कर सकता है और न उसे रोक ही सकता है। यदि वह अपनी प्रेरणा के विपरीत, मनमाना चुनाव कर ले तो उसकी कवित्वशक्ति उसकी गलती के प्रति सावधान कर देगी और उसके प्रयत्नो के बावजूद, अभिव्यजना करेगी।'

१—वही पृ० २०

२—वही, पृ० ५१-५२

निष्कर्ष यह कि "काव्य या कला के विषय या वस्तु का व्यावहारिक या नैतिक रूप से न प्रशंसा की जा सकती है, और न निंदा। जब कभी कला के समीक्षक कहते हैं कि विषय का चुनाव अच्छा नहीं हुआ, तो यह विषय के चुनाव को दोष देने की इतनी बात नहीं जितनी कि कलाकार के विषय चुनाव की पद्धति को दोष देने की बात है। इसे विषयगत अन्तर्विरोध के कारण अभिव्यंजना की असफलता ही कहना होगा।"[१]

कला में कुरूपता

कुरूपता के सम्बन्ध में क्रोचे ने कहा है, 'यदि कुरूपता दुनिया से नष्ट कर दी जाय, और उसके स्थान पर सद्गुण और आनन्द की स्थापना की जा सके तो सम्भवतः कलाकार विकृत अथवा निराशापूर्ण अनुभूतियों को प्रस्तुत न कर, केवल शान्त निर्दोष और आनन्ददायक अनुभूतियाँ ही प्रस्तुत करेगा। किन्तु जब तक प्रकृति में कुरूपता और क्षुद्रता विद्यमान है और कलाकार के अन्तर्मन को वह प्रभावित करती है, तब तक उसकी अभिव्यंजना को रोकना असम्भव है।"[२]

कला में विषयवस्तु के चुनाव को अस्वीकार करने के कारण यह आशंका नहीं होनी चाहिए कि इससे तो क्षुद्र कला का भी औचित्य सिद्ध हो जायेगा। वस्तुतः क्रोचे के अनुसार, "जो वास्तव में क्षुद्र है, वह इसलिए क्षुद्र है कि वह अभिव्यंजना के स्तर तक नहीं उठाया जा सका।" दूसरे शब्दों में, "वस्तु की पकड़ की असमर्थता के कारण ही सदा क्षुद्रता उत्पन्न होती है, इसलिए नहीं कि वस्तु में वे गुण विद्यमान हैं।"[३]

सौंदर्य 'सफल व्यंजना' और कुरूपता 'असफल अभिव्यंजना' है, अर्थात् कुरूपता सौंदर्यानुभूति का अभाव है। असफल कलाकृतियों में ही यह बात पाई जाती है। यदि कोई अभिव्यक्ति सफल नहीं तो वह अभिव्यक्ति ही नहीं। 'सौंदर्य में एकता और कुरूपता में अनेकता" रहती है। "इसीलिए जब हम अधिकतर असफल कलाकृतियों की प्रशंसा सुनते हैं तो यह प्रशंसा इन कृतियों के उन्हीं अंशों की होती है जो सुन्दर हैं, पूर्ण कलाकृतियों के सम्बन्ध में यह बात नहीं है।"[४] क्रोचे का कहना है कि जब किसी कलाकार के पास कोई निश्चित बात व्यक्त करने के लिए नहीं होती तो वह अपनी आन्तरिक रिक्तता को शब्द प्रवाह, संगीतमय पद्यों आँखों को

१—वही, पृ० ५१
२—वही, पृ० ५२
३—वही, पृ० ५२-५३
४—वही, पृ० ७६

चकाचौंध कर देनेवाले चित्रों तथा आश्चर्यचकित कर देनेवाली अर्थविहीन रूपात्मक कला की सामग्री के ढेर द्वारा ढाँकने का प्रयत्न करता है।[1]

कला का सच्चापन

क्रोचे ने काव्य को कवि के पूर्ण व्यक्तित्व की सृष्टि माना है। फिर भला उसकी कलाकृति मे नैतिकता और सामाजिकता की उपेक्षा कैसे की जा सकती है? उसने कहा है "यदि कला की सच्चाई का अर्थ है अपने पड़ोसी को धोखा न देने का नैतिक कर्त्तव्य, तो यह बात कलाकार के लिए 'अप्रासंगिक' है। जो बात उसकी आत्मा मे है, वह उसे ही रूप प्रदान करता है, इसलिए वह किसी को धोखा देने का काम नही करता। उसे वचक केवल उसी समय माना जायेगा जब वह अपने कलाकार के कर्त्तव्य से च्युत होगा। यदि मिथ्याभाषण और वचकता उसके मन में होगी तो इन चीजो को जो वह रूप प्रदान करता है, उसे वचकता और मिथ्या भाषण नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह रूप सौंदर्यात्मक है। मान लीजिए, यदि कलाकार धूर्त ठग और पाखडी है तो वह इन्हें कला द्वारा प्रदर्शित कर अपनी शुद्धि कर लेता है। यदि कला की सचाई का अर्थ है अभिव्यक्ति की पूर्णता और उसका सत्य, तो स्पष्ट है कि नैतिकता से उसका कोई सम्बन्ध नही हो सकता।"[2]

कला द्वारा शुद्धीकरण

कला का मतलब यहाँ वह नही है जो सामान्यतया समझा जाता है। कलाकार जब अपनी लेखनी या तूलिका हाथ मे पकडता है, उसके पहले ही उसके अन्तमन मे जो कुछ उदित होता है, वह कला है। किसी भावावेश में आकर अथवा जीवन के कष्टों से अनुप्राणित होकर वह कला का सृजन नहीं करता। कलाकार जब अपने मन पर पडे हुए प्रभावो की विस्तारपूर्वक व्याख्या करता है तो इसका मतलब है कि वह उन्हें मूर्त रूप प्रदान कर उन्हें अपने मन से बहिष्कृत कर देता है—उन्हें झकझोर देने से उसे मुक्ति मिल जाती है और वह उनके ऊपर हावी हो जाता है। इस प्रकार क्रोचे ने विचारो की अभिव्यक्ति द्वारा उनसे छुटकारा पाने को कला का लक्ष्य माना है। कला मुक्ति प्रदान करती है क्योंकि वह निष्क्रियता को भगाती है।" कलाकार पर जो अधिक से अधिक सवेदनशीलता अथवा भावावेश की हीनता का आरोप लगाया जाता है उसका कारण है कि कलाकार की रचना में भावावेश तब दिखायी देता है जब वह किसी मूल्यवान सामग्री को अपने अन्तमन में सन्निविष्ट कर लेता है, तथा भावावेश से हीन अवस्था में उस समय वह कलाकृति का सृजन करता है जब अपने मन म उठनेवाले भावावेग पर वह विजय प्राप्त कर लेता है।[3]

१—वही, पृ० ६८

२—वही पृ० ५३ ५४

३—वही पृ० २१

क्रोचे के समीक्षक

क्रोचे अपने युग का एक महान् दार्शनिक हो गया है जिसने अपने सौंदयशास्त्र के सिद्धान्त द्वारा तत्कालीन साहित्य और कला को असाधारण रूप से प्रभावित किया। समीक्षा के क्षेत्र मे उसने सौंदर्यशास्त्र का स्वतन्त्र अस्तित्व स्थापित कर उसे काव्य और कला के गंभीर अध्ययन के लिये आवश्यक सिद्ध किया। उसकी रचनाओं का अंग्रेजी में रूपान्तर करनेवाले कितने ही अंग्रेजी विद्वान लेखक उसके विचारो से प्रभावित हुये।

जैसे अनेक दार्शनिक और समीक्षकों ने क्रोचे के सिद्धान्तों का स्वागत किया, वैसे ही बहुतों ने उनके प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण भी अपनाया। सुप्रसिद्ध अमराकी इतिहासवेत्ता जे० ई० स्पिनगान आरंभ मे क्रोचे के समर्थक थे, लेकिन आगे चलकर 'कला अभिव्यंजना है और सभी अभिव्यंजनायें कला हैं'—क्रोचे की इस मान्यता का उन्होंने विरोध किया। स्कॉट जेम्स ने भी क्रोचे के सिद्धान्तों की विस्तृत समीक्षा की। उसकी मान्यता है कि क्रोचे ने इस बात पर ध्यान नही दिया कि कला का काम कलाकार के भावों को दूसरो तक पहुँचाना है और कलात्मक कृति का प्रभाव दूसरों पर पडता है। सौन्दर्य का अभिव्यंजना को आन्तरिक स्वीकार करने का अर्थ हुआ कि जिन प्रभावों को कलाकार मूर्तिमान् करता है, वे उसी के मस्तिष्क मे रहते हैं, बाह्य रूप वे धारण नहीं करते। किन्तु ऐसी हालत मे आलोचक उनका मूल्याङ्कन कैसे कर सकेगा? क्रोचे के अनुसार, 'कला सहजानुभूति है सहजानुभूति वैयक्तिक होती है और इस वैयक्तिक अनुभूति की पुनरावृत्ति नही होती,' लेकिन उसका यह भी कहना है कि कल्पना की सार्वभौमता के कारण समान बिम्ब विभिन्न व्यक्तियों के मन में उसी सहजानुभूति को उत्पन्न करते हैं। किन्तु यदि सहजानुभूति वैयक्तिक और अभूतपूर्व है और उसकी पुनरावृत्ति नही होती तो फिर आलोचक उसकी अनुभूति का साक्षात्कार कैसे कर सकता है? क्रोचे के मत में संवेदन मात्र कला नही है। संवेदन अथवा अनुभव बाह्य जीवन के अंग हैं, और उन्हें तब तक कला के नाम से अभिहित नहीं किया जा सकता, जब तक कि कलाकार उनसे अनासक्त होकर चिन्तन और मनन की सहायता से उनका पुनः सृजन नही कर लेता। यह ठीक है कि इस प्रकार की अभिव्यंजना की प्रक्रिया मे उसे आनन्द प्राप्त होता है। लेकिन कठिनाई तब पैदा होती है जब वह कला का प्रयोग उस अर्थ में करता है जो किसी को भी मान्य नहीं है। उसके अनुसार कलम, कूँची अथवा छेनी उठाने के पूर्व जो अनुभूति कलाकार के मन में उपस्थित रहती है, वही कला है—जो इन उपकरणों के उपयोग करने से पहले ही पूर्ण हो जाती है। दूसरों ने कला का भौतिक माध्यम स्वीकार किया है। जिसे दूसरे 'कलाकृति' अथवा 'सौन्दर्य वस्तु' कहते हैं क्रोचे के लिये वह एक भौतिक प्रेरक मात्र है जो दर्शक में सुन्दर सहजज्ञान को अनुप्रेरित करता है।

इसके, अलावा क्रोचे ने कहा है कि कलाकार के लिये विषय का चुनाव आवश्यक नहीं और किसी भी विषय को कलात्मक रूप दिया जा सकता है, चाहे वह कितना ही निकृष्ट क्यों न हो। लेकिन इसका परिणाम यह हुआ कि कला के नाम में कला को लेकर ऊल-जलूल विचार व्यक्त किये जाने लगे—सनक, विकृति, कुरूपता और विक्षिप्तता को सहजज्ञान की अनुभूति मानकर कलात्मक अभिव्यंजना की बात की जाने लगी। फिर, कलाकार का काम है अपनी कला को दूसरों तक संप्रेषण करना लेकिन क्रोचे इस बात को भूल-सा ही गया है। "उसके कलाकार की दृष्टि केवल अपने सहजज्ञान में ही रहती है ... कोई भाषा वह नहीं बोलता, वह स्वगत संभाषण करता है ?" क्रोचे के कलासिद्धान्त में जीवन के प्रति भी उपेक्षा प्रकट की गयी है।[1]

आई० ए० रिचर्ड्स ने तो क्रोचे की इतनी उपेक्षा की कि अपने 'प्रिंसिपल्स ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म' में उसके सम्बन्ध में एक छोटा-सा फुटनोट लिखकर ही सतोष कर लिया।

अभिव्यंजनावाद और वक्रोक्ति

अभिव्यंजनावाद की प्रवृत्ति चित्रकला से उभार ली गयी है इसलिये देखा जाय तो क्रोचे के सौंदर्य सिद्धान्त से उसका सम्बन्ध नहीं, यद्यपि यह सही है कि बहुत से अभिव्यंजनावादी समीक्षक क्रोचे के सिद्धान्तों से प्रभावित हुए हैं। अभिव्यंजनावाद प्रभाववाद की भाँति एक रूपवादी प्रवृत्ति है। १६वीं शताब्दी में फ्रांस के कुछ चित्रकारों ने प्रभाववादी (इम्प्रेशनिस्ट) शैली का सूत्रपात किया था। ये लोग रगों के द्वारा प्रतिबिम्ब (रेटिनल इमेज) का अकन कर वातावरण की सृष्टि करते थे। अभिव्यंजनावादी भी अपने विचारों को व्यक्त करने के लिये विचित्र शब्दों और संकेतों का प्रयोग करते हैं। उन्हें विचारों की स्पष्टता अभीष्ट नहीं, इसलिये किसी कलाकृति का मर्म समझने के लिये व्याख्या की आवश्यकता होती है। अभिव्यंजनावाद आत्मनिष्ठावाद का ही चरम रूप है। अभिव्यंजनावादी अपने आपसे निर्मित वास्तविकता में ही विश्वास करते हैं जीवन को अन्य किसी वास्तविकता में नहीं।

हिन्दी में क्रोचे के सिद्धान्तों को लेकर काफी भ्रम फैला। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने क्रोचे के अभिव्यंजनावाद को 'भारतीय वक्रोक्तिवाद का विलायती उत्थान' कहकर उसे वाग्वैचित्र्यवाद' की संज्ञा दी। शुक्लजी के इस कथन के बाद से आचार्य कुन्तक के वक्रोक्तिवाद के साथ क्रोचे के अभिव्यंजनावाद की तुलना करने की परम्परा चल पड़ी। वस्तुतः जैसा हम देख आये हैं क्रोचे के अभिव्यंजनावाद में उक्ति वैचित्र्य नहीं है, वक्रोक्तिवाद भी इसे कहना गलत है।

१—द मेकिंग ऑफ लिटरेचर, पृ० ३२१ २२, तथा देखिये डा० सुरेन्द्रनाथ दास गुप्त, सौन्दर्यतत्त्व रूपांतरकार डा० आनन्दप्रसाद दीक्षित, पृ० १२८ आदि, इलाहाबाद वि० स० २०१७

आचार्य कुन्तक ने ध्वनिसिद्धान्त का खंडन करने के लिये वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा स्वीकार किया। वक्रोक्ति अर्थात् प्रसिद्ध कथन की अपेक्षा, विलक्षणता उत्पन्न करनेवाली विचित्र अभिधा, अभिव्यंजनावाद इसे नहीं कहा जा सकता। देखा जाय तो कुन्तक और क्रोचे दोनों ही कलावादी आचार्य होने के कारण अभिव्यंजना को काव्य की आत्मा कह कर कल्पना को मुख्य मानते हैं और दोनों ही अभिव्यंजना में श्रेणियाँ स्वीकार नहीं करते—अर्थात् अभिव्यंजना या सफल होगी अथवा असफल। फिर भी दोनों का लक्ष्य भिन्न भिन्न है। एक अलंकारवादी आचार्य है, दूसरा दार्शनिक। अलंकारवादी होने के कारण कुन्तक ने अलंकारमयी उक्ति, वैदग्ध्य पूर्ण शैली और कवि के कौशल को मुख्य माना है, केवल चमत्कारपूर्ण उक्ति को ही यहाँ काव्य स्वीकार किया गया है। जब कि क्रोचे ने सहजानुभूति को अभिव्यंजना मानते हुए असफल उक्ति अथवा असफल अभिव्यंजना को अभिव्यंजना ही स्वीकार नहीं किया। कला, सहजानुभूति और अभिव्यंजना को उसने पर्यायवाची माना है जिसमें विषय और शैली को अलग अलग नहीं किया जा सकता। क्रोचे ने उक्ति को और कुन्तक ने वक्रोक्ति को काव्य कहा है। कुन्तक की अभिव्यंजना प्रयत्नसाध्य है जब कि क्रोचे को वहाँ तक पहुँचने के लिये प्रयत्न नहीं करना पड़ता। क्रोचे के मत में काव्य का चरम लक्ष्य आनन्द प्राप्ति नहीं, आनन्द तो अभिव्यंजना का सहचारी है, जब कि कुन्तक के काव्य का लक्ष्य आनन्द है और सौंदर्य उस आनन्द की प्राप्ति में कारण होता है। क्रोचे ने वस्तुतत्त्व को गौण माना है जब कि कुन्तक के मत में वस्तुतत्त्व महत्त्वपूर्ण है।

निष्कर्ष

कला का जीवन के साथ सम्बन्ध स्थापित करते हुए जब कला सम्बन्धी दृष्टिकोण अतिवाद पर पहुँच गया तो कलावादी सिद्धान्त का आविर्भाव हुआ। ह्विस्लर इस सिद्धान्त का पुरस्कर्ता हो गया है। एडगर एलन पो ने शिव अथवा सत्य की अपेक्षा सौन्दर्यप्राप्ति को कला का मुख्य प्रयोजन बताया—जिस सौन्दर्य के चिन्तन से आत्मा समुन्नत होती है। वाल्टर पेटर ने कलावाद का सैद्धान्तिक निरूपण करते हुए कला को उद्देश्यहीन प्रतिपादित किया। नैतिकता को उसने कला के अधीन मानकर सौन्दर्यवाद की प्रतिष्ठा की। सौन्दर्यवादी सिद्धान्त में भावावेशजन्य तीव्र इन्द्रियानुभूति की सत्ता स्वीकार की गयी, जब कि हम किसी क्षण में सब कुछ विस्मृत कर उद्बुद्ध हो उठते हैं। भावावेश की अभिव्यक्ति के लिये रूपविधान को मुख्य स्वीकार कर रूपविधान और विषयवस्तु को पृथक् माना गया। कलाकार की अभिव्यंजना को सर्वप्रमुख कहा गया, क्योंकि आत्माभिव्यंजना के कारण ही कला सर्वश्रेष्ठ कहे जाने योग्य होती है। वाइल्ड ने कला को सर्वोपरि वास्तविकता स्वीकार कर जीवन को कल्पना का केवल एक प्रकार बताया। ब्रैडले ने कलावादी सिद्धान्त

सम्बन्धी भ्रान्तियों का निराकरण करते हुए कला के सम्बन्ध में गम्भीर विचार व्यक्त किये। उसने रूपविधान को अतिशय महत्त्व देनेवालों के मत को अमान्य ठहराकर काव्यानुभूति को ही सर्वप्रमुख माना। श्रेष्ठ कला में उसने असंख्य संकेतों का अस्तित्व स्वीकार किया, जिनकी सहायता से कलाकार अपने अभिप्राय को अभिव्यक्त करने में समर्थ होता है। क्रोचे ने सौंदर्यशास्त्र का पृथक् अस्तित्व सिद्धकर कलावादी सिद्धान्त की शुद्धता पर मोहर लगा दी। सहजानुभूति को अभिव्यंजना प्रतिपादित कर उसने सौंदर्यात्मक अथवा कलात्मक तथ्य से उसे अभिन्न स्वीकार किया, अतएव प्रतिभा को अलौकिक शक्ति मानने से इंकार कर दिया, केवल सफल अभिव्यक्ति को ही क्रोचे ने अभिव्यंजना माना।

कलावादी सिद्धान्त में कला को जीवन से सर्वथा पृथक् कर दिया गया। गोतिये के कलावादी मत पर टीका करते हुए एफ० एल० लूकस ने 'लिटरेचर ऍण्ड फिलॉसॉफी' (पृ० २३०) में लिखा है कि वह जब 'कला कला के लिये' सिद्धांत का प्रतिपादन करता है तो वह कला को अनैतिक (amoral) कहता है। और वह यहीं नहीं ठहरता, आगे बढ़कर कला को वह नैतिकता विहीन (anti moral) सिद्ध करने की चेष्टा करता है। गोतिये लिखता है "कोई नगर केवल उसकी इमारतों के कारण ही उसे दिलचस्प लगता है वहाँ के निवासी कितने ही अधम और नीच क्यों न हों, तथा वह नगर भले ही अपराधों का अड्डा हो, मुझे कोई दरकार नहीं, जब तक कि इमारतों को देखते हुए मेरी हत्या न कर दी जाये।" कलावादी प्रवृत्ति को शैशवोचित प्रवृत्ति कहा गया है जब कि प्रौढ़ों के हस्तक्षेप के बिना ही शिशु नाराजी की भावना से, अपने ही खिलौनों से खेलने की इच्छा करता है (वही० पृ० २४६)।

(च) बीसवीं शताब्दी की आलोचना

[बीसवी शताब्दी]

आई ए रिचर्ड्स (१८९३-

बीसवी शताब्दी का प्रथमार्ध

इरविंग वैबिट (१८६५-१९३३)
पॉल एलमेर मोरे (१८६४-१९३७)
टी ई ह्यूम (१८८३-१९१७)
एज़रा पाउण्ड (१८८५ -

प्रभाववाद (इम्प्रैशनिज्म)

प्रतीकवाद (सिम्बोलिज्म)

चार्ल्स बोदलेयर (१८२१-१८६७)
स्टेफन मलार्मे (१८४२-१८९८)
पाल वर्लेन (१८४४-१८९६)
पाल वालेरी (१८७१-१९४५)
आर्थर रेम्बो (१८५४-१८९१)
टी एस इलियट (१८८८-१९६५)

आई ए रिचर्ड्स (१८९३–)

समीक्षा सिद्धांत का मनोवैज्ञानिक आधार

काव्य मे यथार्थता का कितना अश है इस सम्बध में प्राचीन काल से वाद-विवाद होता रहा है। प्लेटो ने कविता को अनुकरण का अनुकरण बताकर कवियों की गर्हणा की थी। लेकिन अरिस्टोटल ने अनुकरण का अर्थ पुन सृजन करके काव्य की परिभाषा ही बदल दी। उसने बताया कि इतिहासकार केवल उन्ही तथ्यो का वर्णन करता है जो घटित हो चुके हैं जब कि कवि सम्भाव्यमान तथ्यों का चित्रण करता है। सिडनी का कथन था "कवि किसी बात को निश्चय-पूर्वक नहीं कहता इसलिए वह असत्य भाषण के दोष से मुक्त रहता है।' इस प्रकार उसने काव्य के शाब्दिक सत्य पर जोर न देकर उसके नैतिक पक्ष का समर्थन किया। शैली ने कविता को 'शाश्वत सत्य म अभिव्यक्त जीवन का प्रतिबिम्ब' स्वीकार किया।

आगे चलकर, विक्टोरियन युग म जैसे जैसे विज्ञान का महत्त्व बढ़ा, काव्य और विज्ञान में से किसमे सत्य का अश अधिक है इस बात की चर्चा हुई। थॉमस पीकॉक ने विज्ञान की दुहाई देते हुए काव्य को निरुपयोगी बताया। मैथ्यू आर्नोल्ड ने इसके उत्तर मे काव्य के भविष्य की महत्ता की ओर इगित करते हुए उसम विचार की मुख्यता स्वीकार की, बाकी को माया का ससार घोषित किया। उसी कविता को उसने उत्तम कहा है 'जिसम निर्माण करने, पोषण करने और आनद प्रदान करने का शक्ति हो।' लेकिन इसम न तो कविता का परिभाषा ही आती है और न कविता और विज्ञान का अन्तर ही स्पष्ट होता है। आगे आनेवाले समीक्षकों ने इस प्रश्न को विशेष रूप से चर्चा का विषय बनाया।

काव्य के समर्थन में विज्ञान का सहारा

आई० ए० रिचर्डस आधुनिक समीक्षको म एक प्रभावशाली समीक्षक हो गये है जिसने अपनी 'साइस एण्ड पोएट्री' (विज्ञान और कविता—१९२६) नामक रचना में कविता की परिभाषा उसकी उपयोगिता तथा वैज्ञानिक सत्य से उसकी भिन्नता इन सब बातों की विस्तार से चर्चा की है। आधुनिक मनोविज्ञान के आधार मे कविता की परिभाषा देते हुए उसने बताया है कि कविता क्या है और पाठकों की वह किस प्रकार प्रभावित करती है।

रिचर्डस की 'प्रिंसिपल्स ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म' (साहित्यिक समीक्षा के सिद्धान्त) नामक पुस्तक 'इटरनेशनल लाइब्रेरी ऑफ साइकोलोजी फिलोसॉफी ऐंड साइटिफिक मेथड' नामक सीरीज में १९२४ में प्रकाशित हुई थी—इसने लेख

के दृष्टिकोण का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। जिस प्रकार शैली ने कवियों से संबंधित प्लेटो के वक्तव्य का उसी के सिद्धान्तों द्वारा खंडन किया, उसी प्रकार कविता के ऊपर किये गये वैज्ञानिकों के आक्षेपों का उत्तर देने के लिए रिचर्ड्स ने विज्ञान का सहारा लिया। अपनी उक्त रचना को रिचर्ड्स ने 'विचार करने का यंत्र' कहा है "लेकिन फिर भी किसी धौंकनी अथवा रेलगाड़ी के इंजन के कार्य का अपहरण करने की उस आवश्यकता नहीं।" अपनी इस रचना को उसने एक करघे से उपमा दी है जिस पर 'सभ्यता के उलझे हुए अंशों को फिर से बुनने का प्रयत्न किया गया है।'

सौंदर्यवादियों के सिद्धान्त की मीमांसा

सौंदर्यवादियों ने सौंदर्य की बाह्य सत्ता स्वीकार न कर, सौंदर्यबोध को मुख्य बताते हुए जो उसका विवेचन किया है रिचर्ड्स ने उसे अमान्य ठहराया। सौंदर्यानुभूति की अवस्था को उसने काल्पनिक माना है। उसका कहना है कि मनोविज्ञान के अनुसार, ऐसी कोई सुस्पष्ट मानसिक अवस्था नहीं जिसे सौंदर्यानुभूति का नाम दिया जा सके। वस्तुतः जब से काण्ट ने 'सौंदर्य के सम्बन्ध में प्रथम बौद्धिक शब्द' का उच्चारण करते हुए 'रुचि की समीक्षावृत्ति' (जजमेंट आफ टेस्ट) की व्याख्या की और इस निरूपण सर्वव्यापक अबौद्धिक, इन्द्रियजन्य सुख अथवा सामान्य मनोभावों से परे प्रतिपादन कर, उसका अद्वितीय वस्तु के रूप में उल्लेख किया तभी से उक्त मान्यता की परम्परा चली। काण्ट ने आत्मा की समस्त कार्य शक्तियों को तीन भागों में विभाजित किया है—ज्ञानवृत्ति, सुख अथवा दुःख की अनुभूति, तथा इच्छा व्यापारवृत्ति। इन्हें क्रम से समझ (अण्डरस्टैंडिंग) समीक्षावृत्ति (जजमेंट) और बुद्धि (रीज़न) कहा गया है। जैसे ज्ञानवृत्ति और इच्छा-व्यापारवृत्ति के बीच में सुख दुःख की अनुभूति आती है वैसे ही समझ और बुद्धि के बीच में समीक्षावृत्ति आती है। काण्ट ने सौंदर्यानुभूति का सम्बन्ध समीक्षावृत्ति (क्रिटिक्स आफ जजमेंट) से जोड़ा है जबकि समझ का विवेचन 'क्रिटिक्स ऑफ प्योर रीज़न' और बुद्धि का विवेचन 'क्रिटिक्स आफ प्रेक्टिकल रीज़न' से किया गया है। तात्पर्य यह है कि सौंदर्यानुभूति का सम्बन्ध आदर्शवाद के साथ है।[1]

रिचर्ड्स का कहना है कि सौंदर्य और अनुभूति के सम्बन्ध ने समीक्षाशास्त्र में विद्रूपता ही पैदा की है। वह प्रश्न करता है, 'सत्य यदि मस्तिष्क के बौद्धिक अथवा सैद्धांतिक (थियोरेटिकल) अंश की जिज्ञासात्मक प्रवृत्ति का, तथा शिव इच्छा करनेवाले व्यावहारिक अंश का विषय है तो फिर सुन्दर को कौन से अंश के अधीन माना जाय? जो क्रिया व्यापार जिज्ञासात्मक और व्यावहारिक प्रवृत्ति से भिन्न है उसके सम्बन्ध में प्रश्न ही नहीं उठता वह निरुपयोगी है।'[2]

१—प्रिंसिपल्स ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म, पृ० ११ १२, लंदन १६३४
२—वही पृ० ११

सौंदर्य की परिभाषाओं की मीमांसा

सी० के० आगडेन और जेम्स वुड के सहयोग से लिखी हुई 'द फाउण्डेशन्स ऑफ एस्थेटिक्स' (सौंदयशास्त्र के आधार–१६२१) नामक पुस्तक में रिचर्ड्स ने सौंदय की परिभाषाओं की विवेचना करते हुए उन सबम 'मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण' को हो प्रमुख माना है। 'भावावेगों को उत्तेजित करनेवाली वस्तु" सुन्दर है—यह परिभाषा अति याप्ति दोष स दूषित है। रिचड्स लिखता है "केवल भावावेग होने क कारण, सामा यतया भावावेगो को सर्वाधिक मूल्य प्रदान करना कुछ सरल नही है। प्राय बिना किसी विशेष अर्थ के उनका अनुभव किया जा सकता है, और कला के साथ उनका सम्ब ध होना आवश्यक नहीं।"[1] कुछ लोग "आन द प्रदान करनेवाली किसी भी वस्तु" को सुन्दर कहते हैं। यह परिभाषा अत्यन्त सीमित होने के कारण अव्याप्ति दोष से दूषित है। यह परिभाषा सुख को सर्वोत्कृष्ट मानने वाले सुखवादियो) हिडानिस्ट) जैसी प्रतीत होती है।[2]

तत्पश्चात् क्लाइव बेल और रोजर फ्राय के मत की विवेचना की गयी है। बेल के अनुसार, किसी भी कलाकृति से एक 'विचित्र भावावेग' उत्पन्न होता है जिसे "सौंदर्यात्मक भावावेग कहा गया है। बेल और फ्राय दोनो की ही मान्यता है कि कलाकृति में कोई 'साथक रूप' होना चाहिए जिससे किसी 'विशिष्ट भावावेग की उत्पत्ति' हो सके। इस परिभाषा को रिचड्स ने ऐसा ही बताया है जैसे कोई वृत्ताकार परिधि म घूमकर उसी स्थान पर लौट आय जहाँ स उसने यात्रा आरंभ की हो। उसका कहना है कि जब हम किसी वस्तु को 'सुन्दर' कहते हैं तो हमे यह मानना होगा कि वह वस्तु सुन्दर है। लेकिन यदि समीक्षक अमुक वस्तु को इसलिए सुन्दर कहता है कि उसे उसके सुन्दर होने का अनुभव होता है इसका मतलब हुआ कि घूम फिरकर हम अपने उसी वक्तव्य पर आ गये जहा स चले थ।[3]

इस प्रकार रिचड्स' ने कला को एक मानवी व्यापार माना है जो मानवो को प्रभावित करता है और इसलिए जो कोई मानवो के सम्ब ध मे सही अन्वेषण करता है उसका यह ठीक ठीक विश्लेषण करने में समथ होता है। सौंदर्यानुभूति को उसने कोई पृथक असाधारण अनुभूति स्वीकार नही किया, क्योंकि मनोविज्ञान मे इस प्रकार का अनुभव करनेवाला कोई पृथक इन्द्रिय नही। किसी कविता को

१—फाउण्डेशन्स आफ एस्थेटिक्स, पृ० ५६, लिटरेरी क्रिटिसिज्म शार्ट हिस्ट्री, पृ० ६१४ पर से।

२—फाउण्डेशन्स पृ० ५३, लिटरेरी क्रिटिसिज्म एशॉर्ट हिस्ट्री, पृ० ६१४ पर स।

३—फाउण्डेशन्स पृ० ६१, लिटरेरी क्रिटिसिज्म ए शार्ट हिस्ट्री, पृ० ६१४–१५, प्रिंसिपल्स ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म पृ० १५ इत्यादि।

पढ़कर या किसी चित्र को देखकर हमारे अन्दर जीवविज्ञान सबधी (बायोलोजिकल) परिवर्तन होते हैं लोकोत्तर ज्ञान द्वारा प्राप्त नहीं होता क्योंकि उसे ग्रहण करने के लिये कोई भी लोकोत्तर इन्द्रिय नहीं है। अतएव भावनो के सामजस्य और सन्तुलन को ही यहाँ सौन्दर्यानुभूति कहा गया है।

मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया की मुख्यता

रिचड्स के अनुसार 'अनुभवो को पृथक करने और उनका मूल्यांकन करने के प्रयत्न को समीक्षा कहते हैं। अनुभव के स्वरूप अथवा मूल्यांकन और सम्प्रपण के सिद्धा तो को समझे बिना यह सभव नहीं है।"[1] इस प्रकार की समुचित समालोचना-पद्धति के लिए मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया आवश्यक है, जो किसी रचना के सृजन और उसके मूल्यांकन के समय क्रमश लेखक और पाठक के मन में आविर्भूत होती है। इसी आधार पर असीमित प्रगति का होना सभव है जैसी प्रगति फ्रांसिस बेकन के समय से होती आई है। वह लिखता है, 'यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि यदि सब ठीक से चलता रहा तो सन् ३००० का मानव हमारे सारे सौंदर्यशास्त्र, सारे मनोविज्ञान और सारे मूल्यांकन के आधुनिक सिद्धान्त को ऐसा बना देगा कि वे दयनीय प्रतीत होने लगें। ऐसा न होने पर निश्चय ही भविष्य दीन हीन हो जायगा।[2] स्पष्ट है कि रिचड्स समीक्षाशास्त्र को नये-नये आविष्कारों को लेकर आगे बढ़नेवाले आधुनिक विज्ञान के साथ जोड़ रहा है।

काव्य की उत्कृष्टता

रिचड्स ने भाषा के दो प्रयोग स्वीकार किये हैं। एक मे भाषा का वैज्ञानिक प्रयोग है जिसमें किसी बात का सत्य अथवा असत्य निर्देश होता है, दूसरे में भावावेश भाषा का प्रयोग है। एक को बौद्धिक प्रवाह और दूसरे को भावावेशयुक्त प्रवाह कहा गया है। रिचड्स के शब्दों मे, 'कविता का सम्बन्ध किसी सीमित और प्रत्यक्ष निर्देश से नहीं है। वह किसी चीज का निर्देश नहीं करता, अथवा उसे निर्देश नहीं करना चाहिए। इसका एक भिन्न तथा उतना ही महत्वपूर्ण तथा अधिक आवश्यक उद्देश्य है—जीवनप्रद सामग्री के साथ जीवनदायिनी शब्दावली का प्रयोग। कविता का कार्य होता है अथवा होना चाहिए अनुभूति के उपयुक्त मनोभाव को प्रवृत्त करना।"[3]

कविता का अध्ययन करते समय रिचड्स ने भावावेग के प्रवाह को ही मुख्य बताया है क्योंकि यह हमारी अभिरुचियों पर आधारित है, और यही प्रभावकारी

१—प्रिंसिपल्स आफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म, भूमिका, पृ० २

२—वही, पृ० ४

३—द मीनिंग आफ मीनिंग, आगडेन और रिचड्स, क्रिटिकल अप्रोचेज टू लिटरेचर, पृ० १३४ ३५ पर से

होता है जब कि कविता के अध्ययन से उत्पन्न होनेवाला बौद्धिक प्रवाह महत्त्वपूर्ण नहीं होता। बौद्धिक प्रवाह को भावावेग के प्रवाह में केवल एक साधन के रूप में माना गया है, क्योंकि उसका वह सचालन करता है और उसे उत्तेजित करता हैं। यहाँ भावावेग के प्रवाह को ही सक्रिय कहकर उसे महत्त्वपूर्ण बताया है क्योंकि इसी से समस्त शक्ति और उत्तेजना का आविर्भाव होता है। इसकी विचारधारा एक ऐसी क्रीडा की भांति है जो किसी 'शासक के द्वारा सचालित होती है जो कि मुख्य मशीन को नियन्त्रित करता है। इस प्रकार का प्रत्यक्ष अनुभव मूल रूप से किसी अभिरुचि अथवा अभिरुचियो का समूह होता है जो एक लटकन की भांति इधर उधर झनझनाकर अपने पूर्व की स्थिति म आकर ठहर जाता है।'[१]

यहाँ मानसिक प्रक्रिया की, दिक्सूचक यन्त्र की सुइया के साथ तुलना की गयी है। य सुइया किसी भी दिशा का ओर गतिशील होने के लिए स्वतन्त्र हैं, किसी भी विक्षोभ का इन पर प्रभाव पडता है तथा अनेक स्पन्दना के पश्चात अन्त में य किसी एक दिशा मे आकर ठहर जाती हैं। यही बात हमारी अभिरुचियों के सम्बन्ध मे समझनी चाहिए। हमारा मस्तिष्क कोमलतापूर्वक निर्मित अभिरुचियो की एक प्रणाली है। हमारे स्नायुमडल में जब कोई विक्षोभ पैदा होता है तो उससे हमारी अभिरुचियो की स्थिति उलट पलट हो जाती है। इससे हमारे व्यक्तित्व के गठन पर स्थायी प्रभाव पडता है। लेकिन स्वस्थ और पूर्ण जीवन के लिए मस्तिष्क का अपनी सन्तुलित अवस्था म रहना आवश्यक है। और रिचड्स के अनुसार यह कार्य सम्पन्न किया जाता है कविता के द्वारा।[२] उसी के शब्दों मे, 'मनुष्य किसी भी अर्थ मे मुख्यत बोधशक्ति नही है, वह अभिरुचियो की प्रणाली है। बोधशक्ति उसकी सहायता करती है, उसे नष्ट नही करती।' विज्ञान और कविता में यही अन्तर है—विज्ञान का सम्बन्ध बोधशक्ति से है और कविता का अभिरुचियो से। इसीलिए रिचड्स के मत म कवि का अपने भावो के कारण नही, सम्प्रेषण के प्रयत्नो के कारण महत्त्व है। 'कविता जो कुछ अभिव्यक्त करती है वह महत्त्वपूर्ण नही, बल्कि महत्त्वपूर्ण यह है कि वह क्या है। कवि किसी वैज्ञानिक की भांति कविता नही लिखता। वह शब्दो का इसलिए इस्तेमाल करता है कि परिस्थिति के अनुसार, य शब्द उसकी समस्त अनुभूति को आदेश प्रदान करने, नियन्त्रित करने और उसे सघटित करने के साधन रूप में उसकी चेतना म सम्मिलित हो जाते हैं।'[३]

१—साइंस ऐंड पोएट्री, क्रिटिसिज्म द फाउंडेशंस आफ माडर्न लिटरेरी जजमेंट, पृ० ५०८

२—वही, पृ० ५०८ ९

३—वही, पृ० ५१० ११

कवि अपने शिल्प कौशल का आधार ग्रहण कर काव्य का सृजन नहीं करता, क्योंकि शब्दावली काव्य के शिल्प कौशल से उद्भूत न होकर वास्तविक सर्वोपरि अनुभव के आदेश से उद्भूत होती है। इससे रिचर्ड्स ने जीवन के साथ कविता का सम्बन्ध स्थापित किया है। उसके कथनानुसार, कवि वही हो सकता है जिसका जीवन पर सर्वोपरि शासन है और जीवन का यह शासन उसकी शब्दावली और लय के शासन में प्रतिबिंबित होता है। इसलिए कवि की शैली को, जिस पद्धति से उसकी अभिरुचियाँ संगठित होती हैं उस पद्धति का प्रत्यक्ष परिणाम कहा है। यहाँ 'वाणी को आदेश देनेवाली उसकी आश्चर्यजनक शक्ति को, अपनी अनुभूति को आदेश देनेवाली उसकी अधिक आश्चर्यकारक शक्ति का केवल एक अंश मात्र' स्वीकार किया गया है।[1]

काव्य और सत्यता

शैली ने 'सबसे सुखी और सर्वोत्कृष्ट मस्तिष्कों के श्रेष्ठतम और सर्वाधिक सुखमय क्षणों के लिखित विवरण' को कविता कहा है। रिचर्ड्स ने कविता की इस परिभाषा को मान्य किया है। उनके मत में कवि का कथन वास्तविक न होकर 'कृत्रिम' होता है, जो किसी वैज्ञानिक के कथन से भिन्न है। वैज्ञानिक के कथन की सत्यता प्रयोगशाला में प्रमाणित की जाती है, जब कि कवि का कथन किसी 'प्रवृत्ति' द्वारा स्वीकृत रहता है, या इस प्रवृत्ति की स्वीकृति पर ही उसकी सत्यता निर्भर रहती है। इसीलिए 'कवि का कार्य सत्य कथन नहीं है। फिर भी कविता सदैव कथन करने—महत्वपूर्ण कथन प्रस्तुत करने—की डींग मारती है और यह एक कारण है कि कतिपय गणितशास्त्र के वेत्ता इसे पढ़ नहीं सकते। उन्हें ये तथाकथित कथन मिथ्या प्रतीत होते हैं।[2]

इस प्रकार के कथनों को 'काव्य सम्बन्धी सत्य' के नाम से अभिहित किया गया है। ये सत्य प्रायः तर्कपूर्ण नहीं होते हमारे भावावेगों के संगठन द्वारा ही ये उत्पन्न होते हैं। ऐसे कथनों का हमारी भावनाओं और प्रवृत्तियों पर जो प्रभाव पड़ता है, उससे वे पूर्ण रूप से अनुशासित रहते हैं। कभी तक भी दिखाई दे जाता है लेकिन गौण रूप में ही। ऐसी हालत में कवि के "मिथ्या कथनों को 'सत्य' ही माना गया है बशर्ते कि वे किसी प्रवृत्ति के अनुकूल हों या उसके सहायक हों, अथवा वे उन प्रवृत्तियों को परस्पर सम्बद्ध करते हों जो किसी अन्य आधार पर अभीष्ट हों।'[3]

देखा जाय तो सत्य उक्ति ही हमारे लिए विशेष उपयोगी होती है, लेकिन रिचर्ड्स का मानना है कि केवल उसके बल पर हम अपने भावावेशों और प्रवृत्तियों

१—वही पृ० ५१३ १४

२—वही पृ० ५१७

३—वही पृ० ५१८

को व्यवस्थित रूप नहीं दे सकते। ईश्वर, धर्म आदि सम्बधी हमारे ऐसे कितने ही मिथ्या विश्वास हैं जिन्हें हम सदियों से अंगीकार करते आये हैं—जो मस्तिष्क के सघटन के लिए आधारभूत कहे जाते हैं और जो उसके कल्याण की दृष्टि से आवश्यक रहे हैं—और आज के वैज्ञानिक युग मे उन्हें स्वीकार करना असभव हो गया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि जिस ज्ञान के कारण उनका नाश हुआ है, वह ऐसा ज्ञान नहीं है कि जिसे हम अपने मस्तिष्क के उत्तम सघटन का आधार बना सकें। तात्पर्य यह है कि विशुद्ध ज्ञान द्वारा प्रकृति के ऊपर नियत्रण मे ही वृद्धि हो सकती है, जब कि असत्य कथन ऐसा साधन है जिसके माध्यम से हमारी प्रवृत्तियाँ परस्पर तथा ससार म व्यवस्थित रूप लेती हैं। काव्यात्मक सत्य की जो आलकारिक, प्रतीकात्मक अथवा सहजानुभूति रूप से व्याख्या की गयी है यह इसी असत्य कथन का परिणाम समझना चाहिए।[1]

अन्त मे रिचर्ड्स ने काव्य को सभ्यता की सुरक्षा का एक प्रमुख साधन मानकर मैथ्यू आर्नोल्ड के शब्द उद्धृत किये हैं—'कविता म हमारी रक्षा करने की सामर्थ्य है। अव्यवस्था को पराभूत करने के लिए सपूर्ण रूप से यह एक सभव उपाय है। यह बात दूसरी है कि मनुष्य उसका लाभ उठाने के लिए कहाँ तक शक्तिशाली है।'[2] मनोवैज्ञानिक मानववाद का यही सिद्धान्त है जिसके आधार पर रिचर्ड्स ने विज्ञान के मुकाबले मे काव्य की रक्षा की घोषणा की।

कला और नीति

रिचर्ड्स के अनुसार, जैसे जैसे परिस्थितियाँ बदलती हैं, वैसे वैसे नैतिक मूल्य भी बदल जाते हैं। इसी नैतिकता से मानव सम्बधी कला के स्थान और उसके मूल्य का निर्धारण होता है। इसी आधार पर रिचर्ड्स ने शिव ('गुड') की परिभाषा की है। उसके अनुसार, हमारे आवेगों का व्यायाम और हमारी अभिलाषाओं की तृप्ति को ही शिव अथवा मूल्यवान कहना चाहिए। इसलिए किसी चीज को हम तभी अच्छी कहते हैं जब वह हमें सतोष प्रदान करती है, तथा एक अच्छे अनुभव से तात्पर्य है ऐसा अनुभव जिसमें इस अनुभव को पैदा करनेवाले आवेग सफल और तुष्ट हो जाते हैं तथा उसके व्यायाम और परितोष से कोई अधिक महत्त्वपूर्ण आवेग बाधित नहीं होता।[3]

सर्वाधिक मूल्यवान मन स्थितियों के सम्बन्ध मे कहा गया है कि ये मन-स्थितियाँ वे हैं जिनमें क्रियाकलाप का अत्यन्त विशद और व्यापक समन्वय तथा

१—वही, पृ० ५१८–१९
२—वही, पृ० ५२३
३—प्रिंसिपल्स आफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म पृ० ५८

न्यूनतम ह्रास, द्वंद्व, बुभुक्षा तथा नियन्त्रण रहता है। सामान्यतया मन स्थितियाँ उसी हद तक मूल्यवान होती हैं जिस हद तक वे अपव्यय और विफलता को कम करने की ओर उन्मुख रहती हैं।[1]

मनुष्य एक दूसरे से भिन्न है इसलिए जो बात एक के लिए अच्छी है, उसका दूसरे के लिए अच्छा होना जरूरी नहीं। उदाहरण के लिए, नाविक डाक्टर, गणितज्ञ और कवियों की मन स्थिति भिन्न भिन्न होने से उनके मूल्य भी भिन्न होते हैं। निस्स देह ऐसी परिस्थितियाँ हो सकती हैं और होती हैं कि जहाँ उच्च मूल्यों का जीवन सभव ही न हो।[2]

जैसे डाक्टर शारीरिक स्वास्थ्य का ध्यान रखता है वैसे ही आलोचक मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा के लिए जिम्मेवार है। आलोचक मूल्यों का निर्णायक होता है।[3] उसमें तीन बातें होनी चाहिये। उसे सनकी न होकर, अनुभूति में कुशल होना चाहिए, जिससे उसकी मन स्थिति उस कलाकृति से, जिसका वह निर्णय करने जा रहा है, सुसगत हो, कम बहिस्पर्शी विशेषतायुक्त अनुभवों का भेद करने में उसे कुशल होना चाहिए, मूल्यों का उसे ठोस निर्णायक होना चाहिए।[4]

काव्य जीवन की आलोचना है—मैथ्यू आर्नोल्ड के इस वक्तव्य के सम्बन्ध में रिचड्स ने लिखा है कि यह एकदम स्पष्ट उक्ति है, यद्यपि इसकी बराबर उपेक्षा होती रही है।'[5] "कलाकार का काम उन अनुभूतियों को अकित कर देना और चिरस्थायी बना देना है जो उसे सर्वाधिक सग्रहणीय प्रतीत होती हैं। कलाकार एक ऐसा बिन्दु है जहाँ मन का विकास व्यक्त हो उठता है। उसकी अनुभूतियों में—ऐसी अनुभूतियाँ जो उसकी कृति को मूल्यवान बनाती हैं—ऐसे आवेगों का सामजस्य दिखाया देता है, जोकि अधिकाश मस्तिष्कों में अस्त-व्यस्त, परस्पर प्रतिबद्ध तथा परस्पर विरोधी हुआ करते हैं। उसकी कृति में व्यवस्था होती है जब कि अधिकांश लोगों के मन में अव्यवस्था दिखायी देती है।'[6]

रिचड्स ने कहा है कि नीतिवादी की प्रवृत्ति हमेशा कलाकार का अविश्वास या उसकी उपेक्षा करने की होती है। 'लेकिन चूँकि जीवन का सदाचरण केवल ऐसी ही सूक्ष्म प्रतिक्रियाओं से उद्भूत होता है जो अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण सब

१—वही, पृ० ५९
२—वही पृ० ६०
३—वही
४—वही, पृ० १४४
५—वही पृ० ६१
६—वही

सामान्य आचारपरक उक्तियों के सम्पर्क के बाह्य हैं, नीतिवादी के द्वारा कला की यह उपेक्षा एक प्रकार से उसकी अयोग्यता ही समझी जायगी। वस्तुतः शेली की भाँति रिचडस ने भी इसी पर जोर दिया है कि नैतिकता का शिलान्यास कवियों द्वारा ही किया जाता है, धर्मोपदेशकों द्वारा नहीं।[1]

कविता, कविता के लिए

रिचडस ने कला के नैतिक सिद्धान्त को स्वीकार कर 'कला के लिए कला' सिद्धान्त को अमान्य किया है। कला और जीवन का उसने अभेद्य सम्बन्ध माना है। उसके अनुसार, यह कथन भ्रामक है कि कला हमारे मन की किसी सौंदर्यपरक भावना को तृप्त करती है। कलावादी सिद्धान्त के प्रतिष्ठाताओं में उसने ह्विस्लर, वाल्टर पेटर तथा उनके प्रभावशाली शिष्यों के नाम गिनाये हैं। नीतिवादी रस्किन के विरुद्ध समुचित प्रतिक्रिया के कारण भी उक्त सिद्धान्त को बल मिला। फिर, अंग्रेजी मन पर जो महाद्वीपीय एवं जर्मन सौंदर्यशास्त्र का प्रभाव अंकित हुआ, उससे भी यह सिद्धान्त विकसित हुआ। वस्तुतः जब से वैज्ञानिक सौन्दर्यशास्त्र का सूत्रपात हुआ तभी से यह आग्रह प्रबल हो उठा कि सौन्दर्यानुभूति एक ऐसी अनुभूति है जो विशिष्ट और स्वतः पूर्ण है और उसपर निरपेक्ष रूप से विचार किया जा सकता है। ब्रैडले के कलावादी सिद्धान्त की रिचडस ने विस्तृत समीक्षा की है।[2]

रिचर्ड्स की देन

रिचडस अमरीका में प्रचलित नव्य आलोचना के प्रवर्तकों में गिना जाता है। आलोचना के लिए मनोविज्ञान के अध्ययन को उसने अनिवार्य माना। वस्तुतः साहित्य की अपेक्षा मनोविज्ञान में वह अधिक पारंगत था। साहित्यिक मूल्यांकन को समीक्षा का उद्देश्य मानते हुए उसने बताया कि मूल्य और प्रेषणीयता (कम्युनिकेशन) की भित्ति पर ही आलोचना के भवन का निर्माण हो सकता है। वस्तुतः जीवन और साहित्य के प्रति मनोवैज्ञानिक मानववादी दृष्टिकोण अपनाकर रिचडर्स ने साहित्य का मूल्य निर्धारित किया है।

यदि कोई साहित्यिक मूल्यांकन के सिद्धान्तों को समझने की क्षमता नहीं रखता तो ऐसे समीक्षकों और पाठकों के लिये रिचडस ने 'प्रैक्टिकल क्रिटिसिज्म (व्यावहारिक समीक्षा - १६२६) तथा 'मीनिंग ऑफ मीनिंग' (अर्थ का अर्थ - १६२३) ग्रन्थों की रचना की। दोनों कृतियों ने पाश्चात्य जगत् की व्यावहारिक समीक्षा को प्रभावित किया। 'प्रैक्टिकल क्रिटिसिज्म रचना में तीन बातें मुख्य हैं (क) 'संस्कृति की समसामयिक स्थिति' को लिपिबद्ध करना, (ख) जो इस बात का

१—वही पृ० ६२

२—वही, अध्याय १०, पृ० ७१-८०

पता लगाना चाहते हैं कि काव्य में विषय में वे क्या सोचते और अनुभव करते हैं, ऐसे लोगों में अध्ययन के प्रति नई रुचि पैदा करना, तथा (ग) साहित्य के अध्यापन में संशोधन करना। इसी उद्देश्य को लेकर रिचड्स ने अपने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के श्रोताओं के समक्ष, उनकी टीका टिप्पणियों के लिए, अपरिचित कविताओं की आधुनिक ढंग की पाठ्य पुस्तकें प्रस्तुत की थी। रिचड्स के अनुसार लोगों में पढ़ने-लिखने की क्षमता अत्यधिक निम्न कोटि की होने के कारण, उनसे समीक्षात्मक परीक्षण के उच्च स्तर की अपेक्षा नहीं की जा सकती।

रिचड्स के समीक्षात्मक सिद्धांतों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वह एक वैज्ञानिक अन्वेषक था। यदि हम कविता के मूल्य का परीक्षण करना चाहते हैं तो *हमें यह जानना होगा कि कविता की रचना करते समय लेखक की और कविता का* अध्ययन करते समय पाठक की क्या स्थिति रहती है। इसके लिए यह आवश्यक है कि किसी कलाकृति में उपयुक्त शब्दावली का सावधानीपूर्वक विश्लेषण करते हुए हम इस बात का पता लगायें कि अपने पाठकों और आधुनिक समीक्षा को वह कृति किस प्रकार प्रभावित करता है। इस प्रकार अपने समीक्षात्मक सिद्धांतों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अपनाना पाश्चात्य समीक्षाशास्त्र को रिचड्स की बड़ी देन समझी ज गया। उसकी इस समीक्षात्मक पद्धति ने मैक्लीश वारेन और कैनिथ बर्क आदि विद्वानों को प्रभावित किया।

रिचड्स के समीक्षा सिद्धांतों का आधार मनोवैज्ञानिक है, इसलिए उसके समीक्षकों का कथन है कि जैसे जैसे मानव चेतना के विज्ञान में परिवर्तन होगा वैसे-वैसे यह आधार खंडित होता जायेगा। जॉन को रैंसम ने अपनी 'न्यू क्रिटिसिज्म' (नयी आलोचना) नामक पुस्तक में उसके इस मनोवैज्ञानिक आधार को अस्वीकृत किया है। टी० एस० इलियट भी इससे सहमत नहीं। अपनी 'यूज आफ पोयट्री एँण्ड क्रिटिसिज्म (कविता का उपयोग और आलोचना) नामक पुस्तक में इलियट ने लिखा है *"रिचड्स के नीतिशास्त्र अथवा उसके मूल्य का सिद्धान्त मैं स्वीकार नहीं कर सकता, मुझे ऐसा कोई सिद्धान्त ही मान्य नहीं है जो शुद्ध वैयक्तिक मनोवैज्ञानिक* आधार पर प्रतिपादित किया गया हो।"

बीसवीं शताब्दी का प्रथमार्ध

प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त का समाज

बीसवीं शताब्दी के प्रथम घ मे इग्लैड एक अजीब परिस्थिति से गुजर रहा था। तत्कालीन गभीर कवि इस बात का अनुभव कर रहे थे जिस समाज मे वे रह रहे हैं, वह आध्यात्मिक जीवन से बहुत दूर होता जा रहा है। प्रथम विश्वयुद्ध के परिणामस्वरूप जीवन की जो कटुतम भीषणताएँ प्रत्यक्ष हुई थी, कवि उनसे आतंकित होकर जीवनदायी काव्यसृजन की ओर प्रवृत्त हो रहा था। ऐसी हालत में स्वाभाविक था कि यदि कविता को ईमानदारी के साथ जनजीवन का चित्रण करना है तो उसे खेतीबारी पर निभर रहनेवाले प्राचीन मध्यमवर्गीय समाज से नाता तोड उस नूतन समाज की अनुभूतियो को अभिव्यक्ति प्रदान करना था जो तत्कालीन परिस्थितियो में जन्म ले रहा हो। परिणाम यह हुआ कि इस समय जो कविता लिखी गयी, वह नयी परिस्थितियों में पोषित पाठकों को 'अरुचिकर' एव कठिन' प्रतीत हुई। अरुचिकर इसलिए कि यदि कविता सचमुच 'जीवन की आलोचना' है तो उसमें तत्कालीन जीवन की कटु भीषणताएँ प्रतिबिंबित होनी चाहिए थी जिनसे कवि बचने की कोशिश करता आ रहा था। तथा, कवि को अपनी अ तरतम की अनुभूतियो को, परम्परागत रचना विधान से हटकर एक बिल्कुल ही नूतन शैली म अभिव्यक्त करना था इसलिए कविता का 'कठिन' समझा जाना स्वाभाविक था।[1]

१६१३ में कविता म गूढ़ता का प्रयोग देखकर कतिपय कवियो ने निम्न बातें निर्धारित की थी —

(क) कविता में जनसामान्य की भाषा का प्रयोग किया जाय, लेकिन हमेशा सही शब्दो का प्रयोग हो, केवल आलकारिक शब्दों का नहीं।

(ख) नये भावो (मूड) की अभिव्यक्ति के रूप में नये अनुप्रासो का सृजन करने के लिए किसी कवि की वैयक्तिकता, गतानुगतिक रूपों की अपेक्षा प्राय मुक्त छन्द में ही श्रेष्ठतर रूप में अभिव्यक्त की जा सकती है।

(ग) विषयो की पसदगी में पूर्ण स्वतन्त्रता दी जाये।

(घ) बिम्ब को प्रस्तुत करते समय हम चित्रकार नही हो जाते, किन्तु हम समझते हैं कि कविता में विशेषो का ठीक ठीक अकन होना चाहिये, गूढ सामान्यताओ का नहीं।

१—इलियट ने अपने 'मैटाफिजिकल पोएट्स' नामक निबंध में कविता के काठिन्य को आवश्यक बताया है इसकी चर्चा आगे चलकर इसी प्रकरण मे की जायगी।

(ङ) काव्य सृजन करना कठिन और स्पष्ट है, धुँधला अथवा अनिश्चित कभी नहीं।

(च) केंद्रीकरण कविता का प्रमुख तत्व है।[१]

बैबिट और मोरे

अमरीका में इस समय दो प्रभावशाली समीक्षक हुए—एक इरविंग बैबिट, (१८६५ १९३३) और दूसरे नव मानववादी पाल एलमर मोरे (१८६४ १९३७)। बैबिट हार्वर्ड में इलियट का अध्यापक रह चुका था। बैबिट और मोरे[२] ने स्वच्छन्दतावाद के मौलिक सिद्धान्तों के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न उपस्थित किये। बैबिट ने हार्वर्ड विश्वविद्यालय में इस विषय पर व्याख्यान भी दिये। बैबिट ने मानव के तीन स्तरों का उल्लेख किया है। पहला, प्राकृतिक स्तर मनोभावों और नैसर्गिक प्रवृत्तियों का स्तर है जिसका उपयोग स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन के लेखक करते आये हैं। दूसरा स्तर मानववादी अथवा समीक्षात्मक है जिसकी सहायता से हम इससे निम्न स्तर की परीक्षा करते हैं, उसे समझते हैं और उस पर नियंत्रण करते हैं। तीसरा स्तर धार्मिक स्तर है जो समीक्षा के बाह्य है। 'रूसो एण्ड रोमांटिसिज्म' नाम की अपनी महत्वपूर्ण कृति में उसने मानववादी दृष्टिकोण से स्वच्छन्दतावादी सिद्धान्तों का विरोध करते हुए अपने को अरिस्टोटल का अनुयायी कहा है।[३] यहाँ पर उसने मानववादी रूसो के सिद्धान्तों की समीक्षा की है।[४] इन सबका प्रभाव इलियट पर पड़ना स्वाभाविक था जिसका परिणाम हुआ 'ट्रेडीशन एँण्ड इण्डिविजुअल टेलंट' नाम का लेख जिससे लेखक को एक आलोचक के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त हुई।

१—माइकेल राबर्टस, द फाबेर बुक आफ माडर्न वर्स, पृ० १३, लंदन १९६५

२—बैबिट के सम्बन्ध में इलियट ने कहा है—आर्नोल्ड की भाँति बैबिट ने भी साहित्यिक समीक्षा को किसी और के साथ सम्मिश्रित कर दिया है। न तो बैबिट और न उसके साथी नव मानववादी पाल एल्मेर मोरे ही 'मुख्य रूप से कला के प्रति अभिरुचि रखते थे।" मुख्यतया दोनों ही नीतिवादी थे। इन दोनों की आलोचना इलियट ने अपनी 'सभेड बुड' (पृ० ४१ ४४) के अन्तर्गत 'इम्परफेक्ट क्रिटिक' नामक लेख में की है। तथा देखिए सलेक्टेड ऐसेज' के अन्तर्गत 'द ह्यूमेनिज्म आफ इरविंग बैबिट' नामक लेख, तथा लिटरेरी क्रिटिसिज्म शार्ट हिस्ट्री, पृ० ६५८।

३—यीर विन्टर्स इन डिफेंस आफ रीजन १९४३, लंदन पृ० ३८५। यहाँ बैबिट को आधुनिक युग के कतिपय महान् समीक्षकों में गिना गया है।

४—मोरे ने अपने मानववाद का सम्बन्ध प्रकट रूप से धर्म के साथ स्थापित किया जबकि बैबिट ने रूसो और स्वच्छन्दतावाद के विरोध में अपनी सशक्त वक्तृत्व कला का परिचय दिया। मोरे के शब्दों में "एक ओर प्राकृतिक और दूसरी

टी० ई० ह्यूम (१८८३–१९१७)

इन्हीं दिनों थामस अर्नेस्ट ह्यूम ने इंगलैंड में एक आलोचक के रूप में पदार्पण किया। एजरा पाउण्ड के साथ उसकी मित्रता थी। दोनों में साहित्यिक प्रश्नों को लेकर वाद विवाद भी चला करता था। १९१२ में पाउण्ड ने जब बिम्बवाद का आन्दोलन चलाया¹ तो उसने 'टी० ई० ह्यूम की समस्त काव्य रचनाएं' पुस्तक प्रकाशित की जिसमें ह्यूम के लेख और पांच लघु कविताओं का संग्रह था। इंग्लैंड का यह आलोचक प्रथम विश्वयुद्ध में काम आ गया जिससे उसके समीक्षात्मक विचारों का लाभ संसार को न मिल सका। फिर भी, अपने जीवन की अल्प आयु में उसने जो कुछ लिखा, उसका प्रभाव पाश्चात्य समीक्षा पर पड़े बिना न रहा। 'स्पेक्यूलेशन्स एसे आन ह्यूमेनिज्म एण्ड फिलासाफी आफ आर्ट' (मीमांसा मानववाद और कला दर्शन सम्बन्धी निबन्ध) उसकी प्रसिद्ध कृति है जो उसके मरणोपरान्त हर्बर्ट रीड द्वारा संपादित होकर १९२४ में प्रकाशित हुई। इसमें 'रोमांटिसिज्म ऐंड क्लासिसिज्म' नामक एक महत्त्वपूर्ण निबन्ध है जिसमें शुष्क कठिन क्लासिकल कविता का समर्थन किया गया है। प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त पत्र पत्रिकाओं में उसके लेख प्रकाशित हुए जिन्होंने बिम्बवादियों को प्रभावित किया।

और धार्मिक सिद्धान्तों की उलझन से रहित मानव सुख के सिद्धान्तों के अध्ययन और व्यवहार को 'बैबिट ने मानववाद का नाम दिया है। ब्रिस्टन, आन बीड् ह्यूमैन १९३६, पृ० १८, लिटरेरी क्रिटिसिज्म ए शार्ट हिस्ट्री, पृ० ४५१ पर से।

१—पाउण्ड के साथ ऐमी लोवल (Amy Lowell) और हिल्डा डूलिटिल (Hilda Doolittle) भी थे। बाद में इलियट और ई० ई० कमिंग्स भी सम्मिलित हो गये। १९१५ में बिम्बवादियों का एक घोषणापत्र प्रकाशित किया गया। इसमें तीन बातें कही गई (क) सामान्य भाषा का प्रयोग करना, लेकिन हमेशा बिलकुल सही शब्द का—न लगभग सही और न केवल आलंकारिक-प्रयोग करना, (ख) कठिन और स्पष्ट कविता का सृजन करना, गूढ़ व्यापकता (जेनेरलिटीज) का प्रयोग न करना चाहे वह कितनी ही भव्य और गंभीर क्यों न हो (ग) पुरातन लय का अनुकरण न करें—जो पुरानी मनोदशा का ही प्रतिध्वनि है—नूतन लय का सृजन करना।

पाउण्ड की एक कविता देखिये —

द अपेरिशन आफ दीज फेसेज इन द क्राउड पेटल्स आन ए वट ब्लैक बाउ

(भीड़ के इन चेहरों के दृश्य एक गीले पर पंखुड़ियाँ काली शाखा)।

इस नोट के लिये डा० कृष्णलाल शर्मा का अनुगृहीत हूँ।

स्वच्छन्दतावाद क्रांति का जनक

स्वच्छन्दतावाद के सम्बन्ध में ह्यूम ने लिखा है कि स्वच्छन्दतावाद ने ही फ्रांस में राज्यक्रांति को जन्म दिया, अतएव लोग इससे घृणा करते हैं। उनका कहना है कि स्वच्छन्दतावाद एक बड़ा भयानक रोग था जिससे अभी हाल में फ्रांस को मुक्ति मिली है।[१]

स्वच्छन्दतावाद और रूसो

ह्यूम प्रथम अंग्रेजी विचारक था जिसने कि उदार मानववाद पर तीव्र आक्रमण किया, जो मानववाद पुनर्जागरण के काल से अंग्रेजी मध्यमवर्गीय संस्कृति की आधारशिला रहा है। उसका कहना था कि मानववादी परम्परा अब निष्प्राण हो गयी है, अतएव यूरोप में कला और दर्शन को कोई नया रूप धारण करना चाहिए। कला का आधार मौलिक पाप की भावना होनी चाहिए जिससे ज्ञात पड़ता है कि मनुष्य एक अत्यन्त अपूर्ण प्राणी है। उसने बताया कि यह कोई महिमामय स्थान नहीं जहाँ मनुष्य मेल मिलाप और आनन्दपूर्वक रहता हो बल्कि यह एक ऐसा भभाग है जहाँ हरियाली कभी कभी हो दिखायी देती है। 'यह कूड़े-कर्कट का रेगिस्तान है, विश्व राख का गर्त है जिसपर घास उग आयी है।" आगे जाकर इलियट ने यही विचार अपनी वेस्ट लैंड कृति में व्यक्त किये।[२]

इरविंग बविट की भांति ह्यूम ने भी स्वच्छन्दतावाद का सम्बन्ध जीन रूसो से स्थापित किया। 'रूसो की शिक्षा थी कि मनुष्य स्वभाव से अच्छा होता है बुरे नियमों और बुरे रिवाजों के कारण वह दबा रह जाता है। यदि इन बातों को दूर कर दिया जाय तो मनुष्य में असीमित संभावनाएं उत्पन्न हो जायें।" अर्थात् मनुष्य असीमित संभावनाओं का भंडार है और यदि हम दमन करनेवाली शक्तियों पर विजय प्राप्त कर समाज को पुनर्व्यवस्थित कर सकें तो ये संभावनाएँ उभर कर आ सकती हैं, और हम उन्नति पथ पर अग्रसर हो सकते हैं।[३] इसी को ह्यूम ने स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति बताया है।

शास्त्रवाद की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि

शास्त्रवादी प्रवृत्ति को इसके बिल्कुल विपरीत बताया गया है। इसमें मनुष्य की शक्तियाँ अत्यन्त सीमित रहती हैं और उसका स्वभाव पूर्णतया स्थायी है।

१—रोमांटिसिज्म एँड क्लासिज्म, निहिलिज्म द फाउण्डेशन्स आफ मॉडर्न लिटरेरी जजमेंट पृ० २५८।

२—विवियन डी सोला पिण्टो क्राइसिस इन इंग्लिश पोएट्री, (१८८०-१९४०), लंदन, १९५८ पृ० १५२

३—वही।

अतएव परम्परा और व्यवस्था द्वारा ही उसमें कोई ऐसी बात पैदा की जा सकती है जिसे अच्छाई कहा जा सके। डी वायरेस के अनुसार, कोई चीज धीरे धीरे उत्पन्न न होकर अचानक ही उद्भूत हो जाती है, और फिर वह पूर्णतया स्थायी रहती है। इस प्रकार ह्यम ने वैज्ञानिक पृष्ठभूमि का आधार लेकर शास्त्रवादी मत का प्रतिपादन किया है।[1]

शास्त्रवाद में मानव की सीमा

स्वच्छन्दतावादी सिद्धान्त को 'वस्तुत उत्तम किन्तु परिस्थितियोवश भ्रष्ट" माना गया है, जब कि शास्त्रवादी सिद्धान्त को 'वस्तुत सीमित, किन्तु व्यवस्था और परम्परा द्वारा अनुशासित' कहा है। एक में मानव स्वभाव को कुएं के समान और दूसरे में बाल्टी के समान बताया है। स्वच्छन्दतावाद में मनुष्य का कुएँ के समान अतुल सम्भावनाओं का भंडार, तथा शास्त्रवाद में उसे सीमित और निश्चित प्राणी बताया है[2] "शास्त्रवादी कवि मनुष्य की इस सीमा को कभी विस्मृत नहीं करता। उसे हमेशा स्मरण रहता है कि वह भूमि में मिला हुआ है, वह ऊपर छलांग मार सकता है, लेकिन फिर से वापिस आ जाता है। वह कभी परिभ्रमणशील गैस में नहीं उड़ता।" लेकिन स्वच्छन्दतावादी कवि तारकों के इर्द गिर्द अपनी कविता द्वारा उड़ान भरता रहता है।[3]

साहित्य में व्यवस्था और अनुशासन

ह्यम ने जैसे स्वच्छन्दतावाद का विरोध कर शास्त्रवाद को स्वीकार किया है, वैसे ही मानववाद के स्थान उसने धर्म को माना है। मानववाद पर प्रतिष्ठित सभ्यता पूर्णतया विनष्ट हो रही है, इसलिए मानव सभ्यता और संस्कृति की रक्षा के लिए नैतिक और राजनैतिक अनुशासन और व्यवस्था की आवश्यकता है। साहित्य में व्यवस्था और अनुशासन आने पर ही हम शास्त्रवादी सिद्धान्त पर पहुंचते हैं। धर्म और शास्त्रवादी सिद्धान्त का पारस्परिक सम्बन्ध है। इसलिए वस्तुपरक नैतिक मूल्यों में विश्वास व्यक्त करनेवाली कला को ह्यम ने शास्त्रवादी कला माना है, स्वच्छन्दतावाद को उसने बिखरा हुआ धर्म (स्पिल्ट रिलीजन) कहा है।[4]

कविता की सीमा

कुछ लोगों का कहना है, कविता का उद्देश्य है अनन्त की ओर प्रेरित करना। यदि कविता इहलौकिक और निश्चित है तो सिद्धान्त के अनुसार वह सुन्दर

१—वही
२—वही
३—वही, पृ० २५६
४—वही

रचना हो सकती है, सुन्दर शिल्पकला हो सकती है, लेकिन कविता नहीं हो सकती।" शास्त्रवादी कविता में जो शुष्कता और नीरसता दिखायी देती है उसे ये लोग कभी भी कविता मानने को तैयार नहीं। उनके अनुसार तो कविता में भावना रहनी चाहिए, और ऐसे भावावेश रहने चाहिए जो अनन्त की ओर प्रेरित करते हों। इसके उत्तर में ह्यूम ने कहा है कि स्वच्छन्दतावादी विचारधारा ही इसके लिये जिम्मेदार है जिससे कि हम 'बिना किसी प्रकार की अस्पष्टता स्वीकार किए सब-स्तुओं को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होते।" उसने कविता को कतिपय निश्चित रूपों तक सीमित स्वीकार किया है।[1]

एजरा पाउण्ड (१८८५–)

ह्यूम के शास्त्रवादी सिद्धान्तों ने जैसे इलियट को प्रभावित किया वैसे ही एजरा पाउण्ड की विचारधारा से भी वह प्रभावित हुआ।[2] इलियट अपने इंग्लैण्ड निवास-काल में पाउण्ड तथा बिम्बवादियों के घनिष्ठ सम्पर्क में आया था। उसकी प्रारम्भकालीन कविता पर इनका प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इलियट का वेस्ट लैंड नामक का संग्रह पाउण्ड को ही समर्पित किया गया है। पाउण्ड द्वितीय विश्व युद्ध में फासिस्टों की युद्धनीति का समर्थक रहा है। इस समय में रेडियो पर भाषण देने के अपराध में उसे गिरफ्तार कर लिया गया था। जब वह अमरीका लौटा तो उसे इलाज के लिये पागलखाने भेज दिया गया।

पाउण्ड वस्तुतः एक मौलिक कवि था जो ब्राउनिंग और स्विनबर्न का शिष्य था तथा किपलिंग की कविता से प्रभावित हुआ था। एंग्लो सैक्शन, लैटिन, चीनी और जापानी कविता का उसने रूपान्तर किया था। काव्यरचना के छन्द में उसने अनेक प्रयोग किये थे तथा उन्मुक्त छन्द (फ्री वर्स) का वह प्रवर्तक था। पाउण्ड की बिंबवादी प्रवृत्ति के सम्बन्ध में कहा जा चुका है। बिंबवादियों ने अंग्रेजी स्वच्छन्दतावादी कवियों का अनुकरण करने के बजाय प्राचीन यूनानी और चीनी कविता का अनुकरण करना अधिक पसंद किया। उन्नीसवीं शताब्दी की भावुक, कल्पना प्रधान

१—वही पृ० १६१

२—योर विंटर्स ने अपनी इन डिफेंस ऑफ रीजन' पुस्तक में, कविता में पाउण्ड को इलियट का गुरु कहा है। उसका मुख्य प्रभाव इलियट की काव्यशैली में देखा जा सकता है। दोनों की तुलना के लिए उक्त पुस्तक के अन्तर्गत प्रिमिटिविज्म एँण्ड डिकेडेंस, (पृ० ५६ आदि) तथा टी० एस० इलियट द इल्यूजन ऑफ रिएक्शन (पृ० ४६३-५०१) निबंध देखिए।

अस्पष्ट और तत्वहीन काव्य परम्पराओं के स्थान पर इन लोगों ने कठोर, स्पष्ट तथा प्रभविष्णु परम्पराओं को अंगीकार किया।[1]

१९१५ में पाउण्ड ने हरिएट मोनरो को लिखे हुए पत्र में कहा है कि कविता गद्य की ही भाँति लिखी जानी चाहिए।[2] गद्य ऐसा हो कि 'उसमें किताबी शब्द न हो, व्याख्या न हो, और व्यतिक्रम (इनवर्जन) न हो। डा मोपासा के सर्वश्रेष्ठ गद्य की भाँति सरल तथा स्टॅंधेल के गद्य की भाँति वह कठोर हो। इसकी लय सार्थक हो। शब्द और अर्थ की वास्तविक पकड़ के बिना यह केवल बेपरवाही का वेग मात्र न हो। गद्यरचना के लिए सावधानीपूर्वक यथातथ्य रूप से लिखने के ऊपर जोर दिया गया है जो मन की एकाग्रता से ही सम्भव है।[3]

पाउण्ड ने विषयवस्तु और अभिव्यक्ति को समानधर्मा कहा है। किसी अच्छी कविता में प्रत्येक शब्द से उसका उद्देश्य सिद्ध होता है इसलिए एक निरर्थक अलंकार अस्पष्ट अभिव्यक्ति अथवा यांत्रिक और असंगत लय का उसमें कोई स्थान नहीं रहता। वस्तुतः पाउण्ड के अनुसार रूप ही अर्थ का अभिव्यक्ति करता है। इसीलिए यहाँ "अत्यधिक सम्भव मात्रा में केवल अर्थपूर्ण भाषा को ही महान् साहित्य' कहा गया है।[4]

पाउण्ड ने अच्छे गद्य की 'सरलता' को आदर्श कविता कहा है। अच्छे गद्य की 'कठिनता' भी इसमें रहती है, जिसे उसने ह्यूम का भाँति स्वच्छन्दतावादी' कविता

१—क्राइसिस इन इंगलिश पोएट्री, पृ० १५३ ५४। 'सम इमेजिस्ट पोएटस' में बिम्बवादियों की निम्नलिखित मान्यताओं का उल्लेख है—

(क) सामान्य बोलचाल की भाषा का प्रयोग करना, किन्तु हमेशा बिलकुल ठीक ठीक शब्द का प्रयोग करना—केवल आलंकारिक शब्दों का प्रयोग नहीं।

(ख) ऐसे काव्य की रचना जो कठोर और स्पष्ट हो, अस्पष्ट सामान्यताओं का प्रयोग नहीं करना वे चाहे कितनी ही शानदार और मधुर क्यों न हों।

(ग) अभिनव लयों का सृजन करना, पुरानी लयों का अनुकरण नहीं करना जो केवल प्राचीन मनोदशा की प्रतिध्वनि है। वही।

२—सेमुअल जॉनसन की 'द वनिटी ऑफ ह्यूमैन विशेज' की भूमिका में इलियट ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं। लिटरेरी क्रिटिसिज्म : ए शॉर्ट हिस्ट्री, पृ० ६६२।

३—लेटर्स ऑफ एजरा पाउण्ड, डी० डी० पैगे, न्यूयार्क, १९५०, पृ० ४८ ४९, लिटरेरी क्रिटिसिज्म ए शॉर्ट हिस्ट्री, पृ० ६६३, पर से।

४—लिटरेरी क्रिटिसिज्म ए शॉर्ट हिस्ट्री, पृ० ६६३।

के स्पष्ट और अनिर्दिष्ट भाव का विरोधी माना है। चीनी चित्रलिपि को उसने कविता की भाषा का आदर्श स्वीकार किया है, यह लिपि अर्थ के स्पष्टीकरण में स्वाभाविक संकेत प्रदान करती है। जैसे चीनी लिपि का प्रयोग करते समय किसी कुशल कलाकार की आवश्यकता होती है, जो बारीकी के साथ जो कुछ वह लिखना चाहता है, वही लिखता है, उसी प्रकार कुशल कवि भी अस्पष्ट और अनिर्दिष्ट भावों से दूर रहता हुआ सुनिश्चिततापूर्वक अपने विचारों को अपनी कला द्वारा अभिव्यक्त करता है। इस समय अपनी कला का सृजन करते समय किसी वैज्ञानिक की भाँति वह 'निर्वैयक्तिक' ही रहता है।[1] पाउण्ड ने कविता को "एक प्रकार का प्रेरणादायक गणित कहा है जो हमें त्रिभुज, क्षेत्र आदि किसी सूक्ष्म आकृति का नहीं, वरन् मानवीय भावों का समीकरण प्रदान करता है।" ह्यूम की भाँति ही उसने भी रूपक को कविता का मूल तत्त्व स्वीकारा है।[2]

१—इलियट ने कला की निर्वैयक्तिकता स्वीकार की है।

२—वही, पृ० ६६३-६४। इलियट ने भी रूपक को मान्य किया है।

प्रभाववाद (इम्प्रेशनिज्म)

ह्यूम और पाउण्ड के अतिरिक्त इलियट पर प्रभाववादियों और प्रतीकवादियों का भी प्रभाव पड़ा। इलियट की कविताएँ और उसके नाटक प्रतीकवादी प्रवृत्ति के उदाहरण हैं। बीसवी शताब्दी के दूसरे दशक में इलियट ने जब समीक्षात्मक क्षेत्र में पदार्पण किया तो प्रभाववादी मत की चर्चा जोरों पर थी।

कला और साहित्य के क्षेत्र मे प्रभाववादी आन्दोलन एक महत्वपूर्ण आन्दोलन रहा है जिसका उद्भव १९ वी शताब्दी के तीसरे चरण मे फ्रास में हुआ। प्रारम में फ्रास के चित्रकारों ने इस शैली का सूत्रपात किया। सामान्यतया यह शैली कलासम्बन्धी परम्पराओं की विरोधी है तथा प्रकृति को एक नूतन मौलिक रूप में अवलोकन करने की इसमें प्रवृत्ति है। मोनेट (Monet) के 'इम्प्रेशन' (१८७२) नामक पेंटिंग पर से इसका नाम प्रभाववाद पड़ा। पिक्टोरियल आर्ट, सगीत, साहित्य और नाट्य शाला तक इससे प्रभावित हुए। फ्रास के प्रभाववादी कलाकारों ने ससारदर्शन के वास्तविक चित्रण तथा प्रकृति से साक्षात् सपर्क को मुख्य माना। उनका कहना था कि प्राकृतिक वस्तुओं पर प्रकाश पड़ने पर ही हम उन्हें देख सकते हैं। इसलिये किसी वस्तु को देखकर हमारे अक्षिपटल पर जो उसका प्रतिबिम्ब पड़ता है, अपनी चित्रकला में हम उसीको चित्रित करते हैं उस वस्तु को नहीं, इसीलिये हम वायु-मडल को ग्रहण करने का प्रयत्न करते हैं। वायु और प्रकाश के कारण किसी चित्र में क्षण क्षण में पड़नेवाले प्रभावों में परिवर्तन होता रहता है, और इन सतत परिवर्तित प्रभावों में से हम किसी एक क्षण के प्रभाव को ही ग्रहण करते हैं। प्रभाववादी धारा स्वच्छदतावादी धारा के विरुद्ध उत्पन्न हुई थी। प्रकाश की मुख्यता के कारण वस्तुगत पेंटिंग को ही यहाँ प्रमुख स्वीकार किया गया है। वस्तुत प्रभाववाद में किसी वस्तु का मन पर प्रभाव पड़ने की बात नहीं थी, अक्षिपटल पर प्रभाव पड़ने ही की बात थी। लेकिन आगे चलकर इगलैण्ड के समीक्षकों की असावधानी के कारण किसी वस्तु का मन पर प्रभाव पड़ने की बात प्रभाववाद में समाविष्ट कर ली गई। टैनीसन आदि कवियों ने विभिन्न अवसरों पर जो प्राकृतिक वस्तुओं से प्रभावित होकर प्रकृति का वर्णन किया है, वह वास्तविक प्रभाववाद का ही रूप था, लेकिन समझा यह गया कि ये कवि स्वच्छदतावादी कविता का राग आलाप रहे हैं।[1]

१—देखिये शेल्डोन चेनी, द स्टोरी आफ मॉडर्न आर्ट, पृ० १८८–९०, लदन, १९५८

प्रभाववादी शैली निश्चय ही पाश्चात्य कला के इतिहास में एक परिवर्तनकारी शैली रही है। समय को इसमें विशेष महत्त्व दिया है। किसी समय अमुक क्षण में किसी विशिष्ट अनुभव की दशा को कला के द्वारा स्थायित्व प्रदान करना ही प्रभाववादी कवियों का उद्देश्य है। किसी कलाकृति का सजन करते समय लेखक पर जो एक अविच्छिन्न प्रभाव पड़ता है, उसमे प्रत्येक वस्तु एक रूप हो जाती है—किसी प्रकार का भिन्नता उसमे नही रहती—केवल अनुभवकर्ता के विभिन्न दृष्टिकोण ही रहते हैं। इस समय उस एक क्षण के सत्य के समक्ष अन्य समस्त सत्य अप्रमाणित ठहरते ह।

प्रभाववादी मत की समीक्षा

प्रभाववादियों का मत बहुत समय तक मान्य न रहा। उन्नीसवी शताब्दी के समाप्त होते होते पाश्चात्य समीक्षा पद्धति की प्रवृत्तियाँ बदल गई थी जिससे इस सिद्धान्त की आलोचनाएँ होने लगी। इलियट, ह्यूम, पाउण्ड तथा बिम्बवादियों ने प्रभाववादी सिद्धान्तों की डटकर आलोचना की। इलियट ने द परफक्ट क्रिटिक' निबन्ध में आथर सिमन्स को—जिसे पेटर तथा स्विनबन का उत्तराधिकारी कहा है—'सौंदयवादी' अथवा 'प्रभाववादी' आलोचक मानकर उसकी समीक्षा की। इलियट का कथन है कि केवल अपने ही प्रभावों को लेकर समीक्षा नही बन सकती। यदि अपने प्रभावों को हम शाब्दिक रूप देना चाहते हैं तो इसका मतलब हुआ कि उन प्रभावों का हम विश्लेषण और निर्माण करने लगे हैं और इससे कोई नयी चीज बन रही है।[1] ऐसी स्थिति में हमारे सौंदर्यात्मक प्रभावों के शाब्दिक रूप वही नही रह जाते जो प्रारभ में थे। इसके अलावा, इसे केवल आलोचक का सौंदयजन्य इन्द्रिय बोध ही कह सकते हैं समीक्षा नही। मान लीजिए कोई लेखक अपनी अत्यधिक भावुकता के कारण अपने प्रभावों के आधार से कोई नयी कलाकृति प्रस्तुत करता है लेकिन उसमें ओज की कमी है अथवा किसी अस्पष्ट प्रतिरोध के कारण कोई चीज अपने प्राकृतिक रूप में नही आ पाती। ऐसी हालत मे लेखक की सवेदनशीलता वस्तु को बदल तो देगी लेकिन उसका रूपान्तरण न हो सकेगा।' "इस प्रकार के लेखक को सामान्य भावावेश वाला व्यक्ति कहा गया है जिसमे अपनी कलाकृति का अनुभव करते समय समीक्षा और सजन की एक मिश्रित प्रतिक्रिया रहती है। इसमें उसका मत और विचार रहते हैं और साथ ही नए भावावेगों का समावेश भी जो कि उसके अपने जीवन में अस्पष्टता से सलग्न हैं। ऐसे भावुक व्यक्ति में कोई कलाकृति विभिन्न प्रकार के भावावेगों को पदा करती है, जबकि कलाकृति से उनका कोई भी सम्बन्ध नहीं रहता, वे केवल उसके व्यक्तिगत जीवन से सबधित घटनाएँ

१—द सेकेंड वुड, लदन १९३४ पृ० ५

मात्र होते हैं। ऐसे कलाकार को अपूर्ण कलाकार कहा गया है। उसकी कलाकृति में उल्लिखित उसके शुद्ध व्यक्तिगत अनुभव अन्य अनेक अनुभवों से समिश्रित होकर एक नयी कृति को जन्म देते हैं जिसे कि शुद्ध व्यक्तिगत नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह स्वयं एक कलाकृति है।"[1]

इलियट ने प्राचीन समीक्षकों में अरिस्टोटल को और नये समीक्षकों में रेमी द गुरमौ (Remy de Gourmont) को पूर्ण आलोचक माना है। किसी कलाकृति का मूल्यांकन करते समय उत्पन्न अनुभूति की सरचना को शाब्दिक अभिव्यक्ति प्रदान करने को सत् समीक्षा, तथा किसी कलाकृति द्वारा उत्पन्न भावावेगों की सामान्य अभिव्यक्ति को असत् समीक्षा कहा है। ऐसी दशा में केवल मनोभाव को समीक्षा नहीं कहा जा सकता। इलियट के अनुसार, प्रभाववादी सिद्धान्त का यही सबसे बड़ा दोष है कि मनोभाव को ही यहाँ सब कुछ मान लिया गया है।[2]

१—वही, पृ० ६-७

२—वही, पृ० १३-१५

प्रतीकवाद (सिम्बोलिज्म)

प्रतीकवादी प्रवृत्ति का उदय १६वीं शताब्दी के अंतिम चतुर्थांश में फ्रांस में तथा २०वीं शताब्दी के प्रथम दशक में इंग्लैण्ड में हुआ। केवल फ्रांस में ही नहीं, बल्कि बीसवीं शताब्दी में पाश्चात्य जगत् में कविता के संबंध में जो चर्चा हुई, वह फ्रांस के प्रतीकवादी आन्दोलन से प्रभावित है। वस्तुतः १६वीं शताब्दी में जो साहित्य और कला के प्रति साहित्यिकों का दृष्टिकोण था, उसी की प्रतिक्रिया प्रतीकवाद के रूप में अभिव्यक्त हुई। किसी प्रकार की अलौकिकता में विश्वास न कर प्रकृति को ही सब कुछ माननेवाले फ्रांस के फ्लाबेयर और जोला के प्रकृतवाद के विरुद्ध जो अन्तर्मुखी प्रतिक्रिया हुई, उसी का परिणाम था प्रतीकवाद।

प्रतीकवाद की परिभाषा अत्यंत अनिश्चित है और आज भी यह परिवर्तनशील बनी हुई है। साहित्य में यह केवल संकेत अथवा अन्योक्ति के अर्थ में नहीं लिया जाता। इसमें बिम्ब और रूपक (मेटाफर) भी शामिल हैं। समस्त कला का मूल साधन जो 'ठोस सार्वभौम' (कॉनक्रीट युनिवर्सल) है उसीके अर्थ में इसका प्रयोग किया जाता है।[1] प्रतीकवादियों की मान्यता है कि यदि कविता के माध्यम से हम भावावेशों की 'अभिव्यक्ति' करना चाहते हैं तो स्वयं अभिव्यक्ति का प्रकार अभि-व्यंजक होना चाहिए, तथा यदि हम सख्ती से नियम का पालन करना चाहें तो भाषा शुद्ध रूप से तभी भावावेशों की व्यंजक हो सकती है जब कि उसका इस प्रकार प्रयोग किया जाय कि भावावेश को छोड़कर अन्य कुछ भी न रहे।[2] प्रतीकवादी प्रतीकों के माध्यम से भावों विचारों और मनःस्थितियों की अभिव्यक्ति पर जोर देते हुए सांकेतिक भाषा को अपनाने का आग्रह करते हैं। उनके ये प्रतीक आध्या-त्मिक तथा बौद्धिक अर्थों को सूचित करते हैं। प्रतीकवाद को सुव्यवस्थित रूप देनेवाले सुप्रसिद्ध विद्वान् अर्न्स्ट कासिरेर (Ernst Cassirer १८७४–१६४५) ने प्रतीक रचना को मानवचरित्र के लिए अत्यंत आवश्यक बताते हुए प्रतीकों को मानव चेतना के विकास के लिए आवश्यक माना है। उसका कहना है कि मानव न तो पूर्णतया आदर्शवादी है और न भौतिकवादी, प्रतीकों के माध्यम से वह दोनों का भागी हो सकता है, इसलिए प्रतीकों को मानव का मध्यस्थ बिंदु माना गया है। उसका कथन है कि विवेक बुद्धि से नहीं, वरन् प्रतीक-रचना से हम मनुष्य से

१—रने वेले, ए हिस्टी ऑफ माडर्न क्रिटिसिज्म ४, पृ० ४३३

२—योर विएटम, इन डिफेंस ऑफ रीजन, पृ० ४५३

मानव चलते हैं ।[1] ग्रायर सिमन्स की मान्यता है, "प्रतीकवाद के बिना साहित्य नहीं होता, निश्चय ही भाषा भी नहीं होती, शब्द अपने आपमें प्रतीक ही तो हैं।" जब प्रथम मानव ने प्रत्येक जीवित वस्तु का नाम रखने के लिये शब्द उच्चरित किये, तभी प्रतीकवाद का प्रारम्भ हुआ । किसी शब्द का अर्थ शनै शनै विस्तृत होता जाता है और फिर प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर न होनेवाले किसी विचार या रूप के इङ्गित अर्थ का इससे परिज्ञान होने लगता है। अभिव्यक्ति के इसी रूप को प्रतीकवाद माना गया है।[2] दूसरे शब्दों में, शब्द के ध्वन्यात्मक रूप उसके अर्थ को प्रतीक माना गया है जिससे किसी विचार के साथ अन्य अनुभूतियों की भी अभिव्यक्ति हो सके।

प्रतीकवादी कवि

प्रतीकवादी चिन्तनधारा को स्वीकार करनेवाले फ्रेंच कवियों में बोद्लेयर, मलार्मे, वर्लेन वालेरा रैंबो आदि के नाम मुख्य हैं। अंग्रेज कवियों में जाज मूर ऑस्कर वाइल्ड, आयर सिमन्स, एर्नेस्ट डाउसन और येटस के नाम लिये जा सकते हैं।

प्रतीकवादी कवियों की मान्यता है कि कोई एक घटना अथवा कोई व्यक्ति, तब तक कला के योग्य विषय नहीं बनाया जा सकता जब तक कि वह शाश्वत सत्य के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत नहीं किया जाता।[3]

चार्ल्स बोद्लेयर (Charles Baudelaire १८२१–१८६७)

बोद्लेयर 'कला के लिए कला' सिद्धान्त को माननेवालों का प्रतिनिधि अग्रगण्य नेता हो गया है। अपने समय का वह एक महान् समीक्षक था जिसने समकालीन आधुनिक कवियों को विशेष रूप से प्रभावित किया। उसका प्रसिद्ध काव्यसग्रह 'बुराई में भी सौन्दर्य' (फ्लस डयूमाल–फ्लावर्स ऑफ इविल)[4] १८५७ में प्रकाशित हुआ जिसे उसने निर्दोष कवि, फ्रेंच अक्षरों के सफल जादूगर, मेरे सर्वाधिक प्रिय तथा सर्वाधिक मान्य आचार्य और मित्र' थिओफील गोतिये को समर्पित

१—ए० जे० जॉर्ज नोटस ऑन क्रिटिसिज्म एण्ड क्रिटिक्स दिल्ली पृ० २०१।

२—द सिम्बोलिस्ट मूवमण्ट इन लिटरेचर पृ० १-२, लदन, १६०८

३—ए जे जॉर्ज, नोट्स ऑन क्रिटिसिज्म पृ० २०२

४—बोद्लेयर बुराई से भी सौंदर्य को प्रमुखता देता था। अपने इस मत के कारण उसने प्रसिद्धि प्राप्त की थी। 'सेलेक्टेड ऐसेज' मे इलियट द्वारा १६३० में लिखा हुआ 'बोदलेयर' नामक लेख सग्रहीत है। उसकी गद्य रचनाओं की तुलना गेटे की रचनाओं से की गयी है।

किया था। इसकी भूमिका में आधुनिक संसार की बुराइयों का उल्लेख है जैसा कि लेखक ने उन्हें समझा था। बोद्लेयर की मान्यता है, "यदि भीषणता को कलात्मक रूप में व्यक्त किया जाये तो यह सौन्दर्य बन जाती है, और लय तथा आरोह और अवरोह युक्त कष्ट मस्तिष्क को शान्त आनन्द से परिपूर्ण कर देता है।" 'कला की मादकता खाई के आतंकों को छिपा लेती है क्योंकि प्रतिभा क्रन्न के किनारे पर सुखान्त नाटक खेलती है।"[1] उक्त काव्य संग्रह में 'करेस्पोण्डेन्स' नाम के अपने सॉनेट में प्रकृति को एक प्राकृतिक देवगृह के रूप में चित्रण करते हुए वृक्षों को उसके सजीव स्तम्भ बताया है। ज्यों ही इन प्रतीकों के वनों में होकर पवन चलती है त्यों ही यदाकदा अस्त व्यस्त शब्द प्रवाहित होने लगते हैं। असाधारण शक्ति से सम्पन्न होने के कारण कवि इन शब्दों को हृदयंगम कर सकता है, क्योंकि प्रत्येक पदार्थ में कोई प्रतीकात्मक अर्थ होता है तथा प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ का आध्यात्मिक सत्यता के साथ विशेष सम्बन्ध रहता है।[2] बोद्लेयर की मान्यता थी कि उसकी कविताओं के प्रतीक किसी अज्ञात को सम्बोधित करते हैं तथा बाह्य जगत् से ग्रहण किये हुए रूप उसके अपने निजी आंतरिक जीवन के ही रूप रहते हैं जिससे उसकी कविताएँ खुद उसीके चित्र बन जाते हैं, तथा इन कविताओं का अर्थ प्रतीक और अध्यात्म (अथवा प्रतीकात्मक मनोदशा) की अन्योन्यवत्ति में सन्निहित है।[3]

एलन पो का प्रभाव

एडगर एलेन पो के विषय में कहा जा चुका है। बोद्लेयर तथा फ्रांस के अन्य प्रतीकवादी पो से प्रभावित थे। बोद्लेयर ने पो की प्रशंसा में जो निबन्ध लिखे हैं, उनमें उसे 'असाधारण प्रतिभाशाली और अद्वितीय स्वभाववाला' बताया गया है जिसने कि अपनी निर्दोष और अत्यन्त सशक्त शैली में नैतिक अव्यवस्था को अनियमितता को अभिव्यक्त किया है। वह लिखता है "मैं फिर से दुहराकर कहता हूँ मानव अव्यवस्था के चित्रण करने में अन्य किसी को इससे अधिक आश्चर्यजनक सफलता नहीं मिली।"[4] १८४६ में बाद्लेयर ने जब पो की कृतियों का फ्रेंच अनुवाद पढ़ा तो वह इतना प्रभावित हुआ कि उसने पो के शुद्ध कविता के

१—रैने वले ए हिस्टी ऑफ मॉडर्न क्रिटिसिज्म ४, ४४३

२—लिटरेरी क्रिटिसिज्म ए शॉर्ट हिस्टी पृ० ५६१। बोद्लेयर ने पौराणिक कथा (माइथोलोजी) को जीती-जागती चित्रलिपि (हाइरोग्लिफ्स) का कोश" कहा है। रने वले, ए हिस्ट्री आफ मॉडर्न क्रिटिसिज्म ४ पृ० ४४४

३—नोट्स आन क्रिटिसिज्म एँण्ड क्रिटिक्स, पृ० २०२ ३

४—लिटरेरी क्रिटिसिज्म। ए शॉर्ट हिस्टी, पृ० ४८१ ८२

सिद्धान्त को समग्र रूप में स्वीकार कर लिया। उसने पो का 'द फिलासफी ऑफ कपोजीशन' (रचना का दर्शन) का ही अनुवाद नहीं किया बल्कि पो सबधी अपने एक लेख (१८५६) में 'द पोएटिक प्रिंसिपल' (काव्यसबधी सिद्धात) को भी पुन प्रस्तुत किया। तीन वर्ष बाद गोतिये पर लिखे हुए अपने निबध में उसने इसके उद्धरण इस तरह पेश किए मानो वह अपनी ही किसी रचना को उद्धत कर रहा हो।[1] पो का कथन था कि कवि को उत्तम या सत्य से कुछ लेना देना नहीं है उसे केवल सौंदर्य को ही स्वीकार करना है, उसका प्रमुख कार्य है "सौंदर्य पर पहुँचना"—इस ससार का सौंदर्य जिसका प्रतिबिम्ब मात्र है।[2] पो की इस मान्यता ने प्रतीकवादियो को प्रभावित किया। 'इन प्रेज ग्राफ फेस पेंट' (चेहरे को रगने की प्रशसा म) नामक अपने निबन्ध मे बोदलेयर ने लिखा है "सौंदर्य सम्बधी सर्वाधिक मिथ्या विचार, १८ वी शताब्दी में प्रचलित नैतिकता के मिथ्या विचारों से उद्भूत हुए हैं। उस युग में सब प्रकार के उत्तम तथा सभव सौंदर्य का आधार, स्रोत और आदर्श प्रकृति में ही देखा जाता था। सार्वभौमिक अधता के उस युग में मौलिक पाप को अस्वीकृति एक ऐसी चीज बन गयी थी जिस पर कोई ध्यान तक नही देता था।[3]

बोदलेयर ने हमेशा 'नैतिक विश्वास' (डाइडैक्टिक हीअरसे) का विरोध किया तथा पो की शब्दावली में घोषित किया कि 'अपने सिवाय कविता का अन्य कोई उद्देश्य नहा", तथा "जैसे जैसे शुद्ध कला नैतिकता से अपने आपको मुक्त करता है, वसे वैसे यह शुद्ध और निस्पृह सौंदर्य की ओर उडती है।" दार्शनिक कविता को बोदलेयर ने 'मिथ्या शैली' बताते हुए उसका तिरस्कार किया तथा इस बात का विरोध किया कि विज्ञान और राजनीति की भाँति कविता कला से अपरिचित जगत् से प्राप्त विचारों को अभिव्यक्त करती है। पो की भाँति बोदलेयर ने कला का एकाधिपत्य स्वीकार करते हुए नैतिकता से उसका विरोध बताया, प्रतिभा और प्रेरणा के प्रति अनास्था व्यक्त की, सजनात्मक प्रक्रिया मे बुद्धि के महत्त्व पर जोर दिया तथा सौ दर्य को विशेषतया विचित्र और विषाद रूप म प्रस्तुत किया।[4]

बोदलेयर प्रकृतिवाद को मान्य नहीं करता। 'कला प्रकृति की अनुकृति है'—इस मान्यता को उसने कला का शत्रु कहा है। इसीलिए फोटोग्राफी का उपहासास्पद

१—रने वले ए हिस्टरी आफ माडर्न क्रिटिसिज्म ४, पृ० ४३५
२—लिटरेरी क्रिटिसिज्म ए शार्ट हिस्ट्री पृ० ५६०
३—वहा पृ० ४८३
४—रने वले ए हिस्ट्री ऑफ माडर्न क्रिटिसिज्म ४, पृ० ४३५

कहा गया है। उसका कथन है, "कलाकार अपने सब रूपों को प्रकृति में प्राप्त नहीं कर सकता, किन्तु स्वाभाविक भावों के स्वाभाविक प्रतीकों की भाँति, असाधारण रूप उसे उसकी आत्मा में ही प्रकाशित होते हैं।' बोदलेयर ने प्रकृति को दुराशय, पतित और अपराध का परामर्शदाता स्वीकार करते हुए उसे चित्रलिपि (हाइरो ग्लिफिक्स) की दुनिया के विपरीत कहा है, जो किसी प्रकार दिव्य और श्रेष्ठ है, इसलिए कलाकार को चाहिए कि प्रकृति पर विजय प्राप्त कर प्रकृति का स्थान मानव को प्रदान करे।[१]

'यथार्थवाद" को भी बोदलेयर स्वीकार नहीं करता। यथार्थवाद को यहाँ समस्त विश्लेषण के लिए घृणोत्पादक अपमान' कहा है, 'यह एक अनिश्चित और लचीला शब्द है जो ग्राम्यजन के लिए सजन की नयी पद्धति न होकर अनावश्यक का सूक्ष्म वर्णन" है। बोदलेयर ने दो प्रकार के कलाकार बताये हैं, एक यथार्थवादी और दूसरा कल्पनाप्रवण। यथार्थवादी को उसने प्रत्यक्षवादी (पोजिटिविस्ट कहा है, जो 'वस्तुओं को जिस रूप मे वे हैं या जिस रूप में होंगी उस रूप में प्रस्तुत करना चाहता है। कल्पनाप्रवण कलाकार कहता है 'मैं अपने मस्तिष्क से वस्तुओं को प्रकाशित करना तथा उनके प्रतिबिम्ब को दूसरो के मस्तिष्क मे नियोजित करना चाहता हूँ।' इस प्रकार कल्पना को यहाँ आत्मा का एक हथियार माना गया है जिससे कि 'वस्तुओं के स्वाभाविक अधकार पर कोई मायावी शक्ति और अलौकिक प्रकाश प्रक्षिप्त किया जा सके।' वस्तुएँ जितनी ही निश्चित और ठोस प्रतीत होती हैं, कल्पना का कार्य उतना ही अधिक सूक्ष्म और श्रमसाध्य होगा। बोदलेयर ने 'कल्पना को एक अर्ध दैविक गुण' माना है 'जो दर्शनशास्त्र की पद्धतियों के बाह्य वस्तुओं के घनिष्ठ और गुप्त सम्बन्धों तथा अनुरूपताओं और समानताओं का तुरत ही साक्षात्कार करती है।" बोदलेयर के अनुसार, प्रागैतिहासिक काल में भी कल्पना का महत्त्वपूर्ण योग रहा है। 'कल्पना ने मानव को वर्ण, बाह्याकृति शब्द तथा गंध के अर्थ की शिक्षा दी है। सृष्टि के आदि में इसने सादृश्य रूपक का सजन किया है। समस्त सृष्टि का इससे विघटन होता है।' 'कल्पना सत्य की सम्राज्ञी है। इसी को रचनात्मक कल्पना के नाम से कहा जाता है।[२] विषयसामग्री रूपविधान शैली, रूढ़ि, काव्यात्मक भाषा, रूपक और प्रतीक आदि काव्यात्मक प्रकारों तथा विषय का पौराणिक कथा (मिथ) के रूप में परिवर्तन—पर बोदलेयर ने कलाकार का नियन्त्रण माना है।[३]

१—वही पृ० ४३६

२—रने वले ए हिस्टी ऑफ मॉडर्न क्रिटिसिज्म ४ पृ० ४३६, ४४०

३—वही पृ० ४४१

बोद्लेयर ने कवियों को श्रेष्ठ समीक्षक बताया है। उसके अनुसार, डिडेरो (Diderot १७१३-८४), गेटे और शेक्सपियर जैसे मौलिक साहित्यकार थे, वैसे ही प्रशंसनीय आलोचक भी। वह लिखता है, "सारे महान् कवि स्वभावतः अनिवार्य रूप से आलोचक होते हैं। मुझे उन कवियों पर दया आती है जो केवल अपनी स्वाभाविक वृत्ति का ही अनुसरण करते हैं, मेरा विश्वास है कि वे अपूर्ण हैं यह असंभव है कि कवि होकर भी कोई आलोचक न हो ।"[1] आलोचक के सम्बन्ध में उसने लिखा है, 'किसी कृति को भलीभांति प्रस्तुत करने के लिए, तुम्हें उसकी त्वचा के अन्दर प्रवेश करना चाहिए, जो भावनाएँ वहां व्यक्त की गयी हैं, उनमें गंभीरतापूर्वक ओतप्रोत हो जाना चाहिए और उनकी अनुभूति इस प्रकार करनी चाहिए मानो वह तुम्हारी अपनी ही कृति हो।" उसके अनुसार, 'सर्वोत्कृष्ट आलोचना वह है जो अत्यन्त मनोरंजक और काव्यात्मक हो वह ठंडी, गणित की आलोचना नहीं, जिसमें प्रत्येक वस्तु को प्रतिपादित करने के बहाने न प्रेम रहता है, न घृणा, तथा अपने स्वभाव के चोंगे से अंश को भी वह स्वेच्छापूर्वक उतार फेंकती है न्यायसंगत होने के लिए—अपना अस्तित्व सार्थक करने के लिए—आलोचना को पक्षपातपूर्ण, रागान्वित और राजनैतिक होना चाहिए अर्थात् वह एकांतिक दृष्टिकोण से लिखी जानी चाहिए, लेकिन वह एक ऐसा दृष्टिकोण हो जो एक अत्यन्त व्यापक क्षितिज का उद्घाटन करता हो।"[2]

स्टेफन मलार्मे (१८४२-१८९८)

१८७० से १८८० तक मलार्मे प्रतीकवादी आन्दोलन का एक स्तम्भ माना जाने लगा था। पो और बोद्लेयर दोनों से वह प्रभावित था। पो को उसने 'महान् आचार्य', 'काव्य की उच्चतम आत्मा' तथा 'अपने युग का आध्यात्मिक राजकुमार'[3] कहा है। मलार्मे ने बहुत कम लिखा है लेकिन मंगलवार के दिन उसकी गोष्ठी में जो काव्यचर्चा हुआ करती थी, उसमें फ्रेंच कवियों और समीक्षकों के अलावा, ऑस्कर वाइल्ड, आर्थर सिमन्स, जार्ज मूर, और यीट्स आदि सुप्रसिद्ध अंग्रेजी लेखक भी सम्मिलित होते थे।[4]

मलार्मे ने प्रतीकवादियों के सिद्धान्त को साहित्यिक रूप प्रदान किया। प्रतीकवादियों के अनुसार, यदि शब्दों को किसी अज्ञात वस्तु की ओर इंगित करके

१—वही, पृ० ४५१
२—वही, पृ० ४५२
३—वही पृ० ४५३
४—लिटरेरी क्रिटिसिज्म ए शार्ट हिस्टरी पृ० ५६१-६२

अपना मत व्यक्त करना चाहता है तो इसका मतलब हुआ कि जब तक वे विशुद्ध न हो जायें, उन्हें अपने परिचित शब्दों से हटकर अपने सामान्य अर्थों का त्याग कर देना होगा। उसी समय उन शब्दों में से कोई असीम कल्पना, गूंज अथवा संकेत का उद्भव हो सकता है। इन शब्दों से जो काव्य रचना की जाती है वह अथ, काल, जीवन, मायावेश और भौतिक तत्व से अतीत होती है। इसीलिए कविता को एक रहस्य बताया गया है जिसकी कुंजी ढूंढने के लिए पाठक को सतत खोज करते रहना चाहिए।[१] इसके लिए आवश्यक है कि शब्दों का चुनाव अत्यंत सावधानी से किया जाये और उन्हें इस प्रकार क्रमबद्ध रखा जाय जिससे कि वे एक दूसरे में प्रतिबिंबित हों और उनमें स्वरसाम्य पैदा हो सके। चुनकर रखे हुए शब्दों को मलार्मे ने निवर्ध सिद्धांत (लिबरेटिंग प्रिंसिपल) माना है जिसके द्वारा आत्मा भौतिक तत्त्व से पृथक हो जाती है। नाम से अभिहित करने को उसने नाश और संकेत को सृजन कहा है।[२]

मलार्मे ही सर्वप्रथम ऐसा लेखक हो गया है जो अभिव्यक्ति की सामान्य भाषा से मूल रूप से असंतुष्ट था और जिसने सम्पूर्णतया भिन्न एक काव्यात्मक भाषा को मान्य किया है। कविता की भाषा को उसने "मायावी भाषा" कहा है। राजमर्रा बोली जानेवाली विवरणात्मक, उपदेशात्मक और वर्णनात्मक भाषा को पत्रकारिता के लिये उपयोगी बताकर काव्यसृजन के लिए उसे अयोग्य कहा है। भाषा को उसने 'मायावी शक्ति और शब्दों की वस्तु' माना है।[३] कविता को यहाँ स्वाभाविक प्रेरणा से उत्पन्न अथवा सरस्वती देवी के कृपा प्रसाद का फल न बताकर, शिल्पजन्य अध्यवसाय माना गया है जिसके लिए कवि अपनी समस्त मानसिक शक्तियों को नियोजित करता है। मलार्मे के अनुसार, 'जीवन के पक्षों के रहस्यात्मक अर्थ की, आवश्यक लय को प्राप्त मानवीय भाषा के माध्यम से अभिव्यक्ति होना ही कविता है।[४] अन्यत्र उसने 'संकटकालीन अवस्था की भाषा' को कविता कहा है।[५]

काव्यात्मक भाषा का उद्देश्य मलार्मे ने निषेधात्मक माना है कोई यथार्थता इसमें न रहनी चाहिए, समाज प्रकृति और स्वयं कलाकार का व्यक्ति न होना

१—नोटस ऑन क्रिटिसिज्म एण्ड क्रिटिक्स पृ० २०३

२ आर्थर सिमन्स, द सिम्बोलिस्ट मूवमेण्ट इन लिटरेचर, पृ० १२७, १२८

३—रने वेले, ए हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न क्रिटिसिज्म ४, पृ० ४५४

४—लिटररी क्रिटिसिज्म ए शार्ट हिस्ट्री पृ० ५९२ ९३

५ -आर्थर सिमन्स, द सिम्बोलिस्ट मूवमेण्ट इन लिटरेचर पृ० १२०

चाहिए। कला वर्णनात्मक नहीं है—कवि को किसी वस्तु का कभी उल्लेख न करना चाहिए, वह केवल उसका संकेत मात्र करे। इसीलिए मलार्मे ने सतत लोपालकार (एलिप्सिस) और वक्रोक्ति (पेरीफ्रेसिस) का उपयोग किया है। कविता को वह वैयक्तिक अथवा गीत्यात्मक स्वीकार नहीं करता। वह लिखता है, "शुद्ध कृति में इसकी पूर्व धारणा रहती है कि कवि वक्ता के रूप में अदृश्य रहे। इसका उपक्रम शब्दों द्वारा किया जायेगा।" कवि को उसने एक पुरोहित कहा है जो अपनी कला के के प्रति ईमानदार है, बिना किसी व्यक्तिगत लाभ अथवा गौरव के गंभीर एकान्त में, विनम्रतापूर्वक, साधुभाव से कला की सेवा करता है। 'हेरोडिएड' (Herıodıade) की रचना करते समय, अपने किसी मित्र को मलार्मे ने लिखा था, "मैं इस समय अवैयक्तिक हूँ, जिसे तुम कभी स्टीफेन के रूप में जानते थे, वह नहीं हूँ, किन्तु जो 'मैं' कहा जाता था, उसके माध्यम से, आध्यात्मिक विश्व ने अपने आपको देखने के लिए, अपना उद्‌घाटन करने के लिए एक मार्ग ढूँढ निकाला है।" कवि का अदृश्य हो जाना ही उसके मत में "निश्चयात्मक रूप से आधुनिक कविता की खोज" है, इसी लिए कवि और मनुष्य को पूर्णतया एक दूसरे से भिन्न कहा गया है। "जब कलाकार लिखने बैठता है तो यह पूर्णतया संभव है कि उसका मानव स्वभाव उसके साहित्यिक स्वभाव से बिल्कुल निराला हो ।"[१]

मलार्मे का कथन है कि बहुत कम लोगों की कविता तक पहुँच होती है। "मनुष्य जनतान्त्रिक (डिमोक्रेटिक) हो सकता है, कलाकार अपने को विभाजित कर लेता है तथा उसे अभिजात (अरिस्टोक्रेटिक) ही रहना चाहिए।" "इसलिए कविता को लोकप्रिय बनाने की आशा, मलार्मे के अनुसार ईश्वर निन्दा (ब्लैसफेमी) जैसी लगती है, तथा जनता का कवि होना, यदि दयनीय नहीं तो एक बड़ी भद्दी बात अवश्य है। नीत्से की शब्दावली में "लोग नैतिक चरित्र सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ें, लेकिन कृपा करके, उन्हें हमारा कविता को नष्ट न करने दिया जाय। ऐ कवियो! तुम हमेशा स गौरवान्वित रहे हो अब गौरवान्वित से अधिक बन जाओ, अवमाननाशील बन जाओ।"[२] मलार्मे का कथन है, 'यह समाज कवि का रहने नहीं देता", "कवि, एक ऐसा व्यक्ति है जो अपनी कब्र बनाने के लिए एकान्त की खोज में रहता है "समाज के विरुद्ध उसने हड़ताल कर रखी है"[३]

मलार्मे ने फ्रेंच भावना को "कठोरतापूर्वक कल्पनाप्रवण, गूढ और अतएव काव्यात्मक' कहा है। 'पुष्प' इस सामान्य शब्द को उसने काव्यात्मक माना है क्योंकि यह "सारे गुलदस्तों में न पाये जानेवाले, केवल एक ही" पुष्प की ओर इंगित

१—रैने वेलेक, ए हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न क्रिटिसिज्म ४, पृ० ४५७
२—वही, पृ० ४५८
३—वही पृ० ४५६

करता है। अतएव कला को गूढ़ और दुर्बोध कहा है, केवल रहस्य की ओर ही इसका संकेत रहता है। "कविता हमारे अस्तित्व के विभिन्न दृष्टिकोणों के रहस्यात्मक अर्थ की अभिव्यक्ति है। अतएव पृथ्वीमंडल पर यह हमारे जीवन को सच्चा मूल्य प्रदान करती है और यह हमारी आत्मा का कर्तव्य है। "साहित्य मौजूद रहता है और यदि तुम चाहो, हर किसी चीज के सिवाय, केवल यही एक मौजूद रहता है।" "हम सब पदार्थ के केवल शून्य रूप हैं—शून्य लेकिन उदात्त, क्योंकि हमने ईश्वर और अपनी निज की आत्मा की खोज की है। मनुष्य का मुख्य व्यवसाय, कलाकार होना, कवि होना है जिससे कि युग के विध्वंस का रक्षा हो सके। इस प्रकार हम देखते हैं कि मलार्मे के मत में कविता ठोस वास्तविकता से कट जाती है—न यह प्रकृति का अनुकरण करती है, और न यह कवि के व्यक्तित्व की अभिव्यंजना ही है, यह केवल एक संकेत मात्र है, जो न कुछ का निर्देश करती है।[1] कहना न होगा कि उत्तरकालीन समीक्षकों की रचनाएँ मलार्मे के सिद्धान्तों से प्रभावित हुई।

पाल वर्लेन (Paul Verlaine १८४४-१८६६)

पाल वर्लेन एक दूसरा प्रसिद्ध प्रतीकवादी हो गया है जिसे अपने जीवन में अनेक यातनाओं को सहन करना पड़ा। अपने डेढ़ वर्ष के जेल जीवन में उसे गंभीर चिंतन का अवसर मिला। उसकी मान्यता थी कि जैसे किसी साधु-संत को गृहस्थ जीवन का कोई काम करना नहीं रहता, उसी प्रकार कलाकार का समाज का कुछ करना नहीं रहता। कलाकार की पहिचान नियम-कायदों से नहीं की जाती, रूढ़िगत नियमों का पालन करने से उसकी प्रशंसा और न करने से उसकी अप्रशंसा नहीं की जाती। सामान्य व्यक्तियों के लिये ही सामाजिक नियम होते हैं, प्रतिभाशाली व्यक्तियों के लिये नहीं।[2]

एडगर एलेन पो और बोदलेयर ने वर्लेन को प्रभावित किया था। पो के अनुसार संगीत में ही आत्मा अत्यन्त निकटता पूर्वक अलौकिक आनन्द की सृष्टि करती है। प्रतीकवादियों के ऊपर पो की इस मान्यता का विशेष प्रभाव पड़ा। मलार्मे ने शब्दों को संगीत के स्वर स्वीकार करते हुए कविता को संगीतात्मक माना है, जबकि वर्लेन ने कविता को अधिक प्रत्यक्ष और शाब्दिक अर्थ में संगीतमय स्वीकार किया है। उसके मतानुसार कविता के शब्द अपने अर्थ से रिक्त हो जाते हैं। किसी समीक्षक के शब्दों में वर्लेन की कविता का "भाषा वाष्पायित होकर फिर से लय में परिवर्तित हो जाना है।[3] शब्द अमूर्त संगीत, पारदर्शक रंगों और प्रदीप्त छाया में परिवर्तित

१—वही, पृ० ४६२ ६३

२—आर्थर सिमन्स द सिम्बोलिस्ट मूवमेण्ट इन लिटरेचर, पृ० ८१

३—लिटरेरी क्रिटिसिज्म ए शार्ट हिस्ट्री पृ० ५६३

हो जाते हैं। उनमे इतनी पूर्ण आत्मशून्यता रहती है कि कवि बिना शब्दों का सहायता के गीतों की रचना कर सकता है जिनमें मुश्किल से ही मानवी भाषा के व्यवधान का भाव विद्यमान रहता है। श्रवणबोध और दर्शनबोध का उसने पारस्परिक आदान प्रदान स्वीकार किया है। कवि शब्दो द्वारा चित्रण करता है तथा उसकी पंक्ति और वातावरण संगीत हो जाता है। शिल्पकला के स्थान पर वह एक मानसिक स्थिति को प्रस्तुत करता है, इसलिए उसकी कविता को प्रतीकवादी न कह कर प्रभाववादी कहा गया है।[1]

'डेकेडेंट' कवि

१८८४ मे वर्लेन ने 'शापित कवि' (ल पोएट्स मौदित=द पोएटस अकरड नाम की अपनी रचना प्रकाशित की जिसमें मलार्मे और आर्थर रैंबो आदि कवियों की कविता की चर्चा की गयी है। यहाँ मलार्मे और रैंबो को शापित कवि के रूप में उल्लिखित कर वर्लेन ने अपने आपको 'डेकेडेंट' (फ्रांस के आधुनिक साहित्य की एक विचारधारा जिसके अनुसार लेखक में ओज और मौलिकता का अभाव रहता है) कहकर प्रशंसित किया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि गोतिये ने बोद्लेयर के 'बुराई में भी सौन्दर्य' नामक काव्य संग्रह की भूमिका में बोद्लेयर को डेकेडेंट' कहा है। उन दिनों यह शब्द किसी ऐसे छैल छबीले संस्कृति-सम्पन्न शौकीन व्यक्ति के लिए प्रयुक्त किया जाता था जो किसी अलभ्य सनसनी की तलाश मे रहता हो। एक समीक्षक ने उत्तेजित और विकृत रहस्यात्मकता से युक्त किसी कलाकार के एक प्रकार के नैतिक एकान्त को 'डेकेडेंस' कहा है। उन दिनों बुजुआ वर्ग की तुच्छता तथा दुनिया के बढते हुए उद्योगीकरण की मन्दता से रक्षा करने के लिए 'डिकेडेंस' शब्द के व्यवहार का फैशन चल पडा था। १८८५ में इस वाद के कतिपय नवयुवक लेखकों ने अपने को प्रतीकवादी कहलाना ही अधिक पसन्द किया।[2]

पाल वालेरी (Paul Valery १८७१-१९४५)

पाल वालेरी मलार्मे के सिद्धान्तों से अत्यधिक प्रभावित था। वालेरी ने महसूस किया कि इतने ऊहापोह के बाद भी प्रतीकवादी कविता का रूप स्पष्ट नहीं हो रहा था। उसके सम्बन्ध मे परस्पर विरोधी मत प्रस्तुत किये जा रहे थे। वालेरी भी पो से प्रभावित था। उसका कहना था कि जैसे संगीत में कोई कूडा कर्कट या निष्क्रियता नही रहती, उसमे रूप और विषयवस्तु परस्पर सम्मिश्रित हो जाते हैं,

१—आर्थर सिमन्स, वही, पृ० ८७, ८५

२—विलियम विमसैट, लिटरेरी क्रिटिसिज्म पृ० ५९४ ९५

यही शुद्धीकृत सपूर्णता प्रतीकवादी कविता मे भी होनी चाहिए। पो की मान्यता को उसने इसीलिए सराहा कि उसके अनुसार, कविता 'शुद्ध अवस्था' को प्राप्त होने पर ही अपने उद्देश्य म सफल हो सकती है। "काव्य के आनन्द की माग का विश्लेषण करते हुए और निरतिशय कर्माति' द्वारा 'सपूर्ण कविता' की व्याख्या करते हुए पो ने एक माग का प्रदर्शन किया है तथा एक नियमबद्ध और आवश्यक सिद्धात की शिक्षा दी है जिसमें उसने एक प्रकार के गणित और एक प्रकार के रहस्यवाद का मिश्रण कर दिया है।'[1] इसलिए वालेरी को काव्य वही तक रुचिकर लगता था जहाँ तक कि कलाकार शुद्ध सृजन में उसका प्रयोग कर सकता था। अपने मित्र आन्द्रे गीद को वह लिखता है, "वे मुझे कवि समझते हैं, लेकिन मैं कविता का जरा भी महत्व नही देता। केवल दवयोग से ही मेरी इसमें रुचि हो गयी है। इसे सयोग ही समझिये कि मैंने पद्य रचना की है। मेरे लिए इसका कोई महत्व नहीं।'[2] लेकिन यदि वालेरी के कथनानुसार कविता मे शुद्ध अर्थ के ऊपर इतना अधिक जोर दिया जाय तो कविता यथार्थता स रहित होकर न कुछ का नाम मात्र रह जायगी।

आर्थर रेंबो (१८५४-१८९१)

रेंबो (Rimbaud) एक प्रतिभाशाली चिंतक हो गया है। केवल १५ वर्ष की अवस्था में लटिन और फ्रेंच साहित्य का उसे अच्छा परिचय हो गया था और उसने कविता लिखना आरभ कर दिया था। दो वर्ष बाद ही उसकी गणना मान्ति रुनिया में की जाने लगी और अपनी प्रतिभा से उसने विक्टर ह्यूगो जैसे साहित्यकारों को चकित कर दिया। रेंबो ने विदेशों में दूर-दूर तक परिभ्रमण किया था। अफ्रीका में उसने हाथी दाँत और सोने का व्यापार किया, डच सेना म भर्ती होकर वालिंटियर बना, मिलिटरी में इंजिनियर रहा और इंग्लैंड में रहकर उसने फ्रेंच भाषा पढ़ाई। आर्थर सिमन्स के शब्दों में, उसका मस्तिष्क केवल कलाकार का ही नही एक सक्रिय व्यक्ति का मस्तिष्क था। वह एक स्वप्नद्रष्टा था, किन्तु उसके समस्त स्वप्न आविष्कार थे।" पाल वालेरी उसके विचारों से प्रभावित था।

रेंबो (Rimbaud) को अतियथार्थवाद का प्रेरक माना जाता है। कवि को वह एक योद्धा मानता था। बोदलेयर का उसने 'प्रथम योद्धा', 'कवि सम्राट' और 'वास्तविक स्रष्टा' कहकर उल्लेख किया है यद्यपि यह जानकर वह दुःखी था कि यह 'कवि-सम्राट' एक 'अत्यन्त कलात्मक समाज' में रहता था जिसने अपने आपको

१—वही, पृ० ५९५
२—वही पृ० ५९६

प्राचीन साहित्यिक रूपो द्वारा जकड लिया था। लेकिन रैंबो का कहना था कि नयी शोध के लिए नये रूपो की आवश्यकता हुआ ही करती है, तथा एक 'योद्धा कवि' उन बिम्बो का साक्षात्कार करता है जिन्हे अचेतन मन क्षमतापूवक सयोगवश सामायजन के समक्ष अभिव्यक्त करता है। ऐसे ही बिम्बों की उपलब्धि को रैंबो ने कविता कहा है। इसके लिए कवि को मादक द्रव्य तथा लम्पटता आदि को स्वीकार करना पडता है जिससे कि उसके विवेक के बधन टूट जायें और निषिद्ध वस्तुओं से उसे छुटकारा मिल सके।'

बोदलेयर के 'करैस्पोण्डेंस' नामक सॉनेट के प्रभाव से प्रतीकवादी समीक्षको की रुचि 'सिनेस्थीसिया' (सह सवेदन=शरीर के किसी हिस्से में उत्तेजना पैदा करने से दूसरे हिस्से मे उसके सवेदन की अनुभूति)[२] के प्रति आरम्भ हुई और यह प्रतीकवाद का विशिष्ट चिह्न माना जाने लगा। रैंबो इससे अछूता न बचा। उसने 'ले वायल' (द वावल्स=स्वर) नामक अपने सॉनेट मे विशिष्ट रगों के साथ स्वरों का तादात्म्य स्थापित किया। 'ए सीजन इन हैल' में 'शब्दों की 'रसायनविद्या' (अलकिमि ऑफ द वर्डस) की चर्चा करते हुए वह लिखता है, 'मैंने स्वरों के रगों की खोज की है 'ए' का कृष्ण, 'ई' का श्वेत, 'आई' का रक्त 'ओ' का नील और 'यू' का हरे रग से तादात्म्य है मैंने प्रत्येक व्यजन के रूप और उसकी गति की परिभाषा की है, तथा स्वाभाविक लय से, मुझे काव्यात्मक भाषा की खोज करने का अभिमान है, जो किसी दिन समस्त इद्रियों का गोचर हो सकेगी। अनुवाद के

१—वही, पृ० ५६४। पो मदिरा और बोद्लेयर अफीम का सेवन किया करता था, रेने वले, वही ४, पृ० ४४७

२—A sensation in one part of the body produced by a stimulus applied to another part आई ए रिचडस ने प्रिंसिपल्स ऑफ क्रिटिसिज्म में इसका विस्तृत अथ दिया है। Synaesthesia जमन शब्द है, जिसका अर्थ है feeling together (सह सवेदन)। वह लिखता है—The harmonious and balanced concord stimulated by art as posited in the definition of beauty advanced by Ogden Richards and Wood in the 'Foundation of Aesthetics' 1925 Harmony is produced by the work of art in that it stimulates usually opposed aspects of being keen thought yet strong feeling, fear (as at a tragedy) yet calm Equilibrium among there is maintained in that there is no desire nor action only a poised awareness, a general intensification of consciousness exercising all a man s faculties richly, and together

अधिकार मैंने अपने पास सुरक्षित रखे हैं। पहले यह एक प्रयोग था। मैंने निःशब्दताओं, और रात्रियों के सम्बन्ध मे लिखा, मैंने अव्यक्त को लिपिबद्ध किया है।'

विषय का स्पष्टीकरण करते हुए जो कुछ लिखा गया है उससे यह पता नही लगता कि वह रूपक है या मतिविभ्रम। उसने लिखा है, 'मैंने कारखाने के स्थान पर एक मस्जिद, देवदूतो द्वारा निर्मित ढोल ढपडे बजानेवालों के स्कूल, आकाश के महापथ पर जाती हुई गाडियाँ, झील के नीचे बने बैठकखाने, तथा राक्षसों और अनेक रहस्यों को स्पष्ट देखा है, गीत का शीर्षक मेरे सामने आतंक उपस्थित कर देगा। फिर मैंने शब्द के मतिभ्रम के साथ अपने मायावी कुतर्क का प्रतिपादन किया। अपने मस्तिष्क की अव्यवस्था को मैं पवित्र मानने लगा।"

रैने वैले के शब्दों में, यद्यपि उक्त वक्तव्य में काव्य समीक्षा के सिद्धांत दिखायी नहीं देते, फिर भी कवि का यह एक साहसपूर्ण प्रयोग कहा जायगा जिसे वह कष्ट और विक्षिप्तता की परवा किये बिना करता जा रहा है। अलौकिक बोध का यह दावा स्वच्छन्दतावादी रहस्यवाद की परम्परा से मेल खाता है जिसमें कि शब्दों का जादू उसी बोध को प्राप्त करता है, जो इतना ही अस्पष्ट है जितने कि स्वयं शब्द।[1]

१—ए हिस्टरी ऑफ मॉडर्न क्रिटिसिज्म ४, पृ० ४४६, आर्थर सिमन्स, द सिम्बो लिस्ट मूवमएट इन लिटरेचर, पृ० ६६-७०

टी० एल० इलियट (२६ सितबर, १८८२–४ जनवरी, १९६५)

इलियट की विशेषता यह थी कि वह अपने युग का अंग्रेजी भाषाभाषी एक प्रतिभाशाली कवि था जो बदलती हुई नयी परिस्थितियों के प्रभाव से सुपरिचित था। अंग्रेजी साहित्यिक संस्कृति की परम्परा में वह पला था, और साथ ही इस परम्परा का निष्पक्ष भाव से अवलोकन कर सका था। इलियट का जन्म अमरीका के एक अभिजात परिवार में हुआ, और यहाँ वह एक ऐसे समाज के सम्पर्क में आया जो यूरोप की अपेक्षा अधिक भ्रष्ट तथा आध्यात्मिक मूल्यों से हीन था। १९०६ में उसने हारवर्ड विश्वविद्यालय में प्रवेश किया और यहाँ एक पद्य लेखक के रूप में उसने लोगों का ध्यान आकर्षित किया। जॉर्ज सातायन और इरविंग बैबिट उसके अध्यापक थे। १९१०-११ में पेरिस पहुँचकर उसने फ्रेंच साहित्य और दर्शन का अध्ययन किया। वहाँ से अमरीका लौटकर हारवर्ड विश्वविद्यालय में दर्शन के साथ साथ भारतीय भाषाविज्ञान, भारतीय दर्शन, संस्कृत और पालि का अध्ययन किया। एक वर्ष तक उसने पतंजलि के दर्शन का अभ्यास किया जिसने उसे रहस्यवादी प्रवृत्ति की ओर उन्मुख किया।[1] १९१३ में जर्मनी में उसने दर्शन-शास्त्र का अध्ययन किया। तत्पश्चात् प्रथम विश्वयुद्ध के आरंभ में इलियट ने ब्रिटेन की नागरिकता स्वीकार की और वह लंदन में रहने लगा। युद्ध आरंभ होने के पश्चात् लंदन की अनेक साहित्यिक पत्रिकाओं में उसने लेख लिखे तथा 'द क्राइटेरियन' (१९२२-३९) पत्र की स्थापना की। १९४८ में वह नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

इलियट अपने युग का एक सर्वश्रेष्ठ कवि होने के साथ साथ सुप्रसिद्ध आलोचक भी हो गया है। उसकी आलोचना इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि वह एक कवि और नाटककार की आलोचना है। सन् १९२० में इलियट की प्रथम रचना 'द सेक्रेड वुड' (पवित्र जंगल) प्रकाशित हुई। इसमें कविता और समीक्षा सम्बन्धी लेखों का संग्रह है।[2] इसके बाद तो इलियट की अनेक समीक्षात्मक कृतियाँ, लेखसंग्रह,

---

१—आफ्टर स्ट्रेंज गाड्स, पृ० ४०; विविअन डी सोला पिन्टो, क्राइसिस इन इंग्लिश पोएट्री (१८८०-१९४०), लंदन, १९५८, पृ० १९० पर से।

२—इस कृति के सम्बन्ध में ई० एम० डब्ल्यू० टिलयार्ड ने कहा था, इन निबन्धों को पढ़कर मैं बेचैन हो उठा, और मुझे लगा कि उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।" द म्यूज अनचेन्ड, १९५८, पृ० ९७, जॉर्ज वाटसन, द लिटरेरी क्रिटिक्स, पृ० १७८ पर से।

कविता संग्रह और कविता नाटक प्रकाशित हुए। उसकी काव्य-कृतियों में 'द वेस्ट) लैंड' (अनुवर भूमि १९२२)[1], 'द हॉलो मैन', (खोखला आदमी १९२५,[2] 'ऐश वैंडनेसडे' (१९३०), 'क्लैक्टेड[3] पोएम्स' (१९०९-६२), और 'फोर क्वार्टर्स' (१९४३), समालोचनात्मक कृतियों में 'सेलेक्टेड ऐसेज' (१९३२), 'ग्रॉन

१—इसकी केंद्रीय भावना नपुंसकता है जिसे आधुनिक जगत् के आध्यात्मिक रोग का प्रतीक बताया गया है। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद इंग्लैंड में जो आर्थिक मन्दी और बेकारी आई तथा उच्च वर्ग और निम्न वर्ग के बीच खाई बढ़ती गई, उसी का परिणाम था यह काव्यकृति।

२—एक कविता देखिए—

'वी आर द हॉलो मन	(हम खोखले आदमी हैं
वी आर द स्टफ्ड मैन	हम भुस के आदमी हैं
लीनिंग दुगदर	एक साथ झुके हुए
हैडपीस फिल्ड विद स्ट्रॉ—'	जिनके शिरस्त्राण फूस भरे हैं।)

यह उल्लेखनीय है कि इलियट की कविता की चर्चा करते हुए आई० ए० रिचर्ड्स ने 'प्रिंसिपल्स आफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म' (परिशिष्ट बी', पृ० २८९) में, द वेस्ट लैंड' और 'द हॉलो मैन' की कविताओं को सर्वोत्कृष्ट बताते हुए उन्हें शुद्ध रूप से 'भावों का संगीत' कहा है। वह लिखता है," कुछ लोग समझते हैं कि वह (इलियट) अपने पाठकों को अनुवर भूमि में ले जाकर छोड़ देता है, और अपनी अंतिम कविता में वह स्वास्थ्यप्रद जल उन्मुक्त करने में असमता स्वीकार करता है। इसका उत्तर है कि कुछ पाठक उसमें अन्य स्थानों की अपेक्षा अपनी अवस्था की अधिक स्पष्ट और अधिक पूर्ण अनुभूति ही नहीं प्राप्त करते, वरन् उस अनुभूति से उन्मुक्त उन्हीं शक्तियों के माध्यम से उनके भावावेश भी सुरक्षित हो जाते हैं।" रिचर्ड्स के अनुसार, कटुता तथा भावशून्यता इलियट की कविता के केवल बाह्य रूप हैं, तथा जो अभागे पाठक कविता पढ़ने में असमर्थ हैं, वे ही इलियट की लय का विरोध कर सकते हैं (पृ० २९४-९५)। रिचर्ड्स ने 'द वेस्ट लैंड' की विषयवस्तु की किसी महाकाव्य की विषयवस्तु से तुलना की है। यदि यह काव्यकृति न होती तो एक दजन पुस्तकों से इसकी क्षतिपूर्ति हो सकती थी। जे० सी० रन्सम को रिचर्ड्स का यह मत अस्वीकार्य है, द न्यू क्रिटिसिज्म, अमरीका, १९४१, पृ० १७-१९।

३—इसकी एक कविता देखिए—

"बट ऐट माई बैक फ्रॉम टाइम टु टाइम आई हीयर
द साउण्ड ऑफ हार्न्स ऐंड मोटर्स, (अगले पृष्ठ पर)

पोएट्री, एँण्ड पोएट्स' (१९५७), 'पोएट्री एँण्ड ड्रामा' (१९५१), तथा नाटकों में 'मडर इन द कैथेड्रल' (१९३५), 'द फैमिली रियूनियन' (१९३९), 'द कॉकटेल पार्टी (१९४९), 'द कॉनफिडेंशियल क्लक' (१९५४) आदि मुख्य हैं। इलियट के निबंधो में साहित्य, समीक्षा, राजनीति, दर्शन और धर्म संबंधी शायद ही कोई ऐसा विषय हो, जिसकी चर्चा न की गयी हो।

साहित्य में शास्त्रवादी

सन् १९२८ में प्रकाशित 'लान्सलोट एण्ड्रयूज, ऐसेज आन स्टाइल एँएड ऑर्डर'[१] की भूमिका में इलियट ने जब घोषित किया—"राजनीति में मैं राजतन्त्रवादी, धर्म में एंग्लो-कैथोलिक, और साहित्य में शास्त्रवादी हूँ' तो साहित्य जगत् में एक तहलका मच गया। उसके राजनीतिक और धार्मिक विचारों सम्बन्धी घोषणा तो फिर भी किसी हद तक ठीक कही जा सकती थी, लेकिन साहित्य में शास्त्रवादी होने की बात पढ़कर लोग आश्चर्यचकित रह गये। कारण कि एक तो इलियट की कविता स्वच्छन्दतावादी ही थी और फिर १९वीं शताब्दी के फ्रांस से प्रतीकवादियों से वह प्रभावित था। ऐसी हालत में अपने आपको शास्त्रवादी घोषित करना आलोचकों को नहीं जचा।

ट्विट घाल ट्विग
स्वैनी टु मिसेज पोटर इन द स्प्रिंग।
ओ ! द मून शोन ब्राइट ऑन मिसेज पोटर
एण्ड ऑन हर डाटर।
दे वाश देयर फीट इन सोडावाटर।"
(अपने पिछवाड़े, समय समय पर मैं सुनता हूँ
भोंपुओं और मोटरों की आवाज, जो वसंत ऋतु में
श्रीमती पोटर को कृश बना देगी।
अहा ! श्रीमती पोटर पर चन्द्रमा का
उज्ज्वल प्रकाश पड़ रहा है
और उसकी बेटी पर भी
सोडावाटर मे वे अपने पैर धो रही हैं।)

१—इसमें धार्मिक गद्य साहित्य की चर्चा की गयी है। निबन्ध का प्रारंभ होता है—'द राइट रेवरेंड फादर इन गॉड ला सलोट बिशप आफ विंचेस्टर, डाइड ऑन सेप्टेम्बर, २५ १६२६।" जब १९३६ में यह रचना 'ऐसेज एँशिएण्ट एँण्ड मॉडर्न' के नाम से प्रकाशित हुई तो उक्त उल्लेख उसमें से निकाल दिया गया।

स्वच्छंदतावाद का विरोध

इलियट से अंग्रेजी साहित्य में सामयिक समीक्षा काल का आरंभ माना जाता है। समीक्षा जगत् में उसकी महत्त्वपूर्ण देन है साहित्य में स्वच्छन्दतावाद का विरोध। स्वच्छन्दतावाद और मानववाद विरोधी प्रवृत्तियों का आविर्भाव हम २० वीं शताब्दी के आरंभ मे पाते हैं। जैसा हम देख आये हैं, लगभग दो सौ वर्ष तक पाश्चात्य समीक्षा जगत् में स्वच्छन्दतावाद का बोलबाला रहा। आगे चलकर अमरीका और इंग्लैण्ड के समीक्षकों ने इसका विरोध किया।

क्लासिक क्या है ?

इलियट ने साहित्य म अपने आपको शास्त्रवादी (क्लासिक) कहकर क्लासिक को एक नया आधुनिक सन्दर्भ देने का प्रयत्न किया। अपने इस प्रयत्न मे जैसा कहा जा चुका है, वह फ्रांस के प्रतीकवादियों सत्रहवी शताब्दी के मेटाफिजिकल कवि बोदलेयर, और टी० ई० ह्यूम आदि से प्रभावित हुआ।

१९४४ में वर्जिल सोसायटी के तत्वावधान में दिये हुए इलियट के 'व्हाट इज ए क्लासिक' नामक भाषण में क्लासिक के सम्बन्ध में विस्तार मे चर्चा की गयी है। क्लासिकल का अर्थ यहाँ प्रौढ़ता या परिपक्वता किया गया है। इलियट ने लैटिन कवि वर्जिल को व्यापक अर्थ में क्लासिकल कवि माना है क्योंकि उसके सम्मुख केवल किसी अमुक युग अथवा अमुक जाति का ही इतिहास नही था—एक सर्वव्यापक ऐतिहासिक चेतना मौजूद थी। उसका कथन है कि 'क्लासिक की सृष्टि तभी सभव है जबकि सभ्यता परिपक्व हो, भाषा और साहित्य प्रौढ़ हो और वह प्रौढ मस्तिष्क की रचना हो। यदि हमारा मस्तिष्क प्रौढ़ है और हम शिक्षित हैं तो हमें सभ्यता और साहित्य की प्रौढ़ता का ज्ञान हो सकता है। साहित्य की प्रौढ़ता तत्कालीन समाज का प्रतिबिंब है जिसमें कि साहित्य का सृजन हुआ है। भाषा की प्रौढता के सम्बन्ध में इलियट का कहना है कि कोई लेखक अपनी भाषा का विकास अवश्य कर सकता है लेकिन उसकी भाषा तब तक प्रौढ़ता को प्राप्त नहीं हो सकती जब तक कि उसके पूर्ववर्ती लेखकों ने उसकी भूमिका तैयार न की हो। दूसरे शब्दों में, प्रौढ़ साहित्य के पीछे कोई इतिहास रहता है। यह इतिहास कोरा इतिहास नहीं होता, भाँति भाँति की पाण्डुलिपियों का सग्रह भी यह नहीं है, वरन् यह अपनी परिसीमाओं के अन्दर अपनी क्षमताओं का सम्पादन करने के लिए भाषा की एक व्यवस्थित और सचेतन प्रगति है।'[१]

भाषा की प्रौढ़ता के साथ मस्तिष्क और शैली की प्रौढ़ता भी बतायी गयी है। लेकिन भाषा तभी प्रौढ़ता तक पहुँच सकती है जबकि उसमें 'अतीत के प्रति

१— व्हाट इज ए क्लासिक लदन, १९४५—पृ० १०–११

आलोचनात्मक भाव, वर्तमान के प्रति विश्वास तथा भविष्य के प्रति मन में कोई सजग सन्देह न हो।" इसका मतलब हुआ कि कवि अपने पूर्ववर्ती लेखकों से परिचित है और हम उसकी कृति के पीछे रहनेवाले लेखकों से परिचित रहते हैं। ये पूर्ववर्ती लेखक महान् और सम्मानित होने चाहिए। उनकी उपलब्धियाँ ऐसी हों जिससे कि इस बात का संकेत मिले कि भाषा के साधन अभी भी विकसित नहीं हुए हैं। साथ ही नवयुवक लेखकों के मन में यह भय न बैठ जाय कि भाषा में जो कुछ हो सकना संभव था, सब हो चुका है। कवि को अपनी प्रौढ़ावस्था में, ऐसा कुछ करने की प्रेरणा प्राप्त होती है, जो उसके पूर्ववर्ती लेखक अब तक नहीं कर सके हैं। इसके लिए वह उनके विरुद्ध विद्रोह भी कर सकता है।[1]

क्लासिक शैली की ओर पहुँचने का एक लक्षण है वाक्यों की अधिकाधिक जटिलता। परन्तु जटिलता को अपने आपमें लक्ष्य नहीं माना गया है। इसका सर्वप्रथम उद्देश्य है अनुभूति एवं विचार की यथातथ्य अभिव्यक्ति, और तत्पश्चात् अधिकाधिक परिष्कृति और संगीत के वैविध्य का समावेश। जब कोई लेखक अपनी रचना को विस्तारपूर्वक कथन करने के मोह में उसे सरल ढंग से कहने की योग्यता खो बैठता है, जब वह कथन की पद्धतिविशेष के प्रति आसक्ति के कारण, जिन बातों को सरल ढंग से कहना चाहिए था, उनका विस्तारपूर्वक वर्णन करने लगता है और अपने अभिव्यंजना के क्षेत्र को सीमित कर लेता है तो जटिलता की प्रक्रिया स्वस्थ नहीं रह जाती और लेखक का जनसामान्य की भाषा से सम्पर्क छूट जाता है।[2]

इस प्रकार इलियट ने मस्तिष्क की प्रौढ़ता, शैली की प्रौढ़ता, भाषा की प्रौढ़ता तथा सर्वसामान्य की शैली की पूर्णता को क्लासिकल साहित्य का गुण माना है।[3] सर्वसामान्य शैली वह है जिसे देखकर हम यह न कहने लगें 'यह प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति है जो भाषा का प्रयोग कर रहा है', वरन् यह कहें कि 'यह भाषा की प्रतिभा को समझता है।'[4] इस दृष्टि से इलियट ने वर्जिल को क्लासिक कवि माना है क्योंकि उसने अपनी भाषा के समस्त संभाव्य रूपों को निष्पन्न कर लिया था।[5] इलियट के अनुसार अंग्रेजी साहित्य में न कोई क्लासिकल युग आया है और न कोई ऐसा कवि ही हुआ है जिसे क्लासिक नाम से अभिहित किया जा सके।[6] शेक्सपियर और मिल्टन तक को भी क्लासिक नहीं माना गया, यद्यपि इलियट ने यह स्वीकार किया है कि इन कवियों ने जैसी उत्कृष्ट रचना प्रस्तुत की है वैसी

१—वही पृ० १४
२—वही पृ० १६
३—वही
४—वही, पृ० २२
५—वही, पृ० २१-२२
६—वही, पृ० १७

रचनाएँ आज तक नहीं लिखी जा सकीं।[1] इलियट के अनुसार, प्रत्येक महान् कवि का क्लासिक कवि होना आवश्यक नहीं है। महान् कवि केवल किसी एक काव्य-रूप का ही पूर्णतया निश्शेष करता है, सम्पूर्ण भाषा को नहीं, जबकि क्लासिक कवि किसी काव्य रूप को ही नहीं वरन् अपने युग की भाषा की सम्भावनाओं को भी निश्शेष कर देता है, तथा यदि वह पूर्ण रूप से क्लासिक कवि है तो उसके युग की भाषा में चरमोत्कर्ष लक्षित होगा। इसका मतलब हुआ कि केवल कवि ही नहीं, बल्कि जिस भाषा का वह प्रयोग करता है, वह भाषा महत्त्वपूर्ण है। केवल एक क्लासिक कवि हा भाषा को निश्शेष नहीं कर देता, वरन् निश्शेष होने योग्य भाषा भी किसी क्लासिक कवि को जन्म दे सकता है।[2]

परम्परा और वैयक्तिक प्रतिभा

इलियट ने कलाकार के लिए जातीय परम्परा और ऐतिहासिक बोध की आवश्यक्ता पर जोर दिया है। उसका कहना है कि किसी कवि की सर्वोत्कृष्ट रचना वही हो सकती है जिसमें कि परम्परा के तत्त्व निहित हैं। परम्परा का अर्थ काव्य-जगत् में पूर्वकाल से प्रचलित परम्पराओं का अन्धानुकरण नहीं है। इलियट ने लिखा है, "परम्परा से मेरा मतलब है उन सब आदतों अभ्यासजन्य कार्यों और रीति रिवाजों से—अत्यन्त महत्त्वपूर्ण धार्मिक कार्यों से लेकर किसी नवागन्तुक को अभिनन्दन करने के स्वीकृत तरीकों तक—जो एक साथ एक स्थान में रहनेवाले एक समुदाय के व्यक्तियों के रक्त सम्बन्धों को व्यक्त करते हैं।"[3]

इस प्रकार, परम्परा शब्द का यहाँ एक व्यापक अर्थ में प्रयोग किया गया है। परम्परा को हम अपने पूर्वजों से विरासत में प्राप्त नहीं कर सकते, इसके लिए अत्यन्त श्रम की आवश्यकता होती है। परम्परा का लाभ सम्पादन करने के लिए ऐतिहासिक बोध का होना आवश्यक है जो उस व्यक्ति के लिए अनिवार्य है जो कि २५ वर्ष के बाद भी कवि बने रहना चाहता है।' 'केवल अतीत में अतीत को देखना ही नहीं, वरन् उसे उसके वर्तमान में देखना भी ऐतिहासिक बोध है। ऐतिहासिक बोध लेखक का स्वयं केवल अपनी ही पीढ़ी को लेकर लिखने के लिए बाध्य नहीं करता, वरन् उसके मन में यह भाव रहता है कि होमर से लेकर अब तक के समस्त यूरोपीय साहित्य और उसके अपने देश के सम्पूर्ण साहित्य का युगपत् अस्तित्व है और उसका एक युगपत् क्रम निर्मित होता है। ऐतिहासिक बोध की भावना कालनिरपेक्ष एवं कालसापेक्ष की पृथक्-पृथक् तथा दोनों की समन्वित भावना है।'

१—वही, पृ० २३ २४

२—वही, पृ० २४। वेबिट और ह्यूम का प्रभाव स्पष्ट है।

३—पायन्ट्स ऑफ व्यू ट्रेडीशन लन्दन पृ० २१

४—द सेक्रेड वुड ट्रैडीशन ऐंड इंडिविजुअल टलेंट, पृ० ४६

किसी भी कलाकार में अपने आप में सम्पूर्ण अर्थ नहीं रहता। उसका अलग से अपने आपमें मूल्यांकन नहीं किया जा सकता, उसके लिए पूर्ववर्ती लेखकों से उसका साम्य और वैसा दृश्य प्रदर्शित करना आवश्यक है। जैसे कोई नया कवि 'परम्परा' से प्रभावित होता है, वैसे ही परम्परागत क्रम भी नवीन से प्रभावित होता है। जैसे पूर्ववर्ती लेखकों की रचनाएँ नवीन लेखकों की रचनाओं का मूल्यांकन करने में सहायक होती हैं, वैसे ही नये लेखकों की रचनाओं के आधार से हम पूर्ववर्ती लेखकों और कलाकारों की रचनाओं को समझते हैं। मतलब यह कि "वर्तमान के कारण अतीत में परिवर्तन होता है और अतीत के द्वारा वर्तमान निर्देशित होता है। और जो कवि इससे अवगत होता है, वह महान् कठिनाइयों और उत्तरदायित्वों के प्रति जागरूक रहता है।'[१]

कला की निर्वैयक्तिकता

जो कलाकार परम्परा को मान्य करता है, वह कला और कविता की मुख्य प्रवृत्तियों से परिचित रहता है। कवि के लिए ज्ञानसम्पन्न होना आवश्यक है, लेकिन ज्ञान का तात्पर्य यहाँ पाण्डित्य प्रदर्शन से नहीं है। 'जो अधिक मूल्यवान है, उसके लिए कवि को सतत आत्मसमर्पण करते रहना चाहिए। यह सतत आत्मसमर्पण ही कलाकार की प्रगति है जो उसके व्यक्तित्व का सतत तिरोधान है।" निर्वैयक्तिकता की स्थिति में कला विज्ञान के निकट पहुँच सकती है। यहाँ व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति को कला न मानकर सतत निर्वैयक्तिकता को ही कला माना गया है।[२]

निर्वैयक्तिक कला के सिद्धान्त का दूसरा पक्ष है कविता और कवि का सम्बन्ध यहाँ काव्यसृजन का क्रम प्रस्तुत करते हुए रासायनिक प्रक्रिया के साथ उसकी तुलना की गयी है। जब ऑक्सीजन और सल्फर डायआक्साइड दोनों रासायनिक वस्तुएँ प्लाटिनम के तार में प्रवेश होती हैं तो वे सल्फ्यूरिक एसिड के रूप में परिवर्तित हो जाती हैं। यह तभी सम्भव है जब कि प्लाटिनम मौजूद हो। लेकिन इससे स्वयं प्लाटिनम में कोई परिवर्तन नहीं होता, यद्यपि बिना इसके कोई रासायनिक परिवर्तन भी नहीं हो सकता। यह प्लाटिनम निष्क्रिय, तटस्थ और अपरिवर्तित रहता है। कवि के मस्तिष्क को इसी प्लाटिनम के टुकड़े के समान बताया गया है। काव्यसृजन करते समय उसके मस्तिष्क में कोई परिवर्तन नहीं होता। वह किसी व्यक्ति के अनुभव को अंशतः अथवा पूर्णतः प्रभावित कर सकता है, लेकिन कलाकार जितना ही कुशल होगा उतने ही उसमें भावों का भोक्ता व्यक्ति तथा स्रष्टा मन पूर्णतया परस्पर पृथक होंगे। मतलब यह कि इलियट के अनुसार काव्य का कवि के साथ

१—वही, पृ० ४९–५०

२—वही, पृ० ५१–५३

कोई सम्ब ध नही है। नवयुवक और प्रौढ़ लेखकों की रचनाओं में तो लेखक के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है, लेकिन कुशल कलाकारों म उनके कलात्मक सृजन और सृजनात्मक मस्तिष्क में भिन्नता ही रहगी। दूसरे शब्दों में, *कवि के पास अभिव्यक्त करने के लिए कोई व्यक्तित्व नहीं होता,* एक विशिष्ट माध्यम होता है जो केवल एक माध्यम होता है—व्यक्तित्व नहीं, जिसमें मन पर पड़े हुए प्रभाव और अनुभव एक विचित्र और अप्रत्याशित ढंग से संयुक्त होते हैं। सम्भव है कि व्यक्ति के लिए जो प्रभाव और अनुभव महत्त्वपूर्ण हैं, उन्हें काव्य में कोई स्थान ही न मिल, तथा जो काव्य के लिए महत्त्वपूर्ण हों, वे व्यक्ति—उसके व्यक्तित्व के लिए—नगण्य हों।"[1] 'कवि का मस्तिष्क अनगिनत अनुभूतियों, वाक्यांशों और बिम्बों का ग्रहण करने और एकत्र करने का एक ऐसा पात्र है, जो तब तक मौजूद रहते हैं जब तक कि वे सभी तत्त्व, जिनके संयोग से कोई नया यौगिक पदार्थ बन सकता हो, एकत्र नही हो जाते।"[2]

इलियट की मा यता है कि कविता का वैशिष्ट्य वैयक्तिक मनोभावों की *उत्कटता पर निर्भर नही करता, वरन् कलात्मक प्रक्रिया की उत्कटता को ही यहाँ* महत्त्वपूर्ण माना गया है। "उनके अपने मनोभाव सीधे सादे, सरल या भौंडे हो सकते हैं। उसके काव्यगत भाव बड़े जटिल होंगे लेकिन उनम ऐसे लोगों के भावों की जटिलता न होगी जिनके जीवन मे अत्यन्त जटिल और असाधारण भाव रहते हैं। इलियट के अनुसार 'अभिव्यक्ति के लिए नये भावों की खोज करना, कविता का विलक्षणताजन्य एक दोष है। कवि का काय नूतन भावों की खोज करना नहीं, अपितु साधारण भावों का उपयोग करना है, और उन्हें काव्य का रूप देने में ऐसी भावनाएँ अभिव्यक्त करना है जो वास्तविक मनोभावों में बिल्कुल भी विद्यमान न हों। इस प्रकार जिन भावों की उसने अनुभूति नहीं की वे भी उसी तरह उसके काय में सहायक होंगे जिनसे वह परिचित है।"[3]

अपनी उक्त मान्यता के आधार पर इलियट ने वडसवथ की का य की परिभाषा को अस्वीकार किया है। जैसा हम देख आये हैं वडसवथ ने वयक्तिक भावावेशों की अभिव्यक्ति को कविता माना है। इलियट का कहना है कि 'शांत अवस्था में *स्मरण किये हुए भावों का काव्य नहीं कहा जा सकता। काव्य की प्रक्रिया में न* कोई मनोभाव है, न कोई अनुस्मरण और न शक्ति। "यह प्रक्रिया अनुस्मरण की अपेक्षा केन्द्रीकरण की एक प्रक्रिया है तथा का य केंद्रीकरण का परिणाम है जो न

१—वही पृ० ५३-५६
२—वही पृ० ५५
३—वही पृ० ५७ ५८

सचेतन है और न जानबूझकर किया हुआ। कवि का अस्तित्व अपनी सामग्री को संकुचित करने के लिए जानबूझ कर प्रयत्नशील नहीं रहता, काव्य प्रक्रिया का केंद्रीकरण एक निष्क्रिय प्रक्रिया है।" "वस्तुत एक कुकवि को जहाँ उसे चैतन्य रहित होना चाहिए, वह वहाँ सचेतन होने का प्रयत्न करता है और जहाँ सचेतन रहना चाहिए वहाँ चैतन्यरहित होने का प्रयत्न करता है। दोनों ही गलतियों के कारण उसका काव्य "वैयक्तिक' हो जाता है।" वह लिखता है 'कविता भावों का उन्मोचन नहीं, वरन् उनसे पलायन है, कविता व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति नहीं वरन् व्यक्तित्व से पलायन है।"[१]

इस सिद्धान्त के आधार पर इलियट ने 'वस्तुगत समीकरण (ऑब्जेक्टिव कोरिलेशन) विचारधारा का प्रतिपादन किया है। इसके अनुसार, कविता एक शाब्दिक रचना है जिसमें वे भावावेग सन्निहित रहते हैं जिन्हें कवि ज्ञापित करना चाहता है। ये भावावेग कवि द्वारा अनुभूत नहीं होते, वे केवल कलात्मक भावावेग हैं। इसीलिए कविता और कवि में कोई सम्बन्ध नहीं माना गया। इससे कवि के बिना ही कविता को एक स्वतन्त्र स्थान प्राप्त हो जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार, कवि अपने मनोभावों को अपने मस्तिष्क से सीधे पाठकों तक नहीं पहुँचा सकता उसके लिए वस्तुगत समीकरण का माग—अर्थात् कोई वस्तु संघटना, कोई स्थिति या घटना शृंखला प्रस्तुत किया जाता है। इसी से लेखक और पाठक के बीच सम्पर्क स्थापित होता है, और लेखक जो कुछ कहना चाहता है, वह विषयवस्तु का रूप धारण करता है। विषयवस्तु के इसी आकार और स्वरूप के साथ समीक्षक का सम्बन्ध रहता है।[२]

समीक्षा का उद्देश्य

"लिखित शब्दों द्वारा किसी कलाकृति की व्याख्या और उसका प्रतिपादन करने को" इलियट ने सामान्य रूप से समीक्षा कहा है। मैथ्यू आर्नोल्ड के सिद्धान्त का खंडन करते हुए उसने कहा है कि समीक्षा का कोई स्वत प्रयोजन नहीं रहता। उसके अनुसार, समीक्षा इसी बात मे कला से भिन्न है। कला में अपने से बाह्य कोई प्रयोजन रहता है, किन्तु उससे अभिन्न हुए बिना ही वह अपना कार्य करती है। समीक्षा का प्रयोजन है किसी 'कलाकृति का व्याख्या करना और रुचि का परिष्कार करना। समीक्षक के लिए आवश्यक बताया गया है कि यथार्थ निर्णय पर पहुँचने

१—वही, पृ० ५८

२—देखिए, सेक्रेड वुड, 'हेमलेट एंड हिज प्रॉब्लम्स पृ० १००, तथा लिटरेरी क्रिटिसिज्म ए शार्ट हिस्ट्री, पृ० ६६७।

के लिए उसे अपने पूर्वग्रहों से मुक्त रहना चाहिए तथा उस क्षेत्र में काम करनेवाले अपने सहयोगियों के साथ अपने विचारों की तुलना करनी चाहिए।'[1]

मैथ्यू आर्नल्ड ने जो समीक्षात्मक युग और सृजनात्मक युग में भिन्नता का प्रतिपादन किया है, वह भी इलियट को मान्य नहीं। सृजन में समीक्षा का बहुत बड़ा हाथ रहता है इसलिए समीक्षा को सृजन से अलग नहीं किया जा सकता। किसी कलाकृति का सृजन करते हुए कलाकार को उसकी छानबीन करने, उसका विश्लेषण करने, उसे शुद्ध करने और उसकी जाँच पड़ताल आदि के रूप में जो श्रम करना पड़ता है उसे समीक्षात्मक ही कहा जायगा। कोई सृजन लेखक अपनी कृति की जो आलोचना करता है वह भी सर्वोत्कृष्ट समीक्षा ही है। इसीलिए इलियट का कथन है कि जिन सृजनात्मक लेखकों में समीक्षा शक्ति प्रबल है वे ही लेखक श्रेष्ठ माने जाते हैं। 'किसी सृजनात्मक रचना अथवा कलाकृति का अपने आपमें कोई प्रयोजन होता है जबकि समीक्षा जैसा कहा जा चुका है, अपने सिवाय अन्य विषय की, की जाती है। इसलिए जैसे हम समीक्षा को सृजनात्मक रचना के साथ संयुक्त कर सकते हैं, वैसे सृजनात्मक रचना को समीक्षा के साथ नहीं।'[2]दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि कभी सर्जनात्मक समीक्षा नहीं होगी। रचनात्मक समीक्षा को न समीक्षा कहा जा सकता है और न सृजन। समीक्षा का सबसे बड़ा काम यही है कि वह कलाकार की सृजनात्मक प्रक्रिया में सहायक होती है।

आदर्श समीक्षक होने के लिए भावावेशों की जगह उसमें तथ्यबोध (सेंस ऑफ फैक्ट) होने की आवश्यकता बतायी गयी है। 'इस तथ्यबोध का विकास बहुत मन्द गति से होता है और जब इसका विकास पूर्ण अवस्था को पहुँच जाता है तो इसका अर्थ होता है सभ्यता के शिखर पर पहुच जाना।'[3] तथ्यों का ज्ञान प्राप्त कर लेने पर समालक को मार्ग भ्रष्ट होने का अन्देशा नहीं रहता।

व्याख्यात्मक समीक्षा को भी इलियट ने इतना महत्वपूर्ण स्वीकार नहीं किया। ऐसा अकस्मात् ही होता है कि हम किसी कलाकार की रचना को समझकर उस प्राणिक भी अभिव्यक्ति द सकें जो ठीक समझी जाये और जिससे किसी नयी बात

१—सेलेक्टेड ऐसेज 'द फंक्शन ऑफ क्रिटिसिज्म, लंदन १६५१, पृ० २४ २५। मिडिलटन मरी ने अपने रोमांटिसिज्म एण्ड द ट्रेडीशन लेख में इलियट के 'ट्रेडीशन एण्ड द इंडिविजुअल टेलंट नामक निबंध में प्रतिपादित विचारों का खंडन किया था। इसी के उत्तर में इलियट ने 'द फंक्शन ऑफ क्रिटिसिज्म नामक निबन्ध लिखा।

२—वही, पृ० २६–३०

३—वही पृ० ३१

बात पर प्रकाश पड़े। इलियट के अनुसार "व्याख्या" तभी न्यायसंगत है जबकि वह बिल्कुल भी व्याख्या नहीं है बल्कि उसके माध्यम से हम पाठकों के समक्ष कुछ ऐसे तथ्य प्रस्तुत करें जिन्हें वह अन्य प्रकार से जानने में असमर्थ है। यहाँ तुलनात्मकता और विश्लेषण को समीक्षा के लिए मुख्य हथियार बताया गया है। इनका अत्यन्त सावधानीपूर्वक प्रयोग करना चाहिए। इलियट का मानना है कि "कितने ही सामयिक लेखक उनका सफलतापूर्वक उपयोग करने में असमर्थ रहे हैं। हमें यह जानना जरूरी है कि किस विषय की तुलना की जाय और विश्लेषण किया जाए।"[1] इलियट के अनुसार, हम तथ्यों के स्वामी हैं, उनके अनुचर नहीं, क्योंकि केवल तथ्यों की खोज में लगे रहना ही समीक्षा नहीं है।[2]

कविता क्या है ?

समीक्षा के दो भेद हैं—एक सैद्धान्तिक समीक्षा, दूसरी व्यावहारिक समीक्षा। पहली समीक्षा से हमें इस बात का पता लगता है कि 'कविता क्या है?' और दूसरी से इसका कि 'क्या वह अच्छी कविता है?' दोनों ही समीक्षाएं एक दूसरे से पृथक नहीं की जा सकतीं। अरिस्टोटल आदि समीक्षकों ने दोनों प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयत्न किया है। वर्ड्सवर्थ ने 'कविता क्या है?' इस प्रश्न का उत्तर दिया है। रिचर्ड्स ने किसी वैज्ञानिक समीक्षा के लिए 'काव्य के रागात्मक ज्ञान तथा उसके रागहीन मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के सामर्थ्य' की आवश्यकता बतायी है। इलियट ने 'सुकाव्य की पसन्दगी और कुकाव्य के निराकरण की सामर्थ्य' को कविता का मौलिक तत्त्व माना है। नयी कविता का चुनाव नई परिस्थिति के अनुसार ही किया जाना चाहिए और यह तभी सम्भव है जब हम काव्य सम्बन्धी अपनी अनुभूति का वर्गीकरण करें तथा दूसरों की अनुभूतियों के साथ उसकी तुलना कर सकें। काव्यानुभूति, जागरूक और प्रौढ़ व्यक्ति में ही विकसित होती है इसलिए वह केवल श्रेष्ठ कविताओं के अनुभवों का समूह-मात्र नहीं है, इसके लिए इन अनुभवों की गठन की आवश्यकता है।[3]

कविता की पहचान कोई आसान काम नहीं। इस प्रसंग पर इलियट ने 'ऐथ वैडनेसडे' का उल्लेख करते हुए लिखा है, "यदि मेरी इस कृति का दूसरा संस्करण प्रकाशित हो तो मैं बायरन की निम्न पंक्तियाँ इसके आरम्भ में जोड़ दूँ—

> "कुछ ने मुझे इसमें विचित्र रचना के लिए दोषी ठहराया है
> इस देश के धार्मिक विश्वास और आचार के विरुद्ध,

१—वही पृ० ३२

२—वही, पृ० ३३

३—द यूज़ ऑफ पोएट्री एँण्ड द यूज़ ऑफ क्रिटिसिज्म, लन्दन, १९३३, पृ० १९ १९

तथा उसे इस कविता मे, उसकी प्रत्येक पंक्ति में खोजा है।

मैं बहाना नही करता कि मैं इसे बिल्कुल समझता हूँ
मेरा अपना अर्थ तब होगा जब मैं अत्यन्त उत्कृष्ट हूँगा,
किन्तु वास्तविकता यह है कि मेरी कुछ भी योजना नही,
सिवाय शायद इसके कि मैं क्षणिक प्रसन्नता प्राप्त कर लूँ ।"[1]

इलियट ने लिखा है 'कवि जो योजनापूर्वक' लिखता है, उसे कविता नहीं कहते, जो पाठक कल्पना करता है वह भी कविता नहीं है। जो कुछ लेखक कहना चाहता है अथवा जो वह वास्तव में पाठको के लिए करता है, उस तक पूर्णतया कविता का उपयोग सीमित नही है।' दरअसल 'कविता के उपयोग' को ही यहाँ निरर्थक माना गया है। यहाँ यह न भूलना चाहिए कि कवि निश्चय ही अपने पाठकों को आनन्द प्रदान करना चाहता है। वह एक ऐसे समाज की कल्पना करता है जिसमें उसकी लेखन शैली लोकप्रिय हो और उसकी प्रतिभा का श्रेष्ठ उपयोग हो सके।[2]

किसी कल्पित 'सामान्य पाठक' के मनोरंजन करने और उसे उपदेश देने को काव्य का लक्ष्य स्वीकार न कर, इलियट ने सामयिक जगत् की 'परेशानी भीषणता और महत्ता को अभिव्यक्ति प्रदान करने को काव्य का लक्ष्य बताया है। इसलिए काव्य सृजन में नागरिक जीवन के यथार्थ विध्वंसक तत्त्व, उसकी कुत्सा, अज्ञानता और कुरूपता के चित्रण पर जोर दिया गया है। मैथ्यू आर्नाल्ड की समीक्षा करते हुए उसने लिखा है 'सामान्यतया सुन्दर जगत् में निवास करना, यह मानव जाति के लिए लाभदायक है, इसमें किसी को सन्देह नही। लेकिन क्या कवि के लिए यह इतना ही महत्त्वपूर्ण है? मैं जानता हूँ सौंदर्य से हमारा तात्पर्य अनेक प्रकार की चीजों से रहता है। किन्तु किसी सुन्दर जगत् से व्यवहार करना, यह कवि के लिए

१—"सम हैव एक्यूज्ड मी ऑफ ए स्ट्रेंज डिज़ाइन
अगेंस्ट द कौड ऍण्ड मौरल्स ऑफ दिस लैण्ड,
ऍण्ड ट्रेस इट इन दिस पोएम, एव्री लाइन।
आई डोंट प्रेटेण्ड दैट आई क्वाइट अण्डरस्टैंड
माई ओन मीनिंग व्हैन आई वुड बी वरी फाइन,
बट द फैक्ट दैट आई हैव नथिंग प्लाण्ड,
ऐक्सेप्ट परहैप्स टु बी ए मोमेंट मरी" यही, पृ० ३१

२—यही, पृ० ३० ३२

आवश्यक रूप से लाभप्रद नहीं।, लाभप्रद यह है कि वह सौंदय और कुरूपता के नीचे 'परेशानी, भीषणता और महत्ता के दर्शन कर सके।[1]

कविता की दुरूहता

इलियट ने आधुनिक कविता की दुर्बोधता के अनेक कारणों का उल्लेख किया है। सर्वप्रथम, कवि का वैयक्तिक कारण हो सकता है, जिससे कि वह अपनी अनुभूतियों को अस्पष्ट रूप में अभिव्यक्त करने के लिए बाध्य होता है। इलियट ने लिखा है 'यद्यपि यह स्थिति खेदजनक कही जा सकती है, लेकिन हमें प्रसन्न न होना चाहिए, मैं समझता हूँ कि मनुष्य अपनी अभिव्यक्ति करने में कम से कम समय तो हो सका।" दुरूहता का दूसरा कारण हो सकता है काव्य की नूतनता। उदाहरण के लिए, वर्डसवर्थ, शेला और कीट्स तथा टेनीसेन और ब्राउनिंग—सभी अपनी अस्पष्ट और दुरूह रचनाओं के कारण पाठकों के उपहासास्पद बने और उनके विरोधी समीक्षक उन्हें मूर्ख तक कहने लगे। कविता की अस्पष्टता का तीसरा कारण हो सकता है कि या तो पाठक को किसी ने कविता की दुर्बोधता के विषय में कहा हो या उसे स्वयं उसके दुर्बोध होने की आशंका हो गयी हो।[2]

काव्यगत दुरूहता के सम्बन्ध में इलियट लिखता है, "अधिक अनुभवी पाठक जो इन बातों में अधिक 'शुद्धता की दशा को प्राप्त हो चुका है काव्य को समझने के सम्बन्ध में चिन्तित नहीं रहता, कम से कम पहली बार तो नहीं। मैं जानता हूँ, मुझे अत्यन्त प्रिय लगनेवाली कुछ कविता ऐसी है जो पहली बार पढ़ने में मेरी समझ में नहीं आई, कुछ ऐसी भी है जिसके सम्बन्ध में मुझे निश्चय नहीं कि मैं उसे समझता हूँ। उदाहरण के लिए, शेक्सपियर की कविता। और फिर अन्त में, लेखक कुछ अनकहा भी छोड़ देता है[3] जिसका पता पाठक को लगाना चाहिए, इससे पाठक आश्चर्यचकित रह जाता है जो वहाँ मौजूद नहीं, उसे टटोलने लगता है, उस 'अर्थ' के लिए वह अपना सिर खपाने लगता है, जो वहाँ नहीं है, और जिसका वहाँ रहना आवश्यक नहीं समझा गया है। काव्य के 'अर्थ' का मुख्य उपयोग यह है कि उससे पाठक का मन विषयान्तर होकर शान्त हो जाता है जब कि कविता उस पर अपना

१—द यूज ऑफ पोएट्री एण्ड द यूज ऑफ क्रिटिसिज्म, पृ० १०६

२—वही पृ० १५०

३—सेंट जे० पर्स की 'एनाबेसिस' कविता के अनुवाद की भूमिका में इलियट ने कहा है—' किसी कविता को पहली बार पढ़ने में जो अस्पष्टता दिखायी देती है, उसका कारण है प्रतिपाद्य और सम्बद्ध विषयवस्तु की श्रृंखला की कड़ियों का निरोध, असंगति अथवा अस्पष्ट लेखन की रुचि उसका कारण नहीं।" क्राइसिस इन इंग्लिश पोएट्री, पृ० १९२–९३।

काम करती है।"[1] आगे चलकर वह लिखता है, 'मेरा विश्वास है कि कवि स्वभावतः बहुसंख्यक और विविध पाठकों के लिए लिखता है, और अशिक्षित पाठकों की अपेक्षा अर्ध शिक्षित या कुशिक्षित पाठक ही उसके काम में बाधा उपस्थित करते हैं। मैं स्वयं ऐसा श्रोता पसन्द करूँगा जो लिखना पढ़ना न जानता हो।'[2] इलियट ने "जंगल में किसी जंगली मनुष्य द्वारा ढोल पीटे जाने के साथ ही साथ" कविता का उद्भव माना है। "इसी की प्रतिध्वनि और लय कविता में आज भी सुरक्षित है'।[3]

'द मेटाफिजिकल पोयट्स' नाम के अपने निबन्ध में इलियट ने लिखा है "यह कोई स्थायी आवश्यकता नहीं कि कवि दर्शन या अन्य किसी विषय में रुचि रखते हों। हम यही कह सकते हैं कि सम्भवतः आधुनिक सभ्यता में कवियों को अवश्य कठिन होना चाहिए।[4] हमारी सभ्यता विविधता और जटिलता की सभ्यता है और यह विविधता और जटिलता, सूक्ष्म संवेदना पर असर डालती हुई अनेक गूढ़ निष्कर्षों को जन्म देती है। इसलिए कवि को अधिक-से अधिक व्यापक, अधिक से अधिक सूक्ष्म और अधिक से अधिक अप्रत्यक्ष होना चाहिए जिससे कि आवश्यकता पड़ने पर वह भाषा को तोड़ मरोड़ कर अर्थ के अनुकूल बना सके।"[5]

इलियट की समीक्षा-पद्धति

टी० एस० इलियट बीसवीं शताब्दी का सबसे अधिक प्रभावशाली समीक्षक हो गया है जिसने सब देशों की आलोचना-पद्धतियों को प्रभावित किया। ३० वर्ष तक उसकी लेखनी अनवरत चलती रही जिससे बुद्धिजीवी वर्ग—विशेषकर नई पीढ़ी का

१—वही, पृ० १५१

२—वही, पृ० १५२

३—वही, पृ० १५५

४—रिचर्ड्स ने भी लिखा है "सत्य तो यह है कि सर्वोत्कृष्ट कविता का अधिकांश भाग आवश्यक रूप से अपने तात्कालिक प्रभाव मे अस्पष्ट ही रहता है। अत्यन्त सतर्क और उत्तरदायी पाठकों को भी कविता को पुनः पुनः पढ़ना चाहिए, तथा तब तक कठिन श्रम करते रहना चाहिए जब तक कि वह उसके मस्तिष्क में स्पष्ट और निश्चित रूप न धारण कर ले। गणित की किसी नई शाखा की भाँति मौलिक कविता भी पाठक के मस्तिष्क को विकसित होने के लिए बाध्य करती है और इसके लिए समय की अपेक्षा है।" प्रिंसिपल्स ऑफ क्रिटिसिज्म, परिशिष्ट 'बी' पृ० २९१। तथा देखिये माइकेल रॉबर्ट्स द्वारा सम्पादित एवं डान०ड हॉल द्वारा संशोधित द फ़ाबर बुक ऑफ मॉडर्न वर्स, पृ० १६,३, लंदन, १९६५

५—सेलेक्टेड ऐसेज, पृ० २८९

लेखक-विभिन्न विषयों पर लिखे हुए उसके लेखों से प्रभावित हुआ। १९२० से लगाकर १९३० तक इलियट इग्लैंड और अमरीका के काव्य जगत् की प्रवृत्तियो का केंद्र रहा। यीट्स की अपेक्षा भी अधिक प्रत्यक्ष रूप से उसके विचार कविता में अभिव्यक्त होते थे। वस्तुत पश्चिम की नयी समीक्षा में नयी प्रवृत्तियों का आविर्भाव इलियट से ही होता है।

इलियट अभिजात वर्ग में पैदा हुआ था, धर्म और दर्शन का भी उसने गभीर अध्ययन किया था। परिणाम यह हुआ कि सम्वेदनात्मक स्थितियों को अभिव्यक्ति के लिए उसने प्राचीन काव्य भगिमाओं का सहारा लिया। परम्परा का प्रगति के साथ मेल बैठाने का उसने प्रयत्न किया। अपनी 'वेस्ट लैंड' रचना में लदन को उसने अनुवर भूमि' और हालो मैन' रचना में आधुनिक मानव को खोखला और निर्जीव कहा है। आधुनिक जगत् को उसने निस्सहाय, विश्वासहीन तथा सस्कृति-विहीन चित्रित किया है। इससे छुटकारा पाने के लिए उसने धर्म का आश्रय लिया। उसकी आफ्टर स्ट्रेंज गाडस' जैसी रचनाओं का आधार यही है कि परम्परा से सम्बन्ध विच्छेद हो जाने के कारण मानव जीवन पगु बनता जा रहा है। उसकी धारणा थी कि ईसाई धर्म को उदार सवेदना ही विश्व के मानव को एक सूत्र में बाँधने में समर्थ है। साहित्यिक समीक्षा का आधार उसने एक निश्चित नैतिक और धर्म विधान सम्बन्धी दृष्टिकोण ही माना है।[1]

इलियट ने रोमासवादी और व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों के विरोध में क्लासिसिज्म को अपनाकर उसे एक नया सदर्भ देने का प्रयत्न किया। रोमांटिसिज्म मत के समर्थकों की मान्यता थी कि कवि मूलत प्रतिभाशाली होता है जो अपनी कल्पना-शक्ति से काव्यसर्जन में प्रवृत्त होता है। इन लोगों ने कवि के व्यक्तित्व को मुख्यता प्रदान का है। लेकिन इलियट ने काव्यसर्जन को आत्माभिव्यक्ति न मानकर मनोभावों का पुन सृजन कहा है। उसके अनुसार, कविता में व्यक्ति की अभिव्यजना न होकर व्यक्तित्व का तिरोधान हो जाता है। यहाँ नाटक को निर्वैयक्तीकरण का सवश्रेष्ठ रूप स्वीकार किया गया है। वस्तुत कला-वस्तु पर अधिक जोर देने से मनोभावो (इमोशन्स) का महत्त्व यहाँ बहुत कम हो गया है।

कला को निर्वैयक्तिक मानने के कारण ही इलियट के ऊपर आरोप लगाया गया कि वह काव्य को किसी अचेतन मस्तिष्कविहीन भाग में छिपा लेता है, इसलिए उसने कवि को एक स्वत चालित यत्र की भाँति निष्क्रिय बना दिया है। और यह कविता के लिए अच्छा नही है। वस्तुत प्रतीकवादियों के सिद्धान्त से प्रभावित होने के कारण, इलियट काव्य में निर्वैयक्तिकता को मानने के लिए बाध्य

१—सेलेक्टेड ऐसेज, 'रिलीजन ऐंएड लिटरेचर, पृ० ३८८

हुआ था। प्रतीकवादियों का मानना था कि कविता में मनोभावों की अभिव्यक्ति सीधे रूप में नहीं होती, मनोभाव केवल जागृत किये जाते हैं। उदाहरण के लिए, बोद्लेयर का मानना था कि प्रत्येक वर्ण, शब्द और गंध से किसी मनोभाव का बोध होता है तथा प्रत्येक रूप का अन्य क्षेत्रों में उसका प्रतिरूप होता है। मलार्मे ने कहा है कि कविता भावों से निर्मित न होकर शब्दों से निर्मित होती है, इसलिए शब्दों को उसने मनोभावात्मक संकेतों के आकार प्रकार स्वीकार करके, शब्दों का आंतरिक क्रीड़ा को एक प्रकार का नृत्य नाट्य अथवा 'संगीतात्मक' संगठन माना है।[1]

मैथ्यू आर्नोल्ड की भाँति इलियट की आलोचक दृष्टि भी सर्वव्यापक थी। जॉन क्रो रैंसम ने अपना 'द न्यू क्रिटिसिज्म' में इस ओर संकेत किया है। उसने लिखा है कि इलियट यद्यपि तत्कालग्राही आलोचनात्मक बुद्धि से सम्पन्न था और उसकी वह बुद्धि सूक्ष्म और यथार्थ थी, फिर भी उसके निर्णयों को सन्तुलित और अनुशासित नहीं कहा जा सकता।[2] वस्तुतः अपने रूढ़िगत विचारों से वह बंधा हुआ था। रैंसम ने इलियट की समीक्षा को मनोवैज्ञानिकता से, और प्रभावोत्पादक अनुभवों से अत्यधिक सम्बद्ध, तथा अत्यन्त न्यून ज्ञानात्मक (कॉग्निटिव) बताया है।[3]

योर विंटर्स ने भी इलियट के सिद्धान्तों का आलोचना की है। उसका कहना है कि इलियट केवल अपने युग की अव्यवस्था और असंगति का चिंतन करके ही संतोष पा लेता है। अपने अनुभवों पर प्रभुत्व प्राप्त करने और उनका निर्णय करने के बजाय, वह केवल उनको प्रतिबिंबित करता है। ऐसा करने से, विंटर्स के अनुसार, कविता का रूप उसकी अपरिपक्व विषयसामग्री के समक्ष घुटने टेक देता है। कोई आधुनिक कवि उसकी कविता की इस रूपविहीनता का यह कहकर समर्थन करेगा कि वह (इलियट) अपने युग की अव्यवस्था और असंगति के सम्बन्ध में लिख रहा है। लेकिन इस दलील के आधार पर विंटर्स के मतानुसार फिर तो यह भी कहा जा सकता है कि यदि किसी को विक्षिप्तता या मन्दता के ऊपर कविता लिखनी तो है वह अपनी कविता को विक्षिप्ततायुक्त अथवा मन्द और निर्उत्तेजक बना दे।[4]

अपने युग की जटिलताओं को ध्यान में रखते हुए इलियट ने भाषा में परिवर्तन के प्रश्न को महत्त्वपूर्ण ढंग से उपस्थित किया है। यहीं से नयी कविता का मार्ग

१—लिटरेरी क्रिटिसिज्म ए शॉर्ट हिस्ट्री पृ० ६६७–६८

२—वही, पृ० १७५

३—लिटररी क्रिटिसिज्म ए शार्ट हिस्ट्री, पृ० ६६६

४—वही पृ० ६७०, इन डिफेंस आफ रीजन के अन्तर्गत 'प्रिमिटिविज्म एँण्ड डिकेडेंस' (पृ० ४१) तथा टी० एस० इलियट और द इल्यूजन ऑफ रिएक्शन' नामक निबंध।

प्रशस्त होता है। कहना न होगा कि आन्तरिक असंगतियों के कारण इलियट की काव्यसम्बन्धी मान्यताएं स्पष्ट रूप में हमारे सामने न आ सकीं, फिर भी संसार उनके प्रभाव से अछूता न रहा।

निष्कर्ष

रिचर्ड्स के सिद्धान्त को मनोवैज्ञानिक मानववाद कहा गया है। समीक्षा में मनोविज्ञान को मुख्य बताते हुए उसने मनोविश्लेषणात्मक पद्धति पर जोर दिया। सौंदयवादियों की सौंदय की परिभाषाओं की मीमांसा करते हुए उसने मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण को मुख्य माना है। समीक्षाशास्त्र का सम्बन्ध उसने विज्ञान से जोड़ा, तथा विज्ञान का सम्बन्ध बोधशक्ति से और कविता का सम्बन्ध अभिरुचियों से बताया। कला हमारे मन की किसी सौंदर्यात्मक भावना को तृप्त करती है—कलावादियों के इस सिद्धान्त की मीमांसापूर्वक यहाँ कला और जीवन के अभेद्य सम्बन्ध को स्वीकार किया गया। समीक्षा में प्रेषणीयता की प्रक्रिया का सुव्यवस्थित विवेचन किया गया। इलियट ने शुद्ध वैयक्तिक मनोवैज्ञानिक आधार पर मान्य किये गये रिचर्ड्स के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया। कलावादियों की भाँति कला और नीति के सम्बन्ध को उसने अमान्य ठहराया। बैबिट, मोरे और टी० ई० ह्यूम के सिद्धान्तों से वह प्रभावित हुआ, जिन्होंने रूसो के स्वच्छन्दतावाद का विरोध कर क्लासिकल परम्परा का समर्थन किया था। बिम्बवादी आन्दोलन के प्रवर्तक एज्रा पाउण्ड के अनुयायियों ने स्वच्छन्दतावाद को अमान्य करते हुए यूनानी क्लासिकल परम्परा को श्रेष्ठ बताया। एज्रा पाउण्ड ने कला को निर्वैयक्तिक माना और इसका प्रभाव इलियट पर पड़ा। प्रभाववाद और प्रतीकवाद के सिद्धान्तों ने भी इलियट को प्रभावित किया। उसकी कविताओं और नाटकों में प्रतीकवादी प्रवृत्तियाँ देखी जा सकती हैं। प्रभाववादी तथा प्रतीकवादी धाराएँ क्रमशः स्वच्छन्दतावादी और प्रकृतवादी प्रवृत्तियों की प्रतिक्रियाओं के रूप में आविर्भूत हुई थीं। सुप्रसिद्ध प्रतीकवादी कवि बोदलेयर ने प्रकृतवादी एवं यथार्थवादियों की मान्यताओं का विरोध करते हुए 'कला के लिए कला' सिद्धान्त को मान्य किया था। बोदलेयर की मान्यताओं का प्रभाव इलियट पर पड़ा। प्रथम विश्वयुद्ध के परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड की प्रजा में जो आध्यात्मिक ह्रास की लहर उठी, उसका चित्रण इलियट के 'वेस्ट लैण्ड', 'हॉलो मैन' आदि काव्यसंग्रहों में देखा जा सकता है। अपनी रचनाओं में 'क्लासिकल' का विस्तृत विवेचन करते हुए कवि के लिए उसने जातीय परम्परा और ऐतिहासिक बोध को आवश्यक बताया है। कला को निर्वैयक्तिक प्रतिपादन करते हुए काव्यसृजन की प्रक्रिया में कवि के मस्तिष्क को निष्क्रिय, तटस्थ और अपरिवर्तनशील कहा

गया है। काव्य और कवि का कोई पारस्परिक सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि कवि के पास अभिव्यक्त करने के लिए कोई व्यक्तित्व नहीं होता, एक विशिष्ट माध्यम होता है, जिसमें मन पर पड़े हुए प्रभाव और अनुभव एक विचित्र और अप्रत्याशित ढंग से प्रस्तुत होते हैं। कलात्मक प्रक्रिया की उत्कटता को ही महत्वपूर्ण कहा गया है, वैयक्तिक मनोभावों की उत्कटता को नहीं। कविता को भावों का उन्मोचन न मानकर भावों से पलायन को कविता कहा गया है—'कविता व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति नहीं, व्यक्तित्व से पलायन है।' इलियट के अनुसार, समीक्षा का कोई प्रयोजन नहीं, और न 'योजनापूर्वक' कविता ही लिखी जाती है। सामयिक जगत् की 'परेशानी, भीषणता और महत्ता' को अभिव्यक्ति प्रदान करना ही काव्य का लक्ष्य है, सुन्दर जगत् से व्यवहार करना नहीं। परिणामतः इलियट को काव्यगत दुरूहता का समर्थन करना पड़ा।

(छ) समसामयिक आलोचना

[बीसवीं शताब्दी की नई आलोचना]

एफ आर लीविस (१८९५)
जॉन क्रो रैन्सम (१८८८)
एलेन टेट (१८९९)
क्लियेन्थ ब्रुक्स (१९०६)
रॉबर्ट पेन वारेन (१९०५)
योर विण्टर्स (१९००)
विलियम एम्पसन (१९०७)
मॉरिस चार्ल्स (१८६३-१९१८)
केनेथ बर्क (१८९७)
आर पी ब्लैकमूर (१९०४)
डब्ल्यू एच ऑडन (१९०७)
विलफ्रेड ओवन (१८९३-१९१८)
ज्याँ-पाल सार्त्र (१९०५)
अलबर्ट काम (१९१३-६०)
फ्रांज काफ्का (१८८३-१९२४)

बीसवीं शताब्दी की नई आलोचना

हम देख आये हैं, आर्नोल्ड और पेटर से लेकर 'नई आलोचना' तक पाश्चात्य समीक्षा बडी तीव्र गति से आगे बढी। बीसवीं शताब्दी में आलोचना के नये मापदण्डों की खोज हो रही थी और साहित्य का पुनमूल्याकन किया जा रहा था। वस्तुत आई० ए० रिचड्स और टी० एस० इलियट ने जो साहित्यालोचन के सिद्धन्त स्थिर किये थे, उन्ही पर नयी आलोचना के भव्य प्रासाद का निर्माण किया जा रहा था।

टी० ई० ह्यूम और एज़रा पाउण्ड का उल्लेख किया जा चुका है। इन दोन ने अपने सहयोगियों के साथ मिलकर 'बिम्बवाद नाम का एक अभिनव साहित्यिकों आन्दोलन चलाया, जिसमें ह्यूम का मुख्य स्थान रहा। ह्यूम का प्रभाव बीसवीं शताब्दी के मध्य तक कायम रहा। ह्यूम की मान्यता थी कि मानववाद पर टिकी हुई हमारी सभ्यता पतन की ओर उन्मुख हो रही है, इसलिए हमें धर्म की ओर लौट चलना चाहिए। वस्तुत ह्यूम से लेकर ब्लैक्मूर तक पाल वालेरी, रिचड्स, लीविस, विण्टस और इलियट आदि सभी आलोचकों ने स्वीकार किया था कि विज्ञानवाद और अध्यात्मवाद में सघर्ष छिडा हुआ है, इसलिए आध्यात्मिक ह्रास को रक्षा करने के निमित्त आलोचनात्मक मापदण्ड स्थिर करने की आवश्यकता है।

ब्लूम्सबरी-परम्परा

जेम्स जॉयस, डी० एच० लारेंस और इलियट जैसे प्रतिभाशाला लेखकों के अतिरिक्त उन्नीसवीं बीसवी शताब्दी मे इग्लैंड मे कुछ ऐसे भी साहित्यिक केंद्र थे जहाँ साहित्य सजन का काय तीव्र गति से चल रहा था। ब्रिटिश म्युज़ियम के निकट अपनी साहित्यिक प्रवृत्तियो में सलग्न साहित्यिक और कलाकारों का एक ऐसा दल 'ब्लूम्सबरी' नाम से कहा जाता है। इस दल में ई० एम० फोस्टर, वरजीनिया वल्फ लियोनार्ड वल्फ लिटन स्ट्रैची क्लाइव बल और रोजर फ्राय आदि प्रतिभाशाली गद्य लेखक शामिल थे। ये लेखक विक्टोरिया और एडवर्ड युग के यथार्थवाद, कविता मे स्वच्छन्दतावाद की परम्परा तथा जीवन चरित और समीक्षा मे गाम्भीर्य को स्वीकार नही करते थे। इन लोगों का पुराने विश्वविद्यालयों से सम्बन्ध था तथा महाद्वीप के साहित्य और कला सम्बन्धी आन्दोलनों से ये सुपरिचित थे। फ्रेंच और रूसी साहित्य के और विशेषतया अठारहवीं शताब्दी के एग्लो फ्रेंच सस्कृति के ये प्रशसक थे। इन्होंने फ्रास की कविता और चित्रकला के प्रति अंग्रेजी पाठकों के

मन में रुचि जाग्रत कर अंग्रेजी संस्कृति को समृद्ध बनाया था। नये लेखकों को ये प्रोत्साहित किया करते थे।[1]

इनमें जी० ई० मूर (१८५२–१९३३) नाम का दार्शनिक भी था जिसने अपने सिद्धान्तों से साहित्यिकों को प्रेरित किया था। मूर आयर्लैंड का निवासी था, और पेरिस जाकर उसने कला का अध्ययन किया था। वह कलाकारों और साहित्यकारों के संग बैठकर साहित्य और कला की चर्चा करता। कला को उसने साहित्य के चरणों में समर्पित कर दिया था। मूर कवि था और साथ ही कहानी, उपन्यास और समीक्षा लेखक भी। वह अपनी स्वच्छ और सीधी सादी शैली के लिए प्रसिद्ध था।[2] उसकी 'प्रिंसिपिया एथिका' नामक रचना एक प्रकार की बाइबिल मानी जाती थी जिसमें उसने ब्लूम्सबरी परम्परा के अनुयायियों के जीवन के प्रति दृष्टिकोण की व्याख्या की थी। यहाँ जीवन में धर्म की मुख्यता प्रतिपादन करते हुए नैतिक 'श्रेष्ठता' (मॉरल गुड) पर जोर दिया गया है। मूर के अनुसार श्रेष्ठ की कल्पना विचार का एक सरल और अनिर्वचनीय विषय होता है जिसका विश्लेषण नहीं किया जा सकता। मूर आंगिक एकता (ऑरगैनिक यूनिटी) सिद्धान्त का पक्षपाती है, जिसके अनुसार जहाँ तक मूल्य का सम्बन्ध है, सम्पूर्ण अपने अंशों के समूह से अधिक होता है। उदाहरण के लिए, 'सुन्दर पदार्थ की चेतना' में दो तत्वों का समावेश है— 'चेतना' और 'सुन्दर पदार्थ'। लेकिन न तो केवल 'चेतना' और न केवल 'सुन्दर पदार्थ' में कोई बड़ा मूल्य रहता है—वह रहता है दोनों के संयोग में। इससे मूर इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि तात्विक मूल्य वाली प्रत्येक वस्तु में जटिल 'सम्पूर्णता' (कम्प्लेक्स 'होल') रहती है और इस 'सम्पूर्णता' को उसके अवयवों में विभाजित नहीं किया जा सकता। सौंदर्य मूल्य निर्णय को यहाँ श्रेष्ठ का अत्यन्त आवश्यक अवयव स्वीकार किया गया है। 'वैयक्तिक स्नेह' अथवा 'प्रेम तथा सौंदर्योपभोग' में से सौन्दर्योपभोग अधिक स्थायी है क्योंकि प्रेम में परिवर्तन हो सकता है जबकि कला और सौन्दर्य ज्यों के त्यों रहते हैं। मूर कला को नैतिकता के बंधनों से मुक्त कर देता है लेकिन वह यह भी मानता है कि कला नैतिकता और धर्म के उद्देश्य को सम्पन्न करती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्लूम्सबरी सदस्यों का मुख्य आकर्षण कला की ओर अधिक होता गया तथा उनके लिए कला का सृजन और उसका मूल्य निर्णय उनका धर्म बन गया।[3]

१—द [illegible] इन इंग्लिश पोएट्री, पृ० १८९–९०
२—आर० ए० स्कॉट-जेम्स, फिफ्टी ईयर्स ऑफ इंग्लिश लिटरेचर (१९००–५०), लन्दन १९५१, पृ० ९२–९३
३—ए० के० [illegible], पृ० १२८–२९

क्लाइव बेल (१८८१) ने अपनी 'आर्ट' (१९१४) नामक पुस्तक में धर्म और कला को परस्पर अभिन्न स्वीकार करते हुए 'धर्म को कला और कला को धर्म' कहा है। उसके अनुसार, आधुनिक मस्तिष्क कला की ओर मुड़ता है, केवल सर्वोत्कृष्ट मनोवेगों की सम्पूर्ण अभिव्यंजना के लिए नहीं, वरन् उस प्रेरणा के लिए जिसके द्वारा हम प्रेम करते हैं।[1]

रोजर फ्राय (१८६६ १९३४) और वर्जीनिया वुल्फ (१८८२ १९४१) ने आगे चलकर कला संबंधी उक्त दृष्टिकोण को विकसित किया। बेल और फ्राय दोनों का ही मन्तव्य था कि कोई कलाकृति हममें एक 'विचित्र मनोभाव'— सौंदर्य मनोभाव' पैदा करती है जो एक 'विशिष्ट रूप' (सिगनिफिकेंट फॉर्म) होना चाहिए, तथा केवल 'किसी असाधारण मनोभाव–जिसको यह उत्पन्न करता है'—के द्वारा ही इस 'विशिष्ट रूप' का निरूपण किया जा सकता है।[2] फ्राय के अनुसार, कला का कोई विशिष्ट उद्देश्य होता है, तथा कलात्मक अनुभव सामाजिक नैतिक और धार्मिक अनुभवों से भिन्न रहता है। क्लाइव और फ्राय दोनों ही अपने विषय के विद्वान् थे और उन्होंने फ्रेंच कला, फ्रेंच चित्रकला और ब्रिटिश चित्रकला का विशेष रूप से अध्ययन किया था।[3]

एफ़० आर० लीविस (१८९५)

लीविस अपने युग का एक अत्यन्त प्रभावशाली समीक्षक हो गया है। कामनवेल्थ के अंग्रेजी विभाग में शायद ही कोई ऐसा विद्यालय हो जहाँ लीविस का कोई शिष्य अध्यापन कार्य न करता हो, यद्यपि लीविस स्वयं कभी अध्यापक नहीं रहा। सामान्यतया उसकी समीक्षा पद्धति इलियट और रिचर्ड्स से मिलती जुलती है, फिर भी वह उसकी अपनी है। यह पद्धति शाब्दिक विश्लेषण की पद्धति है। इलियट और रिचर्ड्स की पद्धति उनके सामान्य सिद्धान्तों का निदर्शन करता है, जबकि लीविस अपने शाब्दिक परीक्षण द्वारा किसी बात की या तो प्रशंसा करता है या निंदा। मिल्टन की समीक्षा करते हुए लीविस ने इसी पद्धति का अनुसरण किया है।

यह उल्लेखनीय है कि नई आलोचना के प्रवर्तक टी० ई० ह्यूम और एजरा पाउण्ड यद्यपि इंग्लण्ड के निवासी थे, लेकिन नई आलोचना का आंदोलन अमरीका

१—वही पृ० १५९

२—लिटरेरी क्रिटिसिज्म ए शार्ट हिस्ट्री पृ० ६१४

३—रोजर फ्राय के सम्बन्ध में अपनी ऐसेज, पोएम्स एण्ड लैटर्स' (लंदन, १९३८) में जुलियन बेल ने वू हान यूनिवर्सिटी, हू पे (चीन) से, १९३६ में एक पत्र लिखा है।

में पाया। वस्तुतः इंग्लैण्ड और अमरीका समय समय पर काव्य और समीक्षा के क्षेत्र में एक दूसरे को प्रभावित करते रहे। आरंभ में पाउण्ड और इलियट लंदन में रहे। इलियट की भाँति डब्लू० एच० ऑडेन भी इंग्लैंड का ही निवासी था जो अमरीका में जाकर बस गया था। उसे ऑक्सफोर्ड में कविता का प्रोफेसर नियुक्त कर फिर से इंग्लैण्ड बुला लिया गया। वास्तव यह है कि १९१२ या उस से कम १९२० के बाद से साहित्यिक आन्दोलन का केन्द्र कभी इंग्लैण्ड रहा, और कभी अमरीका। काव्य के क्षेत्र में डब्लू० बी० यीट्स का अंग्रेजी कवियों की अपेक्षा अमरीकी कवियों पर ही अधिक प्रभाव पड़ा। इसी प्रकार समीक्षा के क्षेत्र में रिचर्ड्स, लीविस और विलियम एम्पसन ने इंग्लैंड की अपेक्षा अमरीका के समीक्षा शास्त्रियों को ही विशेष प्रभावित किया।[1]

अपनी 'स्क्रूटिनी' (१९३२-५३) नाम की त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका के सम्पादन के कारण समीक्षा के क्षेत्र में लीविस मत का आगे हुआ। इस पत्रिका के सहयोगियों में एल० सी० नाइट्स, ट्रेवर्सी, मार्टिन टर्नल, क्यू० डा० लेविस, डेनिस थॉमसन और डा० डब्लू० हार्डिंग के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। देखा जाय तो लीविस ने समीक्षाशास्त्र में किसी नूतन सिद्धान्त की स्थापना नहीं की, उसकी समीक्षा पद्धति में उच्च तत्त्वज्ञान (एस्थेटिसिज्म) और अत्यधिक आधुनिक वाद के प्रति विद्रोह दिखायी देता है। रिचर्ड्स की 'प्रेक्टिकल क्रिटिसिज्म' में प्रतिपादित समीक्षा के व्यावहारिक सिद्धान्तों का अनुकरण करने के कारण लीविस को रिचर्ड्स का शिष्य कहा गया है।[2]

१९३० में लीविस ने 'मास सिविलिजेशन एण्ड माइनॉरिटी कल्चर' (सामूहिक सभ्यता और अल्पसंख्यक संस्कृति) नामक कृति में संस्कृति तथा नैतिक और सौंदर्य सम्बन्धी परम्परा का परीक्षण किया है। भूत और वर्तमान कालीन लेखकों की आलोचना करते हुए, जीवन स्वभाव (क्वालिटी ऑफ लाइफ) पर उसने जोर दिया है। साहित्य में उसने विषयवस्तु और 'रूप' को भिन्न भिन्न नहीं माना, जीवन स्वभाव को ही मुख्य माना है। अतएव सौंदर्यविषयक रुचि की अपेक्षा 'नीतिविषयक रुचि' को यहाँ प्रधानता दी गयी है। लीविस के अनुसार, मिल्टन की कविता में जीवन की पकड़ नहीं थी, शैली के सम्बन्ध में भी यही बात है, जब कि 'नैतिक पकड़' के कारण जॉर्ज इलियट, कॉनराड और डी० एच० लारेंस की रचनाओं को उसने सराहा है।[3]

१—डविड डचीज, द प्रजेंट एज आफ्टर १९२०, लदन १९५८, पृ० १७

२—जॉर्ज वाटसन, लिटरेरी क्रिटिक्स, पृ० २१०, नोटस आन क्रिटिसिज्म ऍण्ड क्रिटिक्स पृ० १६८।

३—नोट्स आन क्रिटिसिज्म ऍण्ड क्रिटिक्स, पृ० १६७-६८

दो वर्ष बाद उसकी 'न्यू बीयरिंग्स इन इंगलिश पोएट्री' (अंग्रेजी कविता के नये सम्बन्ध) रचना प्रकाशित हुई। कितने ही महत्वपूर्ण विचार लीविस ने इलियट की 'सेक्रेड वुड' से यहाँ लिये हैं।[१] यहाँ इलियट की कविताओं का प्रतिपादन और समर्थन किया गया है। समीक्षा सिद्धान्त के ऊपर लिखी हुई लीविस की यह पहली स्वतन्त्र रचना है।

'रिवैल्युएशन' (पुनर्मूल्याकन १९३६) में, स्क्रूटिनी' में अंग्रेजी कविता और उपन्यास पर प्रकाशित निबन्धों का संग्रह है। लीविस ने इसमें अंग्रेजी साहित्यिक परम्पराओं का मूल्यांकन प्रस्तुत किया है। कविता के क्षेत्र में उसने स्वच्छन्दतावादी परम्परा के विरुद्ध विचारों को प्रतिपादित किया तथा उपन्यास के क्षेत्र में जॉर्ज इलियट और डी० एच० लारेंस को उच्च कोटि के लेखक माना।[२] पुस्तक की भूमिका में कविता की 'महान् परम्परा' के ऊपर जोर देते हुए उसने लिखा है—'कोई समीक्षक जब व्यक्तिगत रूप से कवियों की चर्चा करता है तो स्पष्ट अथवा अस्पष्ट रूप से वह परम्परा की ही चर्चा करता है। क्योंकि ये कवि इसी परम्परा में रहते हैं, और यह परम्परा उन कवियों में रहती है।'

समीक्षा पद्धति के सम्बन्ध में लिखा है—'व्यक्तिगत रूप से कवियों की चर्चा करते हुए, समीक्षक का नियम है अथवा (मैं समझता हूँ) होना चाहिए कि जहाँ तक बने, किसी कविता या अवतरण का कोई खास विश्लेषण करना, तथा ऐसी किसी बात का उल्लेख न करना जो लिखी जाने वाली पाठ्य पुस्तक सम्बन्धी निर्णयों के साथ तत्काल सम्बद्ध न की जा सकती हो।"[३]

'द ग्रेट ट्रेडीशन' (महान् परम्परा १९४८) में भी समय समय पर लिखे हुए निबन्धों का संग्रह है। इसमें जॉर्ज इलियट, हेनरी जेम्स और जोसेफ कॉनराड के ऊपर निबन्ध हैं। उपन्यास साहित्य की 'महान् परम्परा' के सम्बन्ध में कहा गया है कि कतिपय महान् लेखकों द्वारा ही अंग्रेजी कविता और अंग्रेजी उपन्यास की सच्ची परम्परा का ज्ञान हो सकता है। मानवीय चेतना को आगे बढ़ाने में उपन्यासकारों का स्थान अत्यन्त महत्व का है इसलिए इस परम्परा को गंभीर नैतिक परम्परा

१—यहाँ अपने विचारों को मौलिक न बताकर लीविस ने उनके लिए समीक्षक और कवि इलियट का आभार प्रदर्शन किया है। लीविस की अवस्था जब २५ वर्ष की थी तब सेक्रेड वुड' प्रकाशित हुई। उसने इसकी एक प्रति खरीदी तथा कई वर्षों तक हाथ में पेंसिल लेकर वह इसका अध्ययन करता रहा। प्रतिवर्ष वह इसे बार बार पढ़ता। द कामन परसूट, १९५०, पृ० २८०।

२—द प्रजेंट एज, पृ० १३६

३—जॉर्ज वाटसन, द लिटरेरी क्रिटिक्स प० २१०, नोटस ऑन क्रिटिसिज्म एण्ड क्रिटिक्स, प० १९८

माना गया है। लीविस की विचारधारा इस समय उपन्यास साहित्य की ओर प्रवृ हो रही थी क्योंकि इसी से उसकी नैतिक विचारधारा का समर्थन हो सकता है। उसकी मान्यता है कि उपन्यासकार अपनी कृति के प्रत्येक विवरण की अभिनव प्रकार से कल्पना करता है और जो कुछ विवरण वह प्रस्तुत करता है, वह लेखक के नैतिक भाव की गहराई से निःसृत होता है। उसका कथन है कि लेखक को अपने विषय के साथ अन्तर्मुख हो जाना चाहिए और उसकी कृति में यह अन्तर्मुखी भावना प्रतिबिंबित होनी चाहिए। इससे यहा ज्ञात होता है कि लीविस की समीक्षा नीति प्रधान रही है और उसके अनुसार साहित्य का उद्देश्य केवल मनोरंजन करना नही था।[1]

'द कॉमन परसूट' (सामान्य खोज १६५२) लीविस की एक अन्य रचना है जो इलियट के 'द फंक्शन्स ऑफ क्रिटिसिज्म' से प्रभावित है। पुस्तक की भूमिका में इलियट के इस निबन्ध की बहुत प्रशसा की गयी है। 'समीक्षक को अपनी वैयक्तिक धारणाएँ और मताग्रह को अनुशासन में रखने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए, तथा सच्चे निर्णयो की सामान्य खोज के लिए जहाँ तक बने, अधिक से अधिक अपने सहयोगियो के साथ होनेवाले अपने मतभेदो का निपटारा करना चाहिए"— इलियट के इस कथन का लीविस ने समर्थन किया है।[2]

अपनी तथ्यता (प्रसीजन) एवं साहित्यिक निर्णयो के पृथक्करण की मान्यता के कारण लीविस ने आधुनिक समीक्षा को पर्याप्त रूप में प्रभावित किया। 'स्क्रूटिनी' (जिल्द ६, नंबर १, १६३७) में रेने वैले के लेख का उत्तर देते हुए लीविस ने समीक्षा पद्धति के सम्बन्ध में अपने महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किये हैं। वह लिखता है 'सर्वप्रथम आलोचक का कर्तव्य हैं कि जो कोई बात उसका ध्यान आकर्षित करे उसे यथासंभव संवेदनापूर्वक पूर्ण रूप से अनुभूति के योग्य बनावे और अनुभूति मे कुछ मूल्यांकन आ ही जाता है। ज्यों ही नूतन वस्तुओं के अनुभव में वह प्रौढता प्राप्त करता है, स्पष्ट और अस्पष्ट रूप से वह प्रश्न करता है यह अनुभव कहाँ से आता है ? यह इसकी तुलना में कैसे खडा रहता है ? यह अपेक्षाकृत महत्त्वपूर्ण कैसे दिखायी देता है ?' साहित्यिक आलोचक का काम है किसी प्रतिक्रिया की विशिष्ट सम्पूर्णता को प्राप्त करना तथा अपनी इस प्रतिक्रिया को व्याख्या के तौर पर विकसित होते हुए किसी विशिष्ट कठोर सुसंगति के रूप में देखना। उसे उस अनुचित पृथक्करण से—जो कि उसके समक्ष है— तथा उसके किसी अप्रौढ़ अथवा असंगत साधारणीभाव

१—जॉर्ज वाटसन द लिटरेरी क्रिटिक्स, पृ० २१२, डेविड डचीज् द प्रजेंट एज, पृ १३७

२—द लिटरेरी क्रिटिक्स, पृ० २१४

से अपनी रक्षा करते रहना चाहिए। उसका पहला काम है (उदाहरण के रूप में) किसी दी हुई कविता को पूरी तरह ठोस रूप में ग्रहण करे, और इस बात का वह निरन्तर ध्यान रखे कि यह पकड़ अपनी पूर्णता में कभी भी शिथिल न हो प्रत्युत उसमें दृढ़ता हो आती जाये। स्पष्ट अथवा अस्पष्ट रूप में मूल्यनिर्णय (वैल्यू-जजमैंट्स) करते समय, वह परिपूर्णता की पकड़ और प्रतिक्रिया की पूर्णता के कारण ऐसा करता है। यह प्रश्न वह नहीं करता कि 'कविता की श्रेष्ठता के इन विशेष विवरणों से उसका मेल कैसे बैठता है?' कविता का 'स्थान निर्धारित करनेवाले' मूल्य के तात्कालिक बोध को पूर्णतया सचेतन और स्पष्ट करने का उसका उद्देश्य रहता है।"[1]

आगे चलकर छोटी छोटी बातों को लेकर लीविस के सम्बन्ध में अनेक वाद खड़े हो गये जो अन्य किसी जीवित आलोचक के सम्बन्ध में नहीं उठे। वस्तुतः १९५० के बाद काव्यालोचन लीविस का मुख्य उद्देश्य नहीं रह गया। उसे जो कोई बात अच्छी न लगती, उसी को लेकर वह जूझ पड़ता चाहे वह बात जीवन संबंधी हो या साहित्य संबंधी। जॉर्ज वाट्सन ने उसके सम्बन्ध में लिखा है, "आवश्यक सुकुमारता और साहित्यिक मूल्यों की जटिलता की ओर बिना ध्यान दिये ही, मूल्य निर्णयों तक—खास कर अपनी उत्तरकालीन रचनाओं में—पहुँचने में उसने शीघ्रता की है, तथा उसने किसी भी चीज के बारे में जानकारी प्राप्त नहीं की, अथवा जानने का अधिक प्रयत्न नहीं किया।"[2]

जॉन क्रो रैन्सम (१८८८)

'नई आलोचना में कला और समीक्षा के किसी अभिनव सिद्धान्त की स्थापना नहीं की गयी, वरन् समीक्षा के अमुक दृष्टिकोण पर ही जोर दिया गया है। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में समीक्षा सम्बन्धी ऐसे कितने ही सिद्धान्त थे। जिनमें किसी कलाकृति के विचारों एवं बौद्धिक विषय को ही मुख्य माना जाता था। उदाहरण के लिए, मार्क्सवादी समीक्षा के अनुसार वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त के आधार पर काव्य की परीक्षा की गयी है। इसी प्रकार मानववादी समीक्षक किसी कलाकृति में नैतिक मूल्यों, तथा समाजशास्त्रवादी समीक्षक समाजशास्त्रीय तत्वों की खोज करता है। मतलब यह कि ये समीक्षक साहित्यालोचन सम्बन्धी किसी नूतन विषय का प्रतिपादन न कर काव्यगत समाज, जीवन अथवा इतिहास सम्बन्धी दृष्टिकोण से ही साहित्य को आँकते हैं। एक प्रकार से कला की कला के रूप में और साहित्य को साहित्य के

१—डेविड डचीज, क्रिटिकल अप्रोचेज टू लिटरेचर, पृ० २९९
२—द लिटरेरी क्रिटिक्स, पृ० २१५

रूप में व्याख्या यहाँ नहीं की गयी। अमरीका में इन दिनों मानववादी और मानस-वादी समीक्षा पद्धति का ही विशेष प्रचार देखने में आ रहा था।[1]

ऐसी स्थिति में 'नई आलोचना' का उदय हुआ जिसके उन्नायकों में जे० सी० रैंसम, टेट एलेन (१८६६) और विण्टर्स (१६००), आर० पी० ब्लैकमूर (१६०४), रॉबर्ट पेन वारेन (१६०५), क्लियेन्थ ब्रुक्स (१६०६), डब्लू० एम्पसन (१६०७), केनेथ बर्क (१८६७) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

कहा जा चुका है कि १६२० के बाद इंग्लैण्ड में 'नई आलोचना' का आविर्भाव हुआ और द्वितीय विश्व युद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व ही अमरीका में इसका प्रचार हो गया। फिर १६४५ के बाद अमरीका में नई आलोचना ने जोर पकड़ा और इसमें शास्त्रीय (एकेडेमिक) समीक्षा के लक्षण दिखायी देने लगे। १६४१ में रैंसम की 'द न्यू क्रिटिसिज्म' (नई आलोचना) नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। १६३६ में आई० ए० रिचर्ड्स अमरीका में आकर रहने लगा था और उसने अ-ऐतिहासिक (ऐंटी हिस्टोरिकल) समीक्षा सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया था—जो प्रकारान्तर से 'नये' का ही दूसरा नाम था। दरअसल एक तो अमरीकी समीक्षक कुछ रूढ़िवादी परम्पराओं को स्वीकार करते थे दूसरे अमरीकी विश्वविद्यालयों में विश्लेषण के कला-कौशल और पाठ्य-पुस्तकों की व्याख्या पर जोर दिया जाता था, जब कि ऐतिहासिक समीक्षा में इन बातों की उपेक्षा रहती थी। इन्हीं परिस्थितियों में अमरीका में नयी आलोचना का विकास हुआ।[2]

रैंसम नये आलोचकों में अग्रणी हो गया है। १६३८ में उसने 'द वर्ल्ड्स बॉडी' (जगत का शरीर)[3] नामक रचना प्रकाशित की। प्रतीकवादी दृष्टिकोण की सराहना करते हुए रैंसम ने नामविहीनता को कविता की वास्तविक शर्त बतायी है। उसका कहना है कि यदि किसी अच्छी कविता के अन्त में किसी यशस्वी कवि का नाम है, तो इससे कवि का वास्तविक प्रतिनिधित्व सिद्ध नहीं होता। इस प्रसंग पर मिल्टन का उदाहरण दिया गया है जिसने अपने किसी कवि मित्र की मृत्यु पर शोक मनाने के लिए एक यूनानी गडेरिये का बाना पहना, तथा किसी अन्य मृत व्यक्ति को अपना मित्र समझा। रैंसम का कहना है कि आजकल कितने ही लेखक बनने की इच्छा रखने वाले कवि अपनी जीवनियाँ लिखते हैं, अपनी गहन विभूतियों, प्रेम सुख-दुःख और आनन्द का चित्रण करते हैं, लेकिन यह चित्रण अत्यन्त शब्दशः ईमानदारी

१—नोटस ऑन क्रिटिसिज्म ऐण्ड क्रिटिक्स, पृ० १६६–७०

२—द लिटरेरी क्रिटिक्स, पृ० २०१–२

३—चार्ल्स स्क्रिब्नर्स सन्स न्यूयार्क, १६३८ द्वारा प्रकाशित। इसका कुछ अंश 'क्रिटिसिज्म द फाउण्डेशन्स ऑफ माडर्न लिटरेरी जजमेंट', पृ० ३३३–४२ में प्रकाशित हुआ है।

से साफ और स्पष्टतापूर्वक लिखा हुआ होता है। इस चित्रण में कोई वाग्वैदग्ध्य, विनोदप्रियता, नाटकीय दृश्य और निर्लिप्तता नहीं होती। परिणाम यह होता है कि लेखक कला से कट जाता है।[1]

जॉन क्रो रैंसम ने कविता को तीन भागों में विभक्त किया है—भौतिक, प्लैटोनिक और आधिभौतिक (मेटाफिजिकल)। भौतिक कविता को रैंसम ने किसी भी कविता का मौलिक उपादान बताया है। "इसका परिणाम हमेशा शुद्ध अथवा पूर्ण अस्तित्व से कुछ कम ही होता है, और बिल्कुल यह नहीं कहा जा सकता कि भौतिक पदार्थों के सिवाय इसमें और कुछ नहीं है। बात यह है कि जब हम आवश्यकता से अधिक भौतिक कविता से सन्तुष्ट हो जाते हैं तो सम्भवतः हमारे विश्लेषण से पता लगेगा कि यह उससे अधिक है जो साधारणतया अशुद्ध है।"[2] विचारों की कविता को प्लैटोनिक कविता कहा गया है। 'इसमें भी शुद्धता की श्रेणियां रहती हैं। जिस कथन में बिना बिम्बों के केवल गूढ़ विचार ही होंगे उसे वैज्ञानिक उल्लेख ही कहा जा सकता है, कविता बिल्कुल नहीं—प्लैटोनिक कविता भी नहीं। प्लैटोनिक कविता भौतिक कविता में गहरा गोता लगाती है।"[3] "प्लैटोनिक कविता में राष्ट्रीय, नैतिक, धार्मिक और सामाजिक विचारों को प्रतिपादित किया जाता है, लेकिन इसे अलंकृत करने के लिये भौतिक कविता की शैली के अनुरूप कुछ भौतिक गुणों को इसमें जोड़ दिया जाता है। यदि कवि विचारों की सामर्थ्य में विश्वास करता है तो कविता विध्यात्मक, और यदि नहीं करता है तो निषेधात्मक होती है।"[4] रैंसम ने इसे वास्तविक कविता न मानकर भौतिक कविता का अनुकरण ही माना है। 'किसी बिम्ब को एक विचार सिद्ध करने के लिए कवि इस नकली कविता की रचना करता है, किन्तु इस प्रकार जो साहित्य सृजन किया जाता है उसमें केवल दृष्टान्त ही होते हैं, वास्तविक बिम्ब नहीं होते।"[5] आधिभौतिक कविता सबसे महत्त्वपूर्ण है। इसमें सच्ची कविता के लक्षण पाये जाते हैं, यहाँ कवि जिस भाषा का प्रयोग करता है वह अन्य सब भाषाओं से अलग होती है। "यह कविता विज्ञान की पूरक होती है और इससे कथन में श्रेष्ठता आती है। प्रकृतवादी कथन (नेचुरलिस्टिक डिस्कोर्स) को यहाँ अपूर्ण माना गया है। रैंसम के अनुसार प्लैटोनिक कविता अत्यन्त आदर्शवादी और भौतिक कविता

१—क्रिटिसिज्म द फाउण्डेशन आफ मॉडर्न लिटरेरी जजमेंट, पृ० ३३३–३४

२—डेविड डचीज, क्रिटिकल अप्रोचेज टू लिटरेचर, पृ० १४७

३—वही, पृ० १४७–४८

४—वही पृ० १४८

५—वही, पृ० १४९

अत्यन्त यथार्थवादी है, और यथार्थवाद उकता देनेवाला होता है—उसमें रुचि नहीं रहती। ऐसी हालत में पाठक का ध्यान आकर्षित करने के लिए कवि चमत्कार के मनोवैज्ञानिक साधन ग्रहण करता है।" यह कथन भले ही वैज्ञानिक न हो किन्तु इसका असर तुरंत होता है। इस प्रकार 'विशुद्ध' कविता को आलोच्य वस्तु स्वीकार करते हुए रैंसम ने अलौकिक चमत्कारपूर्ण कविता को आधिभौतिक कविता मान उसे आलोचना का विषय स्वीकार किया है।[1]

रैंसम की दूसरी रचना है 'गॉड विदाउट थण्डर : ऐन अनआर्थोडोक्स डिफेन्स ऑफ आर्थोडोक्सी (बिना गर्जन के ईश्वर : परम्परानिष्ठा की परम्परा विरोधी रक्षा) जो १६३० में प्रकाशित हुई।[2] योर विण्टर्स ने अपनी 'इन डिफेंस ऑफ रीजन' पुस्तक में जान क्रो रैंसम और थण्डर विदाउट गाड' नामक लेख में रैंसम द्वारा अपने ऊपर किये गये आक्षेपों का उत्तर दिया है। विण्टर्स ने यहाँ 'रैंसम की कविता में नैतिकता का विचार', 'अद्वितीय अनुभव', 'सुखवाद' (हीडोनिज्म), 'कला अद्वितीय अनुभव का अनुकरण और कला अद्वितीय अनुभव' 'कविता का गठन' 'रूपक और उपमा', 'छंद और असंगति का सिद्धान्त' 'कविता की नगण्यता' और 'नियतिवाद' (डिटरमिनिज्म) आदि विषयों की चर्चा की है।

'द न्यू क्रिटिसिज्म' (१९४१) की भूमिका में नयी आलोचना का विश्लेषण करते हुए कहा गया है, "जहाँ तक गहराई और तथ्यता का प्रश्न है, नई आलोचना पूर्वकालीन समस्त आलोचनाओं की अपेक्षा बढ़कर है। इसकी पद्धति में पहले से ही कुछ ऐक्य है जिससे कि आर० पी० ब्लैकमूर आदि विद्वानों ने भी अपने तत्कालीन पूर्ववर्ती समीक्षकों से बहुत कुछ ग्रहण किया।" यहाँ आई० ए० रिचर्ड्स से नयी आलोचना का आरंभ स्वीकार कर डब्ल्यू० एम्पसन योर विण्टर्स तथा चार्ल्स डब्ल्यू० मॉरिस को नयी आलोचना के उन्नायकों में गिना गया है।

एलेन टेट (१८६६) और क्लियेन्थ ब्रुक्स (१६०६)

एलेन टेट[3] और राबर्ट पेन वारेन रैंसम के शिष्य थे। इलियट की भाँति टेट ने परम्परा को धर्म की श्रेणी में रखा तथा परम्परा सम्बन्धी अपने दृष्टिकोण को आलोचना की पद्धति का आधार बनाया।

१—वही, पृ० १५३-५४ २—हारकोट, ब्रासे ऐण्ड कम्पनी १६३०

३—टेट का 'हार्डीज मेटाफर' नामक लेख १९४१ में 'द सदर्न रिव्यू' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। बाद में 'द रीजन इन मैडनेस' में इसे सम्मिलित कर लिया गया। १९५५ में उसका 'द मैन आफ लैटर्स इन द माडर्न वर्ल्ड' नामक निबन्ध संग्रह प्रकाशित हुआ। इसकी भूमिका में उसने लिखा है, 'मैं समझता हूँ कि आलोचना लिखी जा चुकी है, और वह संभवतः केवल एक दृष्टिकोण से।'

इस समय सामान्य रूप से नये आलोचकों के मन में उन्नीसवीं शताब्दी के समीक्षा सिद्धान्तों के प्रति आकर्षण नहीं रह गया था जिससे इन्होंने पाण्डित्यपूर्ण ऐतिहासिक आलोचना को ही नहीं, वरन् अज्ञेयवादी ज्ञान सम्पन्नता (एग्नोस्टिक ऐनलाइटेनमेंट), जनतान्त्रिक आशावाद, उद्योगवाद तथा मार्क्सवाद के अन्तर्राष्ट्रीय आदर्शों को भी ठुकरा दिया था। इस तरह हम देखते हैं कि नया आलोचना पुरानी मान्यताओं के विरुद्ध एक प्रकार की प्रतिक्रिया थी कि जो 'नूतन' शब्द से अभिहित की जाती थी।[1]

पेटर और वाइल्ड के सौंदर्य आंदोलन ने कविता के स्रोत के अध्ययन को कम कर दिया था। "कविता का अस्तित्व कहीं लेखक और पाठक के बीच में रहता है, (उसकी यथार्थता केवल ऐसी यथार्थता नहीं जिसे लेखक 'अभिव्यक्त' करना चाह रहा है अथवा उसके लेखन के अनुभव का यथार्थता भी वह नहीं है, अथवा पाठक अथवा पाठक के रूप में लेखक के अनुभव की भी यथार्थता इसे नहीं कह सकते)"[2]-इलियट के इस कथन से भी कविता सम्बन्धी उपर्युक्त मान्यता का ही पोषण होता है। जैसा कहा जा चुका है, १९३० तक शायद ही ऐतिहासिक समीक्षा के विरुद्ध कुछ कहा गया हो, किन्तु १९४० के आसपास जब अमरीकी विश्वविद्यालयों में अध्यापकों का स्थान नये आलोचकों ने ले लिया तो ऐतिहासिक समीक्षा की आलोचना होने लगी।[3]

ब्रुक्स ने १९३९ में 'मॉडर्न पोएट्री एण्ड द ट्रेडीशन (आधुनिक कविता और परम्परा) नाम की पुस्तक प्रकाशित की[4] जिसमें 'नई आलोचना' के दृष्टिकोण से अंग्रेजी कविता की समीक्षा की गयी। यहाँ 'प्रतीकवादी आधिभौतिक' (सिम्बोलिस्ट मेटाफिजिकल) परम्परा को स्वीकार करनेवाले कवियों की सराहना की गई तथा इसे स्वीकार न करनेवाले कवियों को निम्नकोटि का ठहराया गया। इसे इस समीक्षा की सीमा कहना चाहिए। इस चिन्तनधारा का प्रभाव अमरीकी विश्वविद्यालयों के अंग्रेजी कविता के अध्यापन पर पड़ना स्वाभाविक था।[5]

१९४२ में प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस की ओर से ब्रूक्स का 'द लंग्वेज ऑफ पोएट्री' (कविता की भाषा) नामक सिम्पोजियम प्रकाशित किया गया।[6] यहाँ "कविता

---

१ – द लिटरेरी क्रिटिक्स, पृ० २२०–२१

२ – द यूज ऑफ पोएट्री एण्ड द यूज ऑफ क्रिटिसिज्म, पृ० ३०

३ – वही पृ० २२१

४ – इसकी भूमिका में एम्पसन तथा इलियट, टेट, यीटस रैनसम, ब्लैकमूर और रिचर्ड्स का 'ऋण' स्वीकार किया गया है, और एम्पसन की रचना से उद्धरण दिये गये हैं। एम्पसन ने इस पुस्तक की समीक्षा की थी।

५ – डेविड डचीज, द प्रजेंट एज, पृ० १२९–३०

६ – इसका 'द लंग्वेज ऑफ पैरेडोक्स' नामक अंश 'क्रिटिसिज्म द फाउण्डेशन ऑफ

की भाषा को विरोधाभास की भाषा' कहा गया है और 'विरोधाभास कुशाग्र की भाषा है, जो कठिन उज्ज्वल और कांतिपूर्ण है, बजाय उसे मुश्किल से ही, आत्मा की भाषा कहा जा सकता है।" 'किसी युक्ति या स्थान विशेष में इस भाषा का उपयोग हो सकता है लेकिन मुश्किल से ही वह कविता कही जायेगी। हमारे पूर्वग्रह हमें विरोधाभास को भावावेशयुक्त न मानकर बौद्धिक, दुर्बोध न मानकर दक्ष तथा अतार्किक न मानकर तर्कसंगत मानने के लिए बाध्य करते हैं।"[1]

विज्ञान और कविता में भेद बताते हुए कहा गया है कि विज्ञान में किसी वस्तु का अपना सुस्पष्ट, प्रत्यक्ष और सरल रूप में 'संकेत पद्धति' (नोटेशन सीरीज) द्वारा किया जाता है जब कि कविता विचारों को विरोधाभास, व्यंग्य, अस्पष्टता और वक्र रूप में ऐसी भाषा में अभिव्यक्त करती है जो उस भाषा से बहुत दूर है जिसे कि वह निर्दिष्ट करती है, इसमें अपना स्वयं का पद रहता है।[2] रिचर्ड्स और कॉलरिज ने भी विज्ञान और कविता में भेद का प्रतिपादन किया है लेकिन यह भेद उनसे भिन्न है।

क्लीन्थ ब्रुक्स ने रॉबर्ट पेन वारेन के साथ मिलकर १९३८ में 'अण्डरस्टैंडिंग पोएट्री' (कविता की समझ) नाम का कविता संग्रह प्रकाशित किया। इसकी भूमिका में कविता को छोड़कर कविता का अन्य कोई उपयोग स्वीकार नहीं किया—न ऐतिहासिक और न नैतिक। यहाँ बताया गया है कि "यदि कविता कुछ सिखा दे सकती है तो यह केवल कविता के रूप में ही।"[3]

रॉबर्ट पेन वारेन (१९०५)

कतिपय नूतन आलोचकों के अनुसार कविता में एक विशिष्ट प्रकार का विरोधाभास और द्विगुणित अर्थ रहता है जिसके द्वारा किसी भाव की अभिव्यक्ति की जाती है। इसी बात का वारेन ने अपनी 'प्योर एँण्ड इम्प्योर पोएट्री' (शुद्ध और

माडर्न लिटरेरी जजमेंट' में पृ० ३५८-६६ पर प्रकाशित हुआ। आगे चलकर लन्वेज ऑफ पोएट्री साधारण परिवर्तन के साथ 'द वेल राट अर्न' १९४७ में हारकोर्ट ब्रेस एण्ड कम्पनी की ओर से प्रकाशित हुआ।

१—क्रिटिसिज्म द फाउण्डेशन्स ऑफ माडर्न लिटरेरी जजमेंट, पृ० ३५८

२—वही, पृ० ३६०, डविड डचीज, क्रिटिकल अप्रोचेज टु लिटरेचर, पृ० १६६

३—द लिटरेरी क्रिटिक्स, पृ० २२१

अशुद्ध कविता)[1] नामक रचना मे प्रतिपादन किया है। उसका कहना है, "यदि कोई कविता है तो उसे शुद्ध कविता होना चाहिए, इसका मतलब यह कि वह अकविता न हो। शेक्सपियर की कविता, पोप की कविता, हरिक की कविता शुद्ध कविता है, जहाँ तक कि वह कविता है।" कविता को शुद्ध इसलिए कहा है कि नैतिक विकार से वह विशुद्ध हो गयी है[2] "शुद्ध कविता शुद्ध रहने का प्रयत्न करती है, कम या अधिक इच्छापूर्वक, उन कतिपय तत्वों को वर्जित करते हुए जो उस मौलिक उद्वेगों को विशिष्ट बना सकते हों या उनका विरोध कर सकते हो।"[3]

यहाँ कवि को एक जिजुत्सु खिलाड़ी की उपमा दी है जो अपने प्रतिपक्षी के प्रतिरोध का उपयोग करके उसपर विजय प्राप्त करता है। वारेन ने लिखा है, 'कविता को अच्छी होने के लिए उसे स्वय अर्जन करना आवश्यक है। अच्छी कविता में, किसी रूप में, प्रतिरोध का होना आवश्यक है, इसमें स्वय अपने सृजन का कुछ प्रसग रहना चाहिए। दूसरे रूप में कह सकते हैं कि अच्छी कविता में पाठक का सहयोग रहना चाहिए। कॉलरिज के शब्दों मे, कविता को चाहिए कि वह पाठक को "एक सक्रिय सृजनात्मक प्राणी बना दे।' उदाहरण के लिए ट्रैजेडी में अच्छे या बुरे की परिभाषा नहीं दी रहती है, प्रक्रिया में इसे अर्जन करना पड़ता है, और ट्रैजेडी के खलनायक से भी 'प्रेम' किया जाना चाहिए। हमे उसकी अवश्य हत्या कर देनी चाहिए, एक कसाई की भाँति नही, वरन् एक बलिदान करनेवाले की भाँति।[4]

आगे चलकर वारेन लिखता है, "हजारों वर्षों तक कवियो ने बहुत कुछ प्रयत्न किया है, अपने अभिप्राय को अभिव्यक्त करने के लिए। किन्तु उन्होंने केवल अपने अभिप्राय को ही व्यक्त करने का प्रयत्न नही किया, अपने अभिप्राय को सिद्ध करने का भी प्रयत्न किया है। जैसे कोई सन्त पुरुष अग्नि की ओर कदम बढाकर अपनी दिव्य शक्ति को सिद्ध करता है उसी प्रकार कवि कुछ कम रूप में, अपनी दिव्य दृष्टि को प्रमाणित करने के लिए, व्यग्य की अग्नि में आत्मसमर्पण करता है, इस

१—१९४२ मे 'द केन्योन रिव्यू' प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस द्वारा प्रकाशित। तत्पश्चात 'क्रिटिसिज्म द फाउण्डेशन्स आफ लिटरेरी जजमेंट' में पृ० ३६६ ७८ पर पुन प्रकाशित।

२—क्रिटिसिज्म ए फाउण्डेशन्स, पृ० ३६७।

३ वही, पृ० ३७२। एडगर एलेन पो को शुद्ध कविता के सिद्धान्त का जनक बताया गया है। फेडरिक पोटल ने भी अपनी 'ईडियम आफ पोएट्री' मे कविता की शुद्धता की चर्चा की है। देखिए पृ० ३७२–७३।

४—वही, पृ० ३७७

आशा से कि अग्नि उसे शुद्ध कर देगी। दूसरे शब्दों म, कवि ध्वनित करना चाहता है कि उसकी दिव्य दृष्टि अर्जित की गया है, तथा जीवन की जटिलताओं और पारस्परिक विरोधों के निर्देश के बावजूद वह जीवित रह सकती है, और व्यग्य निर्देश का एक ऐसा साधन है।"[1]

कविता के गठन (स्ट्रक्चर) पर यहाँ जोर दिया गया है। "अच्छी कविता का गठन इस प्रकार किया जाता है कि इसके तत्वों के बीच जो शब्द रचना की जाती है वह अथ को जटिल रूप मे प्रस्तुत करती है जिससे कि कवि अपने अंतिम कथन म विजयी होता है," और इसके लिए व्यग्य और विरोधाभास महत्त्वपूर्ण साधन हैं। अतएव यहाँ "सामग्री और कवि की प्रतिक्रियाओं के सग्रह पर आधारित कविता को दोषपूर्ण बताया गया है।[2]

योर विण्टर्स (१९००)

विण्टस को तार्किक आलोचक (द लाजिकल क्रिटिक) कहा गया है। आलोचक होने के साथ साथ निब ध लेखक और कवि के रूप में भी उसने प्रसिद्धि प्राप्त की थी। १९३७ में (एरो एडॉश स) म उसकी 'प्रिमिटिविज्म एँण्ड डिकडेंस (पुरातनता और क्षयो मुखता) १९३८ म 'मोलस कस तथा १९४३ म द एनोटोमी ऑफ नानसेंस (मूखता की चीरफाड) नामक समीक्षात्मक निब ध सग्रह प्रकाशित हुए। १९४७ म यूयाक से प्रकाशित होनेवाले 'इन डिफेंस ऑफ राजन' (तक की सुरक्षा) में इन तीनों को एक साथ प्रकाशित किया गया। ये विण्टस के पद्रह वष से अधिक काल में लिखे हुए निब ध हैं। निब धों के समीक्षात्मक सिद्धा त विशेषकर अमरीकी साहित्य के अध्ययन पर आधारित हैं। विण्टस ने अनेक कविताएँ लिखी हैं जिनम द जर्नी (१९३१), 'बिफोर डिजास्टर' (१९३४), 'पोएम्स' (१९४१), 'द ग्रेट वैपन' (१९४३) उल्लेखनीय हैं।

'इन डिफेंस ऑफ रीजन' की भूमिका म विण्टस ने साहित्य सम्ब धी सिद्धा तों को चार श्रेणियों में विभक्त किया है—उपदेशवादी, सुखवादी, स्वच्छ दतावादी और नीतिवादी। उपदेशवादी सिद्धा त के अनुसार, साहित्य का उद्देश्य है उपयोगी आदेश एव सुस्पष्ट नैतिक उपदेशों को प्रस्तुत करना। सुखवादी सिद्धात के अनुयायी सुख को जीवन का लक्ष्य स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार, साहित्य आनद का चरम सीमा पर पहुँचाता है अथवा कोई विशिष्ट और गोपनीय आन द प्रदान

१—वही, पृ० ३७७–७८।

२—डेविड डेचीज क्रिटिकल अप्रोचेज टू लिटरेचर, पृ० १६१।

करता है। स्वच्छन्दतावादी सिद्धान्त को विण्टस ने अपेक्षाकृत अधिक यथार्थ माना है। इस सिद्धान्त के अनुसार, साहित्य मुख्यतया एक भावावेशपूर्ण अनुभव है, मनुष्य स्वभावत अच्छा है, उसके मनोवेग विश्वसनीय हैं और उसका बौद्धिक शक्ति पर विश्वास नहीं किया जा सकता। हम कह सकते हैं कि मनुष्य यदि अपने मनोवेगों पर विश्वास करे तो उसका जीवन सुन्दर बन जाय। इन सिद्धान्तों में विण्टस ने नीतिवादी (मॉरैलिस्ट) सिद्धान्त को ही स्वीकार किया है।[1]

काव्य की नैतिकता की व्याख्या करते हुए विण्टस ने लिखा है, "काव्य के द्वारा हमें कोई नयी अनुभूति प्राप्त होनी चाहिए, केवल बाह्य जगत् की ही नहीं, मानवीय अनुभवों की भी। दूसरे शब्दों में, जो कुछ हमने देखा है उसमें और कुछ जोड़ना चाहिए। पाठक के लिए यह प्राथमिक कर्तव्य है। इसके अनुरूप कवि का कर्तव्य है कि वह अपनी संवेदन शक्ति को तीव्र करे और उसे प्रशिक्षित करे।"[2] संवेदन शक्ति का अभिप्राय यहाँ प्रभावकारी इन्द्रिय से है जो संवेदना उत्पन्न करती है। यह अनुभूति रचना शिल्प द्वारा कवि की संवेदना शक्ति से बाहर निस्सृत होती है।

विण्टस ने कविता को एक प्रकार का नैतिक अनुशासन माना है, पलायन का साधन नहीं। मतलब यह है कि कविता मानवीय अनुभूति की चेतना में वृद्धि करने का एक साधन हो। दूसरों शब्दों में, ज्ञान में वृद्धि करना एवं नैतिक मनोदशा को दृढ़ करना, कविता का उद्देश्य है। विण्टस के अनुसार, "यदि काव्य अनुशासन में कोई स्थिरता और निर्देशन होना है तो इसके लिए हमारे जीवन में कर्तव्यशास्त्र के चिन्तन के कारण किसी अनुशासन का होना या अनुशासन की भावना का पैदा होना—जो किसी धर्म या सामाजिक परम्परा का परिणाम रहा हो, अथवा अध्ययन आदि के कारण किसी व्यक्ति के मन पर इस प्रकार का परिणाम हुआ हो—आवश्यक है।" यही विण्टस का नीतिवादी सिद्धान्त है जिसे मानववादियों की भाँति साहित्यिक मूल्यांकन के लिए आवश्यक माना गया है। कलाकार के नैतिक मूल्यांकन, उसकी समझ तथा उसके मनोभावों की प्रतिक्रिया के अभिलेख को यहाँ कविता कहा है। काव्यज य अनुभूति ही काव्यजन्य नैतिकता है, तथा अनुभूति और रचना कौशल अथवा उसका गठन परस्पर अभिन्न है। इस रचना कौशल के नियमों से ही काव्य जन्य नैतिकता का सचालन होता है।[3] नयी आलोचना के क्षेत्र में विण्टस का यह

१—इन डिफेंस आफ रीजन, न्यू डाइरेक्शन्स, १९४७ भूमिका पृ० ३ न

२—वही, पृ० १७

३—वही, पृ० २८-२९। र सम ने लिखा है कि विण्टस की रचनाओं में, उसके प्रत्येक निबंध में प्रत्येक पृष्ठ पर नीतिवादी सिद्धान्त दिखायी देता है, द न्यू क्रिटिसिज्म, पृ० २३४।

सिद्धान्त एवं अभिनव सिद्धान्त है। विन्टर्स की तुलना प्रायः ब्रेकिट से की जाती है, लेकिन वस्तुतः ब्रेकिट मुख्यतया भाषाशास्त्री है जब कि विन्टर्स मुख्यतया आलोचक है।

कवि के लिए दो बातें आवश्यक हैं—एक तार्किक गठन (लॉजिकल स्ट्रक्चर) और दूसरा छन्द। अपनी बात के स्पष्टीकरण के लिए विन्टर्स ने 'द ऐक्सपेरिमेंटल स्कूल इन अमेरिकन पोएट्री' तथा 'इन्फ्लूएन्स ऑफ मीटर ऑन पोएटिक कंवेन्शन' नामक दो महत्वपूर्ण निबंध लिखे हैं। प्रथम निबंध में गठनात्मक पद्धति का विश्लेषण करते हुए उसके विविध प्रकार बताये हैं। साहित्यिक रचनाओं के मौलिक सिद्धान्तों की व्याख्या के लिए यहाँ विभिन्न लेखकों के उपन्यासों और नाटकों से उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं।

पहली पद्धति पुनरावृत्ति की पद्धति (मेथड ऑफ रिपीटीशन) है। यह पद्धति अत्यन्त सरल तथा पुरातन है जिसका आजकल भी सामान्यतया उपयोग किया जाता है। यदि इसे लघु गीत्यात्मक रचना तक सीमित रखा जाय तो यह और अधिक प्रभावोत्पादक सिद्ध हो। इस पद्धति में एक ही विषय सम्बन्धी अनुक्रम से आनेवाले पदों की पुनरावृत्ति की जाती है। रचना की दूसरी पद्धति है तार्किक पद्धति (लॉजिकल मेथड)। इसमें कलाकार एक विवरण से दूसरे विवरण तक सुस्पष्टतया तार्किक रूप से आगे बढ़ता है। विण्टर्स के अनुसार, यह एक कृत्रिम पद्धति है जो यूरोप में सोलहवीं सत्रहवीं शताब्दी में प्रायः व्यापक रूप में प्रचलित थी। तीसरी विवरणात्मक (नरेटिव) पद्धति है। इसमें एक प्रकार की संगति पायी जाती है जो अधिकतर इस अनुभूति से प्राप्त होती है कि अनुक्रमिक घटनाएँ उत्पादक शृंखला की एक आवश्यक कड़ी हैं। इस बात में यह पद्धति दूसरी पद्धति से मिलती है। विण्टर्स का कथन है कि इस पद्धति में यदि नायक का क्रिया व्यापार स्वाभाविक प्रतीत होता है और ऊपर से वह रोचक भी है, तथा कर्तव्यशास्त्र की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है तो मुख्य रूप से यह विवरण सफल कहा जायगा। विवरण का अभिप्राय काम-व्यापार के उत्पादक (कॉज़ेटिव) अनुक्रम से है, तथा यह उत्पादन मुख्यतया पात्रों से उद्भूत होता है।

चौथी पद्धति कृत्रिम निर्देश (स्यूडो रेफेरेंस) नाम से कही जाती है। इसके अनेक अवान्तर भेदों का प्ररूपण किया गया है। विण्टर्स ने इसके सात प्रकारों का वर्णन किया है। अच्छी कविता की प्रत्येक पंक्ति में किसी विशिष्ट अनुभूति की अभिव्यक्ति होती है। इसमें कवि अपनी भाषा में अनुभूति की संगति का विशेष ध्यान रखता है और जहाँ तक बने तार्किक संगति को कम करता है। इस पद्धति का एक अवान्तर भेद है 'अविद्यमान प्रतीकात्मक मूल्य का अव्यक्त निर्देश (इम्प्लिसिट रेफेरेंस टू ए नान ऐक्सिस्टेंट सिम्बोलिक वैल्यू)। प्रतीक के सम्बन्ध में कहा गया है ' उसका उपयोग एक ऐसी अनुभूति को मूर्त रूप देने के लिए किया जाता है जो न तो प्रतीक के अनुकूल है और न अन्य किसी वस्तु के, जिससे कवि अभिन्न है। कवि

अपनी अनुभूति को बिना समझे उसे सर्वोत्कृष्ट रूप मे अभिव्यक्त करता है।" इस पद्धति का अंतिम अवान्तर भेद है 'शुद्धतापूर्वक निजी प्रतीकात्मक मूल्य का निर्देश' (रेफेरेंस टू प्योरली प्राइवेट सिम्बोलिक वैल्यू)। यहाँ बताया गया है कि कभी-कभी कवि अपने सीमित अध्ययन आदि के कारण अपनी अनुभूति को प्रतीकों में केंद्रित कर देता है जिसे केवल कुछ पाठक ही समझ सकते हैं। कितनी ही बार यह प्रतीक स्पष्ट रूप से समझ में नही आता।[1] इसके सिवाय और भी पद्धतियो का प्रतिपादन किया गया है।[2]

विण्टस का दूसरा निबंध है द इफलुएन्स ऑफ मीटर आन पोएटिक कम्पोजीशन' यह पाँच भागों में विभक्त है। नये आलोचको में विण्टस ही एक ऐसा आलोचक है जिसने काव्य के मूल्यांकन के लिए अत्यन्त सूक्ष्मतापूर्वक छंद के अध्ययन को आवश्यक माना है। उसके अनुसार, कविता म छन्द का प्रभाव पैदा करने के लिए पंक्ति के प्रत्येक अक्षर का मूल्कांकन आवश्यक है। छन्द के कारण ही कविता को बलपूर्वक अपना कार्य सपादन करने की गति प्राप्त होती है। छंद के कारण हमारे विचारो का परिष्कार सम्भव है तथा हमारी अनुभूति का हमारे अभिप्राय के साथ सम्बंध जुड जाता है, जिससे कविता के 'नैतिक महत्व' म वृद्धि होती है।[3]

विण्टस ने 'द अनटोमी ऑफ नॉनसेंस' में कविता सम्बंधी प्रारंभिक समस्याओं (प्रेलिमिनरी प्रोब्लम्स) पर अपने महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किये हैं। वह प्रश्न करता है कि ऐसा कौनसा आकार है जिसका अवलम्बन लेकर हम किसी अमुक लेखक की रचना को किसी अन्य लेखक का रचना से श्रेष्ठ सिद्ध कर सकें? दूसरा प्रश्न है, मान लीजिए हम किसी लेखक की कविता को दूसरे लेखक की कविता से श्रेष्ठ सिद्ध करते हैं, लेकिन क्या हमारा निर्णय ऐसा है कि उसे हम समझाने में असमर्थ हैं अथवा उसे तार्किक रूप मे प्रस्तुत किया जा सकता है? फिर प्रश्न उपस्थित होता है कि कविता के मूल्यांकन के सम्बंध में चर्चा करने के पूर्व हम यह तो समझ लें कि कविता कहते किसे हैं? कविता को शब्दो का कथन बताया गया है जिसमें अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए विशेष प्रयत्न आवश्यक है। पद्यबद्ध कवित में लय होती है जिससे गद्य की अपेक्षा उसमें भावो की अधिक सशक्त अभिव्यक्ति

१—जे० सी० रैन्सम ने अपनी 'द न्यू क्रिटिसिज्म' (पृ० २३९) पुस्तक मे इस पद्धति की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि यदि विण्टस और कुछ न भी लिखता तो भी केवल यही एक विश्लेषणात्मक पद्धति उसे एक यशस्वी आलोचक बनाने के लिए काफी थी।

२—इन डिफेंस ऑफ रीज़न, पृ० ३०–७४

३—वहीं, पृ० १०३–५०

देखने में आती है। तत्पश्चात् शब्दों विचार और अनुभूति के पारस्परिक सम्बन्ध, तार्किक अर्थ और अनुभूति का सम्बन्ध आदि प्रश्न उठाये गए हैं। मानवीय क्रिया के सम्बन्ध में कहा है कि यह क्रिया नैतिकता से संचालित होती है, तथा यदि कला नैतिक है तो कला और मानवीय क्रिया में कोई सम्बन्ध होना आवश्यक है।[१]

विण्टर्स ने 'मानवीय अनुभूति सम्बन्धी शब्दों के कथन को कविता" कहा है। "मुख्यतया शब्द विचार प्रधान (कनसेप्चुअल) होते हैं, किन्तु प्रयोग में आने के कारण तथा मानवीय अनुभूति शुद्ध रूप में विचार प्रधान नहीं होता, इसलिए शब्दों में अनुभूति का धर्म (कनोटेशन) आ जाता है। कवि इस प्रकार से अपना कथन प्रस्तुत करता है कि उसमें जितना कथन सब उनमें प्रभावोत्पादक रूप में विचार (कनसेप्ट) और धर्म (कनोटेशन) दोनों का समावेश होता है। वह कविता अच्छी कही जाती है जो मानवीय अनुभूति के सम्बन्ध में यथासमय तर्कसंगत कथन प्रस्तुत करे तथा साथ ही ऐसे मनोभावों को अभिव्यक्त करे जो उस अनुभूति के तर्कसंगत विवेक से प्रेरित हों।[२]

विलियम एम्पसन (१६०७)

एम्पसन आधुनिक युग का एक कवि होने के साथ एक महान् आलोचक भी हो गया है। अपनी कविता की दुर्बोधता के लिए वह प्रसिद्ध है। १६२५ में वह मैगडेलेन कालेज कैम्ब्रिज में गणित पढ़ने के लिए भर्ती हुआ था। उस समय रिचर्ड्स की 'प्रिंसिपल्स ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म' को प्रकाशित हुए एक ही वर्ष हुआ था। एम्पसन गणित छोड़कर रिचर्डस के समीप अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन करने लगा आगे चलकर सम्भवतः एम्पसन को रिचर्डस के कारण इतनी प्रसिद्धि नहीं मिली जितनी कि रिचर्डस को एम्पसन के कारण।[३]

सेवेन टाइप्स ऑफ एम्बिगुइटी' (सात प्रकार की अस्पष्टता) एम्पसन की पहली रचना है जिसका मसविदा केवल दो सप्ताह में तैयार किया गया था जब कि वह केवल इक्कीस वर्ष का एक अण्डरग्रेजुएट विद्यार्थी था। यह रचना

१—वही, पृ० १६१–७३

२ -वही पृ० ११–१२

३—जे० सी० रेनसम का कथन है कि रिचर्डस की यश कीर्ति सुरक्षित रहती यदि वह और कुछ न करके केवल एम्पसन का ही प्रचुर प्रशिक्षण करता। 'द न्यू क्रिटिसिज्म', पृ० १०१।

१६३० में प्रकाशित हुई और १६४७ में इसका दूसरा संशोधित संस्करण निकला।[१] राबर्ट ग्रेव्स और लौरा राइडिंग ने शेक्सपियर के सॉनेट का विश्लेषण करते हुए जो अर्थों की विविधता का प्रतिपादन किया, उसका प्रभाव इस रचना पर पड़ा। रिचर्ड्स के समीक्षा सिद्धान्तों से भी यह रचना प्रभावित है जिसके लिए इसने रिचर्ड्स के प्रति आभार प्रदर्शन किया है। लेखक ने यहाँ अंग्रेजी काव्य साहित्य के आधार पर अस्पष्टता (एम्बिगुइटी) का व्यवस्थित प्रतिपादन किया है। अस्पष्टता को यहाँ यायमंगत गठन (लॉजिकल स्ट्रक्चर) का एक काव्योचित साधन माना है। यदि अस्पष्टता यथार्थवादी एवं तीव्र रूप से मेधावी (कोनशा इण्टलिजेंट) नहीं, तो एम्पसन को वह स्वीकार्य नहीं है। अस्पष्ट रूप से कल्पित शक्तियों को कविता की पूर्णता के लिए आवश्यक बताया गया है।

इस सम्बन्ध में एम्पसन लिखता है, 'एक शब्द के अलग अलग बहुत से अर्थ होते हैं, ये सब अर्थ परस्पर सम्बद्ध रहते हैं। इन अर्थों को अपना अर्थ पूरा करने के लिए एक दूसरे की आवश्यकता होती है, अथवा ये अर्थ एक दूसरे से संयुक्त हो जाते हैं जिससे कि एक शब्द का अर्थ होता है एक सम्बन्ध अथवा एक कार्यपद्धति। यह एक ऐसा मापदण्ड है जिसका सतत अनुकरण किया जा सकता है। 'अस्पष्टता' का अर्थ है, जो हम कहना चाहते हैं, उसके सम्बन्ध में अनिश्चय, एक ऐसा अभिप्राय जिसके अनेक अर्थ होते हों, एक ऐसी सम्भावना जिसके एक, दो अथवा दोनों ही अर्थ निकलते हों, और एक ऐसा कथन जिसके अनेक अर्थ हों।'[२]

"अस्पष्टता की चर्चा करने से उसके सम्बन्ध में बहुत कुछ स्पष्ट हो जाता है। विशेषकर, यदि कहीं परस्पर विरोध है तो उसमें तनाव अवश्य होना चाहिए, जितना ही अधिक विरोध होगा उतना ही अधिक तनाव होगा। इस विरोध के सिवाय किसी अन्य प्रकार से तनाव का सम्पादन करना चाहिए और उसे सुरक्षित रखना चाहिए।"[३]

अस्पष्टता सात प्रकार की होती है (१) जब कोई वस्तु दूसरी वस्तु के सदृश होती है, तथा अपनी सामर्थ्य से उसमें एक नहीं, किन्तु एक से अधिक सादृश्य होते हैं। (२) एक वचन शैली में दो अथवा दो से अधिक अर्थ रहते हैं, किन्तु वे एक ही *याममगत (लाजिकल) निर्देशन ग्रहण* करते हैं। (३) एक वचन-शैली में एक साथ दो अर्थ निकलते हैं, तथा एक में तार्किक संगति रहती है (इसमें

१—यह संस्करण पूर्ण रूप से संशोधित और परिवर्धित होकर भूमिका और पाद टिप्पणियों के साथ प्रकाशित हुआ है। रैन्सम ने उसकी सराहना की है।

२—स्टनले एडगर हाईमैन, द आर्म्ड विजन, न्यूयार्क, १६६१, पृ० २३८।

३—वही, पृ० २३६।

श्लेष को गिन सकते हैं) । (४) वचन शैली में दो अथवा दो से अधिक अर्थ होते हैं जो भली भांति एक दूसरे से नहीं मिलते । (५) रचना के किसी अंश के बीच में ही कवि अर्थ को निश्चय करता है जिससे कि उस अंश के आरंभ और अन्त की एक दूसरे से संगति नहीं बैठती । (६) कोई तार्किक पाठक किसी वचन शैली के परस्पर विरोधी कथनों में व्याख्या करने के लिए बाध्य होता है, यद्यपि कवि उन्हें बनाता नहीं । (७) एक वचन शैली में दो अर्थ होते हैं जो स्पष्ट रूप में परस्पर विरोधी होते हैं ।[१]

अस्पष्टता का जो उपर्युक्त वर्गीकरण किया गया है वह देखा जाय तो निर्दोष नहीं है । इसमें एक की परिभाषा दूसरे में समाविष्ट हो जाती है । इस बात को स्वयं एम्पसन ने स्वीकार किया है । दरअसल कतिपय कविताओं का सूक्ष्म विश्लेषण करते समय एम्पसन ने यह वर्गीकरण तैयार किया था जिससे कि पाठक भाषा के वैविध्य से परिचित हो सके । एम्पसन ने लिखा है, "कुछ अस्पष्टताएं ऐसी हैं जिन्हें एक बार समझ लेने पर वे मस्तिष्क में बोधगम्य इकाई बन कर रह जाती हैं, कुछ ऐसी हैं जिनमें कार्य करने की प्रक्रिया और समझने में आनन्द आता है, जिन्हें हर बार पढ़ते समय, कम परिश्रम से, दुहराना चाहिए, कुछ ऐसी होती हैं जो अज्ञात रहने पर अपने उत्कृष्ट रूप में रहती हैं । कौन सी कविता किस वर्गीकरण में अन्तभूत होती है, यह तुम्हारे अभ्यास और आलोचनात्मक मत के ऊपर निर्भर है ।[२] इससे,यहां जान पड़ता है कि यहाँ कविता की अपेक्षा पाठक की मनोवृत्ति का ही वर्गीकरण अपेक्षित है । दूसरे प्रकार की अस्पष्टता के सम्बन्ध में कहा गया है कि उसमें कार्य करने की प्रक्रिया और समझने में आनन्द आता है, जिसे हर बार पढ़ते समय, कम परिश्रम से, दुहराना चाहिए', लेकिन देखा जाय तो यह केवल पहले वर्गीकरण का ठीक तरह से न समझा हुआ रूप है । मतलब यह कि यदि किसी कविता को समझने के लिए, उसे फिर फिर से पढ़ने पर, श्रम कम होता जाता है तो एक समय ऐसा भी आ सकता है कि श्रम बिल्कुल ही न करना पड़े । तीसरे वर्गीकरण में तो पाठक से आशा की जा रही है कि वह इस बात से अनभिज्ञ रहे कि कोई अस्पष्टता उसके सम्मुख है, क्योंकि यहाँ कहा है "अज्ञात रहने पर वह अपने उत्कृष्ट रूप में रहती है ।" वास्तव में यह वर्गीकरण कविता का वर्गीकरण ही प्रतीत नहीं होता इसे वाचन की ही तीन श्रेणियां समझनी चाहिए ।[३]

१—द न्यू क्रिटिसिज्म, पृ० ११९-२० ।

२—सेवन टाइप्स ऑफ ऐम्बिगुइटी (१९४७), पृ० ५७, लिटरेरी क्रिटिसिज्म ए शार्ट हिस्ट्री, पृ० ६३८-३९ पर से ।

३—लिटरेरी क्रिटिसिज्म, पृ० ६३९

अस्पष्टता के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए एम्पसन ने कहा है, "यह मूल्यवान है यदि इसमें जटिलता, कोमलता, तथा विचारों का सकोचन बना रहता है, अथवा इसमे एक सुविधावाद (ऑपाचुनिज्म) रहता ह जो उस बात का शीघ्रतापूर्वक कथन करने के लिए तत्पर हैं जिसे पाठक पहले ही समझता ह।" ऐसी अस्पष्टता का एम्पसन मान्य नही करता जो "विचारों की क्षीणता अथवा कमजोरी क कारण" पैदा होती है, जो बिना आवश्यकता के हाथ म आई सामग्री को दुर्बोध' बनाती है, अथवा पाठक के मन पर "असगति का सामान्य प्रभाव' डालती ह।[1]

'सम वर्ज स ऑफ पैस्टोरल' (गोपकाव्य के कतिपय विवरण, लदन १६३५)[2] एम्पसन की दूसरी रचना है। यहाँ शब्दों के अर्थ वैविध्य के स्थान पर, रचना के समग्र अर्थ के प्रतिपादन पर जोर दिया गया है। एम्पसन के अनुसार "पेस्टोरल" वह है 'जब सीधे सादे लोग पांडित्यपूर्ण लोकप्रिय भाषा मे अपनी तीव्र अनुभूतियों को अभिव्यक्त करते हैं," अथवा 'सरलता की प्रशसा', अथवा 'जटिल का सरल बनाकर प्रस्तुत करने" को पेस्टोरल कहा गया है। इसके विरोधाभास के सम्बन्ध मे उसने लिखा है, 'परिष्कृत वस्तु का निर्णय तात्विक वस्तु स किया जाना चाहिए, शक्ति की शिक्षा निर्बलता में होनी चाहिए तथा सामाजिकता की निजनता में शिष्ट व्यवहार सरल जीवन मे ही सीखा जा सकता है। इसका तात्पर्य हुआ कि गोपकाव्य मेषपालो सबधी काव्य न होकर एक ऐसा काव्य है जो मेषपालों के सम्बन्ध में प्राचीन गोपकाव्य जैसा कार्य करना है।[3] मार्क्स और फ्रायड के विचारों से यह रचना प्रभावित है। समाज का वर्ग विश्लेषण करते हुए एम्पसन ने 'सर्वहारावर्ग' के पद को आदर्श पद बताया है। व्यापक अर्थ में सर्वहारा वर्ग क साहित्य मे ऐसे लोकसाहित्य का समावेश होता है जो साहित्य जनता द्वारा, जनता के लिए और जनता के सम्बन्ध में हो।[4] साहित्य को एक सामाजिक प्रक्रिया कहा गया है, इसमें व्यक्ति के अन्तर्विरोधों के समन्वय का प्रयत्न रहता है और इस व्यक्ति मे समाज के अन्तर्विरोध प्रतिबिंबित होते हैं।[5] यहाँ भा चमत्कारपूर्ण सात की सख्या के प्रयोग द्वारा पुस्तक को 'प्रोलेटेरियन लिटरेचर', 'डबल प्लाटस' मार्वेल्स गार्डन', 'मिल्टन एण्ड बेंटल' आदि सात भागो मे विभक्त किया गया है, जिन्हें गोपकाव्य के ही सात रूप समझना चाहिए। यहाँ मार्क्सवाद और आलोचना दोनो का मिश्रण किया गया है और मार्क्सवाद क आधार से शेक्सपियर के सानेट की समीक्षा की गयी है।

१—वही
२—अमरीका मे इग्लिश पैस्टोरल पोएट्री' नाम से १६३८ मे पुन प्रकाशित।
३—द ग्रान्ड विज़न पृ० २४७ ४८
४—सम वर्ज न्स ऑफ पैस्टोरल, पृ० ६
५—वही, पृ० १६

प्रभाव का प्रमाण पुस्तक के अंतिम अध्याय में देखा जा सकता है।[1] दोनों ही रचनाओं में आई० ए० रिचर्ड्स के उद्धरण दिये गये हैं और वे रिचर्ड्स की 'द मीनिंग ऑफ मीनिंग' से प्रभावित हैं।

'द स्ट्रक्चर ऑफ कॉम्प्लेक्स वर्ड्स' (जनवरी, १९५१) एम्पसन की तीसरी रचना है जो समय समय पर प्रकाशित उसके संशोधित लेखों का संग्रह है। यहाँ शाब्दिक विश्लेषण का और अधिक कठोरता के साथ प्रतिपादन किया गया है। मुख्य मुख्य शब्दों को अर्थाबद्ध कर उनका परीक्षण किया गया है। यहाँ भी रिचर्ड्स को ही अपने विचारों का स्रोत बताया है, यद्यपि पुस्तक के आरम्भ में रिचर्ड्स द्वारा प्रतिपादित काव्य भाषा के 'सरस आवेगपूर्ण सिद्धान्त' पर आक्रमण किया गया है।

इसमें सन्देह नहीं कि आधुनिक आलोचना में शाब्दिक विश्लेषण की कला को सुव्यवस्थित रूप देने में एम्पसन का बड़ा हाथ है। शाब्दिक 'अस्पष्टता' को उसने काव्यात्मक तथ्य (पोएटिक फैक्ट) का गुण बताया है क्योंकि कविता द्वारा जो कथन प्रस्तुत किया जाता है, उससे अधिक अर्थ को इंगित करने में ही काव्य में काव्यत्व की परख हो सकती है, अन्यथा काव्य और पद्य में कोई भेद ही न रह जाय।[2]

मॉरिस चार्ल्स (१८९३–१९१८)

मारिस चाल्स को रैनसम ने तत्वविद्या का आलोचक (आएटोलोजिकल क्रिटिक) कहा है। उसने शिकागो में १९३८ में प्रकाशित 'इनसाइक्लोपीडिया ऑफ यूनिफाइड साइंस', जिल्द १, भाग २) में 'फाउण्डेशन्स ऑफ द थ्योरी ऑफ साइंस' नामक एक महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित किया। इसमें उसने शब्दार्थविज्ञान (सीमैंटिक्स) का कला से सम्बन्ध स्थापित करते हुए वस्तु के चिह्न (साइन) के साथ उसका सम्बन्ध बैठाया। मॉरिस चाल्स ने इस सम्बन्ध में दो निबन्ध लिखे हैं—एक साइंस, आर्ट एण्ड टक्नोलोजी (द केनयोन रिव्यू ऑफ ऑटम १९३९ में प्रकाशित) और दूसरा 'ऐस्थटिक्स एण्ड द थ्योरी ऑफ साइंस' (द जरनल ऑफ यूनिफाइड साइंस, जिल्द आठ में प्रकाशित)।

शब्दार्थ विज्ञानवेत्ता की हैसियत से मॉरिस चाल्स की मान्यता है कि प्रत्येक उक्ति में कोई चिह्न अवश्य रहता है, तथा प्रत्येक चिह्न में तीन आयाम (डाइमेंशन) होते हैं। पहला आयाम पदान्वय घटित (सिंटक्टिकल) कहलाता है, इसमें उसका

१—द लिटरेरी क्रिटिक्स, पृ० २०४–५
२—वही, पृ० २०५–७

सारा तर्क (लॉजिक) आ जाता है। भाषा-वैज्ञानिक चिह्नों के पारस्परिक सम्बन्ध के साथ इसका सम्बन्ध रहता है। दूसरा शब्दार्थविज्ञान सबंधी आयाम है जिसमें किसी वस्तु के चिह्न अन्तर्भूत हो जाते हैं। यह भाषा वैज्ञानिक चिह्नों के सामान्य अध्ययन का ही एक उपभेद है। तीसरा व्यावहारिक आयाम है। इसका सम्बन्ध उक्त चिह्नों के व्यावहारिक प्रभावों से है। मारिस चार्ल्स के अनुसार, विज्ञान कला और शिल्पकला क्रमश शब्दार्थविज्ञान आयाम पदार्थ घटित आयाम तथा व्यावहारिक आयाम पर जोर देते हैं।

सौंदर्यमय चिह्नों को मूर्ति (आकॉन्स) अथवा बिम्ब बताया गया है। मूर्ति अर्थात् कुछ विशेष (परटिक्यूलर), जिसकी परिभाषा नहीं की जा सकती। चिह्न के रूप में उनमें शब्दार्थविज्ञान सम्बन्धी वस्तुएँ रहती हैं, अथवा वे वस्तुओं का निर्देश करते हैं, लेकिन मूर्ति सम्बन्धी चिह्न होने के कारण वे इन वस्तुओं के समान होते हैं अथवा इनका अनुकरण करते हैं। जब हम किसी वैज्ञानिक चिह्न की सहायता से किसी वस्तु का प्रतीक स्थापित करते हैं तो वह गूढ़ (ऐब्स्ट्रैक्ट) प्रतीत होगा। वैज्ञानिक चिह्न और मूर्ति सम्बन्धी चिह्नों में अंतर बताते हुए कहा गया है कि वैज्ञानिक चिह्न 'मनुष्य' का और मूर्ति सम्बन्धी चिह्न 'किसी विशेष मनुष्य' का होता है। रूढ़ि के अनुसार, वैज्ञानिक उक्ति के मनुष्य की परिभाषा की जा सकती हैं, वह 'आवश्यक' मनुष्य है। इसकी परिभाषा में ऐसे मूल्यों का एक समूह रहता है, जो तार्किक कथन के लिए स्थायी और निर्धारित करने योग्य (निगोशिएबल) है। मूर्ति सम्बन्धी चिह्न युक्त मनुष्य का अनुकरण किया जा सकता है उसकी कल्पना की जा सकती है—परिभाषा उसकी नहीं की जा सकती है।[1]

रिचर्ड्स ने 'द मीनिंग ऑफ मीनिंग' नामक पुस्तक में 'प्रतीकवादी विज्ञान' का उल्लेख किया है। उसका कहना है कि मनोविज्ञान की सहायता से ही इस विज्ञान का विकास संभव हो सका है। 'शब्दशक्ति (पावर ऑफ वर्ड्स) के बल प्रयोग द्वारा जो हमारे विचारों में त्रुटियाँ और विकृतियाँ पैदा हो गयी हैं उन्हें परिष्कृत करना, इस विज्ञान का उद्देश्य है। अपनी 'प्रिंसिपल्स ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म' में रिचर्ड्स ने शब्दों की सुनिश्चित शक्ति का प्रतिपादन किया है।[2]

रिचर्ड्स की प्रारंभिक रचनाओं में भी शब्दार्थज्ञान का विश्लेषण मिलता है जहाँ कि उसने शाब्दिक जटिलताओं का सूक्ष्म और विस्तृत परीक्षण किया है। कविता का विश्लेषण करते हुए रिचर्ड्स ने लिखा है, "अधिकांश विचार उन चीजों के रहते हैं जो हमारे मस्तिष्क में मौजूद नहीं और न वे कोई प्रत्यक्ष प्रभाव ही

१—जे० सी० रेन्सम, द न्यू क्रिटिसिज्म पृ० २८१–८५ के आधार से।
२—लिटरेरी क्रिटिसिज्म ए शॉर्ट हिस्ट्री, पृ० ६३५–३६।

मस्तिष्क म पदा करती हैं। यह बात तब होती है जब हम कोई चीज पढ़ते हैं। कागज पर लिखे शब्द ही हमारे मस्तिष्क पर प्रत्यक्ष प्रभाव पदा करते हैं, लेकिन जो विचार उत्पन्न होते हैं, वे शब्दों के विचार नही, वरन् उन बातों के विचार हैं जिनके लिए शब्दों का उपयोग किया जाता है।" हम शब्दों का उपयोग करना कैसे सीखते हैं, यहाँ इस प्रक्रिया का विश्लेषण किया गया है। शुरू में कितना ही बार किसी वस्तु से सबधित शब्द हम सुनते हैं। बाद में उस वस्तु के मौजूद न होने पर भी वह शब्द सुनायी देता है। शनै शनै अमुक वस्तु के मौजूद न रहने पर भी हमें शब्द सुनकर ऐसा लगने लगता है कि वह वस्तु वास्तव में यहाँ मौजूद है। इसी शब्द को यहाँ उस वस्तु का चिह्न कहा गया है।[1] आगे चलकर रिचड्स के शिष्य एम्पसन ने इस विषय को लेकर शब्दार्थविज्ञान का विश्लेषण किया तथा रिचड्स द्वारा उठाये हुए अनेक प्रश्नों की मीमांसा की।

केनेथ बर्क (१८९७)

बर्क अमरीका का एक सुप्रसिद्ध आलोचक हो गया है जिसे एम्पसन की आलोचना का विशेषज्ञ कहा जाता है। एम्पसन यद्यपि बर्क की रचनाओं से प्रभावित जान पड़ता है किन्तु इस बात को उसने कही स्वीकार नही किया। इसके विपरीत, बर्क ने रिचड्स की 'प्रिंसिपल्स ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म' के साथ एम्पसन की 'सम वर्जन्स ऑफ पैस्टोरल' का उल्लेख करते हुए इन रचनाओं को सामयिक अंग्रेजी साहित्यिक समीक्षा के क्षेत्र में *अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बताया* है। बर्क ने एम्पसन की इस कृति की प्रशंसात्मक समीक्षाएँ भी प्रकाशित की हैं।[2]

बर्क की मान्यता है, "यदि कोई पुस्तक एक वाक्य का अनिश्चित विस्तार है तो समीक्षा पद्धति केवल उस वाक्य को लेखबद्ध करने की सामग्री का सुरक्षित करना है।" वस्तुत बर्क की प्रत्येक रचना में अनेक वाक्य-अनेक पद्धतियाँ-बतायी गयी हैं लेकिन यदि इन्हें एक वाक्य में कहा जाय तो कह सकते हैं—'साहित्य सांकेतिक प्रक्रिया है'।[3]

'काउण्टर स्टेटमैंट' (कथन के विपरीत) बर्क की समीक्षा सम्बन्धी प्रथम रचना है जो १९३१ में प्रकाशित हुई थी। यहा समीक्षा स्थापित किये हुए सिद्धान्त और समीक्षा पद्धति का ही आगे की रचनाओं म विकास हुआ। इस पुस्तक में

१— प्रिंसिपल्स आफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म, पृ० १२७

२—द आर्म्ड विजन, पृ० २६६ ६७

३—वही, पृ० ३२७

साहित्यिक प्रश्नों को लेकर लिखे हुए बक के निबन्धों का सग्रह है। यहाँ अलकार-शास्त्र को व्याकरण से पृथक सिद्ध किया गया है, सांकेतिक प्रक्रिया के सिद्धांतका उल्लेख यहाँ नहीं। बक ने "कला को कोई अनुभव स्वीकार न कर अनुभव के साथ सयुक्त की जानेवाली वस्तु' माना है जिसका साकेतिक प्रक्रिया की कल्पना से मेल नहीं खाता।[1]

बक की दूसरी रचना 'परमानेंस ऍण्ड चेंज ऐन एनेटोमी ऑफ परपज' (नित्यता और परिवतन उद्देश्य की चीरफाड) १६३५ मे प्रकाशित हुई। साहित्य के सम्बन्ध मे यहाँ कुछ नही कहा गया है। यह तीन भागो म विभक्त है-पहला भाग, 'व्याख्या सम्बन्धी है ('आन इटरप्रेटेशन') जिसमे कला की अपेक्षा जीवन की 'समीक्षा की गयी है, दूसरा है असगति द्वारा चित्रण (पसपेक्टिव बाइ इनकौनग्रुइटी), जिसमें कौशल (स्ट्रेटेजीज) के लाक्षणिक स्वभाव और अथ पद्धति की खोज की गया है, तीसरा है सरलीकरण का आधार (द बेसिस ऑफ सिम्लीफिकेशन)। "समस्त जीवित वस्तुओं को आलोचक" और "समस्त मनुष्यों को कवि" कहकर सामाजिक समस्याओं को यहाँ काव्यात्मक और समीक्षात्मक कला-कौशल के रूप में प्रस्तुत किया गया है। 'असगति द्वारा चित्रण' नामक विभाग मे साकेतिक प्रक्रिया का प्रतिपादन है। यही पुस्तक का मुख्य विषय है। सांकेतिक प्रक्रिया के सम्बन्ध मे बक लिखता है, "एक बार किसी नियत अथ के निश्चयपूवक स्थापित हो जाने पर कला मे हमें एक दूसरे प्रकार का प्रतिगामित्व (रिग्रैशन) दिखाई देता है। कलाकार अचानक ही अपनी युवावस्था की स्मति का निरीक्षण करने के लिए प्रेरित होता है, क्योंकि ये स्मृतियाँ तुरत ही विलक्षणता तथा घनिष्ठता की विशेषताओं के साथ सयुक्त हो जाती है। समवत प्रत्येक व्यक्ति में पुनजन्म का घटना चक्र पाया जाता है—एक नया दृष्टिकोण-जिससे कि जो कुछ उसे विस्मृत हो गया है वह अचानक ही उपयोगी अथवा सुसगत हो जाता है और इसलिए उसकी स्मति में पुन स्पष्ट हो उठता है।"[2] यहाँ पुनजन्म और 'चित्रण द्वारा असगति' को पर्यायवाची माना गया है।

बक की तीसरी कृति है 'ऐटीट्यूड टुवडस हिस्ट्री' (इतिहास के प्रति मनोवृत्ति-१६३७) जो साकेतिक प्रक्रिया की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पुस्तक है। लेकिन इतिहास की जगह साहित्य की ही चर्चा करते हुए यहाँ साहित्यिक मनोवृत्ति को साकेतिक प्रक्रिया के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। मनोवृत्तियाँ दो प्रकार की होती हैं—एक, 'स्वीकृति', दूसरी 'अस्वीकृति'। इन दोनों को मिलाकर स्वीकृति-

---

१—वही पृ० ३२७ २८

२—वही पृ० ३२६-३१

परम्पराकृति' नाम की तीसरी मनोवृत्ति पैदा होती है जिसे 'हास्यजनक' (कॉमिक) मनोवृत्ति कहा है। पहली मनोवृत्ति में महाकाव्य, ट्रैजेडी, कॉमेडी और गीतिकाव्य तथा दूसरी में शोकगीतिका, व्यंग्य, प्रहसन और प्रारूप (प्रोटेस्ट) नाम की साहित्यिक विधाएं अन्तर्भूत होती हैं। इन मनोवृत्तियों द्वारा 'सांकेतिक प्रक्रिया' पर ही जोर दिया गया है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है "जिसे कोई व्यक्ति इसलिए करता है कि उसे ठीक उसी तरह करने में उसकी रुचि है जिस तरह कि वह उसे करता है।" ये प्रक्रियायें उपक्रमण (इनिशिएशन), प्रतिविम्बितता का परिवर्तन, पुनर्जन्म, शुद्धता तथा अन्य सम्बद्ध जादुई (मैजिकल) धर्म-क्रियाओं में केंद्रित रहती हैं।[1]

बर्क की चौथी महत्वपूर्ण कृति है 'द फिलासफी ऑफ लिटरेरी फॉर्म स्टडीज ऑफ सिम्बोलिक एक्शन' (साहित्यिक रूप का दर्शन प्रतीकात्मक प्रक्रिया का अध्ययन-१९४१)। इसमें अनेक निबन्धों और समीक्षाओं का संग्रह है जो समय समय पर लिखे गये थे। इनमें 'भाषा वैज्ञानिक सांकेतिक अथवा साहित्यिक प्रक्रिया के स्वरूप की मीमांसा है तथा इन प्रक्रियाओं की सीमा निर्धारित करने अथवा उनकी परिभाषा करने के सही तरीकों की खोज' पायी जाती है। बर्क का उद्देश्य है 'किसी विशिष्ट साहित्यिक प्रक्रिया के तत्व का सामान्यतया साहित्यिक प्रक्रिया के सिद्धान्त के साथ तादात्म्य स्थापित करना।' सांकेतिक प्रक्रिया को बर्क ने "मनोवृत्ति का नर्तन" कहा है जो 'वास्तविक' प्रक्रिया से भिन्न है। सांकेतिक प्रक्रिया के तीन स्तर हैं—शारीरिक अथवा जीववैज्ञानिक, व्यक्तिगत अथवा पारिवारिक और गूढ़।[2]

'ग्रामर ऑफ मोटिव्स' (अभिप्राय का व्याकरण-१९४५) बर्क की बाद में लिखी रचना है। यहाँ मानवीय अभिप्रायों तथा उनके इर्दगिर्द निर्माण किये हुए विचार और अभिव्यक्ति के रूपों का व्यापक अध्ययन किया गया है।[3] भाषा और ग्रंथ के प्रतीकात्मक रूप की यहाँ गंभीर रूप से जाँच की गयी है। बर्क की मान्यता है, "भाषा की जानकारी अथवा ज्ञान का साधन मानने के लिए हमें उसका ज्ञान शास्त्र (एपिस्टीमॉलोजी) और शब्दविज्ञान की दृष्टि से, 'विज्ञान' के रूप में विचार करना चाहिए। इसे क्रिया व्यापार की पद्धति (मोड ऑफ एक्शन) मानने के लिए 'कविता' के रूप में इसका विचार करना होगा। कारण कि कविता क्रिया व्यापार है—कवि का प्रतीकात्मक क्रिया व्यापार, जिसने कि इसे जन्म दिया है—इस प्रकार का क्रिया व्यापार जो गठन अथवा वस्तु के रूप में जीवित

१—वही, पृ० ३३९-४०

२—वही पृ० ३३१-३

३—द ग्रान्ड विजन, पृ० ३३५

रहकर, एक पाठक की हैसियत से हमें इसे पुन व्यवस्थित (रीएनेक्ट) करने के योग्य बनाता है।[१]

यहाँ मानवीय कोई भी कथन जिसका उद्देश्य अपने प्रसंग की पूर्णता है, पाँच तत्त्वों में विभाजित है। ये तत्त्व हैं—क्या किया गया (क्रिया), कब और कहाँ किया गया (घटना स्थल), किसने किया (कर्त्ता), कैसे किया (कर्तृत्व) और क्यों किया (उद्देश्य)। बर्क लिखता है, "उनके रूपान्तरण की सम्भावनाओं तथा उनके प्रस्तार और सहृति (परमूटेशन ऐण्ड कम्बिनेशन) की सीमा का विचार करते हुए हम इन पाँचों के पारस्परिक विशुद्ध आंतरिक सम्बन्ध की जाँच करना चाहते हैं और तत्पश्चात् देखना चाहते हैं कि मानवीय अभिप्रायों संबंधी, वास्तविक कथनों में ये विविध साधन किस प्रकार अंकित होते हैं।" इसे अलंकारिकता का मनोविज्ञान (साइकोलोजी आफ रेटोरिक) कह सकते हैं जिसका साहित्यिक रूप से विश्लेषण के लिए उपयोग किया गया है।[२]

"जैसे किसी काय विशेष की निजी धार्मिक विधियों (रिचुएल) में कोई सांकेतिक प्रक्रिया विद्यमान रहती है, वही बात काव्यात्मक रूपों के सम्बन्ध में कही जा सकती है। उदाहरण के लिए, ट्रेजेडी प्रायश्चित्त की नियमनिष्ठ धर्म विधि (फार्मेलाइज्ड रिचुअल ऑफ ऐक्सपिएशन) है, हास्य परिस्थिति के बोझ को हल्का करने की धर्म विधि है, व्यंग्य अपने दोषों को 'उद्घाटित' कर किसी को बलि का बकरा बनाकर उनका वध करने की धर्म-क्रिया है।" इसी प्रकार "अपने विषय का चुनाव करते समय लेखक की अभिव्यक्ति सांकेतिक रहती है (जैसे नेपोलियन के जीवन चरित का कोई लेखक अपने ही नेपोलियनवाद का वर्णन करता है)। वह दूसरे लेखकों के जिन उद्धरणों को प्रस्तुत करता है, अथवा उनका खंडन करता है, उनके प्रति उसकी गहरी सहानुभूति रहती है। लेखक उन्हीं बातों को लिखता है "जो उसे सुरक्षित रखने के लिए आवश्यक हैं।"[३]

सृजनात्मक साहित्य के क्षेत्र में बर्क ने उपन्यास और कहानियाँ भी लिखी हैं। इन रचनाओं में अस्पष्टता, गूढ़ता और दुर्बोधता देखने में आती है, ये एक विशेष शैली में लिखी गयी हैं जो लेखक के वाक्पटुत्व को अभिव्यक्त करती हैं।

कविता और समीक्षा के माध्यम से अभिव्यक्त किये हुए बर्क के सामाजिक विचारों में भी जटिलता और दुर्बोधता के दर्शन होते हैं। कला-कौशल (टेक्नोलोजी), 'कार्यक्षमता' उत्पन्न करने वाली यांत्रिक सभ्यता तथा 'जीवन के उच्च

१—डेविड डेचीज, क्रिटिकल अप्रोचेज टू लिटरेचर, पृ० ३१३

२—वही, पृ० ३१३-१४

३—द ग्रान्ड ग्विज़न, पृ० ३४३

स्तर'[1] आदि बातें बक को पसंद नही थीं। इन सबमें उसे 'नकारात्मकता', 'विरोध', और 'हस्तक्षेप' ही प्रतीत हुआ है। उसे लगा कि कला-कौशल की 'उपयुक्तता' सपादन करने के लिए लोगों को 'विलक्षण कष्ट' का सामना करना पड़ता है। अत, कला-कौशल और औद्योगीकरण का विरोध करने के मूल में वस्तुत पूंजीवादी व्यवस्था का विरोध करना ही बक का मुख्य उद्देश्य था।[2]

बक के कविता और समीक्षा सम्बन्धी विचार उसके जीवन सम्बन्धी विचारों के साथ सम्बद्ध हैं। 'जीववैज्ञानिक अनुकूलता' (बायोलॉजिकल अडप्टेशन) अर्थात् 'उत्तम जीवन' (गुड लाइफ) को ही उसने कला माना है। उसने "सभी जीवित वस्तुओं को आलोचक" स्वीकार किया है।[3] कविता हमारे जीवन के केंद्रीय मूल्य के अत्यन्त निकट है। कविता को यहाँ 'जीवन का साज सामान' कहकर उसे 'विश्रांतिदायक', 'सरक्षक' और हमे 'शस्त्रो से सज्जित करनेवाली' बताया है। बक ने काव्य की सवेदनशीलता को—जिस ब्लकमूर ने 'सांकेतिक कल्पना' का नाम दिया है—आलोचना की मौलिक विशेषता स्वीकार किया है। व्यग्य तथा हास परिहास कविता के लिए आवश्यक है। बक के अनुसार उत्तम जीवन केवल उत्तम ही नही होता वह हास्यजनक व्यग्यात्मक और विलक्षण भी होता है।[4]

कुछ लोगों ने बक की रचनाओं पर दुर्बोध होने का आरोप लगाया है। इसका उत्तर देते हुए उसने लिखा है, "उत्कृष्टता के अनेक रूप होते हैं (जैसे जटिलता, सूक्ष्मता, दूरान्वयी गवेषणा और शैली की कठोरता) जो अवश्य ही उच्चतर गणित की किसी पुस्तक की भाँति पुस्तक के प्रचार को सीमित कर देते हैं।' वस्तुत बक के लेखो की गूढ़ता उसके विचारों और उसकी शब्दावली में निहित है।

१—१९४७ के आसपास उसने 'विसबर टचस्टोन' मे द अमेरिकन वे' नाम का एक लेख लिखा था जिसमे उसने जीवन के उच्च स्तर' के सामान्य सिद्धान्त से उत्पन्न अमरीकी सस्कृति का वर्णन किया है। वही, पृ० ३७८, फुटनोट।

२—वही, पृ० ७७–७९

३—यहाँ पानी की मछली का उदाहरण दिया गया है जो उसके जबाडे काटे जाने पर एक आलोचक के रूप में अपनी खुराक और पकडने के जाल के अन्तर को समझने लगती है। वही पृ० ३८०

४—वही, पृ० ३८०–८१। विनोद (ह्यूमर) एक ऐसा 'मानवीकरण' है जो "हमे हमारी दुविधा को स्वीकार करने योग्य" बनाता है। व्यग्य एक प्रकार की 'नम्रता' है जो शत्रु के साथ मौलिक सम्बन्ध के ज्ञान से उद्भूत होती है। हास्य (कॉमिक) एक 'परोपकारी (चरिटेबल) प्रवृत्ति है जिसमे स्वीकृति-अस्वीकृति और देने लेने का भाव रहता है।

बर्क का घोर आलोचक होते हुए भी रैंसम ने उसके गद्य को 'साहित्यिक वैशिष्ट्य' से युक्त बताया है।[1]

रिचर्ड्स की भाँति बर्क के समीक्षा सिद्धान्तों ने अमरीका के समीक्षकों को विशेष रूप से प्रभावित किया। विण्टर्स ने तो अपनी 'प्रिमिटिविज्म एँण्ड डिकेडेंस' नामक रचना में प्रत्यक्ष रूप में उसका ऋण स्वीकार किया है। इसी प्रकार रैन्सम, टेट, ब्रुक्स, वारेन आदि आलोचक भी बर्क से प्रभावित हुए बिना न रहे। बर्क ने भी इन आलोचकों की प्रशंसा कर इनके सिद्धान्तों पर मान्यता की मोहर लगा दी। लेकिन बर्क को एक ओर ड्यूई नित्शे, बर्गसां और इलियट की श्रेणी में रखकर आधुनिक युग का एक प्रमुख विचारक माना गया तो दूसरी ओर उसे 'साधारण सी प्रतिभा का एक निर्बल व्यक्ति' कहकर उसके सिद्धान्तों की अवगणना की गयी।

आर० पी० ब्लैकमूर (१९०४)

टी० एस० इलियट की भाँति ब्लैकमूर ने भी अभी तक समीक्षा पर कोई स्वतन्त्र पुस्तक नहीं लिखी। उसके लेख और समाक्षात्मक निबन्ध ही पुस्तकों के रूप में प्रकाशित हुए हैं। 'द डबल एजेंट (दुगुना कर्तृत्व–१९३५) में उसके बारह तथा 'एक्सपेंस ऑफ ग्रेटनेस' (महत्ता का विस्तार–१९४०) में तेरह निबन्धों का संग्रह है। ब्लैकमूर की कविताओं के कतिपय संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं।

ब्लैकमूर ने किसी कालेज में शिक्षा नहीं पाई, फिर भी स्थापत्य कला, शिल्प कला चित्रविद्या, नृत्य, अभिनय और संगीत का अध्ययन उसने किया जिसका उपयोग उसकी समीक्षा में किया गया है। 'लैंग्वेज ऐज़ जैश्चर' (भंगिमा के रूप में–भाषा–१९५२) नामक उसकी रचना में इन विषयों की विस्तृत चर्चा देखने में आती है। ग्रीक, लैटिन, इटालियन और फ्रेंच भाषाओं का भी वह अच्छा ज्ञाता है।

ब्लैकमूर शब्दों को बहुत महत्त्व देता है। शब्दों के कोश को उसने 'उछल-कूद के अन्वेषण का प्रासाद' (पैलेस ऑफ साल्टेटरी ह्यूरिस्टिक्स) कहा है। 'द डबल एजेंट' में ब्लैकमूर ने लिखा है कि एजरा पाउण्ड के अध्ययन के लिए इतिहास, इलियट के अध्ययन के लिए धर्मविज्ञान (थियोलाजी) और वैलेस स्टीवेंस को समझने के लिए शब्दकोश की आवश्यकता है। 'द ऐक्सपेंस ऑफ ग्रेटनैस' में वह लिखता है, "शब्द और उनका आन्तरिक आयोजन लिखित अथवा बोलचाल की कलाओं में प्रत्येक प्रभाव का अन्तिम एवं तात्कालिक स्रोत होना चाहिए। शब्द जन्म में अर्थ पैदा करते हैं और उनमें अपने आपमें संयोग की यन्त्रणा के पूर्व ही निकटवर्ती समा-

१—वही, पृ० ३८१

चना के रूप में अर्थ निहित रहता है। व्यक्तिगत रूप से किसी कलाकार के लिए शब्दों का उपयोग अनुसंधान में एक साहसिक कार्य है। - "[1]

इसी बात को लेकर 'लैंग्वेज् ऑफ जेश्चर' नामक अपनी रचना के शीर्षक के सम्बन्ध में उसने लिखा है कि यदि नाम में किसी प्रकार की उलझन लगती है तो उसे शाब्दिक ही समझना चाहिए जिसे हमने स्वयं पैदा किया है और जिसका समाधान किया जा सकता है। "भाषा शब्दों से बनती है तथा संकेत गति शक्ति (मोशन) से। आधी उलझन तो यह खत्म हुई। शेष आधी उलझन भी स्वतः स्पष्ट है, क्योंकि यह हमारी विचार-सामग्री का वैसा ही सुपरिचित अंश है। यह वही वक्तव्य है जिसे प्रकारान्तर से कहा गया है। शब्द गति शक्ति से बने हैं, क्रिया व्यापार अथवा, प्रतिक्रिया से बने हैं, उनकी चाहे जितनी दूरी क्यों न हो, तथा संकेत भाषा से बना है-उस भाषा से जो शब्दों की भाषा के निचले भाग में, अथवा पहुंच के बाहर अथवा निकट हो। जब शब्दजन्य भाषा सफल नहीं होती तब हम सांकेतिक भाषा का आश्रय लेते हैं। यदि हम यहीं ठहर जाते हैं तो हमारी उलझन भी ठहर जाती है। यदि हम यहां नहीं ठहरते और कहते हैं कि शब्दजन्य भाषा तब अत्यधिक सफल होती है जब यह अपने शब्दों में सांकेतिक हो तो हमारी शाब्दिक उलझन हल हो जायगी जिससे हमने शुरू किया था ।"[2]

संकेत का महत्त्व प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि संकेत पहले आता है भाषा बाद में। संकेत जब भाषा के साथ रहता है तो वह उसे अलंकृत करता है और इसे इस तरह अनुप्राणित करता है जिससे कि वह वक्ता या लेखक से स्वतन्त्र हो जाती है। भाषा का सर्वोत्कृष्ट उपयोग संकेत को अपने आपमें अन्तर्हित किये बिना संभव नहीं। उदाहरण के लिए, बिना संकेत के कोई उपन्यासकार अपने संवादों को तथा कवि अपनी वाणी को गीत्यात्मक, अपनी असंगति को हास्योत्पादक और अपने चित्रण (पर्सपेक्टिव) को भयावह नहीं बना सकता। हमारे जीवन और प्रकृति के ज्ञान का अधिकांश संकेत के रूप में ही हम तक पहुँचता है, और तुकांत (राइम) अथवा श्लेष, यहाँ तक कि एक साधारण वाक्य के उपयोग करने के पूर्व हम उस ज्ञान के कला कौशल के पंडित बन जाते हैं। संकेत पर पुनः पाण्डित्य प्राप्त किये बिना हम भाषा पर सोद्देश्य प्रभुत्व प्राप्त नहीं कर सकते। ब्लैकमूर ने "भाषा के अन्तर्गत संकेत को आन्तरिक और कल्पित अर्थ का बाह्य और आवश्यक नाटक" कहा है। शब्दों में यह एक ऐसा साधक नाटक है जिसकी परिभाषा किसी कोष में सूत्रबद्ध नहीं की जा सकती। संकेत एक ऐसी साधकता है जो उस शब्द के प्रत्येक

१—द डबल् विजन, पृ० १९७-९८

२—क्रिटिकल अप्रोचेज टू लिटरेचर, पृ० ३१४

ग्रथ में गतिशील है। संक्षेप में, "सकेत शब्दो को गतिमान बनाता है और साथ ही, हमें भी गतिमान करता है।"[1]

अपने 'क्रिटिक्स जॉब आफ वर्क' (आलोचक का कर्तव्य)[2] में ब्लैकमूर ने किसी नवसिखिया (अमेचर) के औपचारिक कथन को (फॉरमल डिस्कोस ऑफ एन अमेचर) समीक्षा कहा है। वह लिखता है 'जब इस कथन में पर्याप्त प्रेम और पर्याप्त ज्ञान का निर्देशन होता है तो यह स्वात्मावलम्बी होता है किन्तु किसी भी हालत में इसे एक विभिन्न (आइसोलेटेड) कला नही कहा जा सकता।" अन्य कलाओ पर यह निर्भर है। 'अपने आपको आतरिक घनिष्ठता में बाँधने के लिए, यह बाहर से मूल्याकन का शब्दावली एव समानान्तरों को प्रस्तुत करता है, जो उसे ज्ञात और प्रिय होता है, उसका यह निर्देश करता है और उसे क्रमबद्ध करता है, तथा प्रत्येक नवीन आवेग अथवा प्रभाव का श्रेष्ठतर निर्देश करने और उसे अधिक व्यवस्थित रूप से क्रमबद्ध करने के लिए असीमित खोज करता रहता है।" ब्लैकमूर ने इसी ग्रथ में कविता अथवा किसी अन्य कला को जीवन की आलोचना माना है। कविता अपने विषय का निर्देश करती है उसे क्रमबद्ध करती है, और इस प्रकार विषय को नियन्त्रित और निश्चित करती है। कविता को 'रूप (फाम) और अर्थ (मीनिंग) से दूर का जीवन" प्रतिपादित करते हुए, जिये हुए जीवन को कविता न मानकर उस जीवन को कविता कहा है जिसे हमने गढा है और जिसके साथ तादात्म्य स्थापित किया है।[3]

समीक्षात्मक काय को ब्लैकमूर ने 'सजनात्मक' काय कहा है। लेखक को यह सोचना चाहिए कि वह समीक्षा का कठिन काय करने जा रहा है जिस काय के लिए वह योग्य है। 'इसके लिए उसे प्रयत्नशील रहना पडता है जिससे कि वह आश्चयकारक सन्तुलित अवस्था में अपने आपको रख सके—जैसे कि कोई किसी का पीछा कर रहा हो, जैस किसी को इसका कभी अभ्यास ही न हो और इसलिए वह कभी अपनी दशन शक्ति का अपनी अनुभूति के स्रोतों का कभी पतन न होने दे, और फिर भी ऐसे असमञ्जस में, जिस काय को उसने अपने हाथ में लिया है, उसे निश्चित करे, उसके सम्बन्ध में निणय प्रस्तुत करे और उसे अभिव्यक्ति प्रदान करे।" इस ग्रथ में ब्लैकमूर के अनुसार, महान् काव्य का सृजन होता है जो निष्ठुर आलोचना

१—लिटरेरी क्रिटिसिज्म ए शाट हिस्ट्री, पृ० ६९६–९७

२—यह लेख लेखक की द डबल एजेंट' का ही एक अध्याय है। क्रिटिसिज्म : द फाउण्डेशन्स आफ माडर्न लिटरेरी जजमेंट में (पृ० ३०९–२२) प्रकाशित।

३—क्रिटिसिज्म द फाउण्डेशन्स, पृ० ३०९

का परिणाम है ।[1] ब्लैकमूर का मानना है, कि "महान् श्रम द्वारा किसी विशेष विषय का महान् ज्ञान सपादन" किया जा सकता है तथा किसी सच्ची कला और आलोचना में" अन्तर्दृष्टि, कल्पना और अनुशासन "का होना आवश्यक है ।[2]

आलोचना के दो काय हैं—एक है, "विशेष (पर्टिक्यूलस) के साथ घनिष्ठता को बढावा देना", दूसरा काय सम्पादन के स्तर का निर्णय करना। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं—विश्लेषण करना और मूल्याकन करना। पहले मे, "आलोचना का काय होगा पाठक को सदा काय के लिए प्रेरित करना, तथा लेखक इसी विचार से कुछ लिखता है तथा कतिपय अशो को उद्धत करता है जिससे कि उसका विश्लेषण उसके पाठक को कविता के विशेष वणन की ओर उन्मुख कर सके। ' दूसरे में, "पाठक अपनी आँख से न पढ़कर अपने मस्तिष्क से पढता हैं, वह रूप और विषयवस्तु की अनुभूति प्राप्त करता है, वह कविता को कविता के रूप में पसन्द करता है, वह इसमें व्यापक नान अथवा कष्ट झेलने की सामथ्य पैदा करता है। 'द डबल एजेंट नामक पुस्तक में इसी का स्पष्टीकरण किया गया है। जैसे कविता की विषयवस्तु और रूप तथा जीवन सम्बन्धी अपरिपक्व सामग्री और साकार कल्पना के रूप में द्विरूपी (डबल एजेंट) बताया गया है, वैसे ही आलोचना के विश्लेषण और मूल्याकन तथा विशेष के साथ घनिष्ठता और काय सम्पादन का मूल्य निर्धारण नाम के दो स्वरूप बताये गये हैं। इसी प्रकार कविता एव समीक्षा इन दोनों की सयुक्त अवस्था मे शिल्प और व्याख्या (एसेज इन क्राफ्ट ऐंएड एल्यूसिडेशन'—'द डबल एजेंट' नामक पुस्तक का उपशीषक) नाम के दो रूप स्वीकार किये गये हैं।[3]

बक की भाँति ब्लैकमूर ने भी काव्य भाषा को सांकेतिक माना है। 'वास्तविक' और 'सांकेतिक' में भेद करते हुए ब्लैकमूर ने कहा है 'जो बात लेखन द्वारा अस्तित्व में आती है तथा जब तक लेखन स्थायी रहता है तब तक वह कायम रहती है—यह अनुभव वास्तविक है। लेकिन लेखक जिस बात का सजन करता है—लेखन समाप्त होने पर भी जो जारी रहती है उसे कभी सांकेतिक कहा जा सकता है।" "सकेत ब होता है जब कि वह उस बात की सूचना देना हो जो नहीं कही गयी है और जो कही नहीं जा सकती—जो लेखन द्वारा प्रसून हुई है अपने एक निजी स्वायत्त ससार के रूप में।' सकेत एक अत्यन्त यथाथ समव अथ है, यद्यपि यह लगभग पुनरुक्ति क रूप में (टाटोलोजिकली) यथाथ है, जिसके लिए शब्दो में गतिशील

१—द लायन्ड विजन, पृ० २००
२—वही, पृ० २२६
३—वही, पृ० २०९-१०

होने के लिये उन्हें उत्तेजित किया जाता है तथा जिसका गतिशील शब्द निर्माण करते हैं। संकेत उस वस्तु की सूचना नहीं देता जो पूर्व में ज्ञात थी, किन्तु उसकी सूचना देता है जो 'यहाँ' ज्ञात करायी गयी है अथवा ज्ञात करायी जाने वाली है।"[1] इस प्रकार सांकेतिक कल्पना (सिम्बोलिक इमैजिनेशन) के—जिसे लगभग रहस्यवादी धर्म का नाम दिया जा सकता है—माध्यम से कला का मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है।

ब्लैकमूर और बर्क दोनों ने ही काव्य भाषा को सांकेतिक क्रिया माना है। लेकिन दोनों की मान्यताओं में अन्तर है। बर्क ने "प्रतीक में अभिव्यक्त क्रिया-कलापों के विश्लेषण की पद्धतियों पर मुख्य रूप से जोर दिया है," जबकि ब्लैकमूर "सर्जन किए हुए अथवा निश्चेष्ट (डैड-एँण्ड) प्रतीक को ही मुख्य मानना पसन्द करता है।' बर्क ऐसा मार्ग खोजता है जिसमें भाषा प्रतीकात्मक बन जाती है, और ब्लैकमूर विविध उदाहरणों द्वारा दिखाने का प्रयत्न करता है कि किस प्रकार काव्यात्मक यथार्थता की भाषा में प्रतीक क्रियाकलाप को प्रतिष्ठित कर देता है। ब्लैकमूर के शब्दों में, 'बर्क नियम बनाता है, मैं निर्णय देता हूँ, कार्यवाहक (एक्जीक्यूटिव) हम दोनों के बीच में है।"[2] संकेत के पक्षपाती डब्ल्यू० बी० यीट्स आदि कवियों द्वारा तथा नाटक की वक्तृताओं के विश्लेषण में ब्लैकमूर की पद्धति मान्य की गयी है।

'द क्रिटिक्स जाब ऑफ् वर्क' में ब्लैकमूर ने अपनी बात का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है, 'मेरी अपनी पहुँच है कि कविता में पूरी कहानी भी नहीं आती। पाठक की चेतना में केवल कविता ही रह जाती है उस वास्तविक कार्य को उसे अभी करना बाकी है। तथा मैं इसे आगे बढ़ाना चाहता हूँ केवल न्यून किये हुए (रिड्यूस्ड) और पूर्ति किये हुए (कम्पनसेटेड) मार्गों के संदर्भ में जैसा कि मैंने किया है। और मैं आशा करता हूँ कि यदि मेरे मार्ग का उपयोग किया जाये तो इसमें स्वयं अपने न्यूनीकरण और क्षतिपूर्ति की आवश्यकता होगी।'[3]

ब्लैकमूर की रचनाओं पर टी० एस० इलियट रिचर्ड्स और इरविंग बैबिट आदि समीक्षकों का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है, इसे उसने स्वयं स्वीकार किया है। 'हाउण्ड ऐंण्ड हार्न' (१९२८) में ब्लैकमूर ने इलियट के विचारों की अनुशासित उर्वरता (डिसिप्लिण्ड फर्टिलिटी ऑफ आइडियाज) की प्रशंसा की है। इलियट की विशेषताओं और उसके विचारों का उसने प्रयोग किया है और

१—वही, पृ० २३२

२—डेविड डेचोज, क्रिटिकल अप्रोचेज टू लिटरेचर, पृ० ३१४।

३—वही, पृ० ३२१

उसकी शैली से वह प्रभावित है। इलियट की आलोचना पद्धति को उसने अपनाया है तथा इलियट की भाँति साहित्य मे नैतिक निर्णयों पर जोर दिया है। 'द डिसिप्लिन ऑफ् ह्यूमैनिज्म' नामक अपने लेख में ब्लैकमूर ने यद्यपि बैबिट तथा अन्य नव्यमानववादी समीक्षकों के "गद्य, अघता और छिद्रा-वी अनानता" पर डटकर आक्रमण किया है, लेकिन साथ ही उसने बबिट के मानववाद के सिद्धान्त के साथ अपना सांकेतिक कल्पना का सिद्धान्त जोड़ दिया है। उसने बैबिट की नैतिक' कल्पनाओं–अनुशासन, समानुपात, सयम–को साहित्यिक विषयवस्तु का आचारशास्त्रीय मानदण्ड स्वीकार न कर, साहित्यिक रूप का सौंदर्यशास्त्रीय मानदण्ड माना है। रिचड्स के सिद्धान्तों ने भी ब्लैकमूर को विशेष रूप से प्रभावित किया। उसकी मान्यता है, "रिचड्स के प्रभाव से कोई भी समीक्षक अछूता नहीं रह सकता।" अपने 'ए क्रिटिक्स जॉब ऑफ वर्क' में ब्लैकमूर ने रिचड्स को एक प्रशंसनीय आलोचक "माना है" 'जिसके काव्यप्रेम और काव्यज्ञान का कोई मुकाबला नहीं कर सकता।" किन्तु साथ ही व्यावहारिक साहित्यिक समस्याओं के सिद्धान्तों को अन्तहीन विस्तार में उलझा देने तथा साहित्यिक समीक्षा को भाषाविज्ञान बना देने की उसने गहर्णा भी की है। रिचड्स की कृतियों का सूची देखकर तो ब्लैकमूर बड़ी उलझन में पड़ जाता है और सोचने लगता है कि क्या वह सचमुच एक साहित्यिक समीक्षक कहलाने का अधिकारी है। क्योंकि उसके अनुसार, उसके समीक्षा के हथियार तो वृहत्, व्यापक और भूलभुलैया में डाल देनेवाले हैं जब कि साहित्यिक समीक्षा छोटी-सी है जिससे इसका मुख्य केंद्र होने के बजाय वह इसका एक सामान्य-सा फल जान पड़ता है।[1] विलियम एम्पसन, विण्टर्स और रैनसम के सिद्धान्तों का प्रभाव भी ब्लैकमूर पर पर्याप्त मात्रा में पड़ा है। उसने विण्टर्स की नैतिक अन्तर्दृष्टि, तथा 'कविता की विषयवस्तु और रूप के साथ घनिष्ठता तथा कल्पनात्मक गद्य" की सराहना की है। इसी प्रकार रैनसम, टेट और विलय म बुक्स आदि समीक्षकों को ब्लैकमूर ने प्रभावित किया है। रैनसम ने तो अपनी 'द न्यू क्रिटिसिज्म' की भूमिका में ब्लैकमूर को 'नये आलोचक' का आदर्श प्रतीक मानकर उसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है।[2]

डब्ल्यू०, एच० ऑडेन (१९०७)

प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् और द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व नवयुवक कवियों का एक दल १९२७-२९ में ऑक्सफोर्ड में विद्याध्ययन कर रहा था। इनमें डब्ल्यू०

1—पृ० ३१७

2—देखिए द आर्म्ड विज़न, पृ० २१२-१७

एच० ग्रॉडन का नाम सर्वप्रमुख है। ग्रॉडन एक डाक्टर का लड़का था। मनोविज्ञान और साहित्य की ओर उसकी रुचि थी। उसने जीवविज्ञान और साहित्य का अध्ययन किया और इस पर जोर दिया कि कविता को 'क्लिनिकल" होना चाहिए। कहते हैं कि उसने अपनी कविताओं को इसलिए फाड़कर फेंक दिया था कि वे वर्डस वर्थ को आधार मानकर लिखी गयी थी। इलियट का वह प्रशंसक था। उसका कहना था कि इलियट का अध्ययन करना चाहिए, और इलियट के अध्ययन के पश्चात् ही उसे पता लगा कि कविता कैसे लिखा जाता है।

ग्रॉक्सफोर्ड छोड़ने के बाद ग्रॉडन ने कुछ समय जर्मनी में बिताया और फिर वह स्कूल मे अध्यापक हो गया। उसके दल के अन्य सदस्यों में सोसिल डे लुइस (१६०४) स्टीफेन स्पेंडर (१६०६), और लुइस मैकनीस १६०७) के नाम उल्लेखनीय हैं। ये लोग 'यू कण्ट्री' ग्रुप के नाम से प्रसिद्ध थे तथा डी० एच० लारेंस और पोटम की कविता से विशेष प्रभावित हुए थे। 'कला के लिए कला' के सिद्धान्त को ये 'एपार्शी कविता" कहते थे। उनका कहना था, 'कवि वह है जो शरीर से सामर्थ्यवान हो बातचीत का शौकीन हो समाचारपत्रों का पाठक हो, करुणा और उपहास पैदा कर सके, अर्थशास्त्र की उसे जानकारी हो महिलाओं का प्रशंसक हो, व्यक्तिगत सम्बन्धों में उलझा हो, सक्रिय रूप से राजनीति में उसकी दिलचस्पी हो, और शारीरिक प्रभावों का ग्रहण करने मे सक्षम हो।' इस दल के कवि ग्रामीण भाषा और संगीतमय (जैज) छन्द का प्रयोग करते तथा उनकी कल्पनाएँ मशीन और लड़कों की कहानियों पर आधारित रहती, लेकिन उनकी अभिव्यक्ति के कला-कौशल की पद्धति प्रतीकवादी था जिस पर इलियट का प्रभाव था और जो सामान्य-जनों की समझ के बाहर थी। ये लोग राजनीति में मार्क्सवादी थे तथा कार्ल मार्क्स के क्रान्ति के दर्शन को उन्होंने फ्रायड के अवचेतन के मनोविज्ञान के साथ जोड़ दिया था। सम्भवतः दो पृथक सिद्धान्तों का यह समन्वय सफल न हो सका जिसके कारण डे लुइस के शब्दों मे, उनकी कविता में कुछ खोखलापन और आवेगपूर्ण क्षीणता (इमोशनल थिननेस) दिखायी देने लगी।

ऐसी परिस्थिति में ग्रॉडन और उसके सहयोगी मित्रों ने इङ्गलण्ड में सामयिक कविता में एक नयी जान फूंकी जिसके कारण काव्य मे सामाजिक उदारता, मानवीय सहानुभूति तथा विचार और अनुभूति का आन्तरिक उल्लास दिखायी देने लगा। आगे चलकर स्पेन के गृहयुद्ध तथा नाजियों की फासिस्ट नीति के कारण इन कवियों को एक वीरतापूर्ण कल्पित कथा का आश्रय लेना पड़ा जिससे वे इतने ही प्रभावित हुए जितना कि अठारहवीं शताब्दी से लेकर बीसवीं शताब्दी तक के जनतांत्रिक आन्दोलन ने बायरन, शैली और ले हण्ट को प्रभावित किया था।[1] वस्तुतः इस समय

१—क्राइसिस इन इङ्गलिश पोएट्री, पृ० १९३–९५

एक ऐसे समाज निर्माण का प्रयत्न किया जा रहा था जिसमें कि मानव मानव में फिर से वास्तविक और जीवन्त सम्पर्क स्थापित हो सके।

आडेन ने १९३० में जो कवितायें लिखीं, उनमें एक प्रकार की मर्मगति देखने में आती है, व्यक्तिगत ग्रामीण भाषा के यहाँ दर्शन होते हैं और किसी हद तक लेखक का युवा गर्व भी प्रतीत होता है। इतिहास और पुराणों को अपनी कल्पनाओं का आधार न बनाकर आडेन ने इंगलिश स्कूलों के सार्वजनिक जीवन, क्रीड़ा के मैदानों, आधुनिक सड़कों, औद्योगिक दृश्यों, छात्रों की पत्रिकाओं तथा साहसपूर्ण कथाओं से काव्य कल्पनाएं ग्रहण की हैं। उसके अनेक रूपक सेना के युद्ध संचालन और पर्वतारोहण से लिये गये हैं। उसकी कविता में जो मनोवैज्ञानिक ग्रामीण भाषा, व्यक्तिगत हँसी मजाक और आकस्मिक भोंड़ापन देखने में आता है, वह कुछ कम आश्चर्यकारी नहीं है। लेकिन फिर भी इस कविता में एक विशिष्ट अभिनव काव्य शैली के दर्शन होते हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध आरम्भ होने के पूर्व आडेन जब अमरीका में बस गया तो अनुप्रास के अतिरिक्त संगीत भवन, लोकगाथा (फोक बैलेड) तथा संगीतमय (जैज) गीतिकाव्य को विशेषकर उसकी कविता में स्थान मिला।[1]

द्वितीय विश्वयुद्ध आरम्भ होने के बाद 'न्यू कण्ट्री' आन्दोलन समाप्त हो गया। इस समय आडेन अमरीका में जाकर रहने लगा। जो कुछ भी हो, इस दल के अनुयायियों ने अंग्रेजी कविता को लय और बिंबविधान (इमेजरी) के क्षेत्र को विस्तृत किया, इसे एक नया स्वस्थ लौकिक दृष्टिकोण प्रदान किया और सबसे बड़ी बात यह कि कविता का सम्बन्ध अंग्रेजी और यूरोप के राजनीतिक रंगमंच से जोड़ दिया गया। लेकिन इस सबके बावजूद इन लोगों की सफलता सीमित ही रह गयी देश की जनता से वे सम्पर्क स्थापित करने में असमर्थ रहे और उनकी सभा सीमाबद्ध दियी विद्वान् लोगों की गोष्ठी मात्र बन गयीं। जूलियन बेल (१९०८ ३७) नामक एक नवयुवक कवि ने अपने 'ओपन लैटर टू सी डे लुइस' में इन वामपंथी बुद्धिवादियों की आलोचना करते हुए कहा है कि ये लोग भावी समाजवादी राज्य के बड़े बड़े काल्पनिक चित्र खींचते हैं कि क्रान्ति के बाद हम बड़े सुख से जीवन बितायेंगे तथा कला और विज्ञान उन्नति की चरम सीमा पर पहुंच जायेंगे। ये लोग लाल और सफेद नैतिकता के प्रयोग करते हैं, जो उनकी असफलता में कारण हैं। ये बुद्धिवादी शासक वर्ग से आये हैं। सर्वहारा वर्ग की ये बात करते हैं, लेकिन क्या इलियट हॉपकिन्स अथवा यीटस की कवितायें इस वर्ग की समझ में आ सकती हैं? हाथी दांत की दुर्बोधता की मीनारें, वैयक्तिक भाषा साहित्यिक संकेत, निजी प्रतीकवाद और वैयक्तिक भावावेश—ये सब जो कीटस और कालरिज की कविता में पाये जाते

१—वही पृ० १९५–९६, डविड डैचीज द प्रजेंट एज पृ० ४७

थे, इनकी कविता में भी मौजूद हैं। यह बुद्धिवादी वर्ग निजी भाषा, गोष्ठियों के हँसी-मजाक और अपनी सनक में ही मगन रहता है।[1]

आडन ने अंग्रेजी साहित्य को अनेक बहुमूल्य रचनाएँ दी हैं। कवि के रूप में उसकी 'पोएम्स' (१६३०), 'द ओरेटर्स' (१६३२)[2] 'लुक स्ट्रेंजर' (१६३६), 'न्यू इयर लैटर' (१६४१) 'द शील्ड ऑफ एचिलीज' (१६५५), नाटककार के रूप में 'द डांस ऑफ डैथ' (१६३३), 'द डाग बिनीथ द स्किन' (१६३५), 'ऑन द फ्रंटियर' (१६३८), समीक्षक के रूप में 'लैटर्स फ्राम आइसलैंड' (१६३७), 'जर्नी टू वार' (१६३६), 'द ऐनचेफ्ड फ्लड' (१६५०) आदि रचनाएँ उल्लेखनीय हैं।

आॅडन के 'द पब्लिक वर्सेज द लेट मिस्टर विलियम बटलर यीटस' (जनता बनाम स्वर्गीय श्री विलियम बटलर यीट्स–१६३६)[3] नामक अपने निबंध में अदालत में बैठे हुए जूरी के सदस्यों को सम्बोधन करते हुए सरकारी अभिशंसक से कहलाया गया है कि वे लोग किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में निर्णय देने के लिए नहीं, बल्कि उसकी कृतियों के सम्बन्ध में निर्णय देने के लिए उपस्थित हुए हैं। आॅडेन लिखता है 'यीटस एक महान् कवि था–इस देश के अंग्रेजी लेखकों में महानतम। यही सारा मुकदमा है जिसे मुद्दई सारी शक्ति से अस्वीकार करता है।"

कवि बनने के लिए तीन बातें मुख्य हैं–(१) कवि में असाधारण भाषा की उच्च कोटि की योग्यता हो, (२) जिस युग में वह रहता है उस युग की पूरी जानकारी हो, (३) अपने युग के प्रगतिशील विचारों का ज्ञान और उनके प्रति सहानुभूति हो।

सरकारी अभियोक्ता का कथन है कि ये तीनों बातें अपराधी में नहीं थी।[4]

१—जूलियन बेल ऐमेज, पोएम्स लैटर्स (लंदन १६३८), पृ० ३०६ २८। इस पत्र का उत्तर भी यहाँ प्रकाशित है।

२—स्टेफेन स्पेंडर को समर्पित। समर्पण पत्रिका की कविता देखिए—

प्राइवेट फेसेज इन पब्लिक प्लेसेज
आर वाइजर एँण्ड नाइसर,
दैन पब्लिक फेसेज इन प्राइवेट प्लेसेज।

(व्यक्तिगत चेहरे सार्वजनिक स्थानों में अधिक विवेकपूर्ण और प्रिय हैं, अपेक्षाकृत आम चेहरों के व्यक्तिगत स्थानों में।)

३—१६४६ में द पार्टीजन रीडर में पुनः प्रकाशित। क्रिटिसिज्म द फाउंडेशन्स आफ माडर्न लिटरेरी जजमेंट में (पृ० १६८–७२) प्रकाशित।

४—वही, पृ० १६८–७०

तत्पश्चात् प्रतिवादी की ओर से यीट्स पर आरोपित अभियोगों का उत्तर दिया गया है। कविता का विश्लेषण करते हुए कहा है, "प्रत्येक व्यक्ति समय समय पर अपना सामाजिक और भौतिक परिस्थितिजन्य भावुकता और बौद्धिकता के कारण उत्तेजित हो जाता है। कतिपय व्यक्तियों में यह उत्तेजना शाब्दिक गठन को जन्म देती है जिसे कविता कहा जाता है। यदि यह शाब्दिक गठन पाठक में उत्तेजना का संचार करता है तो हम इसे अच्छी कविता कहते हैं। वास्तव में, काव्य प्रतिभा एक ऐसी शक्ति है जो सामाजिक रूप में वैयक्तिक उत्तेजना पैदा करती है।"

यहां जिस सामाजिक तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है, वह है उदार पूंजीवादी जनतंत्र की असफलता जो इस सिद्धान्त पर आधारित है कि प्रत्येक व्यक्ति ने स्वतंत्र रूप से जन्म धारण किया है इसलिए वह पूर्णतया स्वतंत्र है। कविता आदि से अन्त तक, औद्योगीकरण द्वारा जो सामाजिक ह्रास होता है उसका दृढ़तापूर्वक विरोध करती है तथा इसपर विजय पाने के लिए उसके विचारों और भाषा में सतत संघर्ष जारी रहता है।

कला को यहां इतिहास का कारण न बताकर उसका परिणाम बताया गया है। "टक्निकल अनुसंधानों की भांति कला एक प्रभावोत्पादक कर्ता के रूप में इतिहास में पुनः प्रवेश नहीं करती, अतएव यह कहना कि कला को प्रचारात्मक होना चाहिए अथवा नहीं यह ठीक नहीं है।"

अतएव, "अभियोक्ता का यह कथन दोषपूर्ण है कि कला द्वारा कुछ भी सम्भव हो सकता है। किन्तु वास्तविकता यह है सज्जनो! कि यदि कविता न लिखी जाती, चित्र न बनाया जाता संगीत की रचना न की जाती तो मानव इतिहास भौतिक रूप में अपरिवर्तित ही रहता।'

अन्त में कहा गया है कि कवि भाषा के क्षेत्र में सक्रिय रहता है और इसी बात में अपराधी की महानता देखी जा सकती है। उसके विचार कितने ही मिथ्या और जनतंत्र विरोधी क्यों न हों उसकी रचना में सच्ची जनतांत्रिक शैली के प्रति एक सतत विकास देखने में आता है।[१]

ऑडेन ने कविता के दो सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं। एक में कविता को चमत्कारिक साधन कहा है जो हममें वांछनीय मनोभावों को उत्तेजित और अवांछनीय मनोभावों का निवारण करता है। अथवा कविता को ज्ञान की लीला कहा जा सकता है जो मनोभावों और उनके गुप्त सम्बन्धों का निर्देश कर हमारे अन्दर चेतना जागृत करती है।[२] कविता लोगों को यह नहीं कहता कि क्या करना चाहिये लेकिन

१—वही पृ० १७०-७१
२—डेविड डेचीज, क्रिटिकल अप्रोचेज टू लिटरेचर, पृ० १५६

वह अच्छे और बुरे ज्ञान को विस्तृत करती है, सम्भवत कार्य की आवश्यकता को अत्यधिक जरूरी और उसके स्वभाव को अधिक स्पष्ट करती है, किन्तु वह हमें उसी स्थान तक ले जाती है, जहाँ हमारे लिये बौद्धिक और नैतिक पसदगी कर सकना सभव है।"[1]

ऑडेन ने कविता को एक प्रकार का बोध कहा है। कवि भाषा को आविष्कार पद्धति के रूप में प्रयुक्त करता है। वह कहता है, 'मैं यह कैसे जान सकता हूँ कि मैं क्या सोचता हूँ जब तक कि यह न देख लूँ कि मैं कहता क्या हूँ?" 'यहाँ एक मनोभाव को दूसरे मनोभाव के स्थान पर रख देने का प्रश्न नहीं, किसी मनोभाव का दृढ बनाने का भी सवाल यहाँ पैदा नही होता, वरन् यहाँ इस बात की खोज का प्रश्न है कि मनोभाव क्या है।"[2]

कविता केवल शब्दों का सीधा सादा खेल नहीं, विज्ञान अथवा वाकपटुता भी वह नही है, नीतिविज्ञान भी उसे नही कह सकते। तो फिर कविता किसे कहते हैं? ऑडेन लिखता है—'तुम कविता क्यों लिखना चाहते हो?" इसके उत्तर में यदि कोई नवयुवक कहता है—"क्योंकि मुझे कुछ महत्त्वपूर्ण बातें कहनी हैं," तो वह कवि नही है। यदि उसका उत्तर है "मैं शब्दों के इर्दगिर्द लटके रहना चाहता हूँ यह सुनने के लिए कि वे क्या कहते हैं," तो हो सकता है वह कवि बनने जा रहा हो।"[3]

दरअसल यह युद्ध का युग था, अतएव साहित्य में निराशा और कुंठा की भावना आ जाना स्वाभाविक था। जैसे डे लुइस ने लोगो को 'ह्रासमान सभ्यता के शिकार' कहा है, वैसे ही ऑडेन ने अपने युग की पीढ़ी के अन्धकारपूर्ण, कठिन जीवन" की ओर लक्ष्य किया है।[4] ऑडेन की कितनी ही रचनाओं में तिरस्कार—

१—माइकेल रॉबर्टस, द फावेर बुक ऑफ मॉडर्न वर्स पृ० ६,

२—डेविड डेचीज, वही, पृ० १५९–६०

३—वही पृ० १५६। ऑडेन ने एक बार कहा था कि यदि हम जानना चाहते हैं कि अधिकाश साधारण लोग कविता किसे समझते हैं तो हमें समाचारपत्रों में प्रकाशित जन्म मरण के कालम पढ़ने चाहिए जहाँ जीवन और मरण सम्बन्धी अपरिष्कृत रूप से छदोबद्ध की हुई उक्तियाँ हजारों पाठकों को सान्त्वना प्रदान करती हैं। डविड डेचीज, द प्रजेण्ट एज, पृ० १२६

४—स्पेंडर की एक कविता देखिए

देयर इज
ए नैट वर्क ऑफ रेलवेज, मनी, वर्ड्स, वर्ड्स, वर्ड्स,
मील्स, पेपस, ऐक्सचेंजेज, फ्रिवेट्ज,
सिनेमा, वायरलैस, द वर्स्ट इज मैरिज।

ज्यां पाल सार्त्र (१९०५)

ज्यां-पाल सार्त्र (Jean Paul Sartre) एक प्रतिभाशाली फ्रांसीसी विचारक और लेखक हो गया है। १९३९ में द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारंभ हो जाने पर वह फ्रांसीसी सेना में भर्ती हो गया और १९४९ में जर्मन नाजियों द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया। विराम संधि की घोषणा हो जाने पर उसे रिहा किया गया। तत्पश्चात् पेरिस लौटकर वह फिर से दर्शनशास्त्र पढ़ाने लगा। अस्तित्ववाद (ऐक्जिस्टेंशिएलिज्म) का वह प्रतिष्ठाता है जिसका प्रतिपादन उसकी 'बीग एण्ड नथिंगनैस' (अस्तित्व और नास्तित्व-१९४३) तथा 'ऐक्जिस्टेंशियलिज्म (अस्तित्वाद-१९४६) रचनाओं में किया गया है। वह मार्क्सवादी रहा है। उपन्यासों नाटकों और कहानियों की रचना करके भी उसने यश का सम्पादन किया है। उसके 'नौसिया' (मिचली-१९३८), एज ऑफ रीजन (बुद्धि का युग-१९४५), द रिप्रीव (दएडस्थगन-१९४७) उपन्यास, तथा द फ्लाइज (मक्खियाँ-१९४३), ना एक्जिट' (बाहर नहीं-१९४४) और 'रिस्पैक्टफुल प्रास्टीटयूट' (सभ्य वेश्या-१९४६) नाटक सुप्रसिद्ध हैं। भाषा पर उसका असाधारण अधिकार है। नोबल पुरस्कार को वह अस्वीकृत कर चुका है।

अस्तित्ववाद

मनुष्य को विश्व के केन्द्र में स्थापित कर मात्र में उसे सारी सृष्टि का चरम लक्ष्य स्वीकार किया है। मनुष्य का अस्तित्व अपने आपके लिए (बीग-फार-इटसल्फ)[1] अंगीकार करते हुए सार्त्र ने वास्तविक संसार को असगत (इर्रेशनल), अव्यवस्थित, अनवधारित (डिटरमिण्ड) और अज्ञेय कहा है—जो स्वतंत्र एवं वास्तविक कायदे-कानूनों पर निर्भर न रहनेवाले मानव व्यापार के विपरीत है। 'मनुष्य वह है जो अपने आपको बनाता है' (मैन इज व्हाट ही मेक्स हिमसैल्फ)—यही उसकी केंद्रीय भावना कही जा सकती है। 'बीग-फॉर इटसेल्फ'—जिसे 'बीग ऑफ काशियसनैस' (चेतना का अस्तित्व) भी कहा गया है—का मुख्य गुण है उसकी क्रियाशीलता। इसपर किसी बाह्य क्रिया का प्रभाव नहीं पड़ता, अपनी स्वाभिप्रेत क्रियाओं से ही यह प्रभावित रहता है। इसके विपरीत है 'बींग इन इटसैल्फ' अथवा वस्तुओं का अस्तित्व (बीग ऑफ थिंग्स), अतिशय रूपकात्मक भाषा में इसे 'अपारदर्शक'

१—मनुष्य को ऐसा प्राणी कहा है जिसके प्रति कोई भी प्राणी ईश्वर तक पक्षपात नहीं कर सकता। सार्त्र, व्हाट इज लिटरेचर, पृ० १३, लंदन, १९५०।

(opaque) कहा गया है—अपने आपसे इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। उक्त दोनो वस्तु एक दूसरे से भिन्न हैं।[1]

अस्तित्ववाद का सिद्धान्त प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् सर्वप्रथम जर्मनी में और तत्पश्चात् फ्रांस में आविर्भूत हुआ। द्वितीय युद्ध के बाद अमरीका आदि देशों मे भी इसका प्रचार हुआ। युद्धोत्तरकालीन समाज मे जीवन वैषम्य में वृद्धि होने से मनुष्य भय, निराशा और असहाय अवस्था के कारण सन्त्रस्त हो उठा—इसी भावना का प्रतिबिम्ब अस्तित्ववाद में दिखाई पडता है। पूंजीवादी युग की यान्त्रिकता ने मनुष्य की स्वतन्त्रता का अपहरण कर उसकी बुद्धि को कुण्ठित कर दिया जिससे उसका जीवन यन्त्रवत् निष्क्रिय बन गया। अतएव मनुष्य को सृष्टि का केंद्रबिन्दु मानकर उसके अस्तित्व का प्रश्न उठाया गया।

अस्तित्ववादी बुद्धिसगत विचार (रैशनल थॉट) को इसलिए नही स्वीकार करते कि इसमे आत्मपरक और वस्तुपरक दोनो ससारो को भिन्न माना गया है। बुद्धिसगत विचार मे, समस्त वास्तविकताओं म—मनुष्य को लेकर—केवल एक वस्तु एक 'द्रव्य (सिस्टम)—मौजूद है, जो मनुष्य के विरुद्ध है। अस्तित्ववादियों के मत में सच्चा दर्शन व्यक्ति और वस्तु के ऐक्य से ही उद्भूत होता है और यह ऐक्य अस्तित्व—प्रसगत वास्तविकता—में निहित है। मनुष्य की स्वतन्त्रता किसी एक व्यक्ति द्वारा अनत सभावनाओं मे से किसी एक सभावना का 'चुनाव' है। अत मनुष्य अपनी रुचि के चुनाव में अपने निर्णयो में पूर्णतया स्वतन्त्र है। जैसा वह चाहेगा, वैसा बन सकेगा, उससे परे वह कुछ हो ही नही सकता—उसका सारा उत्तरदायित्व उसी पर है। मनुष्य की इस स्वतन्त्रता को अतिशय व्यक्तिवाद (ऐक्स्ट्रीम इण्डिविजुएलिज्म)—समाज से व्यक्ति का स्वातन्त्र्य—माना गया है।[2]

सार्त्र की रचनाओं में मानव के प्रति उसकी उत्कट रुचि देखने में आती है। कभी उसकी यह अभिव्यक्ति अतिरंजित रूप धारण कर लेती है। उसके पात्र कहते हुए दिखाई देते हैं—'केवल मानव का ही वास्तव में अस्तित्व है।" उसके मत में, उदासी के कारण ससार उदास प्रतीत होने लगता है, और हमारे प्रयत्न इस भावना को परिवर्तित करने में असमर्थ रहते हैं। इससे निष्क्रियता का ही समर्थन होता है क्योकि हमारे सोद्देश्य प्रयत्न निरर्थक हो जाते हैं। इस स्वयं आरोपित निष्क्रियता को "चेतना का ह्रास (डिप्रेशन ऑफ कांशियसनैस) नाम दिया गया है। सार्त्र के अनुसार अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों के साथ मानवो का सम्बन्ध निष्क्रिय सम्बन्ध है। प्रकृति के अध्ययन के लिए उपायों का अवलम्बन लिया जाता है, उनसे सर्वथा

१—पाल ऐडवर्ड्स, द ऐनसाइक्लोपीडिया ऑफ फिलॉसॉफी, जिल्द ७, न्यूयार्क, १९६७

२—रोसेंथल ऍएड पी० यूदिन ए डिक्शनरी ऑफ फिलॉसॉफी, पृ० १५३-५४

भिन्न उपायो से मानवो को समझने की आवश्यकता है। सात्र के सिद्धात में मानवीय स्वरूप का गभीर विवेचन दृष्टिगोचर होता है।[1]

कविता और गद्य-रचना

सात्र ने कविता की अपेक्षा गद्य को श्रेष्ठ बताया है। गद्य को उसने चिह्नो का साम्राज्य (एम्पायर ऑफ साइस) कहकर कविता को चित्रकला, शिल्पकला और सगीत की कोटि मे रखा है। गद्य और कविता, य दोनों ही शब्दो का उपयोग करते हैं, लेकिन कविता शब्दों का बिल्कुल भी 'उपयोग' नही करती और कवि भाषा का 'उपयोग' करने से इकार करते हैं। कवि अपनी कविता की भाषा मे काव्यात्मक भाव पसन्द करता है जिसे वह वस्तुओं क शब्द मानता है, चिह्न नही। तथा चिह्नों की अस्पष्टता का तात्पय है कि इसमे अपने इच्छानुसार किसी का भी प्रवेश हो सकता है—एक काच के चौकोर टुकडे की भाँति, और उस वस्तु का वह अनुसरण कर सकता है जिसका सकेत किया गया है, अथवा वास्तविकता की ओर दृष्टिपात करके वह उसे वस्तु के रूप म समझ सकता है।[2] कवि को यह ज्ञात नही कि दुनिया की किसी अवस्था का 'चिह्न' रूप में कैसे उपयोग करना, अतएव वह उसका अपने शब्द के माध्यम से 'बिम्ब (इमेज) रूप में दशन करता है। तथा जिस शाब्दिक बिम्ब को वह चुनता है, वह आवश्यक रूप से वह शब्द नहीं है जिसका हम इन पदार्थों के निर्देश के लिए उपयोग करते हैं। कवि भाषा के बाहर रहता है, वह शब्दो को एक ऐसा जाल समझता है जिनसे कि वह द्रुतगामी वास्तविकता को पकड सके—उन्हें ऐसा निर्देशक नहीं समझता जो उसे अपने आप में से बाहर निकालकर वस्तुओ के बीच फेंक सकें। सक्षेप में कहा जा सकता है कि उसके लिए समस्त भाषा ससार का एक दपण है। फलस्वरूप, शब्दों की आन्तरिक मितव्ययिता में महत्वपूर्ण परिवतन होते रहते हैं। शब्दो की ध्वनि और उनके लिंग आदि कवि के सम्मुख एक ऐसा रूप निर्माण करते हैं कि वे अथ को अभिव्यक्त करने की जगह उसका केवल 'प्रतिनिधित्व' करते हैं। इस प्रकार, शब्द और शब्द द्वारा निर्दिष्ट वस्तु के बीच एक जादुई सादृश्य (मैजिकल रिजैम्ब्लेंस) और अथ का दुहरा अन्योन्य सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। जैसा कहा जा चुका है, कवि शब्द का 'उपयोग' नहीं करता, उसम जो विभिन्न अथ निहित हैं, उनका चुनाव वह नहीं करता। शब्दों के य विभिन्न अथ, अपने स्वाधीन अथ के रूप मे उपस्थित न होकर, एक उपादान गुण (मैटारियल क्वालिटी) के रूप में उपस्थित होते हैं, जो उसकी आँखों के समक्ष अन्य स्वीकृत अर्थों के साथ आते हैं। मतलब यह कि जो शब्द किसी

१—पॉल ऐडवर्स द ऐनसाइक्लोपीडिया ऑफ फिलॉसोफी जिल्द ७।
२—व्हाट इज लिटरेचर पृ० ४५ लदन १९५०

गद्य लेखक को अपने आपमे से हटाकर दुनिया मे फेंक देते हैं, वे ही कवि को, एक दर्पण की भाँति, उसका अपना बिम्ब उसके पास वापिस पहुँचाते हैं।[1]

भावावेग कविता की उत्पत्ति मे कारण है लेकिन कविता में उसकी 'अभिव्यक्ति' नहीं होती, जैसी कि गद्य में होती है। गद्य लेखक अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति करता है और उनका स्पष्टीकरण करता है, जबकि कवि ज्योंही अपनी अनुभूतियों को कविता में प्रविष्ट करता है, उन्हें माय करना वह ब द कर देता है। शब्द कवि की अनुभूतियों को ग्रहण कर लेते हैं, उनमें प्रवेश कर जाते हैं और उनकी कायापलट कर देते हैं, वे कवि की दृष्टि में भी उनका निर्देश नहीं करते। भावावेग वस्तु हो जाती है, अब इसमें वस्तुओं की गूढता समाविष्ट हो जाती है, इसमें शब्दों के अस्पष्ट गुण मिश्रित हो जाते हैं—वे शब्द जिनमें यह बन्द कर लिया गया है। अतएव गद्य को यहाँ उपयोगितावादी बताते हुए गद्य लेखक को ऐसा व्यक्ति कहा गया है जो शब्दों का 'उपयोग करता है'।[2]

गद्यकला व्याख्यान (डिस्कोर्स) के काम में आती है। स्वभाव से इसका स्वर निर्देशकारक (सिगनिफिकेटिव) होता है—अर्थात् सवप्रथम शब्द कोई वस्तु नहीं होते, वरन् वस्तुओं के निर्देशक होते हैं, जैसे, हमारे मन में कोई विचार उदित हुआ जिसकी हमें किसी ने शब्दो के द्वारा शिक्षा दी है— उन शब्दों में किसी एक भी शब्द का स्मरण किये बिना, जो हम तक पहुँचाये गये हैं। गद्य को यहाँ एक मानसिक अवस्था कहा है। वालेरी के शब्दों में, गद्य तब होता है जब शब्द हमारी दृष्टि के आरपार हो जाता है, जैसे काँच सूय के आरपार हो जाता है। भाषा एक खप्पर (Shell) है जो हमारी दूसरों से रक्षा करता है और हमें उनके बारे मे सूचना देता है। इन्द्रियों का यह दीर्घीकरण है, यह तीसरा नेत्र है जो हमारे पड़ोसी के हृदय को जानता है।[3]

साहित्य और साहित्यकार

साहित्यकार जगत् को उद्घाटित करने, विशेषकर एक मनुष्य को दूसरे के प्रति उद्घाटित करने, के लिए प्रयत्नशील रहता है जिससे कि मनुष्य अपना पूरा-पूरा उत्तरदायित्व उस वस्तु के समक्ष समझ सके जो उसे अभिव्यक्त की गयी है। लेखक को अपना कर्तव्य इस प्रकार से निबाहना चाहिए जिससे कि कोई जगत् से अनभिज्ञ न रहे और कोई यह न कह सके कि इसके बारे मे मुझे कुछ भी ज्ञात नहीं। तथा जहाँ उसने एक बार भाषा के विश्व को स्वीकार किया, फिर यह नहीं कहा जा

१—वही, पृ० ६-८
२—वही पृ० १०
३—वही, पृ० ११

समझता कि वह बोलने में असमर्थ है। एक बार शब्दों के विश्व में प्रवेश करने पर फिर उसमें से बाहर आना कठिन हो जाता है। शब्द स्वतंत्र रूप से परस्पर सगठित हो जाते हैं, उनसे वाक्य बनने लगते हैं, प्रत्येक वाक्य में, अपनी सम्पूर्णता में भाषा का समावेश हो जाता है तथा वह समस्त विश्व को निर्दिष्ट करने लगती है।[1]

सिर्फ कथन करने के लिए किसी वस्तु को पसन्द करने से ही कोई लेखक नहीं बन जाता, लेखक तब होता है जबकि अमुक प्रकार से वह उसका वर्णन करना पसन्द करता है। शैली गद्य के मूल्य को बढ़ा देती है, लेकिन इसे अलक्षित ही रहना चाहिए। क्योंकि शब्द पारदर्शक हैं और क्योंकि अपनी दृष्टि से हम उन्हें आरपार देखते हैं, यह उपहासास्पद होगा यदि किसी खुरदुरे कांच को इसके बीच में रख दिया जाय। सौंदर्य इस मामले में केवल एक सुकुमार और अदृश्य शक्ति है। किसी पेंटिंग के प्रथम दर्शन में ही यह चमकती है, पुस्तक में अपने आपको यह छिपा लेती है, ध्वनि अथवा चेहरे की मनोहरता की भांति इसके पीछे लगे रहने से यह क्रियाशील होती है। बल प्रयोग यह नहीं करती, यह मनुष्य को, इसके बारे में बिना उसकी आशंका किये ही, प्रवृत्त कराती है, और वह समझता है कि युक्तियों के सामने वह झुक रहा है जबकि वास्तव में वह मनोहरता से प्रलुब्ध होता है जिसे वह नहीं देखता।[2]

शुद्ध कला निस्सार (एम्प्टी) कला है।[3] लेखक का कार्य पाठकों को सन्देश देना है, जिसका अर्थ है "स्वेच्छापूर्वक अपनी आत्माओं की अनैच्छिक अभिव्यक्ति के लिए अपने लेखन को सीमित करना।" अभिव्यक्ति अनैच्छिक है, "क्योंकि मौन्टेन्य (Montaigne) से लेकर रैम्बो (Rambaud) तक, मृत व्यक्तियों ने अपने आपका पूर्ण रूप से चित्रण प्रस्तुत किया है, जबकि ऐसा करने का उनका अभिप्राय न था—वह कुछ ऐसी ही बात हो गयी कि जैसे उन्होंने अपने आपको इस काम में डाल दिया हो।" इस प्रकार उन्होंने जो कुछ अतिरिक्त अनिच्छापूर्वक हमें दिया है, वह जीवित लेखकों का मुख्य एवं स्वीकृत ध्येय होना चाहिए। क्लासिकल लेखकों के समर्थन में युक्तियाँ देना उन्हें बन्द कर देना चाहिए तथा उन्हें ऐसे विषय चुनने चाहिए जिनमें किसी की दिलचस्पी नहीं अथवा जो ऐसे सामान्य सत्य हैं जिन पर पहले से ही पाठकों का विश्वास है। उनके विचारों में गंभीरता की झलक हो लेकिन रिक्तता के प्रभाव (इफेक्ट ऑफ एम्पटीनैस) से वे युक्त हों,[4] तथा वे दुखी बाल्यावस्था, वर्ग विद्वेष अथवा निषिद्ध प्रेम आदि के माध्यम से पाठकों को समझाये जा सकें।

१—वही, पृ० १४
२—वही, पृ० १५
३—वही, पृ० १६
४—वही, पृ २०-२१

कौन सी कृति सुन्दर कही जा सकती है ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए सार्त्र लिखता है, "कोई कृति तब तक सुन्दर नहीं होती जब तक कि वह किसी रूप में लेखक से पलायन (ऐस्केप) नहीं करती। तात्पर्य यह कि यदि बिना किसी योजना के कोई लेखक चित्रण करता है यदि उसके पात्र उसके नियन्त्रण से पलायन करके उस पर सवार हो जाते हैं, और यदि उसकी लेखनी से निःसृत शब्दों में अपना कोई स्वातन्त्र्य रहता है तो उसकी कृति उत्कृष्ट कही जा सकती है।"[1] सार्त्र ने यहाँ क्वालो आदि नव्यशास्त्रवादियों के मत से अपना विरोध व्यक्त किया है।

अन्त में वह लिखता है, "क्योंकि लिखना हमारे लिए एक व्यवसाय है, क्योंकि लेखक अपने मरण से पूर्व जीवित है, क्योंकि हम सोचते हैं कि अपनी पुस्तकों में हमें जहाँ तक बने, सही होने का प्रयत्न करना चाहिए, तथा क्योंकि आनेवाली शताब्दियाँ यदि यह साबित भी कर दें कि हम गलती पर थे, तो भी इसका यह मतलब नहीं कि वे हमें पहले से ही गलत साबित करें, तथा क्योंकि हम सोचते हैं कि लेखक को अपनी कृतियों में संपूर्ण रूप से कुछ न कुछ कहना चाहिए, तथा अपने दोष, दुर्भाग्य और दुर्बलताओं को प्रस्तुत कर हीनतापूर्ण निष्क्रिय भूमिका अदा न करते हुए जीवन के प्रति दृढ़ इच्छाशक्ति पसन्द करनी चाहिए—यह उचित होगा कि 'लेखक क्यों लिखता है ?' यह समस्या उठायी जाय।"[2]

१—वही, पृ० १५४

२—वही, पृ० २२ २३

अल्बर्ट कामू (१९१३-६०)

अल्बर्ट कामू (Albert Camus) अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त एक फ्रांसीसी चिन्तक और लेखक हो गया है। अनेक उपन्यास, निबन्ध और नाटक उसने लिखे हैं। अल्जीरिया का वह निवासी था, और १९४० में पेरिस जाकर रहने लगा था। जमन नाजी सेना ने जब फ्रांस का घेरा डाला तो उसने प्रतिरोध आन्दोलन में भाग लिया। १९४२ में उसका प्रथम उपन्यास 'द स्ट्रेंजर' (अजनबी, अंग्रेजी अनुवाद –१९४६) प्रकाशित हुआ जिससे उसे ख्याति मिली। इसी समय 'द मिथ ऑफ सिसीफस, (सिसीफस की कल्पित कथा—१९४२, अंग्रेजी अनुवाद–१९५५')[1] नामक उसका निबन्ध प्रकाशित हुआ जिसमें जीवन की असंगतियों (ऐब्सरडिटी) पर प्रकाश डाला गया। कोरिन्थ के राजा का यही दण्ड और अभिशाप था कि वह एक भारी पत्थर को बड़ी कठिनाई से ठेल कर पहाड़ की चोटी पर ले जाता और शिखर तक पहुँचने के पूर्व ही वह पत्थर लुढ़क कर नीचे आ जाता। यही क्रम अनवरत चलता रहता था।

युद्धोत्तरकाल में वह राजनीतिक आन्दोलन में लग गया और सार्त्र के साथ काम करने लगा। अस्तित्ववाद के आन्दोलन में भी उसने काम किया। आगे चलकर १९४७ में उसने 'द प्लेग' (प्लेग, अंग्रेजी अनुवाद–१९४८) नामक एक दूसरा बड़ा उपन्यास, तथा १९५२ में 'द रिबेल' (विद्रोही, अंग्रेजी अनुवाद–१९५३) नामक निबन्ध लिखा जिसमें अतिशयता के विरुद्ध विद्रोह का प्रतिपादन किया गया। इस निबन्ध में जो विचार व्यक्त किये गये, उनके कारण सार्त्र और कामू अलग अलग हो गये।[2] कामू के शब्दों में, ' जिस दुनिया में मैं रहता हूँ उसे समझने का यह प्रयत्न है," तथा "कोई सोच सकता है जिस युग ने ५० वर्षों में ७ करोड आदमियों को

१—पुस्तक के मुख पृष्ठ पर पिंडार का निम्न वाक्य उद्धृत है—

ओह मेरी आत्मा, अमर जीवन की इच्छा न कर,
किन्तु संभव की सीमाओं को ही खत्म कर डाल।

डॉक्टर हरिवंश राय 'बच्चन' ने कामू के इस निबन्ध के प्रत्युत्तर में 'दो चट्टानें' नाम की प्रतीकात्मक कविता लिखी है जिसमें मानवता को निरर्थकता' से ऊपर उठाने की ओर लक्ष्य किया गया है। इस कविता का नाम वे 'सीसीफस बरक्स हनुमान' रखना चाहते थे। आगे चलकर उन्होंने अपने काव्यसंग्रह का 'दो चट्टानें' नाम दिया। कवि की इस रचना पर साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

२—पॉल एडवर्ड्स, 'द ऐनसाइक्लोपीडिया ऑफ फिलासॉफी जिल्द २

उखाड़ फेंका है, गुलाम बना लिया है अथवा उनकी हत्या कर दी गई है, उसकी तो केवल निंदा करना ही उचित है। लेकिन इसके दोष को समझना भी आवश्यक है।"

सर हर्बट रीड ने इस पुस्तक की भूमिका में महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किये हैं। वह लिखता है, " चिन्ता, निराशा और शून्यवाद के युग के बाद ऐसा प्रतीत होता है कि एक बार फिर आशा के युग का आविर्भाव हो गया है—फिर से मनुष्य और उसके भविष्य में हमारा विश्वास हो गया है। कामू की प्रथम रचना 'द मिथ ऑफ सिसीफस' का प्रारंभ जीवन अथवा मरण के—आत्मघात की क्रिया के उपलक्षण के—चिन्तन से हुआ था, जबकि प्रस्तुत रचना का प्रारंभ सहनशीलता अथवा असहननशीलता के—विद्रोह की क्रिया के उपलक्षण के—चिन्तन से हुआ। यदि हम जीने का निश्चय करते हैं तो इसलिए कि हमने इस बात का निश्चय कर लिया है कि हमारे व्यक्तिगत अस्तित्व का कोई निश्चित मूल्य है, यदि हमने विद्रोह करने का निश्चय कर लिया है तो इसलिए कि हमें इस बात का निश्चय है कि मानव समाज का कोई निश्चित मूल्य है।"

'कामू विद्रोह को मानव जाति का एक 'आवश्यक आयाम' मानता है। इसकी ऐतिहासिक वास्तविकता को अस्वीकार करना निरर्थक है—इसमें अस्तित्व के सिद्धांत की हमें खोज करनी होगी। लेकिन हमारे समय में विद्रोह के स्वभाव में परिवर्तन हो गया है। यह कोई मालिकों के विरुद्ध दासों का अथवा धनिकों के विरुद्ध गरीबों का विद्रोह नहीं, यह एक आध्यात्मिक विद्रोह है, जो जीवन की परिस्थितियों—स्वयं इस सृष्टि के विरुद्ध मनुष्य का विद्रोह है। '

कामू के अनुसार, इस बेहूदी दुनिया का कोई अर्थ नहीं, मनुष्य का ही केवल बहुत बड़ा अर्थ है। मनुष्य एक ऐसी चेतना है जो समस्त सत्य को अर्थ प्रदान करती है।

कामू शोपेनहावर, नीत्शे तथा जर्मनी के अस्तित्ववादियों से प्रभावित था। १९५७ में 'नोबल पुरस्कार' से उसे सम्मानित किया गया। १९६० में मोटर दुर्घटना में कामू की मृत्यु हो गयी।

शून्यवाद (निहिलिज्म)

अपने निबंधों में दार्शनिक समस्याओं का विश्लेषण न कर, कामू नैतिकता पर ही अधिक विचार करता है। उसका कहना है कि अतीत की किसी भी चिन्तनात्मक प्रणाली में मानव जीवन को कोई निश्चित मार्गदर्शन नहीं प्राप्त होता। इस सम्बन्ध में द मिथ ऑफ सिसीफस में विचार व्यक्त किये गये हैं। उसके अनुसार, आत्मघात समस्या एक मात्र गंभीर दार्शनिक समस्या है। वह प्रश्न करता है कि एक बार मानव जीवन को निरर्थकतापूर्ण रूप से हृदयंगम कर लेने के बाद

क्या जीवन का कोई अर्थ रह जाता है ? अपने निबन्ध की भूमिका में वह लिखता है, "जीवन का कुछ अर्थ है, इस बात पर आश्चर्यचकित होना, न्यायसगत और आवश्यक है, अतएव आत्मघात की समस्या को सम्मुख रखना न्यायसगत है। उत्तर है यदि कोई ईश्वर में विश्वास न भी करे आत्मघात न्यायसगत नहीं।"

कहना न होगा कि इन निबन्धों की रचना उस समय की गयी थी जब कि फ्रांस और यूरोप म विश्वयुद्ध छिडा हुआ था। यहाँ कहा गया है कि शून्यवाद की सीमाओं के अन्दर रहते हुए भी शून्यवाद की सीमा के बाहर जाने के लिए उपायों को खोज निकालना सम्भव है। अपनी रचना के सम्बन्ध में आशावान रहते हुए कामू ने लिखा है, 'द मिथ आफ सिसीफस" यद्यपि नैतिक समस्याओं को प्रस्तुत करती ह, अन्त में मुझे एक भव्य निमन्त्रण देती है रेगिस्तान के बिल्कुल बीच में जीवित रहने और सृजन करने के लिये।'

निरर्थकता अथवा 'असगति' ससार की असफलता है जो मानवी मूल्यों—हमारे व्यक्तिगत आदर्शों तथा सत्यासत्य के निर्णयों—को आधार प्रदान करनेवाली मानवी मांग को सन्तुष्ट करने में असमर्थ है। कामू की मान्यता ह कि आत्मघात को असगति के अनुभव का पर्याप्त उत्तर नहीं कहा जा सकता, क्योंकि मानव तथा 'संसार'—जो कि तनाव पैदा करते हैं—क दो छोरों का दमन करके ही आत्मघात की असगति से सम्बन्ध जुडता है। इसका मतलब हुआ कि आत्मघात अयोग्यता की स्वीकृति ह और इस स्वीकृति का मानव अभिमान के साथ मेल नहीं खाता।[१]

आत्मघात को कामू ने एक सामाजिक तथ्य स्वीकार किया है। 'इस तरह का काम हृदय की निस्तब्धता में ही तैयार होता है, क्योंकि यह कला का महान् काय है। मनुष्य स्वय इसस अनभिज्ञ रहता ह।" "इसका कीटाणु मनुष्य के हृदय मे निवास करता है। वहीं इसकी खोज की जानी चाहिए। हमें इस घातक खल को समझना चाहिए जो अस्तित्व म मुख को उज्ज्वलता से हटाकर हमें प्रकाश स पलायन की ओर ले जाता है।"[२]

असगति की कतिपय प्रतिक्रियाओं को कामू नैतिक दृष्टि स स्वीकार नहीं करता। अपने 'लैटर्स टू ए जर्मन फ्रेंड' (एक जर्मन मित्र को पत्र—१९४३ ४४) में उसने नात्सीवादी दुनिया की शून्यवादी दृष्टि की एक प्रतिक्रिया के रूप में ही व्याख्या की थी जिसे उसने मान्य किया था। लेकिन बाद में उसने इस इसलिए निन्द्य ठहराया क्योंकि इसमें भ्रातृभाव का निषेध किया गया है।

१—वही
२—द मिथ आफ सिसीफस, पृ० १२

'आध्यात्मिक विद्रोह'

कामू ने जब 'द प्लेग' तथा 'द रिबेल' की रचना की तो उसने शून्यवाद-जिसे निषेधात्मक कहा गया है—के स्थान पर मानववादी विचारों को प्रतिष्ठित किया। उसने देखा कि मनुष्य मनुष्य के प्रति अन्याय और अत्याचार करने पर तुला हुआ है और मानव समाज बीभत्स बुराइयों से परिपूर्ण है जिससे मानव अधोगति को प्राप्त हो गया है तो उसने अनेक अस्तित्ववादियों की भाँति दो प्रकार के विद्रोहों का घोषणा की—एक मानव अवस्था के विरुद्ध, दूसरा मानव अन्याय के विरुद्ध। इसके स्पष्टीकरण के लिए 'द रिबेल' की रचना की गयी जिसमें हत्या अथवा मानव की हत्या करने के लिए राजनीतिक समर्थन की समस्या को उठाया गया। इस विद्रोह को आध्यात्मिक विद्रोह' कहा गया है। ' विद्रोही गुलाम का कहना है कि उसमें कुछ ऐसी बात है जिससे वह अपने मालिक के व्यवहार के तरीके को सहन नहीं कर सकता, आध्यात्मिक विद्रोही की घोषणा है कि इस विश्व से वह निराश हो गया है। दोनों के लिए ही केवल शुद्ध और सरल निषेध की समस्या नहीं है। वास्तव में दोनों ही हालतों में विद्रोही जिन परिस्थितियों में रहता है, उन्हें स्वीकार करने से इन्कार करता है—उनका मूल्यांकन किया गया है।" कामू ने 'विद्रोह' को एक ऐसी सतत प्रक्रिया माना है जो अन्तर्विरोधों की शत्रु है और 'व्यवस्था' अपने गर्भ में अन्तर्विरोधों को पोषित करती है। अतः उसका कथन है कि लेखक को क्रान्तिकारी नहीं, विद्रोही बनना चाहिये। वास्तविक विद्रोह में जीवन और समाज की असंगतियों के विरुद्ध संघर्ष प्रक्रिया के रूप में स्वीकृत होता है, और प्रयोजन होता है 'पूर्णता'। कामू के शब्दों में, संयम (restraint) की अनुभूति ही वास्तविक आत्मबोध या आधुनिक बोध है।[1]

'द प्लेग' उपन्यास में भी शून्यवाद के पुनः मूल्यांकन की प्रवृत्ति दिखायी देती है। ओरान[2] में (१९४० में) प्लेग फैल जाता है—यह केवल नाजियों द्वारा

१—कामू, द रिबेल पृ० २९। विद्रोह और क्रान्ति में अन्तर बताते हुए कहा है कि क्रान्ति में नयी सरकार की स्थापना की भावना रहती है जब कि विद्रोह अनियोजित होता है और इसमें स्वतः निःसृत विरोध रहता है। देखिए, रिबेलियन और रिवोल्यूशन नामक अध्याय, पृ० २१२-१८

२—अल्जीरिया के समुद्र तट पर एक फ्रांसीसी बन्दरगाह। यह एक बड़ा विचित्र शहर है—न वृक्षावलि दिखाई देती हैं न कोई उद्यान, पत्तों की मर्मरध्वनि यहाँ सुनाई नहीं पड़ती, और न कपोतों का कूजन ही। ऋतुओं का ज्ञान आकाश देखकर ही हो पाता है। वायु के स्पर्श से अथवा फेरीवालों को, बाजार से लाये हुए फूलों को बेचते देखकर वसन्त ऋतु का ज्ञान होता है। नगरवासियों के

फ्रांस के पैराय का ही प्रतीक नहीं, बल्कि इसमें मानव जाति के प्रति किये हुए विविध अमानुषिक अन्यायों और अत्याचारों को भी अंकित किया गया है। डाक्टर रियै (Rieux) प्लेग के विरुद्ध संघर्ष करता हुआ दिखाई देता है जो युद्ध में आस्था पूर्वक सक्रिय भाग लेने वाले स्वयं लेखक का ही प्रतीक है।[1] लेखक के मानवतावादी दृष्टिकोण का यह परिचायक है।

विद्रोह और कला

कामू के अनुसार, कलात्मक सृजन में संसार के ऐक्य और उसके निषेध की माँग रहती है। निषेध इसलिए कि कुछ चीजों की इसमें कमी है तथा उस नाम में जिसमें यह कमी होता है। विद्रोह यहाँ अपने शुद्ध रूप और मौलिक जटिलताओं में देखा जा सकता है। क्रान्तिकारी सुधारों के साथ कला का विरोध है। उदाहरण के लिए, प्लेटो के मत में संसार की अपेक्षा सौंदर्य अधिक महत्वपूर्ण है, किन्तु आधुनिक युग का क्रान्तिकारी आन्दोलन कलात्मक प्रक्रिया से संयुक्त है जो प्रक्रिया अभी पूर्ण नहीं हुई है। सुधार नैतिकता को स्वीकार करता है और सौंदर्य को बहिष्कृत कर देता है। रूसो ने कला की निन्दा की है क्योंकि कला समाज द्वारा किया हुआ प्रकृति का भ्रष्ट रूप है। फ्रांस की क्रान्ति ने किसी कलाकार को पैदा न कर पत्रकारों को ही जन्म दिया है। सेंट साइमन ने उसीको कला स्वीकार किया जो सामाजिक दृष्टि से उपयोगी' है। रूसी शून्यवादी पिसारेव ने कला को सौंदर्यात्मक स्वीकार न कर उसका व्यावहारिक (प्रैगमैटिक) रूप ही अंगीकार किया। उसने कहा, "मैं रूसी राफल (Raphael) की अपेक्षा रूसी मोची बनना अधिक पसन्द करूँगा।" उसकी नजर में बूट जूतों की जोड़ी शेक्सपियर की अपेक्षा अधिक उपयोगी है। तालस्ताय ने तो कला का सम्पूर्णतया बहिष्कार ही कर दिया था। मार्क्स ने भी कला को शाश्वत न मानकर, यही स्वीकार किया कि कला अपने युग द्वारा निश्चित की जाती है तथा शासक वर्ग के अधिकृत मूल्यों की ही यह अभिव्यक्ति है। उसके अनुसार, कला का एक ही क्रान्तिरूप है और वह यह कि वह क्रान्ति की सेवा में संलग्न हो जाती है।

प्रत्येक विद्रोह में एकता के लिए आध्यात्मिक माँग, इस पर विजय पाने की अशक्यता तथा इसके स्थान पर किसी विश्व की निर्मिति देखी जाती है। समस्त

एकमात्र लक्ष्य है धनार्जन करना। उनका मुख्य पेशा व्यापार है। नगर अत्याधुनिक है। लोगों को सोचने विचारने का अधिक समय नहीं है, इसलिए स्त्री पुरुष परस्पर प्रेम करने के अभ्यस्त हो गये हैं। यहाँ मृत्यु बहुत कष्टदायक होती है जब कि इन्सान बेचैनी का अनुभव करता है। द प्लेग, पेंग्विन बुक्स, पृ० ५८

१—पॉल ऐडवर्डस ऐनसाइक्लोपीडिया ऑफ फिलॉसोफी जिल्द २

विद्रोही विचारों की अभिव्यक्ति या तो वक्तृत्व मे या चारो ओर से बन्द ससार में—जैसे मठों, दुर्गों, प्रेमियों के एकान्त मिलन-स्थानों, काराग्रहों, बिजली के तारो से घिरे हुए प्रदेशों, कॉनसन्ट्रेशन शिविरो आदि में—होती है, जिसके लिए सामजस्य और एकता की आवश्यकता है। इन बन्द दुनियाओं में मनुष्य राज्य कर सकता है और आखिर में उसे ज्ञान प्राप्त होता है।

सभी कलाओ की भी यही प्रवृत्ति है। कलाकार अपनी योजना के अनुसार ससार का पुनर्निर्माण करता है। कलाकार के विद्रोह में—जो सर्वाधिकारवादी क्रान्ति के लिए स्वत सन्देहास्पद है—उसी तरह की स्वीकृति है जसो कि दमितों के स्वत निस्सृत विद्रोह मे। कामू के अनुसार, कोई भी कला सम्पूर्ण निषेध पर जीवित नहीं रहती। "जैसे समस्त विचार और मुख्यतया असाथकता के विचारों (नॉन सिग निफिकेशन) का कोई अथ होता है, उसी प्रकार ऐसी कोई भी कला नही जिसमें साथकता न हो।" 'मनुष्य ससार के सम्पूर्ण अन्याय की निन्दा कर सकता है, लेकिन उसे सम्पूर्ण न्याय की भी माँग करनी होगी, जिसका वह अकेला निर्माण करेगा। लेकिन ससार की भीषणता का समथन वह नही कर सकता। सौंदय का सृजन करने के हेतु उसे एक साथ ही वास्तविकता की अस्वीकृति और किसी अश में इसका उन्नयन करना होगा। कला वास्तविकता का विरोध करती है लेकिन इससे छिपती नहीं।" 'इस प्रकार कला हमें विद्रोह के उद्भव तक ले जाती है, उस हद तक कि यह प्रवचक मूल्य (इल्यूजिव वैल्यू) को एक रूप प्रदान करती है जिसके लिए भविष्य सतत वादा करता रहता है, लेकिन जिसे कलाकार प्रस्तुत करता है और उसे इतिहास की पकड से झपटना चाहता है।" "कला का यथाथ लक्ष्य है वस्तुओं के अनवरत परिवतन की धार में डुबकी लगाना जिससे कि इसे एक ऐसी शैली प्रदान की जा सके जिसकी इसमे कमी है।" कामू के अनुसार, यह शैली उपन्यास की ही हो सकती है।[1]

कलाकार का कार्य

बिना युद्धो और कोट-कचहरियों के कामू अपने पात्रों को सजीव रूप में प्रस्तुत करना चाहता है। "अतीत काल के कलाकार अन्याय और अत्याचार को देखकर मौन रह जाते थे, किन्तु आजकल वे न मौन धारण करते है, न उदासीनता।"

कामू स्वच्छन्दतावाद मे विश्वास नही करता, साहित्य में वह नियम और व्यवस्था को अगीकार करता है। उसे "आश्चय होगा यदि ये नियम इस अव्यवस्थित समाज द्वारा अथवा ऐसे सिद्धान्तवादियों द्वारा घोषित किये जायेंगे जो अपने आपको समस्त नियमों से मुक्त समझते हैं।"

१—कामू द रिबेल, पृ० २१६-२४

"कलाकारों को कलाकारों की हैसियत से दुनिया के कामों में हस्तक्षेप करने की जरूरत नहीं, लेकिन एक इन्सान की हैसियत से है। खान में काम करनेवाला जो शोषित है अथवा जिसे गोली मार दी गयी है, कैम्पों में रहने वाले गुलाम, उपनिवेशों में रहनेवाला जनसमूह तथा निदय व्यवहार से खिन्न सैन्य दल—इन सबको उनकी आवश्यकता है जो उनके साथ सम्पर्क स्थापित कर उनकी मूक वाणी को दूसरों तक पहुँचा सकें।' 'मैंने जनता के संघर्ष में भाग नहीं लिया क्योंकि मैं चाहता हूँ कि यह दुनिया यूनानी मूर्तियों और अधर्माणियों से भर जाय।"

"हमें खतरा अवश्य स्वीकार करना होगा। कुर्सीबद्ध कलाकारों का समय बीत गया। लेकिन हमें कड़वाहट का निषेध करना चाहिए।" "उसका प्रमुख काय है, दमन का सामना करते हुए कारागृहों के द्वार खोल देना तथा सब लोगों के दुख-सुख को वाणी प्रदान करना। यहीं पर कला, अपने दुश्मनों के खिलाफ इस बात का समर्थन करती है कि यह किसी की भी दुश्मन नहीं है। कला अपने आपमें नवजागरण पैदा नहीं कर सकती जिसमें कि न्याय और स्वातन्त्र्य मिल सके। लेकिन इसके बिना नवजागरण का कोई रूप कायम न रहेगा, तात्पर्य यह कि वह कुछ भी न रह जायगा। बिना संस्कृति और आपेक्षिक स्वातन्त्र्य के—भले ही समाज स्वाधीन हो, लेकिन वह एक जंगल है। इसीलिए प्रामाणिक सृजन भविष्य का वरदान है"।[1]

१—द मिथ ऑफ सिसीफस, पृ० १६५-६६

फ्रान्ज काफ्का (१८८३-१९२४)

फ्राज काफ्का (Franz Kafka) एक सुप्रसिद्ध जर्मन उपन्यासकार और निबन्ध लेखक हो गया है। उसका जन्म प्राग में एक यहूदी परिवार में हुआ था। १९०७ से उसका लेखन कार्य आरंभ हुआ। अपनी रचनाओं को वह प्रकाशित नहीं करना चाहता था, अपनी रचनाओं के प्रति शून्यवादी भावना के कारण वह उन्हें प्रकाशन के योग्य नहीं समझता था[1] इसलिए उसकी अधिकाश रचनाएँ उसकी मृत्यु के बाद ही प्रकाश में आइ। इनमें 'द ट्रायल' (न्यायालय की सुनवाई–१९२५, अंग्रेजी अनुवाद–१९४५), 'द कासल' (महल–१९२६, अंग्रेजी अनुवाद–१९५३), 'अमेरिका (अमरीका–१९२७, अंग्रेजी अनुवाद–१९४९), काफ्का'ज डायरीज' (काफ्का की डायरियां, २ भाग–१९१० २३, अंग्रेजी अनुवाद–१९४८-४९), 'डिस्क्रिप्शन्स ऑफ ए स्ट्रगल ऐंड द ग्रेट वॉल ऑफ चाइना' (संघर्ष का वर्णन और चीन की बड़ी दीवार–१९६०) आदि उल्लेखनीय हैं।

कानूनी न्याय के प्रति अनास्था

उसकी रचनाओं से पता लगता है कि उसके दिमाग पर कानूनी तनाव बहुत अधिक मात्रा मे था। अपने 'लेटर टू हिज फादर' (पिता के नाम पत्र–१९१९) मे उसने अपने बचपन की एक घटना का उल्लेख किया है जिससे उसे अदालतों के कानूनी न्याय के प्रति कोई आस्था नहीं रह गयी थी। एक छोटे से 'अपराध' के लिए उसे जो अमानुषिक दण्ड का भागी होना पड़ा, वह उसके हृदयपटल पर सदा अंकित रहा। 'द ट्रायल' उपन्यास–जिसका लेखन १९१४ में आरंभ हुआ–का नायक जोजेफ बैंक का एक साधारण क्लर्क था। एक दिन अचानक उसे गिरफ्तार कर लिया गया और उसका अपराध तक उसे न बताया गया। अपने ऊपर लगाये गये रहस्यात्मक आरोपों से अपना बचाव करने के लिए उसने बहुत दौड़ धूप की। मुकदमा वकीलों के पास पहुँचा, लेकिन उसकी पैरवी करना उन्हें मुश्किल लगा। इस बीच में जोजेफ खाता पीता, मौज करता और अखबार पढ़ता रहा। मुकदमा अदालत में पेश हुआ। कमरे में अँधेरा था। अपराधी को कुछ समझ में नहीं आया, वह केवल इतना ही समझ सका कि उसे दोषी करार दे दिया गया है। लेकिन क्या ? वह आश्चर्यचकित रह जाता है। कुछ समय बाद दो सफेदपोश सज्जन उसके घर आये, और उसे साथ चलने को कहा। वे उसे एक गंदे स्थान पर ले गये। वहाँ एक पत्थर पर उसका सिर रखकर उसका धड़ अलग कर दिया गया। मरने के पहले

१—देखिये 'द ट्रायल, एपिलोग, पृ० २५३ ५६, पेंग्विन बुक्स १९६३

उसके मुह से निकलता है 'एक कुत्ते की भाँति।' जोजेफ के मस्तिष्क में एक ही विचार चक्कर काटता रहता था कानून शक्तिशाली है और वह है कमजोर, अतएव दुनिया के तर्क के अनुसार उसे कानून के बाहर होना चाहिए, अर्थात् वह अपराधी है। यही विचार उसे उत्तेजित करता रहा। निष्कर्ष के रूप में "गौण अपराध + कमजोरी की परिस्थिति + स्वयं बचाव = अपराध का मुख्य बोध", काफ्का के शब्दों में, "(निजपरक) अपराध का बोध = (वस्तुपरक) अपराध।"[1]

'असगति में सगति'

काफ्का का दूसरा उपन्यास है 'द कासल' (अपूर्ण), इसमें भी द्वन्द्वात्मक युक्तियों (डाइलैक्टिकल डिवाइसेज) का उपयोग किया गया है। 'के' नामक किसी भूमिमापक को—जिसे किले के भूमापन के लिए नियुक्त किया गया है—एक गाँव में बुलाया जाता है, जहाँ कि किले में रहनेवाले किसी पदाधिकारी का राज्य है। गाँव में पहुँच कर बडे धैर्य से भूमापक अपना काम करता है। किले के लोगों से वह टेलीफोन पर बातचीत करता है, लेकिन उसे एक अजीब-सा कोलाहल सुनायी देता है—अस्पष्ट हँसी सुनायी देती है और लगता है दूर से कोई किसी को बुला रहा है। कामू के शब्दों में "उसकी आशा पूर्ण करने के लिए इतना काफी है—ग्रीष्मकालीन आकाश में दृष्टिगोचर होनेवाले कतिपय सकेतों अथवा सध्या की प्रत्याशाओं की भाँति, जो हमारे जीवन के कारणों को बनाते हैं। विषाद का रहस्य यहाँ दृष्टिगोचर होता है जो काफ्का की विशेषता है।"

गाँव में जितने भी लोगों से वह मिलता है, उनसे वह अपने पद और कार्य के बारे में निर्देश और सुझाव माँगता है, लेकिन क्योंकि उसे उसके पद और कार्य के सम्बन्ध में स्पष्टतया कुछ नही कहा गया है वह अपने आपको पराया समझ कर अपनी कमजोरी महसूस करता है। गाँववालों का वह अविश्वास करने लगता है। उसमें इतनी सामर्थ्य नही रह गयी कि किले के मोहमाया से वह मुक्त हो सके (जैसे कि 'द ट्रायल' का जोजेफ के अदालत की मोहमाया से मुक्त नहीं हो सकता) जिससे वह आक्रान्त है। उसकी धारणा है कि किले मे पहुँचकर ही उसकी कमजोरी दूर हो सकेगी। ऐसी हालत में उसकी अनिश्चितता की यन्त्रणाओं को जारी रहने देने के लिए, किले से यदा-कदा उसकी मुक्ति के सुझाव प्राप्त होते रहते हैं।[2]

इस उपन्यास के सम्बन्ध में कामू ने लिखा है, "सर्वप्रथम इस अपनी चाहता की खोज में किसी आत्मा का, ससार के पदार्थों के शानदार रहस्य के जिज्ञासु किसी

१—पॉल ऐडवर्ड्स द ऐनसाइक्लोपीडिया ऑफ फिलॉसाफी, जिल्द ४, अलबर्ट कामू, द मिथ ऑफ सिसीफस पृ० १०० १०१

२—द ऐनसाइक्लोपीडिया ऑफ फिलासॉफी जिल्द ४, अलबर्ट कामू, वही, पृ० १०४५।

पुरुष का, तथा ऐसी स्त्रियों का-जिनमें कि ईश्वर के संकेत अन्तर्निहित हैं—वैयक्तिक साहसिक कार्य' समझना चाहिए।[1] तथा "यदि काफ्का असंगत (ऐब्सर्ड) को अभिव्यक्त करना चाहता है तो वह संगत का उपयोग करता है।" इस कथन को स्पष्ट करने के लिए स्नानगृह की नांद में मछली पकड़नेवाले किसी विक्षिप्त पुरुष का उदाहरण दिया गया है। उसे मछली पकड़ते देख, उसके मानस रोग की चिकित्सा करने के इरादे से किसी डाक्टर ने प्रश्न किया—"ये तुम्हें काट तो नहीं रही हैं?" उत्तर मिला— 'हर्गिज नहीं, मूर्ख कहीं के, इतना भी नहीं समझते कि यह स्नान करने की नांद है? यहाँ असंगत बात को तर्क की सहायता से संगत के साथ जोड़ा गया है। कामू के शब्दों में, काफ्का का संसार एक अकथनीय संसार है जिसमें मनुष्य स्नानगृह की नांद में मछली पकड़ने की यन्त्रणापूर्ण विलासिता स्वीकार कर लेता है—यह जानकर भी कि इसका कोई फल न होगा।"[2]

"फिर भी दुनिया कुछ बन्द नहीं है जैसी कि वह दिखायी देती है। प्रगति से वंचित इस विश्व में काफ्का ने एक विचित्र रूप में आशा का प्रवेश कराया है। इस सम्बन्ध में 'द ट्रायल' तथा 'द कासल' इस दिशा की ओर संकेत नहीं करते। 'द ट्रायल' में कोई समस्या उठायी है, जो किसी हद तक 'द कासल' में सुलझाई गयी है। प्रथम उपन्यास में, बिना निष्कर्ष पर पहुंचे हुए, अर्ध वैज्ञानिक (क्वासि- साइंटिफिक) पद्धति स्वीकार की गयी है, जबकि दूसरे में, किसी हद तक इस बात की व्याख्या की गयी है। 'द ट्रायल' में रोग का निदान है, 'द कासल' में रोग की चिकित्सा की कल्पना। लेकिन जिस चिकित्सा का यहाँ उल्लेख है, वह कार्यकारी नहीं होती। इससे प्रकृत जीवन में केवल रोग फिर से लौट आता है। यह उसे स्वीकार करने में सहायक होता है।[3] आज के मानव की परिस्थिति की अभिव्यक्ति इन रचनाओं में देखने में आती है। इओनेस्को के शब्दों में, काफ्का की रचना का मुख्य विषय है भूलभुलैया में खोया हुआ मनुष्य, जिसके पास मार्गदर्शक कोई सूत्र नहीं है। लेकिन उसके पास जो कोई सूत्र नहीं, वह इसलिये कि वह उसे नहीं चाहता। इसीलिये उसमें दोष, चिन्ता, इतिहास की असंगति की भावना उत्पन्न होती है"।[4]

१—अल्बर्ट कामू वही, पृ० १०१

२—वही पृ० १०४। इओनेस्को (Ionesco) के अनुसार 'असंगत (ऐब्सर्ड) का कोई उद्देश्य नहीं रहता वह मनुष्य की धार्मिक, आध्यात्मिक और अलौकिक जड़ों से विच्छिन्न रहता है मनुष्य खो गया है, उसके समस्त क्रियाकलाप ज्ञानशून्य, असंगत और अर्थहीन हैं।" मार्टिन एस्सलिन द थियेटर आफ द एब्सर्ड पृ० १७ पर से।

३—वही

४—मार्टिन एस्सलिन, वही पृ० २५६

काफ्का के विचार इतने अधिक मौलिक, भविष्यसूचक और मार्मिक हैं कि फ्रायड, मार्क्स तथा किर्केगार्द के आधार से उसकी भिन्न भिन्न व्याख्याएँ की गयी हैं। उसके नायकों ने न्याय, मान्यता और दुनिया का स्वीकृति के लिए जो शून्य खोजें की हैं, उन्हें साधक कहा गया है, क्योंकि वे हमारे मन में दया और न्याय की भावना का संचार करते हैं। जबकि यथार्थत जिस रूप में ये खोजें प्रस्तुत की जाती हैं उनसे निर्दयता और अन्याय की ही ध्वनि व्यक्त होती है, मानो जीवन के लिए ये आवश्यक हों। अवश्य ही इसस खोज की मान्यता कमजोर होती है।[1]

निजी मुक्ति के निरर्थक प्रयत्न

काफ्का ने एकदम वास्तविक और स्वप्नतुल्य ससार का चित्रण प्रस्तुत किया है जिसमे अपराधों एकाकीकता और चिन्ताओं से आक्रान्त मनुष्य अपनी निजी मुक्ति के लिए निरथक प्रयत्न की खोज में लगा रहता है। अस्तित्ववादियों ने असगति और भय के सम्बन्ध में जो विचार रक्खे हैं, उनकी यहाँ गवेषणा की गयी है। लोकाचार और लोकरूढ़ियों में खो जाने पर मनुष्य अपने आपको असहाय महसूस करने लगता है और ऐसी अवस्था में यह चिन्ताओं और कुण्ठाओं से ग्रस्त हो जाता है—इसी तथ्य को लेखक ने अपने ढंग से प्रस्तुत किया है।

काफ्का के विचारों को कॉन्सन्ट्रेशन कैम्पों के तक का भविष्यसूचक सकेत कहा गया हैं।" विध्वंसक को पूर्ण रूप से दोषी नहीं ठहराया जा सकता, अपने शिकार को वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति से पकड लेता है, क्योंकि शिकार अपने विध्वंस के लिए स्वयं उससे सहयोग करता है।"[2] यही उसकी भविष्यवाणियों का विकराल सकेत है।

१—द ऐनसाइक्लोपीडिया ऑफ फिलासॉफी, जिल्द ४

२—द ऐनसाइक्लोपिडिया आफ फिलॉसाफी जिल्द ४। बहुतों के अनुसार, काफ्का की रचनाओं मे निराशा और कुण्ठा की ध्वनि सुनायी पडती है लेकिन कामू ने इससे असहमति व्यक्त की है। इन्हें उसने आशापूर्ण बताया है। बी० ग्रोएथुइसेन (B Groethusen) ने 'द ट्रायल' की भूमिका में उपन्यास को 'एक दुखद भावतरग' (पेनफुल फैंसीज) कहते हुए लेखक को दिवास्वप्न द्रष्टा कहा है। उसके अनुसार "इस कृति की महानता इस बात मे है कि यह सब कुछ देती है लेकिन समर्थन किसी बात का नहीं करती।" देखिए, अल्बर्ट कामू, वही, पृ० १०७–११०

निष्कर्ष

आई० ए० रिचर्ड्स और टी० एस० इलियट के सिद्धान्त बीसवीं शताब्दी की नयी आलोचना के आधार स्तम्भ बने। इस समय आध्यात्मिक ह्रास से समीक्षा की रक्षा के लिए आलोचना के मानदण्ड स्थिर किये जाने की ओर लक्ष्य दिया जा रहा था। जी० ई० मूर ने जीवन म धर्म की आवश्यकता का प्रतिपादन करते हुए नैतिक श्रेष्ठता को मुख्य बताया। क्लाइव बेल ने धर्म और कला को अभिन्न स्वीकार किया। रोजर फ्राय और वर्जीनिया वुल्फ ने क्लाइव बेल के दृष्टिकोण को अपनाया। लीविस ने रिचर्ड्स के समीक्षा सम्बन्धी व्यावहारिक सिद्धान्तों का अनुकरण करते हुए कला मे सौंदर्य विषयक रुचि को मुख्य माना। ईलियट 'नयी आलोचना' का अग्रणी था। प्रतीकवाद का मुख्य बताते हुए कविता की नामविहीनता पर उसने जोर दिया। आधिभौतिक कविता को उसने महत्त्वपूर्ण मानकर उसे आलोचना का विषय स्वीकार किया। एलेन टेट ने इलियट म प्रभावित होकर परम्परा को धर्म की श्रेणी में रखा और परम्परा सम्बन्धी दृष्टिकोण को आलोचना का विषय बनाया। प्रतीकवादी आधिभौतिक परम्परा को स्वीकार करनेवाले कवियों को उच्च स्थान मिला। वारेन ने शुद्ध और अशुद्ध कविता की विवेचना करते हुए कविता मे एक विशिष्ट प्रकार के विरोधाभास का प्रतिपादन किया। जीवन की जटिलताओं और पारस्परिक विरोधों के बावजूद कविता जीवित रहती है इसलिए कविता में व्यग्य को आवश्यक बताया गया। विण्टर्स ने सम क्षा म नीतिवादी सिद्धान्त को अंगीकार करते हुए कविता का नैतिक अनुशासन माना, पलायन का साधन नहीं। कविता मे नैतिक महत्त्व स्थापित करने के लिए यहाँ छन्द की आवश्यकता का प्रतिपादन किया गया। मानवीय अनुभूति को शब्दों द्वारा अभिव्यक्त करने के लिए प्रतीक को आवश्यक माना गया। विलियम एम्पसन ने अस्पष्टता को काव्योचित साधन स्वीकार किया—ऐसी अस्पष्टता जो विचारों की क्षीणता अथवा कमजोरी के कारण पैदा न हुई हो, अनावश्यक रूप से जिसमें विषयवस्तु दुर्बोध न बन गयी हो, अथवा पाठक के मन पर जो असगति का प्रभाव न पैदा करती हो। आधुनिक आलोचना में शाब्दिक विश्लेषण को उसने मुख्य बनाया। मोरिस चार्ल्स ने शब्दार्थविज्ञान का सम्बन्ध कला के साथ स्थापित किया। उनकी मान्यता है कि प्रत्येक उक्ति म कोई-न कोई चिह्न अवश्य रहता है और प्रत्येक चिह्न मे उसके आयाम रहते हैं। विज्ञान मे शब्दार्थविज्ञान आयाम कला म पश्च वयघटित आयाम तथा शिल्पकला मे व्यावहारिक आयाम पाये जाते हैं। कनेथ बर्क ने साहित्य को एक सांकेतिक प्रक्रिया माना। कला को उसने अनुभव न मानकर अनुभव के साथ संयुक्त की जाने

वाली वस्तु स्वीकार किया। उसके कविता और समीक्षा सम्बन्धी विचार जीवन सम्बन्धी विचारों के साथ जुड़े हुए हैं। रैंसम, टेट, ब्रुक्स और वारेन आदि आलोचक उससे प्रभावित हुए। ब्लैकमूर ने शब्दों का महत्व प्रतिपादन करते हुए सांकेतिक भाषा की मुख्यता पर जोर दिया। उसके अनुसार, भाषा का सर्वोत्कृष्ट उपयोग संकेत द्वारा ही संभव है अतएव सांकेतिक कल्पना के माध्यम से ही यहाँ कला का मूल्यांकन किया गया है। इलियट, रिचर्ड्स और इरविंग, बैबिट, एम्पसन, विंटर्स और रैंसम आदि के सिद्धांतों से वह प्रभावित हुआ था। डब्ल्यू० एच० ऑडेन ने कला की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकवादी पद्धति स्वीकार की। मार्क्स और फ्रायड के सिद्धान्तों से भी वह प्रभावित था। सार्त्र आदि अस्तित्ववादी समीक्षकों ने मनुष्य को सृष्टि का केंद्रबिंदु मानकर उसे महत्व प्रदान किया। वस्तुप्रधान संसार को असंगत बताते हुए मानव के क्रिया व्यापार को यहाँ मुख्य माना गया। अस्तित्ववाद में जो जीवन के भय को और प्राणिलोक में मानव के स्थान को लेकर सब सामान्य समस्या पेश की गई, परन्तु उसका जो समाधान किया गया, उसे पतनोन्मुखी और कोरे आदर्शवादी दृष्टिकोण पर आधारित ही कहा जायगा।

इस प्रकार बीसवीं शताब्दी की रूपवादी समीक्षा अधिकाधिक जटिल और दुर्बोध होती गई। रेने वलेक के शब्दों में, 'वह हाथीदांत की बुर्ज में जा बैठी जिससे साहित्य का प्रयोजन दरिद्र बन गया और सामाजिक भूमिका से वह वंचित कर दिया गया।"

उपसंहार

पाश्चात्य समीक्षा का प्रारंभ यूनान से होता है। ग्राज से प्रढाई हजार वर्ष पूर्व यूनानियों में वैदिक ग्रार्यों की भाँति उत्कट जिज्ञासा विद्यमान थी। उन दिनों का समीक्षाशास्त्र धर्म, दर्शन और वक्तृत्व कला से मिला जुला था। सर्वप्रथम यूनानी-चिन्तक प्लेटो ने ग्रपनी ग्रन्त प्रवेशिनी सूक्ष्म बुद्धि से कला का लक्षण बताते हुए उसे प्रकृति ग्रथवा वस्तु जगत् की ग्रनुकृति कहा। उसका कथन था कि चित्रकला मूर्तिकला तथा नाटक ग्रादि वस्तु जगत् के ग्रनुकरण नहीं तो ग्रौर क्या हैं। वस्तु-सत्य को महत्व देने के कारण उसने प्रत्यक्ष वस्तु के पीछे उसके विचारत्व ग्रथवा 'ग्राईडिया' को स्वीकार किया। प्लेटो ने कला की तीन श्रेणियाँ मानी हैं (क) सामान्य विवरण, जिसमें गीतिकाव्य का ग्रन्तर्भाव किया गया है, (ख) ग्रनुकरण (मीमेसिस = इमीटेशन अथवा इम्परसोनेशन,[1] (ग) उक्त दोनों का मिश्रण। प्लेटो के व्याख्याताग्रों ने दूसरी श्रेणी में नाटक ग्रौर तीसरी श्रेणी में प्रबंधकाव्य (एपिक) का ग्रन्तर्भाव किया है। प्लेटो की यह मान्यता इतनी सुदृढ थी कि ग्ररिस्टोटल इसे जरा भी इधर उधर न कर सका। कला को उसने भी ग्रनुकृति ही माना, लेकिन कभी उसने उक्त तीनों रूपों को ग्रनुकरणात्मक कहा ग्रौर कभी केवल नाटक को ही।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात प्लेटो के संबंध में विचारणीय है कि कविता का विरोधी वह नहीं था। 'रिपब्लिक' (१० वीं पुस्तक) में ग्लाउकोन के साथ वार्तालाप करते समय उसने देवी देवताग्रों की प्रार्थना ग्रथवा सज्जन पुरुषों की प्रशंसा में रची हुई कविताग्रों का ग्रपने 'ग्रादर्श राज्य' में स्वागत किया है। इसी प्रकार ग्रनुकरणात्मक कविताग्रों के ग्रतिरिक्त होमर की शेष कविताग्रों को शैक्षणिक दृष्टि से उसने मूल्य-वान कहा है।

प्लेटो की भाँति ग्ररिस्टोटल ने भी विश्व को एक विचारवादी जगत् स्वीकार किया, तथा रूपतत्त्व (फॉर्म) ग्रौर पदार्थ (मैटर) को ग्रभिन्न मानते हुए उनके ऐक्य को समस्त विकास ग्रौर परिवर्तन का कारण बताया। ग्ररस्तू ने काव्य सत्य को मानव सत्य प्रतिपादित कर उसे दर्शन के समकक्ष ला रखा। पाश्चात्य समीक्षा में यह विचार परम्परा बहुत समय तक कायम रही।

ग्ररस्तू के बाद दीर्घकाल तक किसी महान् प्रतिभा ने जन्म नहीं लिया। रोमन काल में प्रायः यूनानी विद्वानों का ही ग्रनुकरण किया गया। इस समय काव्यशास्त्र

१—डाक्टर कृष्णलाल शर्मा के ग्रनुसार, इसे 'कविनिबद्धवक्तृप्रौढोक्तिसिद्ध' ग्रर्थात् कवि द्वारा रचित वक्ता की प्रौढ उक्ति, कहा जा सकता है।

-नूतन सिद्धान्त प्रतिष्ठित करने के बजाय वस्तुपरकता और अलंकारशास्त्र का ही
वकास हुआ। होरेस लैटिन भाषा का एक उत्कृष्ट कवि हो गया है जिसने काव्यकला
स्व की नियमों का प्रतिपादन कर उनके पालन को आवश्यक बताया।

रोमन साम्राज्य के पतन के बाद साहित्यिक जगत् में निराशा छा गयी।
रिणामस्वरूप होरेस के बाद १००० वर्ष तक इटली में किसी महान् विचारक का
न्म नहीं हुआ। वस्तुतः तीसरी शताब्दी से लेकर चौदहवीं शताब्दी तक—साहित्य
से लेकर दर्शन तक—समीक्षाशास्त्र में अंधकार ही छाया रहा। इस समय यूरोप में
धार्मिक पक्ष का प्रभुत्व होने के कारण धर्मनिरपेक्ष साहित्य को संशय दृष्टि से
खा जाने लगा जिससे स्वतन्त्र चिन्तन की धारा अवरुद्ध हो गयी। पादरियों की भाषा
टिन का प्रयोग भी साहित्यिक मार्ग के विकास में बाधक सिद्ध हुआ। यूरोपीय
मीक्षा का यह युग मध्ययुग अथवा अंधकार युग के नाम से कहा जाता है।

नवजागरण का युग नवमानववाद का युग था जब कि विश्व के साथ प्रत्येक
स्तु का निर्विचन सम्यक् स्थापित किया जा रहा था। न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण के
सिद्धान्त ने वैज्ञानिक जगत् में हलचल मचा दी। और भी कितने ही नये नये
ज्ञानिक आविष्कार इस काल में हुए जिनसे भौतिकवादी चिन्तनप्रणाली में वृद्धि
ई। छापेखाने के आविष्कार ने जीवन का नक्शा ही बदल दिया। ज्ञान की असीम
पिपासा जाग उठी और यूरोप सांस्कृतिक चेतना से मुखरित हो गया। जर्मन तत्व-
चिन्तकों के विचारों का प्रभाव भी काव्यसमीक्षा पर पड़ा। परिणामस्वरूप कविता
के माध्यम से विश्व की व्यवस्था को समझने का प्रयत्न किया जाने लगा। पूर्वकाल
में किसी अमुक विषय को लेकर काव्यरचना की जाती थी लेकिन अब किसी विचार
को केंद्रबिन्दु मानकर कविता लिखी जाने लगी। इंग्लैंड में इन दिनों वाद विवाद
चल रहा था कि यूनान और रोम की काव्यशास्त्र सम्बन्धी प्राचीन प्रणाली स्वीकार
की जाय या नहीं। सर फिलिप सिडनी ने स्वतन्त्र प्रणाली को स्वीकार करने का
समर्थन किया। इस समय तक इंग्लैंड में चासर और शेक्सपियर जैसी महान्
साहित्यिक प्रतिभाओं का उदय हो चुका था, फिर भी प्यूरिटन धर्म के अनुयायी
कविता पर अनेक आक्षेप किया करते थे। सिडनी ने इनका उत्तर देकर कविता की
जोरदार शब्दों में वकालत की। बेन जानसन प्राचीन यूनानी पद्धतियों की खोज की
अपेक्षा एलिजाबेथ युग की पद्धतियों की खोज में ही अधिक व्यस्त रहा। समीक्षा के
मानदण्डों को प्रतिष्ठित करने के लिए उसने साहित्य में अनुशासन को मुख्य बताया।
लेकिन नवजागरण काल के समीक्षा सिद्धान्तों में पिष्टपेषणता ही अधिक रही—
कोई प्रगतिविशेष देखने में नहीं आई।

यूनान के लोग वैदिक आर्यों की भांति ससीम में ही विश्वास रखते थे। प्राकृतिक
शक्तियों देवताओं को वे आदर की दृष्टि से देखते, और दीर्घजीवी होकर इस जीवन का

उपभोग करने की इच्छा रखते। आनंद और सुख की इन भावनाओं से उनकी काव्य रचनाएँ ओतप्रोत हैं। लेकिन आगे चलकर, ईसाई धर्म का प्रभुत्व होने पर यूनानी कविता असीम पर केंद्रित होती गयी। वीरत्व, प्रेम और सम्मान की भावनाएँ ईसाई धर्म से प्रभावित हुई जिससे नूतन साहित्य का आविर्भाव हुआ। यूनानी कला और साहित्य में रूपतत्त्व और पदार्थ की अभिन्नता स्वीकार की गयी थी, जब कि आधुनिक युग में दोनों को परस्पर विरोधी रूप में मान्य किया गया। यूनानी कला अधिक सरल, अधिक स्पष्ट और प्रकृति की भाँति अधिक स्वतन्त्र थी, जबकि स्वच्छंदतावादी आधुनिक कला रहस्यात्मक रूप में प्रस्तुत हुई।

सतरहवीं अठारहवीं शताब्दी में पाश्चात्य समीक्षा का केन्द्र इटली से हटकर फ्रांस पहुँच गया, जहाँ नव्यशास्त्रवाद का आविर्भाव हुआ। इतालवी काव्य सिद्धान्तों में अनेक अन्तर्विरोध दिखाई देते थे, अतएव लेखकों के उपयुक्त साहित्य संहिता तैयार की गयी। इससे अंग्रेजी विचार और साहित्यिक सिद्धान्तों में आमूल परिवर्तन हुआ। आलोचकों ने यूनानी सिद्धान्तों की नूतन व्याख्या करके उन्हें स्थिर किया। नव्यशास्त्रवाद के प्रवर्तक ब्वालो ने किसी विषय पर सही तौर से विचार करने के नियमों का निर्धारण किया। ड्राइडन ने प्राचीनता के अंधानुकरण को प्रशस्त न बनाकर तुलनात्मक समीक्षा का महत्त्व प्रतिपादन करते हुए समीक्षा के स्वतन्त्र मानदण्डों की स्थापना की। नव्यशास्त्रवादियों की रूढ़िगत मान्यताओं का विरोध किया गया।

अठारहवीं शताब्दी के काव्यशास्त्र को समुन्नत बनाने में तत्कालीन सामाजिक और बौद्धिक परिस्थितियों का विशेष हाथ रहा। एडीसन ने समीक्षा के सिद्धान्तों में कल्पना का समावेश कर कलाभिरुचि व आनंद को मुख्य बताया। आलोचना सम्बन्धी विचारों को उसने सर्वसाधारण तक पहुँचाने का प्रयत्न किया। एलेक्ज़ेंडर पोप ने ब्वालो के चरणचिह्नों का अनुगमन कर काव्यसिद्धान्तों का क्रमबद्ध विवेचन किया। प्रकृति का अनुकरण कर, उपयुक्त मानदण्डों के सहारे अपनी विवेक शक्ति को सुधारने का उसने आदेश दिया। प्राचीन शास्त्रवाद के समर्थक होने के कारण सेमुअल जॉनसन ने परम्परागत परिपाटी को ही स्वीकार किया और साथ ही आलोचनात्मक मानदण्डों को समुन्नत बनाने का प्रयत्न भी।

अठारहवीं शताब्दी के पश्चात् व्यक्तिवादी विचारधारा में वृद्धि होती गयी। पूर्व काल में परम्परा को अधिक मूल्यवान माना जाता था जिससे कला का यथोचित विकास न हो सका था। लेकिन जब कला को उदात्त भावों की अभिव्यक्ति का प्रतीक मान लिया गया तो भावों की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति पर जोर देना स्वाभाविक हो गया। काव्यसृजन में परम्परागत रूढ़ियों के बंधन टूटने लगे। अठारहवीं शताब्दी

मे बौद्धिकता के अतिरेक के कारण कल्पना और भावना बहुत कुछ दब सी गयी थी, उनका अब फिर से उदय हुआ। रूसो की विचारधारा, फ्रास की राज्यक्राति तथा वोल्तायर और गेटे की कृतियो से स्वच्छदतावादी प्रवृत्ति को बल मिला। व्यक्ति की महत्ता प्रतिष्ठित हुई और जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति पर जोर दिया गया। जर्मन के अध्यात्मदर्शन और सौंदर्यवाद का प्रभाव भी स्वच्छदतावाद पर पडा। कवि को अब तक बाह्य विश्व मे ही एक निश्चित और शाश्वत क्रम दिखायी देता था लेकिन अब उसे लगा कि यह क्रम केवल बाह्य ही नहीं, उसके अतरग में भी विद्यमान है। परिणाम यह हुआ कि वस्तुपरक प्रवृत्ति का स्थान आत्मपरक प्रवृत्ति ने ले लिया जिसमे कवि व्यक्तिचेतना के अतरग मे गोते लगाने लगा, पारलौकिकता की ओर उन्मुख हुआ प्रकृति की दिव्यशक्ति के रूप में उपासना करने लगा तथा स्वप्नद्रष्टा[1] बन कल्पना लोक मे उडानें भरने लगा।

सन् १८०० के आसपास वर्डसवर्थ की रचनाओ मे यह स्वच्छदतावादी प्रवृत्ति दिखायी देती है। उसने प्रकृति और मानव का मानववादी दृष्टिकोण से अवलोकन कर अपने आत्मपरक विचार व्यक्त किये। कविता को 'उदात्त अनुभूतियो का स्वच्छन्द प्रवाह' बताते हुए वर्डसवर्थ ने 'शाति के क्षणो मे स्मरण किये हुए आवेगो से' उसका जन्म स्वीकार किया। कॉलरिज इस युग का प्रतिनिधि चितक हो गया है। उसने समीक्षाशास्त्र के सिद्धातो का विश्लेषण न कर उनका तात्विक विवेचन किया। काव्य मे कल्पना तत्त्व को उसने मानदण्ड के रूप मे स्थापित किया। जर्मन चिन्तको से प्रभावित होने के कारण दर्शन और काव्य को उसने समान कोटि मे रखा जबकि उसके पूर्ववर्ती समीक्षको ने साहित्य मे शिल्पविधि को ही महत्त्व दिया था। सौंदर्य को उसने शिवत्व से पृथक् बताकर सत्य के साथ उसकी एकता स्थापित की जिससे सौंदर्यशास्त्र अध्ययन का एक अलग विषय माना जाने लगा। शेली स्वच्छदतावादी कवियो में सबसे अधिक क्रातिकारी चेतना का कवि हो गया है। काव्यगत प्राचीन रूढ़ियों के प्रति विद्रोह करके उसने भावी जीवन का दिव्य सदेश दिया। विज्ञान का सर्वोपरि महत्त्व प्रतिपादन कर इस समय कविता पर आक्षेप किये जा रहे थे, उनका शेली ने परिहार किया। 'सबसे सुखी और सर्वोत्कृष्ट मस्तिष्कों के श्रेष्ठतम और सर्वाधिक सुखमय क्षणों के लिखित विवरण को कविता प्रतिपादित कर

[1]—विलियम ब्लेक (Blake) ने कहा है

स्वप्नो का ससार कहीं श्रेष्ठतर है,

आकाश मे चमकनेवाले प्रातःकाल के तारे से प्रकाश से भी।

(द वर्ल्ड आफ ड्रीम्स इज बेटर फार,

अबव द लाइट ऑफ द मार्निंग स्टार)

कविता को दिव्य शक्ति स्वीकार किया गया। कीट्स स्वच्छन्दतावादी कवियों में सबसे अधिक स्वच्छन्दतावादी माना गया है। कविता के बौद्धिक अथवा नैतिक रूप को स्वीकार न कर उसने सौन्दर्यानुभूति को मुख्य माना। कवि के सर्वश्रेष्ठ क्षणों में ही उसने कविता का आविर्भाव स्वीकार किया, जैसे कि वृक्ष से स्वाभाविक रूप से पत्तियाँ प्रस्फुटित होती हैं। इस स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति के आविर्भाव के कारण अन्ततः समीक्षा अतीत की धारा से विच्छिन्न न हो गयी।

कविता का उद्देश्य आनन्द प्रदान करना माना जाय या नैतिकता? इस विषय को लेकर समीक्षकों में काफी मतभेद रहा है। होमर ने काव्य में आनन्द प्रदान करने की अलौकिक शक्ति को स्वीकार किया, जबकि प्लेटो ने चरित्र निर्माण को मुख्य ठहराया। सिडनी ने सदाचार की शिक्षा और आनन्द प्राप्ति दोनों को काव्य का प्रयोजन माना। कविता को उसने इतिहास की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली कहा क्योंकि वह इस बात पर जोर देती है कि सज्जनों को पुरस्कृत होना चाहिए और दुर्जनों को दण्ड का भागी। ड्राइडेन ने नैतिक शिक्षा की अपेक्षा आनन्द को मुख्य बताया। इस प्रकार सत्य, शिव और सुन्दर के भेद को हृदयंगम करते करते अठारहवीं शताब्दी ही गुजर गयी और तब कहीं कला और नैतिकता का सम्बन्ध स्पष्ट हो सका। महारानी विक्टोरिया के युग में राजनीतिक सामाजिक और वैज्ञानिक क्षेत्रों में प्रगति हुई जिसका प्रभाव समीक्षा पद्धति पर पड़ा। जैसे जैसे भौतिकवादी और उपयोगितावादी प्रवृत्तियों का जोर बढ़ा स्वच्छन्दतावादी विचारधारा का ह्रास होता गया। स्वच्छन्दतावादी बनकर कवि अपने भावावेश में अपने आपको भूल कर स्वतःस्फूर्त अनियन्त्रित वाणी में काव्यसृजन किया करता था, लेकिन अब वह यथार्थवादी परम्परा का अनुकरण कर साहित्य और जीवन का सम्बन्ध जोड़ने में जुट गया। इससे 'कल्पना' के स्थान पर सामाजिक, सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों का महत्त्व बढ़ा। केवल कथन की शैली को मुख्य न मानकर अब इस बात को महत्त्व दिया जाने लगा कि किस विषय का कथन किया जा रहा है।

बेलिन्स्की के आगमन से रूसी समीक्षाशास्त्र को व्यवस्थित रूप मिला। कला के लिए वास्तविकता को आवश्यक बताते हुए उसने कला को समाज के लिए उपयोगी माना। चेर्निशेव्स्की ने कला सम्बन्धी यथार्थवादी चिन्तनधारा को आगे बढ़ाया। कला को जीवन का दर्पण मानकर उसने शुद्ध कला को मदिरापान के गीतों की भाँति निरर्थक ठहराया। मार्क्स के भौतिक द्वन्द्ववाद (अथवा तर्कसम्मत भौतिकवाद या वैज्ञानिक भौतिकवाद) से समीक्षा जगत् में एक हलचल ही मच गयी। कला और जीवन का अटूट सम्बन्ध स्वीकार किया गया। उसने बताया कि कला की उत्पत्ति किसी शून्य में नहीं होती, और न किसी अकेले व्यक्ति का ही यह कार्य है, वरन् वह

एक ऐसे व्यक्ति से निर्मित होती है जो समाज का एक आवश्यक अंग है। कला का यहाँ "केवल सामाजिक कारणों का ही कार्य नहीं, वरन् सामाजिक कार्यों का कारण" भी स्वीकार किया गया।[1] मैथ्यू आर्नोल्ड ने साहित्य को 'जीवन की आलोचना' कहकर संस्कृति और सभ्यता को आलोचना के लिए आवश्यक कहा। केवल मनोरंजन के कारण ही नहीं, बल्कि जीवन का निर्माण करने और उसे शक्ति प्रदान करने के कारण कला को मूल्यवान प्रतिपादित किया गया। टाल्सटाय ने कला को आनंद का साधन न मान, उसे जीवन की एक अवस्था स्वीकार किया जिससे मानव मानव के बीच सम्पर्क हो और समस्त मानव एकता के सूत्र में बँध सकें। टाल्सटाय का कहना है कि जैसे हम उस भोजन को उत्कृष्ट मानते हैं जो स्वास्थ्य-वर्धक हो, भले ही उससे जिह्वा इन्द्रिय तृप्त होती हो या नहीं, इसी प्रकार जो कला मानवता की प्रगति में सहायक है, वही सर्वोत्कृष्ट है, चाहे वह सौंदर्य अथवा सौंदर्यात्मक आनंद प्रदान करती हो या नहीं। टाल्सटाय ने सभी शैलियों को उत्कृष्ट बताया है—ऐसी शैलियों को छोड़कर जो सुबोध नहीं अथवा प्रभावोत्पादक नहीं।[2]

१—विल्बर एस० स्कॉट ने अपनी 'फाइव अप्रोचेज आफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म' (न्यूयार्क, १९६६) में साहित्यिक समीक्षा के नैतिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, रूपतत्त्ववादी (फॉरमैलिस्टिक) और मूलादर्श सम्बन्धी (archetypal) दृष्टिकोणों का प्रतिपादन किया है। मार्क्सवादी आलोचना का सम्बन्ध यहाँ सामाजिक दृष्टिकोण से बताया गया है। इंग्लैंड और अमरीका में मार्क्सवादी दृष्टिकोण से साहित्य की व्याख्या करनेवाले अनेक समीक्षक हो गये हैं जिनमें आइन सी० डे लूइस, स्टीफेन स्पेंडर, आर्चिबाल्ड मैक्लीश के नाम मुख्य हैं। इस सम्बन्ध में 'न्यू मासेज', 'लेफ्ट रिव्यू' आदि पत्रिकाओं के नाम उल्लेखनीय हैं। निबन्ध संग्रहों में हिक्स द्वारा सम्पादित 'प्रोलेतेरियन लिटरेचर इन द यूनाइटेड स्टेट्स' (१९३५) सी० डे लूइस द्वारा सम्पादित 'द माइण्ड इन चेन्स' (१९३७), बर्नार्ड स्मिथ द्वारा सम्पादित 'फोर्सेज इन अमरीकन क्रिटिसिज्म' (१९३९), तथा स्वतन्त्र रचनाओं में वी० एफ० काल्वर्टन की 'द लिबरेशन आफ अमरीकन लिटरेचर' (१९३१), जान स्ट्रेची की 'द कमिंग स्ट्रगल फॉर पावर' (१९३३), रॉल्फ फॉक्स की 'द नोवल एँण्ड द पीपल' (१९३७) स्टीफेन स्पेंडर की 'द डिस्ट्रक्टिव एलीमेंट' (१९३५) फिलिप हैंडरसन की 'द पोएट एँण्ड सोसायटी' (१९३९) और जार्ज थामसन की 'मार्क्सिज्म एण्ड पोएट्री' (१९४५) आदि उल्लेखनीय हैं। वही पृ० १२–२७

२—टाल्सटाय के कला सम्बन्धी विचारों से मिलते जुलते विचार एच० जी० वेल्स और बर्नार्ड शॉ ने व्यक्त किये हैं। शॉ के अनुसार 'लेखक को अपने आपको कलाकारों की श्रेणी में न रखकर [illegible], पुरोहितों और पैगम्बरों की श्रेणी

आर्नाल्ड ने सभ्यता को कला की रक्षा के लिए आवश्यक बताया था, जबकि रस्किन ने कला को सभ्यता की रक्षा के लिए आवश्यक माना। कला में शिवत्व का समर्थन करते हुए उसने महान् भावनाओं की उद्भावना करनेवाली कला को ही सर्वश्रेष्ठ स्वीकार किया। कला का पुनरुत्थान करने के हेतु उसने सामाजिक व्यवस्था के 'शुद्धीकरण' पर जोर दिया।

आगे चलकर नव्यमानववादी सिद्धान्त के अनुयायी अमरीकी लेखक इरविंग वेबिट और पॉल एलमेर मोरे ने साहित्य को जीवन की 'आलोचना' कहा। साहित्य की प्रक्रिया के अध्ययन में साधनों को मुख्य न मान उन्होंने साहित्य के प्रयोजन को मुख्य अंगीकार किया। 'ईसाई मानववादी' (क्रिश्चियन ह्यूमैनिस्ट) टी० एस० इलियट ने भी मानवता की खातिर साहित्य में नैतिक दृष्टिकोण को ही अपनाया। वस्तुतः कलात्मक दृष्टिकोण से प्रगतिवादी होकर भी इलियट रोमन कैथोलिक धर्म का अनुयायी था। अंग्रेजी समीक्षकों में एफ० आर० लेविस और अमरीकी समीक्षकों में मोर विण्टर्स के नाम भी इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं।[1]

बीसवीं शताब्दी का प्रारम्भ होते होते पश्चिमी देशों में अनेक विश्वव्यापी हल चलें हुईं जिन्होंने समीक्षाशास्त्र को असाधारण रूप में प्रभावित किया। १८७०-से १६०२ तक का समय कृषि के ह्रास का समय था जबकि इंग्लैंड में 'ग्राम्य सभ्यता' का अन्त होने से लोग नगर के 'पक्षी' बनकर नगरों की ओर प्रयाण कर रहे थे। प्रथम विश्वयुद्ध आरम्भ होने के पूर्व स्त्रियों को मताधिकार प्राप्त हो जाने से पुरुषों का आधिपत्य समाप्त हो चला था। १९१४ में प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ गया, जो लगातार चार वर्ष तक चलता रहा। युद्ध के परिणामस्वरूप '१९१५ में पुरानी दुनिया का अन्त हो गया। १९१५-१६ की शीत ऋतु में प्राचीन लंदन की आत्मा ही विध्वस्त हो गयी। नगर, एक प्रकार से, नष्ट हो गया—दुनिया का हृदय अब वह नहीं रहा, भग्न भावावेशों, कामुकता, आकांक्षाओं, तथा भय और सन्त्रास का बवण्डर बन गया। लंदन की न्यायनिष्ठा समाप्त हो गयी, और उसका स्थान विशुद्ध अपकृष्टता ने ग्रहण कर लिया, अखबारों और जनता की आवाज में अवर्णनीय धुन्ता दिखायी पड़ने लगी तथा भारी भरकम कलंक का साम्राज्य छा गया।

में रखना चाहिए।' शा का कथन है कि 'कला को कला के लिए' मानने का अर्थ है 'धन के खातिर सफलता को स्वीकार करना।'' 'अच्छी कला अपने आपके लिए नहीं होती। ऐसा प्रयत्न करना अत्यन्त कठिन है।' एफ० एल० लूकस, लिटरेचर एँड साइकोलोजी, पृ० २६२-६३, लंदन, १९५१

१—वही, पृ० २३-२६। लेविस के अनुसार "मनुष्य, समाज और सभ्यता में रुचि होना ही वास्तविक साहित्यिक रुचि है।" बोरिस फोर्ड, द मॉडर्न एज, पृ० ४८।

खाते पीते सुसंस्कृत लोग मूल मिलाकर निष्क्रिय प्रतिरोधक बन गये। अपने कर्तव्य से वे जी चुराने लगे।　　　　"[1]

प्रथम विश्वयुद्ध के दर्म्यान 'डाडावाद' (Dadaism) का आविर्भाव हुआ जबकि १६१५-१६ में युद्ध की विभीषिका से बचने के लिए कतिपय कवि और कलाकार स्विट्जरलैंड भाग गये, जिनमें ट्रिस्टन त्सारा (Tristan zara), रिचर्ड हुल्सेनबैक आदि मुख्य हैं। ट्रिस्टन त्सारा की मान्यता थी कि जैसे जीवन में संयोग का महत्त्वपूर्ण स्थान है, उसी प्रकार साहित्य और कला में भी है, जैसे कागज के कटे हुए टुकड़ों पर हम अनेक शब्दों को चिपका दें और संयोगवश जहाँ भी ऊपर नीचे शब्द चिपक जाय, वे कविता का रूप धारण कर लें। इस मत के अनुयायियों ने करुण रस (पैथोस) अथवा मतिभ्रम (साइकोसिस) को ही सौंदर्य सिद्धान्त स्वीकार किया है। अदृष्ट (ऐब्सट्रैक्ट) कला में ये विश्वास करते थे।

इन परिस्थितियों में मार्क्सवादी सिद्धांत भी बुद्धिजीवियों को कम आकर्षित नहीं कर रहे थे। आर्थर कोएस्टलर ने अपने आत्मचरित में लिखा है, 'यह सिद्धान्त विश्वयुद्ध और गृहयुद्ध में निराशा से तथा सामाजिक अशान्ति और आर्थिक अस्तव्यस्तता से उत्पन्न हुआ था जबकि अतीत के साथ संपूर्ण विच्छेद की गंभीर और वास्तविक आकांक्षा जागृत हुई—न कुछ से मानव इतिहास का आरंभ करने के लिये। ज्योति के इस वातावरण में डाडावाद भविष्यवाद, अतियथार्थवाद, और पंचवर्षीय रहस्यवादी योजना (फाइव इयर प्लान मिस्टिक) एक विचित्र सम्मिश्रण के रूप में एकत्र हो गये।[2]

उधर मनोविज्ञान का अध्ययन बड़ी तेजी से हो रहा था। सिगमण्ड फ्रायड (१८५६-१९३९) ने मनोवैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर काव्य का सम्बन्ध अवचेतन मन के साथ जोड़ा। दमित वासनाओं को उसने कायगत कल्पनाओं की अभिव्यक्ति में कारण बताया। दुष्ट होने की अपेक्षा मनुष्य को रुग्ण ही अधिक माना गया।[3] फ्रायड के अनुसार मनुष्य एक जीववैज्ञानिक (बायलॉजिकल)

१—देखिए बोरिस फोर्ड द्वारा सम्पादित द मॉडन एज' (लंदन, १९६४) में जी० एच० बेण्टोक का 'द सोशल एण्ड इण्टेलैक्चुअल बैकग्राउण्ड' नामक लेख।

२—बोरिस फोर्ड, वही जी० एच० बैण्टोक का द सोशल एण्ड इण्टेलैक्चुअल बैकग्राउण्ड लेख।

३—फ्रायड के सिद्धान्त को लेकर समीक्षा में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाया गया। एफ० जे० हॉफमैन ने अपनी 'फ्रायडियनिज्म एण्ड द लिटरेरी माइण्ड' (१९४५) में लेखकों की कृतियों में फ्रायडवाद के अस्तित्व का अध्ययन किया। साहित्यसमीक्षा में मनोवैज्ञानिक अध्ययन का उपयोग किया गया। सर्वप्रथम आई० ए० रिचर्ड्स ने मनोवैज्ञानिक मानववाद का सिद्धान्त प्रतिष्ठित

प्राणी है, जो अपनी ज मजात इच्छाओ का दास है, अतएव वह प्रकृति के एक अश के सिवाय और कुछ नही है।

आगे चलकर १९२४ म फ्रायड के अतश्चेतनवाद पर अतियथार्थवाद का सिद्धान्त आधारित किया गया। फ्रास के आ द्रे ब्रतों (Andre Breton) और पाल एलुग्रड (Paul Eluard) इस सिद्धा त के उन्नायक हैं। अतियथार्थवादी कलाकृति का निर्माण स्वप्न सवेदना के ऐसे बिम्बो के माध्यम से करना चाहता है जो *वास्तविकता और स्वय जीवन के प्रति वितृष्णा की भावना पैदा करते हैं।* इसीलिए इन कलाकारो की रचनाओं म कुस्वप्न मतिभ्रम, रोगात्मक दशा, आशा हीन निराशावाद आदि का चित्रण देखने मे आता है, जैसा कि टी० एस० इलियट, जेम्स जॉय, फ्राज काफ्का और एजरा पाउण्ड आदि की कृतियो मे दखा जा सकता है। वस्तुत यह सिद्धान्त मूल रूप से चित्रकला के क्षेत्र म ही अधिक प्रचलित हुआ।[1]

अतियथार्थवाद से मिलती जुलती दूसरी विचारधारा है प्रकृतवाद (नचुर लिज्म)। फ्रास के फ्लाबेयर और एमिले जोला (Emile-Zola १८४० १९०२) इसके प्रतिष्ठाताओ मे गिने जाते हैं। प्रत्यक्षवाद (पोजिटिविज्म) के सस्थापक

किया। इसके आधार से केनेथ बक ने 'एनेटोमी इन बीहाफ आफ द प्ले' नामक निब ध म लेखक और पाठक के बीच अवचेतन सम्ब धो की परीक्षा की है। एडमण्ड विलसन ने लेखकों के साहित्यिक जीवनचरित को उनकी कला को समझने मे सहायक माना। डी० एच० लार स के शब्दो मे, 'कोई लेखक अपनी रचनाओ मे अपनी रुग्णता को उतार डालता है।' एफ० एल० लूकस ने लिटरेचर एँण्ड साइकालोजी मे बताया कि मनोविज्ञान की सहायता से किस प्रकार कितने ही कल्पित चरित्रों की व्याख्या की जा सकती है। विल्वर स्काट वही, पृ० ६६–७२।

१—लूकस ने लिटरेचर एण्ड साइकोलोजी' (पृ० १५०) में अतियथार्थवादी लेखक सल्वडोर डाली (Salvador Dali) का निम्नलिखित वाक्य उद्धत किया है— 'जो कुछ मै करता हूँ, उसमे से प्राय कुछ भी मैं नहीं समझता, लेकिन फिर भी इससे मेरा हृदय गर्व और सतोष से भर जाता है।' हेनरी मिलर का 'अतियथार्थवादियो के नाम एक खुला पत्र' यहा उद्धत किया गया है। "हमारे यहाँ जाति देश और धर्म के विद्रोही हो गये हैं लेकिन अभी तक ऐसे सचमुच के विद्रोही नहीं थे जिन्होने मानव जाति के प्रति विद्रोह किया हो, और इसको हमे भाव यरता है।' इस पर मिलर ने कहा है–'मुझे लगता है कि इस प्रकार के विद्रोही बहुत अधिक सख्या मे हुए हैं और हैं–कम से कम कला जगत मे तो हैं ही। वही, पृ० १४० फुटनोट।

मोमटे और स्पेंगर आदि विद्वानों ने प्रकृतवाद की दार्शनिक नींव स्थापित की थी। प्रकृतवादी सिद्धान्त वास्तविकता के अन्दर प्रवेश न कर, कलात्मक चित्रण को आकस्मिक असाधारण वस्तुओं और घटनाओं के निकट अनुकरण तक ही सीमित कर देता है। इसके उदाहरण जोला की रचनाओं में देखे जा सकते हैं। प्रकृतवादी कलाकारों का ध्यान जीवन के शरीरवैज्ञानिक पक्ष, आदिमकालीन मनोरंजन, भावुकता और भावुकतापूर्ण नाटकों पर ही केंद्रित रहता है। कला की यह प्रवृत्ति आजकल के दलदार उपन्यासों और कॉमिक्स, डकैती की फिल्मों, जासूसी कथा कहानियों, अश्लील चित्रों, नग्नचित्र पेंटिंगों और 'जाज' संगीत आदि में देखने में आती है। प्रकृतवादी रचनाओं में निष्क्रियता, सामाजिक संघर्ष के प्रति विरक्ति, जन जीवन के सुख दुख के प्रति उदासीनता, नैतिकता के प्रति अवहेलना आदि प्रवृत्तियाँ मुख्य रूप से पायी जाती हैं।

इन्हीं परिस्थितियों में कला के लिए कला रूपवादी[1] सिद्धान्त का प्रादुर्भाव हुआ। विक्टोरिया युग के समीक्षक तथा न यमानतावादी चिन्तक साहित्य की नैतिक उपयोगिता पर जोर देते आय थे, ऐतिहासिक और साहित्यिक परम्परा में उन्होंने शास्त्रीय (एकेडेमिक) रुचि और लेखक के जीवनचरित को मुख्य स्वीकार किया था। इसी प्रकार प्रभाववादी समीक्षक प्रत्यक्ष साहित्यिक अनुभव को आलोचक की व्यक्तित्व की अतिरंजना (odyssey) मानने लगे थे। कलावादियों को रस्किन का सिद्धान्त अनिवादी और सर्कीर्ण प्रतीत हुआ जिसमें 'शिवत्व और नैतिकता को

१—रूपतत्त्ववादी (फार्मलिस्टिक) दृष्टिकोण का साहित्यिक समीक्षा में अन्यतम स्थान है। इसे 'एस्थेटिक, टेक्सचुअल', 'ऑण्टालाजिकल' अथवा 'न्यू क्रिटिसिज्म भी कहा जाता है। इसके विकास में इलियट का विशेष हाथ रहा है। पाउण्ड और ह्यूम से प्रभावित होकर उसने कला को सामाजिक, धार्मिक आचार-शास्त्रीय अथवा राजनीतिक विचारों की अभिव्यक्ति न मानकर कला को कला के रूप में ही स्वीकार किया। उसके अनुसार, कवि अपने भावावेग और व्यक्तित्व से पलायन कर कविता में प्रवेश करता है। वह एक ऐसी समीक्षा को स्वीकार करता है जो बाह्य रूप से ऐतिहासिक नैतिक मनोवैज्ञानिक और समाजवैज्ञानिक व्याख्या से स्वतन्त्र है और किसी कृति के सौंदर्यात्मक गुण पर भी वह केंद्रित नहीं होती। आई० ए० रिचर्ड्स ने भी समीक्षा में शब्दार्थविज्ञान (सिमेंटिक्स) का सिद्धान्त स्वीकार कर रूपतत्त्ववादी समीक्षा का ही समर्थन किया है। इसके अतिरिक्त एम्पसन, ब्लैकमूर, टेट, रैन्सम विन्टर्स, ब्रुक्स और राबर्ट पेन वारेन के नाम इस सम्बन्ध में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। देखिए विल्बर स्कॉट, वही, पृ० १७६-८४।

कला की कसौटी मानकर समीक्षा को बहुत सरल बना दिया गया था। प्रकृतवाद की प्रतिक्रिया के रूप में भी रूपवादी—विशेषकर प्रतीकवादी—प्रवृत्ति का उदय हुआ। क्योंकि प्रकृतवादियों का चित्रण प्रकृति के अनुकरण तक ही सीमित होकर रह गया था।

मार्क्सवादियों का सामाजिक मूल्यों पर जोर देना, तथा लेखकों के स्नायुरोग (न्यूरोसिस) का मनोवैज्ञानिक आधार प्रतिपादित किया जाना भी सम्भवत रूपवादी विचारधारा के आविर्भाव में कारण हुआ।[1] कलावादी समीक्षक यथार्थवादी विचार-धारा के विरुद्ध कला की 'स्वोद्देश्यता और उसके सपूर्ण रूप (एब्सोल्यूट नेचर) पर जोर देते थे जिसका लक्ष्य शुद्ध सौन्दर्यात्मक आनन्द प्रतिपादित किया गया था। कलावादी सिद्धान्त में कला का कोई ज्ञानात्मक (कागनिटिव), आदर्शात्मक अथवा उपदेशात्मक महत्त्व स्वीकार नहीं किया गया, और न उसे युगीन आवश्यकताओं का पूरक ही माना गया बल्कि कलाकार को समाज से स्वतन्त्र बताया गया जिसका समाज के प्रति उत्तरदायित्व नहीं है। अब तक कला द्वारा किसी चीज की व्याख्या की जाती थी लेकिन अब उसे एक घटनामात्र समझा जाने लगा। अब तक उसका कोई उद्देश्य रहता था, लेकिन वह उद्देश्य समाप्त हो गया, क्योंकि कला घटनामात्र रह गयी। अतएव कला के माध्यम से जीवन की व्याख्या करना बन्द हो गया।

उन्नीसवी शताब्दी के अन्त और बीसवी शताब्दी के आरंभ में ह्विसलर, एडगर एलेन पो, वाल्टर पेटर, आस्कर वाइल्ड और ए० सी० ब्रेडले आदि समीक्षकों ने कलावादी सिद्धान्त को समुन्नत बनाया। इन्होंने काव्य का लक्ष्य केवल आनन्द माना, नैतिक शिक्षा नहीं। ह्विस्लर ने घोषित किया कि प्रकृति को हम मुश्किल से ही सही देख पाते हैं अतएव उस पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। एलेन पो ने शिव और सत्य को अस्वीकार करके सौंदर्यप्राप्ति को ही काव्य का प्रयोजन बताया। उपदेशात्मक काव्य को उसने साहित्य को भ्रष्ट करनेवाला काव्य का शत्रु प्रतिपादन करते हुए 'कविता के लिए लिखी हुई कविता को ही सर्वोपरि माना। पेटर के मत में समस्त कला उद्देश्यहीन होती है। नैतिकता को उसने कला के अधीन स्वीकार किया। कला में सौंदर्यवाद के सिद्धान्त को अंगीकार करते हुए रूपविधान पर जोर दिया गया। किसी कलाकृति में वास्तविकता को सत्य की कसौटी न मान आत्माभिव्यंजना को ही मुख्य माना गया। ऑस्कर वाइल्ड ने कला को सर्वोपरि वास्तविकता स्वीकार करते हुए जीवन को कल्पना का केवल एक प्रकार कहा। उसका कथन था कि सच्चा कलाकार जनसामान्य का कभी ध्यान नहीं रखता, इसलिए कला अपने युग की प्रतीक नहीं होती। वह इसलिए लिखता था कि लिखने से उसे कलात्मक आनन्द प्राप्त होता था। प्रकृति को कला की अपेक्षा वह जघन्य मानता

१—विन्सर स्काट, फाइव अप्रोचेज आफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म पृ० १८१

था। ब्रैडले ने कलावादी सिद्धान्त पर किये जानेवाले आक्षेपों का उत्तर देकर इस सिद्धान्त को सुप्रतिष्ठित बनाया। कविता को उसने एक प्रकार का मानवहित माना है ऐसा हित जिसके आन्तरिक मूल्य का निर्धारण दूसरे हित का निर्देश करके नहीं किया जा सकता। जीवन और काव्य को उसने एक ही वस्तु के दो रूप माने हैं, समानान्तर रूप से दोनों आगे बढ़ते हैं, लेकिन दोनों कभी मिलते नहीं। उसका कथन है कि यदि कवि किसी बात को भलीभाँति कहता है तो उसकी कला सफल है, वह क्या कहता है यह महत्त्वपूर्ण नहीं। बेनेदेतो क्रोचे ने अपने सौंदर्यवादी सिद्धान्त से कला की शुद्धता का प्रतिपादन किया। कला के आनन्द को उसने सहजानुभूति मानकर सहजज्ञान को स्वतः अभिव्यंजना स्वीकार किया, और अभिव्यंजना को सौंदर्यात्मक अथवा कलात्मक तथ्य से अभिन्न बताया। कलात्मक कृतियों को सहजानुभूत ज्ञान माना गया। सौंदर्यबोध को ही सौंदर्य कहा गया, अतएव क्रोचे के मत में अभिव्यंजना असुन्दर नहीं होती। काव्य के सौंदर्य को अभिव्यंजना का सौंदर्य माना गया। अभिव्यंजना स्वतन्त्र प्रेरणा है अतएव कलाकार अपनी कला के लिए विषयवस्तु का चुनाव नहीं करता। यही अभिव्यंजनावाद है।

बीसवीं शताब्दी चिन्तन की विविध धाराओं का युग रहा है। अतियथार्थवाद, अन्तश्चेतनावाद, मार्क्सवाद, अभिव्यंजनावाद आदि प्रवृत्तियाँ इसी काल की देन हैं, जिनकी चर्चा की जा चुकी है। अतिशय बुद्धिवादिता इस युग की विशेषता रही है। इस ग्रंथ में आधुनिक आलोचना को 'किसी वृद्ध मुसाफिर द्वारा तय की गयी मरुस्थल की शुष्क और नीरस यात्रा' बताया गया है। वस्तुतः १९३० के बाद का काल १९१० जैसा उत्तेजनादायक नहीं रहा। १९१० से १९३० तक के काल में अंग्रेजी समीक्षा के पूर्वकालीन समस्त मौलिक विचारों की उद्भावना की गयी, अथवा अभिनव रूप में उनकी अभिव्यक्ति की गयी। उदाहरण के लिए, मिल्टन, स्वच्छन्दतावादी और विक्टोरिया युग के चिन्तकों तथा पोप और ड्राइडन आदि समीक्षकों के विचारों का समावेश इस काल की विचारधारा में देखने में आता है। अंग्रेजी साहित्य में यह काल अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना गया है जिसकी तुलना १५९० से १६१२, अथवा १७१० से १७३५, अथवा १७९८ से १८२२ तक के काल से की जा सकती है जबकि नवजागरण काल से लेकर स्वच्छन्दतावादी काल तक अंग्रेजी साहित्य के प्रतिभाशाली चिन्तकों ने जन्म लेकर समीक्षाशास्त्र को विकसित किया। १९३० के बाद किसी अभिनव मौलिक समीक्षा पद्धति का विकास देखने में नहीं आता—प्रायः रूपवादी सिद्धान्त को लेकर ही चर्चाएँ होती रहीं। स्कॉट जेम्स ने लिखा है, "किसी कलाकृति का मूल्य इस बात पर निर्भर है कि हमें प्रभावित करने के लिए उसमें कितनी सामर्थ्य है, जिसे कि कलाकार चाहता है।" लेकिन प्रश्न होता है कि इसके लिए आधुनिक कलाकार को प्रकाश कहाँ से प्राप्त हो? जनतान्त्रिक

प्रणाली का प्रवेश होने पर इस समय राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक क्षेत्रों में अभूतपूर्व परिवर्तन हुए जिससे अनेक विषमताओं और दुरूहताओं से जकड़ा जाकर मनुष्य कुण्ठा, निराशा और अनास्था से ग्रस्त हो गया।

आई० ए० रिचर्डस इस काल में एक सुप्रसिद्ध समीक्षक हुआ जिसने अपने मनोवैज्ञानिक मानववाद के सिद्धान्त से उत्तरकालीन समीक्षकों को प्रभावित किया। साहित्य की अनुभूति और जीवन की अनुभूति को अभिन्न मानते हुए कलावादी सिद्धान्त का उसने विरोध किया। विज्ञान और कविता में पुनः संघर्ष छिड़ गया था। रिचर्डस ने वैज्ञानिकों द्वारा कविता पर किये गये आक्षेपों का उत्तर विज्ञान द्वारा ही दिया। मनोवैज्ञानिक पद्धति को मुख्य मानकर अनुभवों को पृथक् करने और उनका मूल्यांकन करने को उसने समीक्षा माना।

टी० एस० इलियट वर्तमान युग का प्रभावशाली कवि और आलोचक हो गया है। शुद्ध मनोवैज्ञानिक आधार पर प्रतिपादित रिचर्ड्स के सिद्धान्तों को अस्वीकार कर उसने कलाकार की निर्वैयक्तिकता को कला का उच्चता का आधार माना। प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् जिन जटिल परिस्थितियों से समाज गुजर रहा था, उनको अनुभूति प्रदान करना सहज न था। ऐसी परिस्थिति में परम्परागत रचना विधान से हटकर इलियट ने अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए एक अभिनव शैली मान्य की। जीवन के मूल्यों के प्रति ह्रासोन्मुखी प्रवृत्ति काम कर रही थी, अतः रूसो के मानववादी सिद्धान्तों पर आधारित स्वच्छन्दतावाद के सिद्धान्त को तिरस्कृत किया गया। मनुष्य को अपूर्ण बताते हुए इस विश्व को 'कूड़े करकट का रेगिस्तान' और 'राख का गर्त' बताया गया जिस पर कि घास उग आई है। मानववाद पर प्रतिष्ठित सभ्यता ह्रासोन्मुख होती जा रही थी, इसलिए मानव सभ्यता और संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए नैतिकता और धार्मिकता पर जोर दिया गया। स्वच्छन्दतावाद को 'बिखरा हुआ धर्म' कहकर वैज्ञानिक पृष्ठभूमि के आधार पर शास्त्रवाद का समर्थन हुआ।

बिम्बवाद, प्रभाववाद और प्रतीकवाद जैसे सिद्धान्तों का आविर्भाव भी इसी प्रकार की दुरूह और जटिल परिस्थितियों में ही हुआ। बिम्बवादियों ने उन्नीसवीं शताब्दी की भावुक, कल्पना प्रधान और अस्पष्ट स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियों के स्थान पर कठोर, स्पष्ट तथा प्रभविष्णु परम्पराओं को स्वीकार किया। अलंकार, अस्पष्ट अभिव्यक्ति और लय को निरर्थक मान कर रूप को अर्थ का अभिव्यंजक स्वीकार करते हुए शब्दों के बिम्बों की खोज की गयी। एजरा पाउण्ड ने अर्थ के स्पष्टीकरण में स्वाभाविक संकेत प्रदान करने के कारण चित्रलिपि को कविता की भाषा का आदर्श माना। फ्रांसीसी चित्रकारों द्वारा प्रतिष्ठापित प्रभाववादी शैली कला सम्बन्धी परम्पराओं के विरोध में उद्भूत हुई, जिसके द्वारा प्रकृति को एक अभिनव रूप में

देखने का प्रयत्न किया गया। वायुमंडल के कारण क्षण क्षण में पड़ने वाले प्रभावों के कारण किसी एक क्षण के प्रभाव को ही मुख्य स्वीकार किया गया। यह प्रवृत्ति स्वच्छंदतावादी धारा को प्रमाणित करती थी। प्रतीकवादी विचारधारा ने भी पाश्चात्य समीक्षा पद्धति के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। प्रकृतवाद और रूपगत रूढ़ियों के विरुद्ध हुई प्रतिक्रिया का यह परिणाम था। प्रकृति को यहाँ दुराशय और पतित बताते हुए प्रकृति का स्थान मानव को प्रदान किया गया। काव्य की अभिव्यक्ति के प्रकार को अभिव्यंजक रूप में स्वीकार करते हुए सांकेतिक भाषा को अपनाने का आग्रह प्रबल रहा। प्रतीकों को आध्यात्मिक और बौद्धिक अर्थों का संकेत चिह्न माना गया। प्रतीकवादियों में अग्रणी बोदलेयर की मान्यता थी कि सौंदर्य सम्बन्धी विचार नैतिकता के मिथ्या विचारों से उद्भूत हुए हैं तथा यदि भीषणता को कलात्मक रूप में व्यक्त किया जाय तो वह सौंदर्य का रूप धारण कर लेती है। 'कविता के सिवाय कविता' का अन्य कोई उद्देश्य यहाँ स्वीकार नहीं किया गया। यथार्थवादी कलाकार को कलाप्रवण कलाकार की अपेक्षा निम्न कोटि का बताया गया। मलार्मे ने प्रतीकवादी सिद्धान्त को साहित्यिक रूप दिया। भाषा को वह मायावी शक्ति मानता था, इसलिए उसका कहना था कि शब्दों का चुनाव अत्यन्त सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए जिससे बिम्ब एक दूसरे में प्रतिबिम्बित हो सकें। कविता को स्वाभाविक प्रेरणा से उत्पन्न न मानकर उसे शिल्पजन्य व्यवसाय स्वीकार किया गया। कलात्मक भाषा की यथार्थता तथा समाज, प्रकृति और स्वयं कलाकार के व्यक्तित्व से बाह्य होना चाहिए। कवि के अदृश्य हो जाने को ही आधुनिक कविता की खोज माना गया। रैम्बो ने उन बिम्बों को कविता कहा जिन्हें कवि का अचेतन मन क्षमतापूर्वक संयोगवश सामान्यजनों के समग्र अभिव्यक्त करता है। मादक द्रव्य तथा लम्पटता का उसने समर्थन किया जिससे कि कवि विवेक के बन्धनों और निषिद्ध वस्तुओं से मुक्ति प्राप्त कर सके।

अपने युग का सर्वाधिक प्रभावशाली आलोचक इलियट, इन चिन्तन धाराओं से प्रभावित था। नई पीढ़ी के लेखकों को उसने विशेष रूप से प्रभावित किया। वस्तुतः नयी समीक्षा में नयी प्रवृत्तियों का आविर्भाव इलियट से ही आरम्भ होता है। इलियट ने अपने आपको राजनीति में राजतन्त्रवादी, धर्म में ऐंग्लो कैथोलिक और साहित्य में शास्त्रवादी घोषित किया था। उसने बताया कि कलात्मक रचना तभी सम्भव है जबकि कलाकार का जनसामान्य की भाषा से सम्बन्ध विच्छेद हो जाय। परम्परा के तत्त्वों को काव्य के लिए उसने आवश्यक मानते हुए परम्परा का प्रगति के साथ सम्बन्ध जोड़ा। वर्ड्सवर्थ ने भावावेशों की स्वतः निःसृत अभिव्यक्ति को कविता कहा था, लेकिन इलियट ने काव्यप्रक्रिया को अनुस्मरण की अपेक्षा केंद्रीकरण की प्रक्रिया बनाया, जो न सचेतन है और न ज्ञानपूर्वक की हुई,

ता है कि रचना-कौशल के नियमों से ही काव्यजन्य नैतिकता का संचालन संभव
काव्य के मूल्यांकन के लिए छंद का होना आवश्यक है, क्योंकि छंद से विचारों
परिष्कार होता है जिससे नैतिक महत्त्व बढ़ जाता है। विलियम एम्पसन ने
स्पष्टता को न्यायसंगत गठन का काव्योचित साधन मान स्पष्ट कल्पित शक्तियों को
वता की पूर्णता के लिए आवश्यक कहा है। मार्क्स और फ्रायड के विचारों से भी
प्रभावित था। आधुनिक आलोचना के क्षेत्र में शाब्दिक विश्लेषण को सुव्यवस्थित
प देने का श्रेय एम्पसन का है। मॉरिस चार्ल्स ने शब्दार्थविज्ञान के साथ कला
। सम्बन्ध जोड़ते हुए वस्तु के चिह्न को मुख्य बताया है। उसकी मान्यता है कि
त्येक कथन में कोई चिह्न रहता है और उस चिह्न में आयाम रहते हैं। जब हम
क्सी वैज्ञानिक चिह्न की सहायता से किसी वस्तु का प्रतीक स्थापित करते हैं तो
ह गूढ़ प्रतीत होता है।

रिचर्ड्स की भाँति केनेथ बर्क अमरीका का एक सुप्रसिद्ध आलोचक हो गया है
जिसके समीक्षा सिद्धान्तों ने रैंसम, टेट ब्रुक्स वारेन और विण्टर्स आदि समसाम-
यिक समीक्षकों को प्रभावित किया। साहित्य को उसने सांकेतिक प्रक्रिया माना है।
भाषा और भय के प्रतीकात्मक रूप का उसने गंभीरतापूर्वक परीक्षण किया। कविता
को यहाँ कवि का प्रतीकात्मक क्रिया व्यापार कहा गया है। बर्क की मान्यता है कि
अपने विषय का चुनाव करते समय लेखक की अभिव्यक्ति सांकेतिक रहती है और
वह उसी विषय को चुनता है जिसे सुरक्षित रखना उसके लिए आवश्यक है। ब्लैकमुर,
इलियट और रिचर्ड्स आदि समीक्षकों के सिद्धान्तों से प्रभावित था। उसने शब्दों को
महत्त्व देते हुए उनके उपयोग को साहसिक कार्य माना है। जब शब्दजन्य भाषा सफल
नहीं होती तो हम सांकेतिक भाषा का आश्रय ग्रहण करते हैं। संकेत मुख्य है उसके
द भाषा आती है। भाषा के सर्वोत्कृष्ट उपयोग में संकेत अन्तर्निहित रहता है।
ना 'रूप [illegible] से दूर का जीवन' है। सांकेतिक कल्पना रहस्यवादी धर्म-के
न [illegible] मूल्यांकन प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।[1]

जो पाँच दृष्टि[illegible] बताये गये हैं उनमें मूलादर्श सम्बन्धी
[illegible]कोण समीक्षा सिद्धान्त को समाविष्ट किया
को [illegible]ाजिकल अथवा 'रिचुअलिस्टिक
[illegible]त सम्बन्धी खोज करते हुए
ti[illegible]ches) और अनुष्ठानिक
। अपने ऐंथ्रोपो इन विहाफ
का प्रतिपादन किया है जो
श्रोताओं की परम्परागत
साहित्य के मूल्यांकन
को ही व्याख्या करता है।
पृ० २४७-५०।

लेकिन उनके सिद्धान्तों का प्रचार हुआ अमरीका में। इलियट की भांति डब्ल्यू० एच० ऑडन भी इंग्लैंड का ही निवासी था लेकिन वह अमरीका में जाकर रहने लगा था। डब्ल्यू० बी० यीट्स ने भी अंग्रेजी कवियों की अपेक्षा अमरीका के कवियों को ही अधिक प्रभावित किया। इसी प्रकार रिचर्ड्स, लीविस और विलियम एम्पसन के सिद्धान्तों से अमरीका के समीक्षाशास्त्री ही विशेष प्रभावित हुए।

रिचर्ड्स के समीक्षा सम्बन्धी व्यावहारिक सिद्धान्तों का अनुकरण करने के कारण लीविस को रिचर्ड्स का शिष्य कहा गया है। वस्तुतः वह इलियट की रचनाओं से विशेष रूप से प्रभावित था, और 'सेक्रेड वुड' का उसने गंभीर अध्ययन किया था। लीविस ने साहित्य का लक्ष्य केवल मनोरंजन स्वीकार न करके नैतिकता से उसका सम्बन्ध जोड़ा। जैसा कहा जा चुका है, 'नयी आलोचना' में किसी अभिनव सिद्धान्त की स्थापना न करके समीक्षा के प्रमुख दृष्टिकोण को ही मुख्य माना जा रहा था। इस समय कला को कला के रूप में स्वीकार करके कला के सूक्ष्म विवेचन को ही महत्त्व दिया गया। ऐसी दशा में कविता के बिम्बविधान, प्रतीकविधान और आलंकारिता के विश्लेषण और सौंदर्यानुशील को नये आलोचकों ने मुख्य माना।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व ही अमरीकी 'नयी आलोचना' का केन्द्र बन चुका था। द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद, १९४५ में, नयी आलोचना ने जोर पकड़ा। १९४१ में अमरीकी समीक्षक रैंसम का 'द न्यू क्रिटिसिज्म' नामक रचना प्रकाशित हुई। १९३९ में आई० ए० रिचर्ड्स भी अमरीका में आकर रहने लगा था, जहाँ वह अनैतिहासिक समीक्षा सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर रहा था। रैंसम ने प्रतीकवादी दृष्टिकोण स्वीकार करते हुए अनाम कविता का महत्त्व प्रतिपादित किया। काव्य में कवि की निर्लिप्तता को मुख्य माना गया। आधिभौतिक कविता को अलौकिक चमत्कार से पूर्ण बताते हुए उसे आलोचना का विषय स्वीकार किया गया।

नये आलोचक नूतनता की खोज में संलग्न थे। उन्नीसवीं शताब्दी के समीक्षा-सिद्धान्तों के प्रति उनकी कोई रुचि नहीं रह गयी थी। ऐतिहासिक आलोचना को ही नहीं, वरन् जनतांत्रिक आशावाद, उद्योगवाद तथा मार्क्सवाद के अन्तर्राष्ट्रीय सिद्धान्तों को भी मानने से उन्होंने इन्कार कर दिया था। एलेन टेट और रॉबर्ट पेन वारेन रैंसम के शिष्य थे। क्लिंथ ब्रुक्स ने रॉबर्ट पेन वारेन के साथ मिलकर एक कविता संग्रह प्रकाशित किया जिसमें कविता का कोई प्रयोजन स्वीकार न कर कविता को केवल कविता के रूप में ही उपयुक्त कहा गया। 'प्रतीकवाद'-'आधिभौतिक' चिन्तन धारा को स्वीकार करनेवाले कवियों को उत्कृष्ट घोषित किया गया। कविता की भाषा को विरोधाभास की भाषा बताते हुए कहा गया कि वह 'विचारों की, व्यंग्य, अप्रत्यक्ष और वक्र रूप में ऐसी भाषा में अभिव्यक्ति करती है जो उस भाषा से बहुत दूर है जिसका कि वह निर्देश करती है।' विण्टर्स ने काव्य में नीतिवादी सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए साहित्यिक मूल्यांकन के लिए उसे आवश्यक बताया। उसकी

ान्यता है कि रचना-कौशल के नियमों से ही काव्यज व नैतिकता का संचालन संभव । काव्य के मूल्यांकन के लिए छन्द का होना आवश्यक है, क्योंकि छंद से विचारों ा परिष्कार होता है जिससे नैतिक महत्व बढ़ जाता है। विलियम एम्पसन ने स्पष्टता को न्यायसंगत गठन का काव्योचित साधन मान स्पष्ट कल्पित शक्तियों को विता की पूर्णता के लिए आवश्यक कहा है। मार्क्स और फ्रायड के विचारों से भी ह प्रभावित था। आधुनिक आलोचना के क्षेत्र में शाब्दिक विश्लेषण को सुव्यवस्थित प देने का श्रेय एम्पसन को है। मॉरिस चार्ल्स ने शब्दार्थविज्ञान के साथ कला ा सम्बन्ध जोड़ते हुए वस्तु के चिह्न को मुख्य बताया है। उसकी मान्यता है कि त्येक कथन में कोई चिह्न रहता है और उस चिह्न में आयाम रहते हैं। जब हम ैसी वैज्ञानिक चिह्न की सहायता से किसी वस्तु का प्रतीक स्थापित करते हैं तो ह गूढ़ प्रतीत होता है।

रिचर्डस की भाँति केनेथ बर्क अमरीका का एक सुप्रसिद्ध आलोचक हो गया है जसके समीक्षा सिद्धान्तों ने रैंसम, टेट ब्रुक्स, वारेन और विएटर्स आदि समसाम यिक समीक्षकों को प्रभावित किया। साहित्य को उसने सांकेतिक प्रक्रिया माना है। भाषा आर अर्थ के प्रतीकात्मक रूप का उसने गम्भीरतापूर्वक परीक्षण किया। कविता ो यहाँ कवि का प्रतीकात्मक क्रिया-व्यापार कहा गया है। बर्क की मान्यता है कि अपने विषय का चुनाव करते समय 'लेखक की अभिव्यक्ति सांकेतिक रहती है और वह उसी विषय को चुनता है जिसे सुरक्षित रखना उसके लिए आवश्यक है। ब्लैकमूर, इलियट और रिचर्डस आदि समीक्षकों के सिद्धान्तों से प्रभावित था। उसने शब्दों को महत्त्व देते हुए उनके उपयोग को साहसिक कार्य माना है। जब शब्दजन्य भाषा सफल नहीं होती तो हम सांकेतिक भाषा का आश्रय ग्रहण करते हैं। संकेत मुख्य है, उसके बाद भाषा आती है। भाषा के सर्वोत्कृष्ट उपयोग में संकेत अन्तर्निहित रहता है। कविता 'रूप और अर्थ से दूर का जीवन' है। सांकेतिक कल्पना रहस्यवादी धर्म-के माध्यम से उसने कला का मूल्यांकन प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।[1]

१—साहित्यिक समीक्षा के जो पांच दृष्टिकोण बताये गये हैं उनमें मूलादर्श सम्बन्धी (archetypal) दृष्टिकोण में बर्क के समीक्षा सिद्धान्त को समाविष्ट किया गया है। इस दृष्टिकोण को टोटेमिक', 'माइथोलाजिकल अथवा'रिचुअलिस्टिक' भी कहा है। कवि, कविता और श्रोताओं के विवक्षित सम्बन्धकी खोज करते हुए बर्क ने निषेध (Tabso) पूजित वस्तु (fetishes) और अनुष्ठानिक दृष्टान्त (ritual paradigms) की चर्चा की है। अपने ऐंटोनी इन बिहाफ ऑफ द प्ले में उसने शेक्सपियर के नाट्य-कौशल का प्रतिपादन किया है जैसा कि अधिकारी, क्रान्ति और परदोषभोगी के प्रति श्रोताओं की परम्परागत अनुभूतियों द्वारा आवश्यक सिद्ध हुआ है। यह दृष्टिकोण साहित्य के मूल्यांकन में सहायक न होकर, रचनाविशेष के मौलिक रूप की ही व्याख्या करता है। विल्बर स्कॉट फाइव अप्रोचेज ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म, पृ० २४७-५०।

ऑडन इलियट का प्रशंसक था। उसके सहयोगी कवि 'कला के लिए कला' सिद्धान्त को 'ऐकान्तिक कविता' कहते थे। वे लोग कविता में ग्रामीण भाषा और मंगलमय शब्द का प्रयोग करते थे। मार्क्सवाद को वे मानते थे तथा मार्क्स के दर्शन को उन्होंने फ्रायड के मनोविज्ञान के साथ जोड़ दिया था। स्पेन के गृहयुद्ध तथा नाजियों के फासिज्म ने इन कवियों को विशेष रूप से प्रभावित किया जिससे मानव-मात्र में भ्रातृभाव स्थापित कर वे समाज के नवनिर्माण में जुट गये, यद्यपि सफलता उन्हें प्राप्त न हो सकी।

फ्रांस में सार्त्र और काम्यू तथा जर्मनी में काफ्का का जन्म हुआ जिन्होंने जीवन का एक नये दृष्टिकोण से विचार किया। द्वितीय विश्वयुद्ध की भीषण यन्त्रणाओं का प्रतिबिम्ब उनकी रचनाओं में दिखायी देता है। सार्त्र ने अस्तित्ववाद के सिद्धान्त को प्रतिष्ठित किया जिसमें मनुष्य को सृष्टि का केन्द्रबिन्दु माना गया। युद्धोत्तरकालीन आपदाओं के कारण मनुष्य इतना संत्रस्त हो उठा था कि वह सारा सुख चैन खो बैठा। अतिशय व्यक्तिवाद के कारण वह समाज से अलग जा पड़ा और अपने अन्तरंग की उदासी के कारण समस्त संसार उसे उदास प्रतीत होने लगा। परिणाम यह हुआ कि आत्मकेंद्रित हो, निष्क्रियता को उसने अपने ऊपर आरोपित कर लिया। कला को निस्सार मानकर यहाँ भी पलायनवाद को ही मान्य किया गया। काम्यू ने अपने निबन्धों में जीवन की असंगतियों का विवेचन किया तथा विद्रोह को मानव जाति का 'आवश्यक आयाम' स्वीकार किया। अपने उपन्यासों में उसने मानव जाति के प्रति किये गये भीषण अत्याचारों का सजीव चित्रण किया। क्रांतिकारी सुधारों के साथ उसने कला का विरोध प्रतिपादित किया, तथा कलाकारों को एक कलाकार की हैसियत से दुनिया के कामों में हस्तक्षेप करने का निषेध किया। विविध यन्त्रणाओं में से गुजरने के कारण काफ्का के अन्तस्तल में वर्तमान न्यायप्रणाली के प्रति आस्था न रह गयी थी। विषाद और खिन्नता उसकी रचनाओं की विशेषता है जो उसके उपन्यासों में प्रतिध्वनित होती है। उसके नायक न्याय और स्वीकृति के लिए शून्य खोजों में संलग्न हैं, लेकिन वस्तुतः इन खोजों से निर्दयता और अन्याय की ध्वनि ही व्यक्त होती है। काफ्का ने स्वीकार किया कि संसार में मनुष्य अनेक चिन्ताओं से आक्रान्त रहता है जिनसे मुक्ति पाने के लिए वह निरर्थक चेष्टा किया करता है।

इस प्रकार प्लेटो से लेकर इलियट तक और इलियट से लेकर लैंकमूर तक पाश्चात्य समीक्षा में अनेक स्वर दिखायी देते हैं, यद्यपि सभी आलोचकों में एकसूत्रता देखने में आती है कि वे युगधर्म को मानकर चले। एक ने दूसरे का खण्डन किया अथवा एक दूसरे के सिद्धान्त को स्वीकार कर उसे पुष्पित और पल्लवित किया, लेकिन युगधर्म बना रहा। सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया, फिर उसके विरोध में तर्क

उपस्थित किये गये और अन्त में दोनों मतों का समन्वय कर सिद्धान्त को मान्य कर लिया गया।

आज के विश्रृंखलित समाज में नया आलोचक नये ढंग से विचार करने में संलग्न है। वह सोचता है कि इस बिखरे और उलझे हुए समाज में जहाँ कि व्यवस्थित मापदण्डों के अभाव में जीवन का कोई मूल्य स्थिर नहीं है, वहाँ उसका अपना क्या स्थान हो सकता है? परिणामस्वरूप 'शुद्ध कला' के नाम पर उसने अपने आपको समाज से अलग कर लिया। ई० एम० फोस्टर ने तो उपन्यास लिखना ही छोड़ दिया। वह लिखता है, ' मैं समझता हूँ, उपन्यास लिखने से निवृत्त हो जाने का एक कारण यह भी है कि दुनिया का सामाजिक दृष्टिबिन्दु बहुत बदल गया है। मैं पुराने फैशन की दुनिया के परिवार, पारिवारिक जीवन और उसकी तुलनात्मक शान्ति के विषय में लिखने का अभ्यस्त था। लेकिन वह सब अब नहीं रहा, और यद्यपि मैं नयी दुनिया के बारे में सोच सकता हूँ, कथा के रूप में मैं उसे प्रस्तुत नहीं कर सकता" (बोरिस फोर्ड, "द मार्डन एज' में जी० एच० वेन्टोक का 'द सोशल ऐंड इन्टेलेक्चुअल बैकग्राउण्ड' नामक लेख, पृ० १४)।

आई० ए० रिचर्डस के विचार देखिए "आजकल असत् साहित्य, असत् कला और सिनेमा आदि अधिकांश वस्तुओं में अपरिपक्व एवं वास्तव में अनुपयुक्त प्रवृत्तियों को निर्धारित करने में महत्त्वपूर्ण प्रभाव पैदा करते हैं। यहाँ तक कि सुन्दर तरुणी अथवा सुन्दर तरुण की कल्पना भी—जो स्वभावतः वैयक्तिक होनी चाहिए—अधिकतर पत्र पत्रिकाओं के आवरण और सिनेमा के अभिनेताओं को देखकर ही निश्चित की जाती है।' (वही, पृ० ३६)

आज का आलोचक किसी न किसी रूप में विश्लेषणात्मक आलोचना का ही समर्थक दिखायी देता है। रूपात्मकता और अभिव्यंजना पर उसकी शक्ति केन्द्रित है। बीवर (Beaver) के शब्दों में 'नयी आलोचना शब्दार्थविज्ञान, छन्द बिम्ब विधान (इमेजरी), रूपक (मेटाफर) और प्रतीक पर जोर देते हुए, केवल मूल पाठ (सामान्यतया कविता) को—जीवनचरित, ऐतिहासिक परम्परा तथा पृष्ठभूमि से अलग कर—मुख्य मानती है। तर्कशास्त्र, समाजविज्ञान अथवा मनोविज्ञान के अतिरिक्त-साहित्यिक (ऐक्स्ट्रा लिटरेरी) कला कौशल का वह साहित्य में उपयोग करती है।" ऐसी परिस्थितियों में शाब्दिक विश्लेषण के अनेक प्रयोग किये गये जिससे आधुनिक आलोचना जटिल दुरूह और सूक्ष्म बनकर सर्वसाधारण के जीवन से अलग जा पड़ी।

नये आलोचकों की मान्यताओं में परस्पर भिन्नता पायी जाती है। लेकिन सभी ने मुख्यतया कविता को ज्ञान का एक प्रामाणिक स्रोत स्वीकार किया है जो अपने अतिरिक्त अन्य किसी रूप में सम्प्रेषणीय नहीं है। इससे काव्य रचना में वैयक्तिक सामाजिक अथवा नैतिक तत्त्वों के स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं रह जाती, क्योंकि ये बाह्य तत्त्व हैं तथा कविता को बुद्धिग्राह्य करने के लिए उसका केवल स्पर्श

भर करते हैं। इसके स्थान पर प्रत्येक कविता के गठन अथवा समस्त काव्यात्मक अनुभूति का समन्वय रखनेवाले गठन तत्त्व या उन तत्त्वों को प्रमुख माना गया है। पन वारेन के शब्दों में, "कविता किसी विशेष तत्त्व में निहित न होकर तत्त्व या के समूह, गठन पर आधारित है जिसे कविता कहा जाता है।" (विल्बर स्कॉट, फाइव अप्रोचेज ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म पृ० १८१)। ऐसी स्थिति में 'नयी आलोचना' के सिद्धान्त क्रमशः अधिकाधिक अस्पष्ट होने के कारण जनसाधारण की समझ के बाहर होते चले गये। परिणामस्वरूप ब्रुक्स के 'विरोधाभास' (पैरेडाक्स), रैनसम के 'संरचना' (टैक्सचर), टेट के 'तनाव' (टेंशन) और एम्पसन की 'अस्पष्टता' (एंबिग्युइटी)—जिसे कि कविता का एकमात्र सिद्धांत माना गया है—का विरोध किया जाने लगा। एल० सी० नाइट और एफ० आर० लीविस ने एम्पसन और रिचर्डस तक को इस बात के लिए दोषी ठहराया है कि उन्होंने कलाकृति का परीक्षण करते समय उसके एक ही अंश को लिया, समस्त अंगों को नहीं। स्वयं रैनसम ने इन्हीं को लेकर ब्रुक्स की आलोचना की है। इसी प्रकार नैक्मूर ने भी इस नयी काव्य पद्धति की समीक्षा की। (वही पृ० १८२)

प्रश्न होता है कि क्या साहित्यकार का कोई सामाजिक दायित्व है या नहीं? युग चेतना साहित्य में प्रतिफलित होनी चाहिए अथवा नहीं? यदि जीवन शाश्वत है, उसकी परम्परा अटूट है, तो क्या जीवन को सुन्दर बनाने के दायित्व से मुक्त रहा जा सकता है?

तालस्ताय लिखता है "नवजागरण काल के पश्चात् लोगों ने विश्वास खो दिया है। सौंदर्य उनका ईश्वर हो गया है।' तथा 'मॉडर्न आर्ट एक प्रकार का शत्रु बन गया है। जितना ही गहरे में हम प्रवेश करें, यह छिछला होता जाता है। इसकी पद्धतियाँ हैं केवल निरर्थक उधार प्राकृतिक यथार्थवाद, पाशविकता और अश्लीलता का आह्वान तथा विस्तार की जटिलताएं' (एफ० एल० लूकस, लिटरेचर एँण्ड साइकॅलोजी पृ० २८६ पर से)।

लूकस के विचार मननीय है—'कितनी ही बार यह सोचकर मैं आश्चर्यचकित रह जाता हूँ कि किसी दिन मानव सभ्यता का अन्त होगा वह अन्त अणुबम्ब से नहीं, दुष्कालों से नहीं और इस प्रकार के अन्य किसी प्रदर्शन से भी नहीं, बल्कि होगा केवल मनुष्य की बुद्धि तथा अत्यधिक कृत्रिम सभ्यता के तनाव के बीच आत्म नियंत्रण के ह्रास से। मैं नहीं कहता कि इसकी शक्यता है इसकी केवल संभावना है, विशेष करके, इस प्रकार के 'माडर्न आर्ट' को पढने अथवा सुनने से ऐसा लगता है।' तत्पश्चात् "बीसवीं शताब्दी के साहित्य में बहुत स्वच्छन्दतावाद है, बहुत यथार्थवाद है, दोनों ही बहुत करके जघन्य प्रकार के हैं। यदि मुझसे प्रश्न किया जाय कि पिछले पचास वर्षों में ऐसी कौनसी विशेष बात है जिसे मैं नहीं पा सका मैं समझता हूँ, मेरा उत्तर होगा—'विवेक और गौरव।' (वही, पृ० १४०)।

परिशिष्ट १

पारिभाषिक शब्दावली

Abstract अमूर्त
Accidental आकस्मिक
Action कार्य, कार्य व्यापार, कार्यकलाप
Aesthetic सौंदर्यशास्त्र
Allegory अन्योक्ति
Ambiguity अस्पष्टता
Amplification विस्तारपूर्वक वर्णन करना
Analogy सादृश्य
Analysis विश्लेषण
Appeal प्रभाव
Appreciation प्रशंसा करना, मूल्यांकन करना
Art कला
Art of Rhetoric वक्तृत्व कला
Art of Poetry काव्य कला
Artistic कलात्मक
Blank Verse अतुकान्त पद्य
Brevity संक्षिप्तता
Canons नियम, सिद्धान्त
Capacity योग्यता
Catharsis विरेचन, समाजन
Chorus सामूहिक गान
Classical शास्त्रवादी, क्लासिकल, आभिजात्य
Cognition बोध
Comedy कामदी, प्रहसन, सुखान्त नाटक
Communicate सम्प्रेषित करना
Composition रचना विधान
Concept विचार
Conception मान्यता, धारणा
Construction रचना
Creative रचनात्मक, सृजनात्मक
Criticism समीक्षा, आलोचना
Decorum मर्यादा
Design बनावट
Didactic उपदेशात्मक
Dialectic द्वन्द्वात्मक, तर्कशास्त्रीय, वैतानिक
Diction पदविन्यास, सरणि
Dimension आयाम
Dithyrambic Poetry रौद्र स्तोत्र
Divine दैवी
Doctrine मत, सिद्धान्त
Dynamic गत्यात्मक गतिशील
Elegy शोकगीत
Element तत्त्व
Emotion मनोवेग, भाव
End उद्देश्य
Epic महाकाव्य
Episode प्रासंगिक कथा, उपकथा
Epistolary पत्र-काव्य
Essence सार
Ethical आचारशास्त्र संबंधी

Existentialism अस्तित्ववाद
Expression अभिव्यंजना
Fable कथा, कल्पित कथा
Fallacy हेत्वाभास
Fancy भावतरंग
Feeling भाव, अनुभूति, विचार, भावना
Fiction उपन्यास
Figures of Speech अलंकार
Figurative आलंकारिक
Form रूप, रूपविधान, रूपतत्त्व
Grotesque भोंडा विषम
Hallucination मतिभ्रम
Harmony सामंजस्य, अनुरूपता
Hedonism सुखवाद
Hellenism ग्रीकवाद
Humanism मानववाद
Humanitarianism मानवतावाद
Humour विनोद
Idea विचार, वैचारिक रूप, भाव, रूप
Idealist विचारवादी, भाववादी
Image बिम्ब
Imagery बिम्बविधान
Imagination कल्पना
Imagism बिम्बवाद
Imitation अनुकरण, अनुकृति
Impression प्रभाव
Impressionism प्रभाववाद
Improbable Possibilities असंभाव्य संभावनाएं
Impulse आवेग
Inspiration प्रेरणा
Instinct सहजवृत्ति
Intuition सहजानुभूति, प्रातिभज्ञान
Irrational असंगत
Judgement मूल्यांकन, निर्णय
Justice न्याय
Literary साहित्यिक
Literary Taste साहित्यिक अभिरुचि
Logic तर्क
Lyric गीति काव्य
Manifestation प्रकाशन, अभिव्यक्ति
Manner रीति, ढंग पद्धति
Mask मुखौटा
Materialism भौतिकवाद
Matter विषय, वस्तु पदार्थ
Metaphor रूपक
Metaphysics अध्यात्मविद्या
Mechanical यांत्रिक
Medium माध्यम
Metre छन्द
Model आदर्श, नमूना
Moral नैतिक
Muse कला की अधिष्ठातृ देवी
Naive सरल
Naturalism प्रकृतवाद
Neo-Classicism नवशास्त्रवाद
Objective वस्तुनिष्ठ
Ode लघुगीत
Paradox विरोधाभास
Passion मनोवेग, भावावेश
Perception सहजबोध, ऐंद्रिय ज्ञान
Persuation प्रत्यय
Pleasure आनन्द
Plot कथानक
Poetic काव्यात्मक

Poetic Justice काव्य न्याय
Precept विचार, धारणा
Primary प्राथमिक
Principle मुख्य
Process प्रक्रिया
Production उत्पादन
Propriety औचित्य
Puritanism शुद्धतावादी
Rational बौद्धिक
Renaissance नवजागरण
Reproduction प्रतिकृति
Rhetoric वक्तृत्व कला
Rhyme तुकान्त
Rhythm लय
Romance प्रेमाख्यान
Romantic स्वच्छन्दतावादी, रोमांटिक
Satire व्यंग्य
Sementics शब्दार्थविज्ञान
Sensation संवेदना
Sensitive संवेदनशील
Sentiment भावावेग
Sonnet चतुष्पदी
Spiritual आध्यात्मिक
Stimulus उद्दीपन
Structure ढाँचा
Style शैली
Subjective व्यक्तिनिष्ठ, आत्मनिष्ठ, निजपरक, आत्मपरक
Subject matter विषयवस्तु
Sublime उदात्त
Subconscious अवचेतन
Substitute स्थानापन्न
Suggestion संकेत
Symbol प्रतीक
Symbolism प्रतीकवाद
Symmetry अनुकूलता, सामंजस्य
Syntax वाक्य रचना
Synthesis सन्तुलन, समन्वय, संश्लेषण
Technical पारिभाषिक
Tendency प्रवृत्ति
Theme विषय
Theory सिद्धान्त
Theology धर्मविज्ञान
Tragedy ट्रैजेडी, दुखान्त नाटक
Typical प्रत्यात्मक
Unconscious अचेतन
Understanding बुद्धि
Unity अन्विति
Universal सामान्य
Values मूल्य
Verse पद्य
Vision दृष्टि
Voluntary ऐच्छिक
Wit वाग्वैदग्ध्य, वाक्चातुर्य

* परिशिष्ट २

यूनानी और रोमी शब्दों के उच्चारण

Accius अक्युस
Acharnians अखरनियन
Achilles अखिलेयस
Aeschylus एस्खिलोस
Agathon आगाथोन
Ajax एयस
Alexander अलेक्सन्द्रोस
Amphion अम्फियोन
Anaxagoras अनाक्सागोरस
Andromeda आन्द्रोमीदा
Antigone अन्तिगोनी
Archon आरखोन
Aristophanes अरिस्तोफानीस
Aristotle अरिस्तोतलिस (अरस्तू)
Cratinus क्रतिनोस
Demetrius दिमित्रयोस
Demos दिमोस
Demosthenes दिमास्थेनीस
Diomedes दियोमीदीस
Dionysius दियोनिसीयस
Donetus दोनेतुस
Empedocles एम्पेदोक्लीस
Epicharmus एपीखरमोस
Eudemus युदिमुस
Eulisus यूलिसस (ओदोसेफस)
Eupolis यूपोलिस
Euripides एव्रीपीडिस
Gorgias गोर्गियस
Hesiod इसिओदस
Homer ओम्युरोस (होमर)
Hypocrites हिपोक्रेतिस
Icaria इकैरिया

Iliad इलियद
Ion इयोन
Isocrates इसोक्रतीस
Longinus लोंगिनुस
Medea मीदिया
Ode ओदी
Odyssey ओदीसिया (ओडिसी)
Odysseus ओदीसेयस
Oedipus Tyrannus इदीपुस तारेनुस
Oresteia ओरेस्टीया
Orpheus ओरफयस
Pacuvius पकुव्युस
Pericles पेरीक्लीस
Permenedes पेरमनिदिस
Peri Hupsous पेरी इप्सुस
Phaedrus फायद्रोस
Philebus फिलेबुस
Plato प्लातुन (प्लेटो)
Protagoras प्रोतागोरस
Sorates सोक्रेतीस (सुकरात)
Sophocles सोफेक्लीस
Storapsiadese स्तोरफियादिस
Thebes थीबे
Theodorus थियोदोरस
Theogony थियोगोनी
Thesmophoriagusae थेस्मोफोरियागोरस
Thrasymachus थ्रसीमखोस
Thespis थेस्पीस
Tragodia त्रगोदिया
Troy त्रिया (ट्राय)

* बम्बई स्थित ग्रीस कॉन्सुलेट जनरल के कौंसुल जनरल के अनुग्रह से।

संदर्भ ग्रंथों की सूची

(१) सामान्य

विलियम के० विमर्सैट (जूनियर) ऐंण्ड क्लिन्थ ब्रुक्स लिटरेरी क्रिटिसिज्म ए शार्ट हिस्ट्री, लदन १९५७

डेविड डेचीज क्रिटिकल अप्रोचेज टू लिटरेचर लदन १९६८

रेने वैले ऐंण्ड ऑस्टिन वारेन थ्योरी श्राफ लिटरेचर, लदन, १९६३

रेने वैले ए हिस्ट्री श्राफ माडर्न क्रिटिसिज्म, भाग १–४ (१७५०–१९५०), लदन, १९५५–१९६६

जार्ज वाटसन द लिटरेरी क्रिटिक्स इग्लैंड, १९६२

जार्ज सेंट्सबरी हिस्ट्री श्राफ क्रिटिसिज्म, तीन भाग, लदन, १९३४ ३५

जार्ज सेंटसबरी ए हिस्ट्री श्राफ इँग्लिश क्रिटिसिज्म, लदन, १९३६

जे० डब्ल्यू० एच० एटकिन्स लिटरेरी क्रिटिसिज्म इन एण्टिक्विटी, दो भाग, लदन १९३४

जे० डब्ल्यू० एच० एटकिन्स इग्लिश लिटरेरी क्रिटिसिज्म सेविण्टीथ ऐंण्ड एटीथ सेंचुरीज, लदन १९५१

लैंग्वी एण्ड कजामिया हिस्टी श्राफ इगलिश लिटरेचर, लदन, १९३३

मार्क शारेर क्रिटिसिज्म द फाउण्डेशन्स ग्रॉफ् मॉडर्न लिटरेरी जजमेंट, न्यूयार्क १९४८

डब्ल्यू० बेसिल वर्सफोल्ड जजमेंट इन लिटरेचर (साहित्य का मूल्यांकन), अनुवादक रामचन्द्र तिवारी वाराणसी, १९६४

एवरक्रोम्बी साहित्यालोचन के सिद्धान्त (हिन्दी अनुवाद), सोमेश पुरोहित' बम्बई, १९६३

प्रिंसिपल्स श्राफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म बम्बई १९५८

श्रार० ए० स्काट जेम्स मेकिंग श्राफ लिटरेचर, लदन, १९३६

विलियम हेनरी हडसन इण्ट्रोडक्शन टु द स्टडी ऑफ् लिटरेचर (अंग्रेजी साहित्य का इतिहास) अनुवादक जगदीश बिहारी मिश्र, लखनऊ, १९६३

सावित्री सिन्हा पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परम्परा दिल्ली

शिवदानसिंह चौहान आलोचना के सिद्धान्त दिल्ली १९६०

भगीरथ दीक्षित समीक्षालोक, बम्बई १९६४

लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय पश्चिमी आलोचनाशास्त्र, लखनऊ १९६८

शांतिस्वरूप गुप्त पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त, दिल्ली, १९६५

रामअवध द्विवेदी अंग्रेजी भाषा और साहित्य, वाराणसी, १९६०
प्रकाश नारायण गुप्त पाश्चात्य समीक्षा सिद्धान्त, वाराणसी, १९६०
ए डिक्शनरी आफ फिलोसोफी सम्पादक एम रोसेन्थल एण्ड पी यूदिन, मास्को, १९६७
पाल एडवर्ड्स द एनसाइक्लोपीडिया आफ फिलासफी, न्यूयार्क, १९६७
विलियम ब्रिजवाटर, द कोलंबिया विकिंग डेस्क एनसाइक्लोपीडिया, न्यूयार्क, १९६४

(२) प्राचीन समीक्षा

प्लेटो द अपोलोजी, पालू
डब्ल्यू० एच० डी० राउज ग्रेट डायलाग्स आफ प्लेटो, न्यूयार्क १९५६
जगदीशचन्द्र जैन भारतीय तत्त्वचिन्ता, राजकमल प्रकाशन प्रा० लि० बम्बई
होमर इलियड, ए० टी० मरे, जिल्द १-२, लाएब लाइब्रेरी, लंदन १९३०, १९४२
जे० बी० बरी हिस्ट्री आफ ग्रीस तीसरा संस्करण १९५१
विल डयूराण्ट द लाइफ आफ ग्रीस, न्यूयार्क, १९३९
होमर ओडिसी, जे० डब्ल्यू० मैकेल, १-३, लंदन, १९०३, १९०८, १९१०
अरिस्तोफनीस द फ्राग्स बेंजमिन विकल रोजर्स, लंदन, १९१९
अरिस्तोफनीस द फ्राग्स गिल्बर्ट मरी, लंदन, १९१२
गिल्बर्ट मरी ए हिस्ट्री आफ एंशिएण्ट ग्रीक लिटरेचर लंदन १९१७
हसिओद द थियोगोनी, सा० ए० ऐल्टन, लंदन
वरनेर जाएगेर अरिस्टोटल, रिचर्ड राबिनसन द्वारा अनूदित, आक्सफोर्ड, १९३४
एस० एच० बुचर अरिस्टोटल्स थ्यारी आफ पोएट्री एण्ड फाइन आर्ट, लंदन, १९२३ (इसी में 'द पोएटिक्स' भी है)
डा० नगेन्द्र अरस्तू का काव्यशास्त्र इलाहाबाद १९५७
शिवानन्द शर्मा अरस्तू हिन्दी समिति, उत्तरप्रदेश, वाराणसी, १९६०
जे० डब्ल्यू० एच० एटकिंस इंग्लिश लिटरेरी क्रिटिसिज्म द मेडीवल फेज, कैम्ब्रिज, १९४३
लांजाइनस, ऑन द सब्लाइम, डब्ल्यू० हैमिल्टन फैफ कैम्ब्रिज, १९५३
विल डयूराण्ट सीजर ऐण्ड क्राइस्ट, न्यूयार्क १९४४
जे० एस० वाटसन सिसरो ऑन ओरेटरी एण्ड ओरेटर्स, लंदन, १९०९
सिसरोज लैटर्स टु हिज ब्रदर क्विंटस

सिररोज, लैंटर्स टू ब्रूटर
द ग्रोरेतोरे (ग्रान द करैक्टर ग्राफ द ग्रोरेटर)
ब्रूटस (रिमार्क्स ग्रॉन एमिनेण्ट ग्रोरेटर्स
सिसरो द ग्राफिसज, लदन, १९११
'वॅम्बर जे० क्राइमर वम्प्लीट वर्क्स ग्राफ होरेस न्यूयाक, १९३६
क्विण्टीलियन इन्स्टीट्यूटिग्रो, ग्रोरेतोरिया भाग १–४, एच० ई० बटलर, लदन, १९३३–४३

(३) आधुनिक समीक्षा

सर फिलिप सिड्नी ऐन ग्रपोलोजी फॉर पोएट्री, एडमड डी जोन्स, द वर्ल्ड्स क्लासिक्स इंग्लिश क्रिटिकल ऐसेज, सिक्सटीथ, सेविंटीथ एण्ड एटीथ सेंचुरीज, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, १९४७
जॅानसन लाइफ ग्रॉफ ड्राइडन, डब्ल्यू० एच० शाप, बम्बई
ड्राइडन (जॉन) हीरोइक पोएट्री एण्ड पोएटिक लाइसेंस, अर्नेस्ट राइस ड्रामेटिक पोएजी एण्ड ग्रदर ऐसेज, लदन १९३९
राइडन ग्राउण्डस ग्रॉफ क्रिटिसिज्म इन ट्रेजेडी, १७०३
जान रिचड ग्रीन एसेज ग्रॉफ जोजेफ एडीसन, लदन, १९३४
जान डेनिस एज ग्राफ पोप (१७००–४४), लदन १९२८
जाज चरटन कोलिंस पोप्स ऐसे ग्रॉन क्रिटिसिज्म, लदन १८९६
जोसेफ, डनिस एडवासमेंट ऐंएड रिफार्मेशन ग्रॉफ मॉडन पोएट्री, एडमड डी जोन्स, इंग्लिश क्रिटिकल एसेज (१६, १७, १८ वीं सेंचुरीज), ग्रॉक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, १९४७
जोजेफ एडीसन फेयरी वे ग्रॉफ राइटिंग, इंग्लिश क्रिटिकल ऐसेज (१६,१७ ग्रौर १८ वी सेंचुरीज), ग्रॉक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस १९४७
जोजेफ एडीसन इंग्लिश क्रिटिकल ऐसेज के ग्रतगत 'क्रिटिसिज्म्स ग्राफ परेडाइज लॉस्ट'
एडवड यग कजेक्चर्स ग्रॉन ग्रोरिजिनल कम्पोजीशन, एडमण्ड डी० जोन्स, इंग्लिश क्रिटिकल ऐसेज (१६, १७ ग्रौर १८ वी सेंचुरीज), लदन, १९४७
रिचार्ड हर्ड लैटर्स ग्रॉन शिवलरी ऐण्ड रोमास एडमण्ड जोन्स, इंग्लिश क्रिटिकल ऐसेज (१६, १७ ग्रौर १८ वी सेंचुरीज)—इसीके ग्रतगत 'स्पेंसर ऐण्ड मिल्टन
सैमुग्रल जॉनसन द ग्राइडलर (२ भाग), एस० जॉनसन, तीसरा सस्करण, लदन, १९१७
लेसिंग लाग्रोकून, सर रॉबट फिलिमोर, लदन, १९१०

जॉन आक्सेनफोर्ड कॉनवरसेशन आफ गेटे विद एकरमैन, लंदन, १९१०

वाल्टर होयेर गेटेज लाइफ इन पिक्चर्स, लाइप्जिग, १९५३

एच० जे० वेइगैंड गेटे, विज़्डम एंड एक्सपीरिएंस, लंदन १९४९

जे०ई० स्पिनगार्न गटा लिटररी ऐसेज आन डाइवर्जिंग पोएट्री, लंदन १९२१

विलियम वर्ड्सवर्थ पोएट्री एँण्ड पोएटिक डिक्शन, एडमण्ड जोन्स नाइनटीन्थ सेंचुरी क्रिटिकल ऐसेज, लंदन, १९१६

कालरिज बायोग्राफिया लिटरेरिया, २ भाग, जे० शॉक्रास, ऑक्सफोर्ड १९०७

कालरिज बायोग्राफिया लिटरेरिया (अध्याय १४, १४२२), जार्ज सैम्पसन, कैम्ब्रिज, १९२०

जे० ए० एप्लेयार्ड कालरिजस फिलॉसाफी आफ लिटरेचर कैम्ब्रिज १९६५

हर्बट रीड कालरिज ऐज क्रिटिक लंदन १९४८

वी० एच० कालिन्स लार्ड बायरन इन हिज लेटर्स, लंदन १९२७

शेली ए डिफेंस आफ पोएट्री, सी० इ० वोगान इंग्लिश लिटररी क्रिटिसिज्म, ग्रेट ब्रिटेन

लार्ड होगटन, द पोएम्स आफ जॉन कीट्स विद द लाइफ एँण्ड लेटर्स २ भाग लंदन १९३३

मारियो प्राज, द रोमांटिक एगोनी, लंदन, १९५१

ले हण्ट व्हाट इज पोएट्री, एडमण्ड जोन्स नाइनटीन्थ सेंचुरी क्रिटिकल ऐसेज लंदन १९१६

बेलिन्स्की दर्शन साहित्य और आलोचना, अनुवादक नरोत्तम नागर पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, १९५८

इसकस' जर्नल आफ द इण्डो सोवियत कल्चरल सोसायटी, स्पेशल नंबर, १९५७

एर्नेस्ट जे० साइमन्स कंटीन्युइटी एँण्ड चेंज इन रशियन एँण्ड सोवियत थाट, कैम्ब्रिज, १९५५

जी० वी० प्लखानोव आर्ट एण्ड सोशल लाइफ बम्बई, १९५३

मार्क्स एँण्ड एंगेल्स लिटरेचर एण्ड आर्ट, बम्बई, १९६५

एमिली बर्न्स व्हाट इज मार्क्सिज्म, बम्बई, १९४५

गोर्की लिटरेचर एँण्ड लाइफ लंदन, १९४६

सोवियत आर्ट (पत्रिका, १६ नवम्बर, १९४५)

जॉर्ज रवी सोवियत लिटरेचर टुडे, लंदन १९४६

स्पुटनिक (मासिक डाइजेस्ट), मास्को, जनवरी, १९६७

'सोवियत लिटरेचर' (मासिक) मास्को ७, १९६७

राहुल सांकृत्यायन, वैज्ञानिक भौतिकवाद, इलाहाबाद, १९४७
आर्नोल्ड कल्चर एंड अनार्की, लदन, १९३८
मैथ्यू आर्नोल्ड एसेज इन क्रिटिसिज्म (फर्स्ट सीरीज), लदन, १९३२
एसेज इन क्रिटिसिज्म (सेकेण्ड सीरीज), लदन, १८८८
जाउबर्ट ऐसे इन क्रिटिसिज्म,
लियो तालस्ताय व्हाट इज आर्ट, अनुवादक ऐनमेर मौडे लन्दन, १९२९
मुक्ति की कहानी, सस्ता साहित्य मडल, नई दिल्ली, १९४४
ह्विस्लर द जेंटल आर्ट आफ मेकिंग ऐनीमीज, न्यूयार्क, १८९०
ह्विस्लर द पोएटिक प्रिंसिपल मार्क शोरेर क्रिटिसिज्म द फाउण्डेशन्स आफ माडर्न लिटरेरी जजमेण्ट, न्यूयार्क, १९४८
वाल्टर पेटर द रेनेसाँ स्टडीज इन आर्ट एँण्ड पोएट्री, यू अमरीकन लाइब्रेरी, १९५९
ऑस्कर वाइल्ड इण्टेशन्स (द डिके ऑफ लाइग, पैन, पेन्सिल एण्ड पाइज़न, द क्रिटिक ऐज आर्टिस्ट द ट्रुथ आफ मास्क्स), द सोल आफ मैन रोबर्ट रॉस, बोस्टन
जगदीशचन्द्र जैन विश्व साहित्य के ज्योति पुंज, बम्बई, १९६२
वाल्टर पेटर एप्रेसिएशन्स, लदन, १९२०
ए० सी० ब्रेडले ऑक्सफोर्ड लैक्चर्स आन पोएट्री लदन, १९३४
क्रोचे एसेंस आफ एस्थेटिक, अनुवादक डगलस आइनस्ली, लदन, १९२१
एस्थेटिक, अनु० डगलस आइनस्ली, लदन, १९५३
माई फिलासफ़ी, लदन, १९४९
डिफेंस आफ पोएट्री, आक्सफोर्ड, १९३३
सौन्दयशास्त्र के मूलतत्व अनुवादक श्रीकान्त खरे, इलाहाबाद १९६७
डा० सुरेन्द्रनाथ दासगुप्ता सौंदर्य तत्त्व, अनुवादक डा० आनन्द प्रसाद दीक्षित इलाहाबाद, वि० स० २०१७
शम्भुदत्त झा रिचर्ड्स के आलोचना सिद्धान्त, पटना, १९६७
विविअन डी सोला पिण्टो क्राइसिस इन इंग्लिश पोएट्री (१८८०-१९४०), लदन, १९५८
जे० सी० रैंसम द न्यू क्रिटिसिज्म, अमरीका, १९४१
आई० ए० रिचर्ड्स प्रिंसिपल्स आफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म, लदन १९३४
योर विण्टर्स इन डिफेंस ऑफ रीजन, लदन, १९४३
शेल्डोन चेनी द स्टोरी ऑफ मॉडर्न आर्ट लदन, १९५८

आर्थर सिम्स द सिम्बोलिस्ट मूवमेंट इन लिटरेचर, लंदन, १६०८
टी० एस० इलियट
द सैक्रेड वुड, लंदन, १६३४
व्हाट इज ए क्लासिक, लंदन, १६४५
पायटस ऑफ न्यू ट्रेडीशन, लंदन
द सैक्रेड वुड ट्रेडीशन ऐंण्ड इंडीविजुएल टलंट
द यूज ऑफ पोएट्री एण्ड द यूज ऑफ क्रिटिसिज्म, लंदन, १६३३
आइसिस इन इग्लिश पोएट्री
सेलेक्टेड ऐसेज, लंदन १६५१
आर० ए० स्कॉट जेम्स फिफ्टी ईयस ऑफ इंग्लिश लिटरेचर (१६००-५०), लंदन, १६५१
माइकेल रॉबर्टस द फाबेर बुक ऑफ मॉडन वर्स, लंदन, १६६५
डैविड डैचीज द प्रेजेंट एज, आफ्टर १६२०, लंदन, १६५८
स्टैनले एडगर हाइमैन द आम्र्ड विजन, यूयार्क, १६६१
एम्पसन सम वर्जस ऑफ पैस्टोरल, लंदन, १६३५
ए० जे० जर्ज नोटस ऑन क्रिटिसिज्म ऐंण्ड क्रिटिक्स दिल्ली
जलियन बेन ऐसेज 'पोएम्स एण्ड लटस, लंदन, १६३८
एफ० एल० लूकस लिटरेचर ऐंण्ड साइकोलोजी, १६५१
विल्बर स्कॉट फाइव अप्रोचेज ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म, यूयार्क, १६६२
बोरिस फोड, द मॉडन एज लदन, १६६४
ज्या पॉल सार्त्र व्हाट इज लिटरेचर लंदन, १६५०
अलबर्ट कामू द मिथ ऑफ सिसीफस, लंदन, १६५५
अलबर्ट कामू द रिबल, पैंग्विन बुक्स, १६६२
फ्रांज काफ्का द ट्रायल, पैंग्विन बुक्स, १६२५
फ्रांज काफ्का द कासल, पैंग्विन बुक्स, १६६३
मार्टिन एस्सलिन, द थियेटर ऑफ द ऐब्सर्ड, लंदन १६६४
ई० ए० ग्रीनिंग लैम्बोर्न द रुडीमेण्टस ऑफ क्रिटिसिज्म, ऑक्सफोर्ड, १६१७
डेविड डैचीज ए स्टडी ऑफ लिटरेचर, यूयार्क, १६४८

———

अनुक्रमणिका

टि०=टिप्पणी, दे०=देखिए

●

शुद्धाशुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	१०	ओदीसेयस[3]	ओदीसेयस[२]
४	१८	आपेक्षिक	सापेक्ष
६	९	दुर्भाग्यो	दुर्भाग्य
६	१०	क	को
६	१४	अपेक्ष	अपेक्षा
७	६	'इओन'	'आयोन' (अन्यत्र भी)
८	२	ओरफेक्स	ओरफेयस
६	५ (फुटनोट)	पडोस	पडोसी
१०	१	वीणा	वीणा पर
१०	२३	प्रेरण	प्रेरणा
१२	८	येस्मोफोरियागोरस	थेस्मोफारियागोरस
१३	६	अरिस्ताफनीस	अरिस्तोफानेस
१५	१ (फुटनोट)	अरिस्टोटल्स	अरिस्टोक्ल्स
१५	१७	इयोन'	'आयोन'
२७	२८	सूखाक्र	सूखक्र
३५	२	Ajan	Ajax
३८	१२	दृश्य दशन	दृश्यप्रदर्शन
४१	१८	डियानिसिअस	न्योनिसिअस
४२	३	मीनेण्डर	मीनाण्डर
५९	५	एट्रुस्कन	एट्रुस्कन (अन्यत्र भी)
५९	५	Etuscan	Etru'can
५९	२३	हुए। इम	हुए।
५९	२५	वंग ~	इस वंग में

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६०	१७	एट्रूरिया	एट्रूरिया
७१	६	यहिं	यहाँ
७२	१८	वोल्तायर	वोल्तेर (अन्यत्र भी)
७८	६	एपिस्टल्स	एपिसल्स (अन्यत्र भी)
९६	६	दिइनिसिअस	दियोनिसिअस
१०५	२६	क्लासिकल	क्लासिकल
१०६	१८	डियोमीदिस	दियोमीदिस
११०	७	समोक्षात्मक	समीक्षा को
११२	२२	पार्मनीज	पिरेनीज
१२०	२	अस्त यस्ता	अस्तव्यस्तता
१२१	१३	डिविअओनारी	डिविनओनारियाइ
१२२	११	मान	माना
१३४	२३	आपको	आपका
१३५	२५	बाभिल	बोभिल
१४०	२१	क्योंकि	क्योंकि
१४१	१७	मूलत	मूल
१६१	१८	कार्नील	कोरनेई (अन्यत्र भी)
१६१	१८	रेसीन	रासीन (अन्यत्र भी)
१६१	१ (फुटनोट)	आयम्बिक	आयम्बिक
१६२	६ (फुटनोट)	दौंग्रा	दोग्रे
१६२	९	ब्वालो	बुआलो अन्यत्र भी)
१६३	२	लॉरेट	लॉरिएट
१६७	१८	लघुगीत	मवोधगीति (अन्यत्र भी)
१६७	१८	चतुष्पदी	चतुष्पदी (अन्यत्र भी)
१७९	१६	डेनिस ने	डेनिस न उत्तेजित

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८३	२१	वमफोल्ड	वसफोल्ड
१८६	२७	सम्बोधन	सम्बोधित
२०७	१४	सस्प्रदायों	सम्प्रदाया
२ ७	१७	पाम्पेइ	पोम्पेयी
२१२	८	माव्यम	माध्यम
२१६	१४	मोहक्ना	मोहक्ता
२१६	१०	आधुनिक अधिकाश	अधिकाश आधुनिक
२१७	१८	अ तदशक	अन्तदशक
२२५	२१	रूप	रूस
२२५	२४	शली	शैली
२२७	३१	मात्रा	ग्रशों
२ २	१२	सम्पूण ह	सम्पूण
२४३	४	मल युद्ध	मल्ल युद्ध
२४३	१८	पववर्ती	पूर्ववर्ती
२४५	७	प्रमुखता	प्रमुखता से
२४६	१०	में तीसरा भाग	तीसरा भाग
२४८	२१	विश्वास नही	विश्वास नहीं था
२५०	१	पर्शी	पर्शी
२७१	१८	इससे	इसने
२७१	२९	विश्वासी	विश्वासो
२ ७	६	सैंत व्यव	सौं वव (अयत्र भी)
२७६	१४	साधियों	साध्वियों
२८२	२२	नार	नारा
२८९	२०	भौनिक	भौतिक
३२५	१०	(फुट नोट) कवियों की–द्वारा	कवियों द्वारा
३२८	७	हसमें	इसमें

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३३०	२६	'अप्रेसिएशन्स'	'ऐप्रिसिएशन्स'
३३६	५	सामान्य अथ	सामान्य अर्थ में
३४८	२१	चिन्तन	चिन्तन
३४९	२०	धमपूर्ण	धर्म पूर्ण
३४९	२८	शैली	शेली
३५८	२५	रूपसौन्दर्य	रूप सौंदर्य
३६४	१३	वक्रक्ति	वक्रोक्ति
३७०	१८	आत्मा को	आत्मा की
३७१	११	दोष	दोष
३७१	१७	रिचर्डस से	रिचर्ड्स ने
३७२	३	आवगो	आवेगो
३७२	२१	भावावेश भाषा	भावावेश युक्त भाषा
३७३	१७	स्थायी	स्थायी
३७४	५	शायद	शासन
३७४	२०	तथा कथित	तथा-कथित
३७४	२२	कथनों को	कथना को
३७४	२८	सम्बन्ध	सबद्ध
३७८	२०	जान को	जॉन क्रो
३७९	१२	पाठकों की	पाठको को
३८०	१०	पहला	पहला,
३८०	७ (फुटनोट)	'इम्परफेक्ट क्रिटिक	'इम्परफेक्ट क्रिटिक'
३८१	२	ह्यम	ह्यूम (अन्यत्र भी)
३८१	१४	कटिन	कठिन
३८१	६ (फुटनोट)	वर्मूमिग्स	क्यूमिंग्स
३८१	११ (फुटनोट)	कितनी	कितनो
३८१	१२ (फुटनोट	पुवातन	पुरातन

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३८३	७	भ्रट	भ्रष्ट
८७	९	मोनेट	मोने (अन्यत्र भी)
३९०	२२	कासिरेर	कासिरे
३९१	१७	चाल्स	शाल
३९१	२१	फ्लस ड्यूमाल	ले फ्लेअर द्यूमाल
३९३	२०	कत्रिता	कविता
३९५	१	डिडेरो	दिदरो
३९५	१९	१८७० से १८८०	१८८० से १८९५
३९६	१०	निबधि	निर्बाध
४००	६	आन्द्रे गीद	आन्द्रे जीद
४०३	१	टी० एल०	टी० एस०
४०९	१९	षवि का सम्बन्ध	कवि का सम्बन्ध।
४२८	१०	सामान्य खोज	समान खोज
४३५	१५	मै	में
४३६	१४	१९३७ मं	१९१७
४३६	१६	द एनोटोमी ऑफ नानसेंस	'द एनोटोमी आफ नॉनसेंस'
४३७	१	यथाथ	यथाथ
४३७	११	तीव्र	तीव्र
४३७	२७	क्षेत्र में	क्षत्र में
४३९	२५	द्रयत्न	प्रयत्न
४३९	२१	कवित	कविता
४४०	३	संचाल्न	संचालित
४४०	६	कनमेंच्यु अल	कनर्मेच्युअल
४४०	४ (फुटनोट)	पम्पसन	एम्पसन
४४१	२ (फुटनोट)	गैम्पसन	एम्पसन

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४४३	८	बजू न्स	वज्र स
४४४	२२	अटम	ऑटम
४४८	११	धनेक	अनेक
४५०	१२ (फुटनोट)	मस्वीकृति	अस्वीकृति
४५१	८	भोर	ओर
४५२	९	क्रियाव्यापार अथवा	क्रियाव्यापार अथवा
४५३	३	'क्रिटिक्स जॉब ऑफ वर्क'	'क्रिटिक्स जॉब ऑफ वर्क' (अन्यत्र भी)
४५६	२३	विलयन्य	विलयन्य
४५८	१२	पूय	पूव
४५८	१३	लोकगाया	लोकगाथा
४५९	६	द डाॅग	द डॉग
४१५	२०	एवसा	एक्स
४६५	२५	भावन	भावना
४७४	८	नाम म	नाम में
४७५	१	दिचारों	विचारो
४७५	१८	वैल्यू	वैल्यू
४७७	१२	उल्लेखनीय	उल्लेखनीय
४७७	२१	गये	गये
४७९	८	नींद है ?	नींद ह ?"
४८८	१४ (फुटनोट)	पेपल	पीपल
४८९	२ (फुटनोट)	अथ	अथ
४९०	९ (फुटनोट)	घाई०	आई०
४९२	१२ (फुटनोट)	एम्सन	एम्पसन
४९२	८	जाज	जैज़

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४९५	१९	यनुष्य	मनुष्य
४९५	२७	स्यन	स्यान
४९८	६	केयल	केवल
४९९	३ फुटनोट)	रिबुअलिस्टिक	रिचुअलिस्टिक
४९९	५ (फुटनोट)	Tobso	Taboo
५००	८	काम	कामू

परिशिष्ट २ पृष्ठ ५०६

अशुद्ध	शुद्ध
अवखूस	अक्किउस
आद्रामीदा	आद्रोमेदा
अण्टिगोनी	अण्टिगोने
अरिस्तोफानोस	अरिस्तोफानेस
अरिस्तोतल्सि	अरिस्तोतेलेस
क्रैतिनोस	क्रातिनोस
दिामत्रयोस	देमेत्रयोस
दिमोस	देमोस
दिमोस्थेनीस	देमोस्थेनेस
दियोमीदीस	दिओमेदेस
एम्त्रेग्नोक्लीस	एम्पेदोक्लेस
युदिमुस	ओएदेमुस
यूल्सिस (ओदीसेफ्स)	ओएलिज़ुस
यूपोलिस	ओएपालिस

एग्रीपीडिस	ओएरिपिडेस
इसिओदस	हेजिओद
होमर	होमेर
हिपोक्रेतिस	हिपोक्रेतेस
इकरिया	इकारिया
इलियड	इलियस
इसोक्रतीस	इसोक्रातेस
मीदिया	मेदेया
ओदी	ओदे
ओदेसिया	ओदेसे
ओदीसेफ्स	ओदिस्सोएव
इदीपुस तीग्नुस	ओदिपुस तीरान्नुस
ओरेस्टीआ	ओरस्तेया
पेरीक्लीस	पेरीक्लेस
पेरमेनिदिस	पेरमेनेदेस
पेरी इप्सुस	पेरी हुप्सूस
फाय़ ेस	फेदुस
सोक्रतीस	साक्रतेस
सोफोक्लीस	सोफोक्लेस
स्तारफियादिस	स्तोरगियादेस
थीब	थेबेस
थियोदोरस	थियोदोरुस
थ्रसीमखोस	थ्रसीमखुस
त्रिया	त्रोया

सदर्भग्रन्थों की सूची

५०७	प्रिंसिपल्स ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म	एबरक्रोम्बी प्रिंसिपल्स ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म
पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध
५०८	प्लेटो द अपोलोजी, थालू	प्लेटो द अपोलोजी
५०८	विक्ले राज्स	विक्ले राजर्स
५०९	सिररोज	सिसरोज
५०९	फॉह	फॉर
५०९	द वल्डस	द वल्ड्स
५०९	जोसेफ, डेनिस	जोसेफ डेनिस
५१०	गेटज	गेटेज
५१०	एम्लेयाड	एप्लेयाड

●